नायाधम्मकहाओ

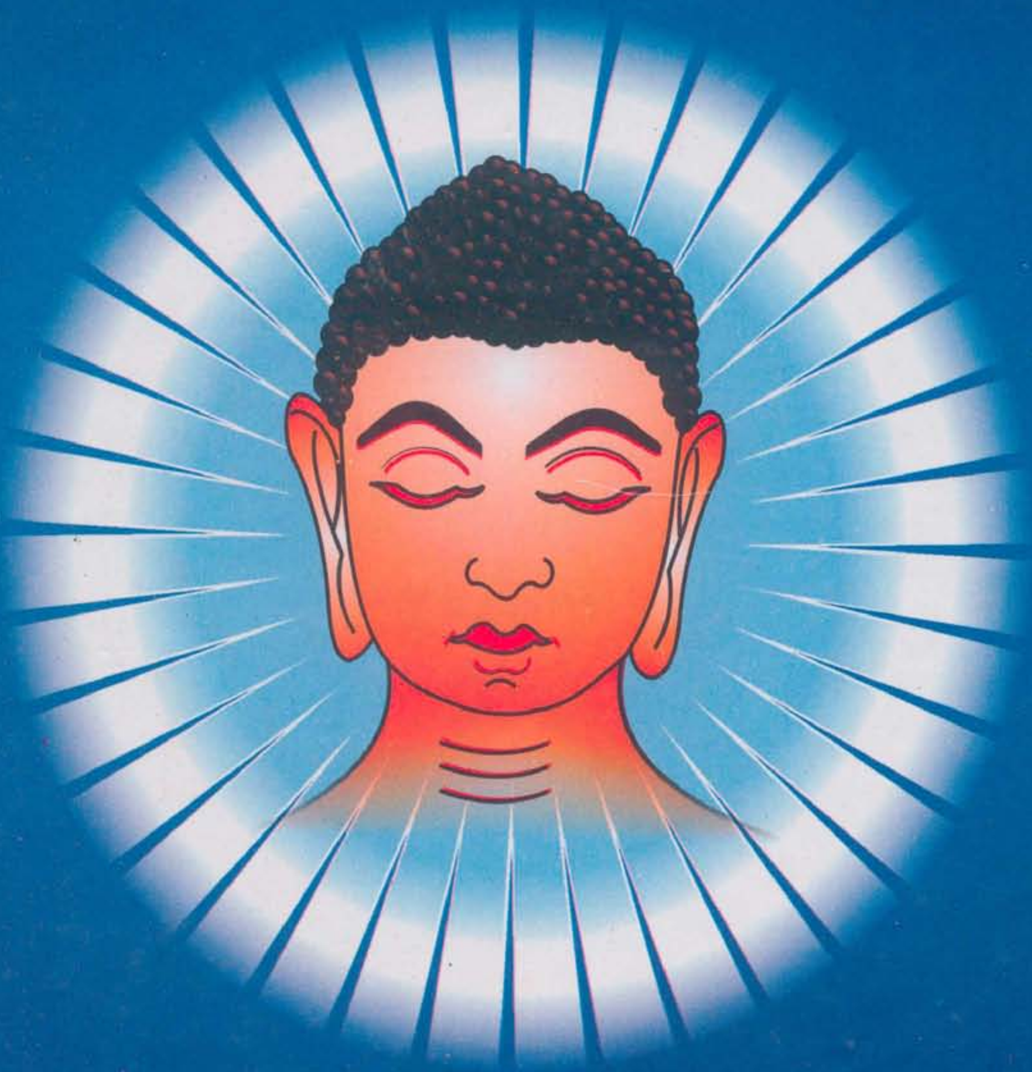

वाचना-प्रमुख
आचार्य तुलसी

संपादक : विवेचक
आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नायाधम्मकहाओ

नायाधम्मकहाओ में दो पद हैं—१. नाया, २.धम्मकहाओ। दोनों पद बहुवचनान्त हैं।

प्रस्तुत आगम के दो श्रुतस्कन्ध हैं। नाया का सम्बन्ध प्रथम श्रुतस्कन्ध से है। धर्मकथा का सम्बन्ध दूसरे श्रुतस्कन्ध से है। धर्मकथा का अर्थ स्पष्ट है। ज्ञात का अर्थ दृष्टान्त, उदाहरण है।

प्रस्तुत आगम चरणकरणानुयोग के अन्तर्गत है। इस दृष्टि से प्रस्तुत आगम में चरित्र का संपोषण करने वाली घटनाओं, दृष्टान्तों और कथाओं का समावेश किया गया है।

आगम साहित्य में कथा साहित्य का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। जनसाधारण तक पहुंचाने के लिए सरल और सरस माध्यम की आवश्यकता होती है, उस आवश्यकता की पूर्ति का सर्वोत्तम माध्यम है कथा। उसमें दर्शन, संस्कृति और लोक जीवन की अमूल्य धरोहर प्राप्त होती है। आगम कथा साहित्य पर अब तक अपेक्षित कार्य नहीं हो सका। यदि उस पर एक व्यवस्थित और योजनाबद्ध कार्य किया जाए तो भारतीय संस्कृति और जीवन शैली को नया प्रकाश मिल सकता है।

प्रस्तुत आगम गद्यप्रधान है। गद्य के अनेक रूप हैं। कहीं-कहीं काव्यात्मक शैली का गद्य है तो कहीं-कहीं वर्णनात्मक शैली का। कहीं-कहीं समासान्त वाक्यों की भरमार है तो कहीं-कहीं मुक्त वाक्य हैं कहीं-कहीं पद्य भी हैं।

विषय-वस्तु के प्रतिपादन की शैली का विचार करने पर एक निष्कर्ष स्पष्ट रूप से सामने आता है—आगम संकलन के समय कुछ विषयों के प्रतिपादन की एक निश्चित शैली बनाई गई थी। उस पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार नहीं किया जा सकता, केवल प्रतिपादन शैली की दृष्टि से विचार किया जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नायाधम्मकहाओ

(मूलपाठ, हिन्दी अनुवाद, भाष्य एवं परिशिष्ट—शब्दानुक्रम आदि सहित)

वाचना-प्रमुख

आचार्य तुलसी

संपादक : विवेचक

आचार्य महाप्रज्ञ

जैन विश्व भारती

लाडनूं, राजस्थान - ३४१३०६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशक :

जैन विश्व भारती
लाडनूं - ३४१३०६ (राज.)

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

ISBN : 81-7195-089-2

सौजन्य : सेठ नगीनभाई मंछुभाई जैन
साहित्योद्धार फण्ड, गोपीपुरा सूरत

प्रथम संस्करण : जून, २००३

पृष्ठ संख्या : 480

मूल्य : ५००/- रुपये
U.S.$ 50

मुद्रक :
श्री वर्धमान प्रेस, दिल्ली-३२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

NAYADHAMMKAHAO

(Prakrit Text, Hindi Translation and Bhāṣya [Critical Annotations] and Appendices—Indices etc.)

Vācanā-Pramukha
ACHARYA TULSI

Editor and Commentator
ACHARYA MAHAPRAJNA

JAIN VISHVA BHARATI
Ladnun, Rajasthan - 341306
(INDIA)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Publishers :
Jain Vishva Bharati
Ladnun-341306 (Raj.)

© Jain Vishva Bharati, Ladnun

ISBN : 81-7195-089-2

Courtsey : Sheth Naginbhai Manchhubhai Jain
Sahityodhar Fund, SURAT

First Edition : June, 2003

Pages : 480

Price : Rs. 500/-
U.S.$ 50

Printed by :
Shree Vardhman Press, Delhi-32

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समर्पण

॥ १ ॥

पुट्ठो वि पण्णा-पुरिसो सुदक्खो,
आणा-पहाणो जणि जस्स निच्चं।
सच्चप्पओगे पवरासयस्स,
भिक्खुस्स तस्स प्पणिहाणपुव्वं॥

जिसका प्रज्ञा-पुरुष पुष्ट पटु,
होकर भी आगम-प्रधान था।
सत्य-योग में प्रवर चित्त था,
उसी भिक्षु को विमल भाव से॥

॥ २ ॥

विलोडियं आगमदुद्धमेव,
लद्धं सुलद्धं णवणीयमच्छं।
सज्झायसज्झाणरयस्स निच्चं,
जयस्स तस्स प्पणिहाणपुव्वं॥

जिसने आगम-दोहन कर,
पाया प्रवर प्रचुर नवनीत।
श्रुत-सद्ध्यान लीन चिर चिंतन,
जयाचार्य को विमल भाव से॥

॥ ३ ॥

पवाहिया जेण सुयस्स धारा,
गणे समत्थे मम माणसे वि।
जो हेउभूओ स्स पवायणस्स,
कालुस्स तस्स प्पणिहाणपुव्वं॥

जिसने श्रुत की धार बहाई,
सकल संघ में, मेरे मन में।
हेतुभूत श्रुत-सम्पादन में,
कालुगणी को विमल भाव से॥

विनयावनत

आचार्य तुलसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तस्तोष

अन्तस्तोष अनिर्वचनीय होता है उस माली का जो अपने हाथों से उप्त और सिञ्चित द्रुम-निकुञ्ज को पल्लवित, पुष्पित और फलित हुआ देखता है, उस कलाकार का जो अपनी तूलिका से निराकार को साकार हुआ देखता है और उस कल्पनाकार का जो अपनी कल्पना को अपने प्रयत्नों से प्राणवान् बना देखता है। चिरकाल से मेरा मन इस कल्पना से भरा था कि जैन-आगमों का शोध-पूर्ण सम्पादन हो और मेरे जीवन के बहुश्रमी क्षण उसमें लगें। संकल्प फलवान् बना और वैसा ही हुआ। मुझे केन्द्र मान मेरा धर्म-परिवार उस कार्य में संलग्न हो गया। अतः मेरे इस अन्तस्तोष में मैं उन सबको समभागी बनाना चाहता हूं, जो इस प्रवृत्ति में संविभागी रहे हैं। संक्षेप में वह संविभाग इस प्रकार है--

संपादक : विवेचक	–	**आचार्य महाप्रज्ञ**
सहयोगी : अनुवादक, टिप्पण, परिशिष्ट आदि व संपादन	–	**साध्वी कनकश्री**
		साध्वी श्रुतयशा
		साध्वी मुदितयशा
		साध्वी शुभ्रयशा
		साध्वी विश्रुतविभा
वीक्षा और समीक्षा	–	**मुनि हीरालाल**

संविभाग हमारा धर्म है। जिन-जिनने इस गुरुतर प्रवृत्ति में उन्मुक्त भाव से अपना संविभान समर्पित किया है, उन सबको मैं आशीर्वाद देता हूं और कामना करता हूं कि उनका भविष्य इस महान् कार्य का भविष्य बने।

आचार्य तुलसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

सानुवाद आगम ग्रन्थों की प्रकाशन योजना के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रकाशित आगम विद्वानों द्वारा समादृत हो चुके हैं—

१. दसवे आलियं
२. सुयगडो (भाग १, भाग २)
३. उत्तरज्झयणाणि
४. ठाणं
५. समवाओ
६. अणुओगदाराइं
७. नन्दी

इसी शृंखला में ज्ञातधर्मकथा का प्रस्तुत प्रकाशन पाठकों के हाथों में पहुंच रहा है।

मूल संशोधित पाठ और हिन्दी अनुवाद, प्रत्येक अध्ययन के विषय प्रवेश की दृष्टि से आमुख और विस्तृत टिप्पणियों से अलंकृत ज्ञातधर्मकथा का यह प्रकाशन आगम प्रकाशन के क्षेत्र में अभिनव स्थान प्राप्त करेगा, ऐसा लिखने में संकोच नहीं होता। प्रस्तुत आगम में अध्ययनों के सानुवाद और सटिप्पण संयोजना के पश्चात् छह परिशिष्टों का समाकलन किया गया है जो इस प्रकार है—

१. संक्षिप्त पाठ पूर्त स्थल पूर्ति स्थल
२. गाथानुक्रमणिका
३. वर्णकवाची आलापक
४. विशेष शब्दानुक्रमणिका
५. विशेष नामानुक्रमणिका
६. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

प्रस्तुत प्रकाशन के पूर्व सानुवाद आगम प्रकाशन की योजना के अन्तर्गत आचार्य महाप्रज्ञ द्वारा रचित आचारांगभाष्यम् प्रकाशित हो चुका है। उक्त प्रकाशन के बाद भगवई (विआहपण्णत्ती, खण्ड १, २) मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, भाष्य तथा परिशिष्ट, जिनदासगणि कृत चूर्णि एवं अभयदेवसूरि कृत वृत्ति सहित प्रकाशित हुआ। पूर्व प्रकाशनों की तरह ही वाचना-प्रमुख गणाधिपति तुलसी के तत्त्वावधान में प्रस्तुत एवं आचार्य महाप्रज्ञ द्वारा सम्पादित ये प्रकाशन विद्वानों द्वारा भूरि-भूरि प्रशंसित हुए हैं।

प्रस्तुत आगम के प्रस्तुतीकरण में इन साध्वियों का प्रचुर योगदान रहा है—साध्वी श्रुतयशाजी, साध्वी मुदितयशाजी, साध्वी शुभ्रयशाजी और साध्वी विश्रुतविभाजी।

प्रस्तुत आगम की वीक्षा समीक्षा में मुनि श्री हीरलालजी का अच्छा योगदान रहा है।

लाडनूं
१७ जून, २००३

भागचंद बरड़िया
मंत्री
जैन विश्व भारती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

'नायाधम्मकहाओ' धर्मकथानुयोग का प्रमुख ग्रन्थ है। इसमें कथा के माध्यम से अध्यात्म के महत्त्वपूर्ण रहस्यों का अनावरण हुआ है। इसके सम्पादन में अनुवाद, टिप्पण और परिशिष्ट की समायोजना की गई है। प्रत्येक अध्ययन के प्रारम्भ में आमुख है और इसकी समाप्ति छह परिशिष्टों के साथ हुई है।

सहयोगानुभूति

हमारी इस व्यवस्था के प्रमुख गणाधिपति श्री तुलसी रहे हैं। वाचना का अर्थ अध्यापन है। हमारी इस प्रवृत्ति में अध्यापन कर्म के अनेक अंग हैं—पाठ का अनुसंधान, भाषान्तर, समीक्षात्मक अध्ययन आदि-आदि। इन सभी प्रवृत्तियों में गुरुदेव का हमें सक्रिय योग, मार्गदर्शन और प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है। यही हमारा इस गुरुतर कार्य में प्रवृत्त होने का शक्तिबीज है।

इसके अनुवाद का कार्य साध्वी कनकश्री को सौंपा गया था। उन्होंने पूर्ण निष्ठा और श्रम के साथ अनुवाद का कार्य सम्पन्न किया। उसका पुनर्निरीक्षण किया गया। उसमें पर्याप्त समय लगा व पर्याप्त परिशोधन किया गया। परिशोधन कार्य में साध्वी श्रुतयशा, साध्वी मुदितयशा, साध्वी शुभ्रयशा व साध्वी विश्रुतविभा ने काफी श्रम किया।

मुनि हीरालाल जी व मुनि धनंजयकुमार जी की संलग्नता भी उपयोगी रही।

आचार्य महाप्रज्ञ

१७ जून, २००३
उधना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूमिका

समालोच्य आगम द्वादशाङ्गी का छठा अंग है। नंदी और समवायाङ्ग के अनुसार इसका नाम है 'नायाधम्मकहाओ'।[1]

नायाधम्मकहाओ में दो पद हैं—१. नाया, २. धम्मकहाओ। दोनों पद बहुवचनान्त हैं।

प्रस्तुत आगम के दो श्रुतस्कन्ध हैं। नाया का सम्बन्ध प्रथम श्रुतस्कन्ध से है। धर्मकथा का सम्बन्ध दूसरे श्रुतस्कन्ध से है। धर्मकथा का अर्थ स्पष्ट है। ज्ञात का अर्थ दृष्टान्त, उदाहरण है। तत्त्वार्थ भाष्य, भाष्यनुसारिणी टीका, नन्दिवृत्ति इन सबमें ज्ञात शब्द है।[2] सिद्धसेनगणी ने ज्ञात का अर्थ दृष्टान्त किया है।[3] नंदी चूर्णिकार ने ज्ञात का अर्थ आहरण अथवा दृष्टान्त किया है।[4] मलयगिरि ने ज्ञात धर्मकथा के दो अर्थ किए हैं—१. उदाहरण प्रधान धर्मकथा, २. ज्ञात का अर्थ ज्ञाताध्ययन किया है और इसका सम्बन्ध प्रथम श्रुतस्कन्ध से बतलाया है। धर्मकथा का सम्बन्ध दूसरे श्रुतस्कन्ध से है।[5]

उक्त उदाहरणों में ज्ञात शब्द का अर्थ दृष्टान्त और उदाहरण किया है।

दिगम्बर परम्परा में 'नायाधम्मकहाओ' का नाम णाहधम्मकहा और ज्ञातृधर्मकथा मिलता है।[6] ज्ञातृ शब्द के आधार पर अनेक विद्वानों ने 'ज्ञातपुत्र महावीर की धर्मकथा' यह अर्थ किया है।

'नाथ' पद का आधार भगवान का वंश माना गया है। दिगम्बर साहित्य में भगवान का वंश 'नाथ' रूप में उल्लिखित है। 'ज्ञातृ' पद भी सम्भवतः वंश का वाचक रहा है।

वंश के आधार पर महावीर की धर्मकथाएं यह अनुमान किया गया है ऐसा प्रतीत होता है। समवायाङ्ग और नंदी के आधार पर यह स्पष्ट है 'ज्ञात' शब्द दृष्टान्तभूत व्यक्तियों के अर्थ में प्रयुक्त है। इसीलिए उनके नगर, उद्यान आदि का वर्णन किया गया है।[7]

समवायाङ्ग और नंदी में ज्ञातधर्म कथा का विस्तृत वर्णन है।[8] उसके अनुसार प्रस्तुत आगम के अध्ययन संक्षेप में दो प्रकार के बतलाए गए हैं[9]—

१. चरित (घटित)

२. कल्पित

---

१. (क) नंदी, सू. ८०
   (ख) समवाओ, प्रकीर्णक समवाय, सू. ८८

२. (क) तत्त्वार्थ भाष्य, सू. २०
   (ख) भाष्यानुसारिणी वृत्ति, पृ. ६१
   (ग) नंदी वृत्ति पत्र २३०, २३१

३. भाष्यानुसारिणी वृत्ति, पृ. ६१ ज्ञाताः दृष्टान्ताः।

४. नंदी चूर्णि, पृष्ठ १०३

५. नंदी, मलयगिरीया वृत्ति पत्र २३०, २३१

६. कषायपाहुड़ १, पृष्ठ ६४

७. (क) समवाओ, प्रकीर्णक समवाय ६४, नायाधम्मकहासु णं नायाणं नगराइं, उज्जाणाइं, चेइयाइं वणसंडाई...
   (ख) नंदी, सूत्र ८६

८. वही

९. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत आगम के दो श्रुतस्कन्ध हैं। प्रथम श्रुतस्कन्ध के उन्नीस अध्ययन हैं–

१. उक्खित्तणाए	२. संघाडे
३. अंडे	४. कुम्मे
५. सेलगे	६. तुंबे
७. रोहिणी	८. मल्ली
९. मायंदी	१०. चन्दिमा
११. दावद्दव	१२. उदगणाए
१३. मंडुक्के	१४. तेयली
१५. नंदीफले	१६. अवरकंका
१७. आइण्णे	१८. सुंसुमा
१९. पुंडरीए	

द्वितीय श्रुतस्कन्ध की धर्मकथाओं की संख्या विस्तार से उपलब्ध है। धर्मकथा के दस वर्ग हैं। प्रत्येक धर्मकथा में पांच-पांच सौ आख्यायिकाएं हैं। प्रत्येक आख्यायिका में पांच-पांच सौ उप-आख्यायिकाएं हैं। प्रत्येक उप-आख्यायिका में पांच-पांच सौ आख्यायिक उपाख्यायिकाएं हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर इसमें साढ़े तीन करोड़ आख्यायिकाएं हैं।[1]

ये आज अनुपलब्ध हैं। अनुपलब्ध क्यों हुई ? यह एक विमर्शनीय बिन्दु है। भगवती जैसा विशालकाय आगम उपलब्ध है और ज्ञाता के उन्नीस अध्ययन उपलब्ध हैं। फिर धर्मकथाएं अनुपलब्ध क्यों हुई ? इस प्रश्न का उत्तर सम्भावना और अनुमान के आधार पर ही दिया जा सकता है। उत्तरवर्ती जैन आचार्यों का जितना आकर्षण द्रव्यानुयोग और चरणकरणानुयोग में रहा उतना गणितानुयोग और धर्मकथानुयोग में नहीं रहा। उस समय लेखन की समस्या थी। उस स्थिति में कथा साहित्य की समस्त और असमस्त पदावलि को स्मृति में रखना सम्भव नहीं रहा। साढ़े तीन करोड़ कथाओं को स्मृति में रखना सरल काम नहीं था। इसलिए धर्मकथा का बृहत्तम भाग विलुप्त हो गया। द्वादशाङ्गी के विलोप की समस्या सामने थी अतः उस समय चयन करना आवश्यक हो गया था कि प्राथमिकता किसको दी जाए। सम्भवतः द्रव्यानुयोग और चरणकरणानुयोग को प्राथमिकता दी गई और शेष दो अनुयोगों की उपेक्षा की गई। इसलिए धर्मकथाएं विलुप्त हो गईं।

प्रथम श्रुतस्कन्ध के उन्नीस अध्ययनों में चरित्र और दृष्टान्त का वर्गीकरण इस प्रकार है :

चरित्र	**दृष्टान्त**
१. उक्खित्तणाए	२. संघाडे
५. सेलगे	३. अंडे ४. कुम्मे
८. मल्ली	६. तुम्बे ७. रोहिणी १०. चन्दिमा
९. मायंदी	११. दावद्दव १२. उदगणाए १५. नंदीफले
१३. मंडुक्के १४. तेयली	१७. आइण्णे
१६. अवरकंका	
१८. सुंसुमा	
१९. पुंडरीए	

प्रतिपाद्य–प्रत्येक आगम का प्रतिपाद्य है अध्यात्म। भगवान महावीर का दर्शन आत्मा की परिक्रमा कर रहा है।

उक्खित्तणाए–मेघकुमार विचलित हो गया। आत्मसंबोध के द्वारा उसका स्थिरीकरण किया गया। यदि भगवान महावीर उसे पुनर्जन्म की स्मृति (जातिस्मृति) नहीं कराते और मेघकुमार को हाथी के जन्म का स्मरण नहीं होता तो उसका स्थिरीकरण करना कठिन होता। पुनर्जन्म की स्मृति वैराग्य का बहुत बड़ा हेतु है।

---

१. समवाओ, प्रकीर्णक समवाय, सूत्र ९४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संघाडे–आत्मा अदृश्य है और शरीर दृश्य है आत्मा स्व है और शरीर पर है, पुद्गल है। चेतन पुद्गल के साथ जीए और उसके प्रति आसक्ति न बने यह कैसे सम्भव है। इस असम्भव को सम्भव बनाने के लिए धन सेठ और विजय तस्कर का दृष्टान्त बहुत प्रभावी है। अपने पुत्र का वध करने वाले को भोजन का विभाग देना यह कल्पना से परे की घटना है। पर अशक्यता की स्थिति में धन ने वैसा किया इस घटना में अशक्यता है आसक्ति नहीं।

शरीर को पोषण देना आवश्यक है। पोषण, स्वाद और आसक्ति के बीच बहुत सूक्ष्म रेखा है। खोड़े में बंधे हुए दो व्यक्तियों के दृष्टान्त से वह रेखा बहुत स्पष्ट हो जाती है।

वृत्ति में उद्धृत गाथा में इस विषय का बहुत सुन्दर निरूपण किया गया है।

सिवसाहणेसु आहार-विरहिओ जं न वट्टए देहो।
तम्हा धणो व्व विजयं, साहू तं तेण पोसेज्जा॥

अंडे–श्रद्धा एक शक्ति है। घनीभूत इच्छा श्रद्धा बन जाती है। उसके द्वारा अध्यात्म की यात्रा में काफी सुविधा मिलती है। संशयालु व्यक्ति की अध्यात्म यात्रा निर्बाध नहीं होती। वन मयूरी के दो अंडों के दृष्टान्त से इस सचाई को उजागर किया गया है।

कुम्मे–अध्यात्म का प्रमुख सूत्र है गुप्ति। वे तीन हैं–मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति। अध्यात्म का विकास वही व्यक्ति कर सकता है जो गुप्ति की साधना करता है। उसकी साधना के बिना आध्यात्मिक विकास में बहुत सारी समस्याएं आती हैं। उन समस्याओं को दो कछुओं के दृष्टान्त के माध्यम से स्पष्ट किया गया है। कूर्म के दृष्टान्त का प्रयोग आगम साहित्य में भी मिलता है–

१. कुम्मोव्व अलीणपलीण गुत्तो।[1]

गीता में भी कछुए के दृष्टान्त का उल्लेख हुआ है।

२. यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।[2]
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

सेलगे–अध्यात्म की साधना का अनुत्तर सूत्र है अप्रमाद। प्रस्तुत अध्ययन राजर्षि शैलक की प्रमत्त और अप्रमत्त दोनों अवस्थाओं का समीचीन निदर्शन है।

इस अध्ययन में थावच्चा पुत्र के साथ शुक परिव्राजक का संवाद विनयमूलक धर्म और शौचमूलक धर्म की स्थिति पर बहुत प्रकाश डालता है।

तुम्बे–लेप अथवा आसक्ति नीचे ले जाती है। निर्लेप अथवा अनासक्ति की अवस्था ऊपर ले जाती है। तुम्बे के दृष्टान्त से इन दोनों अवस्थाओं का सम्यक् सम्बोध मिलता है।

रोहिणी–प्रस्तुत अध्ययन में चार वधुओं की मनोवृत्ति के माध्यम से मानवीय मनोदशा का सम्यक् निरूपण किया गया है।

मल्ली–मल्ली के अध्ययन से दो निष्कर्ष निकलते हैं–

१. अध्यात्म की साधना करने वाले व्यक्ति को माया शल्य से बचना चाहिए।

२. अशौच भावना के द्वारा वैराग्य का विकास किया जा सकता है।

मायंदी–इस अध्ययन का प्रतिपाद्य है इन्द्रिय विजय। इन्द्रिय लोलुपता के कारण जिनरक्षित ने अकाल मृत्यु को प्राप्त किया। इन्द्रिय विजय के कारण जिनपालित अपने घर पहुंच गया।

चन्दिमा–चन्द्रमा की कृष्ण पक्षीय और शुक्ल पक्षीय अवस्थाओं के द्वारा साधना के दो पक्षों का निर्देश किया गया है। शान्ति आदि दश धर्मों की आराधना करने वाला शुक्ल पक्ष की तरह उत्तरोत्तर प्रकाशमय बनता है। उनकी आराधना नहीं करने वाला कृष्ण पक्ष के चन्द्रमा की भांति उत्तरोत्तर हीन कला वाला हो जाता है।

---

१. दसवेआलियं ८/४०
२. गीता २/५८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दावद्दव–प्रस्तुत अध्ययन में सहिष्णुता के आधार पर आराधना और विराधना के विकल्प बतलाए गए हैं।

उदगे–प्रस्तुत अध्ययन में परिणामवाद अथवा पर्याय परिवर्तन के सिद्धान्त की स्थापना की गई है।

मण्डुक्के–एक मनुष्य की दुर्गति और एक मेंढ़क की सुगति। एक ही जीव की दो अवस्थाएं इस अध्ययन का मुख्य प्रतिपाद्य है।

तेयलिपुत्ते–वैराग्य के अनेक कारण हैं--अपमान तिरस्कारपूर्ण जीवन दशा भी वैराग्य का कारण बनती है। तेतली अध्ययन में इस सत्य को पढ़ा जा सकता है।

नंदीफले–अनिष्ट परिणाम को जानकर भी आत्मनियंत्रण के अभाव में इन्द्रिय लोलुपता व्यक्ति को अनिष्ट की ओर ले जाती है। आत्म नियंत्रण की स्थिति में वह बच जाता है। प्रस्तुत अध्ययन में 'जहाकिंपागफलाणं'...इसकी घटनात्मक व्याख्या उपलब्ध है।

अवरकंका–द्रौपदी की पूर्वकथा धर्मरुचि अणगार की अहिंसावृत्ति और वासुदेव कृष्ण का दृढ़संकल्प, प्रस्तुत अध्ययन के ये प्रमुख निष्कर्ष हैं।

आइण्णे–अश्वों की दो प्रकार की मनोदशा के माध्यम से मुनि की दो प्रकार की मनोदशा का चित्रण किया गया है। प्रासंगिक रूप में नौका-यात्रा का बड़ी सूक्ष्मता से निरूपण किया गया है।

सुंसुमा–इस अध्ययन का मुख्य प्रतिपाद्य आहार की आवश्यकता और उसके प्रति होनेवाली आसक्ति के मध्य सूक्ष्म भेदरेखा खींचना है।

पुंडरीए–जीवन का सन्ध्याकाल समग्र जीवन की कसौटी है। अन्तिम समय में पदार्थ के प्रति जितनी अनासक्ति उतनी ही सद्गति। इस अध्ययन का यह निष्कर्ष सन्ध्याकालीन साधना की ओर विशिष्ट ध्यान आकर्षित करता है।

द्वितीय श्रुतस्कन्ध

प्रथम अध्ययन

काली का जीवनवृत्त, आचार की शिथिलता परिणामतः असुरकुमार देव की स्थिति में उत्पत्ति।

अग्रिम अध्ययनों में संक्षिप्त विवरण और काली की भांति जीवनवृत्त।

कथा शास्त्रीय दृष्टिकोण

ठाणं में चार प्रकार की कथा बतलाई गई है–

१. आक्षेपणी
२. विक्षेपणी
३. संवेजनी
४. निर्वेदनी

आक्षेपणी कथा के चार प्रकार हैं–

१. आचार आक्षेपणी में आचार का निरूपण होता है।
२. व्यवहार आक्षेपणी में व्यवहार-प्रायश्चित्त का निरूपण होता है।
३. प्रज्ञप्ति आक्षेपणी में संशयग्रस्त श्रोता को समझाने के लिए निरूपण होता है।
४. दृष्टिपात आक्षेपणी में श्रोता की योग्यता के अनुसार विविध नय दृष्टियों से तत्त्वनिरूपण होता है।

विक्षेपणी कथा के चार प्रकार हैं–

१. अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन कर दूसरे के सिद्धान्त का कथन करना।
२. दूसरों के सिद्धान्त का प्रतिपादन कर अपने सिद्धान्त की स्थापना करना।
३. सम्यक्‌वाद का प्रतिपादन कर मिथ्यावाद का प्रतिपादन करना।
४. मिथ्यावाद का प्रतिपादन कर सम्यक्‌वाद की स्थापना करना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संवेजनी कथा के चार प्रकार हैं—

१. मनुष्य जीवन की असारता दिखाना।

२. देव तिर्यंच आदि के जन्मों की मोहमयता और दुःखमयता बताना।

३. अपने शरीर की अशुचिता का प्रतिपादन करना।

४. दूसरे के शरीर की अशुचिता का प्रतिपादन करना।

निर्वेदनी कथा के चार प्रकार हैं—

१. वर्तमान के सुचीर्ण अथवा दुश्चीर्ण कर्म का वर्तमान में फल देने का निरूपण करने वाली कथा।

२. वर्तमान के सुचीर्ण अथवा दुश्चीर्ण कर्म का भविष्य में फल देने का निरूपण करने वाली कथा।

३. पूर्वजन्म के सुचीर्ण अथवा दुश्चीर्ण कर्म का पूर्वजन्म में फल देने का निरूपण करने वाली कथा।

४. पूर्वजन्म के सुचीर्ण अथवा दुश्चीर्ण कर्म का वर्तमान में फल देने का निरूपण करने वाली कथा।

ठाणं में कथा के तीन प्रकार भी बतलाए गए हैं—१. अर्थकथा, २. धर्मकथा, ३. कामकथा[1]।

प्रस्तुत आगम और अनुयोग

प्रस्तुत आगम चरणकरणानुयोग के अन्तर्गत है। इस दृष्टि से प्रस्तुत आगम में चरित्र का संपोषण करने वाली घटनाओं, दृष्टान्तों और कथाओं का समावेश किया गया है।

प्रस्तुत आगम में वर्णित दृष्टान्तों और कथाओं को स्थानांग के उक्त दोनों सन्दर्भों में देखना उपयोगी होगा।

आगम साहित्य में कथा साहित्य का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। जनसाधारण तक पहुंचाने के लिए सरल और सरस माध्यम की आवश्यकता होती है, उस आवश्यकता की पूर्ति का सर्वोत्तम माध्यम है कथा। उसमें दर्शन, संस्कृति और लोक जीवन की अमूल्य धरोहर प्राप्त होती है। आगम कथा साहित्य पर अब तक अपेक्षित कार्य नहीं हो सका। यदि उस पर एक व्यवस्थित और योजनाबद्ध कार्य किया जाए तो भारतीय संस्कृति और जीवन शैली को नया प्रकाश मिल सकता है।

मुनि कमलजी ने आगमों का वर्गीकरण किया, उसमें एक खण्ड धर्मकथानुयोग है। उपाध्याय पुष्कर मुनि, अमर मुनि, मुनि छत्रमल जी आदि अनेक लेखकों ने कथाकोषों का निर्माण किया है। संकलन और सामग्री की दृष्टि से वे पर्याप्त हैं किन्तु कथातत्त्व के विश्लेषण की दृष्टि से एक नया चिन्तन करना आवश्यक है। निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि तथा टीका आदि व्याख्याग्रन्थों में कथाओं के संकेत और विस्तार विपुल परिमाण में उपलब्ध हैं। उन पर कोई विधिवत् कार्य नहीं हुआ है।

उत्तराध्ययन आदि आगमों में भी अनेक कथाएं हैं। धर्मकथानुयोग के उदाहरण में भी प्रमुख रूप से उत्तराध्ययन 'इसिभासियाइं' का उल्लेख मिलता है।

शैली

प्रस्तुत आगम गद्यप्रधान है। गद्य के अनेक रूप हैं। कहीं-कहीं काव्यात्मक शैली का गद्य है तो कहीं-कहीं वर्णनात्मक शैली का। कहीं-कहीं समासान्त वाक्यों की भरमार है तो कहीं-कहीं मुक्त वाक्य हैं। कहीं-कहीं पद्य भी हैं।[2] वृत्तिकार ने नवें अध्ययन की वृत्ति में छह गीतकों और दो रूपकों का उल्लेख किया है।[3]

विषय-वस्तु के प्रतिपादन की शैली का विचार करने पर एक निष्कर्ष स्पष्ट रूप से सामने आता है--आगम संकलन के समय कुछ विषयों के प्रतिपादन की एक निश्चित शैली बनाई गई थी। उस पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार नहीं किया जा सकता, केवल प्रतिपादन शैली की दृष्टि से विचार किया जा सकता है।

पांचवें अध्ययन के ४५वें सूत्र में निर्ग्रन्थ प्रवचन का प्रयोग प्रासंगिक नहीं है। भगवान अरिष्टनेमि के समय में अर्हत् प्रवचन का प्रयोग किया जाता था। निर्ग्रन्थ प्रवचन का प्रयोग केवल महावीर शासन के लिए ही किया जा सकता है। इसी सूत्र में

---

१. ठाणं ३/४१६

२. देखें परिशिष्ट सं. १

३. ज्ञाता वृत्ति, पत्र १६८/१६६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'पंचाणुव्वइयं गिहिधम्मं' का प्रयोग है। यह भी शैलीगत पाठ है। वास्तविकता पर विचार करें तो यहां 'चाउज्जामं गिहिधम्मं' पाठ होना चाहिए। भगवान अरिष्ठनेमि के समय चातुर्यामिक धर्म का प्रवर्तन था। इसलिए 'चाउज्जामियं गिहिधम्मं' पाठ अधिक संगत है।

इस विषय में 'रायपसेणइयं' का एक विमर्श अधिक उपयोगी होगा—कुमार श्रमण केशी ने सारथि चित्त को चातुर्यामिक धर्म का उपदेश दिया।[1] सारथि चित्त ने द्वादशविध (पांच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत) गृहधर्म को स्वीकार किया।[2] द्वादशविध गृहधर्म का प्रतिपादन ही नहीं तो फिर स्वीकृति कैसे हुई ? इस विरोधाभास का हेतु शैलीगत पाठ का स्वीकार है। औपपातिक सूत्र में शैलीगत पाठों का संग्रह है। संक्षिप्त पाठ औपपातिक से पूरे किए जाते हैं। यदि पाठ पूर्ति के समय ऐतिहासिक दृष्टि से काम लिया जाता तो यह समस्या पैदा नहीं होती, यह विरोधाभास सामने नहीं आता।

रायपसेणइयं के इस प्रसंग से प्रस्तुत आगम के विषय में हमारी दृष्टि स्पष्ट हो जाती है कि निर्ग्रन्थ, द्वादशविध गृहधर्म आदि प्रयोग शैलीगत पाठ को स्वीकार करने के कारण आए हुए हैं।

शुक परिव्राजक का वर्णन शैलीगत वर्णन है। इसमें अथर्ववेद और षष्टितंत्र का उल्लेख है। ये दोनों उत्तरकालीन ग्रन्थ हैं। दूसरी समस्या यह है कि सांख्य दर्शन श्रमण परम्परा का दर्शन है इसलिए उसके साथ वेद का उल्लेख विचारणीय है।[3]

पाठ विमर्श

प्रस्तुत आगम का वर्तमान परिमाण बहुत छोटा है। प्राचीन काल में यह विशालकाय आगम था। समवाओ, नंदी और कषायपाहुड़ में इसका विवरण उपलब्ध होता है। नंदी की टीका में इसका पद परिमाण ५ लाख ७६ हजार बतलाया गया है।[4] कषायपाहुड़ की जयधवला टीका में प्रस्तुत आगम का पद परिमाण ५ लाख ५६ हजार बतलाया गया है।[5]

प्रतिक्रमणत्रयी की प्रभाचन्द्रसूरि कृत टीका में प्रस्तुत आगम के अध्ययन १६ ही बतलाए गए हैं किन्तु उनके नाम और विषय भिन्न प्रकार के हैं।

एऊणविसाए णाहाज्झयणेसु एकोनविंशातिनाथाध्ययनेषु; तद्यथा गाथा-
उक्कोडणाग-कुम्मंडय-रोहिणि-सिस्स-तुंब-संघादे।
मादंगिमल्लि-चंदिम.तावद्देवय-तिक-तलाय-किण्णे (य) ॥१॥
सुसुके य अवरकंके णंदीफलमुदगणाह-मंडूके।
एत्तो य पुंडरीगो णाहज्झणाणि उगुवीसं ॥२॥

एताः सर्वाः धर्मकथाः। तथाहि—उक्कोऽणागः श्वेतहस्ती, अस्य कथा—उत्तरापथे कनकपुरे राजा कनकः, कनका महाराज्ञी। पुत्रो नागकुमारः तपो गृहीत्वा विहरमाणोऽटव्यां दावानलेन दह्यमानः समाधिना मृत्वाऽच्युतेन्द्रो जातः। तदर्धदग्धकलेवरं दृष्ट्वा तुङ्गभद्रो नाम तत्रत्यो भिल्लो जातपश्चात्तापो मृत्वा तत्रैव श्वेतगजो जातः। सोऽच्युतेन्द्रेण जिनधर्मं ग्राहितः। पुनर्दावानलेन दह्यमानं शशकं स्वपादतले स्थितं रक्षित्वा दह्यमानोऽपि दृढव्रतो भूत्वा मृत्वा देवो जातः।

कुम्म, कूर्माख्यानम्, यथा कूर्मेण मुख-चरणसंकोचं कृत्वाऽऽत्मनो ब्राह्मणाद् मरणं निवारितं तथा मुनिभिरपि पञ्चेन्द्रियसंकुचितैर्मरणपरम्परा निवारयितव्या।

अंडय, अण्डजकथा पञ्चप्रकारा, तद्यथा—कुक्कुटकथा-१। माताप्येकः पिताप्येकः इति तापसफल्लिकास्थितशुककथा-२। चाणक्यव्याकरणे वेदकशुककथा-३। अगन्धनसर्पकथा-४। हंसयूथबन्धमोचनकथा-५।

रोहिणी, स्वपुत्रबलदेवेन सह रोहिणी तिष्ठतीति लोकापवादं श्रुत्वा रोहिण्या तदा भणितम्—'यद्यहं शुद्धा तदा यमुना नदी सौरीपुरं वेष्टित्वा पूर्वाभिमुखं वहतु' इति। तन्माहात्म्यात् तथैव जातम्।

---

१. रायपसेणइयं, सू. ६६३
२. वही, सू. ६६५ का फुटनोट
३. ज्ञाता सूत्र १/५/५२
४. नंदी मलयगिरीया वृत्ति पत्र-२३१
५. कषायपाहुड़ १ पृ. ६४ णहधम्मकहाए छप्पण्णसहस्साहिय पंचलक्खमेत्तपदाणि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिस्स, शिष्यकथा यथा चेलिनीपुत्रवारिषेणप्रतिबोधित पुष्पडालमुनिकथा।

तुंब, रोषेण दत्तकटुकतुम्बकभोजनमुनिकथा।

संधादे, अस्य कथा—कौशाम्बीनगर्यामिन्द्रदत्तादयो द्वात्रिंशदिभ्याः, तेषां समुद्रदत्तादयो द्वात्रिंशत् पुत्राः परस्परमित्रत्वमुपगताः सम्यग् दृष्ट्यः केवलिसमीपेऽतिस्वल्पं निजजीवितं ज्ञात्वा तपो गृहीत्वा यमुनातीरे पादोपयानमरणेन स्थिताः। अतिवृष्टौ जातायां जलप्रवाहेण यमुनाह्रदे सर्वेऽपि ते पतिताः। परमसमाधिना कालं कृत्वा ते स्वर्गं गताः।

मादंगिमल्लि, मातङ्गिमल्लिकथा, यथा वज्रमुष्टिमहाभटभार्यायाः मातङ्गिनामायाः मल्लिपुष्पमालाभ्यन्तरस्थितसर्पदष्टायाः कथा।

चन्दिम, चन्द्रवेधकथा।

तावद्देवथ, तावद्देवतोपद्रवदेशोत्पन्नघोटिकहरणसगरचक्रवर्तिकथा।

तलाय, तडागपल्लयामेकवृक्षकोटरस्थिततपस्विनो गन्धर्वाराधनाकथितकथा।

किण्णे, व्रीहिमर्दनस्थित कर्जकपुरुषसत्यकथा।

सुसुके य, आराधनाकथितशुंशुमारह्रदनिक्षिप्तपाषाणकथा।

अवरकंके, अवरकङ्कानामपत्तनोत्पन्नाञ्जनचोरकथा।

णंदीफल, अटव्यां (बी?) स्थितबुभुक्षापीडितधन्वन्तरिविश्वानुलोमभृत्यानीतकिम्पाकफलकथा।

उदगणाह, उदकनाथकथा, यथा राजामात्यसमक्षगडुलपानीयस्वच्छकरणकथा।

मण्डूके, उद्यानवनतडागसमुत्पन्नजातिस्मरणमण्डूककथा।

पुंडरीगो, पुंडरीकराजपुत्र्याः कथा।

अथवा गाथा—

गुणजीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणाओ य।
एउणवीसा एदे णाहज्झाणा मुणयेव्वा॥

अथवा गाथा—

णव केवललद्धीओ कम्मखयजा हवंति दस चेव।
णाहज्झाणा एते एउणवीसा वियाणाहि॥

कर्मक्षयजा घातिक्षयजा दशातिशयाः एतेषामकाले पठनादौ यो दोषस्तस्य प्रतिक्रमणम्"—

प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी प्रभाचन्द्राचार्यविरचितटीका सहिता, पृ. ५१-५४

प्रतिक्रमण ग्रन्थत्रयी में निर्दिष्ट ज्ञाता के अध्ययनों के नाम उनकी विषय-वस्तु का तुलनात्मक अध्ययन करने पर प्रस्तुत आगम के प्राचीन रूप के विषय में एक नई कल्पना उद्भूत होती है।

पाठ के विषय में विमर्श मूलपाठ की ग्रन्थमाला में किया गया है। फिर भी कुछ शब्दों का विमर्श अपेक्षित है। १/१/२०४ में 'कडाइ' शब्द का प्रयोग है। इसका प्रयोग भगवती (२/६६) में भी मिलता है। इसका अर्थ 'कृतयोग्य' अथवा कृतयोगी किया जाता है। ये दोनों 'कडाइ' के अर्थ हो सकते हैं किन्तु रूपान्तर नहीं हो सकते। इसका रूपान्तर 'कृतयाजी' होना चाहिए।

सूत्र १/१/१२५ में 'चउप्फलाए' शब्द का प्रयोग है। नाई हजामत करने के समय मुखवस्त्रिका बांधते हैं। प्रस्तुत सूत्र में 'मुखवस्त्रिका' चार पट वाली बतलाई गई है। भगवती में इसी प्रसंग में आठ पट वाली मुखवस्त्रिका बतलाई गई है। औपपातिक में अजियं जिणाहि, जियं पालयाहि, इतना ही पाठ है।[1] प्रस्तुत सूत्र में इसके अतिरिक्त इतना पाठ और है। अजियं जिणाहि सत्तुपक्खं, जियं च पालेहि मित्तपक्खं।[2] यह अतिरिक्त पाठ वाचना भेद के कारण हुआ है और उत्तरवर्ती काल में दोनों पाठों का मिश्रण हो गया।

पाठ के विषय में मीमांसा के अनेक स्थल हैं। उनका निर्देश मूलपाठ के संस्करण में किया गया है।

आचार्य महाप्रज्ञ

---

१. ओवाइयं, सूत्र ६८

२. ज्ञाता, सू. १/१/११८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रम

	गाथा व सूत्र	पृष्ठ
प्रथम अध्ययन : उत्क्षिप्त ज्ञात		
उत्क्षेप गाथा	सूत्र १-६	२
संगहणी गाथा	,, १०	३
मेघ के नगर-परिवार आदि का वर्णन-पद	,, ११-१७	४
धारिणी का स्वप्न-दर्शन-पद	,, १८	५
श्रेणिक को स्वप्न-निवेदन-पद	,, १६	६
श्रेणिक का स्वप्न महिमा निदर्शन पद	,, २०	६
धारिणी का स्वप्न-जागरिका-पद	,, २१	७
स्वप्न-पाठक-नियन्त्रण पद	,, २२-२६	८
श्रेणिक द्वारा स्वप्नफल-पृच्छा पद	,, २७-२८	१०
स्वप्न-फल-कथन-पद	,, २६	११
संग्रहणी गाथा	,, २६	११
स्वप्न पाठक-विसर्जन-पद	,, ३०	१२
श्रेणिक द्वारा स्वप्न-प्रशंसा-पद	,, ३१	१२
धारिणी का दोहद-पद	,, ३२-३३	१३
धारिणी का चिन्ता-पद	,, ३४	१५
परिचारिकाओं द्वारा चिन्ता का कारण-पृच्छा-पद	,, ५-३८	१५
परिचारिकाओं द्वारा श्रेणिक को निवेदन-पद	,, ३६	१६
श्रेणिक द्वारा चिन्ता का कारण पृच्छा-पद	,, ४०-४४	१६
धारिणी द्वारा चिन्ता-कारण-निवेदन-पद	,, ४५	१६
श्रेणिक द्वारा आश्वासन-पद	,, ४६	१७
कुमार अभ्य द्वारा श्रेणिक की चिन्ता का कारण पृच्छा-पद	,, ४७-४८	१७
श्रेणिक द्वारा चिन्ता-कारण निवेदन पद	,, ४६	१८
अभय द्वारा आश्वासन पद	,, ५०-५१	१८
अभय द्वारा देवाराधना-पद	,, ५२-५३	१६
देव का आगमन पद	,, ५४-५८	१६
देव का अकालमेघ-विकुर्वणा-पद	,, ५६-६६	२१
अभय द्वारा देव का प्रतिविसर्जन-पद	,, ७०-७१	२३
धारिणी का गर्भचर्या-पद	,, ७२	२३
मेघ का जन्म-वर्धापन-पद	,, ७३-७५	२४
मेघ का जन्मोत्सव-करण-पद	सूत्र ७६-८०	२४
मेघ का नाम आदि (संस्कार) करण-पद	,, ८१	२५
मेघ का लालन-पालन पद	,, ८२-८३	२६
मेघ का कलाग्रहण-पद	,, ८४-८८	२७
मेघ का पाणिग्रहण-पद	,, ८६-६०	२८
प्रीतिदान-पद	,, ६१-६३	२६
महावीर का समवसरण-पद	,, ६४	२६
मेघ की जिज्ञासा-पद	,, ६५-६६	३०
कंचुकी पुरुष का निवेदन-पद	,, ६७	३०
मेघ का भगवान के समीप गमन-पद	,, ६८-६६	३०
धर्म-देशना-पद	,, १००	३१
मेघ का प्रव्रज्या-संकल्प-पद	,, १०१	३१
मेघ का माता-पिता से निवेदन-पद	,, १०२-१०४	३१
धारिणी की शोकाकुलदशा-पद	,, १०५	३२
धारिणी और मेघ का परिसंवाद-पद	,, १०६-११३	३२
मेघ का एक दिवसीय-राज्य-पद	,, ११४-१२०	३६
मेघ के निष्क्रमण प्रायोग्य उपकरण-पद	,, १२१-१२३	३८
नापित के द्वारा मेघ का अग्रकेश-कल्पन-पद	,, १२४-१२७	३८
मेघ का अलंकरण-पद	,, १२८	३६
मेघ का अभिनिष्क्रमण महोत्सव-पद	,, १२६-१४४	३६
शिष्य-भिक्षा-दान-पद	,, १४५-१४८	४२
मेघ द्वारा प्रव्रज्या-ग्रहण-पद	,, १४६-१५१	४३
मेघ का मनः संक्लेश-पद	,, १५२-१५४	४४
मेघ को संबोध-पद	,, १५५	४५
भगवान द्वारा सुमेरुप्रभ-भव का निरूपण-पद	,, १५६-१६२	४६
भगवान द्वारा मेरुप्रभ-भव का निरूपण-पद	,, १६३-१७३	४८
मेरुप्रभ द्वारा मण्डल-निर्माण-पद	,, १७४-१७७	५०
दावानल से भीत श्वापदों का मण्डल में प्रवेश-पद	,, १७८-१७६	५०
मेरुप्रभ का का पादोत्क्षेप-पद	,, १८०-१८७	५१
उस संदर्भ में होने वाली तितिक्षा का उपदेश-पद	,, १८८-१८६	५२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	गाथा व सूत्र	पृष्ठ
मेघ का जातिस्मरण-पद	सूत्र १६०	५२
मेघ का समर्पणपूर्वक पुनः प्रव्रज्या-पद	" १६१-१६३	५३
मेघ का निर्ग्रन्थचर्या-पद	" १६४-१६५	५३
मेघ का भिक्षु प्रतिमा-पद	" १६६-१६८	५४
मेघ का गुणरत्न संवत्सर-पद	" १६९-२०१	५४
मेघ की शरीर-दशा का वर्णन-पद	" २०२	५६
मेघ का विपुल पर्वत पर अनशन-पद	" २०३-२०७	५६
मेघ का समाधि-मरण-पद	" २०८	५८
स्थविरों द्वारा मेघ के आचार-भाण्ड का समर्पण-पद	" २०९	५९
गौतम के प्रश्न का भगवान द्वारा उत्तर-पद	" २१०-२१२	५९
निक्षेप-पद	" २१३	६०
वृत्तिकार द्वारा समुद्धृत निगमनगाथा	गाथा १	६०
टिप्पण		६१-९०

दूसरा अध्ययन : संघाटक

उत्क्षेप-पद	सूत्र १-६	९२
धन सार्थवाह-पद	" ७-१०	९२
विजय-तस्कर-पद	" ११	९३
भद्रा का संतान-मनोरथ-पद	" १२-१५	९४
भद्रा के देवदत्त पुत्र का प्रसव-पद	" १६-२४	९६
देवदत्त का क्रीड़ा-पद	" २५-२७	९८
देवत्त का अपहरण-पद	" २८	९८
देवदत्त का गवेषणा-पद	" २९-३२	९८
विजय तस्कर का निग्रह-पद	" ३३	१००
देवदत्त का निर्हरण-पद	" ३४	१०१
धन का निग्रह पद	" ३५-३६	१०१
धन के घर से आहार-आनयन-पद	" ३७-३८	१०१
विजय तस्कर द्वारा संविभाग-मार्गणा-पद	" ३९	१०१
धन द्वारा उसका निषेध-पद	" ४०-४२	१०२
देहचिंता से आबाधित धन को विजय तस्कर की अपेक्षा-पद	" ४३-४४	१०२
विजय तस्कर द्वारा उसका निषेध-पद	" ४५-४६	१०२
धन के पुनः कहने पर विजय द्वारा संविभाग मार्गणा-पद	" ४७-५१	१०२
धन द्वारा विजय को संविभाग-दान-पद	" ५२-५४	१०३
पन्थक द्वारा वात को बढ़ा-चढ़ाकर भद्रा से निवेदन-पद	" ५५-५६	१०३
भद्रा का कोप-पद	" ५७	१०४
धन की कारागृह से मुक्ति-पद	" ५८	१०४
धन का सम्मान-पद	" ५९-६०	१०४
भद्रा के कोप का उपशमन और अपूर्व सम्मान-पद	सूत्र ६१-६६	१०४
विजय ज्ञात का निगमन-पद	" ६७-६८	१०५
धन-ज्ञात का निगमन-पद	" ६९-७६	१०६
निक्षेप-पद	" ७७	१०७
टिप्पण		१०८-१०९

तीसरा अध्ययन : अंड

उत्क्षेप-पद	सूत्र १-४	११२
मयूरी अण्ड-पद	" ५	११२
सार्थवाह-पुत्र-पद	" ६-७	११२
देवदत्ता गणिका-पद	" ८	११३
सार्थवाह पुत्रों का उद्यान क्रीड़ा-पद	" ९-१६	११३
सार्थवाह पुत्रों द्वारा मयूरी के अण्डों का आनयन-पद	" १७-२०	११५
सागरदत्त-पुत्र का सन्देह के द्वारा अण्डविनाश-पद	" २१-२४	११५
जिनदत्त-पुत्र की श्रद्धा से मयूर उपलब्धि-पद	" २५-३४	११६
निक्षेप-पद	" ३५	११८
टिप्पण		१२०-१२१

चौथा अध्ययन : कूर्म

उत्क्षेप-पद	सूत्र १-५	१२४
पाप शृगालक-पद	" ६	१२४
कूर्म-पद	" ७	१२४
दुष्ट शृगालों द्वारा आहार-गवेषण-पद	" ८-९	१२५
कूर्मों द्वारा संहरण-पद	" १०-१२	१२५
अगुप्त कूर्म का मृत्यु-पद	" १३-१८	१२५
गुप्त कूर्म का सौख्य-पद	" १९-२२	१२७
निक्षेप-पद	" २३	१२८
टिप्पण		१२९

पांचवां अध्ययन : शैलक

उत्क्षेप-पद	सूत्र १-६	१३२
थावच्चापुत्र-पद	" ७-९	१३३
अरिष्टनेमि का समवसरण-पद	" १०-११	१३३
कृष्ण द्वारा पर्युपासना-पद	" १२-१७	१३४
थावच्चापुत्र का प्रव्रज्या संकल्प-पद	" १८-२१	१३६
कृष्ण और थावच्चापुत्र का परिसंवाद-पद	" २२-२५	१३६
कृष्ण का योगक्षेम घोषणा पद	" २६	१३७
थावच्चापुत्र का अभिनिष्क्रमण-पद	" २७-२९	१३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	गाथा व सूत्र	पृष्ठ
शिष्य भिक्षा का दान-पद	सूत्र ३०-३३	१३८
थावच्चापुत्र द्वारा प्रव्रज्या ग्रहण-पद	" ३४	१३६
थावच्चापुत्र की अनगार चर्या-पद	" ३५-३८	१३६
थावच्चापुत्र का जनपद विहार-पद	" ३६-४१	१४०
शैलकराज-पद	" ४२-४४	१४०
शैलक द्वारा गृहस्थ-धर्म का स्वीकरण-पद	" ४५-४६	१४०
शैलक की श्रमणोपासक-चर्या-पद	" ४७-५०	१४२
सुदर्शन श्रेष्ठी-पद	" ५१	१४२
शुक परिव्राजक-पद	" ५२-५४	१४२
शौचमूलक धर्म-पद	" ५५	१४२
सुदर्शन द्वारा शौचमूलक धर्म की प्रतिपत्ति-पद	" ५६-५७	१४३
थावच्चापुत्र का सुदर्शन के साथ संवाद-पद	" ५८-६१	१४३
सुदर्शन द्वारा विनयमूलक धर्म की प्रतिपत्ति-पद	" ६२-६४	१४४
शुक द्वारा सुदर्शन को प्रतिसंबोध प्रयत्न-पद	" ६५-६६	१४४
शुक का थावच्चापुत्र के साथ संवाद-पद	" ७०-७२	१४५
सरिसवय की भक्ष्याभक्ष्यता-पद	" ७३	१४६
कुलस्थों की भक्ष्याभक्ष्यता-पद	" ७४	१४७
मासों (माषों) की भक्ष्याभक्ष्यता-पद	" ७५	१४८
अस्तित्व-प्रश्न-पद	" ७६	१४८
हजार परिव्राजकों के साथ शुक का प्रव्रज्या-पद	" ७७-८०	१४६
शुक का जनपद विहार-पद	" ८१-८२	१४६
थावच्चापुत्र का परिनिर्वाण-पद	" ८३-८४	१४६
शैलक का अभिनिष्क्रमण अभिप्राय-पद	" ८५-६१	१५०
मंडुक का राज्याभिषेक-पद	" ६२-६५	१५१
शैलक का निष्क्रमण-अभिषेक-पद	" ६६-६८	१५१
शैलक का प्रव्रज्या-पद	" ६६	१५२
शैलक का अनगार-चर्या-पद	" १००-१०१	१५२
शुक का परिनिर्वाण-पद	" १०२-१०५	१५२
शैलक का रोगांतक-पद	" १०६-१०६	१५३
शैलक का चिकित्सा-पद	" ११०-११६	१५३
शैलक का प्रमत्त विहार-पद	" ११७	१५४
साधुओं द्वारा शैलक का परित्याग-पद	" ११८	१५४
पन्थक द्वारा चातुर्मासिक क्षमापना-पद	" ११६-१२१	१५५
शैलक का कोप-पद	" १२२-१२३	१५५
शैलक का अभ्युद्यत विहार-पद	" १२४-१२६	१५५
निक्षेप-पद	" १३०	१५५
टिप्पण		१५८-१६०

छठा अध्ययन : तुंब

	गाथा व सूत्र	पृष्ठ
उत्क्षेप-पद	सूत्र १-३	१६२
गुरुत्व-लघुत्व पद	" ४	१६२
निक्षेप-पद	" ५	१६३

सप्तम अध्ययन : रोहिणी

उत्क्षेप-पद	सूत्र १-२	१६६
धन सार्थवाह-पद	" ३-५	१६६
धन द्वारा परीक्षा प्रयोग-पद	" ६-२१	१६६
परीक्षा-परिणाम-पद	" २२-४३	१७०
निक्षेप-पद	" ४४	१७३
टिप्पण		१७५

आठवां अध्ययन : मल्ली

उत्क्षेप-पद	सूत्र १	१७८
बलराज-पद	" २-८	१७८
महाबल राजा-पद	" ६-१५	१७६
महाबल आदि की प्रव्रज्या-पद	" १६-१७	१८०
महाबल का तपोविषयक माया-पद	" १८	१८०
संग्रहणी गाथा	" १८	१८०
महाबल आदि का विविध तपश्चरण-पद	" १६-२५	१८१
समाधिमरण-पद	" २६	१८२
प्रत्यागमन-पद	" २७-३६	१८२
मल्ली के रतिघर का निर्माण-पद	" ४०-४२	१८४
प्रतिबुद्धिराज-पद	" ४३-६३	१८५
चन्द्रच्छायराज-पद	" ६४-८६	१८८
रुक्मि-राज-पद	" ६०-१००	१६६
शंखराज-पद	" १०१-११३	१६७
अदीनशत्रुराज-पद	" ११४-१३७	१६६
जितशत्रुराज-पद	" १३८-१५६	२०३
दूतों द्वारा सन्देश निवेदन-पद	" १५७-१५८	२०६
कुम्भ द्वारा दूतों का असत्कार-पद	" १५६-१६०	२०६
जितशत्रु प्रमुखों का कुम्भ के साथ युद्ध-पद	" १६१-१६८	२०६
मल्ली द्वारा चिन्ता का कारण पृच्छा-पद	" १६६-१७१	२०८
कुम्भ द्वारा चिन्ता का कारण कथन-पद	" १७२	२०८
मल्ली द्वारा उपाय निरूपण-पद	" १७३-१७४	२०६
मल्ली द्वारा जितशत्रु प्रमुखों को संबोध-पद	" १७५-१८०	२०६
जितशत्रु प्रमुखों का जाति-स्मरण-पद	" १८१	२११
मल्ली की प्रव्रज्या पद	" १८२-१२४	२११
मल्ली का केवलज्ञान-पद	" २२५-२२६	२१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	गाथा व सूत्र	पृष्ठ
जितशत्रु प्रमुखों की प्रव्रज्या-पद	सूत्र २२७-२२६	२१८
मल्ली की शिष्य-सम्पदा-पद	” २३०-२३४	२१८
मल्ली का निर्वाण-पद	” २३५	२१६
निक्षेप-पद	” २३६	२१६
टिप्पण		२२०-२२४

नवां अध्ययन : माकंदी

उत्क्षेप-पद	सूत्र १-३	२२६
माकन्दिक पुत्रों की समुद्र यात्रा-पद	” ४-८	२२६
नावा-भंग-पद	” ६-१२	२२७
रत्नद्वीप-पद	” १३-१५	२२८
रत्नद्वीपदेवता-पद	” १६-१८	२२६
रत्नद्वीपदेवी का माकन्दिक-पुत्रों का निर्देश-पद	” १६-२०	२२६
माकन्दिक-पुत्रों का वनखण्ड गमन-पद	” २१-२८	२३१
शैलक यक्ष-पद	” २६-३६	२३३
रत्नद्वीपदेवी का उपसर्ग-पद	” ३७-४०	२३४
जिनरक्षित का विपत्ति-पद	” ४१-४४	२३६
जिनपालित का चम्पागमन-पद	” ४५-५३	२३७
निक्षेप-पद	” ५४	२३८
टिप्पण		२४०

दसवां अध्ययन : चंद्रिका

उत्क्षेप-पद	सूत्र १	२४२
परिहायमान-पद	” २-३	२४२
परिवर्द्धमान-पद	” ४-५	२४२
निक्षेप-पद	” ६	२४३
टिप्पण		२४४

ग्यारहवां अध्ययन : दावद्रव

उत्क्षेप-पद	सूत्र १	२४६
देशविराधक-पद	” २-३	२४६
देश आराधक-पद	” ४-५	२४६
सर्व विराधक-पद	” ६-७	२४७
सर्व आराधक-पद	” ८-६	२४७
निक्षेप-पद	” १०	२४८
टिप्पण		२४६

बारहवां अध्ययन : उदकज्ञात

उत्क्षेप-पद	सूत्र १-२	२५२
परिखोदक (खाई का पानी) पद	” ३	२५२
जितशत्रु द्वारा पान-भोजन की प्रशंसा-पद	सूत्र ४-५	२५२
सुबुद्धि का उपेक्षा-पद	” ६-१०	२५३
जितशत्रु द्वारा परिखोदक का गर्हा-पद	” ११-१४	२५३
सुबुद्धि का उपेक्षा-पद	” १५-१७	२५४
जितशत्रु का विरोध-पद	” १८	२५५
सुबुद्धि द्वारा जल शोधन-पद	” १६	२५५
सुबुद्धि द्वारा जल-प्रेषण-पद	” २०	२५६
जितशत्रु द्वारा उदक-रत्न की प्रशंसा-पद	” २१-२३	२५६
जितशत्रु द्वारा जल लाने के संबंध में पृच्छा-पद	” २४-२६	२५६
सुबुद्धि का उत्तर-पद	” २७-२६	२५७
जितशत्रु द्वारा जल-शोधन-पद	” ३०	२५७
जितशत्रु का जिज्ञासा-पद	” ३१	२५७
सुबुद्धि का उत्तर-पद	” ३२-३३	२५७
जितशत्रु का श्रमणोपासकता-पद	” ३४-३७	२५८
प्रव्रज्या-पद	” ३८-४८	२५८
निक्षेप-पद	” ४६	२६०
टिप्पण		२६१

तेरहवां अध्ययन : मण्डूक

उत्क्षेप-पद	सूत्र १-३	२६४
गौतम का पृच्छा-पद	” ४-६	२६४
भगवान का उत्तर, दर्दुरदेव का नन्दभव-पद	” ७-८	२६४
नन्द का धर्म प्रतिपत्ति-पद	” ६-१२	२६५
मिथ्यात्व-प्रतिपत्ति-पद	” १३-१४	२६५
पुष्करिणी का निर्माण-पद	” १५-१७	२६५
वन-खण्ड-पद	” १८-१६	२६६
चित्रसभा-पद	” २०	२६६
महानसशाला-पद	” २१	२६७
चिकित्साशाला-पद	” २२	२६७
आलंकारिक सभा-पद	” २३	२६७
नन्द का प्रशंसा-पद	” २४-२७	२६७
नन्द के शरीर में रोगोत्पत्ति-पद	” २८	२६८
चिकित्सा-पद	” २६-३१	२६६
भगवान के उत्तर के अन्तर्गत दर्दुरदेव का दर्दुर-भव-पद	” ३२-३४	२६६
दर्दुर का जातिस्मरण-पद	” ३५-३६	२७०
भगवान का राजगृह में समवसरण-पद	” ३७-३८	२७१
दर्दुर का समवसरण की ओर गमन-पद	” ३६-४०	२७१
दर्दुर का मृत्यु-पद	” ४१-४४	२७१
निक्षेप-पद	” ४५	२७२
टिप्पण		२७३-२७४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	गाथा व सूत्र	पृष्ठ

चौदहवां अध्ययन : तेतली

उत्क्षेप-पद	सूत्र १-७	२७६
पोट्टिला का क्रीड़ा-पद	,, ८	२७६
तेतलीपुत्र का आसक्ति-पद	,, ६-११	२७६
पोट्टिला का वरण-पद	,, १२-१७	२७७
पोट्टिला का विवाह-पद	,, १८-२०	२७८
कनकरथ का राज्यासक्ति-पद	,, २१	२७८
पद्मावती का अमात्य के साथ मन्त्रणा-पद	,, २२-२३	२७६
अपत्य-परिवर्तन-पद	,, २४-३०	२७६
बालिका का मृतकार्य-पद	,, ३१-३२	२८०
अमात्य-पुत्र का उत्सव-पद	,, ३३-३५	२८१
पोट्टिला का अप्रियता-पद	,, ३६-३७	२८१
पोट्टिला का दानशाला-पद	,, ३८-३६	२८१
आर्या-संघाटक का भिक्षा के लिए आगमन-पद	,, ४०-४२	२८२
पोट्टिला द्वारा अमात्य को प्रसन्न करने का उपाय पृच्छा-पद	,, ४३	२८२
आर्या संघाटक का उत्तर-पद	,, ४४	२८३
पोट्टिला का श्राविका-पद	,, ४५-४६	२८३
पोट्टिला का प्रव्रज्या-पद	,, ५०-५४	२८४
कनकरथ का मृत्यु-पद	,, ५५-५६	२८५
कनकध्वज का राज्याभिषेक-पद	,, ५७-५६	२८५
तेतलीपुत्र का सम्मान-पद	,, ६०-६१	२८६
पोट्टिलदेव द्वारा तेतलीपुत्र को संबोध-पद	,, ६२-७१	२८६
तेतलीपुत्र की मरण-चेष्टा-पद	,, ७२-७६	२८८
तेतलीपुत्र का विस्मयकरण-पद	,, ७७	२८८
पोट्टिलदेव का संवाद-पद	,, ७८-८०	२८६
तेतलीपुत्र का जातिस्मरण पूर्वक प्रव्रज्या-पद	,, ८१-८२	२६०
केवलज्ञान-पद	,, ८३-८४	२६०
कनकध्वज राजा का श्रावक-धर्म-पद	,, ८५-८७	२६१
तेतलीपुत्र का सिद्धि-पद	,, ८८	२६१
निक्षेप-पद	,, ८६	२६१
टिप्पण		२६२

पन्द्रहवां अध्ययन : नंदीफल

उत्क्षेप-पद	सूत्र १-५२६४	
धन का घोषणा-पद	,, ६-१०२६४	
धन का निर्देश-पद	,, ११-१२२६५	
निर्देश-पालन का निगमन-पद	,, १३-१४२६६	
निर्देश के अपालन का निगमन-पद	,, १५-१६२६७	
धन का अहिच्छत्रा आगमन-पद	,, १७-१६	२६७
धन का प्रव्रज्या-पद	सूत्र २०-२१	२६८
निक्षेप-पद	,, २२	२६८
टिप्पण		२६६

सोलहवां अध्ययन : अवरकंका

उत्क्षेप-पद	सूत्र १-३	३०२
नागश्री कथानक-पद	,, ४-५	३०२
नागश्री द्वारा तिक्त अलाबू का निष्पादन-पद	,, ६-१०	३०२
धर्मरुचि को तिक्त-अलाबू का दान-पद	,, ११-१५	३०३
तिक्त अलाबू का परिष्ठापन-पद	,, १६-१८	३०४
अहिंसा के लिए तिक्त अलाबू का भक्षण-पद	,, १६	३०५
धर्मरुचि का समाधि-मरण-पद	,, २०-२१	३०५
साधुओं द्वारा धर्मरुचि का गवेषणा-पद	,, २२	३०६
साधुओं द्वारा धर्मरुचि के समाधि-मरण का निवेदन-पद	,, २३	३०६
धर्मरुचि की स्मृति-सभा-पद	,, २४	३०६
नागश्री का गर्हा-पद	,, २५-२७	३०६
नागश्री का गृह-निर्वासन-पद	,, २८-२६	३०७
नागश्री का भव-भ्रमण-पद	,, ३०-३१	३०८
सुकुमालिका का कथानक-पद	,, ३२-३५	३०६
सुकुमालिका का सागर के साथ विवाह-पद	,, ३६-५१	३१०
सागर का पलायन-पद	,, ५२-६१	३१२
सुकुमालिका का चिन्ता-पद	,, ६२-६६	३१३
सागरदत्त द्वारा जिनदत्त का उपालंभ-पद	,, ६७	३१४
सागर के पुनर्गमन का व्युदास-पद	,, ६८-६६	३१४
सुकुमालिका का द्रमक के साथ पुनर्विवाह-पद	,, ७०-७६	३१४
द्रमक का पलायन-पद	,, ८०-८६	३१६
सुकुमालिका का पुनः चिन्ता-पद	,, ८७-६१	३१६
सुकुमालिका का दानशाला-पद	,, ६२-६३	३१७
आर्या संघाटक का भिक्षाचर्या के लिए आगमन-पद	,, ६४-६६	३१८
सुकुमालिका द्वारा सागर की प्रसन्नता का उपाय पृच्छा-पद	,, ६७	३१८
आर्या संघाटक का उत्तर-पद	,, ६८	३१८
सुकुमालिका का श्राविका-पद	,, ६६-१०३	३१६
सुकुमालिका का प्रव्रज्या-पद	,, १०४-१०५	३१६
सुकुमालिका का आतापना-पद	,, १०६-१०८	३२०
सुकुमालिका का निदान-पद	,, १०६-११३	३२०
सुकुमालिका का बकुशता-पद	,, ११४-११७	३२१
सुकुमालिका का पृथक विहार-पदृ	,, ११८-११६	३२२
द्रौपदी का कथानक-पद	,, १२०-१३०	३२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	गाथा व सूत्र	पृष्ठ
द्रौपदी का स्वयंवर संकल्प-पद	सूत्र १३१	३२३
द्वारवती के लिए दूत प्रेषण-पद	" १३२-१३५	३२४
कृष्ण का प्रस्थान-पद	" १३६-१४१	३२५
हस्तिनापुर दूत-प्रेषण-पद	" १४२-१४४	३२६
दूत-प्रेषण-पद	" १४५	३२७
हजारों राजाओं का प्रस्थान-पद	" १४६	३२७
द्रुपद का आतिथ्य-पद	" १४७-१५२	३२८
द्रौपदी का स्वयंवर-पद	" १५३-१६३	३२९
द्रौपदी के द्वारा पाण्डव का वरण-पद	" १६४-१६६	३३१
पाणिग्रहण-पद	" १६७-१६९	३३२
पाण्डुराज का निमन्त्रण-पद	" १७०-१७१	३३२
पाण्डुराज का आतिथ्य-पद	" १७२-१८०	३३३
कल्याणकार-पद	" १८१-१८३	३३४
नारद का आगमन-पद	" १८४-१९०	३३४
नारद का अवरकंका-गमन-पद	" १९१-२००	३३५
द्रौपदी का संहरण पद	" २०१-२०६	३३७
द्रौपदी का चिन्ता-पद	" २०७	३३८
पद्मनाभ का आश्वासन-पद	" २०८-२११	३३८
द्रौपदी का गवेषणा-पद	" २१२-२२५	३३९
द्रौपदी का उपलब्धि-पद	" २२६-२३२	३४१
पाण्डवों सहित कृष्ण का प्रयाण-पद	" २३३-२३६	३४२
कृष्ण का देवाराधना-पद	" २३७-२३८	३४२
कृष्ण द्वारा मार्ग-याचना-पद	" २३९-२४२	३४३
कृष्ण द्वारा दूत-प्रेषण-पद	" २४३-२४४	३४४
पद्मनाभ द्वारा दूत का अपमान-पद	" २४५	३४४
दूत का पुनः आगमन-पद	" २४६	३४५
पद्मनाभ का पाण्डवों के साथ युद्ध-पद	" २४७-२५१	३४५
पाण्डवों का पराजय-पद	" २५२-२५३	३४६
कृष्ण द्वारा पराजय-हेतु कथनपूर्वक युद्ध-पद	" २५४-२५९	३४६
पद्मनाभ का पलायन-पद	" २६०	३४७
कृष्ण का नरसिंह रूप-पद	" २६१-२६२	३४७
पद्मनाभ का शरण-पद	" २६३-२६५	३४८
द्रौपदी और पाण्डवों सहित कृष्ण का प्रत्यावर्तन-पद	" २६६-२६७	३४८
वासुदेव युगल का शंख-शब्द से मिलन-पद	" २६८-२७७	३४९
कपिल द्वारा पद्मनाभ का निर्वासन-पद	" २७८-२८०	३५०
अपरीक्षणीय का परीक्षा-पद	" २८१-२८८	३५१
कृष्ण द्वारा पाण्डवों का निर्वासन-पद	" २८९-३०२	३५२
पाण्डु-मथुरा का स्थापना-पद	" ३०३	३५४
पाण्डुसेन का जन्म-पद	" ३०४-३०९	३५४
पाण्डवों और द्रौपदी का प्रव्रज्या-पद	" ३१०-३१७	३५५
अरिष्टनेमि का निर्वाण-पद	सूत्र ३१८-३२२	३५६
पाण्डवों का निर्वाण-पद	" ३२३-३२४	३५७
द्रौपदी का देवत्व-पद	" ३२५-३२६	३५८
निक्षेप-पद	" ३२७	३५८
टिप्पण		३५९

सत्रहवां अध्ययन : आकीर्ण

	गाथा व सूत्र	पृष्ठ
उत्क्षेप-पद	सूत्र १-४	३६२
कालिकद्वीप-यात्रा-पद	" ५-१३	३६२
कालिकद्वीप में अश्व-प्रेक्षण-पद	" १४-१५	३६३
सांयात्रिकों का पुनरागमन-पद	" १६	३६४
अश्वों का आनयन-पद	" १७-२३	३६५
अमूर्च्छित अश्वों का स्वायत्त-विहार-पद	" २४	३६७
निगमन-पद	" २५	३६७
मूर्च्छित अश्वों का परायत्त-पद	" २६-३५	३६७
निगमन-पद	" ३६	३६९
टिप्पण		३७२

अठारहवां अध्ययन : सुंसुमा

	गाथा व सूत्र	पृष्ठ
उत्क्षेप-पद	सूत्र १-५	३७४
दासपुत्र चिलात का विग्रह-पद	" ६-९	३७४
चिलात का घर से निष्कासन-पद	" १०-१५	३७५
चिलात का दुर्व्यसन-प्रवृत्ति-पद	" १६-१७	३७६
चोर-पल्ली-पद	" १८-२२	३७६
चिलात का चोरपल्ली गमन-पद	" २३-२५	३७७
विजय का मृत्यु-पद	" २६-२७	३७७
चिलात का चोर-सेनापतित्व-पद	" २८-३२	३७२
चिलात द्वारा धन के घर में चोरी-पद	" ३३-३८	३७८
नगर-रक्षकों द्वारा चोर का निग्रह-पद	" ३९-४३	३८०
चिलात का चोर-पल्ली से पलायन-पद	" ४४-४७	३८१
निगमन-पद	" ४८	३८१
धन का सुंसुमा के लिए क्रन्दन-पद	" ४९-५०	३८२
अटवी-लंघन के लिए धन द्वारा पुत्री के मांस और शोणित का आहार-पद	" ५१-५९	३८२
निगमन-पद	" ६०	३८४

उन्नीसवां अध्ययन : पुण्डरीक

	गाथा व सूत्र	पृष्ठ
उत्क्षेप-पद	सूत्र १-७	३८६
कण्डरीक का प्रव्रज्या-पद	" ८-१९	३८६
कण्डरीक का वेदना-पद	" २०-२१	३८८
कण्डरीक का चिकित्सा-पद	" २२-२६	३८८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	गाथा व सूत्र	पृष्ठ
कण्डरीक का प्रमत्त विहार-पद	सूत्र २७-२८	३८६
पुण्डरीक द्वारा प्रतिबोध-पद	" २६-३१	३८६
कण्डरीक द्वारा प्रव्रजया परित्याग-पद	" ३२-३७	३६०
पुण्डरकी का प्रव्रजया-पद	" ३८	३६१
कण्डरीक का मृत्यु-पद	" ३६-४१	३६१
निगमन-पद	" ४२	३६१
पुण्डरीक का आराधना-पद	" ४३-४६	३६१
निगमन-पद	" ४७	३६२
निक्षेप-पद	" ४८	३६३

दूसरा श्रुतस्कन्ध : प्रथम वर्ग

अध्ययन-१ : काली		३६६-४०४
उत्क्षेप-पद	सूत्र १-६	३६६
कालीदेवी-पद	" १०	३६७
काली द्वारा भगवान को वन्दन-पद	" ११-१२	३६८
गौतम का प्रश्न-पद	" १३-१४	३६८
भगवान के उत्तर के अन्तर्गत काली-पद	" १५-१८	३६६
काली का प्रव्रज्या-पद	" १६-३३	३६६
काली का बाकुशिकत्व-पद	" ३४-३७	४०२
काली का पृथक विहार-पद	" ३८	४०३
काली का मृत्यु-पद	" ३६-४४	४०३
निक्षेप-पद	" ४५	४०४
अध्ययन-२ : राई	" ४६-५५	४०५
अध्ययन-३ : रयनी	" ५६-६०	४०६
अध्ययन-४ : विद्युत	" ६१	४०६
अध्ययन-५ : मेघा	" ६२-६३	४०६

द्वितीय वर्ग

अध्ययन-१ : शुंभा	सूत्र १-८	४०७
अध्ययन-२-५	" १-२	४०७

तृतीय वर्ग

	गाथा व सूत्र	पृष्ठ
अध्ययन-१ : अला	सूत्र १-८	४०८
अध्ययन-२-६	" ६	४०८
अध्ययन-७-१२	" १०	४०८
अध्ययन १३-५४	" ११-१२	४०६

चतुर्थ वर्ग

अध्ययन-१ : रूपा	सूत्र १-६	४१०
अध्ययन-२-६	" ७	४१०
अध्ययन ७-५४	" ८-६	४१०

पंचम वर्ग

अध्ययन-१ : कमला	सूत्र १-५	४११
अध्ययन-२-३२	" ६	४११

षष्ठ वर्ग

अध्ययन-१-३२	सूत्र १-५	४१२

सप्तम वर्ग

अध्ययन-१ : सूर्यप्रभा	सूत्र १-५	४१२
अध्ययन-२-४	" ६	४१२

अष्टम वर्ग

अध्ययन-१ : चन्द्रप्रभा	सूत्र १-५	४१३
अध्ययन-२-४	" ६	४१३

नवम वर्ग

अध्ययन १-८	सूत्र १-६	४१४

दशम वर्ग

अध्ययन १-८	सूत्र १-८	४१५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

धर्म के दो प्रमुख द्वार हैं--धृति और क्षान्ति। जो धृतिसम्पन्न होता है वही धर्म का पालन कर सकता है। प्रस्तुत अध्ययन धृति और क्षान्ति का जीवन्त निदर्शन है।

राजकुमार मेघ ने भगवान महावीर की धर्मदेशना से प्रतिबुद्ध होकर श्रामण्य स्वीकार किया किन्तु धृति और क्षान्ति के अभाव में वह प्रव्रज्या को छोड़ने (उत्प्रव्रजित होने) के लिए तत्पर हो गया। भगवान महावीर सर्वज्ञ थे। उन्होंने मेघ की मन:स्थिति को पढ़ा, उसकी रात्रिकालीन परिस्थिति को जाना और सुदूर अतीत से उसका साक्षात्कार करवा दिया। भगवान महावीर ने मेघ के पूर्ववर्ती दो जन्मों का ऐसा जीवन्त एवं प्रभावशाली चित्र उपस्थित किया कि उसे अपने दोनों जन्मों--सुमेरुप्रभ और मेरुप्रभ हाथी के जीवन की स्मृति हो गई। उसने जाना--मेरुप्रभ हाथी के भव में एक शशक की हत्या से बचने हेतु उसने ढ़ाई दिन रात तक पैर को ऊंचा उठाए रखा। प्राणानुकम्पा से उठा (उत्क्षिप्त) वह चरण उसके परीतसंसारित्व एवं मनुष्य के आयुष्य-बंध का हेतु बना। 'उत्क्षिप्तचरण' की यही स्मृति उसके वर्तमान जीवन में भी संयम के स्थैर्य का हेतु बनी। अतएव इस अध्ययन का नाम उत्क्षिप्त रखा गया।

आचारांग सूत्र में जातिस्मृति के तीन हेतुओं का प्रतिपादन हुआ है।[१] प्रस्तुत अध्ययन में सुमेरुप्रभ के भव में होने वाली जातिस्मृति प्रथम 'सहसम्मुइयाए' हेतु का तथा मेघ के भव में भगवान के द्वारा करवाई जाने वाली स्मृति 'परवागरणेणं' का अच्छा निदर्शन है।

प्रस्तुत अध्ययन में पंचविध आचार का सुन्दर प्रतिपादन हुआ है। जन्म मरण की परम्परा, भिन्न-भिन्न जन्मों में होने वाली घटनाओं का आवर्तन, असहिष्णुता के हेतुओं और उससे बचने में ज्ञान की भूमिका का इसमें सुन्दर निरूपण हुआ है।

जातिस्मृति की प्रक्रिया[२] देव आह्वान की पद्धति[३] आदि परामनोविज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं तो स्वप्न, दोहद, गर्भकाल में माता का आचरण आदि तथ्य गर्भविज्ञान को नई दिशा देने वाले हैं।

सरस भाषा, सरस पदावली और सरस वाक्य रचना कथा साहित्य के अनुरूप है। यह ज्ञात है--जीवन्त घटना का निदर्शन है फिर भी इसमें कथा जैसी जीवन्तता उपलब्ध है।

---

१. आयारो १/३ सहसम्मुइयाए, परवागरणेणं, अण्णेसिं वा अंतिए सोच्चा।

२. नायाधम्मकहाओ १/१/१७०, १९०

३. वही १/१/५३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पढमं अज्झयणं : प्रथम अध्ययन

उक्खित्तणाए : उत्क्षिप्तज्ञात

उक्खेव-पदं

१. तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था--वण्णओ।।

२. तीसे णं चंपाए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए पुण्णभद्दे नामं चेइए होत्था--वण्णओ।।

३. तत्थ णं चंपाए नयरीए कोणिए नामं राया होत्था--वण्णओ।।

४. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अज्जसुहम्मे नामं थेरे जातिसंपण्णे कुलसंपण्णे बल-रूव-विणय-नाण-दंसण-चरित्त-लाघव-संपण्णे ओयंसी तेयंसी वच्चंसी जसंसी जियकोहे जियमाणे जियमाए जियलोहे जिइंदिए जियनिद्दे जियपरीसहे जीवियास-मरणभयविप्पमुक्के तवप्पहाणे गुणप्पहाणे एवं--करण-चरण-निग्गह-निच्छय-अज्जव-मद्दव-लाघव-खंति-गुत्ति-मुत्ति-विज्जा-मंत-बंभ-वेय-नय-नियम-सच्च-सोय-नाण-दंसण-चरित्तप्पहाणे ओराले घोरे घोरव्वए घोरतवस्सी घोरबंभचेरवासी उच्छूढसरीरे संखित्त-विउल-तेयलेस्से चोद्दसपुव्वी चउनाणोवगए पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव चंपा नयरी, जेणेव पुण्णभद्दे चेतिए तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरति।।

५. तए णं चंपाए नयरीए परिसा निग्गया। धम्मो कहिओ। परिसा जामेव दिसिं पाउब्भूया, तामेव दिसिं पडिगया।।

६. तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स जेट्ठे अंतेवासी अज्जजंबू नामं अणगारे कासव गोत्तेणं सत्तुस्सेहे समचउरंस-संठाण-संठिए वइररिसहणाराय-संघयणे कणग-पुलग-निघस-पम्ह-गोरे उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे महातवे उराले घोरे घोरगुणे घोरतवस्सी

उत्क्षेप-पद

१. उस काल और उस समय[1] चम्पा नाम की एक नगरी थी--वर्णक[2]।

२. उस चम्पा नगरी के बाहर, उत्तर पूर्व दिशा खण्ड (ईशान-कोण) में पूर्णभद्र नाम का चैत्य[3] था--वर्णक।

३. उस चम्पा नगरी में कोणिक नाम का एक राजा था--वर्णक।

४. उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर के अन्तेवासी[4] आर्य सुधर्मा नाम के स्थविर[5] जाति-सम्पन्न और कुल-सम्पन्न थे। बल, रूप, विनय, ज्ञान, दर्शन, चारित्र और लाघव-सम्पन्न, ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी और यशस्वी, क्रोधजयी, मानजयी, मायाजयी, लोभजयी, इन्द्रियजयी, निद्राजयी और परीषहजयी, जीवन की आशा और मरण के भय से विप्रमुक्त, तप-प्रधान और गुण-प्रधान, इसी प्रकार करण-चरण निग्रह, निश्चय, ऋजुता, मृदुता, लाघव, क्षमा, गुप्ति, मुक्ति, विद्या, मंत्र, ब्रह्मचर्य, वेद, नय, नियम, सत्य, शौच, ज्ञान, दर्शन और चारित्र से प्रधान, महान, घोर, घोरव्रती, घोरतपस्वी, घोरब्रह्मचर्यवासी, लघिमा ऋद्धि-सम्पन्न, विपुल तेजोलेश्या को अन्तर्लीन रखने वाले, चतुर्दशपूर्वी और चार ज्ञान से समन्वित थे। वे पांच सौ अनगारों के साथ, उनसे संपरिवृत हो, क्रमानुसार विचरण, ग्रामानुग्राम परिव्रजन और सुखपूर्वक विहार करते हुए, जहां चम्पा नगरी थी, जहां पूर्णभद्र चैत्य था, वहां आए। वहां आकर प्रवास योग्य स्थान की अनुमति लेकर, संयम और तप से स्वयं को भावित करते हुए विहार करने लगे।[6]

५. चम्पा नगरी से परिषद् ने निगर्मन किया। सुधर्मा ने धर्म कहा। परिषद् जिस दिशा से आई, उसी दिशा में लौट गई।

६. उस काल और उस समय आर्य सुधर्मा अनगार के ज्येष्ठ अन्तेवासी आर्य जम्बू नाम के अनगार थे। वे काश्यप गोत्रवाले, सात हाथ की ऊँचाई वाले, समचतुरस्र संस्थान से संस्थित[7] वज्रऋषभनाराच संहनन से युक्त[8], कसौटी पर खचित स्वर्ण-रेखा तथा पद्म केसर की भांति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घोरबंभचेरवासी उच्छूढसरीरे संखित्त-विउल-तेयलेस्से अज्जसुहम्मस्स थेरस्स अदूरसामंते उड्ढंजाणू अहोसिरे झाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।।

पीताभ गौर वर्ण वाले, उग्रतपस्वी, दीप्ततपस्वी, तप्ततपस्वी, महातपस्वी, महान्, घोर, घोर गुणों से युक्त, घोरतपस्वी, घोर ब्रह्मचर्यवासी[९] लघिमा ऋद्धि से सम्पन्न[१०], विपुल तेजोलेश्या को अन्तर्लीन रखने वाले थे। वे आर्य सुधर्मा स्थविर के न अति दूर, न अति निकट, ऊर्ध्व जानु, अधः शिर[११] (उकडू आसन की मुद्रा में) और ध्यान कोष्ठक में प्रविष्ट होकर[१२], संयम और तप से[१३] अपने आप को भावित करते हुए रह रहे थे।

७. तए णं से अज्जजंबूनामे अणगारे जायसड्ढे जायसंसए जायकोउहल्ले उप्पण्णसड्ढे उप्पण्णसंसए उप्पण्णकोउहल्ले समुप्पण्णसड्ढे समुप्पण्णसंसए समुप्पण्णकोउहल्ले उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता जेणामेव अज्जसुहम्मे थेरे, तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जसुहम्मे थेरे तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता अज्जसुहम्मस्स थेरस्स नच्चासण्णे नातिदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे अभिमुहे पंजलिउडे विणएणं पज्जुवासमाणे एवं वयासी--जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं 'आइगरेणं तित्थगरेणं सहसंबुद्धेणं लोगनाहेणं लोगपईवेणं लोगपज्जोयगरेणं अभयदएणं सरणदएणं चक्खुदएणं मग्गदएणं धम्मदएणं धम्मदेसएणं धम्मनायगेणं धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टिणा अप्पडिहयवरनाण-दंसणधरेणं जिणेणं जाणएणं बुद्धेणं बोहएणं मुत्तेणं मोयगेणं तिण्णेणं तारएणं सिवमयलमरुयमणंतमक्खयमव्वा-बाहमपुणरावत्तयं सासयं ठाणमुवगएणं (सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपत्तेणं?) पंचमस्स अंगस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, छट्ठस्स णं भंते! अंगस्स नायाधम्मकहाणं के अट्ठे पण्णत्ते?

७. उस समय आर्य जम्बू नामक अनगार के मन में एक श्रद्धा (इच्छा), एक संशय (जिज्ञासा), एक कुतूहल जन्मा।[१४] एक श्रद्धा, एक संशय, एक कुतूहल उत्पन्न हुआ। एक श्रद्धा, एक संशय, एक कुतूहल प्रबलतम बना। वे उठने की मुद्रा में उठे। उठकर, जहां आर्य सुधर्मा स्थविर थे, वहां आए। वहां आकर आर्य सुधर्मा स्थविर को तीन बार दायीं ओर से प्रारम्भ कर प्रदक्षिणा[१५] की। प्रदक्षिणा कर वंदना-नमस्कार किया। वंदना-नमस्कार कर आर्य-सुधर्मा स्थविर के न अति निकट, न अति दूर, शुश्रूषा और नमस्कार की मुद्रा में, उनके सामने बद्धाञ्जलि हो, विनयपूर्वक पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले--

"भंते! यदि धर्म के आदिकर्ता, तीर्थंकर, स्वयं संबुद्ध, लोक के नाथ, लोक में प्रदीप, लोक में प्रद्योतकर, अभयदाता, शरणदाता, चक्षुदाता, मार्गदाता, धर्मदाता, धर्मदेशक, धर्मनायक, धर्म के प्रवर चतुर्दिग्जयी चक्रवर्ती,[१६] अप्रतिहत प्रवर ज्ञान-दर्शन के धारक, ज्ञाता[१७], ज्ञान देने वाले, बुद्ध, बोध देने वाले, मुक्त, मुक्त करने वाले, तीर्ण, तारने वाले, शिव, अचल, अरुज, अनन्त, अक्षय, अव्याबाध, पुनरावृत्ति रहित, शाश्वत स्थान को प्राप्त (सिद्धिगति नामक स्थान को संप्राप्त?) श्रमण भगवान महावीर ने पांचवें अंग का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है तो भन्ते! छठे अंग ज्ञातधर्मकथा का उन्होंने क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

८. जंबु त्ति अज्जसुहम्मे थेरे अज्जजंबूनामं अणगारं एवं वयासी--एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स दो सुयक्खंधा पण्णत्ता, तं जहा--नायाणि य धम्मकहाओ य।।

८. स्थविर आर्य सुधर्मा ने 'जम्बू' इस संबोधन के साथ आर्य जम्बू नाम के अनगार से इस प्रकार कहा--'जम्बू!' (धर्म के आदिकर्ता यावत् सिद्धिगति संप्राप्त) श्रमण भगवान महावीर ने छठे अंग के दो श्रुतस्कन्ध प्रज्ञप्त किए हैं, जैसे--ज्ञात और धर्मकथा।

९. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स दो सुयक्खंधा पण्णत्ता, तं जहा--नायाणि य धम्मकहाओ य। पढमस्स णं भंते! सुयक्खंधस्स समणेणं भगवया महावीरेणं जाव 'संपत्तेणं नायाणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता?

९. भन्ते! यदि धर्म के आदिकर्ता यावत् सिद्धि गति संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने छठे अंग के दो श्रुतस्कन्ध प्रज्ञप्त किए जैसे--ज्ञात और धर्मकथा तो भन्ते! धर्म के आदिकर्ता यावत् सिद्धिगति संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने प्रथम श्रुत-स्कन्ध ज्ञात के कितने अध्ययन प्रज्ञप्त किए हैं?

संगहणी-गाहा

१०. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं नायाणं एगूणवीसं अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा--

१. उक्खित्तणाए २. संघाडे ३. अंडे ४. कुम्मे य ५. सेलगे।
६. तुंबे य ७. रोहिणी ८. मल्ली ९. मायंदी १०. चंदिमा इ य।।१।।

संगहणी गाथा

१०. जम्बू! धर्म के आदिकर्ता यावत् सिद्धिगति संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञात के उन्नीस अध्ययन प्रज्ञप्त किए हैं, जैसे--

१. उत्क्षिप्तज्ञात २. संघाटक ३. अण्ड ४. कूर्म ५. शैलक ६. तुम्ब ७. रोहिणी ८. मल्ली ९. माकन्दी १०. चन्द्रिका ११. दावद्रव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. दावद्दवे १२. उदगणाए १३. मंडुक्के १४. तेयली वि य।
१५. नंदीफले १६. अवरकंका १७. आइण्णे १८. सुंसुमा इ य ।।२।।
१९. अवरे य पुंडरीए, नाए एगूणवीसमे ।।

१२. उदकज्ञात १३. मण्डूक १४. तेतली १५. नन्दीफल १६. अवरकंका १७. आकीर्ण १८. सुंसुमा और १९. उन्नीसवां ज्ञात--पुण्डरीक ज्ञात।

मेहस्स नगरपरिवारादि-वण्णग-पदं

११. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं नायाणं एगूणवीसं अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा--उक्खित्तणाए जाव पुंडरीए त्ति य। पढमस्स णं भंते! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

१२. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे दाहिणड्ढभरहे रायगिहे नामं नयरे होत्था--वण्णओ।।

१३. गुणसिलए चेतिए--वण्णओ।।

१४. तत्थ णं रायगिहे नयरे सेणिए नामं राया होत्था--महताहिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे वण्णओ।।

१५. तस्स णं सेणियस्स रण्णो नंदा नामं देवी होत्था--सूमालपाणिपाया वण्णओ।।

१६. तस्स णं सेणियस्स पुत्ते नंदाए देवीए अत्तए अभए नामं कुमारे होत्था--अहीण पडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरे लक्खण-वंजण गुणोववेए माणुम्माण-प्पमाण-पडिपुण्ण-सुजाय-सव्वंगसुंदरंगे ससिसोमाकारे कंते पियदंसणे सुरूवे, साम-दंड-भेय-उवप्पयाणनीति-सुप्पउत्त-नय-विहण्णू, ईहा-वूह-मग्गण-गवेसण-अत्थसत्थ-मइविसारए, उप्पत्तियाए वेणइयाए कम्मयाए पारिणामियाए--चउव्विहाए बुद्धीए उववेए, सेणियस्स रण्णो बहूसु कज्जेसु य (कारणेसु य?) कुडुंबेसु य मंतेसु य गुज्झेसु य रहस्सेसु य निच्छएसु य आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे, मेढी पमाणं आहारे आलंबणं चक्खू, मेढीभूए पमाणभूए आहारभूए आलंबणभूए चक्खुभूए, सव्वकज्जेसु सव्वभूमियासु लद्धपच्चए विइण्णवियारे रज्जधुरचिंतए यावि होत्था, सेणियस्स रण्णो रज्जं च रट्ठं च कोसं च कोट्ठागारं च बलं च वाहणं च पुरं च अंतेउरं च सयमेव समुपेक्खमाणे-समुपेक्खमाणे विहरइ।।

मेघ के नगर-परिवार आदि का वर्णन-पद

११. भन्ते! धर्म के आदिकर्त्ता यावत् सिद्धि गति संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञात के उन्नीस अध्ययन प्रज्ञप्त किए हैं, जैसे--उत्क्षिप्त ज्ञात यावत् पुण्डरीक, तो भंते! उन्होंने प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

१२. जम्बू! उस काल और उस समय इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भारतवर्ष के दक्षिणार्ध भरत में राजगृह[१८] नामक एक नगर था--वर्णक।

१३. वहां गुणशिलक नाम का चैत्य था--वर्णक।

१४. उस राजगृह नगर में श्रेणिक नाम का राजा था। वह महान् हिमालय, महान् मलय, मेरु और महेन्द्र पर्वत के समान उन्नत था--वर्णक।[१९]

१५. उस श्रेणिक राजा के नन्दा नाम की देवी थी। उसके हाथ-पांव सुकुमार थे--वर्णक।

१६. श्रेणिक का पुत्र, नन्दादेवी का आत्मज, उसका नाम था अभयकुमार। उसका शरीर अहीन और प्रतिपूर्ण पांच इन्द्रियों वाला[२०], लक्षण और व्यञ्जन की विशेषता से युक्त[२१], मान-उन्मान और प्रमाण से प्रतिपूर्ण[२२], सुजात और सर्वांग सुन्दर, चन्द्रमा के समान सौम्य आकृति वाला, कमनीय, प्रियदर्शन और सुरूप था। वह साम, दण्ड, भेद और उपप्रदान[२३]--इन चारों नीतियों तथा सुप्रयुक्त नय की विधाओं का वेत्ता[२४] था। ईहा, अपोह (वितर्क) मार्गण, गवेषण[२५] और अर्थशास्त्र में विशारद मतिवाला[२६], औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी और पारिणामिकी--इस चतुर्विध बुद्धि से युक्त था। राजा श्रेणिक के बहुत से कार्यों (कारणों) सामुदायिक कर्त्तव्यों[२७], मंत्रणाओं, गोपनीय कार्यों, रहस्यों[२८] और निश्चयों में उसका मत पूछा जाता था, पुन: पुन: पूछा जाता था। वह मेढी, प्रमाण, आधार, आलम्बन और चक्षु[२९] तथा मेढीभूत, प्रमाणभूत, आधारभूत, आलम्बनभूत और चक्षुभूत था। वह सब कार्यों और सब भूमिकाओं में विश्वसनीय, राजा को सम्यक् परामर्श देने वाला[३०] और राज्य-धुरा का चिन्तक था। वह राजा श्रेणिक के राज्य, राष्ट्र, कोष, कोष्ठागार, सेना, वाहन, पुर और अन्त:पुर की अपने आप देखभाल करता हुआ विहार कर रहा था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. तस्स णं सेणियस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था—सुकुमाल-पाणिपाया अहीण-पंचेंदियसरीरा लक्खण-वंजण-गुणोववेया माणुम्माण-प्पमाण-सुजाय-सव्वंगसुंदरंगी ससिसोमाकार-कंत-पियदंसणा सुरूवा करयल-'परिमित-तिवलिय' वलियमज्झा 'कोमुइ-रयणियर-विमल-पडिपुण्ण-सोमवयणा कुंडलुल्लिहिय-गंडलेहा सिंगारागार-चारुवेसा संगय-गय-हसिय-भणिय-विहिय-विलास-सललिय-संलाव-निउण-जुत्तोवयारकुसला पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, सेणियस्स रण्णो इट्ठा कंता पिया मणुण्णा नामधेज्जा वेसासिया सम्मया बहुमया अणुमया भंडकरंडगसमाणा तेल्लकेला इव सुसंगोविया चेलपेडा इव सुसंपरिगिहिया रयणकरंडगो विव सुसारक्खिया, मा णं सीयं मा णं उण्हं मा णं दंसा मा णं मसगा मा णं वाला मा णं चोरा मा णं वाइय-पित्तिय-सिंभिय-सन्निवाइय विविहा रोगायंका फुसंतु त्ति कट्टु सेणिएण रण्णा सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं पच्चणुभवमाणी विहरइ।।

१७. उस श्रेणिक राजा के धारिणी नाम की देवी थी। उसके हाथ-पांव सुकुमार थे। उसका शरीर पांचों इन्द्रियों से अहीन, लक्षण और व्यञ्जन की विशेषता से युक्त, मान-उन्मान और प्रमाण से प्रतिपूर्ण, सुजात और सर्वांग सुन्दर था। वह चन्द्रमा के समान सौम्य आकृतिवाली, कमनीय, प्रियदर्शना और सुरूपा थी। उसकी मुट्ठी भर कमर बल खाती हुई तीन रेखाओं से युक्त थी।[३१] उसका मुख शारद चन्द्र की भांति विमल, प्रतिपूर्ण और सौम्य था। उसके कपोलों पर खचित रेखाएं[३२] कुण्डलों से उल्लिखित हो रही थी। उसका सुन्दर-वेष, शृंगार-घर जैसा लग रहा था। वह औचित्यपूर्ण चलने, हंसने, बोलने और चेष्टा करने में, विलास और लालित्यपूर्ण संलाप में निपुण और समुचित उपचार में कुशल थी। वह द्रष्टा के चित्त को प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय, कमनीय और रमणीय थी। वह राजा श्रेणिक के लिए इष्ट, कमनीय, प्रिय, मनोज्ञ, प्रशस्त नाम वाली, विश्वसनीय, सम्मत, बहुमत, अनुमत, आभरण-मञ्जूषा के समान उपादेय, मृण्मय तेल-पात्र के समान सुसंगोपित, वस्त्र मञ्जूषा के समान सुसंपरिगृहीत, रत्न मञ्जूषा के समान सुसंरक्षित थी। उसे सर्दी, गर्मी, डांस, मच्छर, सांप, चौर तथा वात, पित्त, श्लेष्म और सन्निपात जनित नाना रोग और आतंक न छू पाएं--इस प्रकार वह राजा श्रेणिक के साथ विपुल भोगार्ह भोगों का अनुभव करती हुई रह रही थी।

धारिणीए सुमिणदंसण-पदं

धारिणी का स्वप्न-दर्शन-पद

१८. तए णं सा धारिणी देवी अण्णदा कदाइ तंसि तारिसगंसि--छक्कट्ठग—लट्ठमट्ठसंठिय-खंभुग्गय-पवरवर-सालभंजिय-उज्जलमणिक-णगरयणथूभिय-विडंकजालद्ध-चंदनिज्जूहंतर-कणयालिचंदसालि- याविभत्तिकलिए सरसच्छधाऊवल-वण्णरइए बाहिरओ दूमिय-घट्ठ-मट्ठे अब्भिंतरओ पसत्त-सुविलिहिय-चित्तकम्मे नाणाविह-पंचवण्ण-मणिरयण-कोट्टिमतले पउमलया-फुल्लवल्लि-वरपुप्फजाइ-उल्लोय-चित्तिय-तले वंदण वरकणगकलससुणिम्मिय-पडिपूजिय-सरसपउम-सोहंतदारभाए पयरग-लंबंत-मणिमुत्तदाम-सुविरइयदारसोहे सुगंध-वरकुसुम-मउय-पम्हलसयणोवयार-मणहिययनिव्वुइयरे कप्पूर-लवंग-मलय-चंदण-कालागरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्क-धूव-डज्झंत-सुरभि-मघमघेंत-गंधुद्धुयाभिरामे सुगंधवर (गंध?) गंधिए गंधवट्टिभूए मणिकिरण-पणासियंधयारे किंबहुणा? जुइगुणेहिं सुरवरविमाण-विडंबियवरघरए, तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि--सालिंगणवट्टिए उभओ विब्बोयणे दुहओ उण्णए 'मज्झे णय गंभीरे' गंगापुलिणवालुय-उद्दालसालिसए ओयविय-खोम दुगुल्लपट्ट-पडिच्छयणे अत्थरय-मलय-नवतय-कुसत्त-लिंब-सीहकेसर-पच्चुत्थिए सुविरइयरयत्ताणे रत्तंसुयसंवुए सुरम्मे आइणग-रूय-बूर-नवणीय-तुल्लफासे पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि सुत्तजागरा

१८. वह धारिणी देवी किसी समय अपने विशिष्ट प्रासाद में सो रही थी। वह आलिन्द[३३] छह काष्ठ-खण्डों से निर्मित था। उसके सुन्दर, चिकने और कलापूर्ण खम्भों पर अतिसुन्दर पुतलियां उत्कीर्ण थीं। उसके शिखर पर उज्ज्वल मणि, स्वर्ण और रत्न जड़े हुए थे। वह प्रासाद छज्जों-झरोखों अर्द्धचन्द्राकार सीढ़ियों, निर्यूहकों--द्वार पर लगी हुई काष्ठ-पट्टियों, मध्यवर्ती लोह स्तम्भों और चन्द्रशालाओं के कारण नाना विभागों में विभक्त था। वह सरस, स्वच्छ गेरु रंग से रंगा हुआ, बाहर से धवलित, घिसा हुआ और चिकना, भीतर अपने-अपने कर्म में व्यापृत चित्रकारों की प्रासंगिक और कलात्मक तुलिका से आलेखित चित्रों से चित्रित था। उसका आंगन नाना प्रकार के पंचरंगे मणिरत्नों से कुट्टित था। उसके चन्दोवे पद्मलताओं, पुष्पित-वल्लियों और प्रवर पुष्पों वाली मालती लताओं से चित्रित थे। उसका द्वारभाग भलीभांति रखे गये, चन्दन से चर्चित, सरस-पद्मों के ढक्कन वाले, मांगलिक प्रवर स्वर्ण-कलशों[३४] से शोभायमान था। प्रवर और प्रलम्बमान मणि-मुक्ता की मालाएं द्वार की शोभा बढ़ा रही थी। सुगन्धित प्रवर-पुष्पों से मृदु और नेत्र रोम की तरह रोएं वाले शयनीय के उपचार से वह प्रासाद मन और हृदय को आह्लादित कर रहा था। वह कपूर, लौंग, मलय-चन्दन[३५], काला-अगर, प्रवर कुन्दुरू

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओहीरमाणी-ओहीरमाणी एगं महं सत्तुस्सेहं रययकूड-सन्निहं नहयलंसि सोमं सोमागारं लीलायंतं जंभायमाणं मुहमतिगयं गयं पासित्ता णं पडिबुद्धा।।

और लोबान की जलती हुई धूप की सुरभिमय महक से उठने वाली गंध से अभिराम, प्रवर सुरभि वाले गन्धचूर्णों से सुगन्धित (होने से) गंध वर्तिका के समान[३६] प्रतीत हो रहा था। मणियों की प्रभा से वहां का अंधकार नष्ट हो रहा था। अधिक क्या? अपनी द्युति और गुणों से वह प्रासाद प्रवर देव-विमान को भी विडम्बित कर रहा था।

उस प्रासाद में एक विशिष्ट शयनीय था। उस पर शरीर-प्रमाण-उपधान (मसनद) रखे हुए थे।[३७] सिर और पावों की ओर भी उपधान रखे हुए थे। अत: वह दोनों ओर से उभरा हुआ तथा मध्य में नत और गम्भीर था। गंगा-तट की बालुका की भांति उस पर पांव रखते ही, वह नीचे धंस जाता था। वह परिकर्मित क्षौम-दुकूल-पट्ट से ढका हुआ था। उस पर पतले झूलदार, ऊनी, रौएंदार कम्बल[३८] बिछे हुए थे। उसका रजस्त्राण (चादर) सुनिर्मित था। वह लाल रंग की मसहरी से संवृत[३९] था। उसका स्पर्श चर्म वस्त्र, कपास, बूर वनस्पति और नवनीत के समान (मृदु) था। उस पर सोयी हुई धारिणी देवी मध्यरात्री के समय अर्ध-जागृत अवस्था में बार-बार ऊंघती हुई, सात हाथ ऊंचे, रजत-शिखर जैसे सौम्य, शान्त आकृतिवाले क्रीड़ारत, जम्हाई लेते हुए और आकाश-पथ से उतरकर, मुंह में प्रविष्ट होते हुए एक विशाल हाथी के स्वप्न को देखकर जाग उठी।

सेणियस्स सुमिणनिवेदण-पदं

१९. तए णं सा धारिणी देवी अयमेयारूवं उरालं कल्याणं सिवं धण्णं मंगलं सस्सिरीयं महासुमिणं पासित्ता णं पडिबुद्धा समाणी हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसप्पमाणहियया 'धाराहय-कलंबपुप्फगं पिव समूससिय-रोमकूवा तं सुमिणं ओगिण्हइ ओगिण्हित्ता सयणिज्जाओ उट्ठेइ, उट्ठेत्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता अतुरियमचवलमसंभंताए अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए जेणामेव से सेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सेणियं रायं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं उरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धण्णाहिं मंगल्लाहिं सस्सिरीयाहिं हिययगमणिज्जाहिं हिययपल्हायणिज्जाहिं मिय-महुर-रिभिय-गंभीर-सस्सिरीयाहिं गिराहिं संलवमाणी-संलवमाणी पडिबोहेइ, पडिबोहेत्ता सेणिएणं रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी नाणा-मणिकणग रयणभत्तिचित्तंसि भद्दासणंसि निसीयइ, निसीइत्ता आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु सेणियं रायं एवं वयासी--एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! अज्ज तंसि तारिसगंसिसियणिज्जंसि सालिंगणवट्टिए जाव नियगवयणमइवयंतं गयं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा--तं एयस्स णं देवाणुप्पिया! उरालस्स कल्लाणस्स सिवस्स धण्णस्स मंगल्लस्स सस्सिरीयस्स सुमिणस्स के मण्णे कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ?

श्रेणिक को स्वप्न-निवेदन-पद

१९. वह धारिणी देवी इस प्रकार के उदार, कल्याण, शिव, धन्य, मंगलमय, श्री-सम्पन्न महास्वप्न[४०] को देखकर प्रतिबुद्ध, हृष्ट-तुष्ट चित्तवाली, आनन्दित, प्रीतिपूर्ण मनवाली, परम सौमनस्य युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदयवाली तथा मेघ धारा से आहत कदम्ब-कुसुम की भांति[४१] उच्छ्वसित रोमकूपवाली हो गई। धारिणी देवी ने उस स्वप्न का अवग्रहण किया। अवग्रहण कर शयनीय से उठी। उठकर पादपीठ से नीचे उतरी। उतरकर अत्वरित, अचपल, असंभ्रान्त, अविलम्बित राजहंसिनी जैसी गति से जहां श्रेणिक राजा था, वहां आयी। वहां आकर इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ मनोहर, उदार, कल्याण, शिव, धन्य, मंगलमय, श्रीसम्पन्न, हृदयगम्य, हृदय को आल्हादित करने वाली, मित, मधुर, स्वर-सम्पन्न, गम्भीर और समृद्धवाणी से पुन: पुन: संलाप करती हुई राजा श्रेणिक को जगाया। जगाकर राजा श्रेणिक की अनुज्ञा से वह नाना मणि, कनक और रत्नों की भांतों से चित्रित भद्रासन पर बैठ गई। बैठकर आश्वस्त-विश्वस्त हो प्रवर सुखासन में बैठी हुई धारिणी देवी दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर, मस्तक पर टिकाकर राजा श्रेणिक से इस प्रकार बोली--

देवानुप्रिय! आज मैं शरीर-प्रमाण उपधान वाले उस विशिष्ट शयनीय पर पूर्ववत् यावत् अपने मुंह में प्रविष्ट होते हुए विशाल हाथी के स्वप्न को देखकर जाग उठी।

देवानुप्रिय! क्या मैं मानूं इस उदार, कल्याणक, शिव, धन्य, मंगलकारक और श्रीस्वप्न का कल्याणकारी विशिष्ट फल होगा?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेणियस्स सुमिणमहिम-निदंसण-पदं

२०. तए णं से सेणिए राया धारिणीए देवीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवस-विसप्पमाण हियए धाराहयनीवसुरभिकुसुम-चंचुमालइयतणू ऊसवियरोमकूवे तं सुमिणं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता ईहं पविसइ, पविसित्ता अप्पणो साभाविएणं मइपुव्वएणं बुद्धिविण्णाणेणं तस्स सुमिणस्स अत्थोग्गहं करेइ, करेत्ता धारिणिं देविं ताहिं जाव हिययपल्हायणिज्जाहिं मिय-महुर-रिभिय-गंभीर-सस्सिरीयाहिं वग्गूहिं अणुवूहमाणे-अणुवूहमाणे एवं वयासी--उराले णं तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणे दिट्ठे। कल्लाणे णं तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणे दिट्ठे। सिवे धण्णे मंगल्ले सस्सिरीए णं तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणे दिट्ठे। आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउय-कल्लाण-मंगल्लकारए णं तुमे देवि! सुमिणे दिट्ठे। अत्थलाभो ते देवाणुप्पिए! पुत्तलाभो ते देवाणुप्पिए! रज्जलाभो ते देवाणुप्पिए! भोग-सोक्खलाभो ते देवाणुप्पिए!

एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए! नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं वीइक्कंताणं अम्हं कुलकेउं कुलदीवं कुलपव्वयं कुलवडिंसयं कुलतिलकं कुलकित्तिकरं कुलवित्तिकरं कुलनंदिकरं कुलजसकरं कुलाधारं कुलपायवं कुलविवद्धणकरं सुकुमालपाणिपायं जाव सुरूवं दारयं पयाहिसि। से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विण्णय-परिणयमेत्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते सूरे वीरे विक्कंते वित्थिण्ण-विपुल-बलवाहणे रज्जवई राया भविस्सइ।

तं उराले णं तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणे दिट्ठे। कल्लाणे णं तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणे दिट्ठे। सिवे धण्णे मंगल्ले सस्सिरीए णं तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणे दिट्ठे। आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउय-कल्लाण-मंगल्लकारए णं तुमे देवि! सुमिणे दिट्ठे त्ति कट्टु भुज्जो-भुज्जो अणुवूहेइ।।

श्रेणिक द्वारा स्वप्न-माहात्म्य निदर्शन-पद

२०. धारिणी देवी से स्वप्न की बात सुनकर अवधारण कर राजा श्रेणिक हृष्ट-तुष्ट चित्तवाला, आनन्दित, प्रीतिपूर्ण मनवाला परम सौमनस्य युक्त, हर्ष से विकस्वर हृदयवाला तथा धारा से आहत कदम्ब के सुरभि-कुसुम की भांति पुलकित शरीर एवं उच्छ्वसित रोमकूप वाला हो गया। उसने स्वप्न का अवग्रहण किया। अवग्रहण कर ईहा में प्रवेश किया, प्रवेश कर अपने स्वाभाविक मति पूर्वक बुद्धि-विज्ञान के द्वारा उस स्वप्न के अर्थ का अवग्रहण किया। अवग्रहण कर हृदय को आल्हादित करने वाली यावत् मित, मधुर, स्वर-सम्पन्न, गम्भीर और समृद्ध वाणी से धारिणी देवी के उल्लास को पुनः पुनः बढ़ाता हुआ वह इस प्रकार बोला--

देवानुप्रिये! तुमने उदार स्वप्न देखा है।

देवानुप्रिये! तुमने कल्याणक स्वप्न देखा है।

देवानुप्रिये! तुमने शिव, धन्य, मंगलमय और श्रीस्वप्न देखा है।

देवि! तुमने आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मंगलकारक स्वप्न देखा है।

तुम्हें अर्थलाभ होगा देवानुप्रिये!

तुम्हें पुत्रलाभ होगा देवानुप्रिये!

तुम्हें राज्यलाभ होगा देवानुप्रिये!

तुम्हें भोग और सुख का लाभ होगा देवानुप्रिये!

देवानुप्रिये! तुम बहुप्रतिपूर्ण नौ मास साढ़े सात दिन व्यतिक्रान्त होने पर एक बालक को जन्म दोगी। वह बालक हमारे कुल की पताका, कुल-दीप, कुल-पर्वत, कुल-अवतंस, कुल-तिलक, कुल-कीर्तिकर, कुल-वृत्तिकर, कुल को आनन्दित करने वाला, कुल के यश का बढ़ाने वाला, कुल का आधार, कुल का पादप, कुल को बढ़ाने वाला, सुकुमार हाथ पैर वाला यावत् सुरूप होगा। और, वह बालक बाल अवस्था को पार कर विज्ञ और कला का पारगामी बनकर यौवन को प्राप्त कर, शूर, वीर, विक्रमशाली[४२], विपुल और विस्तीर्ण सेना व वाहन युक्त राज्य का अधिपति राजा होगा।

इसलिए देवानुप्रिये! तुमने उदार स्वप्न देखा है।

देवानुप्रिये! तुमने कल्याणक स्वप्न देखा है।

देवानुप्रिये! तुमने शिव, धन्य, मंगलमय और श्री-स्वप्न देखा है।

देवि! तुमने आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मंगल कारक स्वप्न देखा है--ऐसा कहकर राजा ने बार-बार उसके उल्लास को बढ़ाया।

धारिणीए सुमिणजागरिया-पदं

२१. तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणी हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया जाव हरिसवस-विसप्पमाणहियया करयल-

धारिणी की स्वप्न-जागरिका-पद

२१. राजा श्रेणिक द्वारा ऐसा कहने पर धारिणी देवी हृष्ट-तुष्ट चित्त वाली आनन्दित यावत् हर्ष से विकस्वर हृदय वाली हो गई। उसने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी--एवमेयं देवाणुप्पिया! तहमेयं देवाणुप्पिया! अवितहमेयं देवाणुप्पिया! असंदिद्धमेयं देवाणुप्पिया! इच्छियमेयं देवाणुप्पिया! पडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया! इच्छियपडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया! सच्चे णं एसमट्ठे जं तुब्भे वयह त्ति कट्टु तं सुमिणं सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता सेणिएणं रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी नाणामणिकणगरयण-भत्तिचित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयंसि सयणिज्जंसि निसीयइ, निसीइत्ता एवं वयासी--मा मे से उत्तमे पहाणे मंगल्ले सुमिणे अण्णेहिं पावसुमिणेहिं पडिहम्मिहित्ति कट्टु देवय-गुरुजणसंबद्धाहिं पसत्थाहिं धम्मियाहिं कहाहिं सुमिणजागरियं पडिजागरमाणी-पडिजागरमाणी विहरइ।।

दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! यह ऐसा ही है। देवानुप्रिय! यह तथा (संवादितापूर्ण) है। देवानुप्रिय! यह अवितथ है। देवानुप्रिय! यह असंदिग्ध है। देवानुप्रिय! यह इष्ट है। देवानुप्रिय! यह प्रतीप्सित (प्राप्त करने के लिए इष्ट) है। देवानुप्रिय! यह इष्ट-प्रतीप्सित है। देवानुप्रिय! जैसा तुम कह रहे हो वह अर्थ सत्य है--ऐसा भाव प्रदर्शित कर उस स्वप्न के फल को सम्यक् स्वीकार किया। स्वीकार कर राजा श्रेणिक की अभ्यनुज्ञा प्राप्त कर नाना मणि, कनक, रत्न की भांतों से चित्रित भद्रासन से उठी। उठकर जहां अपना शयनीय था, वहां आई। वहां आकर शयनीय पर बैठ गई। बैठकर इस प्रकार बोली--"मेरा वह उत्तम, प्रधान और मंगल स्वप्न किन्हीं अन्य पाप-स्वप्नों के द्वारा प्रतिहत न हो जाए"--ऐसा कहकर वह देव तथा गुरुजनों से सम्बद्ध प्रशस्त धार्मिक-कथाओं के द्वारा स्वप्न-जागरिका[13] के प्रति सतत प्रतिजागृत रहती हुई विहार करने लगी।

सुमिणपाढग-निमंतण-पदं

२२. तए णं से सेणिए राया पच्चूसकालसमयंसि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! बाहिरियं उवट्ठाणसालं अज्ज 'सविसेसं परमरम्मं' गंधोदगसित्त-सुइय-सम्मज्जिओवलित्तं पंचवण्ण-सरससुरभि-मुक्क-पुप्फपुंजोवयारकलियं कालागरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्क-धूव-डज्झंत-सुरभि-मघमघेंत-गंधुद्धुयाभिरामं सुगंधवर (गंध?) गंधियं गंधवट्टिभूयं करेह, कारवेह य, एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।।

स्वप्न-पाठक-निमन्त्रण पद

२२. उस श्रेणिक राजा ने प्रत्यूषकाल के समय कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--हे देवानुप्रियो! आज शीघ्र ही बाहरी उपस्थानशाला (सभा मण्डप) को विशेष रूप से सुगन्धित जल से सींच, झाड़ बुहारकर, गोबर का लेप कर, प्रवर सुगन्धित पांच वर्ण के पुष्पों के उपचार से युक्त, काली अगर, प्रवर कुन्दुरु और जलते हुए लोबान धूप से उद्धत गंध से अभिराम, प्रवर सुरभिवाले गन्धचूर्णों से सुरभित, गंधवर्तिका के समान करो, कराओ। मुझे इस आज्ञा को प्रत्यर्पित करो।

२३. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसप्पमाणहियया तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।।

२३. कौटुम्बिक पुरुष राजा श्रेणिक के ऐसा कहने पर हृष्ट-तुष्ट चित्त वाले आनन्दित, प्रीतिपूर्ण मन वाले, परम सौमनस्य युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाले होकर राजा की उस आज्ञा को प्रत्यर्पित किया।

२४. तए णं से सेणिए राया कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए फुल्लुप्पल-कमल-कोमलुम्मिलियम्मि अहपंडुरे पभाए रत्तासोगप्पगास-किंसुय-सुयमुह-गुंजद्ध-बंधुजीवग-पारावयचलणनयण-परहुयसुरत्तलोयण-जासुमणकुसुम-जलियजलण-तवणिज्जकलस-हिंगुलयनिगर-रूवाइरेगरेहंत-सस्सिरीए दिवायरे अहकमेण उदिए तस्स दिणकर-करपरंपरोयारपारद्धंमि अंधयारे बालातव-कुंकुमेण खचितेव्व जीवलोए लोयण-विसयाणुयास-विगसंत-विसददंसियम्मि लोए कमलागर-संडबोहए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते सयणिज्जाओ उट्ठेइ, उट्ठेत्ता जेणेव अट्टणसाला, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अट्टणसालं अणुपविसइ।

२४. श्रेणिक राजा उषाकाल में पौ फटने पर और रात्रि के निर्मल होने पर प्रफुल्लित उत्पल और अर्ध विकसित कोमल कमल वाले, पीत आभा वाले अरुणिम प्रभात में लाल अशोक की दीप्ति, पलाश, तोते के मुख, गुञ्जार्ध, दुपहरिया फूल, कबूतर के चरण और नयन, कोकिल के रक्तिम लोचन, जवा-कुसुम, प्रज्ज्वलित अग्नि, स्वर्ण-कलश और हिंगुल राशि के रूप से भी अधिक शोभायमान, श्री-सम्पन्न दिवाकर क्रमशः उदित हुआ। उस दिनकर के रश्मिजाल के अवतरण से अंधकार निरस्त हुआ। समूचा जीव लोक बाल-आतप रूपी कुंकुम की रेखा से खचित-सा हो गया। नेत्रों द्वारा दृश्य-पदार्थ उत्तरोत्तर स्पष्ट दिखाई देने लगे। जलाशयगत नलिनीवन के उद्‌बोधक सहस्ररश्मि,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणेगवायाम-जोग्ग-वग्गण-वामद्दण-मल्लजुद्धकरणेहिं संते परिस्संते सयपागसहस्सपागेहिं सुगंधवरतेल्लमादिएहिं पीणणिज्जेहिं दीवणिज्जेहिं दप्पणिज्जेहिं मयणिज्जेहिं विंहणिज्जेहिं सव्विंदियगायपल्हायणिज्जेहिं अब्भंगेहिं अब्भंगिए समाणे, तेल्लचम्मंसि पडिपुण्ण-पाणिपाय-सुकुमाल कोमलतलेहिं पुरिसेहिं छेएहिं दक्खेहिं पट्ठेहिं कुसलेहिं मेहावीहिं निउणेहिं निउणसिप्पोवगएहिं जियपरिस्समेहिं अब्भंगण-परिमद्दणुव्वलण-करण-गुणनिम्माएहिं, अट्ठिसुहाए मंससुहाए तयासुहाए रोमसुहाए--चउव्विहाए संवाहणाए संवाहिए समाणे अवगयपरिस्समे नरिंदे अट्टणसालाओ पडिनिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता समत्तजालाभिरामे विचित्त-मणि-रयण-कोट्टिमतले रमणिज्जे ण्हाणमंडवंसि नाणामणिरयण-भत्तिचित्तंसि ण्हाणपीढंसि सुहनिसण्णे सुहोदएहिं गंधोदएहिं पुप्फोदएहिं सुद्धोदएहिं य पुणो पुणो कल्लाणग-पवरमज्जणविहीए मज्जिए तत्थ कोउयसएहिं बहुविहेहिं कल्लाणग-पवरमज्जणावसाणे पम्हल-सुकुमाल-गंधकासाइ-लूहियंगे अहय-सुमहग्घ-दूसरयण-सुसंवुए सरस-सुरभि-गोसीस-चंदणाणुलित्तगत्ते सुइमाला-वण्णगविलेवणे आविद्ध-मणिसुवण्णे कप्पिय-हारद्धहार-तिसरयपालंब-पलंबमाण-कडिसुत्त-सुकयसोहे पिणद्धगेवेज्ज-अंगुलेज्जग-ललियंगय-ललियकयाभरणे नाणामणि-कडग-तुडिय-थंभियभुए अहियरूवसस्सिरीए कुंडलुज्जोइयाणणे मउड-दित्तसिरए हारोत्थय-सुकय-रइयवच्छे मुद्दिया-पिंगलंगुलीए पालंब-पलंबमाण-सुकय-पडउत्तरिज्जे नाणामणिकणगरयण-विमल-महरिह-निउणोविय-मिसिमिसिंत-विरइय-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-लट्ठ-संठिय-पसत्थ-आविद्ध-वीरवलए, किं बहुणा? कप्परुक्खए चेव सुअलंकिय-विभूसिए नरिंदे सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं चउचामरवालवीइयंगे मंगल-जय-सद्द-कयालोए अणेगगणनायग-दंडनायग-राईसर-तलवर-मांडबिय-कोडुंबिय-मंति-महामंति-गणग-दोवारिय-अमच्च-चेड-पीढमद्द-नगर-निगम-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाह-दूय-संधिवालसद्धिं संपरिवुडे धवलमहामेहनिग्गए विव गहगण-दिप्पंत-रिक्खतारागणाण मज्झे ससि व्व पियदंसणे नरवई मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे ।।

दिनकर, सूर्य के उत्थित तेज से देदीप्यमान होने पर राजा श्रेणिक शयनीय से उठा। उठकर जहां व्यायामशाला[४४] थी, वहां आया। वहां आकर व्यायामशाला के अन्दर प्रवेश किया।

नाना प्रकार के व्यायाम, शस्त्राभ्यास, कूर्दन, व्यामर्दन (आबनूस के बेलनों द्वारा की जाने वाली मालिश), मल्लयुद्ध और आसनों के द्वारा जब वह श्रान्त और परिश्रान्त हो गया, तब धातुसाम्य करने वाले, अग्नि-दीपन करने वाले, बल बढ़ाने वाले, वीर्य बढ़ाने वाले, मांस को पुष्ट करने वाले, सब इन्द्रियों और अवयवों को आल्हादित करने वाले, शतपाक, सहस्रपाक[४५], आदि प्रवर सुगन्धित तैल तथा मर्दन-द्रव्यों के द्वारा अवसरज्ञ, दक्ष, अग्रणी, कुशल, मेधावी, निपुण[४६], निपुण-शिल्प युक्त, परिश्रम से नहीं थकने वाले, अभ्यंग, परिमर्दन, उबटन और थपथपाने में अभ्यस्त तथा परिपूर्ण, सुकुमार और कोमल हाथ-पांवों के तलवों वाले पुरुषों द्वारा, तैल से स्निग्ध त्वचा वाले राजा श्रेणिक के लिए अस्थि-सुखद, मांस-सुखद, त्वचा-सुखद और रोम-सुखद-इन चारों प्रकारों के मर्दनों से मर्दन[४७] किया गया। थकान दूर होने पर वह राजा व्यायामशाला से बाहर निकला, जहां स्नानघर था, वहां आया आकर स्नानघर में प्रवेश किया। प्रवेश कर चारों ओर जालियों वाले, अभिराम, रंग-बिरंगे मणि-रत्नों से कुट्टित तल वाले, रमणीय, स्नान-मण्डप में नाना मणि-रत्नों की भांतों से चित्रित, स्नान-पीठ पर आराम से बैठ, शुभोदक, गन्धोदक, पुष्पोदक, और शुद्धोदक[४८] से कल्याणक प्रवर मज्जन-विधि से पुनः पुनः स्नान किया। सैंकड़ों प्रकार के कौतुक कर्म[४९] के साथ उसने कल्याणक, प्रवर स्नान-क्रिया को सम्पन्न किया। रौएंदार, सुकुमार, सुगन्धित, गेरुएं रंग के वस्त्र से अंग पोंछा। नये और बहुमूल्य दूष्यरत्न (बहुमूल्य वस्त्र) पहने। गात्र पर सरस, सुरभित गोशीर्ष-चन्दन का लेप किया। पवित्र मालाएं पहनी और चन्दन का विलेपन किया। मणिजटित स्वर्णाभरण पहने। हार, अर्धहार, त्रिसरा, झूमके तथा लटकती हुई करधनी से शरीर की शोभा को बढ़ाया। गले में ग्रैवेयक और अंगुलियों में अंगूठियां पहनी। अन्य भी अनेक प्रकार के आभूषणों से उसके ललित शरीर का लालित्य द्विगुणित हो गया। नाना मणि-जटित कड़े और बाहुरक्षक से भुजाएं स्तम्भित हो गयी। इस प्रकार वह अधिक रूप और शोभा-सम्पन्न हो गया। कानों में पहने हुए कुण्डलों से उसका मुंह उद्योतित हो रहा था। मुकुट से उसका मस्तक दीप्त हो रहा था। विविध प्रकार के हारों से आच्छादित उसका वक्षस्थल बहुत ही नयनाभिराम लग रहा था। मुद्रिकाओं से उसकी अंगुलियां पीली दिखाई दे रही थी। लम्बे, लटकते हुए उत्तरीय पट को भली-भांति ओढ़ा। नाना मणि, स्वर्ण और रत्न जटित, विमल, महामूल्य, निपुण शिल्पियों द्वारा परिकर्मित, देदीप्यमान सुविरचित, सुश्लिष्ट, विशिष्ट तथा कमनीय संस्थान वाले प्रशस्त वीरवलय[५०] को पहना। किं बहुना? वह नरेन्द्र कल्पवृक्ष की तरह अलंकृत और विभूषित हो गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसने कटसरैया के फूलों की मालाओं से युक्त छत्र धारण किया, जिसके दोनों ओर दो-दो चामर डुलाए जा रहे थे। उसको देखते ही जन-समूह मंगल जय-निनाद करने लगा।

अनेक गण-नायक, दण्ड नायक, राजा ईश्वर, तलवर (कोटवाल) माडम्बिक, कौटुम्बिक, मंत्री, महामंत्री कोषाध्यक्ष, द्वारपाल, अमात्य, सेवक, राजा के पास रहने वाला सखा, नागरिक, व्यापारी, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, दूत और सन्धिपालों के साथ[११], उनसे घिरा हुआ धवल महामेघ पटल से निर्गत, ग्रह, नक्षत्र और तारकों के मध्य देदीप्यमान शशि की भांति प्रियदर्शन नरपति स्नान घर से बाहर निकला। निकलकर जहां बाहरी उपस्थानशाला (सभा-मण्डप) थी वहां आया और प्रवर सिंहासन पर पूर्वाभिमुख हो, बैठ गया।

२५. तए णं से सेणिए राया अप्पणो अदूरसामंते उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए अट्ठ भद्दासणाइं--सेयवत्थ-पच्चुत्थुयाइं सिद्धत्थय-मंगलोवयार-कय-संतिकम्माइं--रयावेइ, रयावेत्ता नाणामणि-रतणमंडियं अहियपेच्छणिज्जरूवं महग्घवरपट्टणुग्गयं सण्ह-बहुभत्तिसय-चित्तठाणं ईहामिय-उसभ-तुरय-नर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्तं सुखचियवरकणगपवरपेरंत-देसभागं अब्भितरियं जवणियं अंछावेइ, अंछावेत्ता अत्थरग-मउअमसूरग-उत्थइयं धवलवत्थ-पच्चुत्थुयं विसिट्ठअंगसुहफासयं सुमउयं धारिणीए देवीए भद्दासणं रयावेइ, रयावेत्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अट्ठंगमहानिमि-त्तसुत्तत्थपाढए विविहसत्थकुसले सुमिणपाढए सद्दावेह, सद्दावेत्ता एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणह।।

२५. राजा श्रेणिक ने अपने से न अति दूर, न अति निकट, ईशान-कोण में आठ भद्रासन स्थापित करवाए। उन पर श्वेत वस्त्र बिछे हुए थे। सरसों डालकर मंगल उपचार और शान्ति-कर्म[१२] किये गये उस उपस्थानशाला (सभा-मण्डप) में नाना मणि-रत्नों से मण्डित अतिप्रेक्षणीय रूपवाली, बहुमूल्य, प्रवर पत्तन में ढकी हुई, चिकने, सैंकड़ों भांतों से चित्रित, भेड़िया, बैल, घोड़ा, मनुष्य, मगरमच्छ, पक्षी, सर्प, किन्नर, मृग, अष्टापद, चमरी गाय, हाथी, अशोक लता, पद्मलता-आदि की भांतों से चित्रित, किनारों पर शुद्ध सोने के तारों की कढ़ाई से युक्त भीतरी यवनिका लगवाई। यवनिका लगाकर धारिणी देवी के लिए एक भद्रासन स्थापित करवाया। जो बिछौने और कोमल उपधानों से युक्त था। जिस पर धवल वस्त्र बिछे हुए थे। जो शरीर के लिए विशिष्ट, सुखद स्पर्शवाला और अतीव सुकोमल था। भद्रासन स्थापित करवाया। करवाकर कौटुम्बिक पुरुषों[१३] को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! अष्टांग महानिमित्त[१४] के सूत्र और अर्थ के पाठक, विविध शास्त्रों में कुशल स्वप्नपाठकों को शीघ्र बुलाओ। बुलाकर इस आज्ञा को शीघ्र ही मुझे प्रत्यर्पित करो।

२६. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया जाव हरिसवस-विसप्पमाणहियया करयल-परिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं देवो! तह त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति, सेणियस्स रण्णो अंतियाओ पडिनिक्खमंति, रायगिहस्स नगरस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव सुमिणपाढ-गगिहाणि तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सुमिणपाढए सद्दावेंति।।

२६. राजा श्रेणिक से वह आदेश पाकर हृष्ट तुष्ट चित्त वाले, आनन्दित यावत् हर्ष से विकस्वर हृदय वाले कौटुम्बिक पुरुषों ने जुड़ी हुई, सटे हुए दस नख वाली दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर जैसी आपकी आज्ञा--यह कहकर विनयपूर्वक आदेश-वचन को स्वीकार किया। राजा श्रेणिक के पास से (उठकर) बाहर आए। राजगृह नगर के बीचोंबीच होकर, जहां स्वप्न पाठकों के घर थे, वहां आए। वहां आकर स्वप्नपाठकों को निमंत्रित किया।

सेणियस्स सुमिणफल-पुच्छा-पदं

२७. तए णं ते सुमिणपाढगा सेणियस्स रण्णो कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया जाव हरिसवस-

श्रेणिक द्वारा स्वप्नफल-पृच्छा पद

२७. राजा श्रेणिक के कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा निमंत्रित किए जाने पर हृष्ट-तुष्ट चित्त वाले, आनन्दित यावत् हर्ष से विकस्वर हृदय वाले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विसप्पमाणहियया ण्हाया कयबलिकम्मा कय-कोउय-मंगल पायच्छित्ता अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा हरियालिय-सिद्धत्थय-कयमुद्धाणा सएहिं-सएहिं गेहेहिंतो पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता रायगिहस्स नगरस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव सेणियस्स भवणवडेंसगदुवारे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता एगयओ मिलंति, मिलित्ता सेणियस्स रण्णो भवणवडेंसगदुवारेणं अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव सेणिए राया, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सेणियं रायं जएणं विजएणं वद्धावेंति, सेणिएणं रण्णा अच्चिय-वंदिय-पूइय-माणिय-सक्कारिय-सम्माणिया समाणा पत्तेयं-पत्तेयं पुव्वन्नत्थेसु भद्दासणेसु निसीयंति।।

स्वप्नपाठकों ने स्नान, बलिकर्म और कौतुक मंगलरूप प्रायश्चित्त[५५] किया। अल्पभार और बहुमूल्य आभरणों से शरीर को अलंकृत किया। मस्तक पर दूब और श्वेत सर्षप रख वे अपने-अपने घरों से निकले। निकलकर राजगृह नगर के बीचो बीच, जहां श्रेणिक के भवन का मुख्य द्वार था, वहां आए। आकर परस्पर मिले, मिलकर राजा श्रेणिक के भवन के मुख्य द्वार में प्रवेश किया। प्रवेशकर जहां बाहरी सभा मण्डप था, जहां राजा श्रेणिक था, वहां आए। वहां आकर राजा श्रेणिक का जय-विजय की ध्वनि से[५६] वर्द्धापन किया। राजा श्रेणिक द्वारा अर्चित, वन्दित, पूजित, मानित, सत्कारित और सम्मानित[५७] होकर अपने-अपने पूर्व स्थापित भद्रासनों पर बैठ गए।

२८. तए णं से सेणिए राया जवणियंतरियं धारिणिं देविं ठवेइ, ठवेत्ता पुप्फफलपडिपुण्णहत्थे परेणं विणएणं ते सुमिणपाढए एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! धारिणी देवी अज्ज तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि जाव महासुमिणं पासित्ता णं पडिबुद्धा। तं एयस्स णं देवाणुप्पिया! उरालस्स जाव सस्सिरीयस्स महासुमिणस्स के मण्णे कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ?।।

२८. राजा श्रेणिक ने धारिणी देवी को यवनिका के भीतर बिठाया। बिठाकर फूलों और फलों से भरे हुए हाथों वाले राजा श्रेणिक ने परम विनय पूर्वक उन स्वप्नपाठकों से इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! आज धारिणी देवी अपने उस विशिष्ट शयनीय पर सोई हुई थी यावत् वह हाथी के महास्वप्न को देख कर जागृत हो गई। अतः देवानुप्रियो! इस उदार यावत् श्रीसम्पन्न महास्वप्न का क्या कल्याणकारी विशिष्ट फल होगा?

सुमिणफल-कहण-पदं

स्वप्न-फल-कथन-पद

२९. तए णं ते सुमिणपाढगा सेणियस्स रण्णो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया जाव हरिसवस-विसप्पमाणहियया तं सुमिणं सम्मं ओगिण्हंति ओगिण्हित्ता ईहं अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता अण्णमण्णेण सद्धिं संचालेंति, संचालेत्ता तस्स सुमिणस्स लद्धट्ठा पुच्छियट्ठा गहियट्ठा विणिच्छियट्ठा अभिगयट्ठा सेणियस्स रण्णो पुरओ सुमिणसत्थाइं उच्चारेमाणा-उच्चारेमाणा एवं वयासी--एवं खलु अम्हं सामी! सुमिणसत्थंसि बायालीसं सुमिणा, तीसं महासुमिणा--बावत्तरिं सव्वसुमिणा दिट्ठा।

तत्थ णं सामी! अरहंतमायरो वा चक्कवट्टिमायरो वा अरहंतंसि वा चक्कवट्टिंसि वा गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं तीसाए महासुमिणाणं इमे चोद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति, तं जहा--

२९. वे स्वप्नपाठक राजा श्रेणिक के पास इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर हृष्ट तुष्ट चित्त वाले, आनन्दित यावत् हर्ष से विकस्वर हृदय वाले हो गए। स्वप्नपाठकों ने उस स्वप्न का भली-भांति अवग्रहण किया, अवग्रहण कर ईहा में अनुप्रवेश किया। अनुप्रवेश कर परस्पर पर्यालोचना की। पर्यालोचना कर उस स्वप्न के अर्थ को स्वयं जाना, उस विषय में प्रश्न किया, अर्थ का ग्रहण किया, उसका विनिश्चय किया, अर्थ को हृदयंगम किया, राजा श्रेणिक के सामने स्वप्नशास्त्रों का पुनः पुनः उच्चारण करते हुए इस प्रकार कहा--स्वामिन्! हमारे स्वप्नशास्त्रों में इस प्रकार बयालीस स्वप्न, तीस महास्वप्न--कुल मिलाकर बहत्तर स्वप्न निर्दिष्ट हैं।

स्वामिन्! उनके अनुसार अर्हत् की माता और चक्रवर्ती की माता अर्हत् और चक्रवर्ती के गर्भावक्रान्ति के समय इन तीस महास्वप्नों में से ये चौदह महास्वप्न देखकर जागृत होती है, जैसे--

संगहणी-गाहा--

१. गय २. वसह ३. सीह ४. अभिसेय ५. दाम ६. ससि ७.दिणयर ८. झयं ९. कुंभं।
१०. पउमसर ११. सागर १२. विमाणभवण १३. रयणुच्चय १४. सिहिं च।।

वासुदेवमायरो वा वासुदेवंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुमिणाणं अण्णयरे सत्त महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति।

बलदेवमायरो वा बलदेवंसि गब्भं वक्कमंमाणंसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुमिणाणं अण्णयरे चत्तारि महासुविणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति।

संग्रहणी गाथा--

१. गज २. वृषभ ३. सिंह ४. अभिषेक ५. माला ६. चन्द्रमा ७. दिनकर ८. ध्वज ९. कलश १०. पद्मसरोवर ११. सागर १२. विमान-भवन[५८] १३. रत्न-राशि १४. अग्नि।

वासुदेव की माता वासुदेव के गर्भावक्रान्ति के समय इन चौदह महास्वप्नों में से कोई सात महास्वप्न देखकर जागृत होती है।

बलदेव की माता बलदेव के गर्भावक्रान्ति के समय इन चौदह महास्वप्नों में से कोई चार महास्वप्न देखकर जागृत होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंडलियमायरो वा मंडलियंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुमिणाणं अण्णयरं महासुमिणं पासित्ता णं पडिबुज्झंति।

इमे य सामी! धारिणीए देवीए एगे महासुमिणे दिट्ठे, तं उराले णं सामी! धारिणीए देवीए सुमिणे दिट्ठे जाव आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउय-कल्लाण-मंगल्लकारए णं सामी! धारिणीए देवीए सुमिणे दिट्ठे। अत्थलाभो सामी! पुत्तलाभो सामी! रज्जलाभो सामी! भोगलाभो सामी! सोक्खलाभो सामी! एवं खलु सामी! धारिणी देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं जाव दारगं पयाहिइ। से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विण्णय-परिणयमित्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते सूरे वीरे विक्कंते वित्थिण्ण-विपुल-बलवाहणे रज्जवई राया भविस्सइ, अणगारे वा भावियप्पा।

तं उराले णं सामी! धारिणीए देवीए सुमिणे दिट्ठे जाव आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउय-कल्लाण-मंगल्लकारए णं सामी! धारिणीए देवीए सुमिणे दिट्ठे त्ति कट्टु भुज्जो-भुज्जो अणुवूहेंति।।

माण्डलिक राजा की माता माण्डलिक राजा के गर्भावक्रान्ति के समय इन चौदह महास्वप्नों में से कोई एक महास्वप्न देखकर जागृत होती है।

स्वामिन्! इन महास्वप्नों में धारिणी देवी ने एक हाथी का महास्वप्न देखा है। इसलिए स्वामिन्! धारिणी देवी ने उदार स्वप्न देखा है यावत् स्वामिन्! धारिणी देवी ने आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण तथा मंगलकारी स्वप्न देखा है। स्वामिन्! अर्थलाभ होगा। स्वामिन्! पुत्रलाभ होगा। स्वामिन्! राज्यलाभ होगा। स्वामिन्! भोगलाभ होगा। स्वामिन्! सुखलाभ होगा।

इस प्रकार स्वामिन्! धारिणी देवी बहुप्रतिपूर्ण नौ मास बीतने पर यावत् (१-१-२०) एक सुरूप बालक को जन्म देगी।

वह बालक बाल्यावस्था को पार कर, विज्ञ और कला का पारगामी बनकर, यौवन को प्राप्त कर, शूर, वीर, विक्रान्त, विपुल-विस्तीर्ण सेना और वाहन युक्त राज्य का अधिपति राजा होगा अथवा भावितात्मा अनगार[9] होगा।

इसलिए स्वामिन्! (हमारा अभिमत प्रामाणिक है कि) धारिणी देवी ने उदार स्वप्न देखा है यावत् स्वामिन्! धारिणी देवी ने आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मंगल कारक स्वप्न देखा है--ऐसा कह, उन्होंने पुनः पुनः राजा के उल्लास का संवर्द्धन किया।

सुमिणपाढग-विसज्जण-पदं

३०. तए णं से सेणिए राया तेसिं सुमिणपाढगाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए जाव हरिसवस-विसप्पमाणहियए करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी--एवमेयं देवाणुप्पिया! जाव जं णं तुब्भे वयह त्ति कट्टु तं सुमिणं सम्मं पडिच्छइ, ते सुमिणपाढए विपुलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-गंध-मल्लालंकारेण य सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता विपुलं जीवियारिहं पीतिदाणं दलयति, दलइत्ता पडिविसज्जेइ।।

स्वप्नपाठक-विसर्जन-पद

३०. उन स्वप्न पाठकों से यह अर्थ सुनकर-अवधारण कर हृष्ट तुष्ट चित्तवाला, आनन्दित यावत् हर्ष से विकस्वर हृदयवाला राजा श्रेणिक दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकार इस प्रकार बोला--ऐसा ही है देवानुप्रियो! यावत् जो तुम कह रहे हो--ऐसा कहकर यावत् उसने स्वप्न को भली भांति स्वीकार किया। उन स्वप्नपाठकों का विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, गन्ध और माल्यालंकारों से सत्कार किया, सम्मान किया। सत्कार-सम्मान कर जीवन निर्वाह के योग्य विपुल प्रीतिदान दिया, प्रीतिदान देकर प्रतिविसर्जित किया।

सेणियस्स सुमिणपसंसा-पदं

३१. तए णं से सेणिए राया सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता जेणेव धारिणी देवी, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धारिणिं देविं एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिए! सुमिणसत्थंसि बायालीसं सुमिणा तीसं महासुमिणा--बावत्तरिं सव्वसुमिणा दिट्ठा जाव तं उराले णं तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणे दिट्ठे। कल्लाणे णं तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणे दिट्ठे। सिवे धण्णे मंगल्ले सस्सिरीए णं तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणे दिट्ठे। आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउय-कल्लाण-मंगल्ल-कारए णं तुमे देवि! सुमिणे दिट्ठे त्ति कट्टु भुज्जो-भुज्जो अणुवूहेइ।।

श्रेणिक द्वारा स्वप्न-प्रशंसा-पद

३१. तब राजा श्रेणिक सिंहासन से उठा, उठकर जहां धारिणी देवी थी, वहां आया, आकर धारिणी देवी से इस प्रकार बोला--देवानुप्रिये! स्वप्न शास्त्र में[10] बयालीस स्वप्न और तीस महास्वप्न--इस प्रकार बहत्तर स्वप्न निर्दिष्ट हैं, यावत् देवानुप्रिये! तुमने उदार स्वप्न देखा है। देवानुप्रिये! तुमने कल्याणक स्वप्न देखा है। देवानुप्रिये! तुमने शिव, धन्य, मंगलमय और श्रीसम्पन्न स्वप्न देखा है। देवी! तुमने आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मंगलकारक स्वप्न देखा है--ऐसा कह, उसने पुनः-पुनः धारिणी देवी के उल्लास का संवर्द्धन किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धारिणीए दोहल-पदं

३२. तए णं सा धारिणी देवी सेणियस्स रण्णो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया जाव हरिसवस-विसप्पमाणहियया तं सुमिणं सम्मं पडिच्छति, जेणेव सए वासघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ण्हाया कयबलिकम्मा कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ता विपुलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ ।।

३३. तए णं तीसे धारिणीए देवीए दोसु मासेसु वीइक्कंतेसु तइए मासे वट्टमाणे तस्स गब्भस्स दोहलकालसमयंसि अयमेयारूवे अकालमेहेसु दोहले पाउब्भवित्था--

धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, संपुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयत्थाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयपुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयलक्खणाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयविहवाओ णं ताओ अम्मयाओ, सुलद्धे णं तासिं माणुस्सए जम्मजीवियफले, जाओ णं मेहेसु अब्भुग्गएसु अब्भुज्जएसु अब्भुण्णएसु अब्भुट्ठिएसु सगज्जिएसु सविज्जुएसु सफुसिएसु सथणिएसु धंतधोय-रुप्पपट्ट-अंक-संख-चंद-कुंद-सालिपिट्ठरासिसमप्पभेसु चिकुर-हरियाल-भेय-चंपग-सण-कोरेंट-सरिसव-पउमरयसमप्पभेसु लक्खारस-सरस-रत्तकिंसुय-जासुमण-रत्तबंधुजीवग-जातिहिंगुलय-सरस-कुंकुम-उरब्भससरुहिर-इंदगोवग-समप्पभेसु बरहिण-नील-गुलिय-सुगचासपिच्छ-भिंगपत्त-सासग-नीलुप्पलनियर-नवसिरीसकुसुम-नवसद्दलसमप्पभेसु जच्चंजण-भिंगभेय-रिट्ठग-भमरावलि-गवलगुलिय-कज्जलसमप्पभेसु फुरंत-विज्जुय-सगज्जिएसु वायवस-विपुलगगण-चवलपरिसक्किरेसु,निम्मल-वरवारिधारा-पयलिय-पयंडमारुयसमाहय-समोत्थरंत-उवरि उवरि-तुरियवासं पवासिएसु, धारा-पहकर-निवाय-निव्वाविय मेइणितले हरियगगणकंचुए पल्लविय पायव-गणेसु वल्लिवियाणेसु पसरिएसु उन्नएसु सोभग्गमुवगएसु वेभारगिरिप्पवाय-तड-कडगविमुक्केसु उज्झरेसु, तुरियपहाविय-पल्लोट्टफेणाउलं सकलुसं जलं वहंतीसु गिरिनदीसु सज्जज्जुण-नीव-कुडय-कंदल-सिलिंध-कलिएसु उववणेसु।

मेहरसिय-हट्ठतुट्ठचिट्ठिय-हरिसवसपमुक्ककंठकेकारवं मुयंतेसु बरहिणेसु उउवस-मयजणिय-तरुणसहयरि-पणच्चिएसु नवसुरभि-सिलिंध-कुडय-कंदल-कलंब-गंधद्धणिं मुयंतेसु उववणेसु।

परहुय-रुय-रिभिय-संकुलेसु उद्दाइंत-रत्तइंदगोवय-थोवय-कारुण्णविलविएसु ओणयतणमंडिएसु दद्दुरपयंपिएसु संपिंडिय-दरिय-भमर-महुयरिपहकर-परिलिंत-मत्त-छप्पय-कुसुमासवलोल-महुर-गुंजंतदेसभाएसु उववणेसु।

परिसामिय-चंद-सूर-गहगण-पणट्ठनक्खत्त-तारगपहे इंदाउह-बद्ध-चिंधपट्टम्मि अंबरतले उड्डीणबलागपंति-सोभंतमेहवंदे कारंडग-चक्कवाय-कलहंस-उस्सुयकरे संपत्ते पाउसम्मि काले

धारिणी का दोहद-पद

३२. वह धारिणी देवी राजा श्रेणिक के पास इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर हृष्ट तुष्ट चित्त वाली, आनन्दित यावत् हर्ष से विकस्वर हृदयवाली हो गई। उस स्वप्न को सम्यक् स्वीकार किया। जहां अपना निवास था, वहां आयी। आकर, उसने स्नान, बलिकर्म और कौतुक मंगलरूप प्रायश्चित्त किया और विपुल भोगार्ह भोगों का उपभोग करती हुई विहार करने लगी।

३३. धारिणी देवी को गर्भ धारण किये जब दो महीने व्यतीत हो गए और तीसरा महीना चल रहा था, तब दोहद-काल के समय उसके मन में अकाल मेघ सम्बन्धी दोहद[61] उत्पन्न हुआ--

"धन्य हैं वे माताएं, पुण्यवती हैं वे माताएं, कृतार्थ हैं वे माताएं, कृतपुण्य हैं वे माताएं, कृतलक्षण हैं वे माताएं, वैभवशालिनी हैं वे माताएं, उन्हीं माताओं ने मनुष्य के जन्म और जीवन का फल पाया है, जब आकाश में मेघ उमड़ रहा हो, विस्तार पा रहा हो, झुका हुआ हो, और बरसने को हो।[62] जिसमें गर्जन हो रहा हो, बिजलियां कौंध रहीं हों, फुंहारें गिर रही हों और स्तनित शब्द हो रहा हो। जो बादल अग्नि में तपाये हुए रजत-पट, अंक-रत्न, शंख, चन्द्रमा, कुन्दपुष्प तथा चावलों के आटे की राशि के समान-श्वेत आभा वाले हों, चिकुर, हरिताल-खण्ड, चम्पक, सन-पुष्प, कटसरैया और सरसों के फूल तथा पद्मरज के समान पीत प्रभा वाले हों, लाक्षारस, सरस रक्तपलाश, जवाकुसुम, लाल दुपहरिया[63], जात्य-हिंगुल, आर्द्र कुंकुम, उरभ्र तथा खरगोश के रक्त और वीर-वधूटियों के समान रक्तिम प्रभा वाले हों, मयूर, नीलमणि, गुलिका, तोते और चाष के पंख, भौंरे की पांख, रांगा, नीलोत्पल-समूह, नए शिरीष कुसुम और नई दूब के समान नील प्रभावाले हों, जात्य अंजन-रत्न, कोयले के टुकड़े, अरिष्टरत्न, भ्रमरावलि, भैंसे के सींग और काजल के समान श्याम प्रभा वाले हों। जिनमें बिजलियां चमक रहीं हों, जो गाज रहे हों, जो वात-प्रेरित हो, चपलता से विपुल गगन में विहरण कर रहे हों, जो निर्मल प्रवर जलधाराओं को छोड़ते हुए प्रचण्ड पवन-वेग से धरातल को आच्छादित कर विरल तेजगति से बरस रहे हों।

मेदिनीतल वर्षा के अविरल धारा-निपात से शीतल हो गया हो, जो हरीतिमा की केंचुली पहने हुए हो, जिनमें वृक्ष-समूह पल्लवित हो, बेलों का जाल फैला (बिछा) हुआ हो, उन्नत भू-भाग सौभाग्य को प्राप्त हो रहा हो, वैभारगिरी के प्रपात, तटि और मेखलाओं से निर्झर गिर रहे हों, पहाड़ी नदियां तेज दौड़ और घुमाव के कारण फेनिल और मटमैला पानी प्रवाहित कर रही हों, जो सलई, अर्जुन, कदम्ब, कुटज, कन्दल और कुकुरमुत्तों से आकलित हों--ऐसे उपवनों में।

जहां मेघ की गर्जना से हृष्ट-तुष्ट चेष्टा वाले मोर उल्लासवश मुक्त कण्ठ से केका-रव कर रहे हों, वर्षा-ऋतु जनित उन्मत्तता के कारण तरुण सहचरियों (मयूरियों) के साथ नृत्य कर रहे हों, जहां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ण्हायाओ कयबलिकम्माओ कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ताओ किं ते? वरपायपत्तनेउर-मणिमेहल-हार-रइय-ओविय-कडग-खुड्डय-विचित्तवरवलयथंभियभुयाओ कुंडलउज्जोवियाणणाओ रयणभूसियंगीओ, नासा-नीसासवाय-वोज्झं चक्खुहरं वण्णफरिससंजुत्तं हयलालापेलवाइरेयं धवलकणय-खचियंतकम्मं आगासफलिह-सरिसप्पभं अंसुयं पवर परिहियाओ, दुगूलसुकुमालउत्तरिज्जाओ सव्वोउय-सुरभिकुसुम-पवरमल्ल-सोभियसिराओ कालागरुधूवधूवियाओ सिरी-समाणवेसाओ, सेयणय-गंधहत्थिरयणं दुरूढाओ समाणीओ, सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं चंदप्पभवइरवेरुलिय-विमलदंड-संखकुंद-दगरयअमयमहियफेणपुंजसन्निगास-चउचामरवालवीजियंगीओ सेणिएणं रण्णा सद्धिं हत्थिखंधवरगएणं पिट्ठओ-पिट्ठओ समणुगच्छमाणीओ चाउरंगिणीए सेणाए--महया हयाणीएणं गयाणीएणं रहाणीएणं पायत्ताणीएणं--सव्विड्ढीए सव्वज्जुईए सव्वबलेणं सव्वसमुदएणं सव्वादरेणं सव्वविभुईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्वपुप्फ-गंधमल्लालंकारेणं सव्वतुडिय-सद्द-सण्णिणाएणं महया इड्ढीए महया जुईए महया बलेणं महया समुदएणं महया वरतुडिय-जमगसमग-प्पवाइएणं संख-पणव-पडह-भेरि-झल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-मुरय-मुइंग-दुंदुहि-निग्घोसनाइयरवेणं रायगिहं नयरं सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु आसित्तसित्त-सुइय-सम्मज्जिओवलित्तं पंचवण्ण-सरस-सुरभि-मुक्क-पुप्फपुंजोवयारकलियं कालागरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्क-धूव-डज्झंत-सुरभि-मघमघेंत-गंधुद्धुयाभिरामं सुगंधवर (गंध?) गंधियं गंधवट्टिभूयं अवलोएमाणीओ नागरजणेणं अभिनंदिज्ज-माणीओ गुच्छ-लया-रुक्ख-गुम्म-वल्लि-गुच्छोच्छाइयं सुरम्मं वेभारगिरिकडग-पायमूलं सव्वओ समंता आहिंडमाणीओ-आहिंडमाणीओ दोहलं विणिंति।

तं जइ णं अहमवि मेहेसु अब्भुग्गएसु जाव दोहलं विणिज्जामि।।

नई सौरभ वाले (कुकुरमुत्ता), कुटज, कन्दल और कदम्ब घ्राण को तृप्ति देने वाली गंध बिखेर रहे हों--ऐसे उपवनों में।

जो कोकिल के पंचम स्वर के कूजन से संकुल हो, जहां लाल वीरवधूटियां घूम-फिर रही हों, चातक पक्षी करुण विलाप कर रहे हों, जो अवनत तृणों से मंडित हो, जहां मेंढ़क टर्रटर्र कर रहे हो। जहां एकत्रित हुए दृप्त मधुकर और मधुकरियों के समूह परस्पर आश्लिष्ट हो रहे हो, मकरन्द के रसिक मत्त षट्पदों के मधुर गुंजन से जिनके प्रदेश गुंजित हो रहे हों--ऐसे उपवनों में।

अपनी घटाओं से चन्द्र, सूर्य और ग्रहगण की प्रभा को श्यामल तथा नक्षत्र और तारकों की प्रभा को तिरोहित करने वाले इन्द्र धनुष रूप चिह्न पट्ट युक्त अम्बर वाले, उड़ती हुई बलाका-पंक्ति से सुशोभित मेघ-पटल वाले और बतख, चकवा एवं कलहंस के मनों में उत्सुकता जगाने वाले प्रावृट काल में जो स्नान, बलिकर्म और कौतुक-मंगलरूप प्रायश्चित्त कर चुकी हों। और क्या? वे अपने सुन्दर पैरों में नूपुर पहन, कटिप्रदेश पर मणिमेखला, गले में हार, भुजाओं में सुन्दर परिकर्मित कड़े, अंगुलियों में मुद्रिकाएं और विचित्र प्रवर कंगण पहने हुए हों, जिन से उनकी भुजाएं स्तम्भित-सी हो गई हों, कुण्डलों की प्रभा से जिनका मुख दमक रहा हो, जिनका शरीर रत्नों से विभूषित हो, नासिका के निःश्वास की वायु से उड़ने वाले, तथा आंखों को आकर्षित करने वाले वर्ण और स्पर्श से युक्त, घोड़े की लार से भी अधिक कोमल, किनार पर धवल-कनक की कढ़ाई वाले और आकाश-स्फटिक के समान प्रभा वाले प्रवर अंशुक पहने हुए हों। जो सुकुमाल दुपट्टे का उत्तरीय धारण किये हुए हों, जिनके सिर सब ऋतुओं में सुरभित रहने वाले (सदा बहार) फूलों की प्रवर मालाओं से शोभित हों, जिनके (केश, वस्त्र व अंगों पर) काली अगर की धूप खेई गई हों, जो लक्ष्मी के समान नेपथ्य वाली हों, जो सेचनक नामक गन्धहस्ती-रत्न पर आरूढ़ हो, कटसरैया के फूलों से बनी मालाओं से युक्त छत्रधारण किये हुए हों और चन्द्रकान्त, वज्र एवं वैडूर्य मणियों के विमल दण्ड वाले तथा शंख, कुन्द पुष्प, जलकण, अमृत और मथित फेन-पुञ्ज के समान श्वेत चार चामर रूप बालविजनियों से जिनका शरीर वीजित हो, प्रवर हस्ति-स्कन्ध पर आरूढ़ राजा श्रेणिक पीछे-पीछे चलता हुआ जिनका अनुगमन कर रहा हो, जो महान् अश्व सेना, गज सेना, रथ सेना और पैदल-सेना--इस प्रकार की चतुरंगिणी सेना, सम्पूर्ण ऋद्धि, द्युति, बल, समुदय[१४] (जनसमूह) आदर, विभूति, विभूषा, संभ्रम, सब प्रकार के पुष्प, गन्धचूर्ण, मालाएं और अलंकार, सब प्रकार के वाद्यों के सम्मिलित स्वर से उठे निनाद, महान ऋद्धि, महान द्युति, महान बल, महान समुदय (जनसमूह), एक साथ बजाए जाने वाले महान प्रवर वादित्र--शंख, प्रणव, ढ़ोल, भेरि, झालर, खरमुखी, हुडुक्क, मुरज, मृदंग और दुन्दुभि के निर्घोष से निनादित स्वरों के साथ, दोराहों, तिराहों, चौराहों, चोकों, चतुर्मुखों (चारों ओर दरवाजे वाले देवकुलों) राजमार्गों[१५] और मार्गों में सामान्य और विशेष जल का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छिड़काव कर, बुहार-झाड़कर, साफ-सुथरे किए गये तथा गोबर से लिपे गये, विकीर्ण पंचरंगे सरस सुरभिमय पुष्प-पुञ्ज के उपचार से कलित, काली अगर, प्रवर कुन्दुरू और लोबान की जलती हुई धूप की सुरभिमय महक से उठने वाली गंध से अभिराम, प्रवर सुरभि वाले गंध-चूर्णों से सुगंधित, गंधवर्तिका के समान राजगृह नगर का अवलोकन करती हुई, नागरिकों द्वारा अभिनन्दित होती हुई, गुच्छ, लता, वृक्ष, गुल्म, वल्ली--इनके गुच्छों से आच्छादित सुरम्य वैभार-गिरि की मेखला और तलहटी में चारों ओर घूमती-घूमती अपना दोहद पूरा करती हैं।

मैं भी इसी प्रकार मेघ-घटाओं के उमड़ने पर यावत् सुरम्य तलहटी में घूमती हुई अपना दोहद पूरा करूं।

धारिणीए चिंता-पदं

३४. तए णं सा धारिणी देवी तंसि दोहलंसि अविणिज्जमाणंसि असंपत्तदोहला असंपुण्णदोहला असम्माणियदोहला सुक्का भुक्खा निम्मंसा ओलुग्गा ओलुग्ग-सरीरा पमइलदुब्बला किलंता ओमंथियवयण-नयणकमला पंडुइयमुही करयल-मलिय व्व चंपगमाला नित्तेया दीणविवण्णवयणा जहोचिय-पुप्फ-गंध-मल्लालंकार-हारं अणभिलसमाणी किड्डारमणकिरियं परिहावेमाणी दीणा दुम्मणा निराणंदा भूमिगयदिट्ठीया ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया झियाइ।।

धारिणी की चिन्ता-पद

३४. धारिणी देवी का दोहद पूरा न होने के कारण, वह (दोहद) असम्प्राप्त, असम्पूर्ण और असम्मानित रहा। अतएव वह सूखी, भूखी, कृश, रुग्ण शरीर वाली, मलिन, दुर्बल और क्लान्त हो गई। उसका मुख और नयन-कमल नीचे की ओर झुक गए। मुंह पीला हो गया। वह हाथ से मली हुई चम्पक-माला की भांति निस्तेज, दीन और कान्ति शून्य मुंह वाली, यथोचित पुष्प, गन्ध-चूर्ण, माला, गहने और हार को न चाहने वाली, क्रीड़ा और रतिक्रिया को छोड़ती हुई, दीन, दुर्मन, आनन्द-रहित, भूमि की ओर झांकती हुई (भूमि पर दृष्टि गड़ाए) उपहत मन:संकल्प हो, हथेली पर मुंह टिकाए, आर्त्तध्यान में डूबी हुई, चिन्ता मग्न हो गई।

पडिचारियाणं चिंताकारणपुच्छा-पदं

३५. तए णं तीसे धारिणीए देवीए अंगपडिचारियाओ अब्भिंतरियाओ दासचेडियाओ धारिणिं देविं ओलुग्गं झियायमाणिं पासंति, पासित्ता एवं वयासी--किण्णं तुमे देवाणुप्पिए! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा जाव झियायसि?

३६. तए णं सा धारिणी देवी ताहिं अंगपडिचारियाहिं अब्भिंतरियाहिं दासचेडियाहिं य एवं वुत्ता समाणी ताओ दासचेडियाओ नो आढाइ, नो परियाणइ, अणाढायमाणी अपरियाणमाणी तुसिणीया संचिट्ठइ।।

३७. तए णं ताओ अंगपडिचारियाओ अब्भिंतरियाओ दासचेडियाओ धारिणिं देविं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी--किण्णं तुमे देवाणुप्पिए! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा जाव झियायसि?

३८. तए णं सा धारिणी देवी ताहिं अंगपडिचारियाहिं अब्भिंतरियाहिं दासचेडियाहिं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ता समाणी नो आढाइ नो परियाणइ, अणाढायमाणी अपरियाणमाणी तुसिणीया संचिट्ठइ।।

परिचारिकाओं द्वारा चिन्ता का कारण-पृच्छा-पद

३५. उस धारिणी देवी की अंगपरिचारिकाओं और अन्तरंग दास- चेटियों ने धारिणी देवी को रुग्ण और चिन्तामग्न देखा। देखकर इस प्रकार बोली--देवानुप्रिये! तुम रुग्ण, रुग्णशरीर वाली यावत् चिन्तामग्न क्यों हो रही हो?

३६. उन अंगपरिचारिकाओं और अन्तरंग दास-चेटियों द्वारा ऐसा कहने पर धारिणी देवी ने न उन्हें आदर दिया और न उनकी बात पर ध्यान दिया। उनका आदर न करती हुई और उनकी बात पर ध्यान न देती हुई वह मौन रही।

३७. अंगपरिचारिकाओं और अन्तरंग दास-चेटियों ने धारिणी देवी को दोबारा-तिबारा भी यही कहा--देवानुप्रिये! तुम रुग्ण, रुग्ण शरीर वाली यावत् चिन्तामग्न क्यों हो रही हो?

३८. उन अंगपरिचारिकाओं और अन्तरंग दास-चेटियों द्वारा ये बातें दुहराए तिहराए जाने पर भी धारिणी देवी ने न उनको आदर दिया और न उनकी बात पर ध्यान दिया। वह उनका आदर न करती हुई और उनकी बात पर ध्यान न देती हुई मौन रही।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पडिचारियाणं सेणियस्स निवेदण-पदं

३९. तए णं ताओ अंगपडिचारियाओ अब्भिंतरियाओ दासचेडियाओ धारिणीए देवीए अणाढाइज्जमाणीओ अपरिजाणिज्जमाणीओ तहेव संभंताओ समाणीओ धारिणीए देवीए अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति, वद्धावेत्ता एवं वयासी--एवं खलु सामी! किंपि अज्ज धारिणी देवी ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा जाव अट्टज्झाणोवगया झियायइ।।

परिचारिकाओं द्वारा श्रेणिक को निवेदन-पद

३९. धारिणी देवी द्वारा अनादृत और उपेक्षित होने पर उनकी वे अंग परिचारिकाएं और अन्तरंग दास-चेटियां सहसा संभ्रान्त हो उठीं। वे धारिणी देवी के आवास से बाहर निकलीं। निकलकर जहां श्रेणिक राजा था वहां आई। आकर दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिका कर 'जय-विजय' की ध्वनि से राजा श्रेणिक का वर्द्धापन किया। वर्द्धापन कर वे इस प्रकार बोली--स्वामिन्! आज धारिणी देवी रुग्ण, रुग्ण शरीर वाली यावत् आर्त्तध्यान में डूबी हुई कुछ चिन्ता मग्न हो रही है।

सेणियस्स चिंताकारणपुच्छा-पदं

४०. तए णं से सेणिए राया तासिं अंगपडिचारियाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म तहेव संभंते समाणे सिग्घं तुरियं चवलं वेइयं जेणेव धारिणी देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धारिणिं देविं ओलुग्गं ओलुग्गसरीरं जाव अट्टज्झाणोवगयं झियायमाणिं पासइ, पासित्ता एवं वयासी--किण्णं तुमं देवाणुप्पिए! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा जाव अट्टज्झाणोवगया झियायसि?

श्रेणिक द्वारा चिन्ता का कारण पृच्छा-पद

४०. उन अंग परिचारिकाओं से यह बात सुनकर, अवधारण कर राजा श्रेणिक सहसा संभ्रान्त हो उठा। वह शीघ्रता, त्वरता, चपलता और उतावलेपन से जहां धारिणीदेवी थी, वहां आया। वहां आकर धारिणी देवी को रुग्ण, रुग्ण शरीर वाली यावत् आर्त्तध्यान में डूबी हुई, चिन्तामग्न देखा। देखकर वह इस प्रकार बोला--देवानुप्रिये! तुम रुग्ण, रुग्ण शरीर वाली यावत् आर्त्तध्यान में डूबी हुई चिन्ता मग्न क्यों हो रही हो?

४१. तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणी नो आढाइ नो परियाणइ जाव तुसिणीया संचिट्ठइ।।

४१. राजा श्रेणिक द्वारा ऐसा कहने पर धारिणी देवी ने न उसको आदर दिया और न उसकी बात पर ध्यान दिया यावत् वह मौन रही।

४२. तए णं से सेणिए राया धारिणिं देविं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी--किण्णं तुमं देवाणुप्पिए! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा जाव अट्टज्झाणोवगया झियायसि?

४२. राजा श्रेणिक ने दुबारा-तिबारा भी धारिणी देवी से यही कहा--देवानुप्रिये! तुम रुग्ण, रुग्ण शरीर वाली यावत् आर्त्तध्यान में डूबी हुई चिन्तामग्न क्यों हो रही हो?

४३. तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ता समाणी नो आढाइ नो परियाणइ तुसिणीया संचिट्ठइ।।

४३. तब राजा श्रेणिक द्वारा यह बात दुहराए-तिहराए जाने पर भी धारिणी देवी ने न उसको आदर दिया और न उसकी बात पर ध्यान दिया। वह मौन रही।

४४. तए णं से सेणिए राया धारिणिं देविं सवह-सावियं करेइ, करेत्ता एवं वयासी--किण्णं देवाणुप्पिए! अहमेयस्स अट्ठस्स अणरिहे सवणयाए? तो णं तुमं ममं अयमेयारूवं मणोमाणसियं दुक्खं रहस्सीकरेसि।।

४४. राजा श्रेणिक ने धारिणी देवी को सौगंध दिलाई। सौगंध दिलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिये! क्या मैं इस बात को सुनने के योग्य नहीं हूं जो तुम मन के अन्तराल में छिपे इस विशिष्ट प्रकार के दुःख[५५] को मुझसे छिपाती हो?

धारिणीए चिंताकारणनिवेदण-पदं

४५. तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा सवह-साविया समाणी सेणियं रायं एवं वयासी--एवं खलु सामी! मम तस्स उरालस्स जाव महासुमिणस्स तिण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अयमेयारूवे

धारिणी द्वारा चिन्ता-कारण-निवेदन-पद

४५. राजा श्रेणिक द्वारा शपथ पूर्वक सौगंध दिलाने पर धारिणी देवी ने राजा श्रेणिक से इस प्रकार कहा--स्वामिन्! उस उदार यावत् हाथी का महास्वप्न देखने के पश्चात् तीसरे महीने के कुछ दिन बीत जाने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अकालमेहेसु दोहले पाउब्भूए--धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ कयत्थाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव वेभारगिरि-कडग-पायमूलं सव्वओ समंता आहिंडमाणीओ आहिंडमाणीओ दोहलं विणिंति। तं जइ णं अहमवि मेहेसु अब्भुग्गएसु जाव दोहलं विणेज्जामि।

तए णं अहं सामी! अयमेयारूवंसि अकालदोहलंसि अविणिज्जमाणंसि ओलुग्गा जाव अट्टज्झाणोवगया झियामि।।

पर मेरे मन में अकाल-मेघ का दोहद उत्पन्न हुआ--"धन्य हैं वे माताएं, कृतार्थ हैं वे माताएं यावत् जो वैभारगिरि की मेखला और तलहटी में चारों ओर घूमती-घूमती अपना दोहद पूरा करती हैं। मैं भी इसी तरह मेघ-घटाओं के उमड़ने पर यावत् सुरम्य तलहटी में घूमती हुई, अपना दोहद पूरा करूं।"

स्वामिन्! मैं अपने इस प्रकार के अकाल दोहद की सम्पूर्ति न होने के कारण, रुग्ण, रुग्ण शरीर वाली यावत् आर्त्तध्यान में डूबी हुई चिन्ता मग्न हो रही हूं।

सेणियस्स आसासण-पदं

४६. तए णं से सेणिए राया धारिणीए देवीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म धारिणिं देविं एवं वयासी--मा णं तुमं देवाणुप्पिए! ओलुग्गा जाव अट्टज्झाणोवगया झियाहि। अहं णं तह करिस्सामि जहा णं तुब्भं अयमेयारूवस्स अकाल-दोहलस्स मणोरहसंपत्ती भविस्सइ त्ति कट्टु धारिणिं देविं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं वग्गूहिं समासासेइ, समासासेत्ता जेणेव बाहिरया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे धारिणीए देवीए एयं अकालदोहलं बहूहिं आएहि य उवाएहि य, उप्पत्तियाहि य वेणइयाहि य कम्मियाहि य पारिणामियाहि य--चउव्विहाहिं बुद्धीहिं अणुचिंतेमाणे-अणुचिंतेमाणे तस्स दोहलस्स आयं वा उवायं वा ठिइं वा उत्पत्तिं वा अविंदमाणे ओहयमणसंकप्पे जाव झियायइ।।

श्रेणिक द्वारा आश्वासन-पद

४६. धारिणी देवी से यह बात सुनकर, अवधारण कर राजा श्रेणिक ने धारिणी देवी को इस प्रकार कहा--देवानुप्रिये! तुम रुग्ण, रुग्ण शरीर वाली यावत् आर्त्तध्यान में डूबी हुई चिन्ता मग्न मत बनो। मैं वैसा प्रयत्न करूंगा, जिससे तुम्हारे इस अकाल दोहद का मनोरथ पूरा होगा। इस प्रकार उसने इष्ट, कमनीय, प्रिय, मनोज्ञ और मनोगत वाणी से धारिणी देवी को सम्यक प्रकार से आश्वस्त किया। आश्वस्त कर जहां बाहरी सभा-मण्डप था, वहां आया। आकर प्रवर सिंहासन पर पूर्वाभिमुख हो, बैठ गया।

उसने धारिणी देवी के इस अकाल दोहद के सम्बन्ध में किये जाने वाले बहुत सारे आय और उपायों के विषय में औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी और पारिणामिकी--इस चतुर्विध बुद्धि के द्वारा बार-बार अनुचिन्तन किया। जब राजा श्रेणिक को उस दोहद की पूर्ति के लिए किसी आय, उपाय, व्यवस्था-क्रम या उसके मूल स्रोत का पता नहीं चला, तब वह उपहत मनः संकल्प वाला यावत् चिन्तित हो गया।

अभयकुमारस्स सेणियं पइ चिंताकारणपुच्छा-पदं

४७. तयाणंतरं च णं अभए कुमारे ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते सव्वालंकारविभूसिए पायवंदए पहारेत्थ गमणाए।।

कुमार अभय द्वारा श्रेणिक की चिन्ता का कारण पृच्छा-पद

४७. तदनन्तर कुमार अभय ने स्नान, बलिकर्म और कौतुक-मंगल रूप प्रायश्चित्त कर, सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित हो, पाद वन्दन के लिए (पिता के कक्ष में) जाने का संकल्प किया।

४८. तए णं से अभए कुमारे जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सेणियं रायं ओहयमणसंकप्पं जाव झियायमाणं पासइ, पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--अण्णया ममं सेणिए राया एज्जमाणं पासइ, पासित्ता आढाइ परियाणइ सक्कारेइ सम्माणेइ (इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं ओरालाहिं वग्गूहिं?) आलवइ संलवइ अद्धासणेणं उवनिमंतेइ मत्थयंसि अग्घाइ। इयाणिं ममं सेणिए राया नो आढाइ नो परियाणइ नो सक्कारेइ नो सम्माणेइ नो इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं ओरालाहिं वग्गूहिं आलवइ संलवइ नो अद्धासणेणं उवनिमंतेइ नो मत्थयंसि अग्घाइ,

४८. वह कुमार अभय जहां राजा श्रेणिक था, वहां आया। आकर उसने राजा श्रेणिक को उपहत मनः संकल्प वाला यावत् चिन्तित देखा। यह देख, उसके मन में इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ "जब कभी राजा श्रेणिक मुझे आते हुए देखते हैं, देखते ही मुझे आदर देते हैं, मेरी ओर ध्यान देते हैं। मुझे सत्कृत और सम्मानित करते हैं। (इष्ट, कमनीय, प्रिय, मनोज्ञ, मनोगत और उदार वाणी से) आलाप-संलाप करते हैं। अपने आधे आसन से मुझे निमंत्रित करते हैं। मेरा मस्तक सूंघते हैं। पर आज राजा श्रेणिक न मुझे आदर देते हैं, न मेरी ओर ध्यान देते हैं, न मुझे सत्कृत और सम्मानित करते हैं, न इष्ट, कमनीय, प्रिय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किं पि ओहयमणसंकप्पे जाव झियायइ। तं भवियव्वं णं एत्थ कारणेणं। तं सेयं खलु ममं सेणियं रायं एयमट्ठं पुच्छित्तए--एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता एवं वयासी--तुब्भे णं ताओ! अण्णया ममं एज्जमाणं पासित्ता आढाह परियाणह सक्कारेह सम्माणेह आलवह संलवह अद्धासणेणं उवणिमंतेह मत्थयंसि अग्घायह। इयाणिं ताओ! तुब्भे ममं नो आढाह जाव नो मत्थयंसि अग्घायह किं पि ओहयमणसंकप्पा जाव झियायह। तं भवियव्वं णं ताओ! एत्थ कारणेणं। तओ तुब्भे मम ताओ! एयं कारणं अगूहमाणा असंकमाणा अनिण्हवमाणा अपच्छाएमाणा जहाभूतमवितहमसंदिद्धं एयमट्ठं आइक्खह। तए णं हं तस्स कारणस्स अंतगमणं गमिस्सामि।।

मनोज्ञ, मनोगत और उदार वाणी से आलाप-संलाप करते हैं, न अपने आधे आसन से निमंत्रित करते हैं, और न मेरा मस्तक सूंघते हैं। ये आज कुछ उपहत मन: संकल्प वाले यावत् चिन्तित हो रहे हैं। यहां कोई न कोई कारण होना चाहिये। अत: मेरे लिए श्रेय है, मैं राजा श्रेणिक से यह बात पूछूं--उसने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर जहां राजा श्रेणिक था वहां आया। आकर दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर 'जय-विजय' की ध्वनि से राजा श्रेणिक का वर्द्धापन किया। वर्द्धापन कर उसने इस प्रकार कहा--"तात! इससे पूर्व तुम मुझे आते हुए देखते तो मेरा आदर करते, मेरी ओर ध्यान देते, मुझे सत्कृत करते, सम्मानित करते, आलाप-संलाप करते, अपने आधे आसन से निमन्त्रित करते और मेरा मस्तक सूंघते। आज तुम न मेरा आदर करते हो यावत् न मस्तक सूंघते हो। तुम कुछ उपहत मन: संकल्प वाले यावत् चिन्तित हो रहे हो। अत: तात! यहां कोई न कोई कारण होना चाहिए। इसलिए तात! उस कारण को बिना छिपाए, बिना संकोच किए, बिना अपलाप किए, बिना आवरण डाले, यथाभूत, यथार्थ और असंदिग्ध बात मुझे कहो। तब मैं उस कारण के समाधान तक पहुंच पाऊंगा।

सेणियस्स चिंताकारणनिवेदण-पदं

४९. तए णं से सेणिए राया अभएणं कुमारेणं एवं वुत्ते समाणे अभयं कुमारं एवं वयासी--एवं खलु पुत्ता! तव चुल्लमाउयाए धारिणीदेवीए तस्स गब्भस्स दोसु मासेसु अइक्कंतेसु तइयमासे वट्टमाणे दोहलकालसमयंसि अयमेयारूवे दोहले पाउब्भवित्था--धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ तहेव निरवसेसं भाणियव्वं जाव वेभारगिरिकडग-पायमूलं सव्वओ समंता आहिंडमाणीओ-आहिंडमाणीओ दोहलं विणिंति। तं जइ णं अहमवि मेहेसु अब्भुग्गएसु जाव दोहलं विणिज्जामि।

तए णं अहं पुत्ता धारिणीए देवीए तस्स अकालदोहलस्स बहूहिं आएहिं य उवाएहिं य जाव उप्पत्तिं अविंदमाणे ओहयमणसंकप्पे जाव झियामि, तुमं आगयं पि न याणामि। तं एतेणं कारणेणं अहं पुत्ता! ओहयमणसंकप्पे जाव झियामि।

श्रेणिक द्वारा चिन्ता-कारण निवेदन पद

४९. कुमार अभय द्वारा ऐसा कहने पर राजा श्रेणिक ने उससे इस प्रकार कहा--पुत्र! तुम्हारी छोटी मां धारिणी देवी को गर्भाधान किये जब दो माह बीत गये और तीसरा महीना चल रहा था, तब उसे दोहद काल के समय इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ--"धन्य है वे माताएं यावत् जो वैभारगिरि की मेखला और तलहटी में चारों ओर घूमती-घूमती अपना दोहद पूरा करती हैं। मैं भी इसी तरह मेघ-घटाओं के उमड़ने पर यावत् अपना दोहद पूरा करूं।"

पुत्र! धारिणी देवी के इस अकाल-दोहद के सम्बन्ध में बहुत सारे आय और उपायों के द्वारा अनुचिन्तन करने यावत् उसके मूलस्रोत का पता न चलने पर उपहत मन: संकल्प वाला यावत् चिन्तित हो रहा हूं। तुम्हारे आने का मुझे पता ही नहीं चला। पुत्र! उस दोहद के कारण मैं उपहत मन: संकल्प वाला यावत् चिन्तित हो रहा हूं।

अभयस्स आसासण-पदं

५०. तए णं से अभए कुमारे सेणियस्स रण्णो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए जाव हरिसवस-विसप्पमाणहियए सेणियं रायं एवं वयासी--मा णं तुब्भे ताओ! ओहयमणसंकप्पा जाव झियायह। अहं णं तहा करिस्सामि जहा णं मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवस्स अकालदोहलस्स मणोरहसंपत्ती भविस्सइ त्ति कट्टु सेणियं रायं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं वग्गूहिं समासासेइ।।

अभय द्वारा आश्वासन पद

५०. राजा श्रेणिक से यह बात सुनकर, अवधारण कर हृष्ट-तुष्ट चित्त, आनन्दित यावत् हर्ष से विकस्वर हृदय वाले कुमार अभय ने राजा श्रेणिक से इस प्रकार कहा--तात! तुम उपहत मन: संकल्प वाले यावत् चिन्तित मत बनो। मैं वैसा प्रयत्न करूंगा, जिससे मेरी छोटी मां धारिणी देवी के इस प्रकार के अकाल दोहद का मनोरथ पूरा होगा--इस प्रकार उसने राजा श्रेणिक को इष्ट, कमनीय, प्रिय, मनोज्ञ और मनोगत वाणी से आश्वस्त किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५१. तए णं से सेणिए राया अभएणं कुमारेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए जाव हरिसवस-विसप्पमाणहियए अभयं कुमारं सक्कारेइ समाणेइ पडिविसज्जेइ।।

५१. कुमार अभय द्वारा ऐसा कहने पर हृष्ट तुष्ट चित्त, आनन्दित यावत् हर्ष से विकस्वर हृदय वाले राजा श्रेणिक ने कुमार अभय का सत्कार सम्मान कर प्रतिविसर्जित किया।

अभयस्स देवाराहण-पदं

अभय द्वारा देवाराधना-पद

५२. तए णं से अभए कुमारे सक्कारिए सम्माणिए पडिविसज्जिए समाणे सेणियस्स रण्णो अंतियाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणामेव सए भवणे, तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणे निसण्णे।।

५२. राजा श्रेणिक द्वारा सत्कृत, सम्मानित और विसर्जित किया हुआ कुमार अभय राजा श्रेणिक के आवास से बाहर निकला। बाहर निकलकर जहां अपना भवन था, वहां आया। आकर सिंहासन पर बैठा।

५३. तए णं तस्स अभयस्स कुमारस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--नो खलु सक्का माणुस्सएणं उवाएणं मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अकालदोहल-मणोरहसंपत्तिं करित्तए, नन्नत्थ दिव्वेणं उवाएणं। अत्थि णं मज्झ सोहम्मकप्पवासी पुव्वसंगइए देवे महिड्ढीए महज्जुइए महापरक्कमे महाजसे महब्बले महाणुभावे महासोक्खे। तं सेयं खलु ममं पोसहसालाए पोसहियस्स बंभचारिस्स उम्मुक्कमणिसुवण्णस्स ववगयमालावण्णगविलेवणस्स निक्खित्तसत्थमुसलस्स एगस्स अबीयस्स दब्भसंथारोवगयस्स अट्ठमभत्तं पगिण्हित्ता पुव्वसंगइयं देवं मणसीकरेमाणस्स विहरित्तए।

तए णं पुव्वसंगइए देवे मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवं अकालमेहेसु दोहलं विणेहिति--एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता जेणेव पोसहसाला तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं पमज्जइ, पमज्जित्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता दब्भसंथारगं दुरुहइ, दुरुहित्ता अट्ठमभत्तं पगिण्हइ, पगिण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभचारी जाव पुव्वसंगइयं देवं मणसीकरेमाणे-मणसीकरेमाणे चिट्ठइ।।

५३. कुमार अभय के मन में इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--मानवीय उपायों से मेरी छोटी मां धारिणी देवी के अकाल दोहद का मनोरथ पूरा नहीं किया जा सकता। यह केवल दिव्य उपाय से ही पूरा किया जा सकता है।

सौधर्म कल्पवासी एक देव मेरा पूर्वसांगतिक (पूर्व जन्म का मित्र) है। वह महर्द्धिक, महाद्युतिक, महापराक्रमी, महायशस्वी, महाबली, महाप्रभावी और महासुखसम्पन्न है।[६७] अत: मेरे लिए यह उचित है कि मैं ब्रह्मचर्य को स्वीकार कर मणि-सुवर्ण को त्याग, माला, सुगन्धित चूर्ण और विलेपन को त्याग, शस्त्र-मूसल को छोड़, अकेला, अद्वितीय[६८], डाभ के बिछौने पर बैठ, अष्टम भक्त (तीन दिन का उपवास) स्वीकार कर पौषधशाला[६९] में पौषध निरत[७०] हो अपने पूर्वसांगतिक देव के साथ मानसिक तादात्म्य स्थापित करता हुआ[७१] विहरण करूं।

वह मेरा पूर्वसांगतिक देव मेरी छोटी मां धारिणी देवी के इस अकाल मेघ के दोहद की सम्पूर्ति करेगा--अभय कुमार ने इस प्रकार संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर जहां पौषधशाला थी, वहां आया। आकर पौषधशाला का प्रमार्जन किया। प्रमार्जन कर उच्चार-प्रस्रवण भूमि का प्रतिलेखन किया। प्रतिलेखन कर डाभ के बिछौने पर बैठा। बैठकर अष्टमभक्त स्वीकार किया। अष्टमभक्त स्वीकार कर पौषधशाला में पौषध व्रत में निरत ब्रह्मचारी यावत् अपने पूर्वसांगतिक देव के साथ सतत मानसिक तादात्म्य स्थापित करता हुआ विहरण करने लगा।

देवागमण-पदं

देव का आगमन पद

५४. तए णं तस्स अभयकुमारस्स अट्ठमभत्ते परिणममाणे पुव्वसंगइयस्स देवस्स आसणं चलइ।।

५४. कुमार अभय के अष्टमभक्त तप के परिणत होने पर उसके पूर्वसांगतिक देव का आसन प्रकम्पित हुआ।

५५. तए णं से पुव्वसंगइए सोहम्मकप्पवासी देवे आसणं चलियं पासइ, पासित्ता ओहिं पउंजइ।।

५५. उस पूर्वसांगतिक सौधर्मकल्पवासी देव ने अपने आसन को प्रकम्पित होते देखा। देखकर अपने अवधिज्ञान का प्रयोग किया।

५६. तए णं तस्स पुव्वसंगइयस्स देवस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए

५६. उस पूर्वसांगतिक देव के मन में इस प्रकार का आन्तरिक,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--एवं खलु मम पुव्वसंगइए जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे दाहिणड्ढभरहे रायगिहे नयरे पोसहसालाए पोसहिए अभए नामं कुमारे अट्ठमभत्तं पगिण्हित्ता णं ममं मणसीकरेमाणे-मणसीकरेमाणे चिट्ठइ। तं सेयं खलु मम अभयस्स कुमारस्स अंतिए पाउब्भवित्तए--एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता वेउव्विय-समुग्घाएणं समोहण्णइ, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरइ, तं जहा--रयणाणं वइराणं वेरुलियाणं लोहियक्खाणं मसारगल्लाणं हंसगब्भाणं पुलगाणं सोगंधियाणं जोईरसाणं अंकाणं अंजणाणं रययाणं जायरूवाणं अंजणपुलगाणं फलिहाणं रिट्ठाणं अहाबायरे पोग्गले परिसाडेइ, परिसाडेत्ता अहासुहुमे पोग्गले परिगिण्हइ, परिगिण्हित्ता अभयकुमारमणुकंपमाणे देवे पुव्वभवजणिय-नेह-पीइ-बहुमाणजायसोगे तओ विमाणवरपुंडरीयाओ रयणुत्तमाओ धरणियल-गमण-तुरिय-संजणिय-गमणपयारो वाघुण्णिय-विमल-कणग-पयरग-वडिंसगमउडुक्क-डाडोवदंसणिज्जो अणेगमणि-कणगरयणपहकरपरिमंडिय-भत्तिचित्त-विणिउत्तग-मणुगुणजणियहरिसो पिंखोलमाणवरललियकुंडलुज्जलिय-वयणगुणजणिय-सोम्मरूवो उदिओ विव कोमुदीनिसाए सणिच्छरंगार-कुज्जलियमज्झभागत्थो नयाणाणंदो सरयचंदो दिव्वोसहिपज्जलुज्जलियदंसणाभिरामो उदुलच्छिसमत्तजायसोहो पइट्ठगंधुद्धुयाभिरामो मेरू विव नगवरो विगुव्वियविचित्तवेसो दीवसमुद्दाणं असंखपरिमाणनामधेज्जाणं मज्झकारेणं वीइवयमाणो उज्जोयंतो पभाए विमलाए जीवलोयं रायगिहं पुरवरं च अभयस्स पासं ओवयइ दिव्व-रूवधारी।।

सुचिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--जम्बूद्वीप नाम का द्वीप, भारत का दक्षिणार्ध भरत, राजगृह नाम का नगर वहां मेरा पूर्वसांगतिक कुमार अभय पौषधशाला में पौषधिक हो, अष्टमभक्त स्वीकार कर मेरी सतत मानसिक स्मृति कर रहा है। अत: मेरे लिए श्रेय है, मैं कुमार अभय के सामने प्रकट होऊं--उसने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर ईशान-कोण की ओर आया। वहां आकर वैक्रिय-समुद्घात से[७२] समवहत हुआ। समवहत होकर उसने संख्येय योजन के एक दण्ड का (जीव-प्रदेश और कर्म पुद्गल समूह) निर्माण किया। (उस निर्माण के लिए) रत्न, वज्र, वैडूर्य, लोहिताक्ष, मसारगल्ल, हंसगर्भ, पुलक, सौगन्धिक, ज्योतीरस, अंक, अंजन, रजत, स्वर्ण, अंजन पुलक, स्फटिक और रिष्ट रत्नों के स्थूल-स्थूल पुद्गलों का परिशाटन किया। परिशाटन कर सूक्ष्म-सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण किया। ग्रहण कर कुमार अभय के प्रति अनुकम्पा करते हुए, पूर्वजन्म जनित स्नेह, प्रीति और बहुमान के कारण शोकग्रस्त हो, देव ने विमानों में प्रवर पुण्डरीक रत्नोत्तम नामक विमान से धरातल पर जाने की त्वरा से चलना प्रारम्भ किया। वह विशुद्ध स्वर्ण के प्रतरकों से निर्मित, हिलते हुए अवतंसक और मुकुट के उत्कट आटोप से दर्शनीय हो रहा था। नाना मणि, कनक और रत्न निकर से परिमण्डित अनेक प्रकार की भांतों से चित्रित, सुनियुक्त और प्रमाणोपेत करधनी से हर्षित हो रहा था। झूलते हुए प्रवर ललित कुण्डलों की प्रभा से देदीप्यमान उसका मुख और अधिक सौम्य लग रहा था, जिससे वह कार्तिक पूर्णिमा की रात में चमकते हुए शनि और मंगल नक्षत्र के मध्य में उदित नयनानन्द शरच्चन्द्र और दिव्य औषधियों की प्रभा से प्रभासित दर्शनाभिराम, सब ऋतुओं में होने वाली कुसुम-सम्पदा से शोभायमान और उनसे उठने वाली प्रकृष्ट गन्ध से अभिराम पर्वतश्रेष्ठ सुमेरु जैसा लग रहा था।

विचित्र वेष बनाये हुए, असंख्य परिमाण और नाम वाले द्वीप-समुद्रों के बीचों बीच से गुजरता हुआ, अपनी विमल-प्रभा से समस्त जीवलोक और प्रवर राजगृह नगर को प्रभासित करता हुआ वह दिव्य रूपधारी देव कुमार अभय के पास नीचे उतरा।

५७. तए णं से देवे अंतलिक्खपडिवण्णे दसद्धवण्णाइं सखिंखिणियाइं पवरवत्थाइं परिहिए अभयं कुमारं एवं वयासी--अहं णं देवाणुप्पिया! पुव्वसंगइए सोहम्मकप्पवासी देवे महिड्ढीए जं णं तुमं पोसहसालाए अट्ठमभत्तं पगिण्हित्ता णं ममं मणसीकरेमाणे-मणसीकरेमाणे चिट्ठसि, तं एस णं देवाणुप्पिया! अहं इहं हव्वमागए। संदिसाहि णं देवाणुप्पिया! किं करेमि? किं दलयामि? कि पयच्छामि? किं वा ते हियइच्छियं?

५७. अन्तरिक्ष में अवस्थित घुंघरु लगे पंचरंगे प्रवर वस्त्र पहने वह देव कुमार अभय से इस प्रकार बोला--देवानुप्रिय! तुम पौषधशाला में अष्टमभक्त तप स्वीकार कर जिसकी सतत मानसिक स्मृति किये बैठे हो, वह मैं हूं तुम्हारा पूर्वसांगतिक सौधर्मकल्पवासी महर्द्धिक देव। देवानुप्रिय! मैं बहुत शीघ्र यहां आया हूं। कहो देवानुप्रिय! मैं क्या करूं? क्या दूं? क्या उपहृत करूं?[७३] तुम अन्तर्मन में क्या चाहते हो?

५८. तए णं से अभए कुमारे तं पुव्वसंगइयं देवं अंतलिक्खपडिवण्णं पासित्ता हट्ठतुट्ठे पोसहं पारेइ, पारेत्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवे अकालदोहले पाउब्भूए--धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ तहेव पुव्वगमेणं जाव

५८. अन्तरिक्ष में अवस्थित अपने पूर्वसांगतिक देव को देख, कुमार अभय ने हृष्ट तुष्ट हो पौषधव्रत सम्पन्न किया। दोनों हाथों से निष्पन्न संपुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर वह इस प्रकार बोला--'देवानुप्रिय! मेरी छोटी मां धारिणी देवी को इस प्रकार का अकाल दोहद उत्पन्न हुआ है--धन्य हैं वे माताएं यावत्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेभारगिरिकडग-पायमूलं सव्वओ समंता आहिंडमाणीओ-आहिंडमाणीओ दोहलं विणिंति। तं जइ णं अहमवि मेहेसु अब्भुग्गएसु जाव दोहलं विणेज्जामि--तं णं तुमं देवाणुप्पिया! मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवं अकालदोहलं विणेहि।।

जो सुरम्य वैभारगिरि की मेखला और तलहटी में चारों ओर घूमती-घूमती अपना दोहद पूरा करती हैं। मैं भी इसी तरह मेघ-घटाओं के उमड़ने पर यावत् सुरम्य तलहटी में घूमती हुई अपना दोहद पूरा करूं।"

अतः देवानुप्रिय ! तुम मेरी छोटी मां धारिणी देवी के इस प्रकार के अकाल-दोहद को पूरा करो।

देवस्स अकालमेहविउव्वण-पदं

५९. तए णं से देवे अभएणं कुमारेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे अभयं कुमारं एवं वयासी--तुमं णं देवाणुप्पिया! सुनिव्वुय-वीसत्थे अच्छाहि। अहं णं तव चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवं अकालदोहलं विणेमि त्ति कट्टु अभयस्स कुमारस्स अंतियाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता उत्तरपुरत्थिमे णं वेभारपव्वए वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरइ जाव दोच्चंपि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ समोहणित्ता खिप्पामेव सगज्जियं सविज्जुयं सफुसियं पंचवण्णमेह-निणाओवसोहियं दिव्वं पाउससिरिं विउव्वइ, विउव्वित्ता जेणामेव अभए कुमारे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अभयं कुमारं एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! मए तव पियट्ठयाए सगज्जिया सफुसिया सविज्जुया दिव्वा पाउससिरी विउव्विया, तं विणेऊ णं देवाणुप्पिया! तव चुल्लमाउया धारिणी देवी अयमेयारूवं अकालदोहलं।।

देव का अकालमेघ-विकुर्वणा-पद

५९. कुमार अभय के द्वारा ऐसा कहने पर हृष्ट तुष्ट हो उस देव ने कुमार अभय से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय ! तुम बिल्कुल स्वस्थ और विश्वस्त[७४] हो। मैं तुम्हारी छोटी मां धारिणी के इस प्रकार के अकाल-दोहद को पूरा करूंगा--ऐसा कहकर वह कुमार अभय के पास से बाहर निकला। बाहर निकलकर वह ईशानकोण में स्थित वैभारपर्वत पर वैक्रिय सुमुद्घात से समवहत हुआ। समवहत होकर संख्यात योजन का एक दण्ड निर्मित किया यावत् दूसरी बार वैक्रिय समुद्घात से समवहत हुआ। समवहत होकर गर्जन, बिजलियां और फुहारों वाले पंचरंगे बादलों के निनाद से सुशोभित दिव्य पावस की श्री की विक्रिया की। विक्रिया कर वह जहां कुमार अभय था, वहां आया। वहां आकर कुमार अभय से इस प्रकार बोला--देवानुप्रिय ! मैंने तुम्हारी प्रियता हेतु गर्जन, बिजली और फुहारों से युक्त दिव्य पावस की श्री की विक्रिया की है। अतः देवानुप्रिय! तुम्हारी छोटी मां धारिणी देवी अपने इस प्रकार के अकाल-दोहद को पूरा करे।"

धारिणीए दोहद-पूरण-पदं

६०. तए णं से अभए कुमारे तस्स पुव्वसंगइयस्स सोहम्मकप्पवासिस्स देवस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे सयाओ भवणाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी--एवं खलु ताओ! मम पुव्वसंगइएणं सोहम्म-कप्पवासिणा देवेणं खिप्पामेव सगज्जिया सविज्जुया (सफुसिया?) पंचवण्ण-मेहनिणाओवसोभिया दिव्वा पाउससिरी विउव्विया। तं विणेऊ णं मम चुल्लमाउया धारिणी देवी अकालदोहलं।।

६०. उस पूर्वसांगतिक सौधर्मकल्पवासी देव के पास यह अर्थ सुनकर, अवधारण कर हृष्ट तुष्ट हुआ कुमार अभय अपने भवन से बाहर निकला। निकलकर जहां राजा श्रेणिक था, वहां आया। वहां आकर दोनों हाथों से निष्पन्न संपुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिका कर इस प्रकार कहा--तात! सौधर्मकल्पवासी मेरे पूर्वसांगतिक देव ने इस समय गर्जन-बिजली (फुहारों) से युक्त पंचरंगे बादलों के निनाद से शोभित दिव्य पावस की श्री की विक्रिया की है। अतः मेरी छोटी मां धारिणी देवी अपने अकाल-दोहद को पूरा करे।"

६१. तए णं से सेणिए राया अभयस्स कुमारस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--खिप्पामेव भो! देवाणुप्पिया! रायगिहं नगरं सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु आसित्तसित्त-सुइय-संमज्जिओवलित्तं जाव सुगंधवर (गंध?) गंधियं गंधवट्टिभूयं करेह य कारवेह य, एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।।

६१. कुमार अभय से यह अर्थ सुनकर, अवधारण कर हृष्ट तुष्ट हुए राजा श्रेणिक ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! शीघ्र ही राजगृह नगर को, उसके दोराहों, तिराहों, चौराहों, चौकों, चतुर्मुखों (चारों ओर दरवाजे वाले देवकुलों) राजमार्गों और मार्गों में सामान्य तथा विशेष जल का छिड़काव कर बुहार-झाड़ कर साफ सुथरे किए गए तथा गोबर से लीपे गए यावत् प्रवर सुरभिवाले गन्धचूर्णों से सुगन्धित गन्धवर्त्तिका के समान सुगन्धित करो, कराओ और इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६२. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसप्पमाणहियया तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।।

६२. राजा श्रेणिक द्वारा ऐसा कहने पर हृष्ट तुष्ट चित्तवाले, आनन्दित, प्रीतिपूर्ण मन वाले, परमसौमनस्य युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाले कौटुम्बिक पुरुषों ने उस आज्ञा को प्रत्यर्पित किया।

६३. तए णं से सेणिए राया दोच्चंपि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! हय-गय-रह-पवरजोह-कलियं चाउरंगिणिं सेणं सन्नाहेह, सेयणयं च गंधहत्थिं परिकप्पेह।

तेवि तहेव करेंति जाव पच्चप्पिणंति ।।

६३. राजा श्रेणिक ने दूसरी बार भी कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो ! शीघ्र ही अश्व, गज, रथ और प्रवर योद्धाओं से कलित चतुरंगिणी सेना को सन्नद्ध करो और 'सेचनक' गन्धहस्ती को सजाओ।

उन्होंने भी वैसा ही किया यावत् उस आज्ञा को प्रत्यर्पित किया।

६४. तए णं से सेणिए राया जेणेव धारिणी देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धारिणिं देविं एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिए! सगज्जिया सविज्जुया सफुसिया दिव्वा पाउससिरी पाउब्भूया। तं णं तुमं देवाणुप्पिए! एयं अकालदोहलं विणेहि ।।

६४. वह राजा श्रेणिक जहां धारिणी देवी थी, वहां आया। वहां आकर धारिणी देवी से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिये! गर्जन, बिजली और फुहारों से युक्त दिव्य पावस की श्री प्रादुर्भूत हो गई है। अतः देवानुप्रिये! अपने इस अकाल दोहद को पूरा करो।

६५. तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणी हट्ठतुट्ठा जेणामेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता अंतो अंतेउरंसि ण्हाया कयबलिकम्मा कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ता किं ते वरपाय-पत्तनेउर-मणिमेहल-हार-रइय-ओविय-कडग-खुड्डय-विचित्त-वरवलयथंभियभुया जाव आगास-फालिय-समप्पभं अंसुयं नियत्था, सेयणयं गंधहत्थिं दुरूढा समाणी अमय-महिय-फेणपुंज-सन्निगासाहिं सेयचामरवाल-वीयणीहिं वीइज्जमाणी-वीइज्जमाणी संपत्थिया ।।

६५. राजा श्रेणिक द्वारा ऐसा कहने पर हृष्ट तुष्ट हुई धारिणी देवी जहां स्नान घर था, वहां आयी। वहां आकर स्नान घर में प्रवेश किया। प्रवेश कर अन्तःपुर के अन्तवर्ती स्नान घर में नहाकर, बलिकर्म और कौतुक-मंगलरूप प्रायश्चित्त किया। अधिक क्या? उसने पैरों में प्रवर नूपुर पहने, कटि प्रदेश में मणि मेखला, गले में हार, भुजाओं में सुन्दर परिकर्मित कड़े और अंगुलियों में मुद्रिकाएं पहनी। विचित्र प्रकार के प्रवर कंगनों से उसकी भुजाएं स्तम्भित-सी हो रही थी यावत् उसने आकाश-स्फटिक के समान प्रभा वाले प्रवर अंशुक को पहना। सेचनक गन्धहस्ती पर आरूढ हो, अमृत और मथित फेनपुञ्ज के समान श्वेत चामरों की वाल-वीजनियों से वीजित होती हुई उसने वहां से प्रस्थान किया।

६६. तए णं से सेणिए राया ण्हाए कयबलिकम्मे कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ते अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे हत्थिखंधवरगए सकोरेंट-मल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं चउचामराहिं वीइज्जमाणे धारिणिं देविं पिट्ठओ अणुगच्छइ ।।

६६. राजा श्रेणिक ने स्नान, बलिकर्म और कौतुक-मंगल रूप प्रायश्चित्त किया। अल्पभार और बहुमूल्य आभरणों से अपने शरीर को अलंकृत किया। प्रवर हस्ति स्कन्ध पर आरूढ़ हो, कटसरैया के फूलों से बनी मालाओं से युक्त छत्र धारण किया। चार चामरों से वीजित होता हुआ धारिणी देवी के पीछे चला।

६७. तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा हत्थिखंधवरगएणं पिट्ठओ-पिट्ठओ समणुगम्ममाण-मग्गा हय-गय-रह-पवरजोह-कलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडा महया भड-चडगर-वंदपरिक्खित्ता सव्विड्ढीए सव्वज्जुईए जाव दुंदुभिनिग्घोस-नाइयरवेणं रायगिहे नयरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु नागरजणेणं अभिनंदिज्जमाणी-अभिनंदिज्जमाणी जेणामेव वेभारगिरि पव्वए तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वेभारगिरि-कडग-तडपायमूले-आरामेसु य उज्जाणेसु य काणणेसु य वणेसु य वणसंडेसु य रुक्खेसु य गुच्छेसु य गुम्मेसु

६७. प्रवर हस्तिस्कन्ध पर आरूढ़ राजा श्रेणिक पीछे-पीछे चलता हुआ, जिसके मार्ग का अनुगमन कर रहा था, वह धारिणी देवी अश्व, गज, रथ और प्रवर पैदल योद्धाओं से कलित चतुरंगिणी सेना से संपरिवृत हो, महान सुभटों की विभिन्न टुकड़ियों से घिरी हुई, सम्पूर्ण ऋद्धि, सम्पूर्ण द्युति यावत् दुन्दुभि के निर्घोष से निनादित स्वरों के साथ राजगृह नगर के दोराहों, तिराहों, चौराहों, चौकों, चतुर्मुखों (चारों ओर दरवाजे वाले देवकुलों) राजमार्गों और मार्गों में नागरिकों द्वारा पुनः पुनः अभिनन्दित होती हुई, जहां वैभारगिरि पर्वत था, वहां आई। वहां आकर वैभारगिरि की मेखला और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

य लयासु य वल्लीसु य कंदरासु य दरीसु य चुंढीसु य जूहेसु य कच्छेसु य नदीसु य संगमेसु य विवरएसु य अच्छमाणी य पेच्छमाणी य मज्जमाणी य पत्ताणि य पुप्फाणि फलाणि य पल्लवाणि य गिण्हमाणी य माणेमाणी य अग्घायमाणी य परिभुंजेमाणी य परिभाएमाणी य वेभारगिरिपायमूले दोहलं विणेमाणी सव्वओ समंता आहिंडइ।।

तलहटी में आरामों, उद्यानों, काननों, वनों, वनषण्डों[75], वृक्षों, गुच्छों, गुल्मों, लताओं, वल्लियों, कन्दराओं, दरियों, छोटे-छोटे जलस्रोतों, द्रहो, सजलप्रदेशों, नदियों, नदी-संगमों और विवरों में बैठती हुई, उन्हें देखती हुई, उनमें निमज्जन करती हुई, पत्र, पुष्प, फल और किसलयों को ग्रहण करती हुई, उनको स्पर्श के द्वारा सम्मानित करती हुई, उन्हें सूंघती हुई, खाती हुई और परस्पर बांटती हुई वैभारगिरि की तलहटी में अपने दोहद को पूरा करती हुई चारों ओर घूमने लगी।

६८. तए णं सा धारिणी देवी सम्माणियदोहला विणीयदोहला संपुण्णदोहला संपत्तदोहला जाया यावि होत्था।।

६८. इस प्रकार धारिणी देवी का दोहद सम्मानित हुआ, विनीत (सन्तुष्ट) हुआ, सम्पूर्ण हुआ और सम्प्राप्त हुआ।

६९. तए णं सा धारिणी देवी सेयणयगंधहत्थिं दुरूढा समाणी सेणिएणं हत्थिखंधवरगएणं पिट्ठओ-पिट्ठओ समणुगम्ममाणमग्गा हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडा महया भड-चडगर-वंदपरिक्खित्ता सव्विड्ढीए सव्वज्जुईए जाव दुंदुभिनि-ग्घोसनाइय-रवेणं जेणेव रायगिहे नयरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं जेणामेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता विउलाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं पच्चणुभवमाणी विहरइ।।

६९. प्रवर हस्ति स्कन्ध पर आरूढ़ राजा श्रेणिक पीछे-पीछे चलता हुआ जिसके मार्ग का अनुगमन कर रहा था, वह धारिणी देवी सेचनक गन्धहस्ती पर आरूढ़ हो, अश्व, गज, रथ और प्रवर पदाति योद्धाओं से कलित चतुरंगिणी सेना से संपरिवृत हो, महान सुभटों की विभिन्न टुकड़ियों से घिरी हुई सम्पूर्ण ऋद्धि, सम्पूर्ण द्युति यावत, दुन्दुभि के निर्घोष से निनादित स्वरों के साथ, जहां राजगृह नगर था, वहां आई। वहां आकर राजगृह नगर के बीचों बीच से गुजरती हुई, जहां अपना भवन था, वहां आई। वहां आकर मनुष्य सम्बन्धी विपुल भोगार्ह भोगों का अनुभव करती हुई विहार करने लगी।

अभएण देवस्स पडिविसज्जण-पदं

अभय द्वारा देव का प्रतिविसर्जन-पद

७०. तए णं से अभए कुमारे जेणामेव पोसहसाला तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुव्वसंगइयं देवं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ।।

७०. कुमार अभय जहां पौषधशाला थी, वहां आया। वहां आकर पूर्वसांगतिक देव को सत्कृत और सम्मानित किया। सत्कृत-सम्मानित कर उसे प्रतिविसर्जित किया।

७१. तए णं से देवे सगज्जियं (सविज्जुयं सफुसियं?) पंचवण्णमेहोवसोहियं दिव्वं पाउससिरिं पडिसाहरइ, पडिसाहरित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।।

७१. उस देव ने गर्जन (बिजली और फुहारों?) से युक्त पंचरंगे बादलों से सुशोभित दिव्य पावस की श्री का प्रतिसंहरण किया। उसका प्रतिसंहरण कर वह जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में लौट गया।

धारिणीए गब्भचरिया-पदं

धारिणी का गर्भचर्या-पद

७२. तए णं सा धारिणी देवी तंसि अकालदोहलंसि विणीयंसि सम्माणियदोहला तस्स गब्भस्स अणुकंपणट्ठाए जयं चिट्ठइ जयं आसयइ जयं सुवइ, आहारं पि य णं आहारेमाणी--नाइतित्तं नाइकडुयं नाइकसायं नाइअंबिलं नाइमहुरं, जं तस्स गब्भस्स हियं मियं पत्थयं देसे य काले य आहारं आहारेमाणी, नाइचिंतं नाइसोयं नाइमोहं नाइभयं नाइपरित्तासं ववगयचिंता-सोय-मोह-भय-परित्तासा उदु-भज्जमाण-सुहेहिं-भोयणच्छायण-गंध-मल्लालंकारेहिं तं गब्भं सुहंसुहेणं परिवहइ।।

७२. उस अकाल-दोहद के पूरा होने से सम्मानित दोहद वाली धारिणी देवी अपने गर्भ की अनुकम्पा के लिए संयमपूर्वक खड़ी रहती, संयमपूर्वक बैठती और संयम पूर्वक सोती। वह आहार करती हुई भी अति तिक्त, अति कडुवा, अति कषैला, अति खट्टा और अति मीठा आहार नहीं करती। वह वही आहार करती है, जो देश और काल के अनुसार उस गर्भ के लिए हित, मित और पथ्यकर होगा[76]। वह अति चिन्ता, अति शोक, अति मोह, अति भय और अति परित्रास (उद्वेग) नहीं करती। वह चिन्ता, शोक, मोह, भय और परित्रास से मुक्त रहकर, ऋतु के अनुकूल, सुखकर भोजन, वस्त्र, गन्धचूर्ण, माला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और अलंकारों का उपयोग करती हुई, सुखपूर्वक गर्भ का परिवहन करने लगी।[७७]

मेहस्स जम्म-वद्धावण-पदं

७३. तए णं सा धारिणी देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं य राइंदियाणं वीइक्कंताणं अद्धरत्तकालसमयंसि सुकुमालपाणिपायं जाव सव्वंगसुंदरं दारगं पयाया।।

७४. तए णं ताओ अंगपडियारियाओ धारिणिं देविं नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं जाव सव्वंगसुंदरं दारगं पयायं पासंति, पासित्ता सिग्घं तुरियं चवलं वेइयं जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सेणियं रायं जएणं विजएणं वद्धावेंति, वद्धावेत्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया! धारिणी देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं जाव सव्वंगसुंदरं दारगं पयाया। तं णं अम्हे देवाणुप्पियाणं पियं निवेएमो, पियं भे भवउ।।

७५. तए णं से सेणिए राया तासिं अंगपडियारियाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे ताओ अंगपडियारियाओ महुरेहिं वयणेहिं विउलेण य पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ, मत्थयधोयाओ करेइ, पुत्ताणुपुत्तियं वित्तिं कप्पेइ, कप्पेत्ता पडिविसज्जेइ।।

मेहस्स जम्मुस्सवकरण-पदं

७६. तए णं सेणिए राया (पच्चूसकालसमयंसि?) कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! रायगिहं नगरं आसिय- सम्मज्जिओवलित्तं सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु आसित्त-सित्त-सुइ-सम्मट्ठ-रत्थंतरावण-वीहियं मंचाइमंचकलियं णाणाविहराग-ऊसिय-ज्झय-पडागाइपडाग-मंडियं लाउल्लोइय-महियं गोसीस-सरस-रत्तचंदण-दद्दर-दिण्णपंचंगुलितलं उवचियवंदणकलसं वंदणघड-सुकय-तोरण-पडिदुवारदेसभायं आसत्तोसत्तविउल-वट्ट-वग्घारिय-मल्लदाम-कलावं पंचवण्ण-सरस-सुरभिमुक्क-पुप्फपुंजोवयार-कलियं कालागुरु-पवर-कुंदुरुक्क-तुरुक्क-धूव-डज्झंत-मघमघेंत-गंधुद्धुयाभिरामं सुगंधवरगंधगंधियं गंधवट्टिभूयं नड-णटग-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय-वेलंबग-कहकहग-पवग-लासग-आइक्खग-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुंबवीणिय-अणेगतालायरपरिगीयं करेह, कारवेह य, चारगपरिसोहणं करेह, करेत्ता माणुम्माणवद्धणं करेह,

मेघ का जन्म-वर्धापन-पद

७३. धारिणी देवी ने पूरे नौ मास और साढ़े सात दिन बीतने पर अर्धरात्रि के समय, सुकुमार हाथ-पांव वाले यावत् सर्वांग सुन्दर बालक को जन्म दिया।

७४. उन अंगपरिचारिकाओं ने देखा कि धारिणी देवी ने नौ मास पूरे होने पर यावत् सर्वांग सुन्दर बालक को जन्म दिया है। यह देखकर वे शीघ्रता, त्वरता, चपलता और उतावलेपन से जहां राजा श्रेणिक था, वहां आई। वहां आकर जय-विजय की ध्वनि से राजा श्रेणिक का वर्धापन किया। वर्धापन करके दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली अञ्जलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिका कर इस प्रकार कहा—"देवानुप्रिय। धारिणी देवी ने नौ मास पूरे होने पर यावत् सर्वांग सुन्दर बालक को जन्म दिया है।

इसलिए हम देवानुप्रिय को प्रिय निवेदित करती हैं। आप प्रेय का अनुभव करें।"

७५. उन अंगपरिचारिकाओं से यह अर्थ सुनकर, अवधारण कर हृष्ट-तुष्ट हुए राजा श्रेणिक ने उन अंग परिचारिकाओं को मधुर वचनों से तथा विपुल पुष्प, वस्त्र, गंधचूर्ण, माला एवं अलंकारों से सत्कृत और सम्मानित किया। उनके मस्तक से दासत्व—'दासचिह्न' को धो डाला।[७८] उनके निर्वाह के लिए पुत्र-पौत्र-परम्परा तक जीविका की व्यवस्था की। ऐसा कर उन्हें प्रतिविसर्जित कर दिया।

मेघ का जन्मोत्सव-करण-पद

७६. राजा श्रेणिक ने (प्रभात काल के समय) कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! शीघ्र ही राजगृह नगर को, उसके दोराहों, तिराहों, चौराहों, चौकों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और मार्गों में जल का छिड़काव कर बुहार-झाड़, गोबर से लीपकर, साफ-सुथरा करवाओ। उसकी गलियों और आपण-वीथियों को सामान्य और विशेष जल का छिड़काव कर बुहार-झाड़ साफ-सुथरा करवाओ। मंच और अतिमंच स्थापित करवाओ। रंग-बिरंगे ऊंचे ध्वज, पताका और अतिपताकाएं फहराओ। भूप्रांगण को गोबर से लीपाओ। भीतों को धुलकाओ। उन पर गोशीर्ष और सरस रक्तचन्दन के ठप्पे (पांचों अंगुलियों समेत हथेलियों के छापे) लगवाओ। मंगल कलश स्थापित करवाओ। सिंहद्वार और प्रतिद्वारों पर भली भांति मंगल कलश रखवाओ। उन्हें ऊपर से नीचे तक लटकती हुई, विपुल वृत्ताकर पुष्प-मालाओं के समूह[७९] से सजाओ। उसको विकीर्ण पंचरंगे, सरस, सुरभिमय पुष्प-पुञ्ज के उपचार से युक्त, काली अगर, प्रवर कुन्दुरु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।।

और लोबान की जलती हुई धूप की सुरभिमय महक से उठने वाली गंध से अभिराम और प्रवर सुरभिवाले गंधचूर्णों से सुगन्धित गन्धवर्तिका जैसा बनाओ तथा नटों, नर्तकों, कोडी से जूआ खेलने वालों, पहलवान, मुष्टियुद्ध करने वालों, विदूषकों, कथा करने वालों, छलांग भरने वालों, रास रचाने वालों, शुभाशुभ बताने वालों, बांस पर चढ़कर खेल करने वालों, चित्रपट दिखाकर आजीविका करने वालों (मंखलि), तूण (मशक के आकार का वाद्य) वादकों, तम्बूरा-वादकों[८०] तथा अनेक ताल-बजाने वालों का संगीत करो और करवाओ। बंदीजनों को मुक्त करो। ऐसा करके वस्तुओं के मान और उन्मान का वर्धन करो (वस्तुओं का मूल्य कम करो)। ऐसा कर यह आज्ञा मुझे प्रत्यर्पित करो।

७७. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्टतुट्ठचित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसप्पमाणहियया तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।।

७७. तब राजा श्रेणिक द्वारा ऐसा कहने पर हृष्ट-तुष्ट चित्त वाले, आनन्दित, प्रीतिपूर्ण मन वाले, परम सौमनस्य युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाले कौटुम्बिक पुरुषों ने (आदेश को क्रियान्वित कर) उस आज्ञा को प्रत्यर्पित किया।

७८. तए णं से सेणिए राया अट्ठारससेणि-प्पसेणीओ सद्दावेइ' सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! रायगिहे नगरे अब्भिंतरबाहिरिए उस्सुंकं उक्करं अभडप्पवेसं अदंडिम-कुदंडिमं अधरिमं अधारणिज्जं अणुद्धुयमुइंगं अमिलायमल्लदामं गणियावरनाडइज्जकलियं अणेगतालायराणुचरियं पमुइय-पक्कीलियाभिरामं जहारिहं ठिइवडियं दसदेवसियं करेह, कारवेह य, एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।।

७८. राजा श्रेणिक ने अठारह श्रेणियों और उपश्रेणियों[८१] को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो। तुम जाओ और राजगृह नगर के भीतर और बाहर कुल-मर्यादा के अनुरूप दस-दिवसीय उत्सव मनाया जाए--नागरिकों से किसी प्रकार का शुल्क और कर न लें,[८२] सुभट प्रजा के घरों में प्रवेश न करें, राजदण्ड से प्राप्त द्रव्य तथा कुदण्ड--अपराधी आदि से प्राप्त ऋण--मुक्त करें, कोई भी कर्जदार न रहे, दण्ड द्रव्य न लें, नगर में सतत मृदंग बजते रहें, (तोरण-द्वारों आदि पर) अम्लान पुष्पमालाएं बांधी जाएं, गणिका आदि के द्वारा प्रवर नाटक किए जाएं, वहां अनेक ताल बजाने वालों का अनुचरण होता रहे, (इस प्रकार) प्रमुदित और खुशियों में झूमते हुए नागरिकों द्वारा नगर अभिराम बन जाए--तुम ऐसी व्यवस्था करो और करवाओ। ऐसा कर इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो।

७९. तेवि तहेव करेंति तहेव पच्चप्पिणंति।।

७९. श्रेणियों और उपश्रेणियों के अधिकारी पुरुषों ने वैसा ही किया और वैसे ही उस आज्ञा को उन्हें प्रत्यर्पित किया।

८०. तए णं से सेणिए राया बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे सतिएहि य साहस्सिएहि य सयसाहस्सिएहि य दाएहिं दलयमाणे दलयमाणे पडिच्छमाणे-पडिच्छमाणे एवं च णं विहरइ।।

८०. राजा श्रेणिक बाहरी सभा-मण्डप में प्रवर सिंहासन पर पूर्वाभिमुख हो बैठा। वहां शतमूल्य, सहस्रमूल्य एवं लक्ष-मूल्य वाले देय द्रव्यों को देता हुआ तथा उपहार लेता हुआ विहार करने लगा।

मेहस्स नामादिसक्कार (संस्कार) करण-पदं

मेघ का नाम आदि (संस्कार) करण-पद

८१. तए णं तस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे ठितिपडियं करेंति, बितिए दिवसे जागरियं करेंति, ततिए दिवसे चंदसूरदंसणियं करेंति, एवामेव

८१. उस बालक के माता-पिता ने पहले दिन कुल-मार्यादा के अनुरूप जन्मोत्सव मनाया। दूसरे दिन रात्रि जागरण किया। तीसरे दिन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निवत्ते असुइजायकम्मकरणे संपत्ते बारसाहे विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेंति, उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं बलं च बहवे गणनायग-दंडनायग-राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-मंति-महामंति-गणग-दोवारिय-अमच्च-चेड-पीढमद्द-नगर-निगम-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाह-दूय-संधिवाले आमंतेंति। तओ पच्छा ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ता सव्वालंकारविभूसिया महइमहालयंसि भोयणमंडवंसि तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेहिं बलेण च बहूहिं गणनायग-दंडनायग-राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-मंति-महामंति-गणग-दोवारिय-अमच्च-चेड-पीढमद्द-नगर-निगम-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाह-दूय-संधिवालेहिं सद्धिं आसाएमाणा विसाएमाणा परिभाएमाणा परिभुंजेमाणा एवं च णं विहरंति। जिमियभुत्तुत्तरागयावि य णं समाणा आयंता चोक्खा परमसुइभूया तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं बलं च बहवे गणनायग जाव संधिवाले विपुलेणं पुप्फ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेंति, सम्माणेंति, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता एवं वयासी--

जम्हा णं अम्हं इमस्स दारगस्स गब्भत्थस्स चेव समाणस्स अकालमेहेसु दोहले पाउब्भूए, तं होऊ णं अम्हं दारए मेहे नामेणं। तस्स दारगस्स अम्मापियरो अयमेयारूवं गोण्णं गुणनिप्फण्णं नामधेज्जं करेंति मेहे इ।।

शिशु को चांद और सूरज के दर्शन करवाए। इस प्रकार अशुचिजात-कर्म से निवृत्त होने तथा बारहवें दिन के आने पर विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य[८३] तैयार करवाए। तैयार करवाकर मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनों को[८४], सेना तथा बहुत से गणनायक, दण्डनायक, राजा, ईश्वर, तलवर (कोतवाल) माडम्बिक, कौटुम्बिक, मंत्री, महामंत्री, लेखापाल, दौवारिक, अमात्य, सेवक, राजा के आस-पास रहने वाले सखा, नगर, निगम, श्रेष्ठी सेनापति, सार्थवाह, दूत और सन्धिपालों को आमन्त्रित किया। उसके बाद स्नान, बलिकर्म और कौतुक मंगलरूप प्रायश्चित कर, सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित हो, सुविशाल भोजन-मण्डप में मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन सम्बन्धी और परिजनों के साथ तथा सेना एवं बहुत से गणनायक, राजा, ईश्वर, तलवर, माडम्बिक कौटुम्बिक, मंत्री, महामंत्री, लेखापाल, दौवारिक, अमात्य, सेवक, राजा के आस-पास रहने वाले सखा, नगर, निगम, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, दूत और सन्धिपालों के साथ अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का आस्वादन और विशेष आस्वादन करते हुए परस्पर बांटते हुए और खाते हुए विहार करने लगे।

भोजनोपरान्त वे आचमन कर साफ सुथरे और परम पवित्र हो बैठने के स्थान पर आए। उन मित्र ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी परिजनों और सेना को तथा बहुत से गणनायक यावत् सन्धिपालों को प्रचुर पुष्प, गन्धचूर्ण, माल्य और अलंकारों से सत्कृत-सम्मानित किया। उन्हें सत्कृत सम्मानित कर इस प्रकार कहा--"क्योंकि हमारा यह बालक जब गर्भ में था, तब अकाल मेघ का दोहद उत्पन्न हुआ था, इसलिए हमारे बालक का नाम 'मेघ' हो।"

इस प्रकार माता-पिता ने उस बालक का गुणानुरूप--गुणनिष्पन्न 'मेघ' ऐसा नाम रखा।[८५]

मेहस्स लालणपालण-पदं

८२. तए णं से मेहे कुमारे पंचधाईपरिग्गहिए, (तं जहा--खीरधाईए मज्जणधाईए कीलावणधाईए मंडणधाईए अंकधाईए) अण्णाहि य बहूहिं--खुज्जाहिं चिलाईहिं वामणीहिं वडभीहिं बब्बरीहिं बउसीहिं जोणियाहिं पल्हवियाहिं ईसिणियाहिं थारुगिणियाहिं लासियाहिं लउसियाहिं दामिलीहिं सिंहलीहिं आरबीहिं पुलिंदीहिं पक्कणीहिं बहलीहिं मुरुंडीहिं सबरीहिं पारसीहिं--नानादेसीहिं विदेसपरिमंडियाहिं इंगिय-चिंतिय-पत्थिय-वियाणियाहिं सदेस-नेवत्थ-गहिय-वेसाहिं निउणकुसलाहिं विणीयाहिं, चेडियाचक्कवाल-वरिसधर-कंचुइज्ज-महयरग-वंद-परिक्खित्ते हत्थाओ हत्थं साहरिज्जमाणे अंकाओ अंकं परिभुज्जमाणे परिगिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे रम्मंसि मणिकोट्टिमतलंसि परंगिज्जमाणे निव्वाय-निव्वाघायंसि गिरिकंदरमल्लीणे व चंपगपायवे सुहंसुहेणं वड्ढइ।।

मेघ का लालन-पालन-पद

८२. वह कुमार मेघ पांच धाय-माताओं (क्षीर-धात्री, मज्जन-धात्री, क्रीड़न-धात्री, मण्डन-धात्री, अंक-धात्री) से परिगृहीत तथा अन्य अनेक परिचारिकाओं से जैसे--कुब्जा, किराती, वामनी, बड़भी, बर्बरी, बकुशी, यवनी, पल्हविका, ईशिनिका, थारुगिणिया, लासक, लकुसिका, द्राविड़ी, सिंहलिकी, अरबी, पौलिन्दी, पक्वणी, बहली, मुरुण्डी, शबरी और पारसी--इन नाना देशीय और विदेश की शोभा बढ़ाने वाली इंगित, चिन्तित और प्रार्थित को जानने वाली, अपने देश के नेपथ्य और वेष को धारण करने वाली, निपुण कुशल और विनीत चेटिकाओं--सेविकाओं के चक्रवाल, वर्षधर, कंचुकी पुरुष और महत्तरवृन्द से घिरा हुआ रहता था। वह एक के हाथ से दूसरे के हाथ में लिया जाता। एक की गोद से दूसरे की गोद में बैठाया जाता। उसे लोरी दी जाती। उसका लालन किया जाता। मणि कुट्टित सुरम्य प्रांगण में खिलाया जाता। इस प्रकार वह निर्वात और निर्व्याघात गिरिकन्दरा में आलीन चम्पक के पौधे की भांति सुखपूर्वक बढ़ रहा था।[८६]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८३. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो अणुपुव्वेणं नामकरणं च पजेमणगं च पचंकमणगं च चोलोवणयं च महया-महया इड्ढी-सक्कार-समुदएणं करेंसु।।

८३. कुमार मेघ के माता-पिता ने महान ऋद्धि और सत्कार-समुदय के साथ क्रमशः उसका नामकरण संस्कार, अन्न-प्राशन-संस्कार, चंक्रमण संस्कार और शिखा-धारण संस्कार सम्पन्न किया।

मेहस्स कलागहण-पदं

मेघ का कलाग्रहण पद

८४. तए णं तं मेहं कुमारं अम्मापियरो साइरेगट्ठवासजायगं चेव सोहणंसि तिहिकरण-मुहुत्तंसि कलायरियस्स उवणेंति।।

८४. कुमार मेघ जब कुछ अधिक आठ वर्ष का हुआ तब माता-पिता शुभ तिथि, करण और मुहूर्त में उसे कलाचार्य के पास ले गए।

८५. तए णं से कलायरिए मेहं कुमारं लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणरुयपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य करणओ य सेहावेइ सिक्खावेइ, तं जहा--
१. लेहं २. गणियं ३. रूवं ४. नट्टं ५. गीयं ६. वाइयं ७. सरगयं ८. पोक्खरगयं ९. समतालं १०. जूयं ११. जणवायं १२. पासयं १३. अट्ठावयं १४. पोरेकव्वं १५. दगमट्टियं १६. अण्णविहिं १७. पाणविहिं १८. वत्थविहिं १९. विलेवणविहिं २०. सयणविहिं २१. अज्जं २२. पहेलियं २३. मागहियं २४. गाहं २५. गीइयं २६. सिलोयं २७. हिरण्णजुत्तिं २८. सुवण्णजुत्तिं २९. चुण्णजुत्तिं ३०. आभरणविहिं ३१. तरुणीपडिकम्मं ३२. इत्थिलक्खणं ३३. पुरिसलक्खणं ३४. हयलक्खणं ३५. गयलक्खणं, ३६. गोणलक्खणं ३७. कुक्कुडलक्खणं ३८. छत्तलक्खणं ३९. दंडलक्खणं ४०. असिलक्खणं ४१. मणिलक्खणं ४२. कागणिलक्खणं ४३. वत्थुविज्जं ४४. खंधारमाणं ४५. नगरमाणं ४६. वूहं ४७. पडिवूहं ४८. चारं ४९. पडिचारं ५०. चक्कवूहं ५१. गरुलवूहं ५२. सगडवूहं ५३. जुद्धं ५४. निजुद्धं ५५. जुद्धाइजुद्धं ५६. अट्ठिजुद्धं ५७. मुट्ठिजुद्धं ५८. बाहुजुद्धं ५९. लयाजुद्धं ६०. ईसत्थं ६१. छरुप्पवायं ६२. धणुवेयं ६३. हिरण्णपागं ६४. सुवण्णपागं ६५. वट्टखेड्डं ६६. सुत्तखेड्डं ६७. नालियाखेड्डं ६८. पत्तच्छेज्जं ६९. कडच्छेज्जं ७०. सज्जीवं ७१. निज्जीवं ७२. सउणरुतं ति।।

८५. कलाचार्य ने कुमार मेघ को लेख आदि, गणित प्रधान से लेकर शकुनरुत पर्यन्त बहत्तर कलाएं सूत्र, अर्थ और क्रियात्मक रूप से पढ़ाई और उनका अभ्यास कराया।[८७] वे बहत्तर कलाएं ये हैं :--
१. लेख २. गणित ३. रूप ४. नाट्य ५. गीत ६. वाद्य ७. स्वरगत ८. पुष्करगत ९. समताल १०. द्यूत ११. जनवाद १२. पाशक फेंकने की कला १३. अष्टापद १४. पुरःकाव्य १५. दकमृत्तिका १६. अन्नविधि १७. पानविधि १८. वस्त्रविधि १९. विलेपन विधि २०. शयन विधि २१. आर्या २२. प्रहेलिका २३. मागधिका २४. गाथा २५. गीतिका २६. श्लोक २७. हिरण्य-युक्ति २८. सुवर्ण-युक्ति २९. चूर्ण-युक्ति ३०. आभरण-विधि ३१. तरुणी-प्रतिकर्म ३२. स्त्रीलक्षण ३३. पुरुष लक्षण ३४. हय लक्षण ३५. गज लक्षण ३६. गौ लक्षण ३७. कुक्कुट लक्षण ३८. छत्र लक्षण ३९. दण्ड लक्षण ४०. असि लक्षण ४१. मणि लक्षण ४२. काकिनी लक्षण ४३. वास्तुविद्या ४४. स्कन्धावारमान ४५. नगरमान ४६. व्यूह ४७. प्रतिव्यूह ४८. चार ४९. प्रतिचार ५०. चक्रव्यूह ५१. गरुड़व्यूह ५२. शकट व्यूह ५३. युद्ध ५४. नियुद्ध ५५. युद्धातियुद्ध ५६. अस्थियुद्ध ५७. मुष्टियुद्ध ५८. बाहुयुद्ध ५९. लता-युद्ध ६० इषु अस्त्र, ६१. त्सरूप्रवाद (खड्गशास्त्र) ६२. धनुर्वेद ६३. हिरण्यपाक ६४. सुवर्णपाक ६५. वृत्तक्रीड़ा ६६. सूत्र क्रीड़ा ६७. नालिका क्रीड़ा ६८. पत्रछेद्य ६९. कट-छेद्य ७०. सजीव ७१. निर्जीव और ७२. शकुन-रुत।[८८]

८६. तए णं से कलायरिए मेहं कुमारं लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणरुयपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य करणओ य सेहावेइ सिक्खावेइ, सेहावेत्ता सिक्खावेत्ता अम्मापिऊणं उवणेइ।।

८६. उस कलाचार्य ने मेघ कुमार को लेख आदि, गणित प्रधान और शकुनरुत पर्यवसान वाली बहत्तर कलाएं सूत्र, अर्थ और क्रियात्मक रूप से पढ़ाई और उनका अभ्यास कराया। पढ़ाकर, अभ्यास कराकर उसको माता-पिता के पास लाया।

८७. तए णं मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो तं कलायरियं महुरेहिं वयणेहिं विउलेण य वत्थ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेंति सम्माणेंति, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयंति, दलइत्ता पडिविसज्जेंति।।

८७. कुमार मेघ के माता-पिता ने मधुर वचनों से और विपुल वस्त्र, गन्धचूर्ण मालाओं और अलंकारों से उस कलाचार्य को सत्कृत सम्मानित किया। सत्कृत-सम्मानित कर उसको जीवन निर्वाह के योग्य विपुल प्रीतिदान दिया। देकर प्रतिविसर्जित किया।

८८. तए णं से मेहे कुमारे बावत्तरि-कलापंडिए नवंगसुत्तपडिबोहिए अट्ठारसविहिप्पगारदेसीभासाविसारए गीयरई गंधव्वनट्टकुसले

८८. वह कुमार मेघ बहत्तर कलाओं में पण्डित बन गया। उसके नौ सुप्त अंग जागृत हो गये।[८९] वह (प्रवृत्ति भेद से) अठारह प्रकार की देशी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हयजोही गयजोही रहजोही बाहुजोही बाहुप्पमद्दी अलंभोगसमत्थे साहसिए वियालचारी जाए यावि होत्था।।

भाषाओं में विशारद[९०], संगीत में रुचि लेने वाला तथा गन्धर्व विद्या और नाट्य कला में कुशल बन गया। वह हययोधी, गजयोधी, रथयोधी, बाहुयोधी, भुजाओं से शत्रु का मर्दन करने वाला, पूर्ण भोग समर्थ, साहसिक और विकाल बेला में भी विचरने की क्षमता वाला हो गया।

मेहस्स पाणिग्गहण-पदं

८९. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो मेहं कुमारं बावत्तरि-कलापंडियं जाव वियालचारिं जायं पासंति, पासित्ता अट्ठ पासायवडिंसए कारेंति--अब्भुग्गयमूसिय पहसिए विव मणि-कणग-रयण-भत्तिचित्ते वाउद्धुय-विजय-वेजयंती-पडाग-छत्ता-इच्छत्तकलिए तुंगे गगणतलमभिलंघमाणसिहरे जालंतररयण पंजरुम्मिलिए व्व मणिकणगथूभियाए वियसिय-सयवत्त-पुंडरीए तिलयरयणद्धचंदच्चिए नाणामणिमयदामालंकिए अंतो बाहिं च सण्हे तवणिज्ज-रुइल- वालुया- पत्थरे सुहफासे सस्सिरीयरूवे पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे।

एगं च णं महं भवणं कारेंति--अणेगखंभसयसन्निविट्ठं लीलट्ठियसाल-भंजियागं अब्भुग्गयसुकयवइरवेइयातोरण-वररइयसालभंजिय-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-लट्ठ-संठिय-पसत्थ-वेरुलियखंभ-नाणामणि-कणगरयण-खचियउज्जलं बहुसम-सुविभत्त-निचियर-मणिज्जभूमिभागं ईहामिय-उसभ-तुरय-नर-मगर-विहग-वालगकिन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्तं खंभुग्गयवयरवेइया-परिगयाभिरामं विज्जाहर-जमल-जुयल- जंतजुत्तं पिव अच्चीसहस्स- मालणीयं रूवगसहस्सकलियं भिसमाणं भिब्भिसमाणं चक्खुल्लोयणलेसं सुहफासं सस्सिरीयरूवं कंचणमणि-रयणथूभियागं नाणाविह-पंचवण्ण-घंटापडाग-परिमंडियग्गसिहरं धवल-मरिचिकवयं विणिम्मुयंतं लाउल्लोइयमहियं जाव गंधवट्टिभूयं पासाईयं दरिसणिज्जं अभिरूवं पडिरूवं।।

मेघ का पाणिग्रहण-पद

८९. कुमार मेघ के माता-पिता ने कुमार मेघ को बहत्तर कलाओं में पण्डित यावत् विकाल बेला में भी विचरने की क्षमतायुक्त देखा। देखकर उसके लिए आठ प्रासादावतंसक बनवाए। वे ऊपर उठे हुए ऊंचे, धवल प्रभापटल के कारण प्रहसित से, मणि, कनक और रत्नों की भांतो से चित्रित, हवा में फहराती हुई, विजय-वैजयन्ती पताकाओं छत्रों और अतिछत्रों से कलित, उत्तुंग गगन तल का भी अतिक्रमण करने वाले, शिखरों से युक्त, रत्न जटित वातायनों के कारण खुले पिंजरे से प्रतीत होने वाले, मणि-कनक निर्मित स्तूपिकाओं से युक्त, विकसित नीलकमलों एवं श्वेत कमलों से युक्त तिलक, रत्न और अर्द्धचन्द्रों से चित्रित, नाना मणिमय दाम-मालाओं से अलंकृत, भीतर और बाहर से श्लक्षण--चिकने आंगन में बिछी हुई रुचिर स्वार्ण-बालुका के कारण सुखद स्पर्श वाले, अतिशय श्री सम्पन्न, चित्त को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, कमनीय और रमणीय थे।

उन्होंने एक बड़ा भवन[९१] बनवाया। वह अनेक सैंकड़ों खम्भों पर अवस्थित था। उसमें नृत्य करती पुतलियां उत्कीर्ण थीं। वह भवन ऊंची उठी हुई सुनिर्मित वज्ररत्नमय वेदिकाओं और सिंह द्वारों से युक्त था। उसके कलात्मक ढंग से उकेरी हुई पुतलियों से युक्त, सुश्लिष्ट, विशिष्ट तथा कमनीय आकृति वाले प्रशस्त वैडूर्य रत्नों के खम्भे थे। वह नाना मणि, कनक और रत्नों से खचित एवं प्रभास्वर था। उसका आंगन बहुसम, सुविभक्त, ठोस और रमणीय था। वह ईहामृग, बैल, घोड़ा, मनुष्य, मगरमच्छ, पक्षी, सर्प, किन्नर, मृग, अष्टापद, चमरीगाय, हाथी, अशोक आदि की लता और पद्मलता--इनकी भांतों से चित्रित था। खम्भों के ऊपर उठी हुई वज्ररत्नमय वेदिका से अभिराम था। वह यंत्र से संचालित विद्याधर-युगल की प्रतिमा से युक्त था। वह रत्नों की हजारों रश्मियों से शोभित और उनमें बिम्बित हजारों प्रतिबिम्बों से कमनीय लग रहा था। वह देदीप्यमान, अतिशय देदीप्यमान, देखते ही दृष्टि को बांधने वाला, स्पर्श-सुखद, सश्रीक (श्री सम्पन्न) तथा कंचन, मणि और रत्नों की स्तूपिकाओं से युक्त था। उसके अग्रशिखर अनेक प्रकार की पंचरंगी घंटायुक्त पताकाओं से परिमण्डित थे। वह अपने धवल-रश्मि-पुंज को चारों ओर बिखेर रहा था। वह गोबर से लीपा और धुलकाया हुआ यावत् गन्धवर्तिका जैसा, चित्त को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय, कमनीय और रमणीय था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९०. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो मेहं कुमारं सोहणंसि तिहि-करण-नक्खत्त-मुहुत्तंसि सरिसियाणं सरिव्वयाणं सरित्तयाणं सरिसलावण्ण-रूव-जोव्वण-गुणोववेयाणं सरिसएहिंतो रायकुलेहिंतो आणिल्लियाणं पसाहणट्ठंग-अविहववहु-ओवयण-मंगलसुजंपिएहिं अट्ठहिं रायवरकन्नाहिं सद्धिं एगदिवसेणं पाणिं गिण्हाविंसु।।

९०. कुमार मेघ के माता-पिता ने शोभन तिथि, करण[९२], नक्षत्र और मुहूर्त्त में एक जैसी समान वय वाली, समान त्वचा वाली, समान लावण्य, रूप, यौवन एवं गुणों से उपेत और सदृश राजकुलों से आई हुई आठ प्रवर राजकन्याओं के साथ एक ही दिन में, प्रसाधन के आठों अंगों से अलंकृत सौभाग्यवती कुल-वधुओं के द्वारा किए जाने वाले जलाभिषेक, मंगलकरण और आशीर्वाद के साथ[९३], कुमार मेघ का पाणिग्रहण करवाया।

पीइदाण-पदं

प्रीतिदान-पद

९१. तए णं तस्स मेहस्स अम्मापियरो इमं एयारूवं पीइदाणं दलयंति—अट्ठ हिरण्णकोडीओ अट्ठ सुवण्णकोडीओ गाहाणुसारेण भाणियव्वं जाव पेसणकारियाओ, अण्णं च विपुलं धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण-संत-सार-सावएज्जं अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ पकामं दाउं पकामं भोत्तुं पकामं परिभाएउं।।

९१. मेघ कुमार के माता-पिता ने इस आकार वाला प्रीतिदान किया जैसे--आठ करोड़ हिरण्य, आठ करोड़ सुवर्ण--प्रीती-दान[९४] का पूर्ण विवरण गाथाओं के अनुसार वर्णनीय है यावत् प्रेष्यकर्म करने वाली सेविकाएं। इसके अतिरिक्त उन्होंने उसे विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मौक्तिक, शंख, शिला, प्रवाल, रक्तरत्न तथा श्रेष्ठ सुगंधित द्रव्य और दान भोग आदि के लिए स्वापतेय (स्वाधीनता पूर्वक व्यय किया जाने वाला धन) दिया जो सात पीढ़ियों तक प्रचुर मात्रा में दान करने, प्रचुर मात्रा में भोगने तथा प्रचुर मात्रा में बांटने (विभाग करने) में पर्याप्त था।

९२. तए णं से मेहे कुमारे एगमेगाए भारियाए एगमेगं हिरण्णकोडिं दलयइ, जाव एगमेगं पेसणकारिं दलयइ, अण्णं च विउलं धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण-संत-सार-सावएज्जं अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ पकामं दाउं पकामं भोत्तुं पकामं परिभाएउं दलयइ।।

९२. कुमार मेघ ने अपनी प्रत्येक भार्या को एक-एक हिरण्य कोटि यावत् प्रेष्य कर्म करने वाली सेविका दी। इसके अतिरिक्त उसने उनको विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मौक्तिक, शंख, शिला, प्रवाल, रक्तरत्न, श्रेष्ठ सुगंधित द्रव्य और स्वापतेय दिया, जो सात पीढ़ियों तक प्रचुर मात्रा में दान करने, प्रचुर मात्रा में भोगने और प्रचुर मात्रा में बांटने में पर्याप्त था।

९३. तए णं से मेहे कुमारे उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं वरतरुणिसंपउत्तेहिं बत्तीसइबद्धएहिं नाडएहिं उवगिज्जमाणे-उवगिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे-उवलालिज्जमाणे (इट्ठे) सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधे विउले माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणे विहरइ।।

९३. कुमार मेघ अपने प्रवर प्रासाद के उपरिभाग में स्थित था। उसके सामने मृदंग मस्तकों की प्रबल होती ध्वनि के साथ वर तरुणियों द्वारा संप्रयुक्त बत्तीस प्रकार के नाटक किए जा रहे थे। उसके गुणगान किए जा रहे थे, उसका उपलालन किया जा रहा था। वह (इष्ट) शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध, मनुष्य संबंधी विपुल कामभोगों को भोगता हुआ विहार कर रहा था।

महावीरसमवसरण-पदं

महावीर का समवसरण पद

९४. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणामेव रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए तेणामेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।।

९४. उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर क्रमानुसार विचरण करते हुए ग्रामानुग्राम परिव्रजन--सुखपूर्वक विहार करते हुए जहां राजगृह नगर और गुणशिलक चैत्य था वहां आए। वहां आकर प्रवास योग्य स्थान की अनुमति ली। अनुमति लेकर संयम और तप से स्वयं को भावित करते हुए विहार करने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेहस्स जिन्नासा-पदं

९५. तए णं रायगिहे नयरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु महया जणसद्दे इ वा जाव बहवे उग्गा भोगा रायगिहस्स नगरस्स मज्झंमज्झेणं एगदिसिं एगाभिमुहा निग्गच्छंति। इमं च णं मेहे कुमारे उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं जाव माणुस्सए कामभोगे भुंजमाणे रायमग्गं च ओलोएमाणे-ओलोएमाणे एवं च णं विहरइ।।

९६. तए णं से मेहे कुमारे ते बहवे उग्गे भोगे जाव एगदिसाभिमुहे निग्गच्छमाणे पासइ, पासित्ता कंचुइज्जपुरिसं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--किण्णं भो देवाणुप्पिया! अज्ज रायगिहे नगरे इंदमहे इ वा खंदमहे इ वा एवं--रुद्द-सिव-वेसमण-नाग-जक्ख-भूय-नई-तलाय-रुक्ख--चेइय-पव्वयमहे इ वा उज्जाण-गिरिजत्ता इ वा? जओ णं बहवे उग्गा भोगा जाव एगदिसिं एगाभिमुहा निग्गच्छंति।।

कंचुइज्जपुरिसस्स निवेदण-पदं

९७. तए णं से कंचुइज्जपुरिसे समणस्स भगवओ महावीरस्स गहियागमणपवित्तीए मेहं कुमारं एवं वयासी--नो खलु देवाणुप्पिया! अज्ज रायगिहे नयरे इंदमहे इ वा जाव गिरिजत्ता इ वा जं णं एए उग्गा भोगा जाव एगदिसिं एगाभिमुहा निग्गच्छंति। एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे भगणं महावीरे आइगरे तित्थगरे इहमागए इह संपत्ते इह समोसढे इह चेव रायगिहे नगरे गुणसिलए चेइए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।।

मेहस्स भगवओ समीवे गमण-पदं

९८. तए णं से मेहे कुमारे कंचुइज्जपुरिसस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावेत्ता एवं वयासी--खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! चाउग्घंटं आसरहं जुत्तामेव उवट्ठवेह।

तहत्ति उवणेंति।।

९९. तए णं से मेहे ण्हाए जाव सव्वालंकारविभूसिए चाउग्घंटं आसरहं दुरूढे समाणे सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं महया भड-चडगर-वंद-परियाल-संपरिवुडे रायगिहस्स नयरस्स मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणामेव गुणसिलए चेइए तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स छत्ताइच्छत्तं

मेघ की जिज्ञासा पद

९५. उस समय राजगृह नगर के दोराहों, तिराहों, चौराहों, चौकों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और मार्गों में महान जनशब्द हो रहा था। यावत् बहुत से उग्र, भोज राजगृह नगर के बीचों बीच से गुजरते हुए एक ही दिशा की ओर मुंह किये चले जा रहे थे। इधर कुमार मेघ अपने प्रवर प्रासाद के उपरिभाग में तबलों की ध्वनि के साथ यावत् मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों को भोगता और राजमार्ग का अवलोकन करता हुआ विहार कर रहा था।

९६. कुमार मेघ ने उन बहुत से उग्र, भोज[95], (आदि नागरिकों) को यावत् एक ही दिशा की ओर मुंह कर जाते हुए देखा। यह देखकर उसने कंचुकी पुरुष को बुलाया। उसे बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! आज राजगृह नगर में इन्द्र महोत्सव या स्कन्ध महोत्सव है या इसी प्रकार रुद्र, शिव[96], वैश्रवण, नाग, यक्ष, भूत, नदी, तालाब, वृक्ष, चैत्य पर्वत आदि से सम्बन्धित कोई उत्सव है या उद्यान-यात्रा तथा गिरियात्रा का कोई आयोजन है जिसके कारण ये बहुत से उग्र, भोज राजगृह में यावत् एक ही दिशा की ओर मुंह किये चले जा रहे हैं।

कंचुकी पुरुष का निवेदन-पद

९७. श्रमण भगवान महावीर के आगमन के वृत्तान्त की जानकारी पाकर कंचुकी पुरुष ने कुमार मेघ से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! आज राजगृह नगर में न इन्द्र महोत्सव है यावत् न गिरि यात्रा का आयोजन--जिसके कारण ये बहुत से उग्र, भोज यावत् एक ही दिशा की ओर मुंह किये जा रहे है। देवानुप्रिय! धर्म के आदिकर्ता, तीर्थंकर श्रमण भगवान महावीर यहां आये हुए हैं, यहां सम्प्राप्त हैं, यहां समवसृत हैं और यहीं राजगृह नगर के गुणशीलक चैत्य में प्रवास योग्य स्थान की अनुमति लेकर संयम और तप से स्वयं को भावित करते हुए विहार कर रहे हैं।

मेघ का भगवान के समीप गमन-पद

९८. कंचुकी पुरुष के पास यह अर्थ सुन कर अवधारणा कर हृष्ट तुष्ट हुए कुमार मेघ ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर कहा--देवानुप्रियो! शीघ्र ही चार घण्टाओं वाले अश्वरथ को जोत कर उपस्थित करो।

'तथास्तु' कहकर वे अश्वरथ को लाए।

९९. कुमार मेघ नहाकर यावत् सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित हुआ। चार घण्टाओं वाले अश्वरथ पर आरूढ़ हुआ। कटसरैया के फूलों से बनी मालाओं से युक्त छत्र को धारण किया। महान सुभटों के सुविस्तृत वृन्द से परिवृत होकर राजगृह नगर के बीचों बीच होकर निर्गमन किया। निर्गमन कर जहां गुणशिलक चैत्य था वहां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पडागाइपडागं विज्जाहर-चारणे जंभए य देवे ओवयमाणे उप्पयमाणे पासइ, पासित्ता चाउग्घंटाओ आसरहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता समणं भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ।

(तं जहा--१. सचित्ताणं दव्वाणं विउसरणयाए २. अचित्ताणं दव्वाणं अविउसरणयाए ३. एगसाडिय-उत्तरासंगकरणेणं ४. चक्खुफासे अंजलिपग्गहेणं ५. मणसो एगत्तीकरणेणं।) जेणामेव समणे भगवं महावीरे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स नच्चासन्ने नाइदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे पंजलिउडे अभिमुहे विणएणं पज्जुवासइ।।

आया। आकर श्रमण भगवान महावीर के वहां छत्रों, अतिछत्रों, पताकाओं और अतिपताकाओं तथा विद्याधर, चारण[१७] और जृम्भक देवों को आते-जाते हुए देखा। देखकर वह चार घंटाओं वाले अश्वरथ से नीचे उतरा। उतरकर पांच प्रकार के अभिगमों से[१८] श्रमण भगवान महावीर के पास गया।

जैसे--१. सचित्त द्रव्यों को छोड़ना २. अचित्त द्रव्यों को छोड़ना ३. एक शाटक वाला उत्तरासंग करना ४. दृष्टिपात होते ही बद्धाञ्जलि होना ५. मन को एकाग्र करना।

जहां श्रमण भगवान महावीर थे, वहां आया। आकर दायीं ओर से प्रारम्भ कर तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर वन्दना नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार कर श्रमण-भगवान महावीर के न अति निकट, न अति दूर, शुश्रूषा और नमस्कार करते हुए सम्मुख रहकर विनय पूर्वक बद्धांजलि पर्युपासना करने लगा।

धम्मदेसणा-पदं

१००. तए णं समणे भगवं महावीरे मेहस्स कुमारस्स तीसे य महइमहालियाए परिसाए मज्झगए विचित्तं धम्ममाइक्खइ--जह जीवा बज्झंति, मुच्चंति जहा य संकिलिस्संति। धम्मकहा भाणियव्वा जाव परिसा पडिगया।।

धर्म-देशना-पद

१००. श्रमण भगवान महावीर ने कुमार मेघ और उस विशाल परिषद् में विचित्र धर्म का प्रतिबोध दिया-जिन कारणों से जीव बद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं और जिन कारणों से संक्लेश को प्राप्त होते हैं यह धर्मकथा औपपातिक के अनुसार वर्णनीय है यावत परिषद् चली गयी।

मेहस्स पव्वज्जासंकप्प-पदं

१०१. तए णं से मेहे कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--

सद्दहामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं।
पत्तियामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं।
रोएमि णं भंते! निग्गंथं पावयणं।
अब्भुट्ठेमि णं भंते! निग्गंथं पावयणं।

एयमेयं भंते! तहमेयं भंते! अवितहमेयं भंते! इच्छियमेयं भंते! पडिच्छियमेयं भंते! इच्छिय-पडिच्छियमेयं भंते! से जहेयं तुब्भे वयह। नवरि देवाणुप्पिया! अम्मापियरो आपुच्छामि। तओ पच्छा मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामि।

अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेहि।।

मेघ का प्रव्रज्या-संकल्प-पद

१०१. श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म सुनकर, अवधारण कर हृष्ट तुष्ट होकर कुमार मेघ ने श्रमण भगवान महावीर को दायीं ओर से प्रारम्भ कर तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर वन्दना नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार कर इस प्रकार कहा--

भन्ते ! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर श्रद्धा करता हूं।
भन्ते ! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर प्रतीति करता हूं।
भन्ते ! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर रुचि करता हूं।
भन्ते ! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन (की आराधना) में अभ्युत्थान करता हूं यह ऐसा ही है भन्ते ! यह तथा (संवादितापूर्ण) है भन्ते !
यह अवितथ है भन्ते ! यह इष्ट है भन्ते !
यह प्रतीप्सित (प्राप्त करने के लिए इष्ट) है भन्ते !
यह इष्ट, प्रतीप्सित, दोनों है भन्ते!
जैसा तुम कह रहे हो।

केवल एक बार देवानुप्रिय! मैं अपने माता-पिता से पूछ लेता हूं। उसके पश्चात् मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित होऊंगा। भगवान ने कहा--जैसा सुख हो देवानुप्रिय ! प्रतिबन्ध मत करो।

मेहस्स अम्मापिऊणं निवेदण-पदं

१०२. तए णं से मेहे कुमारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणामेव चाउग्घंटे आसरहे तेणामेव उवागच्छइ,

मेघ का माता-पिता से निवेदन-पद

१०२. कुमार मेघ ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दना नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर जहां चार घण्टाओं वाला अश्वरथ था, वहां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उवागच्छित्ता चाउग्घंटं आसरहं दुरूहइ, महया भड-चडगर-पहकरेणं रायगिहस्स नगरस्स मज्झंमज्झेणं जेणामेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घंटाओ आसरहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणामेव अम्मापियरो तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अम्मापिऊणं पायवडणं करेइ, करेत्ता एवं वयासी--एवं खलु अम्मयाओ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए।।

आया। आकर चार घण्टाओं वाले अश्व रथ पर आरूढ़ हुआ और महान सुभटों के सुविस्तृत संघात वृन्द से परिवृत हो राजगृह नगर के बीचों बीच होकर निर्गमन किया। निर्गमन कर जहां उसका अपना भवन था, वहां आया। आकर चार घण्टाओं वाले अश्वरथ से नीचे उतरा, उतरकर जहां माता-पिता थे, वहां आया। आकर माता-पिता के चरणों में प्रणिपात किया। प्रणिपात कर इस प्रकार कहा--माता पिता! मैंने श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म को सुना है। वही धर्म मुझे इष्ट, प्रतीप्सित और अभिरुचित है।

१०३. तए णं तस्स मेहस्स अम्मापियरो एवं वयासी--धन्नोसि तुमं जाया! संपुण्णो सि तुमं जाया!

कयत्थो सि तुमं जाया! कयलक्खणो सि तुमं जाया!

जन्नं तुमे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे निसंते, से वि य ते धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए।।

१०३. उस मेघ के माता-पिता ने इस प्रकार कहा--तुम धन्य हो पुत्र! तुम पुण्यशाली हो पुत्र! तुम कृतार्थ हो पुत्र! तुम कृतलक्षण (लक्षण से सम्पन्न) हो पुत्र! जो कि तुमने श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म को सुना है, वह धर्म तुम्हें इष्ट, प्रतीप्सित और अभिरुचित है।

१०४. तए णं से मेहे कुमारे अम्मापियरो दोच्चंपि एवं वयासी--एवं खलु अम्मयाओ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए। तं इच्छामि णं अम्मयाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।।

१०४. कुमार मेघ दूसरी बार भी माता-पिता से इस प्रकार बोला--माता पिता ! मैंने श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म सुना है, वही धर्म मुझे इष्ट, प्रतीप्सित और अभिरुचित है। इसलिए माता पिता ! मैं तुम से अनुज्ञा प्राप्त कर, श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित होना चाहता हूं।

धारिणीए सोगाकुलदसा-पदं

१०५. तए णं सा धारिणी देवी तं अणिट्ठं अकंतं अप्पियं अमणुण्णं अमणामं असुयपुव्वं फरुसं गिरं सोच्चा निसम्म इमेणं एयारूवेणं मणोमाणसिएणं महया पुत्तदुक्खेणं अभिभूया समाणी सेयागयरोमकूवपगलंत-चिलिणगाया सोयभरपवेवियंगी नित्तेया दीण-विमण-वयणा करयलमलिय व्व कमलमाला तक्खणओलुग्ग-दुब्बलसरीर-लावण्णसुन्न-निच्छाय-गयसिरीया पसिढिलभूसण-पडंतखुम्मियसंचुण्णियधवलवलय-पब्भट्ठउत्तरिज्जा सूमाल-विकिण्ण-केसहत्था मुच्छावसनट्ठचेय-गरुई परसुनियत्त व्व चंपगलया निव्वत्तमहे व्व इंदलट्ठी विमुक्कसंधिबंधणा कोट्टिमतलंसि सव्वंगेहिं धसत्ति पडिया।।

धारिणी की शोकाकुलदशा-पद

१०५. धारिणी देवी उस अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ, अमनोहर, अश्रुतपूर्व और कटुवाणी को सुनकर, अवधारण कर मन की गहराई में रहे हुए महान पुत्रदुःख से अभिभूत हो उठी। उसके रोम कूपों में स्वेद आ गया। उसके श्रवण से शरीर गीला हो गया। शोक के आघात से उसके अंग कांपने लगे। वह निस्तेज हो गई। उसका मुंह दीन और विमनस्क हो गया। वह हाथ से मली हुई कमल माला की भांति हो गई। उसका शरीर उसी क्षण रुग्ण, दुर्बल, लावण्य शून्य, आभा शून्य और श्रीविहीन हो गया। गहने शिथिल हो गये। धवल-कंगन धरती पर गिरकर मोच खा कर खण्ड-खण्ड हो गये। उत्तरीय खिसक गया। सुकोमल केश-राशि बिखर गयी। मूर्च्छा वश चेतना के नष्ट होने से उसका शरीर भारी हो गया। परशु से छिन्न चम्पकलता की भांति और उत्सव की समाप्ति पर इन्द्रयष्टि की भांति उसके सन्धिबन्धन शिथिल हो गये। वह अपने सम्पूर्ण शरीर के साथ रत्नजड़ित आंगन में धम से गिर पड़ी।[१]

धारिणीए मेहस्स य परिसंवाद-पदं

१०६. तए णं सा धारिणी देवी ससंभमोवत्तियाए तुरियं कंचणभिंगारमुहविणिग्गयसीयलजलविमलधाराए परिसिंचमाण-

धारिणी और मेघ का परिसंवाद-पद

१०६. संभ्रम और त्वरा के साथ चेटिका द्वारा डाली गई, सोने की झारी के मुंह से निकली, शीतल जल की निर्मल धारा के परिसिंचन से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निव्वावियगायलट्ठी उक्खेवय-तालविंट-वीयणग-जणियवाएणं सफुसिएणं अंतेउर-परिजणेणं आसासिया समाणी मुत्तावलि-सन्निगास-पवडंत-अंसुधाराहिं सिंचमाणी पओहरे, कलुण-विमण-दीणा रोयमाणी कंदमाणी तिप्पमाणी सोयमाणी विलवमाणी मेहं कुमारं एवं वयासी--

तुमं सि णं जाया! अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणभूए जीविय-उस्सासिए हियय-णंदि-जणणे उंबरपुप्फं व दुल्लहे सवणयाए, किमंग पुण पासणयाए? नो खलु जाया! अम्हे इच्छामो खणमवि विप्पओगं सहित्तए। तं भुंजाहि ताव जाया! विपुले माणुस्सए कामभोगे जाव ताव वयं जीवामो। तओ पच्छा अम्हेहिं कालगएहिं परिणयवए वड्ढिय-कुलवंसतंतु-कज्जम्मि निरावयक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि।।

धारिणी देवी की गात्र-यष्टि में शीतलता व्याप गई। उत्क्षेपक, तालवृन्त और वीजनक[100] अर्थात् पंखों से उठने वाली जल मिश्रित हवा के संस्पर्श से तथा अन्तःपुर के परिजनों द्वारा वह आश्वस्त हुई। मुक्तावली की भांति गिरती हुई अश्रुधारा से पयोधरों को सींचती हुई, करुण, विमनस्क और दीन धारिणी देवी, रोती, कलपती, आंसू बहाती, शोक करती और विलपती हुई कुमार मेघ से इस प्रकार बोली--

जात! तुम हमारे एक मात्र पुत्र इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर स्थिरतर, विश्वनीय, सम्मत, बहुमत, अनुमत और आभरण करण्डक के समान हो, तुम रत्न, रत्नभूत (चिन्तामणि आदि के समान) जीवन उच्छ्वास (प्राण) और हृदय को आनन्दित करने वाले हो। तुम उदुम्बर पुष्प के समान श्रवण दुर्लभ हो[101] फिर दर्शन का तो प्रश्न ही क्या?

जात! हम क्षण भर भी तुम्हारा वियोग सहना नहीं चाहते। इसलिए जात! तुम तब तक मनुष्य सम्बन्धी विपुल काम-भोगों का भोग करो, जब तक हम जीवित हैं। उसके पश्चात् जब हम कालप्राप्त हो जाएं, तुम्हारी वय परिपक्व हो जाए, तुम कुल-वंश के तन्तुओं को बढ़ाकर, इतर कार्यों से निरपेक्ष बन, श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित हो जाना।

१०७. तए णं से मेहे कुमारे अम्मापिऊहिं एवं वुत्ते समाणे अम्मापियरो एवं वयासी--तहेव णं तं अम्मो! जहेव णं तुब्भे ममं एवं वयह--तुमं सि णं जाया! अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणभूए जीविय-उस्सासिए हियय-णंदि-जणणे उंबरपुप्फं व दुल्लहे सवणयाए, किमंग पुण पासणयाए? नो खलु जाया! अम्हे इच्छामो खणमवि विप्पओगं सहित्तए। तं भुंजाहि ताव जाया! विपुले माणुस्सए कामभोगे जाव ताव वयं जीवामो। तओ पच्छा, अम्हेहिं कालगएहिं परिणयवए वड्ढिय-कुलवंसतंतु-कज्जम्मि निरावयक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि।"

एवं खलु अम्मयाओ! माणुस्सए भवे अधुवे अणितिए असासए वसणसओवद्दवाभिभूते विज्जुलयाचंचले अणिच्चे जलबुब्बुयसमाणे कुसग्गजलबिंदुसन्निभे संझब्भरागसरिसे सुविणदंसणोवमे सडण-पडण-विद्धंसण-धम्मे पच्छा पुरं च णं अवस्सविप्पजहणिज्जे। से के णं जाणइ अम्मयाओ! के पुव्विं गमणाए के पच्छा गमणाए? तं इच्छामि णं अम्मयाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।।

१०७. माता-पिता द्वारा ऐसा कहने पर कुमार मेघ उनसे इस प्रकार बोला--माता-पिता! यह वैसा ही हैं, जैसा तुम मुझ से कह रहे हो कि--जात! तुम हमारे एक मात्र पुत्र इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर, स्थिरतर, विश्वसनीय, सम्मत, बहुमत, अनुमत, आभरण करण्डक के समान हो, तुम रत्न, रत्नभूत, जीवन, उच्छ्वास (प्राण) और हृदय को आनन्दित करने वाले हो। तुम उदुम्बर पुष्प के समान श्रवण दुर्लभ हो, फिर दर्शन का तो प्रश्न ही क्या?

जात! हम क्षण भर भी तुम्हारा वियोग सहना नहीं चाहते। इसलिए जात! तुम तब तक मनुष्य-सम्बन्धी विपुल काम-भोगों का भोग करो, जब तक हम जीवित हैं। उसके पश्चात् जब हम काल-प्राप्त हो जाएं, तुम्हारी वय परिपक्व हो जाए, तुम कुल-वंश के तन्तुओं को बढ़ाकर, इतर कार्यों से निरपेक्ष बन, श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित हो जाना।

किन्तु माता-पिता! यह मनुष्य जीवन अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत सैकड़ों कष्टों और उपद्रवों से अभिभूत, विद्युतलता की भांति चंचल, जल के बुदबुदे, डाभ की नौक पर स्थित जलकण, सन्ध्याकालीन अभ्रराग और स्वप्नदर्शन के समान अनित्य है। यह सड़ने गिरने और विध्वस्त हो जाने वाला है। पहले या पीछे अवश्य छोड़ना है। अतः माता-पिता! कौन जानता है कि कौन पहले जाएगा? कौन पश्चात् जायेगा? अत एव माता-पिता! मैं तुम्हारे द्वारा अनुज्ञात होकर श्रमण भगवान महावीर के पास, मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित हो जाऊं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०८. तए णं तं मेहं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी--इमाओ ते जाया! सरिसियाओ सरित्तयाओ सरिव्वयाओ सरिसलावण्ण-रूव-जोव्वण-गुणोववेयाओ सरिसेहिंतो रायकुलेहिंतो आणिल्लियाओ भारियाओ। तं भुंजाहि णं जाया! एयाहिं सद्धिं विउले माणुस्सए कामभोगे। पच्छा भुत्तभोगे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि।।

१०८. माता-पिता ने कुमार मेघ से इस प्रकार कहा--जात! ये तुम्हारी भार्याएं, जो एक जैसी, समान त्वचा वाली, समान वय वाली, समान लावण्य, रूप, यौवन तथा गुणों से उपेत और सदृश राजकुलों से आई हुई हैं। इसलिए हे जात! तुम इनके साथ विपुल मनुष्य सम्बन्धी काम भोगों का भोग करो। इसके पश्चात् भुक्त भोगी होकर श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित हो जाना।

१०९. तए णं से मेहे कुमारे अम्मापियरं एवं वयासी--तहेव णं तं अम्मयाओ! जं णं तुब्भे ममं एवं वयह--इमाओ ते जाया! सरिसियाओ सरित्तयाओ सरिव्वयाओ सरिसलावण्ण-रूव-जोव्वण-गुणोववेयाओ सरिसेहिंतो रायकुलेहिंतो आणिल्लियाओ भारियाओ। तं भुंजाहि णं जाया! एयाहिं सद्धिं विउले माणुस्सए कामभोगे। पच्छा भुत्तभोगे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि।"

एवं खलु अम्मयाओ! माणुस्सगा कामभोगा असुई वंतासवा पित्तासवा खेलासवा सुक्कासवा सोणियासवा दुरुय-उस्सास-नीसासा दुरुय-मुत्त-पुरीस-पूय-बहुपडिपुण्णा उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाणग-वंत-पित्त-सुक्क-सोणियसंभवा अधुवा अणितिया असासया सडण-पडण-विद्धंसणधम्मा पच्छा पुरं च णं अवस्सविप्पजहणिज्जा।

से के णं जाणइ अम्मयाओ! के पुव्विं गमणाए के पच्छा गमणाए? तं इच्छामि णं अम्मयाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।।

१०९. कुमार मेघ ने माता-पिता से इस प्रकार कहा--माता-पिता! यह वैसा ही है, जैसा तुम मुझे कह रहे हो कि जात! ये तुम्हारी भार्याएं जो एक जैसी, समान त्वचा वाली, समान वय वाली, समान लावण्य, रूप, यौवन तथा गुणों से उपेत और सदृश राजकुलों से आई हुई हैं। इसलिए जात! तुम इनके साथ विपुल मनुष्य -सम्बन्धी काम-भोगों का भोग करो। इसके पश्चात् भुक्त भोगी बन, श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित हो जाना।

किन्तु माता-पिता! ये मनुष्य सम्बन्धी काम-भोग अशुचि हैं। क्योंकि मनुष्य के शरीरों से वमन, पित्त, कफ, शुक्र और शोणित झरते रहते हैं। उच्छ्वास-निःश्वास से दुर्गन्ध आती है। ये दुर्गन्धित मल-मूत्र और पीव से प्रतिपूर्ण होते हैं। ये मल-मूत्र कफ, नाक के मैल, वमन, पित्त, शुक्र और शोणित से उत्पन्न होते हैं। ये अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत, तथा सड़ने, गिरने और विध्वस्त हो जाने वाले हैं। उनको पहले या पीछे अवश्य छोड़ना है।

अतः माता-पिता! कौन जानता है, कौन पहले जाएगा? कौन पीछे जाएगा? अत एव माता-पिता! मैं तुम्हारे द्वारा अनुज्ञात होकर, श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित हो जाऊं।

११०. तए णं तं मेहं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी--इमे य ते जाया! अज्जय-पज्जय-पिउपज्जयागए सुबहू हिरण्णे य सुवण्णे य कंसे य दूसे य मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण-संतसार-सावएज्जे य अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ पगामं दाउं पगामं भोत्तुं पगामं परिभाएउं। तं अणुहोही ताव जाया! विपुलं माणुस्सगं इड्ढिसक्कारसमुदयं। तओ पच्छा अणुभूयकल्लाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि।।

११०. माता-पिता ने कुमार मेघ से इस प्रकार कहा--जात! तुम्हारे पितामह, प्रपितामह और प्र-प्रपितामह से प्राप्त यह बहुत सारा हिरण्य, सुवर्ण, कांस्य बहुमूल्य वस्त्र, मणि, मौक्तिक, शंख, मैनशिल, प्रवाल, लालरत्न (पद्मरागमणि) और श्रेष्ठ सुगन्धित द्रव्य और दान-भोग आदि के लिए स्वापतेय यावत् जो सातवीं पीढ़ी तक[१०२] प्रचुर मात्रा में देने के लिए, भोगने के लिए और बांटने के लिए पर्याप्त है। अतः जात! तुम मनुष्य सम्बन्धी विपुल ऋद्धि, सत्कार और समुदय का अनुभव करो। उसके अनन्तर कल्याण का अनुभव कर, श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित हो जाना।

१११. तए णं से मेहे कुमारे अम्मापियरं एवं वयासी--तहेव णं तं अम्मयाओ! जं णं तुब्भे ममं एवं वयह--"इमे ते जाया! अज्जग-पज्जग- पिउपज्जयागए सुबहू हिरण्णे य सुव्वणे य कंसे य दूसे य मणि- मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण-संतसार-सावएज्जे य अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ पगामं दाउं

१११. कुमार मेघ ने माता-पिता से इस प्रकार कहा--माता-पिता! यह वैसा ही है, जैसा तुम मुझसे कह रहे हो-जात! तुम्हारे पितामह, प्रपितामह और प्र-प्रपितामह से प्राप्त यह बहुत सारा हिरण्य, सुवर्ण, कांस्य, बहुमूल्य वस्त्र, मणि, मौक्तिक, शंख, मैनशिल प्रवाल, लालरत्न, श्रेष्ठ सुगन्धित द्रव्य और दान भोग आदि के लिए स्वापतेय है जो सातवीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पगामं भोत्तुं पगामं परिभाएउं। तं अणुहोही ताव जाया! विपुलं माणुस्सगं इड्ढिसक्कारसमुदयं। तओ पच्छा अणुभूयकल्लाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि।"

एवं खलु अम्मयाओ! हिरण्णे य जाव सावएज्जे य अग्गिसाहिए चोरसाहिए रायसाहिए दाइयसाहिए मच्चुसाहिए, अग्गिसामण्णे चोरसामण्णे रायसामण्णे दाइयसामण्णे मच्चुसामण्णे सडण-पडण-विद्धंसणधम्मे पच्छा पुरं च णं अवस्सविप्पजहणिज्जे। से के णं जाणइ अम्मयाओ! के पुव्विं गमणाए के पच्छा गमणाए? तं इच्छामि णं अम्मयाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए॥

पीढ़ी तक प्रचुर मात्रा में देने, प्रचुर मात्रा में भोगने और प्रचुर मात्रा में बांटने के लिए पर्याप्त है। अतः जात! तुम इस मनुष्य सम्बन्धी विपुल ऋद्धि, सत्कार और समुदय का अनुभव करो। उसके अनन्तर कल्याण का अनुभव कर श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित हो जाना।"

माता-पिता! हिरण्य यावत् स्वापतेय अग्नि साधित है--अग्नि जला सकती है। चोर साधित है--चोर चुरा सकते हैं। राज साधित है--राजा अधिकृत कर सकता है। दायाद साधित है--भागीदार विभाजित कर सकते हैं। और मृत्यु साधित है--मृत्यु उससे वंचित कर सकती है। अग्नि सामान्य--अग्नि का स्वामित्व है। चोर सामान्य--चोर का स्वामित्व है। राज सामान्य--राजा का स्वामित्व है। दायाद सामान्य-- भागीदार का स्वामित्व है। और मृत्यु सामान्य--मृत्यु का स्वामित्व है। यह सड़ने, गिरने और विध्वस्त हो जाने वाला है। उसे पहले या पीछे अवश्य छोड़ना है। माता-पिता! कौन जानता है, कौन पहले जाएगा? कौन पीछे जाएगा? अतएव माता-पिता! मैं तुमसे अनुज्ञात होकर, श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित हो जाऊं।

११२. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो जाहे नो संचाएंति मेहं कुमारं--बहूहिं विसयाणुलोमाहिं आघवणाहि य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य आघवित्तए वा पण्णवित्तए वा सण्णवित्तए वा विण्णवित्तए वा ताहे विसयपडिकूलाहिं संजमभउव्वेय-कारियाहिं पण्णवणाहिं पण्णवेमाणा एवं वयासी--एस णं जाया! निग्गंथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवलिए पडिपुण्णे नेयाउए संसुद्धे सल्लगत्तणे सिद्धिमग्गे मुत्तिमग्गे निज्जाणमग्गे निव्वाणमग्गे सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे, अहीव एगंतदिट्ठिए, खुरो इव एगंतधाराए, लोहमया इव जवा चावेयव्वा, वालुयाकवले इव निरस्साए, गंगा इव महानई पडिसोयगमणाए, महासमुद्दो इव भुयाहिं दुत्तरे, तिक्खं कमियव्वं, गरुअं लंबेयव्वं, असिधारव्वयं चरियव्वं। नो खलु कप्पइ जाया! समणाणं निग्गंथाणं आहाकम्मिए वा उद्देसिए वा कीयगडे वा ठविए वा रइए वा दुब्भिक्खभत्ते वा कंतारभत्ते वा वद्दलियाभत्ते वा गिलाणभत्ते वा मूलभोयणे वा कंदभोयणे वा फलभोयणे वा बीयभोयणे वा हरियभोयणे वा भोत्तए वा पायए वा।

तुमं च णं जाया! सुहसमुचिए नो चेव णं दुहसमुचिए, नालं सीयं नालं उण्हं नालं खुहं नालं पिवासं नालं वाइय-पित्तिय-सिंभिय- सन्निवाइए विविहे रोगायंके, उच्चावए गामकंटए, बावीसं परीसहोवसग्गे

उदिण्णे सम्मं अहियासित्तए। भुंजाहि ताव जाया! माणुस्सए कामभोगे। तओ पच्छा भुत्तभोगी समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि॥

११२. कुमार मेघ के माता-पिता जब बहुत सारे विषयों के प्रति अनुकूल बनाने वाले बहुत आख्यान, प्रज्ञापन, संज्ञापन और विज्ञापनों के द्वारा उसे आख्यात, प्रज्ञप्त, संज्ञप्त और विज्ञप्त करने में समर्थ नहीं हुए, तब वे विषय से विरक्त किन्तु संयम के प्रति भय और उद्वेग उत्पन्न करने वाले, प्रज्ञापन के द्वारा प्रज्ञापना करते हुए इस प्रकार बोले-"जात! यह निर्ग्रन्थ-प्रवचन सत्य, अनुत्तर, अद्वितीय, प्रतिपूर्ण, नैर्यात्रिक (मोक्ष तक पहुंचाने वाला) संशुद्ध, शल्य को काटने वाला, सिद्धि का मार्ग, मुक्ति का मार्ग, मोक्ष का मार्ग, शांति का मार्ग और समस्त दुःखों के क्षय का मार्ग है। किन्तु यह सांप की भांति एकान्त दृष्टि[१०३] (एकाग्र दृष्टि) द्वारा साध्य है, क्षुर की भांति एकान्त धार द्वारा साध्य है, इसमें लोहे के यव चबाने होते हैं। यह बालु के कोर की तरह निःस्वाद है। यह महानदी गंगा में प्रतिस्रोत-गमन जैसा है। यह महासमुद्र को भुजाओं से तैरने जैसा दुस्तर है। यह तीक्ष्ण काँटो पर चंक्रमण करने, भारी भरकम वस्तु को उठाने और तलवार की तीक्ष्ण धार पर चलने जैसा है।

जात! श्रमण-निर्ग्रन्थों को आधाकर्मिक, औद्देशिक, क्रीतकृत, स्थापित, रचित, दुर्भिक्ष-भक्त, कान्तार-भक्त, वार्दलिका-भक्त, ग्लान-भक्त,[१०४] मूल-भोजन, कन्द-भोजन, फल-भोजन, बीज-भोजन और हरित-भोजन खाना व पीना नहीं कल्पता।

जात! तुम सुख भोगने योग्य हो, दुःख भोगने योग्य नहीं हो। तुम सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, वात्तिक, पैत्तिक, श्लेष्मिक तथा सान्निपातिक विविध प्रकार के रोग और आतंक तथा उच्चावच इन्द्रियों के विषय, उदीर्ण बाईस परीषह और उपसर्ग--इन सबको सहन करने में समर्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं हो। इसलिए जात! तुम पहले मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों का भोग करो। उसके बाद भुक्त भोगी बन, श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित हो जाना।"

११३. तए णं से मेहे कुमारे अम्मापिऊहिं एवं वुत्ते समाणे अम्मापियरं एवं वयासी--तहेव णं तं अम्मयाओ! जं णं तुब्भे ममं एवं वयह--"एस णं जाया! निग्गंथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवलिए पडिपुण्णे नेयाउए संसुद्धे सल्लगत्तणे सिद्धिमग्गे मुत्तिमग्गे निज्जाणमग्गे निव्वाणमग्गे सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे, अहीव एगंतदिट्ठिए, खुरो इव एगंतधाराए, लोहमया इव जवा चावेयव्वा, वालुयाकवले इव निरस्साए, गंगा इव महानई पडिसोयगमणाए, महासमुद्दो इव भूयाहिं दुत्तरे, तिक्खं कमियव्वं, गरुअं लंबेयव्वं, असिधारव्वयं चरियव्वं। नो खलु कप्पइ जाया! समणाणं निग्गंथाणं आहाकम्मिए वा उद्देसिए वा कीयगडे वा ठविए वा रइए वा दुब्भिक्खभत्ते वा कंतारभत्ते वा वद्दलियाभत्ते वा गिलाणभत्ते वा मूलभोयणे वा कंदभोयणे वा फलभोयणे वा बीयभोयणे वा हरियभोयणे वा भोत्तए वा पायए वा।

तुमं च णं जाया! सुहसमुचिए नो चेव णं दुहसमुचिए, नालं सीयं नालं उण्हं नालं खुहं नालं पिवासं नालं वाइय-पित्तिय-सिंभिय-सन्निवाइए विविहे रोगायंके, उच्चावए गामकंटए बावीसं परीसहोवसग्गे उदिण्णे सम्मं अहियासित्तए। भुंजाहि ताव जाया! माणुस्सए कामभोगे। तओ पच्छा भुत्तभोगी समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि।" एवं खलु अम्मयाओ! निग्गंथे पावयणे कीवाणं कायराणं कापुरिसाणं इहलोगपडिबद्धाणं परलोगनिप्पिवासाणं दुरणुचरे पाययजणस्स, नो चेव णं धीरस्स निच्छियववसियस्स एत्थ किं दुक्करं करणयाए?

तं इच्छामि णं अम्मयाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।।

११३. माता-पिता द्वारा ऐसा कहने पर कुमार मेघ ने उनसे इस प्रकार कहा--'माता-पिता!' यह वैसा ही है, जैसा तुम मुझसे कह रहे हो--"जात! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य, अनुत्तर, अद्वितीय, प्रतिपूर्ण, नैर्यात्रिक, संशुद्ध, शल्य को काटने वाला, सिद्धि का मार्ग, मुक्ति का मार्ग, मोक्ष का मार्ग, शांति का मार्ग और समस्त दुःखों को क्षीण करने का मार्ग है। किन्तु यह सांप की भांति एकान्त दृष्टि द्वारा साध्य है। क्षुर की भान्ति एकान्त धार द्वारा साध्य है। इसमें लोह के यव चबाने होते हैं। यह बालु के कोर की तरह निःस्वाद है। यह महानदी गंगा में प्रतिस्रोत गमन जैसा है। यह महासमुद्र को भुजाओं से तैरने जैसा दुस्तर है। यह तीखे कांटो पर चंक्रमण करने, भारी भरकम वस्तु को उठाने और तलवार की तीक्ष्ण धार पर चलने जैसा है।

जात! श्रमण-निग्रन्थों को आधाकर्मिक, औद्देशिक, क्रीतकृत, स्थापित, रचित, दुर्भिक्ष-भक्त, कान्तार-भक्त, वार्दलिका-भक्त, ग्लान-भक्त, मूल-भोजन, कन्द-भोजन, फल-भोजन, बीज-भोजन अथवा हरित-भोजन खाना व पीना नहीं कल्पता।

जात! तुम सुख भोगने योग्य हो, दुःख भोगने योग्य नहीं। तुम सर्दी, गर्मी, भूख और प्यास, वात्तिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक तथा सान्निपातिक विविध प्रकार के रोग और आतंक, उच्चावच इन्द्रियों के विषय तथा उदीर्ण बाईस परीषह और उपसर्ग-इन सब को सहन करने में समर्थ नहीं हो।

इसलिए जात! तुम पहले मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों का भोग करो। उसके बाद भुक्त भोगी बन श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित हो जाना।"

माता-पिता! यह निर्ग्रन्थ-प्रवचन क्लीब, कायर, कापुरुष, इहलोक से प्रतिबद्ध, परलोक से पराङ्मुख, प्राकृत--साधारण मनुष्य के लिए इसका आचरण करना दुष्कर है। धीर, कृत-निश्चय और व्यवसाय सम्पन्न (उपाय-प्रवृत्त) व्यक्तियों के लिए संयम का आचरण किञ्चित भी दुष्कर नहीं है।

इसलिए माता-पिता! मैं चाहता हूं, तुम्हारे द्वारा अनुज्ञात हो कर श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित हो जाऊँ।[१०५]

मेहस्स एगदिवसरज्ज-पदं

११४. तए णं तं मेहं कुमारं अम्मापियरो जाहे नो संचाएंति बहूहिं विसयाणुलोमाहि य विसयपडिकूलाहि य आघवणाहि य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य आघवित्तए वा पण्णवित्तए वा सण्णवित्तए वा विण्णवित्तए वा ताहे अकामकाइं चेव मेहं कुमारं एवं वयासी--इच्छामो ताव जाया! एगदिवसमवि ते रायसिरिं पासित्तए।।

मेघ का एक दिवसीय-राज्य पद

११४. कुमार मेघ के माता-पिता विषय के प्रति अनुरक्त बनाने वाले और विषयों से विरक्त करने वाले बहुत आख्यान, प्रज्ञापन, संज्ञापन और विज्ञापनों के द्वारा उसे आख्यात, प्रज्ञप्त, संज्ञप्त और विज्ञप्त करने में समर्थ नहीं हुए, तब अनिच्छा पूर्वक उन्होंने कुमार मेघ को कहा--जात! हम तुम्हें एक दिन के लिए राज्यश्री से संपन्न देखना चाहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११५. तए णं से मेहे कुमारे अम्मापियरमणुवत्तमाणे तुसिणीए संचिट्ठइ ।।

११५. कुमार मेघ माता-पिता की इच्छा का अनुवर्तन करता हुआ मौन हो गया।

११६. तए णं से सेणिए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! मेहस्स कुमारस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायाभिसेयं उवट्ठवेह ।।

११६. राजा श्रेणिक ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! शीघ्र ही कुमार मेघ के लिए महान अर्थ वाला महान मूल्य वाला और महान अर्हता वाला विपुल राज्याभिषेक (राज्याभिषेक योग्य सामग्री) उपस्थित करो।

११७. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा मेहस्स कुमारस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायाभिसेयं उवट्ठवेंति ।।

११७. उन कौटुम्बिक पुरुषों ने कुमार मेघ के लिए महान अर्थवाला, महान मूल्य वाला और महान अर्हता वाला विपुल राज्याभिषेक उपस्थित किया।

११८. तए णं से सेणिए राया बहूहिं गणनायगेहि य जाव संधिवालेहि य सद्धिं संपरिवुडे मेहं कुमारं अट्ठसएणं सोवण्णियाणं कलसाणं एवं--रुप्पमयाणं कलसाणं मणिमयाणं कलसाणं सुवण्णरुप्पमयाणं कलसाणं, सुवण्णमणिमयाणं कलसाणं रुप्पमणिमयाणं कलसाणं सुवण्णरुप्पमणिमयाणं कलसाणं, भोमेज्जाणं कलसाणं सव्वोदएहिं सव्वमट्टियाहिं सव्वपुप्फेहिं सव्वगंधेहिं सव्वमल्लेहिं सव्वोसहीहिं सिद्धत्थएहि य सव्विड्ढीए सव्वज्जुईए सव्वबलेणं जाव दुंदुभि-निग्घोस-णाइयरवेणं महया-महया रायाभिसेएणं अभिसिंचइ, अभिसिंचित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—जय-जय नंदा! जय-जय भद्दा!

जय-जय नंदा! भद्दं ते अजियं जिणाहि, जियं पालयाहि, जियमज्झे वसाहि, (अजियं जिणाहि सत्तुपक्खं, जियं च पालेहि मित्तपक्खं,) इंदो इव देवाणं चमरो इव असुराणं धरणो इव नागाणं चंदो इव ताराणं भरहो इव मणुयाणं रायगिहस्स नगरस्स अन्नेसिं च बहूणं गामागर-नगर-खेड-कब्बड-दोणमुह-मडंब-पट्टण-आसम-निगम-संबाह-सण्णिवेसाणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महयाहय-नट्ट-गीय-वाइय-तंती-तल-ताल-तुडिय-घण-मुइंग-पडुप्पवाइयरवेणं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहराहि त्ति कट्टु जय-जय-सद्दं पउंजंति ।।

११८. बहुत से गणनायक यावत् सन्धिपाल के साथ संपरिवृत होकर उस श्रेणिक राजा ने कुमार मेघ को एक सौ आठ स्वर्णमय कलशों, रुप्यमय कलशों, मणिमय कलशों, सुवर्ण रुप्यमय कलशों, सुवर्ण-मणिमय कलशों, रुप्य-मणिमय कलशों, सुवर्ण रुप्य मणिमय कलशों और भौमेय (मिट्टी के) कलशों से सब प्रकार के उदक, सब प्रकार की मिट्टी[१०६], फूल, गन्धद्रव्य, माला, औषधि, श्वेत सर्षप, सम्पूर्ण ऋद्धि, सम्पूर्ण द्युति, सम्पूर्ण बल यावत् दुन्दुभि के निर्घोष से नादित शब्द के द्वारा महान राज्याभिषेक से अभिषिक्त किया। अभिषिक्त कर दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली अंजली को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिका कर इस प्रकार कहा--

हे नन्द! (समृद्ध पुरुष) तुम्हारी जय हो, जय हो।

हे भद्र पुरुष ! तुम्हारी जय हो, जय हो।

हे नन्द ! तुम्हारी जय हो, जय हो, भद्र हो। अजित को जीतो। जित की पालना करो। जीते हुए लोगों के मध्य में निवास करो। (अजित शत्रु पक्ष को जीतो, जित मित्र पक्ष का पालन करो।) जैसे देवों में इन्द्र, असुरों में चमरेन्द्र, नागों में धरणेन्द्र, तारागण में चन्द्र और मनुष्यों में भरत की भांति राजगृह नगर के तथा अन्य बहुत सारे ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्बट, द्रोणमुख, मडम्ब, पत्तन, आश्रम, निगम, संबाध और सन्निवेशों[१०७] का आधिपत्य, पौरपत्य, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरत्व, आज्ञा-ऐश्वर्य और सेनापतित्व करते हुए, उनका पालन करते हुए वह आहत नाट्यों, गीतों तथा कुशल वादक के द्वारा बजाए गए वादित्र, तंत्री, तल, ताल, त्रुटित, घन और मृदंग की महान ध्वनि से युक्त विपुल भोगार्ह भोगों को भोगते हुए विहार करो--इस प्रकार उसने जय-जय शब्द का प्रयोग किया।

११९. तए णं से मेहे राया जाए—महयाहिमवंत-महंत-मलय-मंदर--महिंदसारे जाव रज्जं पसासेमाणे विहरइ ।।

११९. वह कुमार मेघ राजा हो गया। महान हिमालय, महान, मलय, मेरु और महेन्द्र की भांति यावत् राज्य का प्रशासन करता हुआ विहार करने लगा।

१२०. तए णं तस्स मेहस्स रण्णो (तं मेहं रायं?) अम्मापियरो एवं

१२०. उस समय मेघ के (उस राजा मेघ को?) माता-पिता इस प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वयासी--भण जाया! किं दलयामो? किं पयच्छामो? किं वा ते हियइच्छिए सामत्थे?

बोले--जात! बताओ हम क्या दें? क्या वितरण करें? तुम्हारे अंतर्मन की अभ्यर्थना क्या है?

मेहस्स निक्खमणपाओग्ग-उवगरण-पदं

मेघ के निष्क्रमण प्रायोग्य उपकरण-पद

१२१. तए णं से मेहे राया अम्मापियरो एवं वयासी--इच्छामि णं अम्मयाओ! कुत्तियावणाओ रयहरणं पडिग्गहं च आणियं, कासवयं च सद्दावियं।।

१२१. राजा मेघ ने माता-पिता से इस प्रकार कहा--माता-पिता! मैं कुत्रिकापण से[१०८] रजोहरण और पात्र को लाना और नापित को बुलाना चाहता हूं।

१२२. तए णं से सेणिए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! सिरिघराओ तिण्णि सयसहस्साइं गहाय दोहिं सयसहस्सेहिं कुत्तियावणाओ रयहरणं पडिग्गहं च उवणेह, सयसहस्सेणं कासवयं सद्दावेह।।

१२२. राजा श्रेणिक ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! श्रीगृह से तीन लाख मुद्रा लेकर जाओ। दो लाख मुद्रा के द्वारा कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र लाओ और एक लाख मुद्रा के द्वारा नापित को बुलाओ।

१२३. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा सिरिघराओ तिण्णि सयसहस्साइं गहाय कुत्तियावणाओ दोहिं सयसहस्सेहिं रयहरणं पडिग्गहं च उवणेंति, सयसहस्सेणं कासवयं सद्दावेंति।।

१२३. कौटुम्बिक पुरुष राजा श्रेणिक द्वारा ऐसा कहने पर हृष्ट तुष्ट हो गए। वे श्रीगृह से तीन लाख मुद्राएं ग्रहण कर दो लाख मुद्राओं के द्वारा कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र लाए और एक लाख मुद्रा के द्वारा नापित को बुलाया।

कासवेणं मेहस्स अग्गकेसकप्पण-पदं

नापित के द्वारा मेघ का अग्रकेश-कल्पन-पद

१२४. तए णं से कासवए तेहिं कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविए समाणे हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए जाव हरिसवसविसप्पमाणहियए ण्हाए कयबलिकम्मे कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं वत्थाइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे जेणेव सेणिए राया, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सेणियं रायं करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी--संदिसह णं देवाणुप्पिया! जं मए करणिज्जं।।

१२४. वह नापित उन कौटुम्बिक पुरुषों के द्वारा बुलाए जाने पर हृष्ट तुष्ट और आनन्दित चित्त वाला हो गया यावत् हर्ष से विकस्वर हृदय वाला हो गया। नापित ने स्नान कर, बलिकर्म किया, कौतुक (तिलक आदि) मंगल (दधि-अक्षत आदि) और प्रायश्चित्त किया। पवित्र स्थान में प्रवेश योग्य मांगलिक वस्त्रों को विधिवत पहना। अल्पभार और बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया। जहाँ राजा श्रेणिक था, वहां आया। वहां आकर दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली अंजली को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर राजा श्रेणिक से इस प्रकार बोला--देवानुप्रिय! मुझे जो करणीय है, उसका संदेश दें।

१२५. तए णं से सेणिए राया कासवयं एवं वयासी--गच्छाहि णं तुब्भे देवाणुप्पिया! सुरभिणा गंधोदएणं निक्के हत्थपाए पक्खालेहि, सेयाए चउप्फलाए पोत्तीए मुहं बंधित्ता मेहस्स कुमारस्स चउरंगुलवज्जे निक्खमणपाउग्गे अग्गकेसे कप्पेहि।।

१२५. राजा श्रेणिक ने नापित को इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! तुम जाओ, सुरभित गन्धोदक से भलीभांति हाथ-पैरों का प्रक्षालन करो। प्रक्षालन कर चार पट वाले श्वेत वस्त्र से[१०९] मुख को बांधकर कुमार मेघ के चार अंगुल छोड़कर निष्क्रमण-प्रायोग्य अग्र-केशों को काटो।

१२६. तए णं से कासवए सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए जाव हरिसवस-विसप्पमाणहियए करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं सामि! त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता सुरभिणा गंधोदएणं (निक्के?) हत्थपाए पक्खालेइ, पक्खालेत्ता सुद्धवत्थेणं मुहं बंधइ, बंधित्ता परेणं जत्तेणं मेहस्स कुमारस्स चउरंगुलवज्जे निक्खमणपाउग्गे

१२६. राजा श्रेणिक द्वारा ऐसा कहने पर नापित हृष्ट तुष्ट और आनन्दित चित्त वाला हो गया यावत् उसका हृदय हर्ष से विकस्वर हो गया। यावत् वह दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट आकार वाली अंजली को सिर के सम्मुख घुमाकर बोला--स्वामी 'जैसी आपकी आज्ञा'--यह कहकर विनय पूर्वक वचन को स्वीकार किया। स्वीकार कर सुरभित गन्धोदक से हाथ-पैर का प्रक्षालन किया। प्रक्षालन कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अग्गकेसे कप्पेति ।।

शुद्ध वस्त्र से मुख को बांधा। बांधकर परम यत्न से कुमार मेघ के चार अंगुल छोड़कर निष्क्रमणप्रायोग्य अग्रकेशों को काटा।

१२७. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स माया महरिहेणं हंसलक्खणेणं पडसाडएणं अग्गकेसे पडिच्छइ, पडिच्छित्ता सुरभिणा गंधोदएणं पक्खालेइ, पक्खालेत्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं चच्चाओ दलयइ, दलइत्ता सेयाए पोत्तीए बंधइ, बंधित्ता रयणसमुग्गयंसि पक्खिवइ, मंजूसाए पक्खिवइ, हार-वारिधार-सिंदुवार-छिन्नमुत्तावलि-प्पगासाइं अंसूइं विणिम्मुयमाणी-विणिम्मुयमाणी, रोयमाणी-रोयमाणी, कंदमाणी-कंदमाणी, विलवमाणी-विलवमाणी एवं वयासी--एस णं अम्हं मेहस्स कुमारस्स अब्भुदएसु य उस्सवेसु य पसवेसु य तिहीसु य छणेसु य जन्नेसु य पव्वणीसु य--अपच्छिमे दरिसणे भविस्सइ त्ति कट्टु उस्सीसामूले ठवेइ ।।

१२७. कुमार मेघ की माता ने महामूल्यवान हंस लक्षण पट शाटक में[११०] अग्र-केशों को ग्रहण किया। ग्रहणकर सुरभित गन्धोदक प्रक्षालन किया। प्रक्षालन कर सरस गोशीर्ष चन्दन से चर्चित किया। चर्चित कर श्वेत-वस्त्र में बांधा, बांधकर रत्न करण्डक में रखा। उस करण्डक को मंजुषा में रखा। हार, जलधारा, सिन्दुवार, निर्गुण्डी के फूल और टूटी हुई मोतियों की लड़ी के समान, बार-बार आंसु बहाती, रोती, क्रन्दन और विलाप करती हुई इस प्रकार बोली--"अभ्युदय, उत्सव, जन्म-प्रसंग, पुण्यतिथि, इन्द्रोत्सव, यज्ञ और पर्वणी (पूर्णिमा आदि) तिथियों में[१११] कुमार मेघ का यह अन्तिम दर्शन होगा" ऐसा कहकर उस मंजूषा को अपने सिरहाने के नीचे रखा।

मेहस्स अलंकरण-पदं

मेघ का अलंकरण-पद

१२८. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो उत्तरावक्कमणं सीहासणं रयावेंति, मेहं कुमारं दोच्चं पि तच्चं पि सेयापीएहिं कलसेहिं ण्हावेंति ण्हावेत्ता पम्हलसूमालाए गंधकासाइयाए गायाइं लूहेंति, लूहेत्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं गायाइं अणुलिंपंति, अणुलिंपित्ता नासा-नीसासवाय-वोज्झं वरणगरपट्टणुग्गयं कुसलणरपसंसितं अस्सलालापेलवं छेयायरियकणग-खचियंतकम्मं हंसलक्खणं पडसाडगं नियंसेंति, हारं पिणद्धेंति, अद्धहारं पिणद्धेंति, एवं--एगावलिं मुत्तावलिं कणगावलिं रयणावलिं पालंबं पायपलंबं कडगाइं तुडिगाइं केऊराइं अंगयाइं दसमुद्दियाणंतयं कडिसुत्तयं कुंडलाइं चूडामणिं रयणुक्कडं मउडं--पिणद्धेंति, पिणद्धेत्ता गंथिम-वेढिम-पूरिम-संघाइमेणं--चउव्विहेणं मल्लेणं कप्परुक्खगं पिव अलंकिय-विभूसियं करेंति ।।

१२८. कुमार मेघ के माता-पिता ने उत्तराभिमुख सिंहासन की रचना करवायी। करवाकर कुमार मेघ को दूसरी तीसरी बार भी श्वेत और पीत कलशों से स्नान करवाया। स्नान करवाकर रोयेंदार सुकुमार, सुरभित गंध वस्त्र से गात्र को पोंछा। पोंछकर सरस गोशीर्ष चंदन का गात्र पर अनुलेप किया। अनुलेप कर नासिका की निःश्वास वायु से उड़ने वाला, प्रवर नगरों और पत्तनों में निर्मित, कुशल पुरुषों द्वारा प्रशंसित, अश्व की लार से भी अधिक प्रतनु, कोमल, किनार पर छेक आचार्यों द्वारा निकाली गयी सोने की कढ़ाई से युक्त एक हंस-लक्षण पट-शाटक पहनाया। हार और अर्द्ध हार पहनाया। इसी प्रकार एकावली मुक्तावली, कनकावली, रत्नावली, कण्ठा, पैरों तक लटकता हुआ कण्ठा, कड़े, बाजूबन्ध, केयूर, अंगद, दसों अंगुलियों में मुद्रिकाएं, करधनी, कुण्डल, चूड़ामणि और रत्नों से दीप्त मुकुट पहनाया। पहनाकर गुंथी (ग्रंथित) हुई, वेष्टित, पूरित और संहृत की हुई इन चार प्रकार की मालाओं से कुमार मेघ को कल्पवृक्ष की भांति अलंकृत, विभूषित कर दिया।[११२]

मेहस्स अभिनिक्खमणमहुस्सव-पदं

मेघ का अभिनिष्क्रमण महोत्सव-पद

१२९. तए णं से सेणिए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अणेगखंभसय-सण्णिविट्ठं लीलट्ठिय-सालभंजियागं ईहामिय-उसभ-तुरय-नर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्तं घंटावलि-महुर-मणहरसरं सुभ-कंत-दरिसणिज्जं निउणोविय-मिसिमिसेंत-मणिरयणघंटियाजालपरिक्खित्तं अब्भुग्गय-वइरवेइया-परिगयाभिरामं विज्जाहरजमल-जंतजुत्तं पिव अच्चीसहस्समालणीयं रूवगसहस्सकलियं भिसमाणं भिब्भिसमाणं चक्खुल्लोयणलेस्सं सुहफासं सस्सिरीयरूवं सिग्घं तुरियं चवलं वेइयं

१२९. राजा श्रेणिक ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार बोला--देवानुप्रिय! सैंकड़ों खम्भों से युक्त नृत्य करती पुतलियों से उत्कीर्ण, ईहामृग, बैल, घोड़ा, मनुष्य, मगरमच्छ, पक्षी, सर्प, किन्नर, मृग, अष्टापद, चमरी गाय, हाथी, अशोक आदि की लता, पद्मलता--इनकी भांतों से चित्रित, घण्टावली के मधुर और मनोहर स्वरवाली, शुभ, कमनीय, दर्शनीय, निपुण शिल्पियों द्वारा परिकर्मित, देदीप्यमान मणि और रत्नमय घण्टिका-जाल से घिरी हुई, ऊपर उठी हुई वज्रमय वेदिका के योग से अभिराम, यंत्र से संचालित विद्याधर-युगल की प्रतिमा से युक्त, रत्नों की हजारों रश्मियों से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरिससहस्सवाहिणीयं सीयं उवट्ठवेह।।

शोभित, उनमें बिम्बित होने वाले हजारों प्रतिबिम्बों से कमनीय, देदीप्यमान, अतिशय देदीप्यमान, देखते ही दृष्टि को बांध लेने वाली, स्पर्श-सुखद और सश्रीक हो तथा जो शीघ्रता, त्वरता, चपलता और उतावलेपन से वहन की जाए, ऐसी हजार पुरुषों के द्वारा वहन की जाने वाली शिविका उपस्थित करो।

१३०. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा हट्ठतुट्ठा, अणेगखंभसय-सण्णिविट्ठं जाव सीयं उवट्ठवेंति।।

१३०. हृष्ट-तुष्ट हुए उन कौटुम्बिक पुरुषों ने सैंकड़ों खम्भों वाली यावत् शिविका को उपस्थित किया।

१३१. तए णं से मेहे कुमारे सीयं दुरुहइ, दुरुहित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे।।

१३१. वह कुमार मेघ शिविका पर आरूढ़ हुआ। आरूढ़ होकर प्रवर सिंहासन पर पूर्वाभिमुख हो बैठ गया।

१३२. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स माया ण्हाया कयबलिकम्मा जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा सीयं दुरुहइ, दुरुहित्ता मेहस्स कुमारस्स दाहिणपासे भद्दासणंसि निसीयइ।।

१३२. कुमार मेघ की माता ने स्नान किया, बलिकर्म किया, यावत् अल्पभार और बहुमूल्य वाले आभरणों से शरीर को अलंकृत किया। शिविका पर आरूढ़ हुई। आरूढ़ होकर कुमार मेघ के दक्षिण पार्श्व में भद्रासन पर आसीन हुई।

१३३. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अंबधाई रयहरणं च पडिग्गहं च गहाय सीयं दुरुहइ, दुरुहित्ता मेहस्स कुमारस्स वामपासे भद्दासणंसि निसीयइ।।

१३३. कुमार मेघ की धाय माता रजोहरण और पात्र को लेकर शिविका पर आरूढ़ हुई। आरूढ़ होकर कुमार मेघ के वाम पार्श्व में भद्रासन पर आसीन हुई।

१३४. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स पिट्ठओ एगा वरतरुणी सिंगारागारचारुवेसा संगय-गय-हसिय-भणिय-चेट्ठिय-विलास-संलावुल्लाव-निउणजुत्तोवयारकुसला आमेलगजमलजुयल- वट्टिय-अब्भुण्णय-पीण-रइय-संठिय पओहरा हिम-रयय-कुदेंदुपगासं सकोरेंटमल्लदामं धवलं आयवत्तं गहाय सलीलं ओहारेमाणी-ओहारेमाणी चिट्ठइ।।

१३४. कुमार मेघ के पीछे एक प्रवर तरुणी मूर्तिमान, शृंगार और सुन्दर वेश वाली, चलने, हंसने, बोलने और चेष्टा करने में निपुण तथा विलास, संलाप और उल्लाप[१११] में निपुण और समुचित उपचार में कुशल, परस्पर सटे हुए सम श्रेणि स्थित, वर्तुल, उन्नत, पीन, रतिसुखद और संस्थित पयोधरों वाली, हिम, रजत, कुंद-पुष्प और चन्द्रमा जैसे कटसरैया के फूलों से बनी माला और दाम से युक्त धवल छत्र को लेकर लीला सहित धारण करती हुई, धारण करती हुई खड़ी हो गई।

१३५. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स दुवे वरतरुणीओ सिंगारागार-चारुवेसाओ संगय-गय-हसिय-चेट्ठिय-विलास-संलावुल्लाव-निउणजुत्तोवयारकुसलाओ सीयं दुरुहंति, दुरुहित्ता मेहस्स कुमारस्स उभओ पासं नाणामणि-कणग-रयण-महरिहतवणिज्जुज्जल-विचित्तदंडाओ चिल्लियाओ सुहुमवरदीहवालाओ संखकुंद- दगरय-अमयमहियफेणपुंज-सण्णिगासाओ चामराओ गहाय सलीलं ओहारेमाणीओ-ओहारेमाणीओ चिट्ठंति।।

१३५. कुमार मेघ के दोनों ओर दो प्रवर तरुणियां मूर्त्तिमान शृंगार और सुन्दर वेश वाली, चलने, हंसने, बोलने और चेष्टा करने में निपुण, विलास, संलाप और उल्लाप में निपुण, समुचित उपचार में कुशल शिविका पर आरूढ़ हुई। आरूढ़ होकर वे कुमार मेघ के दोनों ओर नाना मणि, कनक, रत्न और बहुमूल्य, तपनीय, रक्तस्वर्ण से निर्मित, उज्ज्वल और विचित्र दण्ड वाले दीप्तिमान, सूक्ष्म, प्रवर दीर्घ बालों वाले, शंख, कुन्दपुष्प, जलकण, अमृत और मथित फेनपुंज जैसे चामरों को लेकर लीला सहित वीजन करती हुई, वीजन करती हुई खड़ी हो गई।

१३६. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स एगा वरतरुणी सिंगारा-गारचारुवेसा संगय-गय-हसिय-भणिय-चेट्ठिय-विलास-

१३६. कुमार मेघ के सामने एक प्रवर तरुणी शृंगार और सुन्दर वेश वाली, चलने, हंसने, बोलने और चेष्टा करने में निपुण, विलास, संलाप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संलावुल्लाव-निउणजुत्तो-वयारकुसला सीयं दुरुहइ, दुरुहित्ता मेहस्स कुमारस्स पुरओ पुरत्थिमे णं चंदप्पभवइर-वेरुलियविमलदंडं तालियंटं गहाय चिट्ठइ।।

और उल्लाप में निपुण और समुचित उपचार में कुशल शिविका पर आरूढ़ हुई। आरूढ़ होकर वह कुमार मेघ के आगे पूर्व दिशा की ओर मुंह किये, चन्द्रप्रभ मणि, वज्र और वैडूर्य रत्नों के विमल दण्डवाले तालवृन्त (वीजन) को लेकर खड़ी हो गई।

१३७. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स एगा वरतरुणी सिंगारागारचारुवेसा संगयगय-हसिय-भणिय-चेट्ठिय-विलास-संलावुल्लाव-निउणजुत्तोवयार-कुसला सीयं दुरुहइ, दुरुहित्ता मेहस्स कुमारस्स पुव्वदक्खिणे णं सेयं रययामयं विमलसलिलपुण्णं मत्तगयमहा-मुहाकितिसमाणं भिंगारं गहाय चिट्ठइ।।

१३७. कुमार मेघ के सामने एक प्रवर तरुणी शृंगार और सुन्दर वेश वाली, चलने, हंसने, बोलने में और चेष्टा करने में निपुण, विलास, संलाप और उल्लाप में निपुण और समुचित उपचार में कुशल शिविका पर आरूढ़ हुई। आरूढ़ होकर वह कुमार मेघ के पूर्व-दक्षिण भाग में, श्वेत रजतमय, विमल सलिल से परिपूर्ण मत्त हाथी के विशाल मुख की आकृति के समान झारी लेकर खड़ी हो गई।

१३८. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स पिया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! सरिसयाणं सरित्तयाणं सरिव्वयाणं एगाभरण-गहिय-निज्जोयाणं कोडुंबियवरतरुणाणं सहस्सं सद्दावेह।।

१३८. कुमार मेघ के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो ! शीघ्र ही सदृश, समान त्वचा वाले, समान वय वाले, एक जैसे आभरण और वेष, कमरबन्ध धारण किए हुए, एक हजार प्रवर तरुण कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाओ।

१३९. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सरिसयाणं सरित्तयाणं सरिव्वयाणं एगाभरण-गहिय-निज्जोयाणं कोडुंबियवरतरुणाणं सहस्सं सद्दावेंति।।

१३९. उन कौटुम्बिक पुरुषों ने सदृश, समान त्वचा वाले, समान वय वाले, एक जैसे आभरण, वेश और कमरबन्ध धारण किए हुए एक हजार प्रवर तरुण कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया।

१४०. तए णं ते कोडुंबियवरतरुणपुरिसा सेणियस्स रण्णो कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठा ण्हाया जाव (सव्वालंकारविभूसिया?) एगाभरण-गहिय-णिज्जोया जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सेणियं रायं एवं वयासी--संदिसह णं देवाणुप्पिया! जं णं अम्हेहिं करणिज्जं।।

१४०. वे प्रवर तरुण कौटुम्बिक पुरुष राजा श्रेणिक के निर्देशानुसार बुलाए जाने पर हर्षित हो गए। उन्होंने स्नान कर यावत् (सब प्रकार के अंलकारों से विभूषित हो?) एक जैसे आभरण और वेष, कमर-बन्ध धारण कर, जहां राजा श्रेणिक था वहां आए। वहां आकर राजा श्रेणिक से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! हमें जो करणीय है उसका संदेश दें।

१४१. तए णं से सेणिए राया तं कोडुंबियवरतरुणसहस्सं एवं वयासी--गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! मेहस्स कुमारस्स पुरिससहस्स-वाहिणीयं सीयं परिवहेह।।

१४१. राजा श्रेणिक ने उन हजार प्रवर तरुण कौटुम्बिक पुरुषों से इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम जाओ और हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली कुमार मेघ की शिविका का वहन करो।

१४२. तए णं तं कोडुंबियवरतरुणसहस्सं सेणिएणं रण्णा एवं वुत्तं संतं हट्ठं मेहस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणीयं सीयं परिवहइ।।

१४२. राजा श्रेणिक द्वारा ऐसा कहने पर हर्षित हुए उन हजार प्रवर तरुण कौटुम्बिक पुरुषों ने कुमार मेघ की हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली शिविका को वहन किया।

१४३. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणीयं सीयं दुरूढस्स समाणस्स इमे अट्ठट्ठमंगलया तप्पढमयाए पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थिया, तं जहा--सोवत्थिय-सिरिवच्छ-नंदियावत्त-वद्धमाणग-भद्दासण-कलस-मच्छ-दप्पणया जाव बहवे अत्थत्थिया कामत्थिया भोगत्थिया लाभत्थिया किव्विसिया कारोडिया कारवाहिया संखिया चक्किया नंगलिया मुहमंगलिया वद्धमाणा

१४३. हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली शिविका पर आरूढ़ हुए कुमार मेघ के आगे-आगे सबसे पहले ये आठ-आठ मंगल क्रमशः प्रस्थान कर रहे थे जैसे--सौवस्तिक, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त, वर्द्धमानक,[११४] भद्रासन, कलश, मत्स्य और दर्पण (फिर लम्बे जुलूस के बाद) यावत बहुत धनार्थी, कामार्थी, भोगार्थी, लाभार्थी, किल्विष्क(विदूषक), कापालिक कर-पीड़ित अथवा सेवा में व्यापृत, शंख-वादक, चक्रधारी, किसान,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूसमाणया खंडियगणा ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं मणाभिरामाहिं हिययगमणिज्जाहिं वग्गूहिं जयविजयमंगलसएहिं अणवरयं अभिनंदंता य अभिथुणंता य एवं वयासी--

जय-जय नंदा! जय-जय भद्दा! जय-जय नंदा! भद्दं ते। अजियं जिणाहि इंदियाइं, जियं च पालेहि समणधम्मं, जियविग्घो वि य वसाहि तं देवा! सिद्धिमज्झे, निहणाहि रागदोसमल्ले तवेण धिइ- धणिय-बद्धकच्छो, मद्दाहि य अट्ठकम्मसत्तू झाणेणं उत्तमेणं सुक्केणं अप्पमत्तो, पावय वितिमिरमणुत्तरं केवलं नाणं, गच्छ य मोक्खं परमं पयं सासयं च अयलं, हंता परीसहचमूणं, अभीओ परीसहोवसग्गाणं, धम्मे ते अविग्घं भवउ त्ति कट्टु पुणो-पुणो मंगल-जयसद्दं पउंजंति।।

मंगल-पाठक, विशिष्ट प्रकार का नृत्य करने वाले, घोषणा करने वाले और छात्रगण इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर, मनोभिराम और हृदय का स्पर्श करने वाली वाणी के द्वारा और जय-विजय के मंगल शब्दों से अनवरत अभिनन्दन और अभिस्तवन करते हुए इस प्रकार बोले--

हे नन्द पुरुष! तुम्हारी जय हो, जय हो।

हे कल्याण कारक! तुम्हारी जय हो, जय हो।

हे नन्द पुरुष! तुम्हारी जय-जय हो, कल्याण हो।

इन्द्रियां अजित हैं, उन्हें जीतो। श्रमणधर्म जित हैं उसकी पालना करो। हे देव! विघ्नों को जीत कर सिद्धि मध्य में निवास करो। धृति का सुदृढ़ कच्छा बांधकर तप के द्वारा राग द्वेष रूपी मल्लों का हनन करो। अप्रमत्त हो उत्तम शुक्ल ध्यान के द्वारा अष्ट कर्म शत्रुओं का मर्दन करो। तमरहित अनुत्तर केवलज्ञान को प्राप्त करो। शाश्वत, अचल, परमपद मोक्ष का वरण करो। परीषह की सेना को हत-प्रहत करो। परीषह और उपसर्गों से अभय बनो। तुम्हारी धर्म की आराधना निर्विघ्न हो। इस प्रकार उन्होंने पुनः पुनः मंगल-जय ध्वनि का प्रयोग किया।

१४४. तए णं से मेहे कुमारे रायगिहस्स नगरस्स मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव गुणसिलए चेइए तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ पच्चोरुहइ।।

१४४. कुमार मेघ ने राजगृह नगर के बीचों बीच से होकर निष्क्रमण किया। निष्क्रमण कर जहां गुणशिलक चैत्य था, वहां आया। वहां आकर हजारों पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली शिविका से नीचे उतरा।

सिस्सभिक्खादाण-पदं

शिष्य-भिक्षा-दान-पद

१४५. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो मेहं कुमारं पुरओ कट्टु जेणामेव समणे भगवं महावीरे तेणामेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेंति, करेत्ता वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--एस णं देवाणुप्पिया! मेहे कुमारे अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणभूए जीवियऊसासए हिययणंदिजणए उंबरपुप्फं पिव दुल्लहे सवणयाए, किमंग पुण दरिसणयाए?

से जहानामए उप्पले ति वा पउमे ति वा कुमुदे ति वा पंके जाए जले संवड्ढिए नोवलिप्पइ पंकरएणं नोवलिप्पइ जलरएणं, एवामेव मेहे कुमारे कामेसु जाए भोगेसु संवड्ढिए नोवलिप्पइ कामरएणं नोवलिप्पइ भोगरएणं। एस णं देवाणुप्पिया! संसारभउव्विग्गे भीए जम्मण-जर-मरणाणं, इच्छइ देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए। अम्हे णं देवाणुप्पियाणं सिस्सभिक्खं दलयामो। पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया! सिस्सभिक्खं।।

१४५. कुमार मेघ के माता-पिता कुमार मेघ को आगे कर जहां श्रमण भगवान महावीर थे, वहां आए। वहां आकर श्रमण भगवान महावीर को दांयी ओर से प्रारम्भ कर तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर वन्दना-नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार कर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! यह कुमार मेघ हमारा एकमात्र पुत्र, इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर, स्थिरतर, विश्वसनीय सम्मत, बहुमत, अनुमत, आभरण करण्डक के समान, रत्न, रत्नभूत, जीवन, उच्छ्वास(प्राण) और हृदय को आनन्दित करने वाला है। यह उदुम्बर पुष्प के समान श्रवण-दुर्लभ है। फिर दर्शन का तो कहना ही क्या?

जैसे उत्पल, पद्म अथवा कमल पंक में उत्पन्न जल में संवर्धित होता है, किन्तु पंक-रज और जलरज से उपलिप्त नहीं होता, वैसे ही कुमार मेघ कामों में उत्पन्न हुआ, भोगों में संवर्धित हुआ, किन्तु वह काम-रज और भोग-रज से उपलिप्त नहीं है।

देवानुप्रिय! यह संसार भय से उद्विग्न है। जन्म, जरा और मृत्यु से भीत है। यह देवानुप्रिय के पास मुण्ड होकर, अगार से अनगारता में प्रव्रजित होना चाहता है। इसलिए हम इसे देवानुप्रिय को शिष्य की भिक्षा के रूप में देना चाहते हैं।

देवानुप्रिय! शिष्या की भिक्षा को स्वीकार करो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४६. तए णं समणे भगवं महावीरे मेहस्स कुमारस्स अम्मापिऊहिं एवं वुत्ते समाणे एयमट्ठं सम्मं पडिसुणेइ।।

१४६. कुमार मेघ के माता-पिता द्वारा ऐसा कहने पर श्रमण भगवान महावीर ने उनके इस अर्थ को सम्यक् स्वीकार किया।

१४७. तए णं से मेहे कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, सयमेव आभरण-मल्लालंकारं ओमुयइ।।

१४७. कुमार मेघ श्रमण भगवान महावीर के पास से उठकर उत्तर पूर्व दिशा (ईशान कोण) में गया, वहां उसने स्वयं ही आभरण, माल्य और अलंकार उतारे।

१४८. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स माया हंसलक्खणेणं पडसाडएणं आभरणमल्लालंकारं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता हार-वारिधार-सिंदुवार-छिन्नमुत्तावलिप्पगासाइं अंसूणि विणिम्मुयमाणी-विणिम्मुयमाणी रोयमाणी-रोयमाणी कंदमाणी-कंदमाणी विलवमाणी-विलवमाणी एवं वयासी--जइयव्वं जाया! घडियव्वं जाया! परक्कमियव्वं जाया! अस्सिं च णं अट्ठे नो पमाएयव्वं। अम्हंपि णं एसेव मग्गे भवउ त्ति कट्टु मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।।

१४८. कुमार मेघ की माता ने हंस लक्षण पट शाटक(विशाल वस्त्र) में आभरण माल्य और अलंकार स्वीकार किए। स्वीकार कर हार, जलधार, सिन्दुवार के फूल और टूटी हुई मोतियों की लड़ी के समान बार-बार आंसू बहाती, रोती, कलपती और विलपती हुई इस प्रकार बोली--

जात ! संयम में प्रयत्न करना। जात! संयम में चेष्टा करना। जात! संयम में पराक्रम करना।[११५] इस अर्थ में प्रमाद मत करना! हमारा भी यह मार्ग हो--ऐसा कहकर कुमार मेघ के माता-पिता ने श्रमण भगवान महावीर को वंदना-नमस्कार किया। वंदना-नमस्कार कर जिस दिशा से आये थे उसी दिशा में लौट गये।

मेहस्स पव्वज्जागहण-पदं

मेघ द्वारा प्रव्रज्या-ग्रहण-पद

१४९. तए णं से मेहे कुमारे सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करेत्ता जेणामेव समणे भगवं महावीरे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--आलित्ते णं भंते! लोए, पलित्ते णं भंते! लोए, आलित्त पलित्ते णं भंते! लोए जराए मरणेण य।

से जहानामए केइ गाहावई अगारंसि झियायमाणंसि जे तत्थ भंडे भवइ अप्पभारे मोल्लगरुए तं गहाय आयाए एगंतं अवक्कमइ--एस मे नित्थारिए समाणे पच्छा पुरा य लोए हियाए सुहाए खमाए निस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ। एवामेव मम वि एगे आयाभंडे इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे। एस मे नित्थारिए समाणे संसारवोच्छेयकरे भविस्सइ। तं इच्छामि णं देवाणुप्पिएहिं सयमेव पव्वावियं सयमेव मुंडावियं सयमेव सेहावियं सयमेव सिक्खावियं सयमेव आयार-गोयर-विणय-वेणइय-चरण-करण-जायामायावत्तियं धम्ममाइक्खियं।।

१४९. कुमार मेघ ने स्वयं ही पंच मुष्टि लोच किया। लोच कर जहां श्रमण भगवान महावीर थे वहां आया। आकर श्रमण भगवान महावीर को दायीं ओर से प्रारम्भ कर तीन बार प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा कर वन्दन नमस्कार किया। वन्दन नमस्कार कर इस प्रकार बोला--भंते! यह लोक बुढ़ापे और मौत से आदीप्त हो (जल) रहा है। भंते! यह लोक बुढ़ापे और मौत से प्रदीप्त हो रहा है। भंते! यह लोक बुढ़ापे और मौत से आदीप्त प्रदीप्त हो रहा है।

जैसे कोई गृहपति के घर में आग लग जाने पर वह वहां जो अल्पभार वाला और बहुमूल्य आभरण होता है उसे लेकर स्वयं एकांत स्थान में चला जाता है।(और सोचता है) कि अग्नि से निकला हुआ यह आभरण पहले अथवा पीछे मेरे लिए हित, सुख, क्षेम, निःश्रेयस और आनुगामिकता के लिए होगा। वैसे ही मेरा शरीर भी उपकरण है। यह मुझे इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ और मनोहर है। मेरे द्वारा इसका निस्तार होने पर यह संसार का उच्छेद करने वाला होगा। अतः देवानुप्रिय! मैं आपके द्वारा ही प्रव्रजित होना चाहता हूं। मैं आपके द्वारा ही मुण्डित होना चाहता हूं। मैं आपके द्वारा ही शैक्ष बनना चाहता हूं, मैं आपके द्वारा ही शिक्षा प्राप्त करना चाहता हूं, मैं आपके द्वारा ही आचार, गोचर, विनय, वैनयिक चरण, करण और यात्रा मात्रा मूलक धर्म का आख्यान चाहता हूं।[११६]

१५०. तए णं समणे भगवं महावीरे मेहं कुमारं सयमेव पव्वावेइ सयमेव मुंडावेइ सयमेव सेहावेइ सयमेव सिक्खावेइ सयमेव आयार-गोयर-विणय-वेणइय-चरण-करण-जायामायावत्तियं

१५०. श्रमण भगवान महावीर ने कुमार मेघ को स्वयं ही प्रव्रजित किया, स्वयं ही मुण्डित किया, स्वयं ही शैक्ष बनाया, स्वयं ही अभ्यास कराया और स्वयं ही आचार, गोचर, विनय, वैनयिक, चरण, करण, यात्रा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धम्ममाइक्खइ--एवं देवाणुप्पिया! गंतव्वं, एवं चिट्ठियव्वं, एवं निसीयव्वं, एवं तुयट्टियव्वं, एवं भुंजियव्वं, एवं भासियव्वं, एवं उट्ठाए उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमियव्वं, अस्सिं च णं अट्ठे नो पमाएयव्वं।।

मात्रामूलक धर्म का आख्यान किया। देवानुप्रिय! इस प्रकार (संयम पूर्वक) चलो, इस प्रकार खड़े रहो, इस प्रकार बैठो, इस प्रकार लेटो, इस प्रकार खाओ, इस प्रकार बोलो[११७] इस प्रकार जागरुक भाव से जागृत रह कर, प्राण, भूत, जीव और सत्वों के प्रति संयमपूर्ण प्रवृत्ति करो और इस अर्थ में प्रमाद मत करो।

१५१. तए णं से मेहे कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए इमं एयारूवं धम्मियं उवएसं सम्मं पडिवज्जइ--तमाणाए तह गच्छइ, तह चिट्ठइ, तह निसीयइ, तह तुयट्टइ, तह भुंजइ, तह भासइ, तह उट्ठाए उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमइ।।

१५१. कुमार मेघ ने श्रमण भगवान महावीर के पास इस विशिष्ट धार्मिक उपदेश को सम्यक् स्वीकार किया। वह भगवान की आज्ञा से संयम पूर्वक चलता, संयम पूर्वक खड़ा रहता, संयम पूर्वक बैठता, संयम पूर्वक लेटता,[११८] संयम पूर्वक खाता, संयम पूर्वक बोलता और जागरूक भाव से जागृत रहकर प्राण, भूत, जीव और सत्वों के प्रति[११९] संयमपूर्ण प्रवृत्ति करने लगा।

मेहस्स मणो-संकिलेस-पदं

मेघ का मन:संक्लेश-पद

१५२. जद्दिवसं च णं मेहे कुमारे मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, तस्स णं दिवसस्स पच्चावरण्हकालसमयंसि समणाणं निग्गंथाणं अहाराइणियाए सेज्जा-संथारएसु विभज्जमाणेसु मेहकुमारस्स दारमूले सेज्जा-संथारए जाए यावि होत्था।।

१५२. जिस दिन कुमार मेघ मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित हुआ, उस दिन सन्ध्या के उपरान्त दीक्षा-पर्याय के क्रम से श्रमण निर्ग्रन्थों के शयनस्थल और संस्तारकों का विभाग किया गया। कुमार मेघ को शयनस्थल और संस्तारक दरवाजे के बीच में मिला।

१५३. तए णं समणा निग्गंथा पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि वायणाए पुच्छणाए परियट्टणाए धम्माणुजोगचिंताए य उच्चारस्स वा पासवणस्स वा अइगच्छमाणा य निग्गच्छमाणा य अप्पेगइया मेहं कुमारं हत्थेहिं संघट्टेंति अप्पेगइया पाएहिं संघट्टेंति अप्पेगइया सीसे संघट्टेंति अप्पेगइया पोट्टे संघट्टेंति अप्पेगइया कायंसि संघट्टेंति अप्पेगइया ओलंडेंति अप्पेगइया पोलंडेंति अप्पेगइया पाय-रय-रेणु-गुंडियं करेंति। एमहालियं च रयणिं मेहे कुमारे नो संचाएइ खणमवि अच्छिं निमीलित्तए।।

१५३. पूर्वरात्रापरात्र (मध्यरात्रि) में वाचना, प्रच्छना, परिवर्तना, धर्मानुयोग का चिन्तन और उच्चार या प्रस्रवण के हेतु आते-जाते श्रमण-निर्ग्रन्थों में से कुछेक कुमार मेघ के हाथ को छू जाते, कुछेक पांवों को छू जाते, कुछेक सिर को छू जाते, कुछेक पेट को छू जाते, कुछेक शरीर को छू जाते, कुछेक उसे लांघकर चले जाते, कुछेक उसे बार-बार लांघकर चले जाते और कुछेक अपने पैरों की रजों से उसे धूलि-लिप्त कर देते, इस कारण इतनी लम्बी रात में भी कुमार मेघ क्षण भर आंख नहीं मूंद सका।

१५४. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--एवं खलु अहं सेणियस्स रण्णो पुत्ते धारिणीए देवीए अत्तए मेहे इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणभूए जीविय-उस्सासए हियय-णंदि-जणणे उंबर-पुप्फं व दुल्लहे सवणयाए। तं जया णं अहं अगारमज्झावसामि तया णं ममं समणा निग्गंथा आढायंति परियाणंति सक्कारेंति सम्माणेंति, अट्ठाइं हेऊइं पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं आइक्खंति, इट्ठाहिं कंताहिं वग्गूहिं आलवेंति संलवेंति। जप्पभिइं च णं अहं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, तप्पभिइं च णं ममं समणा निग्गंथा नो आढायंति नो परियाणंति नो सक्कारेंति नो सम्माणेंति नो अट्ठाइं हेऊइं पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं आइक्खंति, नो इट्ठाहिं कंताहिं वग्गूहिं आलवेंति संलवेंति। अदुत्तरं च णं ममं

१५४. कुमार मेघ के मन में इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--मैं राजा श्रेणिक का पुत्र और धारिणी देवी का आत्मज मेघ, उन्हें इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर, स्थिरतर, विश्वसनीय, सम्मत, बहुमत, अनुमत और आभरण-करण्डक के समान, रत्न, रत्नभूत, जीवन, उच्छ्वास, हृदय को आनन्दित करने वाला और उदुम्बर पुष्प के समान श्रवण दुर्लभ हूं।

जब मैं गृहवास में था, तब ये श्रमण निर्ग्रन्थ मेरा आदर करते थे। मेरी ओर ध्यान देते थे। मेरा सत्कार करते थे। सम्मान करते थे। अर्थ, हेतु, प्रश्न, कारण और व्याकरण[१२०] का आख्यान करते थे। इष्ट और कांत वाणी से आलाप-संलाप करते थे। जिस समय से मैं मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित हुआ हूं, उस समय से ये श्रमण-निर्ग्रन्थ न मेरा आदर करते हैं, न मेरी ओर ध्यान देते हैं न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समणा निग्गंथा राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि वायणाए पुच्छणाए परियट्टणाए धम्माणुजोगचिंताए य उच्चारस्स वा पासवणस्स वा अइगच्छमाणा य निग्गच्छमाणा य अप्पेगइया हत्थेहिं संघट्टेंति अप्पेगइया पाएहिं संघट्टेंति अप्पेगइया सीसे संघट्टेंति, अप्पेगइया पोट्टे संघट्टेंति अप्पेगइया कायंसि संघट्टेंति अप्पेगइया ओलंडेंति अप्पेगइया पोलंडेंति अप्पेगइया पाय-रय-रेणु-गुंडियं करेंति। एमहालियं च णं रत्तिं अहं नो संचाएमि अच्छिं निमिल्लावेत्तए (निमीलित्तए?)। तं सेयं खलु मज्झ कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते समणं भगवं महावीरं आपुच्छित्ता पुणरवि अगारमज्झावसित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता अट्ट-दुहट्ट-वसट्ट-माणसगए निरयपडिरूवियं च णं तं रयणिं खवेइ, खवेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए सुविमलाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ जाव पज्जुवासइ।।

मुझे सत्कृत करते हैं, न सम्मानित करते हैं, न अर्थ, हेतु, प्रश्न, कारण और व्याकरण का आख्यान करते है और न इष्ट एवं कांत वाणी से आलाप-संलाप करते है।

ये श्रमण-निर्ग्रन्थ रात्रि में पूर्वरात्रापरात्र में वाचना, प्रच्छना परिवर्तना, धर्मानुयोग का चिन्तन और उच्चार या प्रस्रवण के हेतु आते-जाते हुए कुछेक मेरे हाथों को छू जाते। कुछेक पावों को छू जाते, कुछेक सिर को छू जाते, कुछेक पेट को छू जाते, कुछेक शरीर को छू जाते, कुछेक मुझे लांघकर जाते, कुछेक बार-बार लांघ कर चले जाते और कुछेक अपने पैरों की रजों से मुझे धूलि-लिप्त कर जाते, इस कारण से इतनी लम्बी रात में भी मैं आंख नहीं मूंद सका।

अत: मेरे लिए उचित है, मैं उषाकाल में, पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर श्रमण भगवान महावीर से पूछ, पुन: घर में चला जाऊं--वह ऐसी संप्रेक्षा करने लगा। संप्रेक्षा कर आर्त्त, दु:ख से आर्त्त और कामना से आर्त्त मानस वाले मेघ ने नरक के समान वह रात बिताई।[१२१]

उषाकाल में रात्रि के निर्मल हो जाने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर, तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर कुमार मेघ जहां श्रमण भगवान महावीर थे वहां आया। वहां आकर उसने श्रमण भगवान महावीर को दायीं ओर से प्रारम्भ कर तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर वंदन नमस्कार किया, यावत् पर्युपासना करने लगा।

मेहस्स संबोध-पदं

१५५. तए णं मेहाइ! समणे भगवं महावीरे मेहं कुमारं एवं वयासी--से नूणं तुमं मेहा! राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि समणेहिं निग्गंथेहिं वायणाए पुच्छणाए परियट्टणाए धम्माणुजोगचिंताए य उच्चारस्स वा पासवणस्स वा अइगच्छमाणेहि य निग्गच्छमाणेहि य अप्पेगइएहिं हत्थेहिं संघट्टिए अप्पेगइएहिं पाएहिं संघट्टिए अप्पेगइएहिं सीसे संघट्टिए अप्पेगइएहिं पोट्टे संघट्टिए अप्पेगइएहिं कायंसि संघट्टिए अप्पेगइएहिं ओलंडिए अप्पगइएहिं पोलंडिए अप्पेगइएहिं पाय-रय-रेणु-गुंडिए कए। एमहालियं च णं राइं तुमं नो संचाएसि मुहुत्तमवि अच्छिं निमिल्लावेत्तए। तए णं तुज्झ मेहा! इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--जया णं अहं अगारमज्झावसामि तया णं ममं समणा निग्गंथा आढायंति परियाणंति सक्कारेंति सम्माणेंति अट्ठाइं हेऊइं पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं आइक्खंति, इट्ठाहिं कंताहि वग्गूहिं आलवेंति संलवेंति। जप्पभिइं च णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि तप्पभिइं च णं ममं समणा निग्गंथा नो आढायंति जाव संलवेंति। अदुत्तरं च णं ममं समणा निग्गंथा राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि अप्पेगइया जाव पाय-रय-रेणु-गुंडियं करेंति। तं सेयं खलु मम

मेघ को संबोध-पद

१५५. मेघ! श्रमण भगवान महावीर ने कुमार मेघ को इस प्रकार कहा--मेघ! रात्रि में पूर्वरात्रापरात्र में वाचना, प्रच्छना, परिवर्तना, धर्मानुयोग का चिन्तन, उच्चार या प्रस्रवण के हेतु आते-जाते हुए श्रमण-निग्रन्थों में से कुछेक तेरे हाथों को छू गये, कुछेक पेट को छू गये, कुछेक शरीर को छू गये, कुछेक तुझे लांघ कर चले गये और कुछेक बार-बार लांध कर चले गये और कुछेक ने अपने पैरों की रजों से तुझे धूलि-लिप्त कर दिया। इस कारण से इतनी लम्बी रात में तू मुहूर्त्त भर भी आंख नहीं मूंद सका।

मेघ! तब तेरे मन में इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--'जब मैं गृहवास में था, तब श्रमण-निर्ग्रन्थ मेरा आदर करते थे। मेरी ओर ध्यान देते थे। मेरा सत्कार करते थे। सम्मान करते थे। अर्थ, हेतु, प्रश्न, कारण और व्याकरण का आख्यान करते थे। इष्ट और कांत वाणी से आलाप-संलाप करते थे। जिस समय से मैं मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित हुआ हूं, उस समय से ये श्रमण-निर्ग्रन्थ न मेरा आदर करते हैं यावत् न संलाप करते हैं।

ये श्रमण-निर्ग्रन्थ रात्रि में पूर्वरात्रापरात्र में कुछेक मेरे हाथों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते भगवं महावीरं आपुच्छित्ता पुणरवि अगारमज्झे आवसित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेसि, संपेहेत्ता अट्ट-दुहट्ट-वसट्ट-माणसगए निरयपडिरूवियं च णं तं रयणिं खवेसि, खवेत्ता जेणामेव अहं तेणामेव हव्वमागए।

से नूणं मेहा! एस अत्थे समत्थे?

हंता अत्थे समत्थे।।

को छू जाते हैं, यावत् कुछेक अपने पैरों की रजों से मुझे धूलि-लिप्त कर जाते हैं। अतः मेरे लिए उचित है, मैं उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर श्रमण भगवान महावीर को पूछ पुनः घर में चला जाऊं--तूं ऐसी संप्रेक्षा करने लगा। ऐसी संप्रेक्षा कर आर्त्त, दुःख से आर्त्त और कामना से आर्त्त मानस वाले तूने नरक के समान उस रात को बिताया। रात बिताकर जहां मैं हूं वहां शीघ्र आ गया।

'मेघ यह बात सही है?'

"हां भन्ते ! सही है।"

भगवया सुमेरुप्पभ-भवनिरूवण-पदं

१५६. एवं खलु मेहा! तुमं इओ तच्चे अईए भवग्गहणे वेयड्ढगिरिपायमूले वणयरेहिं निव्वत्तियनामधेज्जे सेए संख-उज्जल-विमल-निम्मल-दहिघण-गोखीर-फेण-रयणियरप्पयासे सत्तुस्सेहे नवायए दसपरिणाहे सत्तंगपइट्ठिए सोम-सम्मिए सुरूवे पुरओ उदग्गे समूसियसिरे सुहासणे पिट्ठओ वराहे अइयाकुच्छी अच्छिद्दकुच्छी अलंबकुच्छी पलंबलंबोदराहरकरे धणुपट्ठागिति-विसिट्ठपुट्ठे अल्लीण-पमाणजुत्त-वट्टिय-पीवर-गत्तावरे अल्लीण-पमाणजुत्तपुच्छे पडिपुण्ण-सुचारुकुम्मचलणे पंडुर-सुविसुद्ध-निद्ध-निरुवहय-विंसतिनहे छद्दंते सुमेरुप्पभे नाम हत्थिराया होत्था।।

भगवान द्वारा सुमेरुप्रभ-भव का निरूपण-पद

१५६. 'मेघ! तू अतीत में इससे पूर्व तीसरे जन्म में, वैताढ्य पर्वत की तलहटी में सुमेरुप्रभ नाम का हस्तिराज था। तेरा यह नाम वनवासी लोगों ने रखा था। तूं शंख की भांति उज्ज्वल, विमल और निर्मल प्रभा वाला, दही के चक्के, गोक्षीर, फेन और चन्द्रमा जैसा श्वेत, सात हाथ ऊंचा, नौ हाथ लम्बा, दस हाथ चौड़ा, सात अंगों से प्रतिष्ठित सौम्य,[१२२] प्रमाणोपेत अंगों वाला, सुरूप, आगे से ऊंचा, उन्नत सिर वाला बैठने में सुखकर, सूअर के समान झुके हुए पृष्ठ भाग वाला और बकरी की भांति उन्नत पेट वाला था। पेट में सलवटें नहीं थी। वह लटक नहीं रहा था। गणेश की भांति अधर और शुण्डादण्ड लम्बे थे। पीठ विशिष्ट धनुषपृष्ठ के आकार जैसी थी। शरीर का अपर भाग सुव्यवस्थित, प्रमाण युक्त, वर्तुल और पुष्ट था। पूंछ सुव्यवस्थित और प्रमाणयुक्त थी। चरण प्रतिपूर्ण, सुन्दर और कछुए की भांति उभरे हुए थे। बीसों नख श्वेत, साफ, चिकने और निरुपहत थे और दांत छह थे।

१५७. तत्थ णं तुमं मेहा! बहूहिं हत्थीहि य हत्थिणियाहि य लोट्टएहि य लोट्टियाहि य कलभएहि य कलभियाहि य सद्धिं संपरिवुडे हत्थिसहस्सनायए देसए पागड्ढी पट्ठवए जूहवई वंदपरिवड्ढए, अण्णेसिं च बहूणं एकल्लाणं हत्थिकलभाण आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे विहरसि।।

१५७. मेघ! वहां तूं अनेक हाथियों, हथिनियों, छोटे-शिशुओं और वयः प्राप्त कलभों के साथ, उनसे संपरिवृत रहता था। तूं हजार हाथियों का नायक, निदेशक, अग्रगामी, कार्य नियोजक[१२३], यूथपति और अपने यूथ का संवर्द्धन करने वाला था। तूं अन्य भी बहुत सारे एकाकी हस्तिकलभों का आधिपत्य, पौरपत्य, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरत्व, आज्ञा, ऐश्वर्य और सेनापतित्व करता हुआ, उनका पालन करता हुआ विहार कर रहा था।

१५८. तए णं तुमं मेहा! निच्चप्पमत्ते सइं पललिए कंदप्परई मोहणसीले अवितण्हे कामभोगतिसिए बहूहिं हत्थीहि य हत्थिणियाहि य लोट्टएहि य लोट्टियाहि य कलभएहि य कलभियाहि य सद्धिं संपरिवुडे वेयड्ढगिरिपायमूले गिरीसु य दरीसु य कुहरेसु य कंदरासु य उज्झरेसु य निज्झरेसु य वियरएसु य गड्डासु य पल्ललेसु य चिल्ललेसु य कडगेसु य कडयपल्ललेसु य तडीसु य वियडीसु य टंकेसु य कूडेसु सिहरेसु य पब्भारेसु य मंचेसु य मालेसु य काणणेसु

१५८. मेघ! उस समय तूं नित्य प्रमत्त, सदा क्रीड़ासक्त, कामप्रिय, कामरुचि, अतृप्त और काम भोगों का प्यासा होकर, बहुत से हाथियों, हथिनियों, छोटे शिशुओं और वय प्राप्त कलभों के साथ, उनसे संपरिवृत हो, वैताढयपर्वत की तलहटियों, दरियों, खोह, कन्दराओं, जल-प्रपातों, झरनों, नालों, गड्ढों, तलाइयों छोटे-छोटे जलस्रोतों, मेखलाओं, मेखलाओं में स्थित तटीय प्रदेश, तराइयों, तराई के जंगलों, पर्वत की घाटियों वृत्त-पर्वतों, शिखरों, ढलानों, पुलियों, मालों, काननों, वनों, वनषण्डों,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

य वणेसु य वणसंडेसु य वणराईसु य नदीसु य नदीकच्छेसु य जूहेसु य संगमेसु य वावीसु य पोक्खरणीसु य दीहियासु य गुंजालियासु य सरेसु य सरपंतियासु य सरसरपंतियासु य वणयरेहिं दिन्नवियारे बहूहिं हत्थीहि य जाव सद्धिं संपरिवुडे बहुविहतरुपल्लव-पउरपाणियतणे निब्भए निरुव्विग्गे सुहंसुहेणं विहरसि।।

वनराजियों[१२४] नदियों, नदी तटों, जूहों, नदी के मुहानों, वापियों, पुष्करिणियों, दीर्घिकाओं, गुञ्जालिकाओं, सरोवरों, सरोवर-पंक्तियों, सरोवर से संलग्न सरोवर पंक्तियों में और वनचरों में मुक्त विचरण करता हुआ, बहुत से हाथियों यावत् कलभों के साथ, उनसे संपरिवृत हो, नाना प्रकार के तरुपल्लव तथा प्रचुर जल और तृणों को प्राप्त करता हुआ, निर्भय और निरुद्विग्न हो, सुखपूर्वक विहार कर रहा था।

१५९. तए णं तुमं मेहा! अण्णया कयाइ पाउस-वरिसारत्त-सरद-हेमंत-वसंतेसु कमेण पंचसु उऊसु समइक्कंतेसु गिम्हकालसमयंसि जेट्ठामूले मासे पायवघंससमुट्ठिएणं सुक्कतण-पत्त-कयवर-मारुय-संजोगदीविएणं महाभयंकरेणं हुयवहेणं वणदव-जाल-संपलित्तेसु वणंतेसु धूमाउलासु दिसासु महावाय-वेगेणं संघट्टिएसु छिण्णजालेसु आवयमाणेसु पोल्लरुक्खेसु अंतो-अंतो झियायमाणेसु मय-कुहिय-विणट्ठ किमिय-कद्दम-नईवियरगज्झीणपाणीयंतेसु वणंतेसु भिंगारकदीणकंदिय-रवेसु खरफरुस-अणिट्ठ-रिट्ठ-वाहित्त-विद्दुमग्गेसु दुमेसु तण्हावस-मुक्कपक्ख-पायडिय-जिब्भतालुय-असंपुडियतुंड-पक्खिसंघेसु ससंतेसु गिम्हुम्ह-उण्हवाय--खरफरुसचंडमारुय-सुक्कतणपत्तकयवर-वाउलि-भमंतदित्तसंभंतसावयाउल-मिगतण्हाबद्धचिंधपट्टेसु गिरिवरेसु संवट्टइएसु तत्थ-मिय-ससय-सरीसिवेसु अवदालियवयणविवर-निल्लालियग्गजीहे महंततुंबइय-पुण्णकण्णे संकुचियथोर-पीवर-करे ऊसिय-नंगूले पीणाइय-विरसरडिय-सद्देणं फोडयंतेव अंबरतलं, पायदद्दरएणं कंपयंतेव मेइणितलं, विणिम्मुयमाणे य सीयरं, सव्वओ समंता वल्लिवियाणाइं छिंदमाणे, रुक्खसहस्साइं तत्थ सुबहूणि नोल्लयंते, विणट्ठरट्ठेव्व नरवरिंदे, वायाइद्धेव्व पोए, मंडलवाएव्व परिब्भमंते, अभिक्खणं-अभिक्खणं लिंडनियरं पमुंचमाणे-पमुंचमाणे बहूहिं हत्थीहि य जाव सद्धिं दिसोदिसिं विप्पलाइत्था।।

१५९. मेघ! किसी समय तूं पावस, वर्षा, शरद, हेमन्त और वसन्त क्रमशः इन पांचों ऋतुओं के बीत जाने पर, ग्रीष्म ऋतु के समय ज्येष्ठ मास में[१२५]वृक्षों के परस्पर संघर्षण से समुत्थित सूखे घास-पात, कचरे और हवा के योग से प्रदीप्त, महाभयंकर आग के कारण वन-दव की ज्वालाओं से वन-प्रांत संप्रदीप्त हो गये। दिशाएं धूमाकुल हो गई। प्रचण्ड हवा के वेग से संचालित छिन्न ज्वालाओं के गिरने से पीले जीर्ण वृक्ष भीतर ही भीतर जलने लगे। कीचड़ से भर गए वन प्रांत की नदियों और गड्ढ़ों का पानी क्षीण हो गया। मृत-कुथित जीव-जन्तु विनष्ट कृमि और झिंगुरों के करुण-क्रन्दन के स्वर सुनाई देने लगे। वृक्षों के अग्र भाग विद्रुम की भांति लाल हो उठे। उन पर कौवे रूखे, कठोर और अनिष्ट स्वर में कांव-कांव करने लगे। पक्षी समूह प्यास से व्याकुल हो, पांखों को फैला, जीभ और तालु को प्रकट कर, मुंह खोल श्वास लेने लगा। ग्रीष्म की ऊष्मा कड़ी धूप, खर, परुष और प्रचण्ड हवा, सूखे घास-पात और कचरे से भरे हुए वातूल तथा इनके कारण घूमते हुए उन्मत्त और सम्भ्रांत श्वापदों के कारण पर्वत आकुल हो गये, उन पर मृगतृष्णा रूपी चिह्नपट्ट बंध गया।

वहां प्रलयकारी अग्नि का दृश्य उपस्थित हो गया। हरिण, खरगोश और सांप त्रस्त हो उठे। उस समय तुम्हारा मुख विवर चौड़ा हो गया। जिह्वा का अग्रभाग बाहर निकल आया। बड़े-बड़े दोनों कान पूर्णरूपेण तुम्बाकार हो गए। स्थूल और पीवर सूण्ड संकुचित हो गई। पूंछ ऊपर उठ गई। ढोल की भांति विरस और रुदनपूर्ण चिंघाड़ से मानो अम्बरतल फोड़ रहा था। पादघात से मानो मेदिनीतल को कम्पित कर रहा था। मुंह से जलकणों को छोड़ रहा था। चारों ओर वल्लि-वितानों को तहस-नहस कर रहा था। बहुत सारे हजारों-हजारों वृक्षों को उखाड़ता हुआ, राज्य भ्रष्ट नरपति, वायु से प्रकम्पित पोत और मण्डल वायु की भांति चक्कर काट रहा था। बार-बार लीद करता हुआ, बहुत सारे हाथियों यावत् कलभों के साथ इधर-उधर भागने लगा।

१६०. तत्थ णं तुमं मेहा! जुण्णे जरा-जज्जरिय-देहे आउरे झंझिए पिवासिए दुब्बले किलंते नट्ठसुइए मूढदिसाए सयाओ जूहाओ विप्पहूणे वणदवजालापरद्धे उण्हेण य तण्हाए य छुहाए य परब्भाहए समाणे भीए तत्थे तसिए उव्विग्गे संजायभए सव्वओ समंता आधावमाणे परिधावमाणे एगं च णं महं सरं अप्पोदगं पंकबहुलं

१६०. मेघ! उस समय तूं जीर्ण, जरा-जर्जरित देह वाला, आतुर, भूखा-प्यासा, दुर्बल, क्लांत, स्मृति-शून्य और दिग्मूढ हो, अपने यूथ से बिछुड़ गया। वहां दावानल की लपटों से पीड़ित तथा गर्मी, प्यास और भूख से बाधित होने पर तूं भीत, त्रस्त, शुष्क, उद्विग्न[१२६] और भयाक्रांत होकर चारों ओर भाग दौड़ करता हुआ, पानी पीने के लिए घाट रहित एक विशाल सरोवर में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतित्थेणं पाणियपाए ओइण्णे।

तत्थ णं तुमं मेहा! तीरमइगए पाणियं असंपत्ते अंतरा चेव सेयंसि विसण्णे। तत्थ णं तुमं मेहा! पाणियं पाइस्सामि त्ति कट्टु हत्थं पसारेसि। से वि य ते हत्थे उदगं न पावइ।

तए णं तुमं मेहा! पुणरवि कायं पच्चुद्धरिस्सामि त्ति कट्टु बलियतरायं पंकंसि खुत्ते।।

उतरा। उसमें पानी कम था और दलदल अधिक था।

मेघ! तब तू किनारे से आगे चला गया। पानी तक नहीं पहुंचा। बीच में ही दलदल में धंस गया।

मेघ! तब तूने "पानी पीऊंगा"--ऐसा सोचकर अपनी सूंड फैलाई। पर तेरी सूंड पानी तक नहीं पहुंच पाई। मेघ! तब "अपने शरीर को दलदल से निकालूंगा"--ऐसा सोचकर तूं ने पुनरपि बल लगाया, किन्तु तू और अधिक पंक-निमग्न हो गया।

१६१. तए णं तुमं मेहा! अण्णया कयाइ एगे चिरनिज्जूढए गयवरजुवाणए सगाओ जूहाओ कर-चरण-दंत-मुसलप्पहारेहिं विप्परद्धे समाणे तं चेव महद्दहं पाणीयपाए समोयरइ। तए णं से कलभए तुमं पासइ, पासित्ता तं पुव्ववेरं सुमरइ, सुमरित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे जेणेव तुमं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तुमं तिक्खेहिं दंतमुसलेहिं तिक्खुत्तो पिट्ठओ उट्ठुभइ, उट्ठुभित्ता पुव्वं वेरं निज्जाएइ, निज्जाएत्ता हट्ठतुट्ठे पाणीयं पिबइ, पिबित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।।

१६१. मेघ! किसी समय तेरे यूथ से बहुत समय पहले भ्रष्ट हुआ एक प्रवर युवा हाथी, जिसे तूने अपनी सूंड, पांव और दंत-मूसलों का प्रहार कर, अपने यूथ से निकाल दिया था, जल पीने के लिए उसी सरोवर में उतरा। उस कलभ ने तुझे देखा। देखते ही उसे पूर्व वैर की स्मृति हो आयी। पूर्व वैर की स्मृति होते ही वह तत्काल क्रोध से तमतमा उठा। वह रुष्ट, कुपित, चण्ड और क्रोध से प्रज्ज्वलित होकर[१२७] जहां तू था, वहां आया। आकर तेरी पीठ में तीन बार दंत मूसलों से प्रहार किया। प्रहार कर उसने अपने पूर्व वैर का बदला लिया। बदला लेकर हृष्ट-तुष्ट हो उसने पानी पीया। पानी पीकर वह जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में चला गया।

१६२. तए णं तव मेहा! सरीरगंसि वेयणा पाउब्भवित्था--उज्जला विउला कक्खडा पगाढा चंडा दुक्खा दुरहियासा। पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतीए यावि विहरित्था।।

१६२. मेघ! तब तेरे शरीर में उज्ज्वल,[१२८] विपुल, कर्कश, प्रगाढ़, रौद्र, दु:खद और दु:सह वेदना प्रादुर्भूत हुई। शरीर में पित्तज्वर हो गया। समूचे शरीर में दाह व्याप्त हो गई।

भगवया मेरुप्पभ-भवनिरूवण-पदं

भगवान द्वारा मेरुप्रभ-भव का निरूपण-पद

१६३. तए णं तुमं मेहा! तं उज्जलं विउलं कक्खडं पगाढं चंडं दुक्खं दुरहियासं सत्तराइंदियं वेयणं वेदेसि, सवीसं वाससयं परमाउयं पालइत्ता अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे कालमासे कालं किच्चा इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे दाहिणड्ढभरहे गंगाए महानईए दाहिणे कूले विंझगिरिपायमूले एगेणं मत्तवरगंधहत्थिणा एगाए गयवरकरेणूए कुच्छिंसि गयकलभए जणिए।।

१६३. तब मेघ! तूं ने सात दिन-रात तक उस उज्ज्वल, विपुल, कर्कश, प्रगाढ़, रौद्र, दु:खद और दु:सह वेदना को भोगा। एक सौ बीस बरस की परम आयु को भोग, तूं आर्त्त, दु:ख से आर्त्त और कामना से आर्त्त होकर, मृत्यु के समय मृत्यु को प्राप्त कर, उसी जम्बूद्वीप द्वीप, भारतवर्ष वहां के दक्षिणार्द्ध भरत, महानदी गंगा के दक्षिण तट और विन्ध्याचल की तलहटी में, एक मत्त प्रवर गंध हस्ती से, एक प्रवर हथिनी की कुक्षि में गज-कलभ के रूप में उत्पन्न हुआ।

१६४. तए णं सा गयकलभिया नवण्हं मासाणं वसंतमासंसि तुमं पयाया।।

१६४. उस तरुण हथिनी ने नौ मास बीत जाने पर बसंत मास में तुझे जन्म दिया।

१६५. तए णं तुमं मेहा! गब्भवासाओ विप्पमुक्के समाणे गयकलभए यावि होत्था--रत्तुप्पल-रत्तसूमालए जासुमणाऽरत्तपालियत्तय-लक्खारस-सरसकुंकुम-संझब्भरागवण्णे, इट्ठे नियगस्स जूहवइणो, गणियार-कणेरु-कोत्थ-हत्थी अणेगहत्थिसयसंपरिवुडे रम्मेसु गिरिकाणणेसु सुहंसुहेणं विहरसि।।

१६५. मेघ! गर्भवास से मुक्त होते ही तू गज-कलभ बन गया। तूं रक्तोत्पल जैसा लाल और सुकुमार था। तूं जवाकुसुम, आरक्त-पारिजातपुष्प, लाक्षारस, सरस कुंकुम और सन्ध्याकालीन अभ्रराग जैसे वर्णवाला और अपने यूथपति का इष्ट था। तूं अपनी समकक्ष हथिनियों के उदर को सूण्ड से सहलाता हुआ तथा सैकड़ों हाथियों से घिरा हुआ सुरम्य गिरि काननों में सुखपूर्वक रहता था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६६. तए णं तुमं मेहा! उम्मुक्कबालभावे जोव्वणगमणुप्पत्ते जूहवइणा कालधम्मुणा संजुत्तेणं तं जूहं सयमेव पडिवज्जसि।।

१६६. मेघ! तूने शैशव को लांघकर जब यौवन में प्रवेश किया, तब यूथपति मृत्यु को प्राप्त हो गया। तब तू स्वयं उस यूथ का अधिपति बन गया।

१६७. तए णं तुमं मेहा! वणयरेहिं निव्वत्तियनामधेज्जे सत्तुस्सेहे नवायए दसपरिणाहे सत्तंगपइट्ठिए सोम-सम्मिए सुरूवे पुरओ उदग्गे समूसियसिरे सुहासणे पिट्ठओ वराहे अइयाकुच्छी अच्छिद्दकुच्छी अलंबकुच्छी पलंबलंबोदराहरकरे धणुपट्ठागिति-विसिट्ठपुट्ठे अल्लीण-पमाणजुत्त-वट्टिय-पीवर-गत्तावरे अल्लीण-पमाणजुत्त-पुच्छे पडिपुण्ण-सुचारु कुम्मचलणे पंडुर-सुविसुद्ध-निद्ध-निरुवहयविंसतिनहे चउदंते मेरुप्पभे हत्थिरयणे होत्था। तत्थ णं तुमं मेहा! सत्तसइयस्स जूहस्स आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे अभिरमेत्था।।

१६७. मेघ! तब तूं मेरुप्रभ नाम का हस्तिरत्न था। तेरा यह नाम वनवासी लोगों ने रखा। तूं सात हाथ ऊंचा, नौ हाथ लंबा, दस हाथ चौड़ा, सात अंगों से प्रतिष्ठित, सौम्य, प्रमाणोपेत अंगों वाला, सुरूप, आगे से ऊंचा, उन्नत सिर वाला, बैठने में सुखकर, सूअर के समान झुके हुए पृष्ठ भाग वाला और बकरी की भांति उन्नत पेट वाला था। पेट में सलवटें नहीं थी। वह लटक नहीं रहा था। गणेश की भांति अधर और शुण्डादण्ड लम्बे थे। पीठ विशिष्ट धनुषपृष्ठ के आकार जैसी थी। शरीर का अपर भाग सुव्यवस्थित, प्रमाणयुक्त, वर्तुल और पुष्ट था। पूंछ सुव्यवस्थित और प्रमाणयुक्त थी। चरण प्रतिपूर्ण, सुन्दर और कछुए की भांति उभरे हुए थे। बीसों नख श्वेत, साफ, चिकने और निरुपहत थे और दांत चार थे।

मेघ! वहां तूं सात सौ हाथियों के यूथ का आधिपत्य, पौरपत्य, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरत्व, आज्ञा-ऐश्वर्य और सेनापतित्व करता हुआ, उसका पालन करता हुआ अभिरमण कर रहा था।

१६८. तए णं तुमं मेहा! अण्णया कयाइ गिम्हकालसमयंसि जेट्ठामूले (मासे पायवधंससमुट्ठिएणं सुक्कतण-पत्त-कयवर-मारुय-संजोगदीविएणं महाभयंकरेणं हुयवहेणं?) वणदव-जाला-पलित्तेसु वणंतेसु धूमाउलासु दिसासु जाव मंडलवाएव्व परिब्भमंते भीए तत्थे तसिए उव्विग्गे संजायभए बहूहिं हत्थीहि य हत्थिणियाहि य लोट्टएहि य लोट्टियाहि य कलभएहि य कलभियाहि य सद्धिं संपरिवुडे सव्वओ समंता दिसोदिसिं विप्पलाइत्था।।

१६८. मेघ! किसी समय ग्रीष्म ऋतु के समय ज्येष्ठमास में (वृक्षों के परस्पर संघर्षण से समुत्थित, सूखे घास पात, कचरे और हवा के योग से प्रदीप्त, महाभंयकर आग के कारण?) वनदव की ज्वालाओं से वन प्रांत संप्रदीप्त हो गये। दिशाएं धूमाकुल हो गयी, यावत् मण्डलवायु की भांति चक्कर काटता हुआ तूं भीत, त्रस्त, तृषित, उद्विग्न और भयाक्रांत होकर बहुत से हाथियों, हथिनियों, छोटे शिशुओं और वयः प्राप्त कलभों के साथ, उनसे संपरिवृत हो, चारों ओर इधर-उधर भागने लगा।

१६९. तए णं तव मेहा! तं वणदवं पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--कहि णं मन्ने मए अयमेयारूवे अग्गिसंभमे अणुभूयपुव्वे?

१६९. मेघ! उस वनदव को देखकर तेरे मन में इस प्रकार का आन्तरिक चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--'लगता है मैंने इस प्रकार के अग्नि संभ्रम का कभी पहले अनुभव किया है।

१७०. तए णं तव मेहा! लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं अज्झवसाणेणं सोहणेणं सुभेणं परिणामेणं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहा-पूह-मग्गण-गवेसणं करेमाणस्स सन्निपुव्वे जाईसरणे समुप्पज्जित्था।।

१७०. मेघ! उस समय तेरी लेश्या विशुद्ध हो रही थी। अध्यवसाय शोभन और परिणाम शुभ था[१९]। जाति स्मृति के आवारक कर्मों का क्षयोपशम होने पर, ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करते-करते तुझे समनस्क जन्मों को जानने वाला 'जाति-स्मृति' ज्ञान उत्पन्न हुआ।

१७१. तए णं तुमं मेहा! एयमट्ठं सम्मं अभिसमेसि—एवं खलु मया अईए दोच्चे भवग्गहणे इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे वेयड्ढगिरिपायमूले जाव सुमेरुप्पभे नाम हत्थिराया होत्था। तत्थ णं मया अयमेयारूवे अग्गिसंभमे समणुभूए।।

१७१. मेघ! तब तुझे यह भलीभांति अवगत हो गया--मैं अतीत में इससे पूर्व दूसरे भव में इसी जम्बूद्वीप, भारतवर्ष और वैताढ्यगिरि की तलहटी में यावत् सुमेरुप्रभ नामक हस्तिराज था। वहां मैंने इस प्रकार के अग्नि संभ्रम का अनुभव किया था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७२. तए णं तुमं मेहा! तस्सेव दिवसस्स पच्चावरण्हकालसमयंसि नियएणं जूहेणं सद्धिं समण्णागए यावि होत्था।।

१७२. मेघ! उसी दिन मध्यान्होपरांत तीसरे प्रहर में तूं अपने यूथ के साथ जा मिला।

१७३. तए णं तुमं मेहा! सत्तुस्सेहे जाव सन्निजाईसरणे चउदंते मेरुप्पभे नामं हत्थी होत्था।।

१७३. मेघ! तू सात हाथ ऊंचा यावत् समनस्क जन्मों को जानने वाले जाति स्मरण ज्ञान वाला, चार दांत वाला मेरुप्रभ नाम का हाथी था।

मेरुप्पभेण मंडलनिम्माणपदं

मेरुप्रभ द्वारा मण्डल-निर्माण-पद

१७४. तए णं तुज्झं मेहा! अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था–सेयं खलु मम इयाणिं गंगाए महानईए दाहिणिल्लंसि कूलंसि विंझगिरिपायमूले दवग्गिसंताणकारणट्ठा सएणं जूहेणं महइमहालयं मंडलं घाइत्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेसि, संपेहेत्ता सुहंसुहेणं विहरसि।।

१७४. मेघ! तब तेरे मन में इस प्रकार का आध्यात्मिक यावत् संकल्प उत्पन्न हुआ--"इस समय मेरे लिए उचित है मैं महानदी गंगा के दक्षिणी तट पर विन्ध्यगिरि की तलहटी में, दावानल से त्राण पाने के लिए अपने यूथ के साथ एक महान मण्डल का निर्माण करूं"--तूं ने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर सुखपूर्वक रहने लगा।

१७५. तए णं तुमं मेहा! अण्णया कयाइ पढमपाउसंसि महावुट्ठिकायंसि सन्निवइयंसि गंगाए महानईए अदूरसामंते बहूहि हत्थीहि य जाव कलभियाहि य सत्तहि य हत्थिसएहिं संपरिवुडे एगं महं जोयणपरिमंडलं महइमहालयं मंडलं घाएसि--जं तत्थ तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा कंटए वा लया वा वल्ली वा खाणुं वा रुक्खे वा खुवे वा, तं सव्वं तिक्खुत्तो आहुणिय-आहुणिय पाएणं उद्धवेसि, हत्थेणं गिण्हसि, एगंते एडेसि।।

१७५. मेघ! किसी समय प्रथम पावस में महावृष्टि होने पर[१३०], महानदी गंगा के न दूर, न निकट, बहुत सारे हाथियों यावत् कलभों–कुल सात सौ हाथियों से संपरिवृत हो तूं ने एक महान एक योजन के गोलाकार अत्यन्त विशाल मण्डल का निर्माण किया। वहां जो घास-पात काठ, कांटे, लता, वल्ली, ठूंठ, वृक्ष अथवा क्षुप था, उन सबको तूं ने तीन बार हिला, हिलाकर पैरों से उखाड़ा, सूण्ड में लिया और एक ओर फेंक दिया।

१७६. तए णं तुमं मेहा! तस्सेव मंडलस्स अदूरसामंते गंगाए महानईए दाहिणिल्ले कूले विंझगिरिपायमूले गिरीसु य जाव सुहंसुहेणं विहरसि।।

१७६. मेघ! तूं उसी मण्डल के न दूर, न निकट महानदी गंगा के दक्षिण तट पर विन्ध्यगिरि की तलहटी में पहाड़ों यावत् काननों में सुखपूर्वक रहने लगा।

१७७. तए णं तुमं मेहा! अण्णया कयाइ मज्झिमए वरिसारत्तंसि महावुट्ठिकायंसि सन्निवइयंसि जेणेव से मंडले तेणेव उवागच्छसि, उवागच्छित्ता दोच्चं पि मंडलघायं करेसि।

एवं--चरिमवरिसारत्तंसि महावुट्ठिकायंसि सन्निवयमाणंसि जेणेव से मंडले तेणेव उवागच्छसि, उवागच्छित्ता तच्चं पि मंडलघायं करेसि जाव सुहंसुहेणं विहरसि।।

१७७. मेघ! किसी समय वर्षाऋतु के मध्यकाल में महावृष्टि होने पर तूं जहां वह मण्डल था वहां आया, वहां आकर दूसरी बार भी उस (मण्डल में उगे घास पात आदि को उखाड़ कर) मण्डल को निर्मूल किया।

इसी प्रकार वर्षाऋतु के अन्तकाल में महावृष्टि होने पर, तूं जहां मण्डल था, वहां आया। आकर तूं ने तीसरी बार भी उस (मण्डल में उगे घास-पात आदि को उखाड़कर) मण्डल को निर्मूल किया यावत् सुखपूर्वक रहने लगा।

दवग्गिभीतसावयाणं मंडलपवेस-पदं

दावानल से भीत श्वापदों का मण्डल में प्रवेश-पद

१७८. तए णं तुमं मेहा! अण्णया कयाइ कमेण पंचसु उऊसु समइक्कंतेसु गिम्हकालसमयंसि जेट्ठामूले मासे पायव-घंससमुट्ठिएणं जाव संवट्टइएसु मियपसुपक्खिसरीसिवेसु दिसोदिसिं विप्पलायमाणेसु तेहिं बहूहिं हत्थीहि य सद्धिं जेणेव से मंडले तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्थ णं अण्णे बहवे सीहा य वग्घा य विगा य दीविया य अच्छा य तरच्छा य परासरा य सियाला य विराला य सुणहा य

१७८. मेघ! किसी समय क्रमश: पांचों ऋतुओं के बीत जाने पर, ग्रीष्म ऋतु के समय ज्येष्ठ मास में वृक्षों के संघर्षण से समुत्थित वनदव की ज्वालाओं से यावत् पर्वतों पर प्रलयंकारी अग्नि का दृश्य उपस्थित हो गया। हरिण, पशु, पक्षी और सांप इधर-उधर भागने लगे। उस समय तूं ने उन बहुत सारे हाथियों के साथ, जहां वह मण्डल था, वहां जाने का संकल्प किया।

उस मण्डल में अन्य बहुत सारे सिंह, बाघ, भेड़िये, चीते, भालू,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोला य ससा य कोकंतिया य चित्ता य चिल्लला य पुव्वपविट्ठा अग्गिभयविद्दुया एगयओ बिलधम्मेणं चिट्ठंति।।

लकड़बग्घे, शरभ, सियार, बिडाल, कुत्ते, सूअर, खरगोश, लोमड़ी, चित्तल और चिल्लल पहले ही प्रविष्ट हो चुके थे। वे अग्नि के भय से घबराकर वहां बिलधर्म से (बिल में रहने वाले कीड़े-मकोड़ों की भांति)[१११] एक साथ रह रहे थे।

१७९. तए णं तुमं मेहा! जेणेव से मंडले तेणेव उवागच्छसि, उवागच्छित्ता तेहिं बहूहिं सीहेहि य जाव चिल्ललेहि य एगयओ बिलधम्मेणं चिट्ठसि।।

१७९. मेघ! तब तू जहां वह मण्डल था, वहां आया। वहां आकर उन बहुत सारे सिंहों यावत चिल्ललों के साथ घुलमिल कर बिलधर्म से रहने लगा।

मेरुप्पभस्स पादुक्खेव-पदं

मेरुप्रभ का पादोत्क्षेप-पद

१८०. तए णं तुमे मेहा! पाएणं गत्तं कंडूइस्सामी ति कट्टु पाए उक्खित्ते। तंसिं च णं अंतरंसि अण्णेहिं बलवंतेहिं सत्तेहिं पणोलिज्जमाणे-पणोलिज्जमाणे ससए अणुप्पविट्ठे।।

१८०. मेघ! पांव से शरीर को खुजलाऊंगा–यह सोच कर तू ने अपना एक पांव ऊपर उठाया। अन्य सबल प्राणियों द्वारा पुनः पुनः धकेले जाने पर उस पैर के नीचे एक खरगोश आ घुसा।

१८१. तए णं तुमे मेहा! गायं कंडूइत्ता पुणरवि पायं पडिनिक्खेविस्सामि त्ति कट्टु तं ससयं अणुपविट्ठं पाससि, पासित्ता पाणाणुकंपयाए भूयाणुकंपयाए जीवाणुकंपयाए सत्ताणुकंपयाए से पाए अंतरा चेव संधारिए, नो चेव णं निक्खित्ते।।

१८१. मेघ! शरीर को खुजलाकर 'पांव को पुनः नीचे रखूंगा'--तूने ऐसा सोच पैर की जगह बैठे उस खरगोश को देखा। देखकर तू ने प्राणानुकम्पा, भूतानुकम्पा, जीवानुकम्पा और सत्त्वानुकम्पा से अपने पैर को बीच में ही थाम लिया, उसे भूमि पर नहीं रखा।[११२]

१८२. तए णं तुमं मेहा! ताए पाणाणुकंपयाए भूयाणुकंपयाए जीवाणुकंपयाए सत्ताणुकंपयाए संसारे परित्तीकए, माणुस्साउए निबद्धे।।

१८२. मेघ! तूं ने उस प्राणानुकम्पा, भूतानुकम्पा, जीवानुकम्पा और सत्वानुकम्पा से संसार को सीमित किया और मनुष्य आयुष्य का बन्ध किया।

१८३. तए णं से वणदवे अड्ढाइज्जाइं राइंदियाइं तं वणं झामेइ, झामेत्ता निट्ठिए उवरए उवसंते विज्झाए यावि होत्था।।

१८३. उस वन-दव ने अढ़ाई रात-दिन तक उस वन को जलाया। जलाकर निष्ठित, उपरत और उपशान्त हो गया, बुझ गया।

१८४. तए णं ते बहवे सीहा य जाव चिल्लला य तं वणदवं निट्ठियं उवरयं उवसंतं विज्झायं पासंति, पासित्ता अग्गिभयविप्पमुक्का तण्हाए य छुहाए य परब्भाहया समाणा तओ मंडलाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता सव्वओ समंता विप्पसरित्था।।

१८४. उन बहुत सारे सिंहो यावत् चिल्ललों ने उस वन-दव को निष्ठित, उपरत, उपशान्त और बुझा हुआ देखा। देखकर वे आग के भय से मुक्त हो गये। प्यास और भूख से पीड़ित हो उस मण्डल से बाहर निकले। बाहर निकल कर चारों ओर फैल गये।[११३]

१८५. तए णं ते बहवे हत्थी य हत्थिणीओ य लोट्टया य लोट्टिया य कलभा य कलभिया य तं वणदवं निट्ठियं उवरयं उवसंतं विज्झायं पासंति, पासित्ता अग्गिभयविप्पमुक्का तण्हाए य छुहाए य परब्भाहया समाणा तओ मंडलाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता दिसोदिसिं विप्पसरित्था।।

१८५. उन बहुत सारे हाथियों, हथिनियों उनके छोटे शिशुओं और वयः प्राप्त कलभों ने भी उस वन-दव को निष्ठित, उपरत, उपशांत और बुझा हुआ देखा। देखकर वे आग के भय से मुक्त हो गये। वे प्यास और भूख से पीड़ित हो, उस मण्डल से बाहर निकले। निकलकर चारों ओर फैल गये।

१८६. तए णं तुमं मेहा! जुण्णे जरा-जज्जरिय-देहे सिढिलवलितय-पिणिद्धगत्ते दुब्बले किलंते जुंजिए पिवासिए अत्थामे अबले अपरक्कमे ठाणुकडे वेगेण विप्पसरिस्सामि त्ति कट्टु पाए पसारेमाणे विज्जुहए विव रययगिरि-पब्भारे धरणितलंसि सव्वंगेहिं सण्णिवइए।।

१८६. मेघ! उस समय तूं जीर्ण, जरा-जर्जरित, शिथिल और सलवट भरी चमड़ी से मढे शरीर वाला, दुर्बल, क्लान्त, भूखा, प्यासा, अशक्त, निर्बल पराक्रम शून्य और ठूंठ जैसा स्तब्ध हो गया था, फिर भी बलपूर्वक पांव को पसारूंगा--यह सोच, पांव को पसारता हुआ तूं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्युत से आहत रजत-गिरि के झुके हुए अग्रिम भाग की भांति, सम्पूर्ण शरीर के साथ धरती पर गिर पड़ा।

१८७. तए णं तव मेहा! सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया--उज्जला विउला कक्खडा पगाढा चंडा दुक्खा दुरहियासा। पित्तज्जर-परिगयसरीरे दाहवक्कंतीए यावि विहरसि।।

१८७. मेघ! तब तेरे शरीर में उज्ज्वल, विपुल, कर्कश, प्रगाढ़, रौद्र, दु:खद और दु:सह वेदना प्रादुर्भूत हुई। शरीर में पित्त ज्वर हो गया। समूचे शरीर में दाह व्याप्त हो गई।

तीय संदब्भे वट्टमाण-तितिक्खोवदेस-पदं

१८८. तए णं तुमं मेहा! तं उज्जलं जाव दुरहियासं तिण्णि राइंदियाइं वेयणं वेएमाणे विहरित्ता एगं वाससयं परमाउं पालइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे रायगिहे नयरे सेणियस्स रण्णो धारिणीए देवीए कुच्छिंसि कुमारत्ताए पच्चायाए।।

उस सन्दर्भ में होने वाली तितिक्षा का उपदेश-पद

१८८. मेघ! तीन रात-दिन तक तूं उस उज्ज्वल यावत् दु:सह वेदना को भोगता रहा। सौ वर्ष की परम आयु को भोगकर तूं इसी जम्बूद्वीप द्वीप, भारतवर्ष और राजगृह नगर में राजा श्रेणिक की धारिणी देवी की कुक्षि में कुमार रूप में उत्पन्न हुआ।

१८९. तए णं तुमं मेहा! आणुपुव्वेणं गब्भवासाओ निक्खंते समाणे उम्मुक्कबालभावे जोव्वणगमणुप्पत्ते मम अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए। तं जइ ताव तुमे मेहा! तिरिक्खजोणिय-भावमुवगएणं अपडिलद्ध-सम्मत्तरयणलंभेणं से पाए पाणाणुकंपयाए भूयाणुकंपयाए जीवाणुकंपयाए सत्ताणुकंपयाए अंतरा चेव संधारिए, नो चेव णं निक्खित्ते। किमंग पुण तुमं मेहा! इयाणिं विपुलकुलसमुब्भवे णं निरुवहयसरीर-दंतलद्धपंचिंदिए णं एवं उट्ठाण-बल-वीरिय-पुरिसगार-परक्कमसंजुत्ते णं मम अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे समणाणं निग्गंथाणं राओ पुव्वरत्तावरत्त-कालसमयंसि वायणाए पुच्छणाए परियट्टणाए धम्माणुओगचिंताए य उच्चारस्स वा पासवणस्स वा अइगच्छमाणाण य निग्गच्छमाणाण य हत्थसंघट्टणाणि य पायसंघट्टणाणि य सीससघंट्टणाणि य पोट्टसंघट्टणाणि य कायसंघट्टणाणि य ओलंडणाणि य पोलंडणाणि य पाय-रय-रेणु-गुंडणाणि य नो सम्मं सहसि खमसि तितिक्खसि अहियासेसि?

१८९. मेघ! तूं क्रमश: गर्भावास से निकला, शैशव को लांघ, यौवन में प्रविष्ट हुआ और मेरे पास मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित हो गया। मेघ! जब तूं तिर्यञ्च की अवस्था को उपलब्ध था, तुझे सम्यक्त्व-रत्न का लाभ भी नहीं हुआ था। उस समय भी तूं ने प्राणानुकम्पा, भूतानुकम्पा, जीवानुकम्पा और सत्वानुकम्पा से अपने पैर को बीच में ही थाम लिया। उसे भूमि पर नहीं रखा। मेघ! इस समय तो तूं विशाल कुल में उत्पन्न, निरुपहत-शरीर, शान्त, पांचों इन्द्रियों को उपलब्ध और इस प्रकार के उत्थान; बल, वीर्य, पुरुषाकार और पराक्रम[१३४] से संयुक्त है। तूं मेरे पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित हुआ है। ऐसी स्थिति में पूर्वरात्रापरात्र में वाचना, प्रच्छना, परिवर्तना, धर्मानुयोग चिंतन और उच्चार या प्रस्रवण के लिए आते-जाते श्रमण-निर्ग्रन्थ हाथों को छू गए, पांवों को छू गए, सिर को छू गए, पेट को छू गए, शरीर को छू गए, लांघ गए, बार-बार लांघ गए और पांवों की रजों से धूलि लिप्त कर गए। आश्चर्य है, तूं ने क्यों नहीं सम्यक् सहन किया? क्यों नहीं तूं उसे सहने में समर्थ हुआ? क्यों नहीं तूं ने तितिक्षा रखी? क्यों नहीं तूं अविचल रहा?[१३५]

मेहस्स जाइसरण-पदं

१९०. तए णं तस्स मेहस्स अणगारस्स समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म सुभेहिं परिणामेहिं पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहापूह-मग्गण-गवेसणं करेमाणस्स सण्णिपुव्वे जाईसरणे समुप्पण्णे, एयमट्ठं सम्मं अभिसमेइ।।

मेघ का जातिस्मरण-पद

१९०. श्रमण भगवान महावीर के पास यह अर्थ सुनकर, अवधारण कर, शुभ परिणाम, प्रशस्त अध्यवसाय और विशुद्धयमान लेश्या के कारण जातिस्मृति के आवारक कर्मों का क्षयोपशम होने पर ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करते-करते अनगार मेघ को समनस्क जन्मों को जानने वाला जातिस्मृति[१३६] ज्ञान उत्पन्न हो गया। उसने इस अर्थ को भली-भांति समझ लिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेहस्स समप्पणपुव्वं पुणो पव्वज्जा-पदं

१९१. तए णं से मेहे कुमारे समणेणं भगवया महावीरेणं संभारियपुव्वभवे दुगुणाणीयसंवेगे आणंदअंसुपुण्णमुहे हरिसवस-विसप्पमाणहियए धाराहयकलंबकं पिव समूससियरोमकूवे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--

अज्जप्पभिती णं भंते! मम दो अच्छीणि मोत्तूणं अवसेसे काए समणाणं निग्गंथाणं निसट्ठे त्ति कट्टु पुणरवि समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--

इच्छामि णं भंते! इयाणिं दोच्चंपि सयमेव पव्वावियं सयमेव मुंडावियं सयमेव सेहावियं सयमेव सिक्खावियं सयमेव आयार-गोयरं जायामायावत्तियं धम्ममाइक्खियं।।

मेघ का समर्पणपूर्वक पुनः प्रव्रज्या-पद

१९१. श्रमण भगवान महावीर द्वारा पूर्व जन्म की स्मृति कराने पर कुमार मेघ का संवेग द्विगुणित हो गया। उसके मुंह पर आनन्द के आंसू ढल आए। हर्ष से हृदय उल्लसित हो गया। धारा से आहत कदम्ब कुसुम की भांति उसके रोमकूप उच्छ्वसित हो उठे। उसने श्रमण भगवान महावीर को वन्दना नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार कहा–

भंते! आज से इन दो आंखों को छोड़कर मेरा अवशेष शरीर श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए समर्पित है--ऐसा कहकर, उसने पुनः श्रमण-महावीर को वन्दना-नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार कर वह इस प्रकार बोला--

भंते! मैं चाहता हूं, इस समय, दूसरी बार भी देवानुप्रिय स्वयं मुझे प्रव्रजित करें, स्वयं मुण्डित करें, स्वयं शैक्ष बनाए स्वयं अभ्यास करायें और स्वयं ही आचार-गोचर यात्रा-मात्रा मूलक धर्म का आख्यान करें।[११७]

१९२. तए णं समणे भगवं महावीरे मेहं कुमारं सयमेव पव्वावेइ सयमेव मुंडावेइ सयमेव सेहावेइ सयमेव सिक्खावेइ सयमेव आयार-गोयर-विणय-वेणइय-चरण-करण-जायामायावत्तियं धम्ममाइक्खइ--एवं देवाणुप्पिया! गंतव्वं, एवं चिट्ठियव्वं, एवं निसीयव्वं, एवं तुयट्टियव्वं, एवं भुंजियव्वं, एवं भासियव्वं एवं उट्ठाए उट्ठाय पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं संजमेणं संजमियव्वं।।

१९२. तब श्रमण भगवान महावीर ने कुमार मेघ को स्वयं प्रव्रजित किया, स्वयं ही मुण्डित किया, स्वयं ही शैक्ष बनाया, स्वयं ही अभ्यास कराया और स्वयं ही आचार, गोचर, विनय, वैनयिक चरण, करण और यात्रा-मात्रा मूलक धर्म का आख्यान किया--देवानुप्रिय! संयमपूर्वक चलो, संयमपूर्वक खड़े रहो, संयम पूर्वक बैठो, संयमपूर्वक लेटो, संयमपूर्वक खाओ, संयमपूर्वक बोलो। इस प्रकार जागरूक भाव से जागृत रह कर, प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के प्रति संयमपूर्ण प्रवृत्ति करो।

१९३. तए णं से मेहे समणस्स भगवओ महावीरस्स अयमेयारूवं धम्मियं उवएसं सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता तह गच्छइ तह चिट्ठइ तह निसीयइ तह तुयट्टइ तह भुंजइ तह भासइ तह उट्ठाए उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमइ।।

१९३. मेघ ने श्रमण भगवान महावीर के इस विशिष्ट धार्मिक आख्यान को सम्यक् स्वीकार किया। स्वीकार कर वह संयम पूर्वक चलता, संयमपूर्वक खड़ा रहता, संयमपूर्वक बैठता, संयमपूर्वक सोता, संयमपूर्वक खाता, संयमपूर्वक बोलता और वैसे ही जागरूक भाव से जागृत रहकर प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के प्रति संयमपूर्ण प्रवृत्ति करने लगा।

मेहस्स निग्गंठचरिया-पदं

१९४. तए णं मेहे अणगारे जाए--इरियासमिए भासासमिए एसणासमिए आयाणभंड-मत्त-णिक्खेवणासमिए उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-पारिट्ठावणिआसमिए मणसमिए वइसमिए कायसमिए मणगुत्ते वइगुत्ते कायगुत्ते गुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी चाई लज्जू धन्ने खंतिखमे जिइंदिए सोहिए अणियाणे अप्पुस्सुए अबहिल्लेसे सुसामण्णरए दंते इणमेव निग्गंथं पावयणं पुरओ काउं विहरति।।

मेघ की निर्ग्रन्थचर्या पद

१९४. अब मेघ अनगार हो गया--वह विवेकपूर्वक चलता। विवेकपूर्वक बोलता, विवेकपूर्वक आहार की एषणा करता, विवेकपूर्वक वस्त्र, पात्र आदि को लेता और रखता, विवेक पूर्वक मल, मूत्र, श्लेष्म, नाक के मैल शरीर के गाढ़े मैल का परिष्ठापन (विसर्जन) करता, मन का संगत प्रवृति करता, वचन की संगत प्रवृति करता, शरीर की संगत प्रवृत्ति करता, मन का निरोध करता, वचन का निरोध करता, शरीर का निरोध करता, अपने आपको सुरक्षित रखता, इन्द्रियों को सुरक्षित रखता, ब्रह्मचर्य को सुरक्षित रखता, संग का त्याग करता, अनाचरण करने में लज्जा करता, कृतार्थता का त्याग करता, समर्थ होने पर भी क्षमा करता, इन्द्रिय जयी था, अतिचार की विशुद्धि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करता, पौद्गलिक समृद्धि का संकल्प नहीं करता, उत्सुकता से मुक्त रहता, भावधारा को आत्मोन्मुखी रखता, सुश्रामण्य में रत, इन्द्रिय और मन का निग्रह करता और इस निर्ग्रन्थ प्रवचन (जिनशासन) को ही आगे रखकर चलता।

१९५. तए णं से मेहे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स 'तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं छट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।।

१९५. अनगार मेघ ने श्रमण भगवान महावीर के तथारूप[१३८] स्थविरों के पास सामायिक आदि[१३९] ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। अध्ययन कर वह बहुत सारे षष्ठ भक्त, अष्टम भक्त, दशम भक्त, द्वादश भक्त, पाक्षिक तप और मासिक तप से स्वयं को भावित करता हुआ विहार करने लगा।

मेहस्स भिक्खुपडिमा-पदं

१९६. तए णं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ नयराओ गुणसिलयाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।।

मेघ की भिक्षु प्रतिमा-पद

१९६. श्रमण भगवान महावीर ने राजगृह नगर के गुणशिलक चैत्य से निष्क्रमण किया। वहां से निष्क्रमण कर वे बहिर्वर्त्ती जनपदों में विहार करने लगे।

१९७. तए णं से मेहे अणगारे अण्णया कयाइ समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेहि।।

१९७. किसी समय अनगार मेघ ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दना-नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर वह इस प्रकार बोला--"भंते! मैं आप से अनुज्ञा प्राप्त कर मासिक भिक्षु-प्रतिमा[१४०] की उपसंपदा स्वीकार कर, विहार करना चाहता हूं।"

देवानुप्रिय ! "तुम्हें जैसा सुख हो, प्रतिबन्ध मत करो।"

१९८. तए णं से मेहे अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे मासियं भिक्खुपडिमं उपसंपज्जित्ता णं विहरइ।

मासियं भिक्खुपडिमं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं सम्मं काएणं फासेइ पालेइ सोभेइ तीरेइ किट्टेइ, सम्मं काएणं फासेत्ता पालेत्ता सोभेत्ता तीरेत्ता किट्टेत्ता पुणरवि समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे दोमासियं भिक्खुपडिमं उपसंपज्जित्ता णं विहरित्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेहि।

जहा पढमाए अभिलावो तहा दोच्चाए तच्चाए चउत्थाए पंचमाए छम्मासियाए सत्तमासियाए पढमसत्तराइंदियाए दोच्चसत्त-राइंदियाए तच्च सत्तराइंदियाए अहोराइयाए एगराइयाए वि।।

१९८. श्रमण भगवान महावीर से अनुज्ञा प्राप्त कर अनगार मेघ मासिक-भिक्षु प्रतिमा की उपसंपदा स्वीकार कर विहार करने लगा।

वह भिक्षु-प्रतिमा का यथासूत्र, यथाकल्प, यथामार्ग, सम्यक प्रकार से काया से स्पर्श करता, उसका पालन करता, उसे शोधित करता, पारित करता और कीर्तन करता। सम्यक् प्रकार से काया से उसका स्पर्श कर, उसका पालन, शोधन, पारित, कीर्तन कर उसने पुनः श्रमण भगवान महावीर को वन्दना-नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार बोला--भंते! मैं आपसे अनुज्ञा प्राप्त कर द्वैमासिकी भिक्षु-प्रतिमा की उपसंपदा को स्वीकार कर विहार करना चाहता हूं।

देवानुप्रिय! "तुम्हें जैसा सुख हो। प्रतिबन्ध मत करो।"

प्रथम प्रतिमा में जैसा अभिलाप है वैसा ही अभिलाप द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षण्मासिक एवं सप्तमासिक प्रतिमा में तथा प्रथम सात रात-दिन वाली, द्वितीय सात रात-दिन वाली, तृतीय सात-रात-दिन वाली, एक रात-दिन वाली और एक रात वाली प्रतिमा में भी करना चाहिए।

मेहस्स गुणरयणसंवच्छर-पदं

१९९. तए णं से मेहे अणगारे बारस भिक्खुपडिमाओ सम्मं काएणं

मेघ का गुणरत्न संवत्सर पद

१९९. अनगार मेघ ने बारह भिक्षु प्रतिमाओं को सम्यक् प्रकार से काया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फासेत्ता पालेत्ता सोभेत्ता तीरेत्ता किट्टेत्ता पुणरवि वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे गुणरयणसंवच्छरं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेहि।।

२००. तए णं से मेहे अणगारे पढमं मासं चउत्थं-चउत्थेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं, दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे, रत्तिं वीरासणेणं अवाउडएणं। दोच्चं मासं छट्ठं-छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे, रत्तिं वीरासणेणं अवाउडएणं। तच्चं मासं अट्ठमं-अट्ठमेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं, दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे, रत्तिं वीरासणेणं अवाउडएणं।

चउत्थं मासं दसमं-दसमेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं, दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे, रत्तिं वीरासणेणं अवाउडएणं।

पंचमं मासं दुवालसमं-दुवालसमेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं, दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे, रत्तिं वीरासणेणं अवाउडएणं।

एवं एएणं अभिलावेणं छट्ठे चोद्दसमं-चोद्दसमेणं, सत्तमे, सोलसमं-सोलसमेणं, अट्ठमे अट्ठारसमं-अट्ठारसमेणं, नवमे वीसइमं-वीसइमेणं, दसमे बावीसइमं बावीसइमेणं, एक्कारसमे चउव्वीसइमं-चउव्वीसइमेणं, बारसमे छव्वीसइं-छव्वीसइमेणं, तेरसमे अट्ठावीसइमं-अट्ठावीसइमेणं चोद्दसमे तीसइमं-तीसइमेणं, पंचदसमे बत्तीसइमं-बत्तीसइमेणं, सोलसमे चउत्तीसइमं-चउत्तीसइमेणं-अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं, दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे, वीरासणेण अवाउडएण य।।

से स्पर्श करके पालन करके, शोधन करके, पारित करके और कीर्तन करके पुनः वन्दना-नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार कर इस प्रकार बोला--भंते! मैं आपसे अनुज्ञा प्राप्त कर गुणरत्न संवत्सर[१४१] नाम का तपःकर्म स्वीकार कर विहार करना चाहता हूं।

देवानुप्रिय ! "जैसा तुम्हें सुख हो। प्रतिबन्ध मत करो।"

२००. अनगार मेघ ने प्रथम मास में बिना विराम (एकान्तर) चतुर्थ-चतुर्थ भक्त (एक एक दिन का उपवास) तपःकर्म किया। दिन में स्थान--कायोत्सर्ग मुद्रा और उकडू आसन में बैठ सूर्य के सामने मुंह कर आतापना भूमि में आतापना लेता[१४२] और रात्रि में वीरासन में बैठता, निर्वस्त्र रहता।

दूसरे मास में बिना विराम षष्ठ-षष्ठभक्त (दो-दो दिन का उपवास) तपःकर्म किया। दिन में स्थान--कायोत्सर्ग मुद्रा और उकडू आसन में बैठ 'सूर्य के सामने मुंह कर आतापनाभूमि में आतापना लेता और रात्रि में वीरासन में बैठता, निर्वस्त्र रहता।

तीसरे मास में बिना विराम अष्टम-अष्टम भक्त (तीन-तीन दिन का उपवास) तपः कर्म किया। दिन में स्थान-कायोत्सर्ग मुद्रा और उकडू आसन में बैठ सूर्य के सामने मुंहकर आतापना भूमि में आतापना लेता और रात्रि में वीरासन में बैठता, निर्वस्त्र रहता।

चौथे मास में बिना विराम दशम-दशम भक्त (चार-चार दिन का उपवास) तपःकर्म किया। दिन में स्थान--कायोत्सर्ग मुद्रा और उकडू आसन में बैठ सूर्य के सामने मुंहकर आतापना भूमि में आतापना लेता और रात्रि में वीरासन में बैठता, निर्वस्त्र रहता।

पांचवे मास में बिना विराम द्वादश-द्वादश भक्त (पांच-पांच दिन का उपवास) तपःकर्म किया। दिन में स्थान--कायोत्सर्ग मुद्रा और उकडू आसन में बैठ सूर्य के सामने मुंह कर आतापना भूमि में आतापना लेता और रात्रि में वीरासन में बैठता, निर्वस्त्र रहता।

इसी प्रकार इसी अभिलाप से छठे मास में चतुर्दश-चतुर्दश भक्त (छह-छह दिन का उपवास) सातवें मास में षोडश-षोडश भक्त (सात-सात दिन का उपवास) आठवें मास में अष्टादश-अष्टादश भक्त (आठ-आठ दिन का उपवास) नौवें मास में बीसवां-बीसवां भक्त (नौ-नौ दिन का उपवास), दसवें मास में द्वाविंशति-द्वाविंशति भक्त (दस-दस दिन का उपवास) ग्यारहवें मास में चतुर्विंशति-चतुर्विंशति भक्त, (ग्यारह-ग्यारह दिन का उपवास), बारहवें मास में षट्विंशति-षट्विंशति भक्त (बारह-बारह दिन का उपवास) तेहरवें मास में अष्टाविंशति-अष्टाविंशति भक्त (तेरह-तेरह दिन का उपवास) चौदहवें मास में त्रिशंत्-त्रिशंत् भक्त (चौदह-चौदह दिन का उपवास) पन्द्रहवें मास में द्वात्रिशंत्-द्वात्रिशंत् भक्त (पन्द्रह-पन्द्रह दिन का उपवास) और सोलहवें मास में बिना विराम चतुस्त्रिशंत्-चतुस्त्रिशंत् भक्त (सोलह-सोलह दिन का उपवास) तपःकर्म किया। दिन में स्थान--कायोत्सर्ग मुद्रा और उकडू आसन में बैठ सूर्य के सामने मुंह कर आतापना भूमि में आतापना लेता और रात्रि में वीरासन में बैठता, निर्वस्त्र रहता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०१. तए णं से मेहे अणगारे गुणरयणसंवच्छरं तवोकम्मं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं सम्मं काएणं फासेइ पालेइ सोभेइ तीरेइ किट्टेइ अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं सम्मं काएणं फासेत्ता पालेत्ता सोभेत्ता तीरेत्ता किट्टेत्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता बहूहिं छट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।।

२०१. अनगार मेघ ने गुणरत्न संवत्सर नामक तपःकर्म का यथासूत्र, यथाकल्प और यथामार्ग, काया से सम्यक् स्पर्श किया, पालन किया, शोधन किया, पारित किया और उसका कीर्तन किया। उसको यथासूत्र, यथाकल्प और यथामार्ग काया से सम्यक् स्पर्श करके, पालन करके, शोधन करके, पारित करके, कीर्तन करके श्रमण भगवान महावीर को वंदना-नमस्कार किया। वंदना-नमस्कार कर अनेक प्रकार के षष्ठ भक्त, अष्टम भक्त, दशम भक्त और द्वादश भक्त तथा पाक्षिक और मासिक तप--इस प्रकार विचित्र तपःकर्म के द्वारा[४३] आत्मा को भावित करता हुआ विहार करने लगा।

मेहस्स-सरीरदसा-पदं

मेघ की शरीर-दशा का वर्णन-पद

२०२. तए णं से मेहे अणगारे तेणं ओरालेणं विपुलेणं सस्सिरीएणं पयत्तेणं पग्गहिएणं कल्लाणेणं सिवेणं धन्नेणं मंगल्लेणं उदग्गेणं उदारेणं उत्तमेणं महाणुभावेणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे किडिकिडियाभूए अट्ठिचम्मावणद्धे किसे धमणिसंतए जाए यावि होत्था--जीवंजीवेणं गच्छइ, जीवंजीवेणं चिट्ठइ, भासं भासित्ता गिलाइ, भासं भासमाणे गिलाइ, भासं भासिस्सामि त्ति गिलाइ।

से जहानामए इंगालसगडिया इ वा कट्ठसगडिया इ वा पत्तसगडिया इ वा तिलंडासगडिया इ वा एरंडसगडिया इ वा--उण्हे दिण्ण सुक्का समाणी ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ, एवामेव मेहे अणगारे ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ, उवचिए तवेणं, अवचिए मंससोणिएणं, हुयासणे इव भासरासिपरिच्छन्ने तवेणं तेएणं तवतेयसिरीए अईव-अईव उवसोभेमाणे-उवसोभेमाणे चिट्ठइ।।

२०२. मेघ उस प्रधान, विपुल, शोभायित, अनुज्ञात, प्रगृहीत, कल्याण, शिव, धन्य, मंगलमय, उत्तरोत्तर वर्धमान, उदार, उत्तम और महान प्रभावी तपःकर्म से सूखा, रूखा और मांसरहित हो गया। उठते-बैठते समय किट-किट शब्द से युक्त, चर्मवेष्टित अस्थिवाला, कृश और धमनियों का जाल[४४] मात्र हो गया। वह प्राणबल से चलता और प्राणबल से ठहरता। बोलने के पश्चात ग्लानि का अनुभव करता, बोलने के समय भी ग्लानि का अनुभव करता और बोलूंगा--ऐसा सोचकर भी ग्लानि का अनुभव करता।

जैसे कोई कोयलों से भरी हुई गाड़ी, ईंधन से भरी हुई गाड़ी, पत्तों से भरी हुई गाड़ी, तिलदंडों से भरी हुई गाड़ी अथवा ऐरण्ड की लकड़ियों से भरी हुई गाड़ी ताप लगने से सूखी हुई सशब्द चलती है, सशब्द ठहरती है, वैसे ही अनगार मेघ सशब्द (किट-किट की ध्वनि सहित) चलता और सशब्द ठहरता। वह तप से उपचित, मांस शोणित से अपचित हो गया। वह राख के ढेर से ढकी हुई आग की भांति तप, तेज तथा तपस्तेज की श्री से अतीव-अतीव उपशोभित[४५] होता हुआ, उपशोभित होता हुआ रहने लगा।

मेहस्स विपुलपव्वए अणसण-पदं

मेघ का विपुल पर्वत पर अनशन-पद

२०३. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आइगरे तित्थगरे जाव पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणामेव रायगिहे नयरे जेणामेव गुणसिलए चेइए तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।।

२०३. उस काल और उस समय में धर्म के आदिकर्ता तीर्थंकर यावत् श्रमण भगवान महावीर क्रमशः विहरण करते हुए, ग्रामानुग्राम परिव्रजन करते हुए और सुखपूर्वक विहार करते हुए जहां राजगृह नगर और गुणशिलक चैत्य था, वहां आए। वहां आकर उन्होंने प्रवास योग्य स्थान की अनुमति ली। अनुमति लेकर संयम और तप से स्वयं को भावित करते हुए विहार करने लगे।

२०४. तए णं तस्स मेहस्स अणगारस्स राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--एवं खलु अहं इमेणं ओरालेणं विपुलेणं सस्सिरीएणं पयत्तेणं पग्गहिएणं कल्लाणेणं सिवेणं धन्नेणं मंगल्लेणं उदग्गेणं उदारेणं उत्तमेणं महाणुभावेणं

२०४. किसी समय मध्य रात्रि में धर्मजागरिका करते हुए अनगार मेघ के मन में इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत, संकल्प उत्पन्न हुआ--"मैं इस प्रधान, विपुल, शोभायित, अनुज्ञात, प्रगृहीत, कल्याण, शिव, धन्य, मंगलमय, उत्तरोत्तर वर्धमान, उदार, उत्तम और महान प्रभावी तपःकर्म से सूखा, रूखा, मांस रहित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे किडिकिडियाभूए अट्ठिचम्मावणद्धे किसे धमणिसंतए जाए यावि होत्था--जीवंजीवेणं गच्छामि, जीवंजीवेणं चिट्ठामि, भासं भासित्ता गिलामि, भासं भासमाणे गिलामि, भासं भासिस्सामि त्ति गिलामि। तं अत्थि ता मे उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसकार-परक्कमे सद्धा-धिइ-संवेगे, तं जावता मे अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसकार-परक्कमे सद्धा-धिइ-संवेगे, जाव य मे धम्मायरिए धम्मोवएसए समणे भगवं महावीरे जिणे सुहत्थी विहरइ, ताव ता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते समणं भगवं महावीरं वंदित्ता नमंसित्ता समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णायस्स समाणस्स सयमेव पंच महव्वयाइं आरुहित्ता गोयमादीए समणे निग्गंथे निग्गंथीओ य खामेत्ता तहारूवेहिं कडाईहिं थेरेहिं सद्धिं विउलं पव्वयं सणियं-सणियं दुरुहित्ता सयमेव मेहघणसण्णिगासं पुढविसिलापट्टयं पडिलेहित्ता संलेहणा- झूसणा-झूसियस्स भत्तपाण-पडियाइक्खियस्स पाओवगयस्स कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए--एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पायाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता नच्चासण्णे नाइदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासइ।।

उठते-बैठते समय "किटकिट" शब्द से युक्त, चर्म से वेष्टित अस्थिवाला कृश और धमनियों का जाल मात्र हो गया हूं। मैं प्राण-बल से चलता हूं प्राण-बल से ठहरता हूं। मैं बोलने के पश्चात ग्लानि का अनुभव करता हूं बोलते समय भी ग्लानि का अनुभव करता हूं और बोलूंगा--ऐसा सोचकर भी ग्लानि का अनुभव करता हूं।

अतः जब तक मुझ में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम है, श्रद्धा, धृति और संवेग है, जितना मुझमें उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार, और पराक्रम है, श्रद्धा, धृति और संवेग है, जब तक [illegible][१४६] श्रमण भगवान महावीर विहार कर रहे हैं, तब तक मेरे लिए श्रेय है--"मैं कल उषाकाल में, पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर, तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर श्रमण भगवान महावीर को वंदना-नमस्कार कर, श्रमण भगवान महावीर से अनुज्ञा प्राप्त कर, स्वयमेव पांच महाव्रतों का आरोहण कर गौतम आदि श्रमण-निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों से क्षमायाचना कर, तथारूप कृतयोग्य स्थविरों के साथ धीरे-धीरे विपुल-पर्वत पर चढ़, स्वयमेव सघन मेघ जैसे श्याम वर्णवाले पृथ्वी-शिलापट्ट का प्रतिलेखन कर, संलेखना की आराधना से शरीर को क्षीण कर, भक्त-पान का प्रत्याख्यान कर 'प्रायोपगम' अनशन को स्वीकार कर मृत्यु की आकांक्षा न करता हुआ विहार करूं"--उसने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर, उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर, वह जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे, वहां आया। वहां आकर श्रमण भगवान महावीर को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा की, वंदना-नमस्कार किया। वंदना-नमस्कार कर भगवान के न अति निकट और न अति दूर, शुश्रूषा और नमस्कार की मुद्रा में उनके सम्मुख सविनय बद्धाञ्जलि होकर पर्युपासना करने लगा।

२०५. मेहाइ! समणे भगवं महावीरे मेहं अणगारं एवं वयासी--से नूणं तव मेहा! राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--एवं खलु अहं इमेणं ओरालेणं तवोकम्मेणं सुक्के जाव जेणेव अहं तेणेव हव्वमागए।

से नूणं मेहा! अट्ठे समट्ठे?

हंता अत्थि।

अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेहि।।

२०५. मेघ! श्रमण भगवान महावीर ने अनगार मेघ को इस प्रकार कहा--"मेघ! मध्यरात्रि में धर्मजागरिका करते हुए, तेरे मन में इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित, अभिलाषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ कि मैं इस प्रधान तपःकर्म से सूख गया हूं।" यावत् जहाँ मैं हूँ शीघ्र वहां आया।

मेघ! क्या यह अर्थ संगत है?

हां, यह संगत है।

देवानुप्रिय! जैसे सुख हो, प्रतिबंध मत करो।

२०६. तए णं से मेहे अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए जाव हरिसवस-विसप्पमाणहियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता सयमेव पंच महव्वयाइं आरुहेइ, आरुहेत्ता गोयमादीए समणे निग्गंथे निग्गंथीओ य खामेइ, खामेत्ता तहारूवेहिं कडादीहिं थेरेहिं

२०६. अनगार मेघ श्रमण भगवान महावीर से अनुज्ञा प्राप्त कर हृष्टतुष्ट चित्त वाला आनन्दित यावत् हर्ष से विकस्वर हृदय वाला हो गया। वह उठने की मुद्रा में उठा। उठकर श्रमण भगवान महावीर को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा की। वंदना-नमस्कार किया। वंदना-नमस्कार कर उसने स्वयं ही पांच महाव्रतों का आरोहण किया। आरोहण कर गौतम आदि श्रमण-निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सद्धिं विपुलं पव्वयं सणियं-सणियं दुरुहइ, दुरुहित्ता सयमेव मेहघणसण्णिगासं पुढविसिलापट्टयं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता दब्भसंथारगं संथरइ, संथरित्ता दब्भसंथारगं दुरुहइ, दुरुहित्ता पुरत्थाभिमुहे संपलियंकनिसण्णे करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी--

नमोत्थु णं अरहंताणं जाव सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपत्ताणं। नमोत्थु णं समणस्स जाव सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपाविउकामस्स मम धम्मायरियस्स। वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए, पासउ मे भगवं तत्थगए इहगयं ति कट्टु वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--

पुव्विं पि य णं मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए, मुसावाए अदिण्णादाणे मेहुणे परिग्गहे कोहे माणे माया लोहे पेज्जे दोसे कलहे अब्भक्खाणे पेसुण्णे परपरिवाए अरइरई मायामोसे मिच्छादंसणसल्ले पच्चक्खाए।

इयाणिं पि णं अहं तस्सेव अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जाव मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि, सव्वं असण-पाण-खाइम-साइमं चउव्विहंपि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए।

जंपि य इमं सरीरं इट्ठं कंतं पियं मणुण्णं मणामं थेज्जं वेस्सासियं सम्मयं बहुमयं अणुमयं भंडकरंडगसमाणं मा णं सीयं मा णं उण्हं मा णं खुहा मा णं पिवासा मा णं चोरा मा णं वाला मा णं दंसा मा णं मसया मा णं वाइय-पित्तिय-सेंभिय-सण्णिवाइय विविहा रोगायंका परीसहोवसग्गा फुसंतीति कट्टु एयं पि य णं चरमेहिं ऊसास-नीसासेहिं वोसिरामि त्ति कट्टु संलेहणा-झूसणा-झूसिए भत्तपाण-पडियाइक्खिए पाओवगए कालं अणवकंखमाणे विहरइ।।

क्षमा-याचना की। क्षमायाचना कर तथारूप कृतयोग्य स्थविरों के साथ धीरे-धीरे विपुल पर्वत पर चढ़ा। चढ़कर सघन-मेघ जैसे श्याम वर्णवाले पृथ्वी-शिलापट्ट का प्रतिलेखन किया। प्रतिलेखन कर उच्चार प्रस्रवण योग्य भूमि का प्रतिलेखन किया। प्रतिलेखन कर डाभ का बिछौना बिछाया। बिछाकर पूर्व दिशा की ओर मुंह कर, पर्यंकासन में बैठ[147] सटे हुए दस नख वाली दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार बोला--

"नमस्कार हो अर्हत भगवान को यावत् जो सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त हो चुके हैं। नमस्कार हो श्रमण भगवान को यावत् जो सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त करने के इच्छुक हैं, ऐसे मेरे धर्माचार्य को यहाँ बैठा हुआ मैं वहां विराजित भगवान को वंदना करता हूं। वहां विराजित भगवान यहां स्थित मुझे देखें, ऐसा सोचकर उसने वंदना-नमस्कार किया। वंदना-नमस्कार कर इस प्रकार बोला--

"मैंने पहले भी श्रमण भगवान महावीर के पास सर्व प्राणातिपात का प्रत्याख्यान किया था। मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रेय, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, पर-परिवाद, रति-अरति, माया-मृषा और मिथ्यादर्शनशल्य का प्रत्याख्यान किया था।

अब भी मैं उन्हीं के पास सर्वप्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूँ यावत् मिथ्यादर्शन शल्य का प्रत्याख्यान करता हूँ और जीवन-पर्यन्त अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य इस चतुर्विध आहार का प्रत्याख्यान करता हूँ।

यद्यपि मेरा यह शरीर जो मुझे इष्ट, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर, स्थिरतर, विश्वसनीय, सम्मत, बहुमत और अनुमत है आभरण करंडक की भांति सुसंरक्षित है। सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, चोर, सांप, डांस, मच्छर, वात, पित्त, श्लेष्म तथा सन्निपात जनित विविध रोग और आंतक, परीषह और उपसर्ग इसका स्पर्श न करे--इस दृष्टि से इस को भी मैं अंतिम उच्छ्वास-नि:श्वास तक छोड़ता हूं--ऐसा कर वह संलेखना की आराधना में लीन होकर, भक्त-पान का प्रत्याख्यान कर, प्रायोपगमन अनशन की अवस्था में मृत्यु की आकांक्षा न करता हुआ विहार करने लगा।[148]

२०७. तए णं ते थेरा भगवंतो मेहस्स अणगारस्स अगिलाए वेयावडियं करेंति।।

२०७. वे स्थविर भगवान अनगार मेघ की अग्लानभाव से वैयावृत्य करने लगे।

मेहस्स समाहिमरण-पदं

२०८. तए णं से मेहे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारसअंगाइं अहिज्जित्ता, बहुपडिपुण्णाइं दुवालसवरिसाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता,

मेघ का समाधि-मरण पद

२०८. अनगार मेघ ने श्रमण भगवान महावीर के तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। प्राय: परिपूर्ण बारह वर्ष के श्रामण्य-पर्याय का पालन किया। एक मासिक संलेखना[149]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झोसेत्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेएत्ता, आलोइय-पडिक्कंते उद्धियसल्ले समाहिपत्ते अणुपुव्वेणं कालगए।।

से अपने आप (शरीर) को कृश बना, अनशन के द्वारा[५०] साठ भक्त (भोजन के समय) का छेदन किया। आलोचना और प्रतिक्रमण कर, शल्य का उद्धरण कर समाधि पूर्ण दशा में क्रमश: कालधर्म को प्राप्त हो गया।

थेरेहिं मेहस्स आयारभंडसमप्पण-पदं

२०९. तए णं ते थेरा भगवंतो मेहं अणगारं अणुपुव्वेणं कालगयं पासंति पासित्ता परिनेव्वाणवत्तियं काउस्सग्गं करेंति, करेत्ता मेहस्स आयारभंडगं गेण्हंति, विउलाओ पव्वयाओ सणियं-सणियं पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्ता जेणामेव गुणसिलए चेइए, जेणामेव समणे भगवं महावीरे, तेणामेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी मेहे नामं अणगारे पगइभद्दए पगइउवसंते पगइपयणुकोहमाणमायालोभे मिउमद्दवसंपण्णे अल्लीणे विणीए से णं देवाणुप्पिएहिं अब्भणुण्णाए समाणे गोयमाइए समणे निग्गंथे निग्गंथीओ य खामेत्ता अम्हेहिं सद्धिं विपुलं पव्वयं सणियं-सणियं दुरुहइ, सयमेवमेघघणसण्णिगासं पुढविसिलं पडिलेहेइ, भत्तपाण-पडियाइक्खिए अणुपुव्वेणं कालगए।

एस णं देवाणुप्पिया! मेहस्स अणगारस्स आयारभंडए।।

स्थविरों द्वारा मेघ के आचार-भाण्ड का समर्पण-पद

२०९. स्थविर भगवान ने अनगार मेघ को क्रमशः कालधर्म को प्राप्त हुआ देखा। देखकर परिनिर्वाण हेतुक कायोत्सर्ग[५१] किया। कायोत्सर्ग कर मेघ के आचार-भाण्ड (साधु जीवन के उपकरण) लिए। धीरे-धीरे विपुल पर्वत से नीचे उतरे। नीचे उतर कर जहाँ गुणशिलक चैत्य था, जहां श्रमण भगवान महावीर थे, वहाँ आए। वहाँ आकर श्रमण भगवान महावीर को वंदना-नमस्कार किया। वंदना नमस्कार कर इस प्रकार बोले--

देवानुप्रिय का अंतेवासी मेघ नाम का अनगार जो प्रकृति से भद्र प्रकृति से उपशांत था। जिसकी प्रकृति में क्रोध, मान, माया, लोभ प्रतनु (पतले) थे, जो मृदु-मार्दव से सम्पन्न, आत्मलीन और विनीत था। देवानुप्रिय से अनुज्ञा प्राप्त कर, गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों और निर्ग्रंथियों से क्षमायाचना कर हमारे साथ धीरे-धीरे विपुल पर्वत पर चढ़ा। वहाँ स्वयंमेव सघन-मेघ जैसे श्याम वर्णवाले पृथ्वी शिलापट्ट का प्रतिलेखन किया। भक्त-पान का प्रत्याख्यान किया और क्रमश: कालधर्म को प्राप्त हो गया।

देवानुप्रिय! ये हैं अनगार मेघ के आचार-भाण्ड (साधु जीवन के उपकरण)

गोयमपुच्छाए भगवओ उत्तर-पदं

२१०. भंते! त्ति भगवं गोयमे समणं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी मेहे नामं अणगारे से णं भंते! मेहे अणगारे कालमासे कालं किच्चा कहिं गए? कहिं उववण्णे?

गौतम के प्रश्न का भगवान द्वारा उत्तर-पद–

२१०. भन्ते! भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वंदना-नमस्कार किया। वंदना-नमस्कार कर इस प्रकार बोले--

देवानुप्रिय का अंतेवासी मेघ नाम का अनगार था। भंते! वह अनगार मेघ, कालमास में काल को प्राप्त कर कहां गया है? कहां उत्पन्न हुआ है?

२११. गोयमाइ! समणे भगवं महावीरे गोयमं एवं वयासी--एवं खलु गोयमा! मम अंतेवासी मेहे नामं अणगारे पगइभद्दए जाव विणीए, से णं तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता, बारस भिक्खुपडिमाओ गुणरयण-संवच्छरं तवोकम्मं काएणं फासेत्ता जाव किट्टेत्ता, मए अब्भणुण्णाए समाणे गोयमाइ थेरे खामेत्ता, तहारूवेहिं कडादीहिं थेरेहिं सद्धिं विपुलं पव्वयं (सणियं-सणियं?) दुरुहित्ता, दब्भसंथारगं, संथरित्ता दब्भसंथारोवगए सयमेव पंचमहव्वए उच्चारेत्ता, बारस वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता आलोइय-पडिक्कंते उद्धियसल्ले समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा उड्ढं चंदिम-सूर-

२११. गौतम! श्रमण भगवान महावीर ने गौतम से इस प्रकार कहा--गौतम! मेरा अंतेवासी मेघ नाम का अनगार, जो प्रकृति से भद्र यावत् विनीत था, वह तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन, बारह भिक्षु-प्रतिमाओं और गुणरत्न सम्वत्सर नाम के तप:कर्म का काया से स्पर्श कर यावत् कीर्तित कर मुझसे अनुज्ञा प्राप्त कर, गौतम आदि स्थविरों से क्षमायाचना कर तथारूप कृतयोग्य स्थविरों के साथ विपुल-पर्वत पर (धीरे-धीरे?) चढ़कर उसने डाभ का बिछौना बिछाया। डाभ के बिछौने पर जा, स्वयमेव पांच महाव्रतों का उच्चारण किया। बारह वर्ष तक श्रामण्य-पर्याय का पालन किया। मासिक-संलेखना में अपने आपको कृश किया। अनशन काल में साठ भक्तों का परित्याग किया। (अंतिम समय में) आलोचना की,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गहगण-नक्खत्त-तारारूवाणं बहूइं जोयणाइं बहूइं जोयणसयाइं बहूइं जोयणसहस्साइं बहूइं जोयणसयसहस्साइं बहूओ जोयणकोडीओ बहूओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभ-लंतग-महासुक्क-सहस्साराणय-पाणयारणच्चुए तिण्णि य अट्ठारसुत्तरे गेवेज्जविमाणवाससए वीईवइत्ता विजए महाविमाणे देवत्ताए उववण्णे।

तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। तत्थ णं मेहस्स वि देवस्स तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई।।

प्रतिक्रमण किया और शल्य का उद्धरण कर, समाधि अवस्था में मृत्यु के समय, मृत्यु का वरण कर, वह ऊपर-चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और ताराओं से अनेक योजन, अनेक शतयोजन, अनेक सहस्रयोजन, अनेक लक्षयोजन, अनेक कोटियोजन, अनेक कोटि-कोटि योजन से भी ऊपर, दूर तक उत्पतन कर, सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत और तीन सौ अठारह ग्रैवेयक के विमानवासों का अतिक्रमण कर विजय नाम के अनुत्तर महाविमान में देवरूप में उत्पन्न हुआ है। वहां कुछ देवों की स्थिति तैंतीस सागरोपम प्रज्ञप्त है। वहां मेघ देव की स्थिति भी तैंतीस सागरोपम है।

२१२. एस णं भंते! मेहे देवे ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं ठिइक्खएणं भवक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिइ? कहिं उववज्जिहिइ?

गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ परिनिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।।

२१२. भंते! यह 'मेघ' देव आयु क्षय, स्थिति क्षय और भव क्षय के[१२] अनन्तर, उस देवलोक से च्यवन कर[१३] कहां जायेगा? कहां उपपन्न होगा?

गौतम! वह महाविदेह क्षेत्र में, सिद्ध, प्रशांत, मुक्त, परिनिर्वृत होगा, सब दु:खों का अंत करेगा।

निक्खेव-पदं

२१३. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थगरेणं जाव सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपत्तेणं अप्पोलंभ-निमित्तं पढमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

--त्ति बेमि

निक्षेप पद

२१३. जम्बू! इस प्रकार धर्म के आदिकर्ता तीर्थंकर यावत् सिद्धिगति नामक स्थान को संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने आत्मोपलब्धि के लिए ज्ञाता के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

—ऐसा मैं कहता हूं।

वृत्तिकृता समुद्धृता निगमनगाथा—

महुरेहिं निउणेहिं, वयणेहिं चोययंति आयरिया।
सीसे कहिंचि खलिए, जह मेहमुणिं महावीरो।।१।।

वृत्तिकार द्वारा समुद्धृत निगमनगाथा—

१. शिष्य यदि कहीं स्खलित हो जाता है, तो आचार्य उसे मधुर और निपुण वचनों से प्रेरित करते हैं, जैसे मेघ मुनि को महावीर ने प्रेरित किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

सूत्र १

१. उस काल और उस समय (तेणं कालेणं तेणं समएणं)

यहां काल से सामान्यकाल विवक्षित है, जैसे अवसर्पिणी काल का चौथा विभाग।

समय से निश्चित कालावधि विवक्षित है, जैसे वह समय, जिस समय में चम्पानगरी, अमुक राजा अथवा सुधर्मा स्वामी थे।[१]

'तेणं कालेणं तेणं समएणं'--यहां सप्तमी के अर्थ में तृतीया विभक्ति है। वृत्तिकार ने वैकल्पिक रूप से इसे तृतीयान्तपद भी माना है। हेत्वर्थ में तृतीया विभक्ति की संभावना है।[२] तुलना के लिए द्रष्टव्य भगवई खण्ड १/पृ. ११

२. वर्णक (वण्णओ)

यह सूचक पद है। सूत्र १, २, ३ में क्रमशः चम्पानगरी, पूर्णभद्र चैत्य और कोणिक राजा का विस्तृत वर्णन औपपातिक सूत्र १, २, १३ और १४ के अनुसार वक्तव्य है। तुलना के लिए द्रष्टव्य भगवई खण्ड १/पृ. ११

सूत्र २

३. चैत्य (चेइए)

चैत्य शब्द का अर्थ है--व्यन्तर का आयतन।[३] द्रष्टव्य भगवई खण्ड १/पृ. १२

सूत्र ४

४. अन्तेवासी (अंतेवासी)

अन्तेवासी का अर्थ है--गुरु के निकट रहने वाला। आगम ग्रन्थों में गौतम को सर्वत्र भगवान महावीर का ज्येष्ठ अन्तेवासी कहा गया है। तुलना के लिए द्रष्टव्य भगवई खण्ड १/ पृ. १४, १५

५. स्थविर (थेरे)

'स्थविर का अर्थ है वृद्ध। ठाणं में तीन प्रकार के स्थविर बतलाये गये हैं।

१. जाति-स्थविर--जो जन्म पर्याय से साठ वर्ष का हो।

२. श्रुत-स्थविर--जो स्थानांग और समवायांग का धारक हो।

३. पर्याय-स्थविर--जो बीस वर्ष की संयम पर्याय वाला हो।[४]

प्रस्तुत प्रसंग में स्थविर शब्द श्रुत-स्थविर के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[५]

६. प्रस्तुत सूत्र (सूत्र ४) के विमर्शनीय पद–

१. बल-सम्पन्न--बल का अर्थ है विशिष्ट संहनन के साथ उपलब्ध होने वाला प्राण।[६]

शक्ति-सम्पन्नता के बिना किसी भी क्षेत्र में वैशिष्ट्य अर्जित नहीं किया जा सकता। वीर्य हीन ज्ञान आदि में प्रवृत्त नहीं हो सकता।[७]

तत्त्वार्थ वार्तिक में तीन प्रकार की बलालम्बना ऋद्धि का वर्णन है--मनोबली, वचनबली और कायबली।

मनोबली--मनःश्रुतावरण और वीर्यान्तराय के क्षयोपशम के प्रकर्ष के कारण जो अन्तर्मुहूर्त में सकलश्रुत के उच्चारण में समर्थ होते हैं।

वचनबली--सतत उच्च स्वर से श्रुत का उच्चारण करने पर भी जो थकते नहीं और जिनका कण्ठ स्वर दुर्बल नहीं होता वे वचनबली कहलाते हैं।

कायबली--वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से आविर्भूत असाधारण कायबल के कारण जो मासिक, चातुर्मासिक, साम्वत्सरिक आदि प्रतिमायोग को धारण करने पर श्रान्ति और क्लान्ति से रहित रहते हैं, वे कायबली कहलाते हैं।[८]

२. रूप-सम्पन्न--रूप का अर्थ है शरीर का सौन्दर्य। देवता मनुष्य से अधिक सुन्दर होते हैं। उनमें सर्वाधिक सुन्दर होते हैं अनुत्तरविमानवासी देव। सुधर्मा स्वामी का सौन्दर्य उनसे भी अनन्तगुणा अधिक था।[९]

३. लाघव सम्पन्न--लाघव दो प्रकार का होता है--

१. द्रव्य लाघव--उपधि की अल्पता।

२. भाव लाघव--ऋद्धि गौरव, रस गौरव और साता गौरव--गौरवत्रिक का परित्याग।[१०]

विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य उत्तरज्झयणाणि २९/४३ का टिप्पण।

४. ओजस्वी--ओज से युक्त, आभासम्पन्न।

५. तेजस्वी--शारीरिक दीप्ति से युक्त।[११]

६. वर्चस्वी--वृत्तिकार ने 'वच्चंसी' के दो संस्कृत रूप दिए हैं--वचस्वी और वर्चस्वी।

जिसका वचन सौभाग्य आदि गुणों से युक्त होता है वह वचस्वी कहलाता है।

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१--अथ कालसमययोः कः प्रतिविशेषः? उच्यते-काल इति सामान्यकालः, अवसर्पिण्याश्चतुर्थविभागलक्षणः समयस्तु तद्विशेषो, यत्र सा नगरी, स राजा, सुधर्माः स्वामी च बभूव।

२. वही--अथवा तृतीयैवेयं, ततस्तेन कालेन अवसर्पिणीचतुर्थारकलक्षणेन हेतुभूतेन, तेन समयेन, तद्विशेषभूतेन हेतुना।

३. वही, पत्र-४--चैत्यं व्यन्तरायतनम्।

४. ठाणं ३/१८७

५. ज्ञातावृत्ति, पत्र-८--'थेरे' त्ति श्रुतादिभिर्वृद्धत्वात् स्थविरः।

६. वही, बलं--संहननविशेषसमुत्थः प्राणः।

७. निशीथभाष्य गाथा ४८.--'ण हु वीरियपरिहीणो पवत्तते नाणमादीसु।

८. तत्त्वार्थ वार्तिक-३/३७ पृ. २०३

९. ज्ञातावृत्ति, पत्र-८. रूपं--अनुत्तरसुररूपादनन्तगुणं शरीरसौन्दर्यम्।

१०. वही, लाघवं--द्रव्यतोऽल्पोपधित्वं, भावतो गौरवत्रयत्यागः।

११. वही--तेजस्वी तेजः--शरीरप्रभा तद्वांस्तेजस्वी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्च का अर्थ है तेज, प्रभाव। जिसका व्यक्तित्व प्रभावशाली होता है, वह वर्चस्वी कहलाता है।[१] वच्चंसी का वर्चस्वी रूप अधिक संगत है। उक्त चारों शब्दों में अनुस्वार का प्रयोग अलाक्षणिक है।

७. यशस्वी

यशस्वी का अर्थ है--प्रख्यात[२]

८. क्रोध विजेता.....लोभ विजेता

यहां क्रोध-विजेता आदि का प्रयोग उदय प्राप्त क्रोध, मान, माया और लोभ को विफल करने की अपेक्षा से हुआ है।[३]

क्रोध विजय की तीन भूमिकाएं हैं--

१. क्षीणावस्था--इस भूमिका में क्रोध क्षीण हो जाता है।

२. शान्तावस्था--इस भूमिका में क्रोध शान्त रहता है।

३. विफलावस्था--इस भूमिका में क्रोध का उदय होता है किन्तु संयम के कारण वह सफल नहीं हो पाता। क्रोध का आवेश आने पर अपशब्द का प्रयोग करना अथवा गाली देना, हाथ उठाना, मुक्का तानना--इन व्यवहारों से क्रोध सफल होता है। जो व्यक्ति उक्त व्यवहार नहीं करता, उसका क्रोध विफल हो जाता है।

वृत्तिकार ने लिखा है कि सुधर्मा स्वामी उदय प्राप्त क्रोध को विफल कर देते थे इसीलिए उन्हें क्रोधजयी कहा जाता था।

मानजयी आदि की व्याख्या भी इसी नय से की जा सकती है।

९. तप से प्रधान, गुण से प्रधान

आर्य सुधर्मा का तप प्रधान था। गुण का अर्थ है--संयम के साधक गुण अथवा संयम-साधना से निष्पन्न गुण।[४]

तप, नियम, संयम, स्वाध्याय--ये सब गुण हैं। यहां संयम गुण का ही एक अंग है। आर्य सुधर्मा में इन गुणों का विशेष विकास था।

जैन साधना पद्धति के मुख्य दो अंग हैं--संवर और निर्जरा।

तपः प्रधान और गुणप्रधान--इन दोनों विशेषणों द्वारा ये ही दोनों अंग अभिगृहीत हुए हैं। पूर्वबद्ध कर्मों के निर्जरण का हेतु है तप और अभिनव कर्म परमाणुओं का अवरोधक है संयम। मोक्ष साधना में ये दोनों उपादेय हैं।[५]

१०. चरण प्रधान, करण प्रधान

जैसे तपः प्रधान, गुणप्रधान--ये आर्य सुधर्मा के विशेषण हैं वैसे ही करण चरण से लेकर चरित्र शब्द तक प्रधान शब्द की योजना करने से करण-प्रधान, चरण प्रधान आदि इक्कीस विशेषण और बन जाते हैं।[६]

वृत्तिकार के अनुसार करण-प्रधान, चरण-प्रधान--ये सब गुण शब्द की व्याख्या के अंग हैं।[७]

११. करण

पिण्डविशुद्धि, समिति, भावना आदि उत्तरगुणों को करण कहा जाता है।[८] ओघनिर्युक्ति में करण की समग्र परिभाषा उपलब्ध है। उसके अनुसार पिण्डविशुद्धि, समिति, भावना, प्रतिमा, इन्द्रिय-निरोध, प्रतिलेखन, गुप्ति और अभिग्रह--ये करण हैं।[९]

१२. चरण

महाव्रत, श्रमणधर्म, संयम, वैयावृत्य आदि को चरण कहा जाता है।[१०]

ओघनिर्युक्ति के अनुसार व्रत, श्रमणधर्म, संयम, वैयावृत्य, ब्रह्मचर्य, गुप्तियां, ज्ञानादित्रिक, तप और क्रोध आदि का निग्रह चरण है।[११]

चरण और करण का अंतर स्पष्ट है--'नित्यमनुष्ठानं चरणं यत्तु प्रयोजनमापन्ने क्रियते तत्करणमिति।'[१२]

दशवैकालिक में मूल गुण और उत्तर गुण रूप चारित्र को ही चर्या कहा गया है।[१३]

१३. निग्रह

निग्रह का अर्थ है--नियंत्रण की क्षमता का विकास। लौकिक पक्ष में शासक द्वारा अपराधी लोगों का निग्रह किया जाता है। आध्यात्मिक साधना के पक्ष में साधक के द्वारा इन्द्रियों का निग्रह किया जाता है। सुधर्मा स्वामी का निग्रह प्रधान था। वृत्तिकार ने निग्रह का अर्थ अनाचार प्रवृत्ति का निषेध किया है।[१४]

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-८--वचो--वचनं सौभाग्याद्युपेतं यस्यास्ति स वचस्वी; अथवा वर्चः--तेजः प्रभाव इत्यर्थस्तद्वान् वर्चस्वी।

२. वही--यशस्वी--ख्यातिमान्।

३. वही--क्रोधादिजय उदयप्राप्त क्रोधादि-विफलीकरणतोऽवसेयः।

४. वही--गुणाः संयमगुणाः।

५. वही--एतेन च विशेषणद्वयेन तपःसंयमो पूर्वबद्धाभिनवयोः कर्मणोर्निर्जरणानुपादानहेतू मोक्षसाधने मुमुक्षूणामुपादेयावुपदर्शितौ।

६. वही--यथा गुणशब्देन प्रधान-शब्दोत्तर-पदेन तस्य विशेषणमुक्तमेवं करणादिभिरेकाविंशत्या शब्दैरेकविंशति-विशेषणान्यध्येयानि, तद्यथा--करणप्रधानश्चरणप्रधानो यावच्चरित्रप्रधानः।

७. वही--गुणप्राधान्ये प्रपञ्चार्थमिवाह 'एवं करणे'-त्यादि।

८. वही--करणं पिण्डविशुद्ध्यादिः, यदाह 'पिंडविसोही समिई भावणं इत्यादि।

९. ओघनिर्युक्ति, पत्र-१३--भाष्यगाथा ३--

पिण्डविसोही समिईभावण, पडिमा य, इंदियनिरोहो।
पडिलेहण गुत्तीओ, अभिग्गहा चेव करणं तु।।

१०. ज्ञातावृत्ति, पत्र-८--चरणं महाव्रतादि, आह च--'वय समण-धम्मं संजमवेयावच्चं च' इत्यादि।

११. ओघनिर्युक्ति, पत्र-११. भाष्यगाथा २--

वय समणधम्म संजम वेयावच्चं च बंभगुत्तीओ।
नाणाइतियं तव कोहनिग्गहाइ चरणमेयं।।

१२. वही, पत्र-१४

१३. दसवेआलियं, जिनदासचूर्णि पृ. ३७०--चरिया चरित्तमेव मूलुत्तरगुणसमुदायो।

१४. ज्ञातावृत्ति, पत्र-८. निग्रहः--अनाचारप्रवृत्तेर्निषेधनं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. निश्चय

निश्चय के दो अर्थ हैं--तत्त्व-निर्णय अथवा विहित अनुष्ठानों को अवश्य करने का अभ्युपगम।[1] इससे उनकी निर्णायक क्षमता और तीव्र संकल्प-शक्ति का परिचय मिलता है।

१५. दक्षता (लाघव)

प्रस्तुत सूत्र में लाघव शब्द दो बार प्रयुक्त हुआ है। पहला लघुता के अर्थ में और दूसरा दक्षता के अर्थ में। दक्षता के अर्थ में लाघव शब्द प्रचलित भी है। शिल्प आदि के लिए कहा जाता है--यह सब हस्त लाघव है।

यहां लाघव प्रधान से तात्पर्य है--आर्य सुधर्मा की प्रत्येक प्रवृत्ति दक्षतापूर्ण थी।[2]

लाघव शब्द के दोनों अर्थ वृत्ति के आधार पर किए गए हैं। भगवती वृत्ति में भी ऐसा ही मिलता है।[3] मीमांसा करने पर प्रतीत होता है कि आर्जव और मार्दव के साथ लाघव के प्रयोग का संबंध दस प्रकार के श्रमण धर्म में आए लाघव के साथ है। उसका अर्थ अल्पोपधि और गौरवत्रिक का त्याग होना चाहिए। बल, रूप आदि के साथ प्रयुक्त लाघव शब्द का संबंध दक्षता के साथ होना चाहिए।

१६. विद्या, मंत्र

विद्या और मंत्र के प्रयोग से विशिष्ट शक्तियां जागृत होती हैं। साधना-विधि, अधिष्ठान-भेद और आकृति-विन्यास की दृष्टि से इन दोनों में कुछ भेद हैं। जैसे--

विद्या--प्रज्ञप्ति आदि स्त्री देवता द्वारा अधिष्ठित होती है। जिसकी आराधना-साधना सापेक्ष हो।

मंत्र--हरिणेगमेषी आदि पुरुष देवता द्वारा अधिष्ठित होता है। जिसकी आराधना-साधना निरपेक्ष हो।[4]

निशीथ भाष्य चूर्णि में मिलता है--

इत्थी अभिहाणा ससाहणा वा विज्जा।
पुरिसाभिहाणो, पढियसिद्धो य मंतो।।[5]

उत्तराध्ययन बृहद्‌वृत्ति में मंत्र के संबंध में विशेष जानकारी मिलती है। जो देवताधिष्ठित होता है, जिसके आदि में 'ॐ' और अन्त में 'स्वाहा' होता है, जो 'ह्रीं' आदि वर्ण विन्यासात्मक होता है, उसे मंत्र कहा जाता है।[6] विशेष विवरण हेतु द्रष्टव्य उत्तरज्झयणाणि १५/८ का टिप्पण।

१७. ब्रह्मचर्य

वृत्तिकार ने बंभ का मूल अर्थ ब्रह्मचर्य ही किया है। वैकल्पिक रूप से सब प्रकार के कुशल अनुष्ठान को ब्रह्म माना है।[7]

१८. वेद

वेद शब्द का अर्थ है--ज्ञान, अनुभव या संवेदन। आर्य सुधर्मा ज्ञान-सम्पन्न थे, यह उल्लेख पहले आ चुका है। अतः यहां वेद का अर्थ आगम है। इसकी पुष्टि निशीथ चूर्णि से भी होती है। वहां आयारो के लिए 'वेद' शब्द प्रयुक्त हुआ है।[8]

वृत्तिकार ने वेद का अर्थ आगम किया है। आगम के तीन प्रकार हैं--लौकिक, लोकोत्तर, कुप्रावचनिक।[9] आर्य सुधर्मा इन तीनों के अधिकृत ज्ञाता थे।

१९. नय

नीति अथवा नैगम आदि नय।

२०. नियम

विचित्र प्रकार के अभिग्रह।[10]

शान्त्याचार्य ने भी अभिग्रहात्मक व्रत को नियम कहा है।[11] योग-दर्शन सम्मत अष्टांग योग में नियम का स्थान दूसरा है। उसके अनुसार शौच, संतोष, स्वाध्याय, तप और देवता प्रणिधान ये नियम कहलाते हैं।[12]

२१. शौच

शौच के दो प्रकार हैं--द्रव्य शौच और भाव शौच।

द्रव्य शौच--निर्लेपता।

भाव शौच--अनवद्य समाचरण।[13] यह दशविध श्रमण धर्म का एक प्रकार है। इसका तात्पर्य है अर्थ के प्रति होने वाली अनाकांक्षा।

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-८--'निश्चयः--तत्त्वानां निर्णयः, विहितानुष्ठानेषु वाऽवश्यं करणाभ्युपगमः।
२. वही--लाघवं क्रियासु दक्षत्वम्।
३. भगवई, खण्ड १, पृ. २६८, २६९
४. ज्ञातावृत्ति, पत्र-८--विद्याः प्रज्ञप्त्यादिदेवताधिष्ठिता वर्णानुपूर्व्यः, मन्त्राः हरिणेगमिष्यादिदेवताधिष्ठितास्ता एव अथवा विद्याः ससाधनाः, साधनारहिताः मन्त्राः।
५. निशीथभाष्य, भाग ३, पृ. ४२२
६. उत्तराध्ययन बृहद्‌वृत्ति, पत्र-४१७--'मन्त्रम्' ऊँकारादि स्वाहापर्यन्तो ह्रींकारादि वर्णविन्यासात्मकस्तम्।
७. ज्ञातावृत्ति, पत्र-८--ब्रह्म - ब्रह्मचर्यं सर्वमेव वा कुशलानुष्ठानम्।
८. निशीथभाष्य पीठिका गा. १
णव बंभचेरमइओ, अट्ठारसपयसाहस्सिओ वेओ।
९. ज्ञातावृत्ति, पत्र-८--वेदः - आगमो लौकिक-लोकोत्तर-कुप्रावचनिकभेदः।
१०. वही--नियमाः विचित्रा अभिग्रहविशेषाः।
११. उत्तराध्ययन बृहद्‌वृत्ति, पत्र-४५१-४५२--नियमश्च द्रव्याद्यभिग्रहात्मकः।
१२. पातञ्जल योगदर्शन २/ ३२--शौचसन्तोषतपः - स्वाध्यायेश्वर-प्रणिधानानि नियमाः।
१३. ज्ञातावृत्ति, पत्र-८.--शौचं-द्रव्यतो निर्लेपता, भावतोऽनवद्यसमाचारताः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२. ज्ञान, दर्शन, चारित्र

ज्ञान-मतिज्ञान आदि।

दर्शन-सम्यक् दर्शन।

चारित्र-बाह्य सदनुष्ठान।[१]

प्रस्तुत सूत्र में आर्य सुधर्मा के व्यक्तित्व वर्णन में पहले क्रोधजयी.....लोभजयी के रूप में उल्लेख हुआ है और फिर बताया गया कि वे आर्जव, मार्दव, लाघव और क्षान्ति सम्पन्न थे। सामान्यतः लगता है पुनरुक्ति हुई है, किन्तु वृत्तिकार ने इसका स्वयं समाधान प्रस्तुत कर दिया है।

जियकोहे........आदि का अर्थ है उदय प्राप्त क्रोध आदि का विफलीकरण और अज्जवप्पहाणे आदि से अभिप्रेत है क्रोध आदि कषायों के उदय का निरोध।

वे जितक्रोध आदि हैं इसलिए क्षमादि प्रधान हैं। इस हेतुहेतुमद्भाव से भी दोनों प्रयोगों के अर्थ की भिन्नता का बोध होता है। यही दो बार प्रयोग करने की सार्थकता है।[२]

२३. घोर

परिषह, इन्द्रिय और कषाय रूप शत्रुओं के विनाश के लिए भीम।[३]

घोर एक विशेष प्रकार की साधना थी। जो साधक प्रत्येक कष्ट को सह लेता, परिस्थिति से पराजित नहीं होता वह घोर कहलाता।

२४. घोरव्रती, घोरतपस्वी, घोरब्रह्मचर्यवासी

इसका तात्पर्य है, उन जैसा व्रत, तप और ब्रह्मचर्य वास अन्य अल्पसत्व साधकों के लिए दुरनचुर है। इससे आर्य सुधर्मा की अद्भुत सत्त्वशीलता का परिचय मिलता है।[४]

जो अत्यन्त दुर्धर महाव्रतों को धारण किए हुए हो, उसे घोरव्रती कहा जाता है।[५]

विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य भगवई खण्ड १ पृष्ठ १६-१७

२५. विपुल तेजोलेश्या को अपने भीतर समेटे हुए

तेजोलेश्या तपोजनित विशिष्ट लब्धि है। इससे शरीर में ऐसी प्रखर तेजोज्वाला प्रकट होती है जो अनेक योजन परिमित क्षेत्र में स्थित वस्तुओं को जला सकती है।[६]

अध्यात्म के क्षेत्र में उपलब्ध शक्ति का प्रयोग निषिद्ध है। आर्य सुधर्मा विपुल तेजोलेश्या को अपने भीतर समेटे हुए थे। इससे यही ध्वनित होता है कि वे महान शक्तिधर थे। अनुग्रह और निग्रह करने में समर्थ थे फिर भी वे सदा आत्मलीन रहते थे। उस शक्ति का प्रयोग नहीं करते थे।

तेजोलेश्या एक विशेष प्रकार की प्राण शक्ति है। ठाणं और भगवती में इस सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा है। तेजोलब्धि से सम्पन्न व्यक्ति अपने स्थान पर खड़ा-खड़ा अंग-बंग जैसे विशाल १६ प्रान्तों को कुछ क्षणों में भस्म कर सकता है। यह आणविक आयुधों से भी भयानक शक्ति है। यह शक्ति नष्ट करने की ही नहीं, अपितु सुरक्षा के उपयोग की भी है। शीतलतेजोलेश्या भयानक आग को शान्त कर सकती है। जिस व्यक्ति को तेजोलब्धि उपलब्ध हो जाती है उस व्यक्ति का भी इस लब्धि से कोई अहित नहीं किया जा सकता। ठाणं सूत्र में बताया गया है कि तेजोलब्धि सम्पन्न श्रमण माहण की आशातना करता हुआ कोई व्यक्ति उस पर लब्धि का प्रयोग करता है तो वह लब्धि उसके शरीर में प्रवेश नहीं कर सकती, मार नहीं सकती।[७] उसके शरीर के ऊपर, नीचे, दायें, बायें प्रदक्षिणा देती हुई, आकाश मार्ग से लौट कर, जिसने लब्धि का प्रयोग किया उसी के शरीर में प्रविष्ट हो जाती है। गोशालक ने भगवान महावीर पर लब्धि का प्रयोग किया। उस लब्धि ने पुनः उसके शरीर में प्रवेश कर उसको ही प्रतिहत किया, जिससे उसकी मृत्यु हो गई।

तेजोलब्धि से जैसे उष्ण विस्फोट होता है वैसे ही शीतल विस्फोट भी किया जाता है। ठाणं में संक्षिप्त विपुल तेजोलेश्या की उपलब्धि के तीन उपाय बताये गए हैं--आतापना, क्षान्ति (क्षमा), निर्जल तपःकर्म।[८]

तेजोलब्धि की दो अवस्थाएं होती हैं--संक्षिप्त और वितत। इन्हें सुप्त और जागृत भी कहा जा सकता है। सामान्य अवस्था में यह संक्षिप्त या सुप्त रहती है और प्रयोगकाल में जागृत हो जाती है।

विस्तार हेतु द्रष्टव्य-भगवई खण्ड १, पृ. १७

सूत्र ६

७. समचतुष्कोण संस्थान से संस्थित (समचउरंससंठाणसंठिए)

द्रष्टव्य--उत्तरज्झयणाणि २२/६/३

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-८--ज्ञानं मत्यादि, दर्शनं--चक्षुदर्शनादि सम्यक्त्वं वा, चारित्रं बाह्यं सदनुष्ठानं।

२. वही--ननु जितक्रोधत्वादीनां आर्जवादीनां च को विशेषः?
उच्यते-जितक्रोधादिविशेषणेषु तदुदय-विफलीकरणमुक्तं, मार्दव-प्रधानादिषु तु उदयनिरोधः, अथवा यत एव जितक्रोधादिरत एव क्षमादि-प्रधान इत्येवं हेतुहेतुमद्भावात् विशेषः।

३. वही--घोरत्ति--घोरो निर्घृणः परिषहेन्द्रियकषायाख्यानां रिपूणां विनाशे कर्त्तव्ये।

४. वही--घोरव्वए त्ति - घोराणि--अन्यैर्दुरनुचराणि व्रतानि महाव्रतानि यस्य स तथा घोरैस्तपोभिस्तपस्वी च तथा घोरं च तद्ब्रह्मचर्यं चाल्पसत्त्वैर्दुःखं यदनुचर्यते तस्मिन् घोरब्रह्मचर्ये वस्तुं शीलमस्येति घोरब्रह्मचर्यवासी।

५. उत्तराध्ययन, बृहद्वृत्ति, पत्र ३६५-घोरव्रतो धृतात्यन्तदुर्द्धरमहाव्रतः।

६. ज्ञातावृत्ति, पत्र-९--'संखित्तत्ति - संक्षिप्ता शरीरान्तर्वर्त्तिनी विपुला अनेकयोजनप्रमाणक्षेत्राश्रित वस्तुदहनसमर्था तेजोलेश्या-विशिष्टत-पोजन्यलब्धिः विषयप्रभवा तेजोज्वाला यस्य स संक्षिप्तविपुलतेजोलेश्यः।

७. ठाणं १०/१५९ पृ. ९४७

८. ठाणं ३/३८६ तिहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे संखित्तविउलतेउलेस्से हवइ, तं जहा--आयावणताए, खंतिखमाए, अपाणगेण तवोकम्मेणं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. वज्रऋषभनाराच संहनन से युक्त (वइररिसहणारायसंघयणे)

संहनन का अर्थ है–शरीर की अस्थि संरचना। देव और नरक गति के जीव वैक्रिय शरीर वाले होते हैं। उस शरीर में रस, रक्त, मांस आदि सातों ही धातुएं नहीं होतीं। इसलिए वहां अस्थि संरचना का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। मनुष्य और तिर्यंच गति में उत्पन्न होने वाले जीवों के औदारिक शरीर होता है। यह शरीर रक्त, मांस, रस आदि धातुओं से निर्मित होता है अत: संहनन इसी शरीर में प्राप्त होते हैं। वज्रऋषभनाराच-पद में तीन शब्द प्रयुक्त हुए हैं--वज्र, ऋषभ और नाराच। अस्थिकील के लिए वज्र, परिवेष्टन अस्थि के लिए ऋषभ और परस्पर गुंथी हुई आकृति के लिए नाराच शब्द का प्रयोग किया गया है। इस संहनन में तीन अस्थियों को भेदकर आर-पार एक अस्थिकील (बोल्ट) कसा हुआ होता है। यह सर्वोत्कृष्ट शक्तिशाली संहनन है। शुक्ल ध्यान की साधना और मोक्ष गमन के लिए इस संहनन का होना जरूरी है। शलाका पुरुषों (तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि) के भी इसी प्रकार की अस्थिरचना होती है। उत्कृष्ट साधना की भांति उत्कृष्ट क्रूर कर्म भी इसी अस्थि रचना वाले प्राणी करते हैं। एक ओर मोक्ष तथा दूसरी ओर तमतमा प्रभा (सप्तम) नरक-एक ही माध्यम से ये दो परिणतियां पुरुषार्थ के सम्यक् और असम्यक् प्रयोग पर निर्भर करती हैं।

चिकित्सा शास्त्र में स्वास्थ्य की दृष्टि से भी अस्थि संरचना पर बहुत ध्यान दिया गया है। स्वस्थ शब्द का एक अर्थ है–जिसकी अस्थियां शोभन हों, मजबूत हों। स्वास्थ्य के संदर्भ में यही अर्थ अधिक उपयुक्त होता है। संहनन की पूरी जानकारी के बाद यह अर्थ निकलता है कि साधना और स्वास्थ्य दोनों दृष्टियों से अस्थि संरचना का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

द्रष्टव्य-भगवई खण्ड १. पृ. १५, १६

उत्तरज्झयणाणि २२/६ का टिप्पण

९. उग्र तपस्वी.........घोर ब्रह्मचर्यवासी (उग्गतवे.........घोर बंभचेर-वासी)

उक्त नौ विशेषणों से आर्य जम्बू की विशिष्ट आध्यात्मिक संपदा परिलक्षित हो रही है। वृत्ति में इन शब्दों की व्याख्या या अर्थ परम्परा उपलब्ध नहीं है।

तत्त्वार्थ वार्तिक में तप के अतिशय की ऋद्धि सात प्रकार की बतलाई गई है, जैसे--उग्र तप, दीप्त तप, तप्त तप, महातप, घोर तप, वीर पराक्रम और घोर ब्रह्मचर्य।[१]

तत्त्वार्थ वार्तिक में वीर पराक्रम--यह प्रयोग नया है।

ज्ञाता में उराल, घोर और घोरगुण--ये तीन शब्द नए हैं।

१. उग्रतपस्वी--जो एक, दो, तीन, चार, पांच अथवा पाक्षिक, मासिक आदि उपवास योग में से किसी एक का प्रारम्भ कर जीवन पर्यन्त उसका निर्वाह करता है, उसे उग्रतपस्वी कहा जाता है।[२]

२. दीप्त तपस्वी--कई उपवास कर लेने पर भी जिसका कायिक, वाचिक और मानसिक बल प्रवर्धमान रहता है, मुंह दुर्गन्ध रहित रहता है, नि:श्वास से पद्मोत्पल आदि की भांति सुरभि फूटती है और शरीर की दीप्ति विनष्ट नहीं होती, उन्हें दीप्त तपस्वी कहा जाता है।[३]

३. तप्त तपस्वी--जैसे तपे हुए लोहे के तवे पर गिरा हुआ जलकण शीघ्र ही सूख जाता है, वैसे ही जिनके द्वारा ग्रहण किया हुआ शुष्क एवं स्वल्प आहार शीघ्र ही परिणत हो जाता है, उसकी मल-रुधिर आदि में परिणति नहीं होती, उन्हें तप्त तपस्वी कहा जाता है।[४]

४. महातपस्वी--सिंहनिष्क्रीडित आदि महान तपोनुष्ठान परायण यतिजनों को महातपस्वी कहा जाता है।[५]

५. घोरतपस्वी--वात, पित्त, कफ और सन्निपात से होने वाले नाना प्रकार के रोगों के होने पर भी जो अनशन, कायक्लेश आदि में मन्द नहीं होते। भयानक श्मशान, पर्वत की गुफा आदि में रहने के अभ्यासी होते हैं, उन्हें घोरतपस्वी कहा जाता है।[६]

६. घोरब्रह्मचर्यवासी--चिरकाल से आसेवित होने से जिनका ब्रह्मचर्यवास अस्खलित होता है। चारित्र मोह के प्रकृष्ट क्षयोपशम के कारण जिनके दु:स्वप्न भी प्रणष्ट हो जाते हैं, उन्हें घोर ब्रह्मचर्यवासी कहा जाता है।[७]

१०. लघिमा ऋद्धिसम्पन्न (उच्छूढसरीरे)

दशवैकालिक में उच्छूढशरीरे के अर्थ में वोसट्ठचत्तदेहे शब्द का प्रयोग हुआ है।[८] इसका अर्थ है जिसने शरीर का व्युत्सर्ग और त्याग किया हो।[९] व्युत्सर्ग और त्याग ये दोनों प्राय: समानार्थक हैं फिर भी आगम ग्रन्थों में इनका प्रयोग विशेष अर्थ में हुआ है। अभिग्रह और प्रतिमा स्वीकार कर शारीरिक क्रिया के त्याग के अर्थ में व्युत्सर्ग का और शारीरिक परिकर्म (साजसज्जा) के परित्याग के अर्थ में त्याग शब्द का

---

१. तत्त्वार्थवार्तिक ३/३६ पृ. २०३--तपोतिशयर्द्धि: सप्तविधा-- उग्र-दीप्त-तप्त-महा-घोर-तपो-पराक्रम-घोर-ब्रह्मचर्यभेदात्।

२. वही--चतुर्थषष्ठाष्टमदशम-द्वादश-पक्ष-मासाद्यनशनयोगेषु अन्यतमयोग-मारभ्य आमरणादनिवर्तका उग्रतपस:।

३. वही--महोपवासकरणेऽपि प्रवर्धमानकायवाङ्मानसबला: विगन्धिरहितवदना: पद्मोत्पलादि-सुरभिनि:श्वासा अप्रच्युतमहादीप्तिशरीरा दीप्ततपस:।

४. वही--तप्तायसकटाहपतितजलकणवदाशुशुष्कस्वल्पाहारतया मलरुधिरादि-भावपरिणामविरहिताभ्यवहारा: तप्ततपस:।

५. वही--सिंहनिष्क्रीडितादिमहोपवासानुष्ठानपरायणयतयो महातपस्विन:।

६. वही--वातपित्तश्लेष्मसन्निपातसमुद्भूत-ज्वरकासश्वासाक्षिशूलकुष्ठप्रमेहा-दिविविधरोगसन्तापितदेहा अपि अप्रच्युताऽनशनकायक्लेशादितपसो भीम-श्मशानाद्रि-मस्तक- गुहादरी-कन्दर-शून्य-ग्रामादिषु प्रदुष्टयक्ष-राक्षस-पिशाच-प्रनृत्तवेताल-रूप-विकारेषु परुषशिवारुतानुपरतसिंहव्याघ्रादिव्यालमृग-भीषण-स्वन-घोर-चौरादि प्रचरितष्वभिरुचितावासाश्च घोरतपस:।

७. तत्त्वार्थवार्तिक ३/३६ पृ. २०३.--चिरोषिताऽस्खलितब्रह्मचर्यवासा: प्रकृष्ट-चारित्रमोहनीयक्षयोपशमात् प्रणष्ट-दुस्वप्ना: घोरब्रह्मचारिण:।

८. दशवैकालिक १०/ १३--असइं वोसट्ठचत्तदेहे।

९. दशवैकालिक अगस्त्यचूर्णि--वोसट्ठ चत्तो य देहो जेण सो वोसट्ठचत्तदेहो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रयोग होता है।[१] 'उच्छूढशरीरे' यह उक्त दोनों शब्दों के अर्थ का प्रतिनिधित्व करता है।

विवरण हेतु द्रष्टव्य--भगवई खण्ड १ पृ. १७

११. ऊर्ध्व जानु अधः सिर (उकडू आसन की मुद्रा में) (उड्ढं जाणू अहो सिरे)

मुनि के लिए शुद्ध पृथ्वी (आसन बिछाए बिना सीधे मिट्टी) पर बैठना निषिद्ध है तथा वे औपग्रहिक (वर्षाकाल आदि में रखे जाने वाले) आसन रखते नहीं थे। इसलिए उकडू आसन में बैठते थे। 'उड्ढं जाणू' से उकडू आसन अर्थ लभ्य होता है।[२]

शिवनृत्य में शिव को नृत्य करते समय ऊर्ध्व जानुपाद कहा गया है। यहां ऊर्ध्व जानु यह शब्द साम्य है। अनुश्रुति के अनुसार शिवजी जब नृत्य करते थे, एक पांव को सिर पर रख लेते थे। उनकी इस अवस्था का वर्णन करते हुए उन्हें 'उत्थित वामपाद' भी कहा गया है।

कहते हैं तेरापंथ धर्मसंघ के मुनि आनन्दरामजी कन्धों पर दोनों पांव रखकर घंटों तक ध्यान कर सकते थे। हो सकता है उड्ढं जाणू शब्द किसी विशिष्ट ध्यानमुद्रा का सूचक रहा हो।

विशेष विवरण हेतु द्रष्टव्य--भगवई खण्ड १ पृ. १८, १९

१२. ध्यान कोष्ठक में प्रविष्ट होकर (झाणकोट्ठोवगए)

यहां ध्यान को एक कोष्ठक माना गया है। जो ध्यान कोष्ठक में चला जाता है उसे ध्यान कोष्ठोपगत कहा गया है।

जैसे कोठे में डाला गया धान बिखरता नहीं, वैसे ही ध्यान कोष्ठक में प्रविष्ट साधक की इन्द्रिय चेतना और मानस चेतना बिखरती नहीं। वह संवृतात्मा बन जाता है।[३]

आगमों में मुनि के लिए अनेकशः झाणकोट्ठोवगए विशेषण का प्रयोग हुआ है।

द्रष्टव्य--भगवई खण्ड १ पृ० १९

१३. संयम और तप से (संजमेण तपसा)

यहां वृत्तिकार ने संयम का अर्थ संवर और तप का अर्थ ध्यान किया है।[४] महाव्रत, समिति, गुप्ति, इन्द्रिय निग्रह और मनोनिग्रह--इन सबका समाहार संयम शब्द में होता है। ध्यान-द्वादशांग तप में अन्तरंग तप का ही एक प्रकार है।

विवरण हेतु द्रष्टव्य--भगवई खण्ड १ पृ. १९

सूत्र ७

१४. एक श्रद्धा, एक संशय और एक कुतूहल जन्मा (जायसड्ढे, जायसंसए, जायकोउहल्ले)

श्रद्धा--तत्त्वपरिज्ञान की इच्छा।[५]

संशय--यहां संशय जिज्ञासा के अर्थ में प्रयुक्त है। संशय वास्तव में सत्य के निकट पहुंचने का द्वार है।

'न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति' संशय पर आरूढ़ हुए बिना व्यक्ति कल्याण को नहीं देख सकता। आर्य जम्बू के लिए प्रयुक्त जायसंसए जायकोउहल्ले विशेषण इसी ओर संकेत करते हैं।

कुतूहल--पदार्थ या सत्य की नवीन पर्यायों को उद्घाटित करने, जानने की उत्सुकता। जैसे--भगवतीसूत्र में समस्त विश्व-व्यतिकर प्रतिपादित हो चुका है तो फिर छठे अंग में कौनसा दूसरा अर्थ अभिहित होगा?[६]

ज्ञात, संज्ञात, उत्पन्न और समुत्पन्न--ये चारों शब्द ज्ञान के क्रमिक विकास के सूचक हैं। किसी भी वस्तु का एक क्षण में परिपूर्ण ज्ञान नहीं हो जाता, क्रमशः उसके नए-नए पर्याय उद्घाटित होते हैं। उक्त चारों शब्द उन नूतन ज्ञान पर्यायों के वाचक हैं। इस दृष्टि से उनमें क्रमशः अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा का अर्थ अन्तर्गर्भित है।[७]

विवरण हेतु द्रष्टव्य--भगवई खण्ड १ पृ. २०

१५. दांयी ओर से प्रारम्भ कर प्रदक्षिणा (आयाहिणं पयाहिणं)

द्रष्टव्य--भगवई खण्ड १ पृ. २०

१६. धर्म के प्रवर चतुर्दिग्जयी चक्रवर्ती (धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टी)

छह खण्ड वाले भारतवर्ष के अधिपति को चक्रवर्ती कहते हैं।[८]

जिसके राज्य के एक दिगन्त में हिमवान् पर्वत और तीन दिगन्तों में समुद्र हो, वह चातुरन्त कहलाता है। इसका दूसरा अर्थ है--हाथी, अश्व, रथ और मनुष्य--इन चारों के द्वारा शत्रु का नाश–अन्त करने वाला।[९] जो चक्र के द्वारा प्रजा का पालन करता है वह चक्रवर्ती होता है। अर्हत धर्म के प्रवर चातुरन्त चक्रवर्ती होते हैं।

---

१. वही--वोसट्ठो पडिमादिसु विनिवृत्तक्रियो। ण्हाणुमद्दणातिविभूषाविरहितो चत्तो।

२. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१०--शुद्धपृथिव्यासनवर्जनात्, औपग्रहिकनिषद्याभावाच्च, उत्कुटुकासनः सन्नपदिश्यते ऊर्ध्वं जानुनी यस्य स ऊर्ध्वजानुः।

३. वही--ध्यानमेव कोष्ठो ध्यानकोष्ठस्तमुपगतो ध्यानकोष्ठोपगतः यथा हि कोष्ठके धान्यं प्रक्षिप्तमविप्रकीर्णं भवत्येवं, स भगवान् धर्मध्यानकोष्ठक-मनुप्रविश्येन्द्रियमनांस्यधिकृत्य संवृतात्मा भवतीति भावः।

४. वही--संयमेन संवरेण, तपसा ध्यानेन।

५. वही, पत्र-११--वक्ष्यमाणानां पदार्थानां तत्त्वपरिज्ञाने स तथा।

६. वही--जातं कुतूहलं यस्य स तथा, जातौत्सुक्य इत्यर्थः। विश्वस्यापि विश्वव्यतिकरस्य पञ्चमांगे प्रतिपादितत्वात् षष्ठाङ्गस्य कोऽन्योऽर्थो भगवताऽभिहितो भविष्यतीति।

७. वही--तावदवग्रहः, एवं संजातोत्पन्नसमुत्पन्न श्रद्धादय ईहापायधारणाभेदेन वाच्या इति।

८. उत्तराध्ययन बृहद् वृत्ति, पत्र-३५०--चक्रवर्ती षट्खण्डभरताधिपः।

९. वही--चतसृष्वपि दिक्ष्वन्तः-पर्यन्त एकत्र हिमवानन्यत्र च दिक्त्रये समुद्रः स्वसम्बन्धितयाऽस्येति चतुरन्तः, चतुर्भिर्वा हय-गज-रथ-नरात्मकैरन्तः-शत्रुविनाशात्मको यस्य स तथा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. ज्ञाता (जिणाणं)

जिन शब्द सामान्यतया जिं-जये धातु से निष्पन्न प्रतीत होता है जिससे इसका अर्थ 'विजेता' गम्य होता है। इसका मूल 'चिन' होना चाहिए, जो चिति-संज्ञाने से सम्बन्धित है।

प्राकृत में च के स्थान पर ज के प्रयोग का प्रचलन रहा है। जैसे धर्म्यध्यान के चार प्रकार आणा विजए, अवाय विजये आदि।[१] वैसे ही यहां चिन शब्द से जिन बन गया। इसका अर्थ है–ज्ञाता, जानने वाला।

सूत्र १२

१८. राजगृह (रायगिहे)

यह मगध जनपद की राजधानी थी। महाभारत के सभा पर्व में इसका नाम गिरिव्रज भी है। महाभारतकार तथा जैन ग्रन्थकार यहां पांच पर्वतों का उल्लेख करते हैं। दोनों में पर्वतों के नामों में कुछ अन्तर अवश्य है। सम्भव है इन पर्वतों के कारण ही इसे गिरिव्रज कहा गया हो।

वर्तमान में इसका नाम राजगिर है। आवश्यक चूर्णि में राजगृह के इतिहास के साथ-साथ समय-समय पर होने वाले नए नामकरण का भी उल्लेख है। उसके अनुसार इस नगर के क्रमशः ये नाम रहे हैं–क्षितिप्रतिष्ठित, चनकपुर, ऋषभपुर, कुशाग्रपुर और राजगृह। राजगृह में एक उष्ण झरने का उल्लेख मिलता है। उसका नाम महातपोपतीरप्रभ है। चीनी प्रवासी फाहियान और हेनसांग अपनी डायरी में इस उष्ण झरने को देखने का उल्लेख करते हैं। बौद्ध ग्रन्थों में इस उष्ण झरने को तपोद कहा गया है।

विशेष विवरण हेतु द्रष्टव्य - ठाणं १०/२७ का टिप्पण

सूत्र १४

१९. (सूत्र १४)

प्रस्तुत सूत्र में हिमवान्, मलय, मन्दर और महेन्द्र–इन चार पर्वतों का उल्लेख है--

१. हिमवान्--हिमालय।

२. मलय--मलय पर्वत।

३. मन्दर--मेरु पर्वत। यह सबसे ऊंचा पर्वत है। यहां से दिशाओं का प्रारम्भ होता है।[२] इसे नाना प्रकार की औषधियों एवं वनस्पतियों से प्रज्ज्वलित कहा गया है। यहां विशिष्ट औषधियां होती हैं। उनमें कुछ प्रकाश करने वाली होती हैं। उनके योग से मंदर पर्वत भी प्रकाशित होता है।[३] सूत्रकृतांग में भी मेरु पर्वत को अनेक विशेषताओं से युक्त बताया गया है।[४] ज्ञाता में भी मेरु को दिव्य औषधियों से प्रज्ज्वलित कहा गया है।[५] कश्मीर के उत्तर में एक ही स्थान या बिन्दु से पर्वतों की छह श्रेणियां निकलती हैं। उनके नाम हैं--हिमालय, काराकोरम, कुबेनलुम, हियेनशान, हिन्दुकुश और सुलेमान। इनमें जो केन्द्र बिन्दु है, उसे पुराणों में मेरु पर्वत कहा गया है। यह पर्वत भूपद्म की कर्णिका जैसा है।[६]

चम्पा के दक्षिण में १६ कोस की दूरी पर मंदारगिरि नाम का एक जैन तीर्थ है। वह आजकल मंदारहिल के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ विद्वानों के अभिमत से यही प्राचीन मंदर पर्वत हो सकता है।

४. महेन्द्र--टीकाकार ने महेन्द्र का अर्थ देवराज इन्द्र किया है।[७] किन्तु यह विमर्शनीय है क्योंकि हिमालय आदि तीन पर्वतों के साथ इन्द्र का प्रयोग संगत नहीं लगता। पर्वतवाची शब्दों के साहचर्य से महेन्द्र शब्द भी पर्वतवाची होना चाहिए।

सूत्र १६

२०. उसका शरीर अहीन और प्रतिपूर्ण पांच इन्द्रियों वाला (अहीणपडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरे)

वृत्तिकार ने अहीण पंचिंदियसरीरे पाठ मानकर व्याख्या की है। उसके अनुसार इसका अर्थ होता है--जिसमें पांचों ही इन्द्रियां लक्षण और स्वरूप की दृष्टि से अन्यून हो ऐसे शरीर वाला।[८]

२१. लक्षण और व्यंजन की विशेषता से युक्त (लक्खणवंजणगुणोववेए)

लक्षण--शरीरगत स्वस्तिक, चक्र आदि चिह्न।

व्यंजन--मष, तिल आदि

ये दोनों ही प्रशस्त और अप्रशस्त दोनों प्रकार के होते हैं। प्रशस्त चिह्न प्रशस्त व्यक्तित्व के सूचक होते हैं।[९] निशीथ भाष्य में लक्षण और व्यंजन की व्यवस्थित जानकारी मिलती है। लक्षण के दो प्रकार हैं--बाह्य–स्वर, वर्ण आदि। अन्तरंग–स्वभाव, सत्य आदि।

बाह्य लक्षण--साधारण व्यक्ति के शरीर में ३२, बलदेव-वासुदेव के शरीर में १०८ और चक्रवर्ती एवं तीर्थंकर के शरीर में १००८ लक्षण होते हैं। ये लक्षण शुभ कर्मोदय जनित हैं।[१०]

अन्तरंग लक्षण अनेक होते हैं।

लक्षण-व्यंजन का भेद--

शरीर के मान-उन्मान, प्रमाण आदि लक्षण होते हैं और तिल-मषक आदि व्यंजन होते हैं। अथवा जो शरीर के साथ उत्पन्न होता है, वह लक्षण है और जो बाद में उत्पन्न होता है वह व्यंजन है।[११]

---

१. ठाणं ४/६५

२. उत्तराध्ययन चूर्णि, पृ. २००

३. उत्तराध्ययन बृहद् वृत्ति, पत्र-३५२

४. सूत्रकृतांग १/६/१२ वृत्ति

५. नायाधम्मकहाओ १/१/५६

६. वैदिक संस्कृति का विकास, पृ. १६४

७. ज्ञातावृत्ति, पत्र-७--महेन्द्र शक्रादिदेवराजस्तद्वत् सारः प्रधानः।

८. वही १३--अहीनानि-अन्यूनानि लक्षणतः स्वरूपतो वा, पञ्चापीन्द्रियाणि यस्मिंस्तत्तथाविधं शरीरं यस्य स।

९. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१३

१०. निशीथ भाष्य, गाथा ४२९२-९३

दुविहा य लक्खणा खलु, अब्भिंतरबाहिरा उ देहीणं।
बहिया सर-वण्णाई, अंतो सब्भावसत्ताई।।
बत्तीसा अट्ठसयं अट्ठसहस्साइं च बहुतराइं च।
देहेसु देहीण लक्खणाणि सुहकम्मजणियाइं।।

११. वही, गाथा ४२९४

माणुम्माणप्पमाणादि लक्खणं वंजणं तु मसगादी।
सहजं च लक्खणं वंजणं तु पच्छा समुप्पन्नं।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२. मान, उन्मान और प्रमाण से प्रतिपूर्ण (माणुम्माण-प्पमाणपडिपुण्ण)

ये शरीर की उचित लम्बाई, चौड़ाई और भार के सूचक शब्द हैं।

मान--जल द्रोण प्रमाणता। पानी से भरे कुण्ड में पुरुष को बिठाने पर जो जल बाहर निकलता है, वह यदि 'द्रोण' परिमित हो तो वह मेय पुरुष मान प्राप्त कहलाता है।[१]

उन्मान--अर्धभार प्रमाणता। तुला से तुलने पर जिसका वजन अर्धभार होता है, वह पुरुष उन्मान प्राप्त कहलाता है।[२]

प्रमाण--अपनी अंगुल से १०८ अंगुल ऊंचाई। ऐसी ऊंचाई जिसे प्राप्त होती है, वह प्रमाण प्राप्त कहलाता है।[३]

विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य--अणुओगदाराइं पृ. २३४-२३७

२३. साम, दण्ड, भेद और उपप्रदान (साम-दंड-भेद-उवप्पयाण)

राजा के तीन प्रकार की शक्तियां होती हैं--प्रभुशक्ति, उत्साह शक्ति और मंत्र शक्ति।[४]

मंत्र शक्ति के पांच प्रकार हैं--सहाय, साधन, उपाय, देशकाल का यथोचित विभाजन और विपत्ति से बचाव।[५]

उपाय के चार प्रकार हैं--साम, दण्ड, भेद और उपप्रदान। प्रस्तुत सूत्र में निर्दिष्ट साम, दण्ड, भेद और उपप्रदान ये नीतियां उपाय के ही रूप हैं। शब्द और क्रम रचना में कुछ अन्तर है।

साम--परस्पर उपकार प्रदर्शन और गुण कीर्त्तन द्वारा शत्रुओं को अपने वश में करने का उपाय।[६]

दण्ड--परिक्लेश की स्थिति में शत्रु पक्ष से धन का ग्रहण।[७]

भेद--जिस शत्रु पर विजय प्राप्त करना हो, उसके परिपार्श्व के व्यक्तियों को स्वामी आदि के स्नेह से दूर कर फूट डलवा देना।[८]

उपप्रदान--गृहीत धन को लौटा देना।[९]

२४. सुप्रयुक्त नय की विधाओं का वेत्ता (सुपउत्त-नय-विहण्णू)

वृत्तिकार ने सुप्रयुक्त का सम्बन्ध पूर्ववर्ती वाक्य से जोड़ा है। वह साम, दण्ड, भेद और उपप्रदान--इन चारों राजनीतियों का सम्यक् प्रयोग करने वाला था और नय की विधाओं का ज्ञाता था।[१०]

२५. ईहा, अपोह, मार्गण, गवेषण (ईहा-वूह-मग्गण-गवेसण)

ईहा--अर्थ की समालोचना, जैसे--यह स्थाणु है या पुरुष? यह संशय का उत्तरवर्ती ज्ञान है।

अपोह--अर्थ का निश्चय। जैसे--यह स्थाणु ही है।[११]

मार्गण--अन्वय धर्म का पर्यालोचनापूर्वक निर्णय। जैसे--यह स्थाणु है क्योंकि इस पर लताएं चढ़ी हुई हैं। लताओं का चढ़ना स्थाणु होने का साक्ष्य है इसलिए यह अन्वय (विधि) धर्म है।[१२]

गवेषण--व्यतिरेक धर्म का पर्यालोचनापूर्वक निर्णय। जैसे--यह पुरुष नहीं है क्योंकि इसमें हिलना-डुलना तथा खुजलाना आदि क्रियाएं नहीं हो रही हैं। हलन-चलन का अभाव पुरुष न होने का साक्ष्य है इसलिए यह व्यतिरेक (निषेध) धर्म है।[१३]

२६. अर्थशास्त्र में विशारद मतिवाला (अत्थसत्थ-मइविसारए)

यहां अर्थशास्त्र से कौटिलीय अर्थशास्त्र आदि गृहीत हैं ऐसा वृत्तिकार ने लिखा है।[१४] भगवान महावीर के समय में कौटिलीय अर्थशास्त्र की रचना नहीं हुई। इसलिए यहां कोई प्राचीन अर्थशास्त्र विवक्षित होना चाहिए।

२७. सामुदायिक कर्त्तव्यों (कुडुंबेसु)

कुटुम्ब का सामान्य अर्थ होता है परिवार। वृत्तिकार ने यही अर्थ स्वीकृत किया है। किन्तु यह विमर्शनीय है। उक्त वाक्यांश में सात पद हैं--राजा श्रेणिक के बहुत से कार्यों (कारणों) कुटुम्बों, मंत्रणाओं, गोपनीय कार्यों, रहस्यों और निर्णयों में अभयकुमार का मत पूछा जाता था। ये सारे शब्द तुल्य विभक्ति, वचन एवं कारक वाले हैं। सभी प्रशासन सम्बन्धी विशिष्ट प्रवृत्तियों के सूचक हैं।

जैसे 'कुडुंब' से पूर्ववर्ती शब्द 'कज्जेसु य कारणेसु य' तथा उत्तरवर्ती शब्द 'मंतेसु य गुज्झेसु य रहस्सेसु य निच्छएसु य' ये सारे प्रशासकीय प्रवृत्तियों के अंगभूत शब्द हैं, तो 'कुडुंबेसु य' यह भी किसी वैसी प्रवृत्ति का सूचक होना चाहिए। किन्तु वृत्तिकार ने मात्र एक 'कुटुम्ब'

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१३--मानं-जलद्रोणप्रमाणता कथं? जलस्यातिभृते कुण्डे पुरुषे निवेशिते यज्जलं निस्सरति, तद्यदि द्रोणमानं भवति तदा स पुरुषो मानप्राप्त उच्यते।

२. वही--उन्मानं-अर्द्धभारप्रमाणता, तुलारोपितः पुरुषो यद्यर्द्धभारं तुलति तदा स उन्मानप्राप्त इत्युच्यते।

३. वही--प्रमाणं स्वांगुलेनाष्टोत्तरशतोच्छ्रयता।

४. अभिधान चिंतामणि ३/३९९--शक्तयस्तिस्रः प्रभुत्वोत्साहमन्त्रजाः।

५. वही--३/४०० सामदामभेददण्डाः उपायाः।

६. वही--परस्परोपकारप्रदर्शनगुणकीर्तनादिना शत्रोरात्मवशीकरणं साम।

७. वही--तथाविधपरिक्लेशे धनहरणादिको दण्डः।

८. वही--विजिगीषितशत्रुपरिवर्गस्य स्वाम्यादिस्नेहापनयनादिको भेदः।

९. वही--गृहीतधनप्रतिदानादिकमुपप्रदानम्।

१०. वही--नयानां नैगमादीनां उक्तलक्षणनीतिनां च।

११. वही--ईहा च-स्थाणुरयं पुरुषो वेत्येवं सदर्थलोचनाभिमुखा मतिः चेष्टा।

१२. वही--अपोहश्च-स्थाणुरेवायमित्यादिरूपो निश्चयः।
मार्गणं च-इह वल्लयुत्सर्प्पणादयः स्थाणुधर्मा एवं प्रायो घटन्ते इत्याद्यन्वय-धर्मालोचनरूपम्।

१३. वही--गवेषणं च - इह शरीरकण्डूयनादयः पुरुषधर्माः प्रायो न घटन्त इति व्यतिरेकधर्मालोचनरूपम्।

१४. वही--अर्थशास्त्रे अर्थोपायव्युत्पादग्रन्थे कौटिल्यराजनीत्यादौ या मतिर्बोधस्तया विशारदः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द को विषयभूत मानकर व्याख्या की है, जैसे स्वकीय और परकीय कुटुम्ब-विषयक मंत्रणाओं आदि में उसका मत पूछा जाता था।[1]

यहां चिन्तनीय यह है कि जब मंत्र आदि का सम्बन्ध कुटुम्ब से जोड़ा है तो फिर कार्य और कारण का सम्बन्ध उससे क्यों नहीं जोड़ा? कार्य और कारण भी तो स्वकीय और परकीय कुटुम्बों से सम्बन्धित हो सकते हैं। यदि ऐसा होता है तो कुटुम्ब शब्द की योजना सबसे पहले होनी चाहिए थी और विभक्ति का प्रयोग भी भिन्न होना चाहिए था। सम्बन्ध में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता तो अर्थबोध में भी सुगमता रहती। यदि आर्ष प्रयोग मानकर षष्ठी के स्थान में सप्तमी मानें तो भी समस्या का सही समाधान नहीं मिलता। अत: कुटुम्ब शब्द को कार्य, कारण, मंत्रणा आदि के समान किसी विशेष प्रवृत्ति का ही सूचक मानना चाहिए। इस संदर्भ में इसका अर्थ सामुदायिक कार्य मानना संगत लगता है।

संस्कृत शब्दकोष से भी इसका समर्थन होता है। उसके अनुसार कुटुम्ब का अर्थ होता है कर्तव्य या देखभाल।[2]

भागवत पुराण के अनुसार भी कुटुम्ब का अर्थ है--प्रत्येक वस्तु की देखभाल और चिन्ता।[3]

२८. मंत्रणाओं, गोपनीय कार्यों रहस्यों (मंतेसु य गुज्झेसु य रहस्सेसु य)

इन तीन शब्दों में कुछ अर्थ भेद है, जैसे--

मंत्र--देश और राज्य के हित चिन्तन के लिए एकान्त में पर्यालोचन, मंत्रणा करना।

गुह्य--गोपनीय विषयक। गुह्य छिद्रों की रोकथाम के लिए किया जानेवाला एकान्त चिन्तन। वृत्तिकार ने इसकी व्याख्या भिन्न प्रकार से की है। उनके अनुसार ऐसे अपराध लज्जास्पद होने के कारण गोपनीय होते हैं।

रहस्य--धर्म-विरुद्ध, लोक-विरुद्ध, और नीति-विरुद्ध, अपराधों की रोकथाम के लिए किया जाने वाला एकान्त चिन्तन।[4]

२९. वह मेढ़ी, प्रमाण, आधार, आलम्बन और चक्षु (मेढी-पमाणे आधारे आलम्बण चक्खू)

मेढ़ी--खला निकालते समय धान के ढेर के मध्य रोपा जाने वाला काष्ठ-स्तम्भ, जिसकी परिक्रमा करते हुए बैल आदि उस धान का मर्दन करते हैं और तुषों से उसे पृथक करते हैं। वैसे ही सकल मंत्रीमंडल अभय को केन्द्र मानकर आलोच्य विषय पर निर्णय लेता था। धान्य कणों के समान हर विषय का विवेचन करता था, इसलिए उसे मेढ़ी कहा गया।[5]

प्रमाण--जैसे प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सिद्ध पदार्थ अव्यभिचारी रूप से विधि और निषेध के विषय बनते हैं, वैसे ही अभय विधि और निषेध अर्थात् कर्तव्य और अकर्तव्य में प्रमाण था।[6]

आधार--प्रत्येक कार्य में उपकारी होने के कारण वह सबका आधार था।[7]

आलम्बन--जैसे गड्ढे में गिरा हुआ व्यक्ति रस्सी आदि के सहारे बाहर निकल जाता है, वैसे ही वह आपद्-गर्त में गिरे हुए व्यक्तियों का निस्तारक होने से आलम्बन था।[8]

चक्षु--मंत्री, अमात्य आदि का विविध कार्यों में प्रवृत्ति-निवृत्ति विषयक पथ-दर्शन करता था, इसलिए वह सबका लोचन--चक्षु था।[9]

३०. राजा को सम्यक् परामर्श देने वाला (विइण्णवियारे)

अभय जो विचार देता था वह सम्राट श्रेणिक, मंत्री परिषद तथा राज्यसभा को सहज मान्य हो जाता था इसलिए वह विचार प्रदान करने वाले व्यक्ति के रूप में सुविदित था। वृत्तिकार ने इसका अर्थ वितीर्णविचार--सब कामों में विचार देने वाला किया है। वृत्ति में वैकल्पिक पाठ "विण्णवियार" मानकर उसका अर्थ जनता के प्रयोजन को राजा तक पहुंचाने वाला किया गया है।[10]

सूत्र १७

३१. मुट्ठी भर कमर बल खाती हुई रेखाओं से युक्त थी (करयल-परिमित-तिवलियवलियमज्झा)

करतल परिमित का अर्थ है जो दोनों हथेलियों के मध्य समा सके। वृत्तिकार ने इसका अर्थ मुष्टिग्राह्य किया है। उसका तात्पर्य भी यही है। उस पर तीन रेखाएं थीं। प्रस्तुत पद में प्रयुक्त 'वलिय' पद का अर्थ वृत्तिकार ने बलवान किया है[11]--यह प्रासंगिक नहीं लगता। यहां इसका अर्थ बलखाती हुई होना चाहिए।[12]

---

१. ज्ञातावृत्ति पत्र--तथा कुटुम्बेषु च स्वकीयपरकीयेषु विषयभूतेसु ये मन्त्रादयो निश्चयान्तास्तेषु आप्रच्छनीय:।।

२. आप्टे

३. भागवत पुराण १/९/३९

४. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१३--मन्त्रा: मन्त्रणानि पर्यालोचनानि तेषु च गुह्यानीव गुह्यानि लज्जनीयव्यवहारगोपितानि, तेषु च रहस्यानि--एकान्तयोग्यानि।

५. वही--मेढित्ति-खलकमध्यवर्त्तिनी स्थूणा, यस्यां नियमिता गोपंक्तिकाधान्यं गाहयति, तद्वद्यमालम्ब्य सकलमन्त्रिमण्डलं मन्त्रणीयार्थान् धान्यमिव विवेचयति सो मेढी।

६. वही--प्रमाणं प्रत्यक्षादि, तद्वद्य: तद्दृष्टार्थानामव्यभिचारित्वेन तथैव प्रवृत्तिनिवृत्तिगोचरत्वात् स प्रमाणम्।

७. वही--आधारस्येव सर्वकार्येषु लोकानामुपकारित्वात्।

८. वही--आलम्बनं - रज्जवादि, तद्वदापद्गर्त्तादि निस्तारकत्वादालम्बनम्

९. वही--चक्षु: लोचनं तद्वल्लोकस्य मन्त्र्यमात्यादिविविधकार्येषु प्रवृत्ति-निवृत्ति विषयप्रदर्शकत्वाच्चक्षुरिति।

१०. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१४--'विइण्ण वियारे' त्ति वितीर्णो-राज्ञानुज्ञातो विचार:--अवकाशो यस्य विश्वसनीयत्वात् असौ वितीर्णविचार: सर्वकार्यादिष्विति प्रकृतं अथवा 'विण्णवियारे' विज्ञापितो राज्ञो लोकप्रयोजनानां निवेदयिता।

११. वही, पत्र-१५--वलितो-बलवान्।

१२. आप्टे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२. कपोलों पर खचित रेखाएं (गण्डलेहा)

प्राचीनकाल में स्त्रियां सौन्दर्यवर्धन के लिए कपोलों पर कस्तूरी आदि की रेखाएं अंकित करती थी।[१] उसे विशेषक भी कहा जाता था। जैनागमों के अनुसार पुरुष और स्त्रियां दोनों ही स्नानोपरान्त कौतुक कर्म/दृष्टिदोष आदि से बचने के लिए कज्जल आदि का चिह्नांकन करते थे। उसमें अन्तर इतना था कि पुरुष मात्र अनिष्ट परिहार के लिए वैसा करते थे और स्त्रियां सौन्दर्य प्रसाधन की दृष्टि से भी वैसा करती थीं।

सूत्र १८

३३. अलिंद (छक्कट्ठग)

घर के बाहर का अलिंद छह काष्ठ खण्डों से निर्मित होता था, इसलिए कारण का कार्य में उपचार होने से अलिंद भी षट्काष्ठ कहलाने लगा।[२]

वृत्तिकार ने वैकल्पिक रूप से अन्य मत को प्रदर्शित करते हुए छक्कट्ठ को द्वार का विशेषण भी माना है--जो छह काष्ठ खण्डों से निर्मित होता था।[३]

मतान्तर से स्तम्भ का विशेषण भी माना है।[४]

३४. मांगलिक प्रवर स्वर्ण-कलशों (वंदण-वरकणगकलस)

कुछ प्रतियों में वंदण के स्थान पर चंदण लिखा हुआ मिलता है। लगता है ऐसा लिपि दोष से हुआ है। वृत्तिकार ने वंदण पाठ मानकर ही व्याख्या की है। वंदण का अर्थ है--मांगलिक।[५]

३५. मलय चन्दन (मलय-चंदण)

मलय पर्वत पर होने वाला चन्दन।[६] प्राचीन काल में सबसे अच्छा चन्दन मलेशिया में होता था, उसका भारत में आयात भी होता था। हो सकता है 'गन्धवर्ती जैसा'--यह उसी ओर संकेत है।

३६. गंधवर्तिका के समान (गन्धवट्टिभूए)

गन्धवर्ती का अर्थ है सुगन्धित द्रव्यों की गुटिका अथवा कस्तूरी की गुटिका। प्रवर सुरभित द्रव्यों से सुगन्धित होने के कारण वह प्रासाद ऐसा लगता था मानो साक्षात् गन्धवर्तिका ही हो।[७]

३७. शरीर प्रमाण उपधान रखे हुए थे (सालिंगणवट्टिए)

निशीथ चूर्णि के अनुसार आलिंगिणी का अर्थ है घुटने और कोहनी के नीचे लगाया जाने वाला एक प्रकार का उपधान।[८]

उसके अनुसार इसका अर्थ होना चाहिए--गोल आलिंगनो (तकिए) वाला।

३८. पतले, झूलदार ऊनी, रौएंदार कम्बल (अत्थरय-मलय-नवतय-कुसत्त-लिंब-सीहकेसर)

ये सारे विभिन्न प्रकार के आस्तरणों के नाम हैं, जो बिछौनों पर चादरों के रूप में बिछाए जाते थे।[९]

आस्तरक, मलक और कुशक्त--ये उस समय के प्रचलित और सामान्यत: काम में आने वाले आस्तरण थे।

नवतय--विशेष प्रकार की भेड़ों की ऊन से बना वस्त्र, जिसका लोकप्रचलित नाम है--जीन।[१०]

निशीथ चूर्णि के अनुसार इसका अर्थ है--बिना काती हुई ऊन से बना प्रावरण, रौएंदार प्रावरण।[११]

लिंब--भेड़ के बच्चे की ऊन युक्त चर्म से बना आस्तरण।[१२]

सिंह केसर-सिंह की जटा से बना कम्बल।[१३]

३९. लाल रंग की मसहरी से संवृत (रत्तंसुयसंवुए)

वृत्तिकार ने रक्तांशुक का अर्थ केवल मच्छरदानी किया है।[१४]

सूत्र १९

४०. महास्वप्न (महासुमिणं)

स्वप्न एक मानसिक क्रिया है। वह प्राय: दृष्ट, श्रुत या अनुभूत वस्तु का आता है।

स्वप्न संकलनात्मक ज्ञान है। सबका स्वप्न यथार्थ नहीं होता। जिसके मन, वाणी और अध्यवसाय पवित्र हैं, जो संवृत आत्मा है उसके स्वप्न यथार्थ होते हैं। स्वप्न की अयथार्थता के अनेक हेतु हैं। उनमें प्रमुख हैं--दुश्चिन्ता, अनिद्रा, मानसिक मलिनता, आसक्ति, अस्वस्थता आदि। पंचतंत्र में बताया गया है--

> व्याधितेन सशोकेन, चिन्ताग्रस्तेन जन्तुना।
> कामार्त्तेनाथ मत्तेन दृष्ट: स्वप्न: निरर्थक:।।

रोगी, शोकाकुल, चिन्तातुर, कामातुर और मत्त व्यक्तियों के स्वप्न निरर्थक होते हैं।

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१५--गण्डलेखा: कपोलविरचितमृगमदादिरेखा।
२. वही--षट्काष्ठकं - गृहस्थ बाह्यालन्दकं षड्दारुकमिति।
३. वही--द्वारमित्यन्ये।
४. वही--स्तम्भविशेषणमिदमित्यन्ये।
५. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१६--वन्द्यन्त इति वन्दना--मंगल्या: ये वरकनकस्य कलशा:।
६. वही, पत्र-१६, १७--मलयचन्दनं च--पर्वतविशेषप्रभवं श्रीखण्डम्।
७. वही--गन्धवर्ति:-गन्धद्रव्यगुटिका कस्तूरिका वा गन्धस्तद् गुटिका गन्धवर्ति:।
८. निशीथ चूर्णि, भाग ३, पृ. ३२१
९. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१७--आस्तरको मलको नवत: कुशक्तो लिम्ब: सिंहकेसरश्चैते आस्तरणविशेषा:।
१०. वही--नवतयस्तु ऊर्णाविशेषमयो जीनमिति लोके यदुच्यते।
११ निशीथ चूर्णि, भाग ३, पृ. ३२१
१२. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१७--लिम्बो--बालोरभ्रस्योर्णा युक्ता कृति:।
१३. वही--सिंह-केसरो जटिलकम्बल:।
१४. वही--रक्तांशुकसंवृते-मशकगृहाभिधान-वस्त्रावृते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१. धारा से आहत कदम्ब कुसुम की भांति (धाराहयकलंबपुप्फगं पिव)

कदम्ब पुष्प मेघधारा से आहत होने पर रोमांचित जैसा हो जाता है। इसीलिए रोमांचित व्यक्ति को इससे उपमित किया जाता है। सूत्र २० में धाराहयनीवसुरभिकुसुम वाक्य का प्रयोग है।

कदम्ब व्रज प्रदेश का सुप्रसिद्ध फलदार वृक्ष होता है। यह भारत वर्ष के अतिरिक्त नेपाल की तराई, हिमालय की तलहटी, बर्मा के पूर्वी और उत्तरी पश्चिमी घाटी के दक्षिणी भाग में होता है। व्रज में यमुना के किनारे-किनारे वर्षा से ये वृक्ष हल्के पीले रंग के गोलाकार फूलों से लद जाते हैं, लाल फूल भी होते हैं। व्रज में कदम्ब की अनेक जातियां हैं--श्वेत, पीताभ और लाल। पुष्प जाति में पांच प्रकार के पुष्प श्रेष्ठ माने जाते हैं--गेंदा, हजारा, गुलाब, बेला और कदम्ब।

सूत्र २०

४२. शूर, वीर विक्रमशाली (सूरे वीरे विक्कंते)

ये तीनों शब्द आन्तरिक क्षमता के द्योतक होते हुए भी अर्थ की दृष्टि से भिन्न हैं--

शूर--दान में शूर अथवा संकल्पित कार्य का निर्वाह करने वाला।

वीर--युद्ध में विजय प्राप्त करने वाला।

विक्रान्त--भूमण्डल की यात्रा करने वाला अथवा भूमण्डल पर विजय पाने वाला।[1]

सूत्र २१

४३. स्वप्न जागरिका (सुमिणजागरियं)

स्वप्न विज्ञान के अनुसार स्वप्न दर्शन के पश्चात् सोना वर्जित है क्योंकि पुनः सोने से कदाचित् अशुभ स्वप्न आ जाए तो पूर्वदृष्ट शुभ स्वप्न का फल प्रतिहत हो जाता है। शुभ स्वप्न दर्शन के पश्चात् मंगलमय चिन्तनपूर्वक समय यापन करने से स्वप्न फल परिपुष्ट होता है। इसीलिए हाथी का स्वप्न देखने के पश्चात् धारिणी देवी तत्काल शय्या त्याग कर देवता और गुरुजनों से सम्बन्धित प्रशस्त धर्मकथाओं के साथ स्वप्न जागरिका करती है।

सूत्र २४

४४. व्यायामशाला (अट्टणसालं)

अट्टण नाम के मल्ल द्वारा स्थापित या उसके नाम से स्थापित होने के कारण उस व्यायामशाला का नाम अट्टणशाला हुआ हो।[2]

अट्टण उज्जयिनी में रहने वाला एक मल्ल था।[3]

४५. शतपाक सहस्रपाक (सयपागसहस्सपागेहिं)

शतपाक और सहस्रपाक तैल प्राचीन समय के प्रभावशाली औषधीय गुणों से भरपूर तैल थे। वे बहुत मूल्यवान होते थे। इसलिए जन सामान्य को उपलब्ध नहीं होते थे। इनका अर्थ इस प्रकार है--

शतपाक--जिसे सौ बार आंच में उकाला जाए।

जिसका मूल्य सौ कार्षापण हो।

जो सौ प्रकार की औषधियों के मिश्रण से निर्मित हो।

इसी प्रकार हजार बार उकालने, हजार प्रकार की औषधियों के मिश्रण से निर्मित अथवा हजार कार्षापण मूल्य वाला तैल सहस्रपाक कहलाता है।[4]

ये तैल धातु साम्य व अग्नि दीपन करने वाले, बल-वीर्य बढ़ाने वाले, मांस को पुष्ट करने वाले तथा सब इन्द्रियों एवं अवयवों को आल्हादित करने वाले माने जाते थे।[5]

४६. अवसरज्ञ, दक्ष, अग्रणी, कुशल, मेघावी निपुण (छेएहिं दक्खेहिं पट्ठेहिं कुसलेहिं मेहावीहिं निउणेहिं)

प्रस्तुत सूत्र में मर्दन करने वाले पुरुषों के पांच विशेषण बतलाए गए हैं। प्रस्तुत प्रसंग में इनका अर्थ इस प्रकार करना चाहिए--

१. छेक--अवसरज्ञ, मर्दन की शिक्षा के प्रयोग में निपुण।

२. दक्ष--मर्दन के कार्य को शीघ्र सम्पादित करने वाला।

३. अग्रणी--मर्दन करने में अग्रगामी।

४. मेधावी--मर्दन विज्ञान को ग्रहण करने की शक्ति में निष्ठित।

५. निपुण--मर्दन का सूक्ष्म ज्ञान रखने वाला।

वृत्तिकार ने इनका व्यापक अर्थ में प्रयोग किया है।[6]

४७. मर्दन (संबाहणा)

मर्दन चार प्रकार का होता था--अस्थिसुखद, मांससुखद, त्वचासुखद और रोमसुखद।[7] चिकित्सा पद्धति में मर्दन का विशेष महत्व रहा है।

४८. शुभोदक, गन्धोदक, पुष्पोदक और शुद्धोदक (सुहोदएहिं गंधोदएहिं पुप्फोदएहिं सुद्धोदएहिं)

१. शुभोदक--पवित्र स्थानों से लाया हुआ जल।

२. गन्धोदक--चन्दन आदि गन्ध द्रव्य मिश्रित जल।

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-२०--शूरो दानतोऽभ्युपेतनिर्वाहणतो वा, वीरः संग्रामतः विक्रान्तो-भूमण्डलाक्रमणतः।

२. संस्कृत विश्वकोष।

३. व्यवहार भाष्य, भाग १०, टीका पत्र ३-अट्टनो नाम मल्लः उज्जयिनी-वास्तव्यः।

४. ज्ञातावृत्ति, पत्र-२४--शतकृत्वो यत्पक्वं शतेन वा कार्षापणानां यत्पक्वं तच्छतपक्वमेवमितरदपि।

५. नायाधम्मकहाओ १/ १/ २४

६. ज्ञातावृत्ति पत्र २४, २५

७. नायाधम्मकहाओ १/१/२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. पुष्पोदक--पुष्प रस मिश्रित जल, जैसे--गुलाब जल, केवड़ा आदि से युक्त जल।

४. शुद्धोदक--अन्तरिक्ष जल। वृत्तिकार ने इसका अर्थ स्वाभाविक जल किया है।[1]

४९. सैंकड़ों प्रकार के कौतुक कर्म (कोउयसएहिं)

वृत्ति के अनुसार स्नान के समय जो रक्षा आदि उपक्रम किए जाते हैं, वे कौतुक कहलाते हैं।[2] किन्तु यह अन्वेषणीय है। वास्तव में यह विभिन्न प्रकार की जलक्रीड़ाओं के अर्थ की सूचना देता है। यहां सैंकड़ों प्रकार के कौतुक स्नान के साथ सम्पन्न हुए हैं। जहां-जहां रक्षात्मक कौतुक का प्रसंग आया है वह स्नान और बलिकर्म के अनन्तर सम्पन्न हुआ है। यहां स्नान के साथ सैंकड़ों कौतुकों का उल्लेख है, अतः इसका अर्थ सैंकड़ों प्रकार की जलक्रीड़ाएं ही होना चाहिए।

५०. वीरवलय (वीरवलए)

यौद्धाओं की वीरता के प्रतीक कड़े। उन्हें पहनकर राजा प्रतिपक्षी राजा को चुनौती देता है कि यदि कोई अन्य वीर धरती पर है तो मुझे जीतकर, ये मेरे वीर वलय ले जाए। इस स्पर्धा के साथ जो कड़े पहने जाते हैं, वे वीरवलय कहलाते हैं।[3]

पराजित राजा आत्मसमर्पण कर विजेता के हाथों में जो कड़ा पहनाता है वह भी वीरवलय कहलाता है।[4]

५१. अनेक गणनायक .... संधिपालों के साथ (अणेगगणनायग .... संधिवाल सद्धिं)

ये विभिन्न राज्याधिकारियों अथवा राजकीय कार्यों में नियुक्त राजपुरुषों के वाचक शब्द हैं--

१. गणनायक--प्रकृतिमहत्तर।

२. दण्डनायक--तन्त्रपाल, न्यायाधीश, आरक्षक अधिकारी।

३. राजा--माण्डलिक राजा।

४. ईश्वर--युवराज, मांडलिक, चार हजार राजाओं का अधिपति अथवा अणिमा आदि आठ लब्धियों से युक्त।

५. तलवर--जिनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर राजा जिन्हें विशेष पट्ट-बंध प्रदान करते थे, वे तलवर के नाम से पुकारे जाते थे।

६. माडंबिक--पांच सौ गांवों के अधिपति।

७. कौटुम्बिक--अनेक कुटुम्बों के प्रधान, कर्त्तव्य की चिंता करने वाले।

८. मंत्री--राजकीय प्रवृत्तियों की मंत्रणा करने वाले।

९. महामंत्री--मन्त्रीमण्डल के प्रधान।

१०. गणक--वृत्तिकार ने गणक का मूल अर्थ गणितज्ञ और वैकल्पिक अर्थ कोषाध्यक्ष किया है।

११. दौवारिक--द्वारपाल।

१२. अमात्य--राज्य के संचालक।

१३. चेट--सेवक।

१४. पीठमर्द--ये राजा के वयस्क होने के कारण विशेष सम्मानित होते थे। ये सभामण्डप में आसन पर आसीन होकर राजसेवा में निरत रहते थे।

१५. नगर--नगरवासी प्रजा। यहां नागर के स्थान पर नगर शब्द प्रयुक्त हुआ है।

१६. निगम--निगमवासी लोग।

१७. श्रेष्ठी--सेठ, जिनका मस्तक श्री देवता से अध्यासित स्वर्णपट्ट से विभूषित रहता था।

१८. सेनापति--नृपति द्वारा स्थापित चतुरंग सेना के अध्यक्ष।

१९. सार्थवाह--सार्थ के स्वामी।

२०. दूत--संदेशवाहक।

२१. संधिपाल--दो राज्यों के बीच होने वाली संधि का रक्षक।[5]

तुलनात्मक विमर्श हेतु द्रष्टव्य अणुओगदाराइं पृ. ३०-३२, भगवई खण्ड १, पृ. २१५, २१६

सूत्र २५

५२. शान्तिकर्म (संतिकम्म)

विघ्नोपशमन के लिए किया जाने वाला अनुष्ठान विशेष। इसमें सर्षप आदि का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता था।[6]

५३. कौटुम्बिक पुरुषों (कोडुंबियपुरिसे)

कौटुम्बिक पुरुष का अर्थ है--आदेश को क्रियान्वित करने वाले।[7] स्थानांग वृत्ति में इसका अर्थ है--कतिपय कुटुम्बों के स्वामी।[8] प्राचीनकाल में इनका स्थान बहुत सम्मानपूर्ण था। वे विशेष अवसरों पर राज्य के अन्य उच्च अधिकारियों की भांति राजा के साथ रहते थे।[9] कौटुम्बिक पुरुष सदा राजा की सेवा में प्रस्तुत रहते और आदेश की प्रतीक्षा करते थे।

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-२५--शुभोदकैः-पवित्रस्थानाहृतैः। गन्धोदकैः श्रीखण्डादिमिश्रैः। पुष्पोदकैः पुष्परसमिश्रैः, शुद्धोदकैश्च-स्वाभाविकैः।

२. वही--स्नानावसरे यानि कौतुकशतानि रक्षादीनि।

३. वही--सुभटो हि यदि कश्चिदन्योप्यस्ति वीरव्रतधारी तदाऽसौ मां विजित्य मोचयत्वेतानि वलयानीति स्पर्द्धयन् यानि परिदधाति तानि वीरवलयानीत्युच्यन्ते।

४. ज्ञाता अनगार धर्मामृतवर्षिणी टीका, पृ. १३०

५. ज्ञातावृत्ति, पत्र-२६

६. वही--सिद्धार्थक प्रधानो यो मंगलोपचारस्तेन कृतं शान्तिकर्म- विघ्नोपशमनकर्म।

७. ज्ञातावृत्ति, पत्र-२३--कौटुम्बिक पुरुषान् - आदेशकारिणः।

८. स्थानांग वृत्ति, पत्र ४३९

९. नायाधम्मकहाओ १/१/२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुटुम्बी या कौटुम्बिक शब्दों का प्रयोग ऋग्वेद, महाभारत आदि में भी हुआ है। वहां कुटुम्बी का अर्थ है--प्रत्येक कार्य (कर्त्तव्य) की चिन्ता करने वाला और कौटुम्बिक का अर्थ है--परिवार का सेवक या नौकर।[१]

५४. अष्टांग महानिमित्त (अट्ठंगमहाणिमित्त)

निमित्त शास्त्र को परम्परा से अष्टांग महानिमित्त कहते हैं। निमित्तशास्त्र के आठ अंग ये हैं--

१. अन्तरिक्ष विद्या २. भौम विद्या ३. अंग विद्या ४. स्वर विद्या
५. व्यंजन विद्या ६. लक्षण विद्या ७. छिन्न विद्या ८. स्वप्न विद्या ।

विशेष विवरण हेतु द्रष्टव्य--तत्त्वार्थवार्तिक ३/३६ पृ. २०२

सूत्र २७

५५. बलिकर्म, कौतुक, मंगल रूप प्रायश्चित (बलिकम्मा कय-कोउय-मंगलपायच्छित्ता)

ये चारों स्नान के अनन्तर की जाने वाली क्रियाएं हैं। जैन आगम ग्रन्थों में चरित्र चित्रण के अन्तर्गत इनका बहुश: प्रयोग हुआ है।

१. बलिकर्म--स्नान के अनन्तर की जाने वाली कुलदेवता की पूजा।[२]

२. कौतुक--मषी (काला बिन्दु), तिलक आदि।[३]

३. मंगल--सरसों, दधि, अक्षत, दुर्वांकुर आदि का उचित उपयोग।[४]

४. प्रायश्चित्त--कौतुक मंगल को ही प्रायश्चित्त कहा गया है। दु:स्वप्न आदि के लिए ये अनुष्ठान आवश्यक माने जाते थे।[५]

सूत्रकृतांग चूर्णि और वृत्ति के आधार पर उपर्युक्त जानकारी और पुष्ट हो जाती है।

चूर्णि के अनुसार--बलिकर्म--कुलदेवता आदि की अर्चनिका।
कौतुक--नमक आदि वारना एवं जलाना।
मंगल--सरसों, दूब आदि का उचित उपयोग करना तथा सोने आदि को छूना।
प्रायश्चित्त--दु:स्वप्न आदि के प्रतिघात हेतु ब्राह्मणों को सोना आदि देना।[६]

वृत्ति में भी इसी प्रकार की व्याख्या उपलब्ध होती है।[७] किसी भी महत्त्वपूर्ण कार्य की निर्विघ्न सम्पन्नता के लिए सम्पादित की जाने वाली विशिष्ट विधियां बलिकर्म आदि के नाम से पहचानी जाती थीं। ये स्नान के साथ, उसके बाद अथवा कहीं स्नान के अतिरिक्त भी सम्पादित की जाती थीं। जैसे--अर्हन्नक आदि यात्री जहाज पर चढ़ने से पूर्व बलिकर्म करते थे।[८]

कहीं-कहीं इनके विशिष्ट अर्थ भी उपलब्ध होते हैं--

बलिकर्म--निशीथ भाष्य में चावल आदि से अल्पना करने को बलिकरण कहा गया है।[९] बलिकर्म और बलिकरण में अधिक शाब्दिक अन्तर नहीं लगता।

कौतुक--निशीथ भाष्य में श्मशान और चौराहों पर स्नान करने को कौतुक कहा गया है।[१०] ज्ञाता के भी चौदहवें अध्ययन की वृत्ति में सौभाग्य प्राप्ति के लिए स्नान आदि करने को कौतुक कर्म कहा गया है।[११] विवाह के पूर्व वर के ललाट से मूशल आदि का स्पर्श करवाना कौतुक कहलाता है।[१२]

किसी श्वेत चूर्ण विशेष से घर के आंगन अथवा द्वार पर विशेष चिह्न अंकित करना भी कौतुक कहलाता है। गुजरात और दक्षिण भारत में यह विधि आज भी प्रचलित है।

मंगल--स्वयंवर मण्डप में जाने से पूर्व द्रोपदी मंगल करती है। वहां वृत्तिकार ने मंगल का अर्थ किया है--तण्डुलों से दर्पण आदि अष्ट मंगलों का आलेखन।[१३]

५६. जय-विजय की ध्वनि से (जएणं विजएणं)

जय--शत्रु से पराजित न होना अथवा प्रतापवृद्धि।
विजय--शत्रु को पराजित करना।[१४]

५७. अर्चित .... सम्मानित (अच्चिय .... सम्माणिया)

अर्चा, वन्दना आदि आदर की अभिव्यक्ति के विभिन्न प्रकार हैं। विधिभेद के आधार पर ये भिन्न-अर्थ के वाचक हैं--

अर्चा--चन्दन आदि से चर्चित करना।
वन्दना--सद्‌गुणों का उत्कीर्तन।
पूजा--पुष्प आदि से पूजा करना।

---

१. ऋग्वेद-६/८९/१९
२. ज्ञातावृत्ति, पत्र-२६--स्नानान्तरं कृतं बलिकर्म यै: स्वगृहदेवतानाम्।
३. वही-कौतुकानि मषीतिलकादीनि।
४. वही-सिद्धार्थक-दध्यक्षत -दूर्वांकुरादीनि।
५. वही-कौतुकमंगलान्येवेति प्रायश्चित्तानि दु:स्वप्नादिविघातार्थमवश्यकरणीयत्वात्।
६. सूत्रकृतांग चूर्णि, पत्र ३६०-बलिकम्मे अच्चणियं करेंति कुलदेवतादीणं काउं, आसीब्भयजोहारो लोणादीणि च डहंति, मंगलाणि सिद्धत्थया-हरयालियादीणि से करेंति, सुवण्णमादीणि च छिवंति, पायच्छित्तं दुस्सुविणग-पडियातणिमित्तं धीयाराणं देंति।
७. सूत्रकृतांग वृत्ति, पत्र ६७
८. नायाधम्मकहाओ १/८/६७
९. निशीथभाष्य, भाग २, पृ. ३३७ कूरातिणा बलिकरणं।
१०. वही-कोउगं मसाण-चच्चरादिसु ण्हवणं।
११. ज्ञातावृत्ति-पत्र १९५-कोउयकम्मं सौभाग्यनिमित्तं स्नपनादि।
१२. उत्तराध्ययन, बृहद्वृत्ति, पत्र-४९०-कौतुकानि ललाटस्य मुशलस्पर्शनादीनि।
१३. ज्ञातावृत्ति, पत्र-२१७--तन्दुलैर्दर्पणाद्यष्टं मंगलालेखनं च करोति।
१४. ज्ञातावृत्ति-पत्र-२७--जय: परैरनभिभूयमानता प्रतापवृद्धिश्च, विजयस्तु परेषामभिभव:।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मान--देखते ही प्रणाम करना।

सत्कार--फल, वस्त्र आदि प्रदान करना।

सम्मान--उचित प्रतिपत्ति, अभ्युत्थान आदि।[1]

सूत्र २९

५८. विमान-भवन (विमाण-भवण)

अर्हत अथवा चक्रवर्ती के गर्भ में आने पर उनकी माता जिन १४ महास्वप्नों को देखती है उनमें १२वां स्वप्न है--विमान-भवन। यह वैकल्पिक है, जब अर्हत या चक्रवर्ती का जीव स्वर्ग से आकर उत्पन्न होता है तब उसकी मां विमान का स्वप्न देखती है और जब वह नरक से आता है तब उसकी मां भवन का स्वप्न देखती है।

५९. भावितात्मा अणगार (अणगारे वा भावियप्पा)

भावियप्पा अणगार का विशेषण है। इसका अर्थ है--अध्यात्म से जिसकी आत्मा भावित-वासित या संस्कारित हो गई है वह अणगार।

अगस्त्यसिंह स्थविर के अनुसार ज्ञान, दर्शन, चारित्र और विविध प्रकार की अनित्य आदि भावनाओं से जिसकी आत्मा भावित हो चुकी है उसे भावितात्मा कहा जाता है।[2]

ऋषिभाषित में आत्मा को भावित कैसे किया जाए इसका बहुत सुन्दर चित्र प्रस्तुत हुआ है।[3]

सूत्र ३१

६०. स्वप्न शास्त्र में (सुमिणसत्थंसि)

अष्टांगनिमित्त में स्वप्न विद्या का आठवां स्थान है। सूत्र २९ और ३१ में स्वप्न विज्ञान की मौलिक सामग्री उपलब्ध है।

सूत्र ३३

६१. दोहद (दोहले)

दोहद का अर्थ है--गर्भवती स्त्री के मन में किसी पदार्थ विशेष को प्राप्त करने की तीव्र इच्छा--लालसा।[4]

गर्भवती स्त्रियों के मन में उत्पन्न प्रशस्त और अप्रशस्त दोहद भावी शिशु की सुभगता और दुर्भगता का सूचक है।

६२. जब आकाश ...... बरसने को हो (अब्भुग्गएसु ...... अब्भुट्ठिएसु)

इन शब्दों से बादल की क्रमभावी पर्यायों का बोध होता है--

अभ्युद्गत--अंकुर रूप में उत्पन्न बादल।

अभ्युद्यत--विस्तार पाते हुए बादल।

अभ्युन्नत--आकाश में छाए हुए, ऊपर उठे हुए बादल।

अभ्युत्थित--बरसने को उद्यत बादल।[5]

६३. लाल दुपहरिया (रत्तबन्धुजीवग)

दुपहरिया फूल पांच वर्ण का होता है। यहां रक्त विशेषण दिया गया है।[6]

६४. सम्पूर्ण ऋद्धि ...... समुदय (सव्विड्ढीए ......सव्वसमुदएणं)

ऋद्धि, द्युति आदि शब्द अर्थ-वैशिष्ट्य के वाहक हैं--

ऋद्धि--छत्र आदि राजचिह्न।

द्युति--शारीरिक और आभरण जनित कान्ति। इसका संस्कृत रूपान्तर युक्ति हो तो उसका अर्थ है--इष्ट वस्तु की उचित संघटना।

बल--सेना। समुदय--पौरजनों आदि का सम्मिलन।[7]

६५. दोराहों .... राजमार्गों (सिंघांडग .... महापहपहेसु)

सिंघाडग, तिग आदि शब्द विशिष्ट मार्ग के बोधक हैं--

सिंघाडग--दोराहा। शृंगाटक का अर्थ है जलज बीज, फल विशेष। उसकी आकृति वाले पथ से युक्त स्थान। यह दो कोणों से आकर मिलने वाले मार्गों से ही सम्भव है।

तिग--तिराहा	चउक्क--चौराहा
चच्चर--चौक	चउम्मुह--चतुर्मुख-देवकुल
महापह--राजमार्ग	पह--सामान्य मार्ग।[8]

सूत्र ४४

६६. मन के अन्तराल में छिपा हुआ दुःख (मणोमाणसियं दुक्खं)

वह दुःख, जो भीतर में ही भोगा जाता है, वाणी से व्यक्त नहीं किया जाता।[9]

सूत्र ५३

६७. महर्द्धिक ...... महासुख सम्पन्न है (महिड्ढिए ..... महासोक्खे)

अभय के पूर्व सांगतिक देव के ये सात विशेषण हैं--

१. महिड्ढिए--महर्द्धिक-महान ऋद्धि सम्पन्न।

यहां ऋद्धि से तात्पर्य है--विमान परिवार आदि की प्रचुर सम्पदा।

२. महज्जुइए--महद्द्युतिक, शरीर सम्पदा और आभरण द्युति से दीप्तिमान।

---

१. वही--अर्चिताः-चर्चिताश्चन्दनादिना, वन्दिताः-सद्गुणोत्कीर्तनेन, पूजिताः-पुष्पैर्मानिताः दृष्टिप्रणामतः, सत्कारिताः फलवस्त्रादिदानतः, सम्मानिताः-तथाविधया प्रतिपत्तया।

२. दशवैकालिक, अगस्त्य चूर्णि पृ. २५--सम्मदंसणेण बहुविहेहि य तवोजोगेहि अणिच्चयादि भावणाहि य भावितप्पा।

३. इसिभासियाइं अध्ययन ३५

४. अभिधान चिन्तामणि ३/२०५

५. ज्ञातावृत्ति, पत्र-२८

६. वही--बन्धुजीवकं हि पंचवर्णं भवतीति रक्तत्वेन विशिष्यते।

७. वही, पत्र ३०

८. वही--सिंघाडग जलजबीजं फलविशेषः तदाकृतिपथयुक्तं स्थानं सिंघाटकं, त्रिपथयुक्तं स्थानं त्रिकं, चतुष्पथयुक्तं चतुष्कं त्रिपथभेदि चत्वरं -चतुर्मुखं देवकुलादि-महापथो- राजमार्गः, पथः पथमात्रम्।

९. ज्ञातावृत्ति, पत्र-३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. महापरक्कमे--महान पराक्रम सम्पन्न।

४. महाजसे--महान यशस्वी।

महाजसो--जिसका यश त्रिभुवन में विख्यात हो वह महायशा कहलाता है।[१]

५. महब्बले--पर्वत आदि को उखाड़ फैंकने की सामर्थ्य से युक्त।

६. महाणुभावे--महाप्रभावी। वृत्तिकार ने 'महानुभाग' शब्द मानकर व्याख्या की है। उसका अर्थ है--वैक्रिय आदि क्रिया करने की शक्ति से सम्पन्न। शान्त्याचार्य के अनुसार जिसे महान अचिन्त्य शक्ति प्राप्त हो उसे महाभाग (महाप्रभावशाली) कहा जाता है।[२] उनके अनुसार पाठान्तर महानुभाव है और उसका अर्थ है--अनुग्रह और निग्रह करने में समर्थ।

७. महासोक्खे--विशिष्ट सुख सम्पन्न।

६८. अकेला अद्वितीय (एगस्स अबिइयस्स)

एक--अकेला-राग, द्वेष आदि से मुक्त

अद्वितीय--सुरक्षा में नियुक्त पदाति सैनिक आदि के सहयोग का अभाव।[३] प्रस्तुत अर्थ अभय कुमार के प्रसंग में घटित हो सकता है। पौषधव्रत के अनुष्ठान में राग-द्वेष आदि वृत्तियों की उपरति तथा बाहरी सहयोग की निरपेक्षता का होना आवश्यक है।

६९. पौषधशाला (पोसहशाला)

पौषध का अर्थ है अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा को किया जाने वाला धार्मिक अनुष्ठान। उसको सम्पादित करने की शाला को पौषधशाला कहते हैं।[४]

७०. पौषधव्रत निरत (पोसहियस्स)

पौषध अनुष्ठान में माला, वर्णक, विलेपन और शस्त्र, मूसल आदि का परिहार किया जाता है। राग-द्वेष से उपरत हो, दूसरे की सहायता से निरपेक्ष रह ब्रह्मचर्य की साधना पूर्वक आत्मरमण किया जाता है।

विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य उत्तरज्झयणाणि ५/२३

७१. मानसिक तादात्म्य स्थापित करता हुआ (मणसीकरेमाणे मणसीकरेमाणे)

यहां दिव्य शक्तियों के साथ सम्पर्क स्थापित करने की पूरी प्रक्रिया उपलब्ध है। उसके लिए तीन दिन का उपवास और पौषध व्रत का पालन अनिवार्य है। पौषध में ब्रह्मचर्य का पालन, मणि, स्वर्ण, माला वर्णक, विलेपन आदि का परिहार, एकान्तवास, मानसिक एकाग्रता और डाभ का बिछौना आवश्यक होता है।

जैन आगम साहित्य में जहां कहीं देवताओं के साथ सम्पर्क करने का प्रसंग आया है, इस विधि के प्रयोग का उल्लेख है।

द्रष्टव्य--नायाधम्मकहाओ १/१६/२३७,

भगवई खण्ड २ पृ.३५

सूत्र ५६

७२. वैक्रिय समुद्घात से (वेउव्वियसमुग्घाएणं)

समुद्घात शब्द सम्, उद् और घात--इन तीन शब्दों के योग से बना है। सम् का अर्थ है एकीभाव, उद् का अर्थ है प्रबलता और घात का अर्थ है जाना। समुद्घात का शाब्दिक अर्थ है--सामूहिक रूप से बलपूर्वक आत्मप्रदेशों को शरीर से बाहर निकालना या उनका इतस्ततः प्रक्षेपण करना अथवा कर्मपुद्गलों का निर्जरण करना।

समुद्घात के सात प्रकार हैं--

१. वेदना २. कषाय ३. मारणान्तिक ४. वैक्रिय

५. आहारक ६. तैजस ७. केवली समुद्घात।

उपर्युक्त सात अवस्थाओं में आत्म प्रदेश शरीर से बाहर निकलते हैं। प्रस्तुत सूत्र में वैक्रिय समुद्घात की पूरी विधि निर्दिष्ट है। विक्रिया का अर्थ है--विविध रूपों का निर्माण। उस समय आत्म प्रदेशों का जो बाहर प्रक्षेपण होता है, उसका नाम वैक्रिय समुद्घात है। इस प्रक्रिया में सबसे पहले संख्येय योजन लम्बे एक दण्ड के आकार में आत्म प्रदेश बाहर निकल जाते हैं फिर विभिन्न प्रकार के रत्नों[५] के स्थूल पुद्गलों का परिशाटन और सूक्ष्म पुद्गलों का ग्रहण होता है, तत्पश्चात् इच्छित रूप की विक्रिया होती है।[६]

विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य--ठाणं ३/४ पृ. २६१

भगवई खण्ड १, पृ. २५२-२५३

सूत्र ५७

७३. क्या दूं, क्या उपहृत करूं? (किं दलयामि किं पयच्छामि?)

ये दोनों क्रियाएं समानार्थक हैं? फिर भी अधिकारी व्यक्ति के

---

१. विशेषावश्यकभाष्य, गाथा १०५९

२. (क) विशेषावश्यकभाष्य, गाथा १०६३

(ख) उत्तराध्ययन बृहद् वृत्ति, पत्र-३६५--महानुभागः अतिशयाचिन्त्यशक्तिः।

पाढान्तरतो महानुभावो वा, तत्र चानुभावः-शापानुग्रहसामर्थ्यम्।

३. ज्ञातावृत्ति, पत्र-३८--एकस्य-आन्तरव्यक्त-रागादिसहायवियोगात्, अद्वितीयस्य तथाविधपदात्यादिसहायविरहात्।

४. वही, ३८.--'पोसहसालाए' त्ति-पौषधं पर्वदिनानुष्ठानमुपवासादि तस्य शाला गृहविशेषःपौषधशाला।

५. विविध प्रकार के रत्नों के विवरण हेतु द्रष्टव्य - उत्तरज्झयणाणि ३६, ७५, ७६

६. नायाधम्मकहाओ १/१/५६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भेद से इन में किंचित् अर्थ भेद है। यहां साक्षात् सम्बन्धित व्यक्ति को देने के अर्थ में "दा" और उससे सम्बन्धित किसी अन्य व्यक्ति को देने के अर्थ में "प्रयच्छ" का प्रयोग हुआ है।[1]

सूत्र ५९

७४. विश्वस्त (वीसत्थे)

यहां विश्वस्त का अर्थ है--उत्सुकता रहित।[2]

सूत्र ६७

७५. आरामों......... वनषंडों (आरामेसु............ वणसंडेसु)

१. आराम--ऐसे बगीचे जिनमें माधवी लता आदि के मण्डप हों और जहां दम्पति रमण करते हों।[3]

२. उद्यान--ऐसे बगीचे, जो फूलों से लदे वृक्षों से संकुल हों और उत्सव आदि के समय बहुजन भोग्य होते हों।[4]

३. कानन--सामान्य वृक्ष समूह से युक्त नगर के निकटवर्ती वन-विभाग।[5]

४. वन--नगर से दूरवर्ती वन विभाग।[6]

५. वनषण्ड--एक जातीय वृक्ष समूह से शोभित वन प्रदेश।[7]

विशेष जानकारी के लिए द्रष्टव्य--ठाणं २/ १२५ पृ. १४५

सूत्र १५८ की वृत्ति में वन और वनषण्ड के अर्थ में कुछ भिन्नता है। देखें सूत्र १५८ का टिप्पण।

सूत्र ७२

७६. हित, मित और पथ्यकर होगा (हिय, मिय, पत्थयं)

एक ही प्रकार का भोजन सब ऋतुओं और सब क्षेत्रों में अनुकूल नहीं होता। अतः प्रत्येक ऋतु और प्रदेश की दृष्टि से आहार का बोध आवश्यक होता है।

हित--वह आहार जो मेधावर्धक और आयुवर्धक हो।

मित--परिमित। वृत्तिकार ने इसका अर्थ इन्द्रियों के लिए अनुकूल किया है।

पथ्य--वह आहार जो रोग पैदा करने का कारण न बने।[8]

निशीथ भाष्य के अनुसार स्निग्ध और मधुर भोजन आयुष्य को पुष्ट करता है, शरीर और इन्द्रियों की पटुता तथा मेधा का विकास करता है।[9]

इसका विश्लेषण करते हुए चूर्णिकार लिखते हैं--देवकुरु और उत्तरकुरु--ये क्षेत्र सहजतया स्निग्धता प्रधान होते हैं। इसीलिए वहां के व्यक्ति दीर्घायु होते हैं। सुषमा-सुषमा काल विभाग में पृथ्वी और वायु स्निग्धता प्रधान होते हैं, वहां भी प्राणी दीर्घजीवी होते हैं। वैसे ही यहां भी स्निग्ध और मधुर आहार से आयुष्य और देह की पुष्टि होती है। इन्द्रियां पटु होती हैं। दुग्ध आदि के सेवन से मेधा का विकास होता है।[10]

इससे यह स्पष्ट है कि आहार हमारे व्यक्तित्व के समस्त अंगों को प्रभावित करता है।

वर्तमान में आहार चिकित्सा नाम से स्वतन्त्र चिकित्सा पद्धति विकसित हो रही है। उसके द्वारा आहार परिवर्तन के आधार पर अनेक दुःसाध्य रोगों का उपचार किया जाता है।

७७. (सूत्र ७२)

प्रस्तुत सूत्र में गर्भवती स्त्री की चर्या का संक्षिप्त किन्तु महत्त्वपूर्ण दिशा निर्देश है।

भावी शिशु के सही निर्माण के लिए मां का खड़ा रहना, बैठना और सोना किस प्रकार का हो? उसकी विभिन्न मुद्राओं का डिम्ब पर सूक्ष्म प्रभाव पड़ता है।

भोजन की दृष्टि से अति तीखा, अति कड़ुआ, अति कषैला, अति खट्टा और अति मीठा आहार उसके लिए वर्जनीय होता है।

भावनाओं की दृष्टि से अतिशोक, अतिमोह, अतिभय, अति परित्रास का वर्जन करना शिशु के लिए हितकर होता है।

गर्भिणी स्त्री के निवास स्थान, उसके वस्त्र, मालाएं और अलंकार--इन सबका भी शिशु पर अनुकूल और प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इन सब दृष्टियों से प्रस्तुत सूत्र के संकेत मननीय और अन्वेषणीय है।

मां के लाल रंग के वस्त्र शिशु की उद्विग्नता और रोग के निमित्त बन जाते हैं। वस्त्रों का परिवर्तन करते ही वे पुनः संतुलित हो जाते हैं। ऐसा प्रयोग के आधार पर जाना जा सकता है। गर्भावस्था में आहार, विहार, वस्त्र, परिधान आदि सबका विवेक किया जाता है।

सूत्र ७५

७८. उनके मस्तक पर से दासत्व--दासचिह्न को धो डाला। (मत्थयधोयाओ करेइ)

इसका अर्थ है--जीवन पर्यन्त दास कर्म से मुक्त करना।[11]

सूत्र ७६

७९. पुष्पमालाओं के समूह (मल्लदामकलावं)

सामान्यतः मल्लदाम का अर्थ पुष्पमाला किया जाता है। वस्तुतः

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-३९--दलयामि-तुभ्यं ददामि किं वा प्रयच्छामि-भवत्संगतायान्यस्मै।

२. वही--विश्वस्तो विश्वासवान् निरुत्सुको वा।

३. वही--आरमन्ति येषु माधवीलतागृहादिषु दम्पत्यादीनि ते आरामाः।

४. वही-पुष्पादिमद्वृक्षसंकुलानि उत्सवादौ बहुजन-भोग्यानि उद्यानानि।

५. वही-सामान्यवृक्षवृन्दयुक्तानि नगरासन्नानि काननानि।

६. वही-नगरविप्रकृष्टानि वनानि।

७. वही-वनखण्डेषु च एकजातीयवृक्षसमूहेषु।

८. वही, पत्र ४०--हितं मेधायुरादिवृद्धिकारणत्वात्। मितमिन्द्रियानुकूलत्वात्। पथ्यमरोगकारणत्वात्।

९. निशीथ भाष्य, गाथा ३५४१--णिद्धमधुरेहि आउं, पुस्सति देहिंदिपाडवं मेहा।

१०. वही, पृ. २३६

११. ज्ञातावृत्ति, पत्र-४३--मत्थयधोयाउत्ति - धौतमस्तकाः करोति अपनीतदासत्वा इत्यर्थः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माल्य और दाम--ये दोनों स्वतन्त्र शब्द हैं। माल्य का अर्थ सामान्य माला है और 'दाम' शब्द विशेष प्रकार की माला के अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'दाम' शब्द के अनेक अर्थ उपलब्ध होते हैं। जैसे--

० सिर पर लटकने वाली माला।

० सिर पर आभूषण रूप में लगाई जाने वाली माला।

० बालों को सुव्यवस्थित रखने के लिए पहनी जाने वाली माला।

० खुले मैदान के अन्त में चारों ओर वंदनवार के रूप में बांधी जाने वाली माला।

० मस्तक पर पहनी जाने वाली माला, जो पत्तों, फूलों और जवाहरात से बनी हुई हो।[१]

गृहसूत्र के अनुसार दाम का अर्थ 'चन्दन की माला' होता है।[२]

८०. नटों .... तम्बूरा वादकों (नड .... तुबवीणिय)

१. नट--नाटक करने वाला।[३]

२. नर्तक--नृत्य करने वाला।[४]

३. जल्ल--रस्सी पर चढ़कर खेल करने वाले तथा राजा के स्तोत्र पाठक।[५]

४. मल्ल--पहलवान।

५. मौष्टिक--मुक्केबाज, मुष्टियुद्ध करने वाला।[६]

६. विडम्बक--विदूषक।[७]

७. कहकहक--कथा करने वाला।

८. प्लवक--छलांग भरने वाला।[८]

९. लासक--रास रचाने वाला।

लास एक अलग नृत्य परम्परा रही है। 'रासो' राजस्थानी प्रबन्ध चरितों की एक आकर्षक विधा है। यह विविध राग-रागनियों में गुम्फित होता है। उस 'रास' का मंचन करने वाले 'रासक' हो सकते हैं। 'र' को 'ल' होने से लासक हो जाता है। 'लास्यक' का प्रवृत्तिलभ्य अर्थ होता है--रास रचाने वाले। वृत्तिकार ने इसका वैकल्पिक अर्थ राजा की जयकार करने वाला भाण्ड भी किया है।[९]

१०. आख्यायक--वृत्ति के अनुसार आख्यायक का अर्थ होता है शुभ-अशुभ फलादेश बताने वाला, भविष्य वक्ता।[१०] किन्तु खेलकूद प्रधान प्रसंग से लगता है इसका अर्थ कथाकार होना चाहिए।

११. लङ्ख--ऊँचे बांस पर खेल करने वाले।[११]

१२. मंख--चित्रफलक दिखाकर आजीविका चलाने वाले।[१२]

१३. तूणइल्ल--तूण (मशक के आकार का वाद्य) वादक।[१३]

१४. तुंबवीणिय--तम्बूरावादक।

सूत्र ७८

८१. श्रेणियों और उपश्रेणियों (सेणि-प्पसेणीओ)

राजा के विशेष निर्देश को प्रसारित और क्रियान्वित करने के लिए अन्य प्रसंगों में कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाने का उल्लेख मिलता है। प्रस्तुत प्रसंग में अठारह प्रकार की श्रेणियां और प्रश्रेणियां आमंत्रित हैं।

श्रेणि और प्रश्रेणि ये दो शब्द विशेष ज्ञातव्य हैं।

श्रेणि नाम पंक्ति का है। इस शब्द का प्रयोग अनेक प्रकरणों में हुआ है, जैसे आकाश प्रदेशों की श्रेणि, राजसेना की १८ श्रेणियां, नरक व स्वर्ग के श्रेणिबद्ध विमान एवं बिल, शुक्ल ध्यान गत साधु की उपशम और क्षपक श्रेणि तथा विभिन्न जातियां और उपजातियां।

तिलोयपण्णति में राजसेना की १८ श्रेणियों का उल्लेख है, जैसे--हस्ति, अश्व, रथ--इनके अधिपति, सेनापति, पदाति, श्रेष्ठी, दण्डपति, शूद्र, क्षत्रिय, वैश्य, महत्तर, प्रवर अर्थात् ब्राह्मण, गणराज, मंत्री, तलवर, पुरोहित, अमात्य और महामात्य तथा बहुत प्रकार के प्रकीर्णक।[१४]

धवला में कुछ परिवर्तन के साथ इनका उल्लेख है जैसे--घोड़ा, हाथी, रथ--इनके अधिपति, सेनापति, मंत्री, श्रेष्ठी, दण्डपति, शूद्र, क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, महत्तर, गणराज, अमात्य, तलवर, पुरोहित, स्वाभिमानी, महामात्य और पैदल सेना इस तरह सब मिलकर अठारह श्रेणियां होती है।[१५]

प्रस्तुत सूत्र में श्रेणि और प्रश्रेणि शब्द का प्रयोग जातियों और उपजातियों के अर्थ में हुआ है।

श्रेणि--कुम्भकारादि जातियां।

---

१. आप्टे

२. A Concise Etymological Samskrit Dictionary II P. ३४

३. ज्ञातावृत्ति, पत्र-४४--नटा: - नाटकानां नाटयितार:।

४. वही - नर्तका ये नृत्यन्ति, अंकिला इत्येके।

५. वही - जल्ला-वरत्रखेलका, राज्ञ: स्तोत्रपाठका: इत्यन्ये।

६. वही - मौष्टिका-मल्ला एव ये मुष्टिभि: प्रहरन्ति।

७. वही - विडम्बका: - विदूषका:।

८. वही - प्लवका - ये उत्पल्वन्ते नद्यादिकं वा तरन्ति।

९. वही - लासका - ये रासकान् गायन्ति, जयशब्दप्रयोक्तारो वा भाण्डा इत्यर्थ:।

१०. वही - आख्यायका - ये शुभाशुभमाख्यन्ति।

११. वही - लङ्खा - वंशखेलका:।

१२. वही ४४--मङ्खा--चित्रफलकहस्ता भिक्षाटा:।

१३. वही - तूणइल्ला: - तूणाभिधानवाद्यविशेषवन्त:।

१४. तिलोयपण्णत्ति १/४३,४४

करितुरयरहाहिवई सेणावई - पदत्तिं सेट्ठि दंडवई।
सुद्दक्खत्तिय वइसा, हवंति तह महयरा पवरा।। ४३।।
गणरायमंति तलवर पुरोहियामत्तया महामत्ता।
बहुविह पइण्णया य अट्ठारस होंति सेणीओ।। ४४।।

१५. धवला १, गाथा ३७, ३८

हयहत्थिरहाणहिवा सेणावइ - मंति सेट्ठि दंडवई।
सुद्दक्खत्तिय - बम्हण वइसा तह महयरा चेव।। ३७।।
गणरायमच्च तलवर पुरोहिया दप्पिया महामत्ता।
अट्ठारह सेणीयो, पयाइणामेलिया होंति।। ३८।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्रेणि--इसी के प्रभेद रूप।[१]

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में अठारह श्रेणियों का उल्लेख है। वे अठारह श्रेणियां इस प्रकार हैं--

१. कुम्हार २. रेशम बुनने वाला ३. सोनार ४. रसोइया ५. गायक ६. नाई ७. मालाकार ८. कच्छकार ९. तमोली १०. मोची ११. तेली १२. अंगोछे बेचने वाले १३. कपड़े छापने वाले १४. ठठेरे १५. दर्जी १६. ग्वाले १७. शिकारी १८. मछुए।[२]

बौद्ध साहित्य महावस्तु में अठारह श्रेणियों का उल्लेख तो आता है, पर उनके नाम नहीं आते।

नायाधम्मकहा में चित्रकार श्रेणि और स्वर्णकार श्रेणि का उल्लेख है।

८२. शुल्क और कर न लें (उस्सुंकं उक्करं)

शुल्क और कर--ये दोनों 'टेक्स' के ही वाचक हैं।

शुल्क का अर्थ है--बिक्रीकर-'सेलटेक्स'।[३]

कर का अर्थ है--सम्पत्तिकर 'इन्कम टेक्स'।[४]

सूत्र ८१

८३. अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य (असणं-पाणं-खाइमं-साइमं)

अशन--१. जिससे शीघ्र ही क्षुधा शान्त होती है, वह अशन है।[५]

२. क्षुधा को मिटाने के लिए जिस वस्तु का भोजन किया जाता है वह अशन है। जैसे--रोटी, चावल आदि।[६]

३. अशन में सत्तू, मूंग आदि अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थों का समावेश होता है।[७]

पान--आवश्यक निर्युक्ति के अनुसार प्राणों का उपकारक पान कहलाता है।[८] पान के लिए पान, पानक और पानीय शब्दों का प्रयोग होता है, पर वास्तव में इन तीनों का अर्थ भिन्न-भिन्न है। सुरा आदि पान, खजूर आदि मिश्रित जल पानक तथा साधारण जल के लिए पानीय शब्द का प्रयोग किया जाता था।[९] अगस्त्य चूर्णि में मृद्विका के पानक का उल्लेख है।[१०]

खाद्य--मोदक, खर्जूर आदि।[११] भुने हुए गेहूं, चने आदि तथा दांतों को मजबूत करने के लिए जो मिश्री, गोंद आदि खाया जाए वह भी खाद्य है।[१२] स्वाद्य--पिप्पली आदि।[१३]

निशीथ भाष्य के अनुसार अशन में चावल आदि, पान में तक्र, क्षीर, उदक आदि, खाद्य में फल आदि तथा स्वाद्य में मधु, फाणित, तांबूल आदि आते हैं।[१४] ताम्बूल, सुपारी, तुलसी आदि को भी स्वाद्य के अन्तर्गत माना गया है।[१५]

८४. ज्ञाति .... और परिजनों को (नाइ .... परियणेहिं)

ज्ञाति--माता-पिता, भाई-बहिन आदि।

निजक--अपने पुत्र, पुत्री आदि।

स्वजन--चाचा आदि।

सम्बन्धी--सास-ससुर, साला आदि।

प्राचीन समय में समूह चेतना विकसित थी। छोटे-बड़े सभी परिवारों में महत्त्वपूर्ण अवसरों, भावी निर्णयों, उत्सवों आदि पर इन सबका मिलन, सहभोज और विचारों का आदान-प्रदान आवश्यक समझा जाता था। जैन आगम साहित्य में अनेकत्र इनकी उपस्थिति का वर्णन है।

८५. (सूत्र ८१)

प्राचीन ग्रन्थों में ऐसे अनुष्ठानों का प्रावधान है जो शिशु के जन्म से पहले ही प्रारम्भ होकर मरणोपरान्त तक भी सम्पादित किए जाते हैं। ऐसी १००८ क्रियाओं या अनुष्ठानों का विस्तृत वर्णन है। वे क्रियाएं जीवन को संस्कारी बनाने में योगभूत बनती हैं। अतः कारण में कार्य के उपचार से वे अनुष्ठान भी 'संस्कार' कहलाते हैं।

प्रस्तुत सूत्र में ऐसे कुछेक संस्कारों का उल्लेख है जिनकी शृंखला शिशु के जन्म के साथ ही प्रारम्भ हो जाती है।

१. पहले दिन--स्थितिपतित-कुल परम्परा के अनुरूप जन्मोत्सव।

२. दूसरे दिन--जागरिका-रात्रि जागरण।

३. तीसरे दिन--चन्द्र-सूर्य दर्शन।

४. अशुचि जातकर्म का निवर्तन।

५. नामकरण संस्कार--यह बारहवें दिन होता था।

६. प्रजेमनक--अन्नप्राशन संस्कार।

७. प्रचंक्रमण संस्कार।

८. चोलोपनयन--शिखाधारण संस्कार।

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-४४--श्रेणयः-कुम्भकारादि जातयः प्रश्रेणयः-तत्प्रभेदरूपाः।
२. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति-३/४३
३. ज्ञातावृत्ति, पत्र-४४--शुल्कं तु विक्रेतव्यं भाण्डं प्रति राजदेयं द्रव्यम्।
४. वही-करस्तु गवादीनां प्रति प्रतिवर्षं राजदेयं द्रव्यम्।
५. (क) आवश्यक निर्युक्ति गाथा १६०२ (ख) निशीथ भाष्य गाथा ३७८९
६. दशवैकालिक अगस्त्यचूर्णि पृष्ठ ८६--ओदणादि असणं।
७. प्रवचनसारोद्धार गाथा २०७
८. आवश्यकनिर्युक्ति गाथा १६०२ (ख) निशीथ भाष्य गाथा ३७८९
९. प्रवचनसारोद्धार, गाथा २०८
१०. दशवैकालिक अगस्त्यचूर्णि पृष्ठ ८६--मुद्दितापाणगाती पाणं।
११. वही - मोदगादि खादिमं।
१२. प्रवचनसारोद्धार, गाथा २०९
१३. दशवैकालिक अगस्त्यचूर्णि पृष्ठ ८६--पिप्पलिमादि सादिमं।
१४. निशीथ भाष्य, गाथा ३७८९
१५. प्रवचनसारोद्धार, गाथा २१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महापुराण में चंक्रमण के स्थान में बहियनिक्रिया का निर्देश है। उसके अनुसार जन्म के तीन, चार माह पश्चात् अनुष्ठान पूर्वक प्रसूतिगृह से बाहर लाया जाता है।

प्रजेमनक के स्थान में अन्नप्राशन है। जन्म के सात, आठ माह पश्चात् पूजा विधि पूर्वक शिशु को अन्न खिलाना। चन्द्र, सूर्य दर्शन संस्कार का उल्लेख महापुराण में नहीं है।

सूत्र ८२

८६. (सूत्र ८२)

उस समय सम्पन्न घरानों में बच्चों के लालन-पालन के लिए प्राय: पांच धाय माताओं को नियुक्त किया जाता था। कर्त्तव्य और दायित्व के आधार पर उनके पांच प्रकार होते थे, जैसे--१. क्षीर-धात्री २. मज्जन धात्री ३. क्रीडन धात्री ४. मण्डन धात्री और ५. अंक धात्री।

बच्चों के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और भावनात्मक विकास में इन धाय-माताओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती थी।

इस सूत्र में पांच धात्रियों के अतिरिक्त अनेक पारिचारिकाओं का उल्लेख है। राजकुमारों को अनेक देश की भाषाओं और संस्कृति से परिचित कराने के लिए अनेक परिचारिकाएं रहती थीं। उनके माध्यम से सहज ही अनेक भाषाओं का परिचय प्राप्त हो जाता। इन पारिचारिकाओं के नाम अपने-अपने देश के नाम पर दिए गए हैं। उस समय राजघरानों में विदेशी नौकरानियों का रहना गौरव और समृद्धि का सूचक माना जाता था। नाना देशीय सेविकाओं के कारण अपने देश की शोभा बढ़ती है--ऐसी धारणा थी।

वे सब दासियां अपने-अपने देश की वेशभूषा में रहती थी। उन परिचारिकाओं का बच्चों से विशेष सम्पर्क रहता था अत: उनका सुसंस्कारी होना आवश्यक माना जाता था। क्योंकि परिपार्श्व के अच्छे या बुरे प्रतिबिम्ब बच्चों में सहज संक्रान्त होते हैं। योग्य सेविकाओं की कसौटी थी--वे इंगित, चिन्तन और अभिप्राय को समझाने वाली, निपुण और विनीत हो।[२]

सूत्र ८५

८७. पढ़ाई और उनका अभ्यास कराया। (सेहावेइ सिक्खावेइ)

१. सिध का अर्थ है--निष्पन्न कराना अर्थात् विद्या को सिद्ध करा देना।

२. 'शिक्ष' का अर्थ है--अभ्यास कराना।

जैन ग्रन्थों में शिष्य के लिए 'सेह' शब्द का प्रयोग आता है।

प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति में विभिन्न विद्या शाखाओं का ग्रहण और अभ्यास--इन दोनों पक्षों पर बराबर बल दिया जाता था। विद्यार्थी को पहले सूत्र और अर्थ का बोध दिया जाता था। कलाचार्य राजकुमार मेघ को बहत्तर कलाएं सूत्र, अर्थ और क्रियात्मक रूप से पढ़ाता है और उनका अभ्यास कराता है। 'सेहावेइ' 'सिक्खावेइ' ये दोनों शब्द मिलकर शिक्षा की पूर्णता का निवर्हन करते हैं।

पाठ्यक्रम में भी उन्हीं विषयों का चयन किया जाता था, जिनकी व्यक्ति के जीवन-व्यवहार में उपयोगिता और सार्थकता समझी जाती थी।

८८. बहत्तर कलाएं (बावत्तरी कलाओ)

प्रस्तुत सूत्र में ७२ कलाओं का नाम निर्देश मात्र है। वृत्ति में भी उनकी विस्तृत व्याख्या उपलब्ध नहीं होती।

बहत्तर कलाओं की जानकारी के लिए द्रष्टव्य समवाओ, समवाय ७२ (पृ. २५०-२५५)

सूत्र ८८

८९. उसके नौ सुप्त अंग जागृत हो गये (नवंगसुत्तपडिबोहिए)

वृत्तिकार ने इसका अर्थ निम्न प्रकार से किया है--उसके नौ सुप्त अंग जागृत हो गये।

दो श्रोत्र, दो आंखें, दो नासा-विवर, एक त्वचा, एक जीभ और एक मन--ये नौ अंग बाल्यकाल में सुषुप्त होते हैं। इनकी प्राणशक्ति अव्यक्त होती है। यौवन में इनकी प्राण शक्ति व्यक्त हो जाती है।[१]

इस पद की व्याख्या दूसरे पहलू से भी की जा सकती है। वह यह है कि--'वह नवांग सूत्रों का जानकार बन गया। यह अर्थ भी अप्रासंगिक या असंगत नहीं लगता। इसका आधार यह है कि पूर्व निर्दिष्ट अर्थ मानने पर उक्त वाक्यांश की रचना-सुप्त नवांग प्रतिबोधित' इस प्रकार होनी चाहिए थी। क्योंकि 'क्त प्रत्ययान्त विशेषण समस्त पद के पूर्व प्रयुक्त होता है। इस प्रयोग को आर्ष प्रयोग मानकर उचित भी मान लें तो उक्त संभावना का एक आधार यह भी है कि प्रस्तुत वर्णन में मेघकुमार की शैक्षणिक योग्यता का उल्लेख है। पूर्व वाक्यांश में उसे बहत्तर कलाओं में पण्डित और उत्तर पद में अठारह प्रकार की देशी भाषाओं में विशारद बताया गया है। प्रस्तुत पद इन दोनों के मध्य में स्थित है इसलिए यह कल्पना भी की जा सकती है कि इसका अर्थ 'वह नवांग सूत्रों का ज्ञाता था ' ऐसा हो। ये नवांग कौनसे थे, यह अन्वेषणीय है।

९०. अट्ठारह प्रकार की देशी भाषाओं में विशारद (अट्ठारस विहिप्पगार-देसीभासाविसारए)

वह प्रवृत्ति भेद से अठारह प्रकार की देशी भाषा में विशारद बन गया।

---

१. नायाधम्मकहाओ १/८२ नाना देसीहिंविदेसपरिमंडियाहिं

२. वही--इंगिय-चिंतिय-पत्थिय-वियाणियाहिं णिउणकुसलाहिं विणीयाहिं।

३. ज्ञातावृत्ति, पत्र-४५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृत्तिकार के अनुसार यहां अठारह देशीय भाषा का प्रयोग अठारह प्रकार की लिपि-वर्णावलि के अर्थ में हुआ है। उस समय ये अठारह प्रकार की लिपियां प्रचलित थीं--

१. हंसलिपि २. भूतलिपि ३. यक्षलिपि ४. राक्षसलिपि ५. औड्रीलिपि ६. यावनीलिपि ७. तुरुष्कीलिपि ८. कीरिलिपि--कीर देश की लिपि ९. द्राविड़ीलिपि १०. सैन्धवीलिपि ११. मालविनीलिपि १२. नाटीलिपि १३. नागरीलिपि १४. लाटीलिपि १५. पारसीलिपि १६. अनिमित्तिलिपि १७. चाणकीलिपि १८. मूलदेवीलिपि।[१]

सूत्र ८९

९१. प्रासादावतंसक.......भवन (पासायावडिंसए.....भवणं)

प्रस्तुत सूत्र में यह बताया गया है कि मेघ के माता-पिता विवाह से पूर्व मेघ के लिए आठ प्रासादावतंसक (प्रधान प्रासाद, सुन्दर प्रासाद) और एक भवन का निर्माण करवाते हैं।

प्रासाद और भवन का अन्तर स्पष्ट करते हुए वृत्तिकार ने लिखा है—भवन की ऊँचाई आयाम की अपेक्षा कुछ कम होती है और प्रासाद की ऊँचाई आयाम की अपेक्षा दुगुनी होती है।[२]

इनमें दूसरा अन्तर यह भी है कि भवन एक भूमिक--एक मंजिल वाला होता है और प्रासाद एकाधिक मंजिल वाला होता है।[३]

सूत्र ९०

९२. करण (करण)

करण तिथि का आधा कालमान होता है। तिथि के प्रारम्भ से तिथि की समाप्ति तक दो करण पूर्ण हो जाते हैं। करण ग्यारह होते हैं--बव, बालव, कोलव, तैत्तिल, गर, वणिज, विष्टि, शकुनि, चतुष्पाद, नाग, किंस्तुघ्न। प्रथम सात करण चर संज्ञक और शेष चार करण स्थिर संज्ञक हैं।[४]

९३. जलाभिषेक, मंगलकरण और आशीर्वाद के साथ) (ओवयण-मंगल सुजंपिएहिं)

ओवयण—वृत्तिकार ने इसका अर्थ प्रोंखनक किया है। इसका अर्थ उपलब्ध नहीं है। संभवतः इसका अर्थ प्रोक्षण होना चाहिए। जिसका अर्थ है--विवाह आदि के प्रसंग में किया जाने वाला जल-सिंचन।[५]

मंगल--दधि, अक्षत आदि। वृत्तिकार ने इसका वैकल्पिक अर्थ मंगल गान भी किया है।[६]

सुजल्पित--आशीर्वाद।[७]

सूत्र ९१

९४. प्रीतिदान (पीइदाणं)

हर्षप्रद घटना के समय अथवा उत्सव आदि की सूचना देने वाले को दिया जाने वाला दान।

सूत्र ९६

९५. उग्र, भोज (उग्गा भोगा)

भगवान ऋषभ के द्वारा उग्र, भोज आदि वंश स्थापित किए गए थे। वृत्तिकार के अनुसार उग्र का अर्थ रक्षा करने वाला तथा भोज का अर्थ गुरुवंशज है।[८]

शान्त्याचार्य ने उग्र का अर्थ आरक्षक तथा भोग का अर्थ 'गुरुस्थानीय' किया है।[९]

९६. रुद्र, शिव.......... (रुद्द-सिव ....)

उस समय देव पूजा और प्रकृति पूजा का भी पर्याप्त प्रचलन था। समय-समय पर जैसे इन्द्र, स्कन्द आदि देवों से संबंधित उत्सव मनाए जाते थे, वैसे ही नदी, तालाब, वृक्ष, चैत्य और पर्वतों का उत्सव मनाया जाता था और उद्यान यात्राएं एवं गिरियात्राएं की जाती थीं।

सूत्र ९९

९७. चारण (चारणे)

विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य ठाणं ६/२१ का टिप्पण पृष्ठ ६९१-९२

९८. पांच प्रकार के अभिगमों से (पंचविहेणं अभिगमेणं)

कुमार मेघ पांच अभिगम पूर्वक श्रमण भगवान महावीर के पास जाता है। वे पांच अभिगम ये हैं--

१. सचित द्रव्यों का व्युत्सर्जन।
२. अचित्त द्रव्यों का अव्युत्सर्जन।
३. एक शाटिक उत्तरीय का विन्यासकरण।
४. तीर्थंकर या गुरु को देखते ही अंजलिकरण।
५. मन का एकाग्रीकरण।

यहां दूसरे अभिगम का अर्थ आलोच्य है। उक्त अर्थ का आधारभूत मूलपाठ इस प्रकार है--१. सचित्ताणं दव्वाणं विउसरणयाए और २. अचित्ताणं दव्वाणं अविउसरणयाए? पाठ को देखते हुए उक्त अर्थ संगत हो सकता है। वृत्तिकार ने भी दूसरे पद का मूल अर्थ यही किया है--अचित्त द्रव्यों का व्युत्सर्जन न करना। प्रश्न होता है, भगवद्

१. समवाओ १८/५ का टिप्पण पृष्ठ १०७ से १०९
२. ज्ञातावृत्ति, पत्र-४६--भवनमायामापेक्षया किञ्चिन्यूनोच्छ्रायमानं भवति, प्रासादस्तु आयामद्विगुणोच्छ्राय इति।
३. अनगार धर्मामृतवर्षिणी टीका, पृष्ठ २७९--एकभूमिकं भवनं, द्वित्रिभूमादिः प्रासादः
४. ज्योतिष प्रवेशिका, पृ. २२
५. ज्ञातावृत्ति, पत्र-४७--अवपदनं - प्रोङ्खनकम्।
६. वही--दध्यक्षतादीनि गानविशेषो वा।
७. वही--आशीर्वचनानीति।
८. ज्ञातावृत्ति, पत्र-४९
९. उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति, पत्र-४१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वंदन के लिए जाते समय जैसे सचित्त द्रव्यों का परिहार अनिवार्य होता है, क्या उस समय सभी प्रकार के अचित्त द्रव्यों का रखना विहित है?

इसका समाधान वृत्तिकार द्वारा स्वीकृत वैकल्पिक पाठ के आधार पर मिल सकता है। वह वैकल्पिक अर्थ है--अचित्त द्रव्य-छत्र चामर आदि का भी विसर्जन।

वृत्तिकार लिखते हैं--क्वचिद् वियोसरयेति पाठः तत्र अचेतन-द्रव्याणां छत्रादीनां व्युत्सर्जनेन परिहारेण, उक्तं च--

अवणेइ पंच ककुहाणि, रायवरबसभचिंधभूयाणि।
छत्तं खग्गोवाहण मउडं, तह चामराओ य ।।[1]

यह अर्थ मौलिक और संगत लगता है। लगता है मूल पाठ की अशुद्धि के कारण कुछ भ्रान्ति हुई है और इसीलिए अचित्त द्रव्यों का अविसर्जन--यह अर्थ किया गया है।

शुद्ध पाठ होना चाहिए 'अचित्ताणं दव्वाणं अ विउसरणयाए' 'अ' निषेधार्थक नहीं है। यह 'च' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। प्राकृत में व्यंजन का लोप होने से 'स्वर' शेष रहता है। यहां च का अर्थ 'और' नहीं। इसका अर्थ 'भी' है। अपि के अर्थ 'च' का प्रयोग होता है। 'विउसरणाए' के साथ 'अ' छप जाने से यह भ्रान्ति हुई है। अतः दूसरे अभिगम का अर्थ होना चाहिए अचित्त द्रव्यों का भी विसर्जन।

भगवान के दर्शनार्थ जाते समय जैसे सचित्त पुरुष मालाएं आदि त्यागी जाती थी वैसे ही राजा लोग राजसी परिधान--छत्र, चामर आदि भी समवसरण के बाहर ही उतारकर जाते थे। वैदिक परम्परा में भी यह अर्थ सम्मत था। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में भी उल्लेख है--'विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि।'[2]

विशेष विवरण हेतु द्रष्टव्य.......भगवई खण्ड १, पृष्ठ २१७.

सूत्र १०५

९९. (सूत्र १०५)

प्रस्तुत सूत्र में मानसिक आवेगों से शरीर पर होने वाले प्रभावों का मार्मिक चित्रण है। यह मनोकायिक रोगों के विश्लेषण का पुष्ट आधार बनता है।

सूत्र १०६

१००. उत्क्षेपक, तालवृन्त और वीजनक (उक्खेवय-तालविंट-वीयणग)

ये प्राचीनकाल में प्रचलित पंखे थे। इनमें आकृति गत भेद है--

१. उत्क्षेपक--बांस से निर्मित्त पंखा, उसके मध्य में छोटा डंडा होता है, उसे मुट्ठी मे पकड़ कर हवा झलते हैं।

२. तालवृन्त--ताड़ के पत्तों से बना हुआ पंखा अथवा तालवृन्त की आकृति वाला चर्ममय पंखा।

३. वीजनक--जिसके मध्य में दण्ड लगा हुआ है वह चर्ममय पंखा।[3]

१०१. उदुम्बर के पुष्प के समान श्रवण दुर्लभ हो (उंबरपुप्फं व दुल्लहं सवणयाए)

उदुम्बर का अर्थ है--गूलर का पेड़।[4]

क्षीरवृक्ष, हेमदुग्ध और सदाफल ये इसके पर्यायवाची नाम हैं। शब्द कल्पद्रुम में इसके गुण निष्पन्न अठारह नामों का उल्लेख है।[5] उसके अनुसार उसकी छाल शीतल होती है और वह पुष्पशून्य होता है।

प्रस्तुत सूत्र में उदुम्बर पुष्प की भांति दुर्लभता का जो उल्लेख है। उसका तात्पर्य यही है कि जैसे उदुम्बर का फूल अलभ्य है वैसे ही मां की दृष्टि में मेघ जैसा पुत्र अन्यत्र दुर्लभ है।

सूत्र ११०

१०२. सातवीं पीढ़ी तक (आसत्तमाओ कुलवंसाओ)

प्राचीनकाल में सम्पदा की प्रचुरता की एक कसौटी मानी जाती थी-जो सम्पदा सात पीढ़ी तक पर्याप्त हो। उसका अपना महत्त्व था। जिसके पास इतनी सम्पदा होती थी, वह व्यक्ति सम्पन्न माना जाता इसीलिए प्रस्तुत सूत्र में 'अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ' का प्रयोग मिलता है।

सूत्र ११२

१०३. सांप की भांति एकान्त दृष्टि (अहीव एगंतदिट्ठीए)

सर्प अपने लक्ष्य पर अत्यन्त निश्चल दृष्टि रखता है। यही कारण है कि उसके द्वारा देखे जाने वाले पदार्थ का उसमें स्थिर प्रतिबिम्ब पड़ता है। वह प्रतिबिम्ब वर्षों तक भी अमिट रहता है। इसी प्रकार साधु को भी अपने लक्ष्य/चारित्राराधना पर निश्चल दृष्टि रहना होता है।

१०४. दुर्भिक्षभक्त, कान्तार-भक्त, वार्दलिका-भक्त, और ग्लान-भक्त (दुब्भिक्खभत्ते वा कंतारभत्ते वा वद्दलिया भत्ते वा गिलाण-भत्ते वा)

निशीथ चूर्णि और स्थानांग वृत्ति में इनकी बहुत सुन्दर व्याख्या प्राप्त होती है।

१. दुर्भिक्ष भक्त--भयंकर दुष्काल होने पर राजा तथा अन्य धनाढ्य व्यक्ति भक्त पान तैयार कर देते थे। वह दुर्भिक्ष भक्त कहलाता था।[6]

२. कान्तार भक्त--प्राचीनकाल में भिक्षुओं का गमनागमन सार्थवाहों के साथ-साथ होता था। कभी वे अटवी में साधु पर दया करके उसके लिए भोजन बनाकर दे देते थे। इसे कान्तार भक्त कहा जाता था।

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-५०

२. अभिज्ञानशाकुन्तलम्

३. ज्ञातावृत्ति, पत्र-५२--उत्क्षेपको वंशदलादिमयो मुष्टिग्राह्यो दण्डमध्यभागः, तालवृन्तंतालाभिधानवृक्षपत्र-वृन्तं पत्तछोटन इत्यर्थः तदाकारं वा चर्ममयं वीजनकं तु--वंशादिमय-मेवान्तर्ग्राह्यदण्डम्।

४. अभिधानचिन्तामणि ४/१९८--उदुम्बरो जन्तुफलो मशकी हेमदुग्धकः।

५. शब्दकल्पद्रुम १, पृष्ठ २३९

६. निशीथ भाष्य, भाग ३, पृष्ठ ४५५
जं दुब्भिखे राया देतितं दुब्भिक्खभत्तं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. वार्दलिका भक्त--आकाश में बादल छाए हुए हैं। वर्षा गिर रही है। ऐसे समय में भिक्षु भिक्षा के लिए नहीं जा सकते। यह सोचकर गृहस्थ उनके लिए विशेषतः जो भोजन तैयार करते, वह वार्दलिका भक्त कहलाता था।[१]

४. ग्लान भक्त--इसके तीन अर्थ हैं--

१. आरोग्यशाला (अस्पताल) में दिया जाने वाला भोजन।

२. आरोग्यशाला के बिना भी सामान्यतः रोगी को दिया जाने वाला भोजन।[२]

३. रोग उपशमन के लिए दिया जाने वाला भोजन।[३]

सूत्र ११३

१०५. (सूत्र ११३)

प्रस्तुत सूत्र में दो शब्द विमर्शनीय हैं इहलोक और परलोक। सूत्रकार के अनुसार जो व्यक्ति मात्र वर्तमान जीवन में पौद्गलिक सुखों से प्रतिबद्ध होता है और पारलौकिक हित से निरपेक्ष रहता है, उसके लिए निर्ग्रन्थ-प्रवचन दुरनुचर है।

सूत्र ११८

१०६. सब प्रकार के उदक, सब प्रकार की मिट्टी (सव्वोदएहिं, सव्वमट्टियाहिं)

यहां सर्वोदक का अर्थ है--समस्त तीर्थों में उपलब्ध होने वाला जल। सर्व मृत्तिका का अर्थ है--सब तीर्थ क्षेत्रों की मिट्टी।[४]

१०७. ग्राम, आकर......सन्निवेशों (गामागर......सण्णिवेसाणं)

यहां ग्राम, आकर से लेकर सन्निवेश तक के १२ शब्दों का अर्थ ज्ञातव्य है।

ग्राम--जो कर आदि से गम्य हो, जहां टेक्स लगती हो।

आकर--लवण आदि की उत्पत्ति भूमि।

नगर--जहां कर नहीं लगता।

खेट--जिसके चारों ओर रेत का प्राकार हो।

कर्बट--कुनगर।

द्रोणमुख--वह व्यापारिक क्षेत्र जहां जल और स्थल--दोनों मार्गों से माल आता हो।

मडम्ब--जिसके चारों ओर एक-एक योजन तक कोई गांव आदि न हो।

पत्तन--पत्तन दो प्रकार के होते हैं--जल पत्तन और स्थल पत्तन। जहां जल मार्ग से माल आता हो वह जल-पत्तन और जहां स्थल मार्ग से माल आता हो वह स्थल-पत्तन है।

संवाह--जिस गिरिदुर्ग आदि पर धान को ढोकर ले जाया जाता है।

सन्निवेश--सार्थ आदि के ठहरने का स्थान।[५]

दि जैनिस्ट स्टडीज में उल्लिखित इनकी व्याख्या मननीय होने के साथ-साथ मनोरंजक भी है।

१. ग्राम--जहां साधु भिक्षा के लिए गमन करते हैं। जो गुणों को ग्रसता है। जहां अठारह प्रकार के कर लगते हैं अथवा कांटों की बाड़ से आवृत जन-निवास।

जहां केवल विप्र और विप्रभृत्य रहते हैं, वह गांव है, अथवा जहां केवल शुद्र ही रहते हैं, वह गांव है।

२. नगर--जहां किसी प्रकार का कर नहीं लगता। जिसके चारों ओर विशाल गोपुर हों और जो शोभन हो। नगर की पहचान-देवमन्दिरों, विचित्र प्रकार के प्रासादों, बाजारों, मकानों और शोभन राजमार्गों द्वारा होती है।

३. खेड--धूलि के प्राकार से घिरा हुआ, चारों ओर से नदी अथवा पर्वत से घिरा हुआ, पुर की अपेक्षा जिसका विस्तार आधा हो। किसानों का गांव।

४. कर्बट--चारों गांव के मध्य स्थित गांव कर्बट है। दो सौ गांव के मध्य स्थित कावटिका और सौ गांव के मध्य स्थित गांव को काव कहते हैं। जिसके एक ओर गांव हो और दूसरी ओर नगर, उन दोनों को जो मिला जुला भाग है, वह कर्बट है, जो पर्वत या नदी से घिरा हुआ हो वह कर्बट है।

५. मडम्ब--जिसके चारों ओर ढाई योजन तक कोई गांव न हो, जिसके चारों ओर अर्ध योजन तक गांव हो, जिसके चारों ओर आस-पास में कोई दूसरा गांव, नगर आदि न हो, जो चारों ओर से जनाश्रय शून्य हो।

६. पत्तन--जहां सब दिशाओं से लोग आते हो, जहां रत्नों की खानें हों। पत्तन दो प्रकार के होते हैं--जलमध्यवर्ती, स्थलमध्यवर्ती। जहां रत्न उत्पन्न होते हों। जो शकट और नौकाओं से गम्य हो, घाटयुक्त हो, वह पत्तन और जो केवल नौकाओं द्वारा ही गम्य हो वह पट्टन कहलाता है।

जहां जल या स्थल पथ में से किसी एक द्वारा प्रवेश-निर्गम हो।

७. द्रोणमुख--द्रोण नाम के समुद्र की वेला से घिरा हुआ। जहां जल और स्थल दोनों से प्रवेश और निर्गम हो, जैसे--भृगुकच्छ, भड़ौंच आदि।

---

१. स्थानांग वृत्ति, पत्र-४४३--वर्द्दलिका-मेघाडम्बरं तत्र हि वृष्ट्या भिक्षाभ्रमणाक्षमो भिक्षुकुलो भवतीति गृही तदर्थं विशेषतो भक्तं दानाय निरूपयतीति।

२. निशीथ भाष्य, भाग ३, पृष्ठ ४५५--आरोगसालाउ वा चिणावि आरोगसालाए जं गिलाणस्स दिज्जति तं गिलाणभक्तं।

३. (क) स्थानांग वृत्ति, पत्र-४४३ रोगोपशान्तये यद्ददाति।
(ख) ज्ञातावृत्ति, पत्र-५६

४. वही, पत्र-५९--सर्वोदकैः सर्वतीर्थसम्भवैः एवं मृत्तिकाभिरिति।

५. ज्ञातावृत्ति, पत्र-६०--करादिगम्यो ग्रामः, आकरो लवणाद्युत्पत्तिभूमिः, अविद्यमानकरं-नगरं, धूली प्राकारं-खेटं, कुनगरं-कर्बटं, यत्र जलस्थलमार्गाभ्यां भाण्डान्यागच्छन्ति तद्द्रोणमुखं। यत्र योजनाभ्यन्तरे सर्वतो ग्रामादि नास्ति तन्मडम्बं, पत्तनं द्विधा - जलपत्तनं स्थलपत्तनं च, तत्र जलपत्तनं यत्र जलेन भाण्डान्यागच्छन्ति, यत्र तु स्थलेन तत्स्थलपत्तनं, यत्र पर्वतादि दुर्गे लोकधान्यानि संवहन्ति स संवाहः, सार्थादिस्थानं सन्निवेशः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. आकर--सोने आदि का उत्पत्तिस्थान, लोह आदि की उत्पत्ति-भूमि।

९. आश्रम--तापस आश्रम से उपलक्षित स्थान। तीर्थ स्थान अथवा मुनि स्थान।

१०. सन्निवेश--सार्थ, कटक आदि का वास। यात्रा आदि के लिए समागत व्यक्तियों का आवास। सन्निवेश सार्थ और सेना का होता है।

११. निगम--जहां बहुत से व्यापारियों का निवास हो। जिसके निगमन के लिए चार से अधिक मार्ग हो। निगम-वणिग्ग्राम।

१२. राजधानी--जहां राजा रहता हो।

१३. संवाह--किसान समभूमि में खेती कर, सुरक्षा के लिए दुर्ग भूमि आदि में धान को वहन कर ले जाते हैं, वह संवाह (संबाध) कहलाता है। जहां चारों ही वर्णों के लोग बड़ी संख्या में रहते हों। (द्रष्टव्य ठाणं २/३९० का टिप्पण, पृष्ठ १४२-१४४)

सूत्र १२१

१०८. कुत्रिकापण से (कुत्तियावणाओ)

कुत्रिकापण--वह दुकान या स्टोर, जहां विश्व भर की प्रत्येक वस्तु उपलब्ध होती हो।

प्राचीन मान्यता के अनुसार देवाधिष्ठित होने के कारण स्वर्ग, मर्त्य और पाताल रूप तीन लोक में उपलब्ध होने वाली प्रत्येक वस्तु जहां उपलब्ध होती हों, वे आपण--दुकानें कुत्रिकापण कहलाती थीं।[1]

सूत्र १२५

१०९. वस्त्र से (पोत्तीए)

पोत्तिय वस्त्र के अर्थ में देशी शब्द है। संस्कृत के प्रोत और हिन्दी के 'पोत' इसके ही प्रतिरूप हैं।[2]

सूत्र १२७

११०. हंस लक्षण पटशाटक में (हंसलक्खणेण पडसाडएण)

हंस लक्षण पटशाटक - हंस जैसी शुक्लता अथवा हंस के छापे वाला विशाल वस्त्र।[3]

सूत्र १२७

१११. अभ्युदय, उत्सव .... और पर्वणी (पूर्णिमा आदि) तिथियों में (अब्भुदएसु य उस्सवेसु य .... पव्वणीसु य)

१. अभ्युदय--राज्य लक्ष्मी आदि की प्राप्ति होना।

२. उत्सव--प्रिय समागम के उपलक्ष्य में मनाया जाने वाला उत्सव। २/११ की वृत्ति में इन्द्रोत्सव आदि को उत्सव में परिगणित किया गया है।

३. प्रसव--पुत्र जन्म।

४. तिथि--मदन त्रयोदशी आदि के उपलक्ष्य में मनाया जाने वाला उत्सव भी 'तिथि' कहा जाने लगा।

५. क्षण--इन्द्रोत्सव आदि। २/११ की वृत्ति में बहुत जनों के सम्मिलित भोज आदि को क्षण माना गया है। लगता है २/११ की वृत्ति में उत्सव और क्षण की व्याख्या में व्यत्यय हुआ है।

६. यज्ञ--नाग पूजा आदि।

७. पर्वणि--कार्तिकी महोत्सव, कौमुदी महोत्सव आदि।[4]

सूत्र १२८

११२. (सूत्र १२८)

प्रस्तुत सूत्र में पुरुष के पहनने योग्य सतरह प्रकार के आभरणों तथा चार प्रकार की मालाओं का उल्लेख है।

१. हार--एक सौ आठ लड़ी वाली मोती की माला।

२. अर्द्धहार--चौसठ लड़ी वाली मोती की माला।

३. एकावलि--एक लड़ी की मोती की माला।

४. मुक्तावलि--मोती की माला।

५. कनकावलि--सोने की माला।

६. रत्नावलि--रत्नों की माला।

७. प्रालम्ब--मोती की माला।

८. पाद-प्रालम्ब--पैरों तक लटकता गले का स्वर्णाभूषण।

९. कटक--कंकण।

१०. त्रुटित--बाहुरक्षक आभूषण।

११. केयूर--बाजूबन्द।

१२. अंगद--बाजूबन्द।

१३. दसमुद्रिकानंतक--मुद्रिका दशक (दस मुद्रिकाओं वाला हथफूल)

१४. कटिसूत्र--करधनी

१५. कुंडल

१६. चूड़ामणि

१७. मुकुट

चार प्रकार की मालाएं--१. ग्रन्थित २. वेष्टित ३. पूरित ४. संघात्य।

त्रुटित, केयूर और अंगद--ये तीनों ही भुजा के आभरण हैं, फिर भी तीनों में भेद है। त्रुटित दृष्टिदोष के निवारणार्थ पहने जाते थे। केयूर और अंगद में आकारगत भेद है।

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-६१--कुत्तियावणाउ त्ति देवताधिष्ठितत्वेन स्वर्गमर्त्यपाताल-लक्षण भूत्रितयसम्भविवस्तुसम्पादक आपणो हट्टः कुत्रिकापणः।

२. वही--पोत्तियाइत्ति वस्त्रेण।

३. वही--हंसस्येव लक्षणं स्वरूपं शुक्लता हंसा वा लक्षणं चिह्नं यस्य स तथा तेन शाटको वस्त्रमात्रं स च पृथुलः पटोऽभिधीयते इति पटशाटकः।

४. वही--अभ्युदयेषु-राज्यलाभादिषु। उत्सवेषु-प्रियसमागमादिमहेषु। प्रसवेषु-पुत्रजन्मसु। तिथिषु-मदनत्रयोदशीप्रभृतिषु। क्षणेषु-इन्द्रमहादिषु। यज्ञेषु-नागादिपूजासु। पर्वणीषु च--कार्त्तिक्यादिषु।

(ख) वही ८७--अभ्युदयेषु-राज्यलक्ष्म्यादिलाभेषु। उत्सवे-इन्द्रोत्सवादिषु। प्रसवेषु -पुत्रादिजन्मसु। तिथिषु-मदनत्रयोदश्यादिषु। क्षणेषु-बहुलोकभोजना-दानादिरूपेषु। यज्ञेषु-नागादिपूजासु। पर्वणीषु-कौमुदीप्रभृतिषु।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र १३४

११३. विलास, संलाप और उल्लाप (विलाससंलावुल्लाव)

विलास--नेत्र विकार अथवा चाक्षुष चेष्टा।

संलाप--परस्पर वार्तालाप।

उल्लाप--काकुध्वनि से युक्त वचन।[1]

सूत्र १४३

११४. वर्द्धमानक (वद्धमाणग)

वर्धमानक--यह आठ प्रकार के मंगलों में चौथा मंगल है।

वृत्तिकार ने विभिन्न मतों का उल्लेख करते हुए वर्धमानक के अनेक अर्थ किए हैं जैसे--शराव, पुरुषारूढ पुरुष, पांच प्रकार के स्वस्तिक तथा प्रासाद विशेष।[2]

किन्तु आठ मंगलों के साथ उल्लेख होने के कारण यहां वर्द्धमानक का अर्थ शराव-संपुट ही होना चाहिए। 'पुरुषारूढ पुरुष' के अर्थ में आगे वद्धमाणा शब्द प्रयुक्त हुआ है।

वद्धमाणा--स्कन्ध भारवाही वटुक

कन्धे पर मनुष्य को बैठाकर सवारी के आगे चलने वाले।[3]

सूत्र १४८

११५. प्रयत्न करना......पराक्रम करना (जइयव्वं......परक्कमियव्वं)

यत्न--प्राप्त संयम योगों के प्रति जागरूक रहना।[4]

घटना--चेष्टा-अप्राप्त संयम योग की प्राप्ति के लिए चेष्टा करना।

पराक्रम--पौरुष से होने वाली फल-प्राप्ति का प्रयत्न।[5]

स्थानांग टीका के अनुसार पराक्रम का अर्थ है--शक्ति क्षय होने पर भी विशेष उत्साह बनाए रखना।[6]

सूत्र १४९

११६. (सूत्र १४९)

प्रस्तुत सूत्र में हित, शुभ, क्षम, निःश्रेयस और अनुगामिक--इन पांच शब्दों का प्रयोग प्रतिपाद्य विषय पर बल देने के लिए किया गया है। प्रत्येक शब्द की अर्थ-भिन्नता पर ध्यान देने पर इनके अर्थ इस प्रकार फलित होते हैं--

हित--अपाय रहित

शुभ--पुण्यफलदायक

क्षम--औचित्य या सामर्थ्य

निःश्रेयस--कल्याण

अनुगामिक--भविष्य में उपकारक के रूप में साथ देने वाला।

सूत्र १५०

११७. इस प्रकार चलो ....इस प्रकार बोलो (गंतव्वं ....एवं भासियव्वं)

यहां एवं गंतव्वं .... एवं भासियव्वं का अर्थ है--

संयमपूर्वक चलो, संयमपूर्वक खड़े रहो, संयमपूर्वक बैठो,

संयमपूर्वक लेटो, संयमपूर्वक खाओ और संयमपूर्वक बोलो।

इसका आधार दशवैकालिक में प्राप्त होता है।

शिष्य पूछता है--भंते! मैं कैसे चलूं? कैसे खड़ा रहूं? कैसे बैठूं? कैसे लेटूं? कैसे खाऊं? और कैसे बोलूं?

इसके समाधान में भगवान ने कहा--

जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सये।

जयं भुंजंतो भासंतो, पावकम्मं न बंधई।[7]

यहां भी 'एवं' पद में 'जयं' का अर्थ अन्तर्गर्भित है।

विशेष विवरण हेतु द्रष्टव्य दशवैकालिक ४/८ का टिप्पण।

सूत्र १५१

११८. संयमपूर्वक लेटना (तुयट्टइ)

यहां 'तुयट्ट' का संस्कृत रूपान्तरण है--त्वग्वर्तन--सोना।

जैन श्रमण की संयमपूर्वक सोने की विधि है--सामायिक सूत्र आदि के उच्चारण पूर्वक, शरीर की प्रमार्जना कर संस्तारक और उत्तरपट्ट पर, बांह को उपधान बनाकर बाएं पार्श्व से सोना।[8]

अधिक ऊंचे तकिये का प्रयोग न करना और बायीं करवट सोना स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभप्रद है।

११९. प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के प्रति (पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं)।

प्राण भूत, जीव और सत्त्व--ये सामान्यतः पर्यायवाची हैं, एकार्थक

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-६१--विलासो नेत्रविकारो यदाह -
हावो मुखविकारः स्याद् भावश्चित्तसमुद्भवः।
विलासो नेत्रजो ज्ञेयो, विभ्रमो भ्रूसमुद्भवः।।
संलापो मिथो भाषा, उल्लापः काकुवर्णनम्।

२. वही, पत्र-६२--वद्धमानयं ति - शरावं, पुरुषारूढः पुरुष इत्यन्ये स्वस्तिक-पंचकमित्यन्ये प्रासादविशेषः इत्यन्ये।

३. (क) अर्धमागधी कोष, भाग ४, पृष्ठ ३४३
(ख) ज्ञातावृत्ति, पत्र-६४ वर्धमानकाः - स्कन्धारोपितपुरुषाः।

४. ज्ञातावृत्ति, पत्र-६५--जइयव्वमित्यादि, प्राप्तेषु संयमयोगेषु यत्नः कार्यः।

५. वही-घटितव्यं-अप्राप्तप्राप्तये घटना कार्या, पराक्रमितव्यं च पराक्रमः कार्यः पुरुषत्वाभिमानः सिद्धफलः कर्तव्यः।

६. स्थानांग वृत्तिपत्र ४१८ शक्तिक्षयेऽपि तत्पालने-पराक्रमः-उत्साहातिरेको विधेय इति।

७. दसवेआलियं ४/ ८

८. ज्ञातावृत्ति, पत्र-६६--त्वग्वर्तितव्यं - शयनीयं, सामायिकाद्युच्चारणापूर्वकं शरीर-प्रमार्जनां विधाय संस्तारकोत्तरपट्टयोर्बाहूपधानेन वामपार्श्वत इत्यादिना न्यायेन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं, किन्तु भेद की विवक्षा करने पर इनके स्वतन्त्र वाच्यार्थ हैं, जैसे--प्राण-द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय प्राणी।

भूत-तरुगण। जीव-पंचेन्द्रिय। सत्त्व-शेष सब जन्तु।[1]

सूत्र १५४

१२०. कारण और व्याकरण (कारणाइं वागरणाइं)

कारण--युक्ति या हेतु का कथन करना।

व्याकरण--दूसरे के द्वारा प्रश्न उपस्थित करने पर उत्तर देना।[2]

१२१. प्रस्तुत सूत्र (सूत्र १५४) में मेघमुनि की सप्रेक्षा बतलाई गई है कि 'मैं प्रभात होते ही श्रमण भगवान महावीर को पूछकर पुनः घर चला जाऊं।' यह सोच वे आर्त्तध्यान के वशीभूत हो गये। वह रात उनके लिए नरक सदृश हो गयी।[3]

इसका मूल दशवैकालिक में उपलब्ध होता है। संयम में रत महर्षियों के लिए मुनि-पर्याय देवलोक के समान सुखद होता है और संयम में रत नहीं होते उनके लिए वही (मुनि-पर्याय) महानरक के समान दुःखद होता है।[4]

मुनि मेघ भी वर्तमान में इसी स्थिति का अनुभव कर रहे थे।

सूत्र १५६

१२२. सौम्य (सोम)

सौम्य का अर्थ है--अरौद्र आकृति वाला अथवा निरोग।[5]

सूत्र १५७

१२३. छोटे शिशुओं .... कार्य नियोजक (लोट्टएहि ......पट्ठवए)

लोट्टय--यह देशी शब्द है। इसका अर्थ है कुमारावस्था वाला हाथी। कलभ--३० वर्ष का हाथी।

वृत्तिकार ने कलभ का अर्थ बालक अवस्था वाला हाथी किया है।[6] किन्तु अभिधान चिन्तामणि में हाथी के पांच वर्ष के बच्चे का नाम बाल किया गया है।

पागड्ढी--इसका संस्कृत रूप प्राकर्षी बनता है। इसका अर्थ है--आगे चलने वाला।

पट्ठवए--प्रस्थापक--विविध कार्यों में प्रवृत्ति कराने वाला।[7]

सूत्र १५८

१२४. काननों, वनों, वनषण्डों, वनराजियों (काणणेसु वणेसु वणसंडेसु वणराईसु)

कानन--स्त्रीवर्ग अथवा पुरुषवर्ग में से किसी एक पक्ष के लिए उपभोग्य वन प्रदेश। अथवा जिस वन प्रदेश से आगे पर्वत या अटवी हो, अथवा जहां जीर्ण वृक्ष समूह हो।[8]

वन--एक जातीय वृक्षावलि से शोभित प्रदेश।[9]

वनषण्ड--अनेक जातीय वृक्षावलि से शोभित प्रदेश।[10]

वनराजि--एक जातीय और अनेक जातीय वृक्षावलियों वाला प्रदेश।[11]

सूत्र १५९

१२५. ज्येष्ठ मास में (जेट्ठामूलेमासे)

इस मास के मूल में ज्येष्ठा नक्षत्र रहता है अतः ज्येष्ठा नक्षत्र के आधार पर इस मास का नाम ज्येष्ठा मूल होता है।[12]

सूत्र १६०

१२६. शुष्क उद्विग्न (तसिए उव्विग्गे)

तसिए देशी शब्द है। वृत्तिकार के अनुसार यह उस स्थिति का द्योतक है, जहां प्राणी का आनन्द-रस सर्वथा सूख जाता है।[13]

भय की अवस्था में होठ और कंठ सूख जाते हैं। इसीलिए 'तसिए' का 'सूखा' अर्थ प्रासंगिक है।

उद्विग्न का भावार्थ है 'इस अनर्थ से कैसे छुटकारा होगा' इस प्रकार के अध्यवसाय वाला।[14]

सूत्र १६१

१२७. तत्काल क्रोध से तमतमा उठा .... और क्रोध से प्रज्ज्वलित होकर (आसुरत्ते..........मिसिमिसेमाणे)

ये क्रोध की उत्पत्ति और अभिव्यक्ति की क्रमभावी अवस्थाएं हैं।

१. आसुरत्त--क्रोध से तमतमाना, क्रोध से लाल हो जाना। वृत्तिकार के अनुसार आकृति या शरीर में क्रोध के चिह्न उभर आना।

२. रुष्ट--अन्तःकरण में क्रोध का उत्पन्न होना। मुद्रा और भाव का गहरा सम्बन्ध है। मन पर जैसे भाव उभरते हैं वैसी ही मुद्रा का निर्माण हो जाता है अथवा जैसी मुद्रा बनती है उसी के अनुरूप भाव उतर आते हैं। आसुरत्त को मुद्रा का सूचक और रुष्ट को भाव का सूचक मानने पर उक्त तथ्य की संगति हो जाती है।

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-६७--
प्राणा द्वित्रिचतुः प्रोक्ताः, भूतास्तु तरवः स्मृताः।
जीवाः पंचेन्द्रिया ज्ञेयाः, शेषाः सत्त्वा उदीरिताः।।

२. वही--कारणानि उपपत्तिमात्राणि, व्याकरणानि-परेण प्रश्ने कृते उत्तराणि।

३. नायाधम्मकहाओ १/१५४--निरयपडिरूवियं चणतं रयणिं खवेइ

४. दसवेआलियं चूलिका १/१०

५. ज्ञातावृत्ति, पत्र-७१--सौम्यः अरौद्राकारो नीरोगो वा।

६. वही, पत्र-७२--लोट्टकाः-कुमारकावस्थाः, कलभाः--बालकावस्थाः।

७. वही--प्राकर्षी--प्राकर्षको अग्रगामी, प्रस्थापको--विविधकार्येषु प्रवर्तको।

८. वही--काननेषु च-स्त्री पक्षस्य पुरुषपक्षस्य चैकतरस्य भोग्येषु वनविशेषेषु, अथवा-यत्परतः पर्वतोऽटवी वा भवति तानि काननानि जीर्णवृक्षाणि वा।

९. वही--वनेषु च-एकजातीयवृक्षेषु।

१०. वही--वनखण्डेसु च-अनेकजातीयवृक्षेषु।

११. वही--वनराजीषु च-एकानेकजातीयवृक्षाणां, पंक्तिषु।

१२. वही--ज्येष्ठा मूलमासेत्ति ज्येष्ठमासे।

१३. वही पत्र ७३--'तसिए' त्ति शुष्क आनन्दरसशोषात्।

१४. वही--कथमितौ अनर्थान्मोक्ष्येऽहमित्यध्यवसायवान्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. कुपित--क्रोध का बढ़ना।

४. चंडिक्किए--रौद्र रूप धारण करने वाला।

५. मिसिमिसेमाणे--क्रोध से जलता हुआ।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि जैसे-जैसे क्रोध की वृत्ति उग्र रूप धारण करती है वैसे-वैसे मुद्रा भी प्रखर हो जाती है इनको एकार्थक भी माना गया है। कोप का प्रकर्ष दिखाने के लिए अथवा नानादेशीय शिष्यों के अनुग्रह के लिए भिन्न-भिन्न शब्दों का प्रयोग किया गया है।[1]

सूत्र १६२

१२८. उज्ज्वल (उज्जला)

यहां वेदना की प्रखरता बताने के लिये उज्ज्वल शब्द का प्रयोग हुआ है। इस विषय में वृत्तिकार ने लिखा है--यह वेदना उज्ज्वल है अर्थात् दु:ख स्वरूप ही है। उसमें सुख का स्पर्श भी नहीं है।[2]

इसका भावार्थ है--एकान्त वेदना। इसका व्यौत्पत्तिक अर्थ हो सकता है--प्रबलता से शरीर और मन को जलाने वाली वेदना।

सूत्र १७०

१२९. लेश्या......परिणाम शुभ था। (लेस्साहिं......परिणामेणं)

लेस्सा--तेजस् शरीर के साथ काम करने वाली चेतना।

अज्झवसाणेणं--कर्म शरीर के साथ काम करने वाली चेतना।

वृत्तिकार के अनुसार अध्यवसान का अर्थ है मानसिक परिणति।[3] लेकिन यह विमर्शनीय है क्योंकि अध्यवसाय उन प्राणियों के भी होता है, जिनके मन नहीं होता।

परिणाम का अर्थ है--जीव परिणति।[4]

लेश्या, अध्यवसाय और परिणाम--ये तीनों शुभ-अशुभ दोनों प्रकार के होते हैं। इनकी अशुभ परिणति आश्रव की और शुभ परिणति निर्जरा की निमित्त है।

अतीन्द्रिय चेतना के जागरण के लिए इन तीनों की प्रशस्तता अनिवार्य है।

सूत्र १७५

१३०. प्रथम पावस में महावृष्टि होने पर (पढम पाउसंसि महावुट्ठिकायंसि)

पावस का अर्थ है आषाढ़ और श्रावण मास, अत: प्रथम पावस का अर्थ है--आषाढ़ मास।[5]

विमर्श--प्रस्तुत प्रसंग में सूत्र १७५ में पढमपाउसंसि महावुट्ठिकायंसि का उल्लेख है। तथा सूत्र १७७ में मज्झिमए वरिसारत्तंसि और सूत्र १७८ में चरिमे परिसारत्तंसि प्रयोग हुआ है।

वृत्ति के अनुसार प्रावृट् और वर्षारात्र इनको स्वतन्त्र दो ऋतुओं के रूप में स्वीकार किया गया है। जैसे--

१. प्रावृट्--आषाढ़, श्रावण मास

२. वर्षारात्र--भाद्रपद, आश्विन मास

३. शरद--कार्तिक, मृगसर मास

४. हेमन्त--पौष, माघ मास

५. बसन्त--फाल्गुन, चैत्रमास

६. ग्रीष्म--वैशाख, ज्येष्ठ मास।[6]

अमर कोष में ऋतुएं छ: मानी गई है। पर वहां प्रावृट् का पृथक् उल्लेख नहीं है। शिशिर ऋतु अलग मानी गई है। उनका क्रम इस प्रकार है--

१. मार्गशीर्षपोषौ हिम:

२. माघफाल्गुनौ शिशिर:

३. चैत्रवैशाखौ वसन्त:

४. ज्येष्ठाषाढौ ग्रीष्म:

५. श्रावण भाद्रपदौ वर्षा

६. आश्विनकार्तिकौ शरत्।

स्मृति साहित्य में तीन ऋतुओं का वर्णन है--

१. कार्तिक, मृगसर, पौष और माघ--शीत

२. फाल्गुन चैत्र वैशाख और ज्येष्ठ--ग्रीष्म

३. आषाढ़ श्रावण भाद्रपद और आश्विन--वर्षा ऋतु।

दो ऋतुओं की मान्यता भी रही है। कार्तिक से लेकर छ: महीने तक शीत और वैशाख से लेकर छ: महीने तक ग्रीष्म।

संस्कृत साहित्य में जहां ऋतुओं का वर्णन है, वहां प्रावृट् को पृथक ऋतु नहीं माना गया है। उसके अभिमत से प्रावृट् का अर्थ है पहली बरसात का समय, उसका अनुबन्ध वर्षा ऋतु से ही है। अत: वह स्वतन्त्र ऋतु नहीं है।

मात्र सुश्रुत (अध्याय ६) में इन छहों ऋतुओं का उल्लेख है। जैसे--

भाद्रपद-आश्विन	- वर्षा
कार्तिक-मृगसर	- शरद
पौष-माघ	- हेमन्त
फाल्गुन-चैत्र	- वसन्त
वैशाख-ज्येष्ठ	- ग्रीष्म
आषाढ़-श्रावण	- प्रावृट्।

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-७३--आसुरुत्ते'त्ति-स्फुरितकोपलिंग:, रुष्ट:-उदितक्रोध:, कुपित:-प्रवृद्धकोपोदय:, चाण्डिक्यित:-संजात चाण्डिक्य:, प्रकटितरौदरूप इत्यर्थ:, 'मिसिमिसीमाणे':त्ति-क्रोधाग्निना देदीप्यमान इव, एकार्थिका वैते शब्दा: कोपप्रकर्षप्रतिपादनार्थं नाना-देशजविनेयानुग्रहार्थं वा।

२. वही, पत्र-७४--उज्ज्वला विपक्ष-लेशेनापि अकलंकिता।

३. वही--अध्यवसानं मानसी परिणति:।

४. वही--परिणामो--जीवपरिणति:।

५. निशीथ चूर्णि, भाग २, पृ. १२१-पढमपाउसो-पाउसो आसाढ़ो सावणो य। आसाढ़ो पढमपाउसो।

६. ज्ञातावृत्ति, पत्र-७२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र १७८

१३१. बिल धर्म से (बिल में रहने वाले कीड़े-मकोड़ों की भांति) (बिलधम्मेणं)

जैन आगम और आगमेतर साहित्य में ग्राम-धर्म, नगर-धर्म आदि दस धर्मों का वर्णन है। पर कहीं बिल धर्म का प्रयोग उपलब्ध नहीं होता। प्रस्तुत सूत्र में यह नवीन प्रयोग देखने को मिलता है। धर्म का अर्थ है व्यवस्था। बिल धर्म अर्थात बिल में रहने वाले कीड़े-मकोड़ों की भांति।[1] वन में भयंकर आग लगी। घास पात रहित छोटे से भूभाग में परस्पर विरोधी धर्म वाले जीव-जन्तु किसी दूसरे प्राणी को बाधा पहुंचाये बिना सह-अस्तित्व पूर्वक वहां रहे। छोटे-छोटे जीव जन्तुओं में यह वृत्ति निसर्ग-सिद्ध है। सोवियत संघ के प्रमुख लेखक श्री कुदेरीव ने अपने साहित्य में नये जीवन मूल्य की स्थापना की है, वह है--स्प्रिच्युअल वेल्युज। इसको परिभाषित करते हुए वे बताते हैं--स्प्रिच्युअल वेल्युज का अर्थ है--परस्पर प्रेम, पड़ौसियों से प्रेम, अपने लिए ही नहीं, दूसरों के लिए जीने की ललक।[2]

यह वृत्ति संकट के समय छोटे से छोटे प्राणी में देखने को मिलती है।

सूत्र १८१

१३२. (सूत्र १८१)

प्रस्तुत सूत्र में भगवान मेघ को बता रहे है--तुमने हाथी के भव में खरगोश की अनुकम्पा से प्रेरित होकर अपने पांव को धरती पर नहीं टिकाया, उसे अधर में रखा।

इस प्रकरण में आगमकार ने चार पदों का प्रयोग किया है--प्राणानुकम्पा, भूतानुकम्पा, जीवानुकम्पा और सत्त्वानुकम्पा। एक खरगोश के लिए प्राण, भूत, जीव, सत्त्व--इन चार पदों का प्रयोग क्यों?

इसका समाधान यह है--यह एक समुच्चय पाठ है जो अहिंसा के समग्र-सिद्धान्त की अभिव्यक्ति कर रहा है। इसलिए इस पाठ में सब जीवों का समुच्चय किया गया है। बहुवचन भी इसी अपेक्षा से है।

सूत्र १८४

१३३. (सूत्र १८४)

प्रस्तुत सूत्र में अग्नि प्रशमन में निष्ठित, उपरत, उपशान्त और विध्यात इन चार शब्दों का प्रयोग हुआ है। इस प्रसंग में इनका तात्पर्यार्थ इस प्रकार है--

निष्ठित--कार्य सम्पन्न होना।

उपरत--ईंधन का अभाव।

उपशान्त--ज्वालाओं का उपशमन।

विध्यात--अंगार, चिनगारी आदि सूक्ष्म अग्निकण का भी अभाव।[3]

सूत्र १८९

१३४. उत्थान....... पराक्रम (उट्ठाण-बल............ परक्कम)

उत्थान आदि शक्ति के परिचायक शब्द हैं। फिर भी अवस्था कृत अन्तर है, जैसे--

उत्थान--चेष्टा या प्रयत्न

बल--शारीरिक शक्ति

वीर्य--आत्म शक्ति

पुरुषकार--अभिमान गर्भित प्रयत्न

पराक्रम--फल सिद्धि के लिए निर्णयपूर्वक किया जाने वाला प्रयत्न।[4]

स्थानांग वृत्ति में पुरुषकार और पराक्रम का अर्थ भिन्न प्रकार से मिलता है।

पुरुषकार--अभिमान विशेष, पुरुष का कर्त्तव्य

पराक्रम--अपने विषय की सिद्धि में निष्पन्न पुरुषकार, बल और वीर्य का व्यापार।[5]

सूत्र १८९

१३५. (सूत्र १८९)

प्रस्तुत सूत्र में भगवान महावीर मेघकुमार को मुनि जीवन में स्थिर करने के लिए पूर्वजन्म की घटना बतला रहे हैं। भगवान महावीर ने कहा--मेघ! तू आज मनुष्य है, सम्राट श्रेणिक का पुत्र है, वैराग्यपूर्वक मुनि दीक्षा स्वीकार की है, फिर भी थोड़े से कष्ट में तू अधीर हो गया। उस समय को याद कर, जब तू तिर्यंच योनि में था, हाथी था, सम्यक्त्व रत्न का लाभ तुझे प्राप्त नहीं था। उस अवस्था में भी तुमने अनुकम्पा पूर्वक पैर को ऊपर रखा।

इस वक्तव्य में 'अपडिलद्धसमत्तरयणलंभेणं' यह पाठ है, उस विषय में एक विवाद चल रहा है। उस विवाद का आधार अपडिलद्ध शब्द हैं। अभयदेव ने अपडिलद्ध का अर्थ असंजात किया है।[6] इसका अर्थ स्पष्ट है कि उस समय हाथी को सम्यक्त्व रत्न का लाभ नहीं हुआ था।

दूसरा पक्ष इसका अर्थ करता है--जो पहले प्राप्त नहीं था उस सम्यक्त्व रत्न का लाभ हो गया। ऐसा अर्थ तब किया जा सकता था जब लद्ध अपडिलद्ध सम्यक्त्व रत्न लाभ यह पद होता। मूल पाठ के समस्त पद का विग्रह इस प्रकार है--

सम्यक्त्वमेव रत्नं इति सम्यक्त्व-रत्नं तस्यलाभः इति सम्यक्त्वरत्नलाभः न प्रतिलब्धः सम्यक्त्वरत्नलाभः तेन।

दूसरा विमर्श बिन्दु यह है--भगवान महावीर मेघकुमार को यह नहीं बता रहे है कि उस समय तुम्हें अप्राप्त सम्यक्त्व रत्न का लाभ हुआ

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-७५-७६--बिलधर्मेण-बिलाचारेण यथैकत्र बिले यावन्तो मर्क्कोटकादयः संमान्ति तावन्तस्तिष्ठन्ति एवं तेऽपीति।

२. कादम्बिनी, जून १९८३

३. ज्ञातावृत्ति, पत्र -७६--निट्ठिए त्ति-निष्ठां गतः, कृतस्वकार्यो जात इत्यर्थः, उपरतोऽना-लिंगितेन्धनाद् व्यावृत्तः, उपशान्तो-ज्वालोपशमात्। विध्यातोऽगांर-मुर्मुराद्यभावात्।

४. वही, पत्र--उत्थानं-चेष्टाविशेषः, बलं-शारीरं, वीर्यं-जीवप्रभवं, पुरुषकारः-अभिमान-विशेषः, पराक्रम--स एव साधितफल इति।

५. स्थानांग वृत्ति, पत्र-२८९--पुरुषकारः अभिमान विशेषः पराक्रमः स एव निष्पादित-स्वविषयोऽथवा, पुरुषकारः पुरुषकर्त्तव्यं, पराक्रमो-बलवीर्ययोर्व्यापरणम्।

६. ज्ञातावृत्ति, पत्र-७७--अप्रतिलब्ध-असंजातः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

था। भगवान यह बता रहे है--जिस समय तुम्हें सम्यक्त्व रत्न का लाभ नहीं हुआ है, उस समय में भी प्राणी की अनुकंपा कर पैर नीचे नहीं रखा, प्रचुर कष्ट सहा। इस समय तू विपुल कुल में उत्पन्न मनुष्य है फिर भी स्वल्प से कष्ट में विचलित हो गया।

प्राणानुकम्पा का लाभ इससे पूर्ववर्ती सूत्र में बतलाया गया है।

सूत्र १९०

१३६. जाति स्मृति (जाईसरणे)

जाति स्मृति ज्ञान का अर्थ है--अपने पूर्वजन्मों का ज्ञान। यहां जाति शब्द का अर्थ जन्म है। यह मतिज्ञान का एक प्रकार है। उसकी उत्पत्ति विशेष प्रकार की चैतसिक स्थिति और ऊह-अपोह के द्वारा होती है। चैतसिक परिस्थिति के निर्माण में १. शुभ परिणाम २. शुभ अध्यवसाय ३. विशुद्ध्यमान लेश्या ४. तदावरणीय कर्म का क्षयोपशम, इन चार घटकों का योग आवश्यक है।

सर्वप्रथम किसी एक दृश्य, घटना, व्यक्ति या वस्तु को देखकर दर्शक के मन में ईहा उत्पन्न होती है। उसका मन आन्दोलित हो उठता है कि यह क्या है? क्यों है? कैसे है? मेरा इससे क्या संबंध है? आदि-आदि तर्क उसके मन में उत्पन्न होते हैं और वह एक-एक कर सबको समाहित करता हुआ और गहराई में जाता है। अब वह अपोह-निर्णय की स्थिति पर पहुंचता है। फिर वह मार्गण और गवेषणा करता है--उसी विषय की अन्तिम गहराई तक पहुंचने का प्रयत्न करता है। उसके तर्क प्रबल होते जाते हैं और जब वह उस वस्तु में अत्यन्त एकाग्र बन जाता है तब उसे पूर्वजन्म का ज्ञान प्राप्त होता है और उस जन्म की सारी घटना एक-एक कर सामने आने लगती है। जैन दर्शन में इसे जाति-स्मृति ज्ञान कहा जाता है।

इस ज्ञान के बल से व्यक्ति अपने नौ समनस्क पूर्वजन्मों को जान सकता है।

मैं कौन हूं? कहां से आया हूं? इत्यादि सूत्रों के मनन और निदिध्यासन से भी जातिस्मरण की प्राप्ति होती है। ध्यान की गहराई में जब व्यक्ति मनन पूर्वक पीछे लौटता है तो स्वयं के पूर्वजन्म को देख लेता है।

विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य आचारांग भाष्यम् पृ. १९ से २३

सूत्र १९१

१३७. (सूत्र १९१)

सूत्र १५४ के अनुसार मेघमुनि की मानसिक चेतना में मुनित्व के प्रति उदासीनता उभर आई। वे मुनित्व को त्याग, घर जाने के लिए उद्यत हो गए। श्रमण भगवान महावीर से प्रतिबोध पाकर पुनः संयम के प्रति आस्था जागी।

प्रस्तुत सूत्र में वे भगवान से निवेदन करते हैं--भन्ते! मुझे दूसरी बार प्रव्रजित करें, मुण्डित करें। मेघ मुनि ने भगवान से पुनः दीक्षा की याचना की। सूत्र १९२ में भगवान उन्हें पुनः प्रव्रजित और मुण्डित करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि मानसिक दृष्टि से भी विचलित हो जाने पर नई दीक्षा की परम्परा थी।

आगमिक दृष्टि से एक जीवन में सामायिक चारित्र उत्कृष्ट ९०० बार और छेदोपस्थापनीय चारित्र १२० बार आ सकता है, यह संयम का परित्याग करने का निश्चय कर लेने की स्थिति में होता है। श्रामण्य का संबंध मूलतः चैतसिक धारा के साथ ही है। उसका अधिरोहण और अवरोहण की प्रत्यक्ष अनुभूति प्रत्यक्ष ज्ञानी ही कर सकते हैं अथवा व्यक्ति स्वयं कर सकता है। मेघ की अतीन्द्रिय क्षमता जाग चुकी थी और अनुत्तर ज्ञानी श्रमण महावीर की सन्निधि उसे प्राप्त थी। अतः उसके चैतन्य की भूमिका स्पष्ट थी। यही कारण है स्वयं मेघ ने पुनः दीक्षा प्रदान करने की याचना की और भगवान ने उसे दुबारा प्रव्रजित किया।

सूत्र १९५

१३८. तथारूप (तहारूवाणं)

'तथारूप' यह स्थविरों का विशेषण है। तथारूप का अर्थ है श्रमणचर्या के अनुरूप वेशवाला।

१३९. सामायिक आदि (सामाइयमाइयाइं)

ग्यारह अंगों में पहला अंग है आचारांग। किन्तु आगम ग्रन्थों में कहीं भी 'आयारमाइयाइं एक्कारस अंगाइं' का उल्लेख न कर 'सामाइयमाइयाइं एक्कारसअंगाइं' का उल्लेख किया गया है। इससे अनुमान लगाया जाता है कि 'सामायिक' आचारांग का ही कोई दूसरा नाम है।

आगम अध्येताओं के दो वर्ग रहे हैं--एक ग्यारह अंगों के धारक और दूसरे द्वादशांगी के धारक।

ग्यारह अंगों के अध्ययन का क्रम संभवतः अल्पबुद्धि या तपस्वियों के लिए रहा होगा। द्वादशांगी का अध्ययन विशिष्ट मेधा सम्पन्न मुनि करते थे।

सूत्र १९७

१४०. प्रतिमा (पडिमं)

विशेष विवरण हेतु द्रष्टव्य समवाओ १२/१ का टिप्पण (पृष्ठ ६१)

सूत्र १९९

१४१. गुणरत्नसम्वत्सर (गुणरयणसंवच्छरं)

यह तप का एक विशिष्ट अनुष्ठान है। वृत्तिकार ने इसकी व्याख्या दो प्रकार से की है।

१. गुणरत्नसंवत्सर--गुण का अर्थ है निर्जरा विशेष, जिस सम्वत्सर में गुणों की रचना हो, अथवा जिस तप में गुण रूप रत्न उपलब्ध हों और आराधना में एक सम्वत्सर का समय लगता है वह गुणरत्नसंवत्सर कहलाता है।

गुणरत्नसंवत्सर का तपः काल तेरह मास, सतरह दिन है। पारणक काल तिहोत्तर दिन है। सूत्र २०० में गुणरत्नसंवत्सर तप की विस्तार से प्रक्रिया बतायी गई है। इसमें कुल १६ मास का समय लगता है। पहले मास में निरन्तर एक दिन उपवास और एक दिन पारणक का क्रम चलता है।

दूसरे मास में निरन्तर दो-दो दिन का उपवास, तीसरे मास में निरन्तर तीन-तीन दिन का उपवास होता है। इस क्रम में सोलहवें मास में निरन्तर सोलह दिन का उपवास होता है। पूरे साधनाकाल में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तपायोग के साथ-साथ आतापना योग, ध्यान योग और आसन प्रयोग का व्यवस्थित क्रम चलता है। दिन में आतापना भूमि में उकडू आसन में बैठ, सूरज का आतप लिया जाता है और रात्रि के समय अपावृत हो, वीरासन में बैठ ध्यान किया जाता है।[१]

प्रस्तुत सूत्र में मुख्यतः तीन आसनों की चर्चा है--

१. ठाणं--कायोत्सर्ग।

२. उक्कुडुए--उत्कुटुक--उकडू आसन

३. वीरासणे--वीरासन

१. उत्कुटुक आसन--इस आसन में पुत प्रदेश भूमि से स्पृष्ट नहीं होता।[२]

२. वीरासन--धरती पर पांव टिकाकर सिंहासन पर बैठे व्यक्ति के नीचे से सिंहासन खिसका दिया जाए और वह व्यक्ति उसी अवस्था में बैठा रहे--इस मुद्रा का नाम वीरासन है।[३]

विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य--उत्तराध्ययन: एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ १४९-१५०

सूत्र २००

१४२. आतापन लेता हुआ (आयावेमाणे)

आतापना का अर्थ है--सूर्य का आताप लेना।

औपपातिक के वृत्तिकार ने आतापना के आसन भेद से अनेक भेद प्रतिपादित किए हैं।[४]

आतापना के तीन प्रकार हैं--

१. निपन्न--सोकर ली जाने वाली--उत्कृष्ट

२. अनिपन्न--बैठकर ली जाने वाली--मध्यम

३. ऊर्ध्वस्थित--खड़े होकर ली जाने वाली--जघन्य

ठाणं में संक्षिप्त विपुल तेजोलेश्या की उपलब्धि के तीन हेतु बताए गए हैं उनमें पहला हेतु है--आतापन।[५]

सूत्र २०१

१४३. विचित्र तपःकर्म के द्वारा (विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं)

तप से शक्ति जागरण और चैतन्य केन्द्रों का शोधन होता है। अमुक प्रकार के तप से अमुक प्रकार की लब्धियां उत्पन्न होती हैं अथवा अमुक चैतन्य केन्द्रों का शोधन होता है। इस दृष्टि से तपोयोग की अनेक प्रक्रियाएं हैं। विचित्र तपःकर्म उसी ओर संकेत करता है।

सूत्र २०२

१४४. धमनियों का जाल (धमणिसंतए)

इसका भावार्थ है अत्यन्त कृश। जिसका शरीर केवल धमनियों का जाल मात्र रह गया हो।[६]

विशेष विवरण हेतु द्रष्टव्य उत्तरज्झयणाणि २/३, पृ. ५२ का टिप्पण।

१४५. राख के ढेर से ढकी हुई आग की भांति तप, तेज और तपस्तेज की श्री से अतीव अतीव उपशोभित (हुयासणे इव भासरासिपरिच्छन्ने तवेणं तेएणं...उवसोभेमाणे)

इसका अभिप्राय यह है कि जैसे राख से आवृत अग्नि बाहर से तेज रहित प्रतीत होती है फिर भी अन्तर में प्रज्ज्वलित रहती है। वैसे ही मेघ अनगार मांस आदि के अपचय के कारण बाहर से निस्तेज से हैं पर अन्तर्वृत्ति से शुभध्यान के तप से प्रज्ज्वलित हैं।[७]

सूत्र २०४

१४६. सुहस्ति (सुहत्थी)

अन्यत्र तीर्थंकरों के लिए 'पुरिसवरगंधहत्थी' विशेषण प्रयुक्त हुआ है। प्रस्तुत सूत्र में उसी अर्थ में 'सुहस्ति' शब्द का प्रयोग हुआ है। भगवती एवं औपपातिक में भी इसका प्रयोग हुआ है।[८]

सूत्र २०६

१४७. पर्यंकासन में बैठ (संपलियंकनिसण्णे)

द्रष्टव्य भगवई खण्ड १ पृ. २४२

१४८. (सूत्र २०६)

श्रमण भगवान महावीर 'मेघ' को स्वयं प्रव्रजित करते हैं। मेघकुमार ने भगवान महावीर के पास दो बार प्रव्रज्या स्वीकार की। वहां प्राणातिपात आदि के प्रत्याख्यान का उल्लेख नहीं है। इन अठारह पापों के प्रत्याख्यान का उल्लेख प्रस्तुत सूत्र (सूत्र २०६) में ही है।

सूत्र २०८

१४९. संलेखना (संलेहणा)

संलेखणा का सामान्य अर्थ है अनशन की पूर्व तैयारी। जैन आगम साहित्य में प्रायः अनशन के पूर्व संलेखना की आराधना का निर्देश है। इसका पारिभाषिक अर्थ इस प्रकार है--

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-७९--गुणानां - निर्जराविशेषाणां रचनाकरणम्, संवत्सरेण-सत्रिभागवर्षेण यस्मिंस्तत्तपो गुणरचनसंवत्सरं गुणा एव वा रत्नानि यत्र स तथा गुणरत्नः संवत्सरो यत्र तपसि तद् गुणरत्नसंवत्सरमिति, इह च त्रयोदशमासाः सप्तदशदिनाधिकास्तपःकालः त्रिसप्ततिश्च दिनानि पारणककाल इति।

२. वही--स्थानं-आसनमुत्कुटुकं आसनेषु पुत्तालगनरूपं यस्य स तथा।

३. वही--वीरासणेणं ति-सिंहासनोपविष्टस्य भुवि न्यस्तपादस्यापनीतसिंहासनस्येव यदवस्थानं तद् वीरासनम्।

४. औपपातिक सूत्र १९ वृत्तिपत्र ७५, ७६

५. ठाणं ३/३८६

६. उत्तराध्ययन, बृहद् वृत्ति पत्र ८४--धमनयः-शिरास्ताभिः सन्ततो-व्याप्तो धमनिसंततः।

७. ज्ञातावृत्ति, पत्र-८२--हुताशन इव भस्मराशिप्रतिच्छन्नः, तपेणं ति-- तपोलक्षणेन तेजसा, अयमभिप्रायो--यथा भस्मच्छन्नोऽग्निबहिर्वृत्त्या तेजोरहितोऽन्तर्वृत्त्या तु ज्वलति एवं मेघोऽनगारोऽपि बहिर्वृत्त्याऽपचित-मांसादित्वान्निस्तेजा अन्तर्वृत्त्या तु शुभध्यानतपसा ज्वलतीति।

८. (क) अंगसुत्ताणि II भगवई, १५/१ (ख) उवंगसुत्ताणि, ओवाइयं १/७३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीर और कषायों का भलीभांति लेखन करना, कृश करना संलेखना है अर्थात शरीर और कषाय को पुष्ट करने वाले कारणों को उत्तरोत्तर क्षीण करते हुए काय और कषाय को सम्यक् प्रकार से कृश करने का नाम संलेखना है।

संलेखना दो प्रकार की होती है--आभ्यन्तर और बाह्य। कषायों की कृशता आभ्यन्तर संलेखना है। शरीर की कृशता बाह्य संलेखना है।

इसे द्रव्य संलेखना भी कहा जाता है। क्रोधादि कषायरहित अनन्त ज्ञानादि गुण रूप परमात्म पदार्थ में स्थित होकर रागादि विकल्पों को कृश करना भाव संलेखना है। उस भाव संलेखना के लिए कायक्लेश रूप अनुष्ठान करना अर्थात् भोजन आदि का त्याग कर शरीर को कृश करना द्रव्य संलेखना है।

१५०. अनशन के द्वारा (अणसणाए)

अनशन का शाब्दिक अर्थ है भोजन परिहार। अनशन शब्द का प्रयोग अल्पकालिक और यावज्जीवन दोनों प्रकार के आहार-परिहार के लिए होता है। यहां इसका प्रयोग यावज्जीवन भोजन परिहार के अर्थ में है।

अनशनपूर्वक मृत्यु को जैन परम्परा में उत्तम मरण या पंडितमरण माना गया है।

अनशन के तीन प्रकार हैं--

१. भक्त परिज्ञा--चतुर्विध आहार तथा बाह्य आभ्यन्तर उपधि का जो यावज्जीवन के लिए प्रत्याख्यान किया जाता है वह 'भक्तपरिज्ञा' कहलाता है।

२. इंगिनी मरण--इस अनशन को करने वाला निश्चित स्थान में ही रहता है उससे बाहर नहीं जाता।

३. प्रायोपगमन--इस अनशन को करने वाला कटे हुए वृक्ष की भांति स्थिर रहता है और शरीर की संभाल नहीं करता।[1]

विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य--आचारांगभाष्यम् पृ. ३८८-४०४

सूत्र २०९

१५१. परिनिर्वाण हेतुक कायोत्सर्ग (परिनेव्वाणवत्तियं काउस्सग्गं)

वृत्तिकार ने इसका अर्थ किया है--परिनिर्वाण (मृत्यु) के उपरान्त मृतक के शरीर का व्युत्सर्ग तथा उस उपलक्ष्य में किया जाने वाला कायोत्सर्ग।[2]

सूत्र २१२

१५२. आयुक्षय, स्थिति क्षय और भवक्षय के (आउक्खएणं ठिइक्खएणं भवक्खएणं)

आयुक्षय--आयुष्य कर्म के दलिकों का निर्जरण

स्थिति क्षय--आयुष्य कर्म की स्थिति का क्षय

भव क्षय--देवभव के हेतुभूत कर्म, गति आदि का निर्जरण।[3]

१५३. च्यवन कर (चयं चइत्ता)

'चय' का एक अर्थ शरीर भी है इसलिए उसका अर्थ--शरीर को त्यागकर भी हो सकता है।[4]

---

१. उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा-२२५

२. ज्ञातावृत्ति, पत्र-८३--परिनिव्वाणवत्तियं त्ति-परिनिर्वाणमुपरतिर्मरणमित्यर्थः, तत्प्रत्ययो निमित्तं यस्य स परिनिर्वाणप्रत्ययः मृतकपरिष्ठापना कायोत्सर्ग इत्यर्थः, तं कायोत्सर्गं कुर्वन्ति।

३. वही--आयुःक्षयेण-आयुर्दलिकनिर्जरणेन स्थितिक्षयेण-आयुकर्मणः स्थितिवेदनेन भवक्षयेण-देवभवनिबन्धनभूत कर्मणां गत्यादीनां निर्जरणेन।

४. वही--चयं शरीरं 'चइत्त' त्ति-त्यक्त्वा अथवा च्यवं-च्यवनं कृत्वा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

आत्मा अमूर्त है। शरीर मूर्त है। आत्मा चेतन है। शरीर अचेतन है, पुद्गल है। अज्ञान के कारण आत्मा व शरीर को एक मान लिया जाता है। वास्तव में ये दो हैं। शरीर आत्मा नहीं है। संसारी आत्मा का निवास स्थान है।

आत्मा स्वतंत्र है, पुद्गल भी स्वतंत्र है। दोनों का अपना-अपना मूल्य है। प्रस्तुत अध्ययन का प्रतिपाद्य है--भेद विज्ञान की दृष्टि का निर्माण करना। पदार्थ का जीवन जीएं पर पदार्थ को अपना न मानें। इस दृष्टि का निर्माण होने पर अनासक्त चेतना का विकास होता है।

पौद्गलिक शरीर और आत्मा कर्मों के संयोग से परस्पर सम्बद्ध है, एकीभूत है। वास्तव में भिन्न-भिन्न है।

प्रस्तुत अध्ययन का शीर्षक है--संघाटक। जिसका अर्थ है--एक बेड़ी में बंधना। इससे यही ध्वनित होता है। धन सार्थवाह और विजय तस्कर दोनों स्वतंत्र हैं किन्तु एक बेड़ी में बंधे हुए हैं इस अपेक्षा से एक हैं। दोनों एक 'खोडे' में बंधे होने के कारण एक दूसरे से निरपेक्ष होकर जीवन यापन नहीं कर सकते। वैसे ही कर्म युक्त आत्मा व शरीर एक-दूसरे से सापेक्ष हैं।

धन सार्थवाह यह जानता है कि विजय तस्कर मेरे प्रिय पुत्र देवदत्त का हत्यारा है। वह मेरा प्रत्यनीक है फिर भी एक बंधन में बंधने के कारण मैं उससे निरपेक्ष होकर जीवन यापन नहीं कर सकता। वह अपना मित्र जानकर उसे भोजन नहीं देता किन्तु दैनंदिन कार्य सम्पादन (देह चिन्ता) के लिए भोजन देता है। वैसे ही साधक भी शरीर को अपना नहीं मानता, किन्तु शरीर आत्मा की प्राप्ति में सहायक बनता है। इसलिए शरीर का संपोषण करता है।

पदार्थ अप्रतिबद्ध (अनासक्त) चित्तवृत्ति से पदार्थ का उपयोग करने वाला धन सार्थवाह की तरह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। पदार्थ प्रतिबद्ध (आसक्त) चित्तवृत्ति से पदार्थ का भोग करने वाला विजय तस्कर की तरह अनर्थ पैदा करता है।

प्रस्तुत अध्ययन से अनेक दृष्टियां उजागर होती हैं--

- पदार्थ सुख का निमित्त बन सकता है किन्तु सुख दे नहीं सकता।
- पदार्थ प्रतिबद्ध चेतना के विकास से समस्या का विस्तार होता है।
- अर्थ अनर्थ का मूल है।
- भद्रा की तरह यथार्थ का सम्यक् बोध न होने से दुःख होता है।
- विजय तस्कर की तरह अमानुषिक प्रवृत्ति करने वाला इहलोक और परलोक में सुखी नहीं हो सकता।

प्रस्तुत कथानक की भाषा शैली सहज और सरल है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीयं अज्झयणं : दूसरा अध्ययन

संघाडे : संघाटक

उक्खेव-पद

१. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं पढमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, बितियस्स णं भंते! नायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

२. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था--वण्णओ।।

३. तस्स णं रायगिहस्स नयरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए गुणसिलए नामं चेइए होत्था--वण्णओ।।

४. तस्स णं गुणसिलयस्स चेइयस्स अदूरसामंते, एत्थ णं महं एगं जिण्णुज्जाणे यावि होत्था--विणट्ठदेवउल-परिसडियतोरणघरे नाणाविहगुच्छ-गुम्म-लया-वल्लि-वच्छच्छाइए अणेग-वालसय-संकणिज्जे यावि होत्था।।

५. तस्स णं जिण्णुज्जाणस्स बहुमज्झदेसभाए, एत्थ णं महं एगे भग्गकूवे यावि होत्था।।

६. तस्स णं भग्गकूवस्स अदूरसामंते, एत्थ णं महं एगे मालुयाकच्छए यावि होत्था--किण्हे किण्होभासे जाव रम्मे महामेहनिउरंबभूए बहूहिं रुक्खेहि य गुच्छेहि य गुम्मेहि य लयाहि य वल्लीहि य तणेहि य कुसेहि य खण्णुएहि य संछण्णे पलिच्छण्णे अंतो झुसिरे बाहिं गंभीरे अणेग-वालसय-संकणिज्जे यावि होत्था।।

धणसत्थवाह-पदं

७. तत्थ णं रायगिहे नयरे धणे नामं सत्थवाहे--अड्ढे दित्ते वित्थिण्ण-विउलभवण-सयणासण-जाण-वाहणाइण्णे बहुदासीदास-गो-महिस-गवेलगप्पभूए बहुधण-बहुजायरूवरयए आओग-पओग-संपउत्ते विच्छड्डिय-विउल-भत्तपाणे।।

उत्क्षेप-पद

१. भन्ते! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने ज्ञाता के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है तो भन्ते ! ज्ञाता के द्वितीय अध्ययन का उन्होंने क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है ?

२. जम्बू! उस काल और उस समय राजगृह नाम का नगर था--वर्णक।

३. उस राजगृह नगर के बाहर ईशान-कोण में गुणशिलक नाम का चैत्य था--वर्णक।

४. उस गुणशिलक चैत्य के न अति दूर, न अति निकट एक बहुत बड़ा पुराना उद्यान था। उसका देवालय नष्ट हो चुका और तोरणगृह गिर गया था। वह नाना प्रकार के गुच्छों, गुल्मों, लताओं, वल्लियों और वृक्षों से आच्छादित तथा सैकड़ों वन्य जन्तुओं के कारण डरावना भी था।

५. उस पुराने उद्यान के बीचों बीच एक बहुत बड़ा भग्न कूप था।

६. उस भग्न--कूप के न अति दूर न अति निकट एक बहुत बड़ा मालुका-कक्ष[1]--लता-मण्डप था। वह कृष्ण, कृष्ण आभा वाला, यावत् रम्य और महामेघ-पटल जैसा था। वह बहुत सारे वृक्षों, गुच्छों, गुल्मों, लताओं, वल्लियों, घास, डाभ और ठूंठों से आवृत और चारों ओर से ढका हुआ था। वह भीतर से पोला, बाहर से गहरा और सैकड़ों वन्य जन्तुओं के कारण डरावना था।

धन सार्थवाह-पद

७. उस राजगृह नगर में धन नाम का सार्थवाह था। वह आढ्य और दीप्त था। उसके भवन, शयन और आसन विस्तीर्ण थे। वह विपुल यान और वाहन से आकीर्ण था। उसके अनेक दासी, दास, गाय, भैंस और भेड़ें थीं। वह प्रचुर धन और प्रचुर सोने चांदी वाला था। अर्थ के आयोग-प्रयोग (लेन-देन) में संप्रयुक्त और प्रचुर मात्रा में भक्त पान का वितरण करने वाला था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. तस्स णं धणस्स सत्थवाहस्स भद्दा नामं भारिया होत्था--सुकुमालपाणिपाया अहीणपडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरा लक्खण-वंजण-गुणोववेया माणुम्माण-प्पमाणपडिपुण्ण-सुजाय-सव्वंगसुंदरंगी ससिसोमागार-कंत-पियदंसणा सुरूवा करयल-परिमिय-तिवलिय-वलियमज्झा कुंडलुल्लिहियगंडलेहा कोमुइ-रयणियर-पडिपुण्ण-सोमवयणा सिंगारागार-चारुवेसा संगय-गय-हसिय-भणिय-विहिय-विलास-सललिय-संलाव-निउण-जुत्तोवयार-कुसला पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा वंझा अवियाउरी जाणुकोप्परमाया यावि होत्था।।

८. उस धन सार्थवाह के भद्रा नाम की भार्या थी। उसके हाथ-पांव सुकुमार थे। उसका शरीर-पांचों इन्द्रियों से अहीन, लक्षण और व्यञ्जन की विशेषता से युक्त, मान, उन्मान और प्रमाण से परिपूर्ण, सुजात और सर्वांगसुन्दर था। वह चन्द्रमा के समान सौम्य आकृतिवाली, कमनीय, प्रियदर्शना और सुरूपा थी। उसकी मुट्ठी भर कमर-तीन रेखाओं से युक्त और बलवान थी। उसके कपोलों पर खचित रेखाएं कुण्डलों से उल्लिखित हो रही थीं। उसका मुख शारद चन्द्र की भांति परिपूर्ण और सौम्य था। उसका सुन्दर वेष शृंगार घर जैसा लग रहा था। वह औचित्यपूर्ण चलने, हंसने, बोलने और चेष्टा करने में विलास और लालित्यपूर्ण संलाप में निपुण और समुचित उपचार में कुशल थी। वह द्रष्टा के चित्त को प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय, कमनीय और रमणीय थी। वह वन्ध्या, अप्रजननशीला और मात्र अपने घुटनों और कोहनियों की माता थी।

९. तस्स णं धणस्स सत्थवाहस्स पंथए नामं दासचेडे होत्था--सव्वंगसुंदरंगे मंसोवचिए बालकीलावणकुसले यावि होत्था।।

९. उस धन सार्थवाह के पन्थक नाम का दास पुत्र था। उसका शरीर सर्वांगसुन्दर और मांसल था। वह बच्चों को खिलाने में कुशल था।

१०. तए णं धणे सत्थवाहे रायगिहे नयरे बहूणं नगर-निगम-सेट्ठि-सत्थवाहाणं अट्ठारसण्ह य सेणिप्पसेणीणं बहूसु कज्जेसु य कुडुंबेसु य मंतेसु य जाव चक्खुभूए यावि होत्था। नियगस्स वि य णं कुडुंबस्स बहूसु कज्जेसु य जाव चक्खुभूए यावि होत्था।।

१०. राजगृह नगर में बहुत सारे नगर, निगम, श्रेष्ठी और सार्थवाहों के तथा अठारह श्रेणियों और प्रश्रेणियों के बहुत सारे कार्यों, कर्तव्यों और मंत्रणाओं में उसका मत पूछा जाता था यावत् वह चक्षु के समान था। अपने कुटुम्ब के भी बहुत सारे कार्यों में उसका मत पूछा जाता था यावत् वह चक्षु के समान था।

विजयतक्कर-पदं

विजय-तस्कर-पद

११. तत्थ णं रायगिहे नयरे विजए नामं तक्करे होत्था--पावचंडाल-रूवे भीमतररुद्दकम्मे आरुसिय-दित्त-रत्तनयणे खरफरुस-महल्ल-विगय-बीभच्छदाढिए असंपुडियउट्ठे उद्धुय-पइण्ण-लंबंतमुद्धए भमर-राहुवण्णे निरणुक्कोसे निरणुतावे दारुणे पइभए निसंसइए निरणुकंपे अहीव एगंतदिट्ठीए खुरेव एगंतधाराए गिद्धेव आमिसतल्लिच्छे अग्गिमिव सव्वभक्खी जलमिव सव्वग्गाही उक्कंचण-वंचण-माया-नियडि-कूड कवड-साइ-संपओग-बहुले चिरनगरविणट्ठ-दुट्ठसीलायारचरित्ते जूयप्पसंगी मज्जप्पसंगी भोज्जप्पसंगी मंसप्पसंगी दारुणे हिययदारए साहसिए संधिच्छेयए उवहिए विस्संभघाई आलीवग-तित्थभेय-लहुहत्थसंपउत्ते परस्स दव्वहरणम्मि निच्चं अणुबद्धे तिव्ववेरे रायगिहस्स नगरस्स बहूणि अइगमणाणि य निग्गमणाणि य बाराणि य अवबाराणि य छिंडीओ य खंडीओ य नगरनिद्धमणाणि य संवट्टणाणि य निव्वट्टणाणि य जूयखलयाणि य पाणागाराणि य वेसागाराणि य तक्करट्ठाणाणि य तक्करघराणि य सिंघाडगाणि य तिगाणि य चउक्काणि य चच्चराणि य नागघराणि य भूयघराणि य जक्खदेउलाणि य सभाणि य पवाणि य पणियसालाणि य सुन्नघराणि

११. उस राजगृह नगर में विजय नाम का एक चोर था। वह पापी चाण्डाल जैसा और भीमतर रुद्र कर्म करने वाला था। उसकी आंखें रोषपूर्ण, जलती हुई और लाल रहती थीं। दाढी कठोर, रूखी, लम्बी, विकृत और बीभत्स थी। होठ खुले रहते तथा लटकते और बिखरे हुए बाल हवा में उड़ते रहते थे। उसका रंग भौरे और राहु जैसा काला था। वह क्रूर कर्म करने में सकुचाता नहीं और करने पर उसे पछतावा भी नहीं होता था। वह दारुण, भय उत्पन्न करने वाला, निःशंक, अनुकम्पा शून्य, सांप की भांति (लक्ष्य पर) एकान्त (निश्चयपूर्ण) दृष्टि वाला[२] क्षुर की भांति एकान्त धार वाला[३] गीध की भांति मांस लोलुप, अग्नि की भांति सर्वभक्षी, जल की भांति सर्वग्राही और उत्कंचन, वंचना, माया, निकृति, कूट, कपट[४] और वक्रता का प्रचुर प्रयोग करने वाला[५] था। वह चिरकाल तक नगर में भूमिगत रहता था। उसका शील, आचार और चरित्र दुष्ट था।[६] वह द्यूत, मद्य, भोज्यपदार्थ और मांस में अति आसक्त रहता था। वह दारुण, हृदय-विदारक, बिना सोचे समझे काम करने वाला, सैंध लगाने वाला, प्रच्छन्न विहारी, विश्वासघाती, आग लगाने और जलाशयों को तोड़ने में हस्तलाघव का प्रयोक्ता, दूसरों का धन चुराने में नित्य अनुबद्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

य आभोएमाणे मग्गमाणे गवेसमाणे, बहुजणस्स छिद्देसु य विसमेसु य विहुरेसु य वसणेसु य अब्भुदएसु य उस्सवेसु य पसवेसु य तिहीसु य छणेसु य जण्णेसु य पव्वणीसु य मत्तपमत्तस्स य वक्खित्तस्स य वाउलस्स य सुहियस्स य दुहियस्स य विदेसत्थस्स य विप्पवसियस्स य मग्गं च छिद्दं च विरहं च अंतरं च मग्गमाणे गवेसमाणे एवं च णं विहरइ। बहिया वि य णं रायगिहस्स नगरस्स आरामेसु य उज्जाणेसु य वावि-पोक्खरणि-दीहिय-गुंजालिय-सर-सरपंतिय-सरसरपंतियासु य जिण्णुज्जाणेसु य भग्गकूवेसु य मालुयाकच्छएसु य सुसाणेसु य गिरिकंदरेसु य लेणेसु य उवट्ठाणेसु य बहुजणस्स छिद्देसु य जाव अंतरं च मग्गमाणे गवेसमाणे एवं च णं विहरइ।।

और तीव्रवैर--प्रतिशोध वाला था। वह राजगृह नगर के बहुत सारे प्रवेशमार्गों, निर्गममार्गों, द्वारों, पार्श्वद्वारों, (पीछे की खिड़कियों) बाड़ के छेदों, प्राकार के छेदों, नगर के नालों, जहां एक से अधिक पथ मिलते हों और विभक्त होते हों--उन स्थानों, द्यूत खेलने के स्थानों, मधुशालाओं, गणिकागृहों, तस्करों के स्थानों, तस्करों के घरों, दोराहों, तिराहों, चौराहों, चौकों, नाग-मन्दिरों, भूत-मन्दिरों, यक्षायतनों, सभाओं, प्रपाओं, दुकानों और सूने घरों को देखता हुआ, उनकी मार्गणा-गवेषणा करता हुआ विहार करता था। वह अवकाश, विषमावस्था, वियोग, कष्ट, अभ्युदय, उत्सव, जन्मप्रसंग, महोत्सव, पुण्यतिथि, महोत्सव, यज्ञ और पर्वणी-कौमुदी महोत्सव आदि--इन अवसरों पर जब बहुत सारे लोग मत्त-प्रमत्त, व्याक्षिप्त, व्याकुल, सुखी-दुःखी, विदेश गये हुए अथवा प्रवासी होते उनके मार्ग, छिद्र विरह और अन्तर की मार्गणा-गवेषणा करता हुआ विहार करता था।

राजगृह नगर के बाहर भी आरामों, उद्यानों, वापियों, पुष्करिणियों दीर्घिकाओं, गुञ्जालिकाओं, सरोवरों, सरोवर-पंक्तियों, सरोवरों से संलग्न सरोवर पंक्तियों, पुराने उद्यानों, भग्नकूपों, मालुकाकक्षों, श्मशानों, गिरि-कन्दराओं, पर्वत में गुफाओं, उत्कीर्ण गृहों और सभा-मण्डपों में बहुत सारे लोगों के अवकाश आदि अवसरों पर यावत् अन्तर की मार्गणा-गवेषणा करता हुआ विहार करता था।

भद्दाए संताणमणोरह-पदं

१२. तए णं तीसे भद्दाए भारियाए अण्णया कयाइ पुव्वरत्ताव-रत्तकालसमयंसि कुडुंबजागरियं जागरमाणीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--अहं धण्णेणं सत्थवाहेणं सद्धिं बहूणि वासाणि सद्द-फरिस-रस-गंध-रूवाणि माणुस्सगाइं कामभोगाइं पच्चणुब्भवमाणी विहरामि, नो चेव णं अहं दारगं वा दारियं वा पयामि।

तं धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, संपुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयत्थाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयपुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयलक्खणाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयविहवाओ णं ताओ अम्मयाओ, सुलद्धे णं माणुस्सए जम्मजीवियफले तासिं अम्मयाणं, जासिं मण्णे नियगकुच्छिसंभूयाइं थणदुद्ध-लुद्धयाइं महुरसमुल्लावगाइं मम्मणपयंपियाइं थणमूला कक्खदेसभागं अभिसरमाणाइं मुद्धयाइं थणयं पियंति, तओ य कोमलकमलोवमेहिं हत्थेहिं गिण्हिऊणं उच्छंग-निवेसियाणि देंति समुल्लावए पिए सुमहुरे पुणो-पुणो मंजुलप्पभणिए। तं णं अहं अधण्णा अपुण्णा अकयलक्खणा एत्तो एगमवि न पत्ता। तं सेयं मम कल्लं पाउप्पभाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते धण्णं सत्थवाहं आपुच्छित्ता धण्णेणं सत्थवाहेणं अब्भणुण्णाया समाणी सुबहुं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेत्ता सुबहुं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारं गहाय बहूहिं मित्त-नाइ-नियग-

भद्रा का सन्तान-मनोरथ-पद

१२. किसी समय मध्यरात्रि के समय कुटुम्ब-जागरिका[९] करते हुए भद्रा भार्या के मन में आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--'मैं धन सार्थवाह के साथ बहुत वर्षों से शब्द, स्पर्श, रस, गंध और रूप--इन मनुष्य-सम्बन्धी काम-भोगों का अनुभव करती हुई विहार कर रही हूं, फिर भी मैं एक भी बालक या बालिका को जन्म नहीं दे सकी।

इसलिए धन्य हैं वे माताएं, पुण्यवती हैं वे माताएं, कृतार्थ हैं वे माताएं, कृतपुण्य हैं वे माताएं, कृतलक्षण हैं वे माताएं, वैभवशालिनी हैं वे माताएं, उन्हीं माताओं ने मनुष्य के जन्म और जीवन का फल पाया है, जिनका अपने उदर से उत्पन्न, स्तन के दूध में लुब्ध, मीठी बोली बोलते, तुतलाते और स्तनमूल से बगल की ओर सरकते मुग्ध बच्चे स्तनपान करते हैं और माताएं अपने कमल जैसे कोमल हाथों से उन्हें खींच कर अपनी गोद में बिठाती हैं। तथा पुनः पुनः प्रिय, सुमधुर और मंजुल बोलों वाली लोरियां देती हैं। इस दृष्टि से मैं अधन्या, अपुण्या और अकृतलक्षणा हूं कि इनमें से एक भी वस्तु मुझे प्राप्त नहीं है।

अतः मेरे लिए उचित है--मैं उषाकाल में, पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि, दिनकर, तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर, धन सार्थवाह से पूछ, उससे अनुज्ञा प्राप्त कर, बहुत सारा विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवाकर बहुत सारे मित्र,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयण-संबंधि-परियण-महिलाहिं सद्धिं संपरिवुडा जाइं इमाइं रायगिहस्स नयरस्स बहिया नागाणि य भूयाणि य जक्खाणि य इंदाणि य खंदाणि य रुद्दाणि य सिवाणि य वेसमणाणि य, तत्थ णं बहूणं नागपडिमाण य जाव वेसमणपडिमाण य महरिहं पुप्फच्चणियं करेत्ता जन्नुपायपडियाए एवं वइत्तए--जइ णं हं देवाणुप्पिया! दारगं वा दारियं वा पयामि, तो णं अहं तुब्भं जायं च दायं च भायं च अक्खयणिहिं च अणुवड्ढेमि त्ति कट्टु उवाइयं उवाइत्तए--एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते जेणामेव धणे सत्थवाहे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी--

एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! तुब्भेहिं सद्धिं बहूइं वासाइं सद्द-फरिस-रस-गंध-रूवाइं माणुस्सगाइं कामभोगाइं पच्चणुब्भवमाणी विहरामि, नो चेव णं अहं दारगं वा दारियं वा पयामि। तं धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव कोमलकमलोवमेहिं हत्थेहिं गिण्हिऊणं उच्छंग-निवेसियाणि देंति समुल्लावए सुमहुरे पिए पुणो-पुणो मंजुलप्पभणिए। तं णं अहं अहण्णा अपुण्णा अकयलक्खणा एत्तो एगमवि न पत्ता। तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेत्ता जाव अक्खयणिहिं च अणुवड्ढेमि उवाइयं करित्तए।।

ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन और महिलाओं के साथ, उनसे घिरी हुई, राजगृह नगर के बाहर जो ये नाग, भूत, यक्ष, इन्द्र, स्कन्द, रुद्र, शिव और वैश्रवण हैं, वहां अनेक नाग-प्रतिमाओं यावत् वैश्रवण प्रतिमाओं[४] की महान अर्हता वाली पुष्प पूजा कर, घुटनों के बल बैठ, प्रणत हो इस प्रकार कहूं--

देवानुप्रियो! यदि मेरे बालक या बालिका उत्पन्न हो जाए तो मैं तुम्हारी पूजा, दाय, भाग और अक्षयनिधि[५] का संवर्द्धन करूं--इस प्रकार की मनौती करूं--उसने ऐसी संप्रेक्षा की। ऐसी संप्रेक्षा कर उषाकाल में, पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि, दिनकर, तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर , वह जहां धन सार्थवाह था वहां आयी। वहां आकर इस प्रकार बोली--

"देवानुप्रिय ! मैं तुम्हारे साथ बहुत वर्षों से शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध और रूप--इन मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों का अनुभव करती हुई विहार कर रही हूं फिर भी--मैं बालक या बालिका को जन्म नहीं दे सकी। इसलिए धन्य हैं वे माताएं यावत् जो अपने कमल जैसे कोमल हाथों से उन्हें खींच कर अपनी गोद में बिठाती हैं तथा पुन:पुन: प्रिय, समधुर और मंजुल बोलों वाली लोरियां देती हैं। इस दृष्टि से मैं अधन्या, अपुण्या और अकृतलक्षणा हूं कि इनमें से एक भी वस्तु मुझे प्राप्त नहीं है।

अत: देवानुप्रिय ! मैं तुम से अनुज्ञा प्राप्त कर, विपुल, अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवाकर यावत् अक्षयनिधि का संवर्द्धन करूं--ऐसी मनौती करना चाहती हूं।

१३. तए णं धण्णे सत्थवाहे भद्दं भारियं एवं वयासी--ममं पि य णं देवाणुप्पिए! एस चेव मणोरहे--कहं णं तुमं दारगं वा दारियं वा पयाएज्जासि?--भद्दाए सत्थवाहीए एयमट्ठं अणुजाणइ।।

१३. धन सार्थवाह ने भद्रा भार्या से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिये ! मेरा भी यही मनोरथ है कि कैसे तुम बालक या बालिका को जन्म दो?--(ऐसा कह) उसने भद्रा सार्थवाही के इस अर्थ का अनुमोदन किया।

१४. तए णं सा भद्दा सत्थवाही धणेणं सत्थवाहेणं अब्भणुण्णाया समाणी हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया जाव हरिसवस-विसप्पमाण-हियया विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता सुबहुं पुप्फ-वत्थ-गंधमल्लालंकारं गेण्हइ, गेण्हित्ता सयाओ गिहाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव पोक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुक्खरिणीए तीरे सुबहुं पुप्फ-वत्थ-गंध मल्लालंकारं ठवेइ, ठवेत्ता पुक्खरिणिं ओगाहेइ, ओगाहित्ता जलमज्जणं करेइ, करेत्ता जलकीडं करेइ, करेत्ता ण्हाया कयबलिकम्मा उल्लपडसाडिगा जाइं तत्थ उप्पलाइं पउमाइं कुमुयाइं णलिणाइं सुभगाइं सोगंधियाइं पोंडरीयाइं महापोंडरीयाइं सयवत्ताइं सहस्सपत्ताइं ताइं गिण्हइ, गिण्हित्ता पुक्खरिणीओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता तं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लं (मल्लालंकारं?) गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणामेव नागघरए य जाव

१४. धन सार्थवाह से अनुज्ञा प्राप्त कर हृष्ट, तुष्ट चित्तवाली आनन्दित यावत् हर्ष से विकस्वर हृदय वाली भद्रा सार्थवाही ने विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य को तैयार करवाया। तैयार करवाकर बहुत सारे पुष्प, वस्त्र, गन्धचूर्ण, मालाएं और अलंकार लिए। लेकर अपने घर से निष्क्रमण किया। निष्क्रमण कर राजगृह नगर के बीचोंबीच से होकर निकली। निकलकर जहां पुष्करिणी थी वहां आयी। आकर पुष्करिणी के तीर पर बहुत सारे पुष्प, वस्त्र, गन्धचूर्ण, मालाएं, और अलंकार रखे। रखकर पुष्करिणी में अवगाहन किया। अवगाहन कर जल में निमज्जन किया। निमज्जन कर जलक्रीड़ा की। जलक्रीड़ा कर स्नान और बलिकर्म किया। गीली साड़ी पहने[६] ही वह, वहां जो उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगन्धिक, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र कमल थे उनको ग्रहण किया। ग्रहण कर पुष्करिणी से बाहर आयी। आकर उन पुष्प, वस्त्र, गंधचूर्ण और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेसमणघरए य तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तत्थ णं नागपडिमाण य जाव वेसमणपडिमाण य आलोए पणामं करेइ, ईसिं पच्चुण्णमइ, पच्चुण्णमित्ता लोमहत्थगं परामुसइ, परामुसित्ता नागपडिमाओ य जाव वेसमणपडिमाओ य लोमहत्थएणं पमज्जइ, पमज्जित्ता उदगधाराए अब्भुक्खेइ, अब्भुक्खेत्ता पम्हल-सूमालाए गंधकासाईए गायाइं लूहेइ, लूहेत्ता महरिहं वत्थारुहणं च मल्लारुहणं च गंधारुहणं च वण्णारुहणं च करेइ, करेत्ता धूवं डहइ, डहित्ता जन्नुपायपडिया पंजलिउडा एवं वयासी--जइ णं अहं दारगं वा दारियं वा पयामि तो णं अहं जायं च दायं च भायं च अक्खयणिहिं च अणुवड्ढेमि त्ति कट्टु उवाइयं करेइ, करेत्ता जेणेव पोक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं आसाएमाणी विसाएमाणी परिभाएमाणी परिभुंजेमाणी एवं च णं विहरइ। जिमियभुत्तुत्तरागया वि य णं समाणा आयंता चोक्खा परम सुइभूया जेणेव सए गिहे तेणेव उवागया।।

मालाओं (मालाओं और अलंकारों) को ग्रहण किया, ग्रहण कर जहां नाग-गृह यावत् वैश्रवण गृह था वहां आयी। आकर नागप्रतिमाओं यावत् वैश्रवण प्रतिमाओं को देखते ही प्रणाम किया। कुछ ऊपर उठी। उठकर प्रमार्जनी हाथ में ली। हाथ में लेकर उससे नागप्रतिमाओं यावत् वैश्रवण-प्रतिमाओं का प्रमार्जन किया। प्रमार्जन कर उदक-धाराओं से अभिसिञ्चन किया। अभिसिञ्चन कर रोएंदार, सुकुमाल, सुगन्धित गेरुएं वस्त्र से उन्हें पौंछा। पौंछकर महान अर्हता वाले वस्त्र, माल्य, गंधचूर्ण और वर्णक चढ़ाया (अर्पित किया)। चढ़ाकर धूप खेया। धूप खेकर घुटनों के बल बैठ, प्रणाम किया, प्राञ्जलिपुट हो, इस प्रकार कहा--

"यदि मेरे बालक या बालिका उत्पन्न हो जाए तो मैं पूजा, दाय, भाग और अक्षयनिधि का संवर्द्धन करूं"--उसने ऐसी मनौति की। मनौती कर जहां पुष्करिणी थी वहां आयी। वहां आकर उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का आस्वादन करती हुई, विशेष स्वाद लेती हुई, बांटती हुई और खाती हुई विहार करने लगी। भोजनोपरान्त आचमन कर साफ सुथरी होकर, परम पवित्र हो, जहां उसका अपना घर था, वहां आयी।

१५. अदुत्तरं च णं भद्दा सत्थवाही चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु विपुलं असण पाण-खाइम-साइमं उवक्खडेइ, उवक्खडेत्ता बहवे नागा य जाव वेसमणा य उवायमाणी नमंसमाणी जाव एवं च णं विहरइ।।

१५. तत्पश्चात भद्रा सार्थवाही ने चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवाए। तैयार करवाकर बहुत सारे नाग यावत् वैश्रवण देवों की मनौती करती हुई यावत् नमन करती हुई विहार करने लगी।

भद्दाए देवदिन्न-पुत्तपसव-पदं

भद्रा के देवदत्त पुत्र का प्रसव-पद

१६. तए णं सा भद्दा सत्थवाही अण्णया कयाइ केणइ कालंतरेणं आवण्णसत्ता जाया यावि होत्था।।

१६. कुछ काल बीत जाने पर, किसी समय भद्रा सार्थवाही गर्भवती हुई।

१७. तए णं तीसे भद्दाए सत्थवाहीए (तस्स गब्भस्स?) दोसु मासेसु वीइक्कंतेसु तइए मासे वट्टमाणे इमेयारूवे दोहले पाउब्भूए--धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव कयलक्खणाओ णं ताओ अम्मयाओ, जाओ णं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं सुबहुयं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारं गहाय मित्त-नाइ-नियग- सयण-संबंधि-परियण-महिलियाहिं सद्धिं संपरिवुडाओ रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता जेणेव पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पोक्खरिणिं ओगाहेंति, ओगाहित्ता ण्हायाओ कयबलिकम्माओ सव्वालंकारविभूसियाओ विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं आसाएमाणीओ विसाएमाणीओ परिभाएमाणीओ परिभुंजेमाणीओ दोहलं विणेंति--एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते जेणेव धणे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धणं सत्थवाहं एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! मम तस्स गब्भस्स दोसु मासेसु वीइक्कंतेसु तइए मासे वट्टमाणे इमेयारूवे

१७. जब (उस गर्भ के ?) दो महिनें बीत गये और तीसरा महिना चल रहा था, उस समय भद्रा सार्थवाही को इस प्रकार दोहद उत्पन्न हुआ--

"धन्य हैं वे माताएं यावत् कृत लक्षण हैं वे माताएं, जो विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य तथा बहुत सारे पुष्प, वस्त्र, गन्धचूर्ण, मालाएं और अलंकार ले मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन और महिलाओं के साथ उनसे संपरिवृत हो राजगृह नगर के बीचों बीच से होकर निकलती है। निकलकर जहां पुष्करिणी हैं, वहां आती हैं। वहां आकर पुष्करिणी में अवगाहन करती हैं। अवगाहन कर स्नान और बलिकर्म कर सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित हो, विपुल अशन, पान ,खाद्य और स्वाद्य का आस्वादन करती हुई, विशेष स्वाद लेती हुई, सबको बांटती हुई और खाती हुई अपना दोहद पूरा करती हैं।"--

उसने ऐसी संप्रेक्षा की। ऐसी संप्रेक्षा कर, उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर, तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोहले पाउब्भूए–धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव दोहलं विणेंति। तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं सुबहुयं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारं गहाय जाव दोहलं विणित्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेहि।।

कुछ ऊपर आ जाने पर, वह जहां धन सार्थवाह था, वहां आयी। वहां आकर धन सार्थवाह से इस प्रकार बोली--

देवानुप्रिय ! मेरे उस गर्भ के दो महिने बीत जाने पर तीसरे महिने में मुझे इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ--"धन्य हैं वे माताएं यावत् जो अपना दोहद पूरा करती हैं। अतः देवानुप्रिय ! मैं तुमसे अनुज्ञा प्राप्त कर विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य तथा बहुत सारे पुष्प, वस्त्र, गन्धचूर्ण, मालाएं और अलंकार लेकर यावत् दोहद पूरा करना चाहती हूं।" देवानुप्रिय! जैसा सुख हो, प्रतिबन्ध मत करो।

१८. तए णं सा भद्दा धणेणं सत्थवाहेणं अब्भणुण्णाया समाणी हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया जाव हरिसवस-विसप्पमाणहियया विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता जाव धूवं करेइ, करेत्ता जेणेव पोक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ।।

१८. तब धन सार्थवाह से अनुज्ञा प्राप्त कर हृष्ट, तुष्ट चित्तवाली, आनन्दित यावत् हर्ष से विकस्वर हृदयवाली भद्रा सार्थवाही ने विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवाए, तैयार कराकर यावत् धूप खेया। धूप खेकर जहां पुष्करिणी थी वहां आयी।

१९. तए णं ताओ मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियण-नगरमहिलाओ भद्दं सत्थवाहिं सव्वालंकारविभूसियं करेंति।।

१९. वे मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन और नगर की महिलाओं ने भद्रा सार्थवाही को सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित किया।

२०. तए णं सा भद्दा सत्थवाही ताहिं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणनगरमहिलियाहिं सद्धिं तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं आसाएमाणी विसाएमाणी परिभाएमाणी परिभुंजेमाणी दोहलं विणेइ, विणेत्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।।

२०. उस भद्रा सार्थवाही ने उन मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन और नगर की महिलाओं के साथ उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का आस्वादन करते हुए, विशेष स्वाद लेते हुए, सबको बांटते हुए और खाते हुए अपना दोहद पूरा किया। दोहद पूरा कर वह जिस दिशा से आयी थी, उसी दिशा में चली गयी।

२१. तए णं सा भद्दा सत्थवाही संपुण्णदोहला जाव तं गब्भं सुहंसुहेणं परिवहइ।।

२१. भद्रा सार्थवाही का दोहद पूरा हुआ। यावत् वह सुखपूर्वक गर्भ का परिवहन करने लगी।

२२. तए णं सा भद्दा सत्थवाही नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं वीइक्कंताणं सुकुमालपाणिपायं जाव दारगं पयाया।।

२२. भद्रा सार्थवाही ने पूरे नौ मास और साढ़े सात दिन बीतने पर एक सुकुमार हाथ-पांव वाले यावत् बालक को जन्म दिया।

२३. तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे जायकम्मं करेंति, तहेव जाव विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेंति, तहेव मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं भोयावेत्ता अयमेयारूवं गोण्णं गुणनिप्फण्णं नामधेज्जं करेंति--जम्हा णं अम्हं इमे दारए बहूणं नागपडिमाण य जाव वेसमणपडिमाण य उवाइयलद्धे, तं होउ णं अम्हं इमे दारए देवदिन्ने नामेणं।
तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधेज्जं करेंति देवदिन्ने त्ति।।

२३. उस बालक के माता-पिता ने पहले दिन जातकर्म संस्कार किया यावत् वैसे ही विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवाए और वैसे ही मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनों को भोजन करवाकर इस प्रकार गुणानुरूप गुणनिष्पन्न नाम रखा--"क्योंकि हमने इस बालक को बहुत सी नाग-प्रतिमाओं यावत् वैश्रवण प्रतिमाओं की मनौतियों से प्राप्त किया है, इसलिए हमारे इस बालक का नाम देवदत्त हो।"

माता-पिता ने उस बालक का 'देवदत्त' ऐसा नाम रखा।

२४. तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो जायं च दायं च भायं च अक्खयनिहिं च अणुवड्ढेंति।।

२४. उस बालक के माता-पिता ने पूजा, दाय, भाग और अक्षय-निधि का संवर्द्धन किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवदिन्नस्स क्रीडा-पदं

२५. तए णं से पंथए दासचेडए देवदिन्नस दारगस्स बालग्गाही जाए, देवदिन्नं दारगं कडीए गेण्हइ, गेण्हित्ता बहूहिं डिंभएहि य डिंभियाहि य दारएहि य दारियाहि य कुमारएहि य कुमारियाहि य सद्धिं संपरिवुडे अभिरमइ।।

२६. तए णं सा भद्दा सत्थवाही अण्णया कयाइ देवदिन्नं दारयं ण्हायं कयबलिकम्मं कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्तं सव्वालंकारविभूसियं करेइ, करेत्ता पंथयस्स दासचेडगस्स हत्थयंसि दलयइ।।

२७. तए णं से पंथए दासचेडए भद्दाए सत्थवाहीए हत्थाओ देवदिन्नं दारगं कडीए गेण्हइ, गेण्हित्ता सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, बहूहिं डिंभएहि य डिंभियाहि य दारएहि य दारियाहि य कुमारएहि य कुमारियाहि य सद्धिं संपरिवुडे जेणेव रायमग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता देवदिन्नं दारगं एगंते ठाइ, ठावेत्ता बहूहिं डिंभएहि य जाव कुमारियाहि य सद्धिं संपरिवुडे पमत्ते यावि विहरइ।।

देवदिन्नस्स अपहार-पदं

२८. इमं च णं विजए तक्करे रायगिहस्स नगरस्स बहूणि (अइगमणाणि य निग्गमणाणि य?) वाराणि य अववाराणि य तहेव जाव सुन्नघराणि य आभोएमाणे मग्गेमाणे गवेसमाणे जेणेव देवदिन्ने दारए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता देवदिन्नं दारगं सव्वालंकारविभूसियं पासइ, पासित्ता देवदिन्नस्स दारगस्स आभरणालंकारेसु मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववण्णे पंथयं दासचेडयं पमत्तं पासइ, पासित्ता दिसालोयं करेइ, करेत्ता देवदिन्नं दारगं गेण्हइ, गेण्हित्ता कक्खंसि अल्लियावेइ, अल्लियावेत्ता उत्तरिज्जेणं पिहेइ, पिहेत्ता सिग्घं तुरियं चवलं वेइयं रायगिहस्स नगरस्स अवद्दारेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव जिण्णुज्जाणे जेणेव भग्गकूवए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता देवदिन्नं दारयं जीवियाओ ववरोवेइ, ववरोवेत्ता आभरणालंकारं गेण्हइ, गेण्हित्ता देवदिन्नस्स दारगस्स सरीरं निप्पाणं निच्चेट्ठं जीवविप्पजढं भग्गकूवए पक्खिवइ, पक्खिवित्ता जेणेव मालुयाकच्छए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मालुयाकच्छयं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता निच्चले निप्फंदे तुसिणीए दिवसं खवेमाणे चिट्ठइ।।

देवदिन्नस्स गवेसणा-पदं

२९. तए णं से पंथए दासचेडए तओ मुहुत्तंतरस्स जेणेव देवदिन्ने दारए ठविए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता देवदिन्नं दारगं तंसि ठाणंसि अपासमाणे रोयमाणे कंदमाणे (विलवमाणे?) देवदिन्नस्स दारगस्स

देवदत्त का क्रीड़ा-पद

२५. दास पुत्र पन्थक बालक देवदत्त की सेवा में नियुक्त हुआ। वह बालक देवदत्त को गोद में लेता। गोद में लेकर बहुत सारे बालक-बालिकाओं, किशोर-किशोरियों और कुमार-कुमारियों[11] के साथ उनसे संपरिवृत हो, क्रीड़ा करता।

२६. एक दिन उस भद्रा सार्थवाही ने बालक देवदत्त को स्नान, बलिकर्म और कौतुक-मंगल रूप प्रायश्चित्त करा उसे सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित किया, विभूषित कर-दासपुत्र पन्थक के हाथ में सौंपा।

२७. उस दासपुत्र पन्थक ने भद्रा सार्थवाही के हाथ से बालक देवदत्त को अपनी गोद में लिया, गोद में लेकर अपने घर से बाहर निकला। बहुत सारे बालक-बालिकाओं, किशोर-किशोरियों और कुमार-कुमारियों के साथ, उनसे संपरिवृत हो, जहां राजमार्ग था वहां आया, वहां आकर बालक देवदत्त को एकान्त में बिठा दिया। बिठाकर स्वयं बहुत सारे बालक-बालिकाओं यावत् कुमारियों के साथ, उनसे संपरिवृत हो, खेलने में मस्त हो गया।

देवदत्त का अपहरण-पद

२८. विजय तस्कर-राजगृह नगर के बहुत सारे (प्रवेश मार्गों, निष्क्रमण मार्गों?) दरवाजों, पार्श्वद्वारों और वैसे ही, यावत् सूने घरों को देखता हुआ उनकी मार्गणा और गवेषणा करता हुआ, जहां बालक देवदत्त था वहां आया। वहां आकर सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित-बालक देवदत्त को देखा। देखकर बालक देवदत्त के आभरण और अलंकारों में मूर्च्छित, ग्रथित, गृद्ध और अध्युपपन्न[12] हो गया। उसने देखा दासपुत्र पन्थक (शिशुओं के साथ) खेलने में मस्त है। यह देख, उसने इधर-उधर अवलोकन किया। अवलोकन कर बालक देवदत्त को उठाया, उठाकर बगल में दबाया। दबाकर उत्तरीय से ढका। ढककर शीघ्र, त्वरित, चपल और उतावलेपन से राजगृह नगर के पार्श्वद्वार से बाहर निकला। बाहर निकलकर जहां पुराना उद्यान था, जहां भग्नकूप था, वहां आया, वहां आकर बालक देवदत्त को मार डाला। मारकर उसके आभरण और अलंकार ले लिए। लेकर बालक देवदत्त के निष्प्राण निश्चेष्ट और निर्जीव शरीर को भग्नकूप में डाल दिया। डालकर स्वयं जहां मालुकाकक्ष था, वहां आया। आकर मालुकाकक्ष में प्रविष्ट हुआ। वहां प्रविष्ट हो, निश्चल, निःस्पन्द और मौन हो, दिन व्यतीत करता हुआ स्थित हो गया।

देवदत्त का गवेषणा-पद

२९. इस घटना के मुहूर्त्त भर पश्चात् दासपुत्र पन्थक, जहां बालक देवदत्त को बिठाया था, वहां आया। वहां आकर उस स्थान पर बालक देवदत्त को नहीं देखा। तब वह रोता, कलपता (और विलपता?) हुआ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेइ। देवदिन्नस्स दारगस्स कत्थइ सुइं वा खुइं वा पउत्तिं वा अलभमाणे जेणेव सए गिहे जेणेव धणे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धणं सत्थवाहं एवं वयासी--एवं खलु सामी! भद्दा सत्थवाही देवदिन्नं दारयं ण्हायं जाव सव्वालंकारविभूसियं मम हत्थंसि दलयइ। तए णं अहं देवदिन्नं दारयं कडीए गिण्हामि, गिण्हित्ता सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमामि, बहूहिं डिंभएहि य डिंभियाहि य दारएहि य दारियाहि य कुमारएहि य कुमारियाहि य सद्धिं संपरिवुडे जेणेव रायमग्गे तेणेव उवागच्छामि, उवागच्छित्ता देवदिन्नं दारगं एगंते ठावेमि, ठावेत्ता बहूहिं डिंभएहि य जाव कुमारियाहि य सद्धिं संपरिवुडे पमत्ते यावि विहरामि।

तए णं अहं तओ मुहुत्तंतरस्स जेणेव देवदिन्ने दारए ठविए तेणेव उवागच्छामि, उवागच्छित्ता देवदिन्नं दारगं तंसि ठाणंसि अपासमाणे रोयमाणे कंदमाणे (विलवमाणे?) देवदिन्नस्स दारगस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेमि। तं न नज्जइ णं सामी! देवदिन्ने दारए केणइ नीते वा अवहिते वा अक्खित्ते वा--पायवडिए धणस्स सत्थवाहस्स एयमट्ठं निवेदेइ।।

चारों ओर बालक देवदत्त की मार्गणा, गवेषणा करने लगा। उसे बालक देवदत्त का कहीं भी कोई सुराख, चिह्न अथवा वृतान्त नहीं मिला, तब वह जहां अपना घर था, जहां धन सार्थवाह था वहां आया। वहां आकर धन सार्थवाह से इस प्रकार बोला--

"स्वामिन्! भद्रा सार्थवाही ने बालक देवदत्त को नहलाकर यावत् सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित कर मेरे हाथ में सौंपा। मैंने बालक देवदत्त को गोद में लिया। लेकर अपने घर से बाहर निकला। बहुत सारे बालक-बालिकाओं, किशोर-किशोरियों और कुमार-कुमारियों के साथ उनसे संपरिवृत हो, जहां राजमार्ग था वहां आया। वहां आकर बालक देवदत्त को एकान्त में बिठा दिया, बिठाकर-स्वयं बहुत सारे बालकों यावत् कुमारियों के साथ, उनसे संपरिवृत हो खेलने में मस्त हो गया।"

इस घटना के मुहूर्त्त भर पश्चात् जहां बालक देवदत्त को बिठाया था, वहां आया। आकर उस स्थान में जब बालक देवदत्त मुझे दिखाई नहीं दिया, तब मैंने रोते, कलपते, (और विलपते?) हुए चारों ओर बालक देवतदत्त की मार्गणा, गवेषणा की। स्वामिन्! न जाने बालक देवदत्त को कौन ले गया? किसने उसका अपहरण कर लिया? किसने उसे प्रलोभन देकर उड़ा दिया।इस प्रकार वह धन सार्थवाह के पैरों में गिर कर, सारी बात बताने लगा।

३०. तए णं धणे सत्थवाहे पंथयस्स दासचेडगस्स एयमट्ठं सोच्चा निसम्म तेण य महया पुत्तसोएणाभिभूए समाणे परसु-णियत्ते व चंपगपायवे 'धसत्ति' धरणीयलंसि सव्वंगेहिं सण्णिवडइए।।

३०. दासपुत्र पन्थक से यह बात सुनकर, अवधारण कर धन सार्थवाह उस महान पुत्र शोक से अभिभूत हो उठा। वह कुल्हाड़ी से काटे गए चम्पकपादप की भांति, अपने सम्पूर्ण शरीर के साथ, धड़ाम से धरती पर गिर पड़ा।

३१. तए णं से धणे सत्थवाहे तओ मुहुत्तंतरस्स आसत्थे पच्चागयपाणे देवदिन्नस्स दारगस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेइ। देवदिन्नस्स दारगस्स कत्थइ सुइं वा खुइं वा पउत्तिं वा अलभमाणे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता महत्थं पाहुडं गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव नगरगुत्तिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं महत्थं पाहुडं उवणेइ, उवणेत्ता एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! मम पुत्ते भद्दाए भारियाए अत्तए देवदिन्ने नामं दारए इट्ठे जाव उंबरपुप्फं पिव दुल्लहे सवणयाए, किमंग पुण पासणयाए? तए णं सा भद्दा देवदिन्नं ण्हायं सव्वालंकारविभूसियं पंथगस्स हत्थे दलाइ जाव पायवडिए तं मम निवेदेइ। तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! देवदिन्नस्स दारगस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं कयं।।

३१. उसके मुहूर्त्त भर पश्चात् जब धन सार्थवाह आश्वस्त हुआ, उसकी चेतना लौटी, तब उसने चारों ओर बालक देवदत्त की मार्गणा, गवेषणा प्रारम्भ कर दी। जब उसे बालक देवदत्त का कहीं भी कोई सुराख, चिह्न अथवा वृतान्त नहीं मिला, तब वह जहां अपना घर था वहां आया। घर आकर प्रचुर धन वाला उपहार लिया। उपहार लेकर जहां नगर आरक्षक थे, वहां आया, वहां आकर उन्हें प्रचुर धन वाला उपहार भेंट किया। उपहार भेंट कर वह इस प्रकार बोला--

देवानुप्रिय! मेरा पुत्र, भद्रा भार्या का आत्मज, देवदत्त नाम का बालक, हमें इष्ट यावत् उदुम्बर पुष्प के समान श्रवण दुर्लभ था। फिर दर्शन का तो प्रश्न ही कहां? उसे भद्रा ने नहला कर, सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित कर पन्थक के हाथों में दिया यावत् पन्थक ने मेरे पैरों में गिर कर, सारी बात कही।

अतः देवानुप्रियो! मैं चाहता हूं बालक देवदत्त की चारों ओर मार्गणा, गवेषणा की जाए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२. तए णं ते नगरगोत्तिया धणेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा सण्णद्ध-बद्ध-वम्मिय-कवया उप्पीलिय-सरासण-पट्टिया पिणद्ध-गेविज्जा आविद्ध-विमल-वरचिंध-पट्टा गहियाउह-पहरणा धणेणं सत्थवाहेणं सद्धिं रायगिहस्स नगरस्स बहुसु अइगमणेसु य जाव पवासु य मग्गण-गवेसणं करेमाणा रायगिहाओ नगराओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव जिण्णुज्जाणे जेणेव भग्गकूवए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता देवदिन्नस्स दारगस्स सरीरगं निप्पाणं निच्चेट्ठं जीवविप्पजढं पासंति, पासित्ता हा हा अहो! अकज्जमिति कट्टु देवदिन्नं दारगं भग्गकूवाओ उत्तारेंति, धणस्स सत्थवाहस्स हत्थे दलयंति।।

३२. धन सार्थवाह के ऐसा कहने पर नगर-आरक्षकों ने सन्नद्ध-बद्ध हो, कवच पहने। धनुष-पट्टी को बांधा। गले में ग्रीवा-रक्षक उपकरण पहने। विमल और प्रवर चिह्न पट्ट बांधे। आयुध और प्रहरण लिए और धन सार्थवाह के साथ राजगृह नगर के बहुत सारे प्रवेश मार्गों यावत् प्रपाओं में बालक की मार्गणा, गवेषणा करते हुए वे राजगृह नगर के बाहर निकल गए। बाहर निकल कर जहां वह पुराना उद्यान और भग्नकूप था वहां आए। वहां आकर बालक देवदत्त के निष्प्राण, निश्चेष्ट और निर्जीव शरीर को देखा। देखते ही हा! हा! अहो! अकार्य हो गया--इस प्रकार चिल्लाते हुए बालक देवदत्त को भग्नकूप से निकाला और धन सार्थवाह के हाथ में सौंप दिया।

विजयतक्करस्स निग्गह-पदं

३३. तए णं ते नगरगुत्तिया विजयस्स तक्करस्स पयमग्गमणुगच्छमाणा जेणेव मालुयाकच्छए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता मालुयाकच्छगं अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता विजयं तक्करं ससक्खं सहोढं सगेवेज्जं जीवग्गाहं गेण्हंति, गेण्हित्ता अट्ठि-मुट्ठि-जाणुकोप्पर-पहार-संभग्ग-महिय-गत्तं करेंति, करेत्ता अवउडा बंधणं करेंति, करेत्ता देवदिन्नस्स दारगस्स आभरणं गेण्हंति, गेण्हित्ता विजयस्स तक्करस्स गीवाए बंधंति, बंधित्ता मालुयाकच्छगाओ पडिणिक्खमंति, पडिणिक्खमित्ता जेणेव रायगिहे नयरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता रायगिहं नयरं अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता रायगिहे नयरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-च्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु कसप्पहारे य छिवापहारे य लयापहारे य निवाएमाणा-निवाएमाणा छारं च धूलिं च कयवरं च उवरिं पकिरमाणा-पकिरमाणा महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणा एवं वयंति--एस णं देवाणुप्पिया! विजए नामं तक्करे--पावचंडालरूवे भीमतररुद्दकम्मे आरुसियदित्त-रत्तनयणे खरफरुस-महल्ल-विगय-बीभच्छदाढिए असंपुडियउट्ठे उद्धुयपइण्ण-लंबंतमुद्धए भमर-राहुवण्णे निरणुक्कोसे निरणुतावे दारुणे पइभए निसंसइए निरणुकंपे अहीव एगंतदिट्ठीए खुरेव एगंतधाराए गिद्धेव आमिस-तल्लिच्छे अग्गिमिव सव्वभक्खी बालघायए बालमारए।

तं नो खलु देवाणुप्पिया! एयस्स केइ राया वा रायमच्चे वा अवरज्झइ, नन्नत्थ अप्पणो सयाइं कम्माइं अवरज्झंति त्ति कट्टु जेणामेव चारगसाला तेणामेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता हडिबंधणं करेंति, करेत्ता भत्तपाणनिरोहं करेंति, करेत्ता तिसंझं कसप्पहारे य छिवापहारे य लयापहारे य निवाएमाणा विहरंति।।

विजय तस्कर का निग्रह-पद

३३. वे नगर आरक्षक विजय तस्कर के पद-चिह्नों का अनुगमन करते हुए, जहां मालुकाकक्ष था वहां आए। वहां आकर मालुकाकक्ष में प्रविष्ट हुए। वहां प्रविष्ट हो विजय तस्कर को रंगे हाथों चोरी के माल सहित, गर्दन पकड़कर, जीते जी पकड़ लिया। पकड़कर उसके शरीर को अस्थि, मुष्टि, घुटनों और कोहनियों के प्रहारों से तोड़ डाला। मथ डाला। मथकर उसके सिर और हाथों को पीछे की ओर बांध दिया। बांध करके बालक देवदत्त के आभरण ले लिये। आभरण लेकर विजय तस्कर के गले में फंदा डाला। डालकर उसे मालुकाकक्ष से बाहर निकाला। निकालकर जहां राजगृह नगर था, वहां आए। वहां आकर राजगृह नगर में प्रविष्ट हुए। प्रविष्ट होकर राजगृह नगर के दोराहों, तिराहों, चौराहों, चौकों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और मार्गों में बार-बार उस पर चाबुक, चिकनी चाबुक और बेंतों के प्रहार किए। उस पर राख, धूल और कचरा उछाला और ऊंचे स्वरों में उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार बोले--

देवानुप्रियो! यह विजय नाम का चोर है। यह पापी, चाण्डाल जैसा और भीमतर रुद्र कर्म करने वाला है। इसकी आंखे रोषपूर्ण, जलती हुई और लाल रहती हैं। दाढ़ी कठोर, रुखी, लम्बी, विकृत और बीभत्स है। होठ खुले तथा लटकते और बिखरे हुए बाल हवा में उड़ते रहते हैं। इसका रंग भौंरे और राहु जैसा काला है। यह क्रूर कर्म करने में सकुचाता नहीं है और करने पर इसे पछतावा भी नहीं होता। दारुण, भय उत्पन्न करने वाला, निःशंक, अनुकम्पा शून्य, सांप की भांति (लक्ष्य पर) एकान्त दृष्टिवाला, क्षुर की भांति एकान्त धारवाला, गीध की भांति मांस लोलुप और अग्नि की भांति सर्वभक्षी है। वह बच्चों की घात करने वाला और बच्चों को मारने वाला है।

इसलिए देवानुप्रियो! इसको दण्डित करने में राजा या राज्यमंत्री का कोई अपराध नहीं है। यह सब केवल इसके अपने कृतकर्मों का ही अपराध है--ऐसा कहकर, वे जहां कारागृह था वहां आए। वहां आकर उसे हडि-बन्धन--काठ की जंती में डाल दिया। डालकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसका खाना-पीना बंद कर दिया। बंदकर तीनों सन्ध्याओं में उसे चाबुक, चिकनी चाबुक और बेंतों के प्रहार से पीटते।

देवदिन्नस्स नीहरण-पदं

३४. तए णं से धणे सत्थवाहे मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेणं सद्धिं रोयमाणे कंदमाणे विलवमाणे देवदिन्नस्स दारगस्स सरीरस्स महया इड्ढीसक्कार-समुदएणं नीहरणं करेति, करेत्ता बहूइं लोइयाइं मयगकिच्चाइं करेति, करेत्ता केणइ कालंतरेणं अवगयसोए जाए यावि होत्था।।

देवदत्त का निर्हरण-पद

३४. धन सार्थवाह ने मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनों के साथ रोते, कलपते और विलाप करते हुए महान ऋद्धि और सत्कार-समुदय के साथ बालक देवदत्त के शव का निर्हरण किया। करके अनेक लौकिक मृतक कार्य सम्पन्न किए, सम्पन्न कर कुछ समय पश्चात् वह शोक-मुक्त हुआ।

धणस्स निग्गह-पदं

३५. तए णं से धणे सत्थवाहे अण्णया कयाइं लहुसयंसि रायावराहंसि संपलित्ते जाए यावि होत्था।।

धन का निग्रह-पद

३५. किसी समय धन सार्थवाह भी किसी साधारण से राजकीय अपराध में फंस गया।

३६. तए णं ते नगरगुत्तिया धणं सत्थवाहं गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव चारए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता चारगं अणुप्पवेसंति, अणुप्पवेसित्ता विजएणं तक्करेणं सद्धिं एगयओ हडिबंधणं करेंति।।

३६. उन नगर-आरक्षकों ने धन सार्थवाह को पकड़ लिया। उसे पकड़ कर जहां कारागृह था वहां आए। आकर कारागृह में प्रविष्ट हुए। प्रविष्ट होकर उसे विजय तस्कर के साथ एक ही हडि-बन्धन--काठ की जंती में डाल दिया।

धणस्स घराओ आहाराणयण-पदं

३७. तए णं सा भद्दा भारिया कल्लं पाउप्पभाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडेइ, भोयणपिडयं करेइ, करेत्ता भोयणाइं पक्खिवइ, लंछिय-मुद्दियं करेइ, करेत्ता एगं च सुरभि (वर?) वारिपडिपुण्णं दगवारयं करेइ, करेत्ता पंथयं दासचेडयं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! इमं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं गहाय चारगसालाए धणस्स सत्थवाहस्स उवणेहि।।

धन के घर से आहार-आनयन-पद

३७. उषाकाल में, पौ फटने पर, यावत् सहस्ररश्मि दिनकर, तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर भद्रा सार्थवाही ने विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार किया। एक भोजन पिटक (टिफिन) बनाया। बनाकर उसमें भोजन रखा। उसे लाञ्छित किया, मुद्रित किया--उस पर मुहर लगाई। मुद्रित कर सुगन्धित (प्रवर?) जल से एक झारी भरी। भरकर दास पुत्र पन्थक को बुलाया। उसे बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! तुम यह विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य ले कर जाओ, कारागृह में धन सार्थवाह को दे दो।

३८. तए णं से पंथए भद्दाए सत्थवाहीए एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे तं भोयणपिडयं तं च सुरभिवरवारिपडिपुण्णं दगवारयं गेण्हइ, गेण्हित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता रायगिहं नगरं मज्झंमज्झेणं जेणेव चारगसाला जेणेव धणे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भोयणपिडयं ठवेइ, ठवेत्ता उल्लंछेइ, उल्लंछेत्ता भोयणं गेण्हइ, गेण्हित्ता भायणाइं ठावइ, ठावित्ता हत्थसोयं दलयइ, दलइत्ता धणं सत्थवाहं तेणं विपुलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं परिवेसेइ।।

३८. भद्रा सार्थवाही के ऐसा कहने पर हृष्ट, तुष्ट हुए पन्थक ने उस भोजन-पिटक और उस सुगन्धित प्रवर जल से भरी झारी को लिया, अपने घर से निकला। घर से निकलकर, राजगृह नगर के बीचोंबीच होता हुआ, जहां कारागृह था, जहां धन सार्थवाह था, वहां आया। आकर भोजन पिटक रखा, रखकर उसे खोला। खोलकर भोजन निकाला, निकालकर (खाने के) बर्तन रखे। रखकर (धन के) हाथ धुलाए। हाथ धुलाकर धन सार्थवाह को विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य परोसा।

विजयतक्करेण संविभागमग्गण-पदं

३९. तए णं से विजए तक्करे धणं सत्थवाहं एवं वयासी--तुब्भे णं

विजय तस्कर द्वारा संविभाग-मार्गणा-पद

३९. वह विजय तस्कर धन सार्थवाह से इस प्रकार बोला--देवानुप्रिय!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवाणुप्पिया! ममं एयाओ विपुलाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ संविभागं करेहि।।

धणस्स तन्निसेध-पदं

४०. तए णं से धणे सत्थवाहे विजयं तक्करं एवं वयासी--अवियाइं अहं विजया! एयं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं कायाण वा सुणगाण वा दलएज्जा, उक्कुरुडियाए वा णं छड्डेज्जा, नो चेव णं तव पुत्तघायगस्स पुत्तमारगस्स अरिस्स वेरियस्स पडणीयस्स पच्चामित्तस्स एत्तो विपुलाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ संविभागं करेज्जामि।।

४१. तए णं से धणे सत्थवाहे तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं आहारेइ, तं पंथयं पडिविसज्जेइ।।

४२. तए णं से पंथए दासचेडए तं भोयणपिडगं गिण्हइ, गिण्हित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।।

आबाधितस्स धणस्स विजयतक्करावेक्खा-पदं

४३. तए णं तस्स धणस्स सत्थवाहस्स तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं आहारियस्स समाणस्स उच्चार-पासवणे णं उव्वाहित्था।।

४४. तए णं से धणे सत्थवाहे विजयं तक्करं एवं वयासी--एहि ताव विजया! एगंतमवक्कमामो जेणं अहं उच्चार-पासवणं परिट्ठवेमि।।

विजयतक्करेण तन्निसेध-पदं

४५. तए णं से विजए तक्करे धणं सत्थवाहं एवं वयासी--तुज्झं देवाणुप्पिया! विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं आहारियस्स अत्थि उच्चारे वा पासवणे वा, ममं णं देवाणुप्पिया! इमेहिं बहूहिं कसप्पहारेहि य छिवापहारेहि य लयापहारेहि य तण्हाए य छुहाए य परज्झमाणस्स नत्थि केइ उच्चारे वा पासवणे वा। तं छंदेणं तुमं देवाणुप्पिया! एगंते अवक्कमित्ता उच्चार-पासवणं परिट्ठवेहि।।

४६. तए णं से धणे सत्थवाहे विजएणं तक्करेणं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिट्ठइ।।

धणेण पुणो कथिते विजएण संविभागमग्गण-पदं

४७. तए णं से धणे सत्थवाहे मुहुत्तंतरस्स बलियतरागं उच्चार-पासवणेणं उव्वाहिज्जमाणे विजयं तक्करं एवं वयासी--एहि ताव विजया! एगंतमवक्कमामो जेणं अहं उच्चार-पासवणं परिट्ठवेमि।।

मुझे इस विपुल, अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का संविभाग दो।

धन द्वारा उसका निषेध-पद

४०. वह धन सार्थवाह विजय तस्कर से इस प्रकार बोला--विजय ! चाहे मैं यह विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य कौवों और कुत्तों को डाल दूं या कूड़े घर में डाल दूं किन्तु मेरे पुत्र की घात करने वाले, उसे मारने वाले अरि, वैरी, प्रत्यनीक और नितान्त शत्रु व्यक्ति को इस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का संविभाग नहीं दूंगा।

४१. वह धन सार्थवाह ने उस विपुल अशन, पान, खाद्य, और स्वाद्य को खाया और पन्थक को विसर्जित किया।

४२. वह दासपुत्र पन्थक उस भोजन पिटक को लिया। लेकर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में चला गया।

देह चिंता से आबाधित धन को विजय तस्कर की अपेक्षा-पद

४३. उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य को खा लेने पर धन सार्थवाह को उच्चार-प्रस्रवण की बाधा उत्पन्न हुई।

४४. धन सार्थवाह ने विजय तस्कर से इस प्रकार कहा--विजय ! इधर आओ, हम एकान्त में चलें, जिससे मैं उच्चार-प्रस्रवण कर सकूं।

विजय तस्कर द्वारा उसका निषेध-पद

४५. विजय तस्कर ने धन सार्थवाह से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय ! तुमने विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य खाया है, अतः उच्चार या प्रस्रवण की आवश्यकता तुम्हें है। देवानुप्रिय ! मैं इन बहुत सारे चाबुक के प्रहारों, चिकनी चाबुक के प्रहारों, बेंतों के प्रहारों तथा भूख और प्यास से पराभूत हूं, अतः मुझे उच्चार-प्रस्रवण की कोई आवश्यकता नहीं है। देवानुप्रिय ! तुम अपनी इच्छा से एकान्त में जाओ और उच्चार-प्रस्रवण करो।

४६. विजय तस्कर के ऐसा कहने पर धन सार्थवाह मौन हो गया।

धन के पुनः कहने पर विजय द्वारा संविभाग मार्गणा-पद

४७. मुहूर्त भर पश्चात् धन सार्थवाह को जब उच्चार-प्रस्रवण की तीव्र बाधा उत्पन्न हुई तब वह विजय तस्कर से इस प्रकार बोला--"विजय! जरा आओ हम एकान्त में चलें, जिससे मैं उच्चार-प्रस्रवण कर सकूं।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४८. तए णं से विजए तक्करे धणं सत्थवाहं एवं वयासी--जइ णं तुमं देवाणुप्पिया! ताओ विपुलाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ संविभागं करेहि, तओहं तुमेहिं सद्धिं एगंतं अवक्कमामि।।

४८. वह विजय तस्कर धन सार्थवाह से इस प्रकार बोला--देवानुप्रिय ! यदि तुम मुझे उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का संविभाग दो तो मैं तुम्हारे साथ एकान्त में चलूं।

४९. तए णं से धणे सत्थवाहे विजयं तक्करं एवं वयासी--अहं णं तुब्भं ताओ विपुलाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ संविभागं करिस्सामि।।

४९. वह धन सार्थवाह विजय तस्कर से इस प्रकार बोला--मैं तुझे उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का संविभाग दूंगा।

५०. तए णं से विजए तक्करे धणस्स सत्थवाहस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ।।

५०. तब विजय तस्कर ने धन सार्थवाह के इस अर्थ को स्वीकार किया।

५१. तए णं से धणे सत्थवाहे विजएण तक्करेण सद्धिं एगंते अवक्कमइ, उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, आयंते चोक्खे परमसुइभूए तमेव ठाणं उवसंकमित्ता णं विहरइ।।

५१. धन सार्थवाह विजय तस्कर के साथ एकान्त में गया,उच्चार-प्रस्रवण किया, लौटकर आचमन कर-साफ सुथरा और परम निर्मल हो, अपने उसी स्थान में आ गया।

धणेण विजयस्स संविभागदाण-पदं

धन द्वारा विजय को संविभाग-दान-पद

५२. तए णं सा भद्दा कल्लं पाउप्पभाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडेइ, भोयणपिडयं करेइ, करेत्ता भोयणाइं पक्खिवइ, लंछिय-मुद्दियं करेइ, करेत्ता एगं च सुरभि (वर?) वारिपडिपुण्णं दगवारयं करेइ, करेत्ता पंथयं दासचेडयं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुम देवाणुप्पिया! इमं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं गहाय चारगसालाए धणस्स सत्थवाहस्स उवणेहि।।

५२. उषाकाल में, पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर, तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर भद्रा ने विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार किया। एक भोजन-पिटक (टिफिन) बनाया, बनाकर उसमें भोजन रखा, रखकर उसे लाञ्छित-रेखांकित किया, मुद्रित किया। उस पर मुहर लगायी, मुद्रित कर सुगन्धित (प्रवर?) जल से एक झारी भरी, झारी भरकर, दासपुत्र पन्थक को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय ! तुम जाओ और यह विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य ले, कारागृह में धन सार्थवाह को दे दो।

५३. तए णं से पंथए भद्दाए सत्थवाहीए एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे तं भोयणपिडयं तं च सुरभिवरवारिपडिपुण्णं दगवारयं गेण्हइ, गेण्हित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता रायगिहं नगरं मज्झंमज्झेणं जेणेव चारगसाला जेणेव धणे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भोयणपिडयं ठवेइ, ठवेत्ता उल्लंछेइ, उल्लंछेत्ता भोयणं गेण्हइ, गेण्हित्ता भायणाइं ठावइ, ठावित्ता हत्थसोयं दलयइ, दलइत्ता धणं सत्थवाहं तेणं विपुलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं परिवेसेइ।।

५३. भद्रा सार्थवाही के ऐसा कहने पर हृष्ट, तुष्ट हुए पन्थक ने उस भोजन-पिटक और सुगन्धित प्रवर जल से भरी झारी को लिया, लेकर अपने घर से निकला। घर से निकलकर, राजगृह नगर के बीचोंबीच होता हुआ, जहां कारागृह था, जहां धन सार्थवाह था, वहां आया। आकर भोजन-पिटक रखा। रखकर उसे खोला। खोलकर भोजन निकाला, निकालकर बर्तन रखा। रखकर (धन के) हाथ धुलाए। हाथ धुलाकर धन सार्थवाह को वह विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य परोसा।

५४. तए णं से धणे सत्थवाहे विजयस्स तक्करस्स ताओ विपुलाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ संविभागं करेइ।।

५४. तब उस धन सार्थवाह ने विजय तस्कर को उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का संविभाग दिया।

पंथगस्स भद्दाए साटोवं तन्निवेदण-पदं

पन्थक द्वारा बात को बढ़ा चढ़ा कर भद्रा से निवेदन-पद

५५. तए णं से धणे सत्थवाहे दासचेडयं विसज्जेइ।।

५५. तब धन सार्थवाह ने दासपुत्र पन्थक को विसर्जित कर दिया।

५६. तए णं से पंथए भोयणपिडयं गहाय चारगाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे

५६. तब वह पन्थक भोजन पिटक ले, कारागृह से निकला। निकलकर राजगृह नगर के बीचोंबीच होता हुआ, जहां अपना घर था, जहां भद्रा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जेणेव भद्दा सत्थवाही तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भद्दं (सत्थवाहिं?) एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिए! धणे सत्थवाहे तव पुत्तघायगस्स पुत्तमारगस्स अरिस्स वेरियस्स पडणीयस्स पच्चामित्तस्स ताओ विपुलाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ संविभागं करेइ।।

सार्थवाही थी, वहां आया। वहां आकर भद्रा (सार्थवाही?) से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिये ! धन सार्थवाह तुम्हारे पुत्र की घात करने वाले, उसे मारने वाले अरि, वैरी, प्रत्यनीक और नितान्त शत्रु को उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का संविभाग देता है।

भद्दाए कोव-पदं

५७. तए णं सा भद्दा सत्थवाही पंथगस्स दासचेडगस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा आसुरुत्ता रुट्ठा कुविया चंडिक्किया मिसिमिसेमाणी धणस्स सत्थवाहस्स पओसमावज्जइ।।

भद्रा का कोप-पद

५७. दासपुत्र पन्थक से यह बात सुनकर भद्रा सार्थवाही क्रोध से तमतमा उठी। उसने रुष्ट, कुपित, चण्ड और क्रोध से जलते हुए धन सार्थवाह के प्रति मन में रोष की गांठ बांध ली।

धणस्स चारमुत्ति-पदं

५८. तए णं से धणे सत्थवाहे अण्णया कयाइं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेणं सएण य अत्थसारेणं रायकज्जाओ अप्पाणं मोयावेइ, मोयावेत्ता चारगसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव अलंकारियसभा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अलंकारियकम्मं कारवेइ, जेणेव पोक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहधोयमट्टियं गेण्हइ, गेण्हित्ता पोक्खरिणीं ओगाहइ, ओगाहित्ता जलमज्जणं करेइ, करेत्ता ण्हाए कयबलिकम्मे कय-कोउयमंगल-पायच्छित्ते सव्वालंकारविभूसिए रायगिहं नगरं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता रायगिहस्स नगरस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।।

धन की कारागृह से मुक्ति-पद

५८. किसी समय धन सार्थवाह ने मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनों के सहयोग तथा अपने अर्थबल से स्वयं को राजदण्ड से मुक्त करा लिया। मुक्त करा कर वह कारागृह से निकला। निकलकर जहां आलंकारिक सभा (नापितशाला) थी, वहां आया। वहां आकर आलंकारिक कर्म हजामत करवाया। जहां पुष्करिणी थी, वहां आया। वहां आकर साफ मिट्टी ली। लेकर पुष्करिणी में अवगाहन किया। अवगाहन कर जल में निमज्जन किया। निमज्जन कर, स्नान, बलिकर्म और कौतुक मंगल रूप प्रायश्चित्त कर, सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित हो, राजगृह नगर में अनुप्रविष्ट हुआ। अनुप्रविष्ट होकर राजगृह नगर के बीचोंबीच होता हुआ, जहां अपना घर था वहां जाने का संकल्प किया।

धणस्स सम्माण-पदं

५९. तए णं तं धणं सत्थवाहं एज्जमाणं पासित्ता रायगिहे नयरे बहवे नगर-निगम-सेट्ठि-सत्थवाह-पभिइओ आढंति परिजाणंति सक्कारेंति सम्माणेंति अब्भुट्ठेंति सरीरकुसलं पुच्छंति।।

धन का सम्मान-पद

५९. धन सार्थवाह को आते हुए देखकर राजगृह नगर के बहुत सारे नगर-निगम श्रेष्ठी, सार्थवाह प्रभृति ने उसका आदर किया, उसकी ओर ध्यान दिया। उसे सत्कृत किया, सम्मानित किया, अभ्युत्थान किया और शरीर का कुशल पूछा।

६०. तए णं से धणे सत्थवाहे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ। जावि य से तत्थ बाहिरिया परिसा भवइ, तं जहा--दासा इ वा पेस्सा इ वा भयगा इ वा भाइल्लगा इ वा, सा वि य णं धणं सत्थवाहं एज्जमाणं पासइ, पायवडिया खेमकुसलं पुच्छइ।

जावि य से तत्थ अब्भंतरिया परिसा भवइ, तं जहा--माया इ वा पिया इ वा भाया इ वा भइणी इ वा, सावि य णं धणं सत्थवाहं एज्जमाणं पासइ, आसणाओ अब्भुट्ठेइ, कंठाकंठियं अवयासिय बाह-प्पमोक्खणं करेइ।।

६०. धन सार्थवाह जहां अपना घर था, वहां आया। वहां उसकी जो बहिरंग परिषद् थी जैसे--दास, प्रेष्य, भृतक और भागीदार उसने भी धन सार्थवाह को आते हुए देखा। प्रणाम कर क्षेम-कुशल पूछा।

वहां उसकी जो अन्तरंग परिषद् थी जैसे--माता,पिता, भाई तथा बहिन, उसने भी धन सार्थवाह को आते हुए देखा, आसन से उठी। गले मिलकर (हर्ष के) आंसू बहाने लगी।[१३]

भद्दाए कोवोवसमपुव्वं सम्माण-पदं

६१. तए णं से धणे सत्थवाहे जेणेव भद्दा भारिया तेणेव उवागच्छइ।।

भद्रा के कोप का उपशमन और अपूर्व सम्मान-पद

६१. वह धन सार्थवाह, जहां भद्रा भार्या थी वहां आया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६२. तए णं सा भद्दा धणं सत्थवाहं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता नो आढाइ नो परिजाणइ अणाढायमाणी अपरिजाणमाणी तुसिणीया परम्मुही संचिट्ठइ।।

६२. भद्रा ने धन सार्थवाह को आते हुए देखा। देखकर न उसका आदर किया, न उसकी ओर ध्यान दिया। वह उसका अनादर करती हुई, उपेक्षा करती हुई, मौन और पराङ्मुख हो बैठ गई।

६३. तए णं से धणे सत्थवाहे भद्दं भारियं एवं वयासी--किण्णं तुज्झं देवाणुप्पिए! न तुट्ठी वा न हरिसो वा नाणंदो वा, जं मए सएणं अत्थसारेणं रायकज्जाओ अप्पा विमोइए।।

६३. धन सार्थवाह ने भद्रा भार्या से इस प्रकार कहा--

देवानुप्रिये ! क्या बात है ? आज तुझे न तोष है, न हर्ष है और न आनन्द है ? जब कि मैंने अपने अर्थ बल से, स्वयं को राज-दण्ड से मुक्त करा लिया है।

६४. तए णं सा भद्दा धणं सत्थवाहं एवं वयासी--कहं णं देवाणुप्पिया! मम तुट्ठी वा हरिसो वा आणंदो वा भविस्सइ? जेणं तुमं मम पुत्तघायगस्स पुत्तमारगस्स अरिस्स वेरियस्स पडणीयस्स पच्चामित्तस्स ताओ विपुलाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ संविभागं करेसि।।

६४. भद्रा ने धन सार्थवाह से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय ! कैसे होगा मुझे तोष, हर्ष और आनन्द ? जब कि तुम मेरे पुत्र की घात करने वाले, उसे मारने वाले, अरि, वैरी, प्रत्यनीक और नितान्त शत्रु व्यक्ति को उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का संविभाग देते थे।

६५. तए णं से धणे सत्थवाहे भद्दं भारियं एवं वयासी--नो खलु देवाणुप्पिए! धम्मो त्ति वा तवोत्ति वा कय-पडिकया इ वा लोगजत्ता इ वा नायए इ वा घाडियए इ वा सहाए इ वा सुहि त्ति वा (विजयस्स तक्करस्स?) ताओ विपुलाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ संविभागे कए, नण्णत्थ सरीरचिंताए।।

६५. धन सार्थवाह ने भद्रा भार्या से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय ! मैंने (विजय तस्कर को?) धर्म, तप, प्रत्युपकार और लोक यात्रा की दृष्टि से अथवा उसे अपना स्वजन, सहचारी, सहायक या सुहृद मानकर, उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का संविभाग नहीं दिया था, मैंने केवल शरीर-चिन्ता के लिए उसे संविभाग दिया था।

६६. तए णं सा भद्दा धणेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणी हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया जाव हरिसवस-विसप्पमाणहियया आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता कंठाकंठि अवयासेइ, खेमकुसलं पुच्छइ, पुच्छित्ता ण्हाया कयबलिकम्मा कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ता विपुलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ।।

६६. धन सार्थवाह के ऐसा कहने पर हृष्ट, तुष्ट चित्त, आनन्दित यावत् हर्ष से विकस्वर हृदय वाली भद्रा आसन से उठी। उठकर गले मिली। क्षेम कुशल पूछा। पूछकर स्नान बलिकर्म और कौतुक मंगल रूप प्रायश्चित कर विपुल भोगार्ह भोगों को भोगती हुई विहार करने लगी।

विजय-णायस्स निगमण-पदं

विजय ज्ञात का निगमन-पद

६७. तए णं से विजए तक्करे चारगसालाए तेहिं बंधेहि य वहेहि य कसप्पहारेहि य छिवापहारेहि य लयापहारेहिं य तण्हाए य छुहाए य परज्झमाणे कालमासे कालं किच्चा नरएसु नेरइयत्ताए उववण्णे।

से णं तत्थ नेरइए जाए काले कालोभासे गंभीरलोमहरिसे भीमे उत्तासणए परमकण्हे वण्णेणं।

से णं तत्थ निच्चं भीए निच्चं तत्थे निच्चं तसिए निच्चं परमऽसुहसंबद्धं नरगगतिवेयणं पच्चणुब्भवमाणे विहरइ।

से णं तओ उव्वट्टित्ता अणादीयं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टिस्सइ।।

६७. वह विजय तस्कर कारागृह में उन बन्धनों, ताड़नाओं चाबुक के प्रहारों, चिकनी चाबुक के प्रहारों, बेतों के प्रहारों से तथा भूख और प्यास से पराभूत होता हुआ, मृत्यु के समय मृत्यु को प्राप्त कर, नरक में नैरयिक के रूप में उत्पन्न हुआ।

वह वहां नैरयिक बना, जो काला, काली आभा-वाला, गंभीर रूप से रोमाञ्चित रहने वाला, भीम, उत्त्रास देने वाला और वर्ण से परम कृष्ण था।

वह वहां नित्य भीत, नित्य त्रस्त, नित्य तृषित और नित्य परम दुःख से अनुबन्धित नरक गति की वेदना का अनुभव करता हुआ विहार करने लगा।

वह वहां से निकल कर अनादि, अनन्त, प्रलम्ब मार्ग और चार अन्त वाले संसार रूपी कान्तार में अनुपरिवर्तन करेगा।

६८. एवामेव जंबू! जो णं अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए

६८. जम्बू ! इसी प्रकार, हमारा जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी आचार्य, उपाध्याय के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित हो, विपुल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाणे विपुलमणि-मोत्तिय-धण-कणग-रयणसारेणं लुब्भइ, सो वि एवं चेव।।

मणि, मौक्तिक, धन, कनक और रत्नसार में लुब्ध होता है, वह भी ऐसा ही होता है।

धण-णायस्स निगमण-पदं

धन-ज्ञात का निगमन-पद

६९. तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरा भगवंतो जाइसंपण्णा जाव पुव्वाणुपुव्विं चरमाणा गामाणुगामं दूइज्जमाणा सुहंसुहेणं विहरमाणा जेणेव रायगिहे नयरे जेणेव गुणसिलए चेइए तेणामेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।।

६९. उस काल और उस समय जाति सम्पन्न यावत् स्थविर भगवान क्रमश: संचार करते हुए एक गांव से दूसरे गांव परिभ्रमण करते हुए सुख पूर्वक विहार करते हुए जहां राजगृह नगर था, जहां गुणशिलक चैत्य था वहां आए। वहां आकर यथोचित्त अवग्रह--आवास को ग्रहण कर संयम और तप से स्वयं को भावित करते हुए विहार करने लगे।

७०. परिसा निग्गया धम्मो कहिओ।।

७०. धर्म सुनने के लिए जन-समूह ने निर्गमन किया। धर्म कहा।

७१. तए णं तस्स धणस्स सत्थवाहस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--एवं खलु थेरा भगवंतो जाइसंपण्णा इहमागया इहसंपत्ता। तं गच्छामि? णं थेरे भगवंते वंदामि नमंसामि (एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता?) ण्हाए कयबलिकम्मे कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर परिहिए पायविहारचारेणं जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छित्ता वंदइ नमंसइ।।

७१. बहुत सारे लोगों के पास यह अर्थ सुनकर, अवधारण कर, धन सार्थवाह के मन में इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--"जाति-सम्पन्न स्थविर भगवान यहां आये हुए हैं, यहां सम्प्राप्त हैं। अत: मैं जाऊं, स्थविर भगवान को वन्दना-नमस्कार करूं (उसने ऐसी संप्रेक्षा की। ऐसी संप्रेक्षा कर?) स्नान, बलिकर्म और कौतुक मंगल रूप प्रायश्चित्त किया। पवित्र स्थान में प्रवेश करने योग्य प्रवर मंगल वस्त्र पहने और पांव-पांव चलता हुआ जहां गुणशिलक चैत्य था, जहां स्थविर भगवान थे, वहां आकर वन्दना नमस्कार किया।

७२. तए णं थेरा भगवंतो धणस्स विचित्तं धम्ममाइक्खंति।।

७२. स्थविर भगवान ने धन के समक्ष विचित्र धर्म का आख्यान किया।

७३. तए णं से धणे सत्थवाहे धम्मं सोच्चा एवं वयासी--

सद्दहामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं।

पत्तियामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं।

रोएमि णं भंते! निग्गंथं पावयणं।

अब्भुट्ठेमि णं भंते! निग्गंथं पावयणं।

एवमेयं भंते! तहमेयं भंते! अवितहमेयं भंते! इच्छियमेयं भंते! पडिच्छियमेयं भंते! इच्छिय-पडिच्छियमेयं भंते! से जहेयं तुब्भे वयह त्ति कट्टु थेरे भगवंते वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जाव पव्वइए जाव बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता भत्तं पच्चक्खाइत्ता, मासियाए संलेहणाए (अप्पाणं झोसेत्ता?), सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उववण्णे।

तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। तस्स णं धणस्स देवस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिई।।

७३. धर्म को सुनकर धन सार्थवाह ने इस प्रकार कहा--

भन्ते! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ।

भन्ते! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर प्रतीति करता हूँ।

भन्ते! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर रुचि करता हूँ।

भन्ते! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन (की आराधना) में अभ्युत्थान करता हूँ।

यह ऐसा ही है भन्ते ! यह तथ्य है भन्ते !

यह अवितथ है भन्ते ! यह इष्ट है भन्ते !

यह ग्राह्य है भन्ते ! यह इष्ट और ग्राह्य दोनों है भन्ते !

जैसा तुम कह रहे ऐसा कह, उसने स्थविर भगवान को वन्दना नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार कर यावत् प्रव्रजित हो गया। यावत् बहुत वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय का पालन कर भक्त प्रत्याख्यान कर मासिक संलेखना में (अपने आपका समर्पण?) और अनशन काल में साठ भक्तों का परित्याग कर, मृत्यु के समय, मृत्यु को प्राप्त हो सौधर्म कल्प में देवरूप में उत्पन्न हुआ।

वहां कुछ देवों की स्थिति चार पल्योपम बतलाई गई है। उस धन देव की स्थिति चार पल्योपम है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७४. से णं धणे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं ठिइक्खएणं भवक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेहिइ।।

७४. वह धन देव आयुक्षय, स्थितिक्षय और भवक्षय के अनन्तर उस देवलोक से च्युत हो, महाविदेह वर्ष में सिद्ध होगा यावत् सब दुःखों का अन्त करेगा।

७५. जहा णं जंबू! धणेणं सत्थवाहेणं नो धम्मो त्ति वा तवो त्ति वा कयपडिकया इ वा लोगजत्ता इ वा नायए इ वा घाडियए इ वा सहाए इ वा सुहि त्ति वा विजयस्स तक्करस्स ताओ विपुलाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ संविभागे कए, नण्णत्थ सरीरसारक्खणट्ठाए।।

७५. जम्बू! जैसे धन सार्थवाह ने विजय तस्कर को धर्म, तप, प्रत्युपकार और लोक यात्रा की दृष्टि से अथवा उसे स्वजन सहचारी, सहायक या सुहृद मानकर, उसे विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का संविभाग नहीं दिया, अपितु उसने केवल शरीर संरक्षण के लिए उसे संविभाग दिया था।

७६. एवामेव जंबू! जे णं अम्हं निग्गंथे वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे ववगय-ण्हाणुमद्दण-पुप्फ-गंध-मल्लालंकार-विभूसे इमस्स ओरालिय-सरीरस्स नो वण्णहेउं वा नो रूवहेउं वा नो बलहेउं वा नो विसयहेउं वा, तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं आहारमाहारेइ, नण्णत्थ नाणदंसणचरित्ताणं वहणट्ठयाए, से णं इहलोए चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावगाणं बहूणं सावियाण अच्चणिज्जे वंदणिज्जे नमंसणिज्जे पूयणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं विणएणं पज्जुवासणिज्जे भवइ, परलोए वि य णं नो बहूणि हत्थच्छेयणाणि य कण्णच्छेयणाणि य नासाछेयणाणि य एवं हिययउप्पायणाणि य वसणुप्पायणाणि य उल्लंबणाणि य पाविहिइ, पुणो अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइस्सइ--जहा व से धणे सत्थवाहे।।

७६. जम्बू! इसी प्रकार हमारा जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य-उपाध्याय के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित हो जाने पर स्नान, मर्दन, पुष्प, गन्धचूर्ण माला, अलंकार और विभूषा से उपरत रहता है और इस औदारिक शरीर की आभा के लिए रूप, बल और विषयपूर्ति के लिए उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का आहार नहीं करता, अपितु केवल ज्ञान, दर्शन और चारित्र के संवहन के लिए आहार करता है, वह इस लोक में भी बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों और बहुत श्राविकाओं के द्वारा अर्चनीय, वन्दनीय, नमस्करणीय, पूजनीय, सत्करणीय, सम्माननीय, कल्याण, मंगल, देव, चैत्य और विनय पूर्वक पर्युपासनीय होता है।

परलोक में भी वह नाना प्रकार के हस्त-छेदन, कर्ण-छेदन, नासा-छेदन तथा इसी प्रकार के हृदय-उत्पाटन, वृषण-उत्पाटन और फांसी को प्राप्त नहीं करेगा अपितु वह अनादि, अनन्त, प्रलम्ब मार्ग तथा चार अन्त वाले संसार रूपी कान्तार का पार पा लेगा, जैसे--वह धन सार्थवाह।

निक्खेव-पदं

७७. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं दोच्चस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते--त्ति बेमि।।

निक्षेप-पद

७७. जम्बू! इस प्रकार सिद्धि-गति नामक स्थान को संप्राप्त यावत् श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के दूसरे अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

ऐसा मैं कहता हूं।

वृत्तिकृता समुद्धृता निगमनगाथा

सिवसाहणेसु आहार-विरहिओ जं न वट्टए देहो।
तम्हा धणो व्व विजयं, साहू तं तेण पोसेज्जा।।१।।

वृत्तिकार द्वारा समुद्धृत निगमन गाथा-

आहार-विरहित शरीर मोक्ष की साधना में प्रवृत्त नहीं होता। इसलिए साधु आहार से उस (शरीर) का पोषण करे, जैसे कि धन ने (देह चिन्ता के लिए) विजय का पोषण किया था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

सूत्र ६

१. मालुकाकक्ष (मालुयाकच्छए)

वृत्तिकार ने मालुकाकक्ष का प्रज्ञापना सम्मत अर्थ स्वीकार किया है। उसके अनुसार मालुकाकक्ष का अर्थ है--ऐसे वृक्षों का जंगल जिन के फलों में एक गुठली होती है।

जीवाभिगम चूर्णिकार ने इसका अर्थ ककड़ी का क्षेत्र स्वीकार किया है।[१]

सूत्र ११

२. सांप की भांति एकान्त दृष्टि वाला (अहीव एगंतदिट्ठीए)

मुझे यह ग्रहण करना ही है इस प्रकार की निश्चयात्मक दृष्टि, सांप की तरह एकान्त दृष्टि वाला।[२]

द्रष्टव्य अध्ययन १, सूत्र ११२ का टिप्पण

३. क्षुर की भांति एकान्तधार वाला (खुरेव एगंतधाराए)

जैसे क्षुर एकान्तधार वाला होता है, जिस वस्तु को काटना या छीलना होता है, उसे वह निश्चित ही छील डालता है वैसे ही चोर की परोपताप प्रधान वृत्ति को धार माना गया है, वह जिसके यहां चोरी करना ठान लेता है, उसके चोरी करके ही रहता है।[३]

४. उत्कंचन, वंचना, माया, निकृति, कूट, कपट (उक्कंचण........ ....कवड)

उत्कंचन से साचि तक के शब्द माया के पर्यायवाची हैं। किन्तु टीकाकार ने इन सबका अर्थ-विश्लेषण किया है--

उत्कंचन--यह माया का एक प्रकार है। विक्रेय वस्तु का अधिक मूल्य वसूलने के लिए गुणहीन पदार्थ के गुणों का उत्कर्ष प्रतिपादित करना।[४]

वंचन--दूसरों को छलना।[५]

माया--दूसरों को छलने की बुद्धि।[६]

निकृति--बक वृत्ति से गिरहकट आदि की भांति रहना।[७]

कूट--तोल, माप सम्बन्धी न्यूनाधिकता।[८]

कपट--वेशभूषा और भाषा के विपर्यय से दूसरों को ठगना।[९]

५. वक्रता का प्रचुर प्रयोग करने वाला (साइसंपओगबहुले)

साचि का अर्थ है--वक्रता का समाचरण।

मूल पाठ में 'साइ' शब्द है। इसके संस्कृत रूप दो बन सकते हैं--'साचि' और 'साति'

वृत्तिकार ने पहली व्याख्या 'साति संप्रयोग' मानकर की है। अर्थात् उत्कञ्चन से लेकर कपट तक की वृत्ति का सातिशय–बहुत प्रयोग करने वाला।[१०]

दूसरा अर्थ है--सातिशय द्रव्य--कस्तूरी आदि का अन्य द्रव्य के साथ प्रयोग करना सातिसंप्रयोग है, जैसे--

सो होइ साइजोगो, दव्वं जं छुहिय अन्नदव्वेसु।
दोसगुणा वयणेसु य, अत्थविसवायणं कुणइ।।[११]

६. जिसका शील, आचार व चरित्र दुष्ट हो (दुद्वसीलायारचरित्ते)

यहां मनोवैज्ञानिक तथ्य अभिव्यक्त हुआ है। व्यक्ति का जैसा स्वभाव होता है, वह भावधारा उसकी आकृति पर परिलक्षित हो जाती है। जैसी आकृति होती है, वैसी ही उसकी प्रवृति होती है। अर्थात् वृत्ति, आकृति और प्रवृत्ति--इन तीनों का गहरा सम्बन्ध है। ये एक-दूसरे को प्रभावित करते है।[१२]

सूत्र १२

७. कुटुम्बजागरिका (कुंडुबजागरियं)

कुटुम्ब की चिन्ता के कारण या कर्तव्य-चिन्ता के कारण नींद का उचट जाना।[१३]

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-८४--मालुकाकच्छाए त्ति--एकास्थिफला: वृक्षविशेषा: मालुका: प्रज्ञापनाभिहितास्तेषां कक्षो गहनं मालुकाकक्ष:, चिर्भटिकाकच्छक इति तु जीवाभिगमचूर्णिकार:।

२. वही, पत्र-८६--अहिरिव एकान्ता ग्राह्यमेवेदं मयेत्येवमेव निश्चया दृष्टिर्यस्य स तथा।

३. वही--'खुरेव एगन्तधाराए त्ति--एकत्रान्ते--वस्तुभागेऽपहर्तव्य-लक्षणे धारा परोपतापप्रधान वृत्तिलक्षणा यस्य स तथा, यथा क्षुरप्र:--एकधार:, मोषकलक्षणैकप्रवृत्तिक एवेति भाव:।

४. वही--ऊर्ध्वकंचनं मूल्याद्यारोपणार्थं उत्कञ्चनं हीनगुणस्य गुणोत्कर्ष-प्रतिपादनमित्यर्थ:।

५. वही--कञ्चनं--प्रतारणम्।

६. वही--माया--परवञ्चनबुद्धि:।

७. वही-निकृति:-बकवृत्त्या गलकर्तकानामिवावस्थानम्।

८. वही-कूटं--कार्षापणतुलादे: परवञ्चनार्थं न्यूनाधिककरणम्।

९. वही--कपटं--नेपथ्यभाषाविपर्ययकरणं।

१०. वही

११. वही

१२. वही--दुष्टं शीलं--स्वभाव: आकार:--आकृतिश्चरित्रं च--अनुष्ठानं यस्य स।

१३. वही, पत्र-८९--कुडुंबजागरियं-कुटुम्बचिन्ताया जागरणं--निद्राक्षय: कुटुम्ब-जागरिका।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. नागप्रतिमाओं यावत् वैश्रवण प्रतिमाओं (नागपडिमाण य जाव वेसमण -पडिमाण)

प्राचीनकाल में वाञ्छित पूर्ति के लिए अनेक देवों की प्रतिमा पूजी जाती थी। प्रस्तुत प्रकरण में आठ प्रतिमाओं का उल्लेख है--

१. नाग प्रतिमा २. भूत प्रतिमा ३. यक्ष प्रतिमा ४. इन्द्र प्रतिमा ५. स्कन्द प्रतिमा ६. रुद्र प्रतिमा ७. शिव प्रतिमा ८. वैश्रवण प्रतिमा।

उत्तरकाल अथवा पुराणकाल में इनके स्थान पर दूसरे देव और देवियों की पूजा होने लगी। नाग आदि की प्रतिमाओं के पूजन की प्रथा लौकिक थी। इनका किसी धर्म या सम्प्रदाय से सम्बन्ध नहीं था।

९. पूजा, दाय, भाग और अक्षयनिधि (जायं च दायं च भायं च अक्खयणिहिं च)

भद्रा सार्थवाही अपने इष्ट की पूर्ति होने पर प्रतिदान का संकल्प करती है। प्रतिदान के लिए इतने शब्दों का प्रयोग किया गया है-

जायं--याग-यज्ञ, पूजा।

दायं--पर्व दिन आदि में दिया जाने वाला दान।

भायं--लाभांश

अक्षयनिधि--स्थायी कोष[1] (Fix Deposit)।

सूत्र १४

१०. गीली साड़ी (उल्लपडसाडिगा)

स्नान के कारण गीले उत्तरीय और परिधान वस्त्र पहने हुए।[2]

गीले कपड़ों से देवता की पूजा और याचना सफल होती है, इससे यह ध्वनित होता है।

११. बालक-बालिकाओं............. कुमारियों के साथ (डिंभिएहि.. .... कुमारियाहि)

डिभंक, दारक और कुमार--ये बच्चों की विभिन्न अवस्था कृत पर्यायों के द्योतक हैं।[3]

सूत्र २८

१२. मूर्च्छित, ग्रथित, गृद्ध और अध्युपपन्न (मुच्छिए........ अज्झोववण्णे)

ये शब्द आसक्ति के कारण होने वाली विभिन्न चैतसिक अवस्थाओं के द्योतक हैं--

मूर्च्छित--विवेक चेतना शून्य।

ग्रथित--लोभ के तन्तुओं से बंधा हुआ।

गृद्ध--आकांक्षावान।

अध्युपपन्न--तद्विषयक अधिक एकाग्रता को प्राप्त।[4]

द्रष्टव्य--ठाणं पृष्ठ ६१४

सूत्र ६०

१३. (सूत्र ६०)

प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त दास, प्रेष्य भृतक और भाइल्लग (भागीदार) ये सामान्यतः नौकर के पर्यायवाची शब्द हैं, फिर भी इनमें अवस्था कृत भेद हैं। वृत्तिकार के अभिमत से इनके अर्थ ये हैं--

दास--घर की दासी का पुत्र।

प्रेष्य--विशेष प्रयोजन उपस्थित होने पर दूसरे गांव, नगर आदि भेजकर जिससे काम कराया जाता है।

भृतक- वे नौकर जो बचपन से ही पाल पोषकर बड़े किये गये हों।

भाइल्लग-भागीदार, जो आय का हिस्सा बंटाते है।[5]

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-८९--यागं--पूजां दायं--पर्वदिवसादौ दानं, भागं--लाभांशं, अक्षयनिधिं-अव्ययं भाण्डागारं अक्षयनिधिं वा--मूलधनं येन जीर्णीभूतदेवकुलस्योद्धारः करिष्यते।

२. वही--उल्लपडसाडय त्ति--स्नानेनार्द्रे पटशाटिके-उत्तरीय परिधानवस्त्रे यस्या सा।

३. वही--डिम्भदारककुमारकाणामल्पबहुबहुतरकालकृतो विशेषः।

४. वही, पत्र-९१--मूर्च्छितो--मूढो गतविवेकचैतन्य इत्यर्थः।
ग्रथितो--लोभतन्तुभिः संदर्भितः।
गृद्धः--आकांक्षावान्।
अभ्युपपन्नः--अधिकं तदेकाग्रतां गत इति।

५. वही, पत्र-९५--दासाः-गृहदासी पुत्राः, प्रेष्याः--ये तथाविधप्रयोजनेषु नगरान्तरादिषु प्रेष्यन्ते, भृतकाः--ये आबालत्वात् पोषिताः, भाइल्लग त्ति--ये भागं लाभस्य लभन्ते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

सफलता का आधार है--श्रद्धा। श्रद्धाशील व्यक्ति कभी दिग्भ्रान्त नहीं होता। वह जिनमत के प्रति कभी संदेह नहीं करता। जो जिनमत के प्रति संदिग्ध रहता है, वह सफलता से वंचित रह जाता है।

प्रस्तुत अध्ययन का नाम 'अण्ड' है। इसमें दो अण्डग्राही पुरुषों के माध्यम से दो प्रकार की मनोवृत्तियों का चित्रण किया गया है। मन:स्थिति और परिस्थिति किस तरह से जुड़े हुए हैं–प्रस्तुत अध्ययन इसका जीवन्त निदर्शन है।

सागरदत्त के मन में सन्देह की रेखा उभर आई। उसने सोचा--इस अण्डे से बच्चा उत्पन्न होगा या नहीं? सन्देह के कारण वह उसे बार-बार उलटने-पलटने लगा। एक समय आया मयूरी का वह अण्डा भीतर ही भीतर सारहीन हो समाप्त हो गया।

जिनदत्तपुत्र ने भी अण्डे को देखा। उसके मन में सन्देह नहीं था। उसका दृढ़ विश्वास था---इस अण्डे से बच्चा अवश्य उत्पन्न होगा। विश्वास फलीभूत हुआ। यथासमय मयूरी का वह अण्डा फूटा और उससे मयूरी का सुन्दर बच्चा उत्पन्न हुआ।

इस निदर्शन से दो प्रकार की मनोदशा सामने आती है--सन्देहयुक्त और सन्देहमुक्त। सन्देहयुक्त रहने वाला कभी सफल नहीं होता। सन्देहमुक्त रहने वाला सफलता का वरण कर लेता है। इसी तरह जो साधु साधुत्व को स्वीकार कर जिनमत के प्रति संदिग्ध रहता है, वह प्रथम पुरुष की तरह है। वह निर्ग्रन्थ प्रवचन के प्रति शंकित, कांक्षित रहता हुआ इहलोक व परलोक दोनों में परिभव को प्राप्त करता है। जो जिनमत के प्रति आस्थाशील रहता है वह इहलोक में ही नहीं, परलोक में भी सुखी बनता है।

वृत्तिकार द्वारा समुद्धृत निगमन गाथाओं में सन्देह को अनर्थ का हेतु बतलाया गया है। इसके अतिरिक्त वहां यथार्थ बोध के हेतुओं की भी सुन्दर मीमांसा की गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तच्चं अज्झयणं : तीसरा अध्ययन

अंडे : अंड

उक्खेव-पदं

१. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं दोच्चस्स अज्झयणस्स नायाधम्मकहाणं अयमट्ठे पण्णत्ते, तच्चस्स णं भंते! नायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

२. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था—वण्णओ।।

३. तीसे णं चंपाए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए सुभूमिभागे नामं उज्जाणे--सव्वोउय-पुप्फ-फल-समिद्धे सुरम्मे नंदणवणे इव सुह-सुरभि-सीयलच्छायाए समणुबद्धे।।

४. तस्स णं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उत्तरओ एगदेसम्मि मालुयाकच्छए होत्था--वण्णओ।।

मयूरी अंड-पदं

५. तत्थ णं एगा वणमयूरी दो पुट्ठे परियागए पिट्ठुंडी-पंडुरे निव्वणे निरुवहए भिण्णमुट्ठिप्पमाणे मयूरी-अंडए पसवइ, पसवित्ता सएणं पक्खवाएणं सारक्खमाणी संगोवेमाणी संविट्ठेमाणी विहरइ।।

सत्थवाहदारग-पदं

६. तत्थ णं चंपाए नयरीए दुवे सत्थवाहदारगा परिवसंति, तं जहा--जिणदत्तपुत्ते य सागरदत्तपुत्ते य--सहजायया सहवड्ढियया सहपंसुकीलियया सहदारदरिसी अण्णमण्णमणुरत्तया अण्णमण्ण-मणुव्वयया अण्णमण्णच्छंदाणुवत्तया अण्णमण्णहिय-इच्छियकारया अण्णमण्णेसु गिहेसु किच्चाइं करणिज्जाइं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति।।

७. तए णं तेसिं सत्थवाहदारगाणं अण्णया कयाइं एगयओ सहियाणं समुवागयाणं सण्णिसण्णाणं सण्णिविट्ठाणं इमेयारूवे

उत्क्षेप पद

१. भन्ते! यदि श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञातधर्मकथा के दूसरे अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है तो भन्ते! ज्ञाता के तीसरे अध्ययन का उन्होंने क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

२. जंबू! उस काल और उस समय चम्पा नाम की नगरी थी--वर्णक।

३. उस चम्पा नगरी के बाहर ईशानकोण में सुभूमिभाग नाम का उद्यान था। वह सब ऋतुओं में होने वाले फूलों और फलों से समृद्ध, सुरम्य तथा नन्दनवन के समान सुखकर, सुरभित और शीतलछाया से युक्त था।

४. उस सुभूमिभाग उद्यान के उत्तर में एक जगह मालुकाकक्ष था--वर्णक।

मयूरी अण्ड-पद

५. वहां एक वन-मयूरी ने दो अण्डे दिए। वे अण्डे पुष्ट, गर्भ के पश्चात् कालक्रम से उत्पन्न, चावलों के आटे से बनी पिण्डी जैसे उजले, निर्व्रण, निरुपहत और बन्द मुट्ठी जितने बड़े थे। जन्म के पश्चात् वह मयूरी उन अण्डों का अपनी पांखों से संरक्षण, संगोपन और संपोषण करती हुई रहने लगी।

सार्थवाह-पुत्र-पद

६. उस चम्पा नगरी में दो सार्थवाह पुत्र रहते थे, जैसे जिनदत्तपुत्र और सागरदत्तपुत्र। वे सहजात, सहसंवर्द्धित, सहपांशुक्रीडित, सहविवाहित (सहयौवन-प्रविष्ट) एक दूसरे में अनुरक्त, एक दूसरे का अनुगमन करने वाले, एक दूसरे की इच्छा का अनुवर्तन करने वाले और एक दूसरे की आन्तरिक इच्छा को पूर्ण करने वाले थे। वे अपने करणीय कार्यों को एक दूसरे के घर सम्पादित करते हुए रहते थे।

७. किसी समय एकत्र सम्मिलित, समुपागत, सन्निषण्ण और सन्निविष्ट उन सार्थवाह पुत्रों के मध्य परस्पर इस प्रकार का वार्तालाप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिहोकहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था--जण्णं देवाणुप्पिया! अम्हं सुहं वा दुक्खं वा पव्वज्जा वा विदेसगमणं वा समुप्पज्जइ, तण्णं अम्मेहिं एगयओ समेच्चा नित्थरियव्वं ति कट्टु अण्णमण्णमेयारूवं संगारं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता सकम्मसंपउत्ता जाया यावि होत्था ।।

हुआ--देवानुप्रियो! हमारे सामने सुख या दुःख, प्रव्रज्या या विदेश गमन--कोई भी प्रसंग आता है तो हमें मिलजुल कर एक साथ उसको पार करना है--इस प्रकार उन्होंने परस्पर प्रतिज्ञा[2] स्वीकार की। स्वीकार कर अपने-अपने कार्यों में संप्रयुक्त हो गए।

देवदत्ता गणिया-पदं

८. तत्थ णं चंपाए नयरीए देवदत्ता नामं गणिया परिवसइ--अड्ढा दित्ता वित्ता वित्थिण्ण-विउल-भवण-सयणासण-जाण-वाहणा बहुधण-जायरूव-रयया आओग-पओग-संपउत्ता विच्छड्डिय-पउर-भत्तपाणा चउसट्ठिकलापंडिया चउसट्ठिगणियागुणोववेया अउणत्तीसं विसेसे रममाणी एक्कवीस-रइगुणप्पहाणा बत्तीसपुरिसोवयारकुसला नवंगसुत्तपडिबोहिया अट्ठारसदेसीभासाविसारया सिंगारागारचारुवेसा संगय-गय-हसिय-भणिय-चेट्ठिय-विलाससंलावुल्लाव-निउण-जुत्तोवयारकुसला ऊसियज्झया सहस्सलंभा विदिण्णछत्त-चामर-बालवीयणिया कण्णीरहप्पयाया वि होत्था।

बहूणं गणियासहस्साणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणी पालेमाणी महयाऽहय-नट्ट-गीय- वाइय-तंती-तल-ताल-तुडिय-घण-मुइंग-पडुप्पवाइयरवेणं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ ।।

देवदत्ता गणिका-पद

८. उस चम्पानगरी में देवदत्ता नाम की गणिका रहती थी। वह आढ्य, दीप्त और विख्यात थी। उसके भवन, शयन, आसन, यान और वाहन विस्तीर्ण और विपुल थे। उसके पास प्रचुर धन और प्रचुर सोने-चांदी थे। वह अर्थ के आयोग-प्रयोग (लेन-देन) में संप्रयुक्त और भक्त-पान का प्रचुर मात्रा में वितरण करने वाली थी। चौसठ कलाओं में[3] पंडित, चौसठ गणिका गुणों से युक्त उनतीस विशेषों में रमण करने वाली, इक्कीस रतिगुणों से प्रधान और पुरुषों को आकर्षित करने वाले बत्तीस गुणों में कुशल थी। उसके सुप्त नौ अंग जागृत हो चुके थे (वह नवयोवना थी)। वह अठारह प्रकार की देशी भाषाओं में विशारद थी। उसका सुन्दर वेष शृंगार-घर जैसा लगता था। वह औचित्यपूर्ण चलने, हंसने, बोलने और चेष्टा करने में, विलास में, लालित्यपूर्ण संलाप में निपुण और समुचित उपचार में कुशल थी। उसके भवन पर पताकाएं फहराती थी। वह सहस्र-मुद्राओं में उपलब्ध होती थी। छत्र, चंवर और बाल-वीजन उसे (राजा द्वारा) उपहार में प्राप्त थे। वह कर्णीरथ[4] पर आरूढ़ होकर चलती थी।

वह हजारों गणिकाओं का आधिपत्य, पौरपत्य, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरत्व, आज्ञा, ऐश्वर्य और सेनापतित्व करती हुई, उनका पालन करती हुई तथा महान आहत नाट्य, गीत, वाद्य, तन्त्री, तल, ताल, तूरी तथा घन-मृदंग के पटु-प्रवादित स्वरों के साथ विपुल भोगार्ह भोगों का उपभोग करती हुई विहार कर रही थी।

सत्थवाहदारगाणं उज्जाणकीडा-पदं

९. तए णं तेसिं सत्थवाहदारगाणं अण्णया कयाइ पुव्वावर-ण्हकालसमयंसि जिमियभुत्तुत्तरागयाणं समाणाणं आयंताणं चोक्खाणं परमसुइभूयाणं सुहासणवरगयाणं इमेयारूवे मिहोकहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था--सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया! कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेत्ता तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं धूव-पुप्फ-गंध-वत्थ-मल्लालंकारं गहाय देवदत्ताए गणियाए सद्धिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिरिं पच्चणुभवमाणाणं विहरित्तए त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते कोडुंबियपुरिसे सद्दावेंति सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं देवाणुप्पिया! विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडेह, उवक्खडेत्ता तं विपुलं असण-

सार्थवाह पुत्रों का उद्यानक्रीड़ा-पद

९. किसी समय पूर्व अपराह्नकाल में भोजनोपरान्त आचमन कर साफ-सुथरे और परम-पवित्र हो बैठने के स्थान पर आ, प्रवर सुखासन में आसीन, उन सार्थवाह पुत्रों में परस्पर इस प्रकार का वार्तालाप हुआ--हमारे लिए उचित है देवानुप्रियो ! हम उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर, तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य तैयार करवाकर उस विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य तथा धूप, पुष्प, गन्धचूर्ण, वस्त्र, माला और अलंकार को साथ ले, देवदत्ता गणिका के साथ सुभूमिभाग उद्यान की उद्यान श्री का अनुभव करते हुए विहार करें--इस प्रकार उन्होंने एक दूसरे के इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। स्वीकार कर उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर, तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर उन्होंने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--जाओ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाण-खाइम-साइमं धूव-पुप्फ-गंध-वत्थ-मल्लालंकारं गहाय जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे जेणेव नंदा पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छह, उवागच्छित्ता नंदाए पोक्खरिणीए अदूरसामंते थूणामंडवं आहणह--आसियसम्मज्जिओवलित्तं पंचवण्ण-सरससुरभि-मुक्क-पुप्फपुंजोवया रकलियं कालागरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्क-धूव-डज्झंत-सुरभि-मघमघेंत-गंधुद्धुयाभिरामं सुगंधवरगंधगंधियं गंधवट्टिभूयं करेह, करेत्ता अम्हे पडिवालेमाणा-पडिवालेमाणा चिट्ठह जाव चिट्ठंति ।।

देवानुप्रियो ! तुम विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करो। तैयार कर वह विपुल, अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तथा धूप, पुष्प, गन्धचूर्ण, वस्त्र, माल्य और अलंकार लेकर, जहां सुभूमिभाग उद्यान है, जहां नन्दा पुष्पकरिणी है, वहां जाओ। वहां जाकर नन्दा पुष्पकरिणी के न दूर, न निकट एक स्थूणा-मण्डप बनाओ। उसे जल का छिड़काव कर, बुहार-झाड़, गोबर से लीप, पंचरंगे सरस सुरभिमय पुष्प-पुंज के उपचार से कलित, काली अगर, प्रवर कुंदुरु और लोबान की जलती हुई धूप की सुरभिमय महक से उठने वाली गन्ध से अभिराम, प्रवर सुरभिवाले गंधचूर्णों से सुगन्धित गन्धवर्तिका जैसा बनाओ। ऐसा कर हमारी प्रतीक्षा करते हुए वहीं ठहरो, यावत् वे वहीं ठहरे।

१०. तए णं ते सत्थवाहदारगा दोच्चंपि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी--खिप्पामेव (भो देवाणुप्पिया?) लहुकरण-जुत्त-जोइयं समखुरवालिहाण-समलिहिय-तिक्खग्गसिंगएहिं रययामय-घंट-सुत्तरज्जु-पवरकंचण-खचिय-नत्थपग्गहोग्गहियएहिं नीलुप्पलकयामेलएहिं पवर-गोण-जुवाणएहिं नाना-मणि-रयण-कंचण-घंटियाजालपरिक्खित्तं पवरलक्खणोववेयं जुत्तामेव पवहणं उवणेह। ते वि तहेव उवणेंति ।।

१०. सार्थवाह पुत्रों ने दूसरी बार भी कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--(देवानुप्रियो?) शीघ्र गतिक्रिया की दक्षता से युक्त समान खुर और पूंछ वाले, समान रूप से उल्लिखित तीखे सींगों वाले, रजतमयी घंटा वाले, धागों की डोरी तथा प्रवर स्वर्णमयी नथिनी की डोरी से बंधे हुए नील उत्पल के सेहरे वाले प्रवर तरुण बैल जिसमें जोते गए हैं, जिस पर नाना मणिरत्न और घंटिका जाल वाली झूल डाली हुई है, जो श्रेष्ठ काठ की जोत (जुए की बेल की गर्दन से जोड़ने वाली रस्सी) को रज्जुयुग्म से बंधे हुए और प्रवर लक्षणों से युक्त यान को उपस्थित करो। उन्होंने भी वैसे ही उपस्थित किया।

११. तए णं ते सत्थवाहदारगा ण्हाया कयबलिकम्मा कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ता अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा पवहणं दुरुहंति, दुरुहित्ता जेणेव देवदत्ताए गणियाए गिहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पवहणाओ पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्ता देवदत्ताए गणियाए गिहं अणुप्पविसंति ।।

११. सार्थवाह पुत्रों ने स्नान, बलिकर्म और कौतुक मंगलरूप प्रायश्चित्त किया। अल्पभार और बहुमूल्य वाले आभरणों से शरीर को अलंकृत किया। यान पर आरूढ़ हुए। आरूढ़ होकर जहां देवदत्ता गणिका का घर था, वहां आए। वहां आकर यान से उतरे। उतरकर देवदत्ता गणिका के घर में प्रवेश किया।

१२. तए णं सा देवदत्ता गणिया ते सत्थवाहदारए एज्जमाणे पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठा आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता ते सत्थवाहदारए एवं वयासी--संदिसंतु णं देवाणुप्पिया! किमिहागमणप्पओयणं?

१२. देवदत्ता गणिका ने उन सार्थवाह पुत्रों को आते हुए देखा। देखकर हृष्ट-तुष्ट हो आसन से उठी। आसन से उठकर सात-आठ पांव आगे गई। आगे जाकर उन सार्थवाह पुत्रों से इस प्रकार कहा--कहें देवानुप्रियो! किस प्रयोजन से आगमन हुआ है ?

१३. तए णं ते सत्थवाहदारगा देवदत्तं गणियं एवं वयासी--इच्छामो णं देवाणुप्पिए! तुमे सद्धिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिरिं पच्चणुब्भवमाणा विहिरित्तए ।।

१३. सार्थवाह पुत्रों ने देवदत्ता गणिका से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय ! हम तुम्हारे साथ सुभूमिभाग उद्यान की उद्यानश्री का अनुभव करते हुए विहार करना चाहते हैं।

१४. तए णं सा देवदत्ता तेसिं सत्थवाहदारगाणं एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता ण्हाया कयबलिकम्मा जाव सिरी-समाणवेसा जेणेव सत्थवाहदारगा तेणेव उवागया ।।

१४. देवदत्ता ने उन सार्थवाह पुत्रों के इस अर्थ (प्रस्ताव) को स्वीकार किया। स्वीकार कर स्नान और बलिकर्म कर यावत् श्री के समान परिधान पहन, जहां सार्थवाह पुत्र थे, वहां आयी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. तए णं ते सत्थवाहदारगा देवदत्ताए गणियाए सद्धिं जाणं दुरुहंति, दुरुहित्ता चंपाए नयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे जेणेव नंदा पोक्खरिणी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पवहणाओ पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्ता नंदं पोक्खरिणिं ओगाहेंति, ओगाहेत्ता जलमज्जणं करेंति, करेत्ता जलकिड्डं करेंति, करेत्ता ण्हाया देवदत्ताए सद्धिं (नंदाओ पोक्खरिणीओ?) पच्चुत्तरंति, जेणेव थूणामंडवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता (थूणामंडवं?) अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता सव्वालंकारभूसिया आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया देवदत्ताए सद्धिं तं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं धूव-पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारं आसाएमाणा विसाएमाणा परिभाएमाणा परिभुंजेमाणा एवं च णं विहरंति। जिमियभुत्तुत्तरागया वि य णं समाणा (आयंता चोक्खा परमसुइभूया?) देवदत्ताए सद्धिं विपुलाइं कामभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।।

१५. सार्थवाह पुत्र देवदत्ता गणिका के साथ यान पर आरूढ़ हुए। आरूढ़ हो, चम्पा नगरी के बीचोंबीच से गुजरते हुए, जहां सुभूमिभाग उद्यान था, जहां नंदा पुष्करिणी थी वहां आए। वहां आकर यान से उतरे। उतरकर नंदा पुष्करिणी का अवगाहन किया। अवगाहन कर जल-मज्जन किया। जल मज्जन कर जल-क्रीड़ा की। जल क्रीड़ा कर स्नान किया और देवदत्ता के साथ (नंदा पुष्करिणी) से बाहर निकले। जहां स्थूणा-मण्डप था वहां आए। आकर (स्थूणा-मण्डप में) प्रवेश किया। प्रवेश कर सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित और आश्वस्त-विश्वस्त हो, प्रवर सुखासन में बैठकर वे देवदत्ता गणिका के साथ उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का आस्वादन करते हुए, विशेष स्वाद लेते हुए, परस्पर बांटते हुए तथा धूप, पुष्प, वस्त्र, गन्धचूर्ण, माला और अलंकारों का उपभोग करते हुए विहार करने लगे।

भोजनोपरान्त भी वे बैठने के स्थान पर आ (आचमन कर साफ-सुथरे और परम पवित्र हो) देवदत्ता गणिका के साथ विपुल काम-भोगों को भोगते हुए विहार करने लगे।

१६. तए णं ते सत्थवाहदारगा पुव्वावरण्हकालसमयंसि देवदत्ताए गणियाए सद्धिं थूणामंडवाओ पडिणिक्खमंति, पडिणिक्खमित्ता हत्थसंगेल्लीए सुभूमिभागे उज्जाणे बहूसु आलिघरएसु य कयलिघरएसु य लताघरएसु य अच्छणघरएसु य पेच्छणघरएसु य पसाहणघरएसु य मोहणघरएसु य सालघरएसु य जालघरएसु य कुसुमघरएसु य उज्जाणसिरिं पच्चमाणुब्भवामाणा विहरंति।।

१६. सार्थवाह पुत्र अपराह्नकाल के समय देवदत्ता गणिका के साथ स्थूणा-मण्डप से बाहर निकले। निकलकर एक दूसरे का हाथ थामे, सुभूमिभाग उद्यान में बहुत से आलि-गृहों, कदली-गृहों, लता-गृहों, आसन गृहों, प्रेक्षा गृहों, प्रसाधन-गृहों, मोहन गृहों, शाखा-गृहों, जालक-गृहों और कुसुम-गृहों से उद्यानश्री का अनुभव करते हुए विहार करने लगे।

सत्थवाहदारगेहिं मयूरीअंडगाणयण-पदं

१७. तए णं ते सत्थवाहदारगा जेणेव से मालुयाकच्छए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।।

सार्थवाह पुत्रों द्वारा मयूरी के अण्डों का आनयन-पद

१७. उन सार्थवाह पुत्रों ने जहां मालुकाकक्ष था, वहां जाने का संकल्प किया।

१८. तए णं सा वणमयूरी ते सत्थवाहदारए एज्जमाणे पासइ, पासित्ता भीया तत्था महया-महया सद्देणं केकारवं विणिम्मुयमाणी-विणिम्मुयमाणी मालुयाकच्छाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता एगंसि रुक्खडालयंसि ठिच्चा ते सत्थवाहदारए मालुयाकच्छगं च अणिमिसाए दिट्ठीए पेच्छमाणी चिट्ठइ।।

१८. उस वन मयूरी ने उन सार्थवाह पुत्रों को आते हुए देखा। उन्हें देख वह भीत और त्रस्त हो उच्च स्वर से पुनः पुनः केकारव करती हुई, मालुकाकक्ष से बाहर निकली। निकलकर एक वृक्ष की डाल पर बैठ, उन सार्थवाह पुत्रों को और मालुकाकक्ष को अनिमिष दृष्टि से निहारने लगी।

१९ तए णं ते सत्थवाहदारगा अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी--जहा णं देवाणुप्पिया! एसा वणमयूरी अम्हे एज्जमाणे पासित्ता भीया तत्था तसिया उव्विग्गा पलाया महया-महया सद्देणं केकारवं विणिम्मुयमाणी-विणिम्मुयमाणी मालुयाकच्छाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता एगंसि रुक्खडायलयंसि ठिच्चा अम्हे मालुयाकच्छयं च (अणिमिसाए दिट्ठीए?) पेच्छमाणी चिट्ठइ,

१९. सार्थवाह-पुत्रों ने एक दूसरे को पुकारा। पुकार कर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय ! यह वन-मयूरी हमें इधर आते हुए देखकर, जिस प्रकार भीत, त्रस्त, तृषित और उद्विग्न होकर भागी है, उच्च स्वर से पुनः पुनः केकारव करती हुई मालुकाकक्ष से बाहर निकली है, निकलकर एक वृक्ष की डाल पर बैठ, हमें और मालुका कक्ष को (अनिमिष दृष्टि से?) निहार रही है, इसलिए यहां कोई न कोई कारण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं भवियव्वमेत्थ कारणेणं ति कट्टु मालुयाकच्छयं अंतो अणुप्पविसंति। तत्थ णं दो पुट्ठे परियागए पिट्ठुंडी-पंडुरे निव्वणे निरुवहए भिण्णमुट्ठिप्पमाणे मयूरी-अंडए पासित्ता अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी--सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं इमे वणमयूरी-अंडए साणं जातिमंताणं कुक्कुडियाणं अंडएसु पक्खिवावित्तए। तए णं ताओ जातिमंताओ कुक्कुडियाओ एए अंडए सए य अंडए सएणं पक्खवाएणं सारक्खमाणीओ संगोवेमाणीओ विहरिस्संति। तए णं अम्हं एत्थ दो कीलावणगा मयूरी-पोयगा भविस्संति त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता सए सए दासचेडए सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! इमे अंडए गहाय सगाणं जातिमंताणं कुक्कुडीणं अंडएसु पक्खिवह जाव ते वि पक्खिवेंति।।

होना चाहिए--ऐसा सोच उन्होंने मालुकाकक्ष के भीतर प्रवेश किया। वहां उन्होंने पुष्ट, गर्भ के पश्चात् कालक्रम से उत्पन्न चावलों के आटे से बनी पिण्डी-जैसे उजले, निर्व्रण, निरुपहत और बन्द मुट्ठी जितने बड़े दो मयूरी-अण्डों को देख, एक दूसरे को पुकारा। पुकार कर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो ! हमारे लिए उचित है, हम इन वनमयूरी के अण्डों को अपनी जाति-सम्पन्न मुर्गियों के अण्डों के साथ रख दें। ऐसा करने से वे जाति-सम्पन्न मुर्गियां इन अण्डों को और अपने अण्डों को अपनी पांखों से ढककर उनका पालन और संगोपन करती हुई विहार करेंगी। इन अण्डों से निष्पन्न दो मयूरी के बच्चे हमारे खिलौने बन जाएंगे--इस प्रकार उन्होंने एक दूसरे के प्रस्ताव को स्वीकार किया। स्वीकार कर अपने-अपने दासपुत्रों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--जाओ देवानुप्रियो ! तुम इन अण्डों को लेकर अपनी जाति-सम्पन्न मुर्गियों के अण्डों के साथ रख दो, यावत् उन्होंने रख दिए।

२०. तए णं ते सत्थवाहदारगा देवदत्ताए गणियाए सद्धिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिरिं पच्चणुब्भवमाणा विहरित्ता तमेव जाणं दुरूढा समाणा जेणेव चंपा नयरी जेणेव देवदत्ताए गणियाए गिहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता देवदत्ताए गिहं अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता देवदत्ताए गणियाए विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयंति, दलइत्ता सक्कारेंति सम्माणेंति सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता देवदत्ताए गिहाओ पडिणिक्खमंति, पडिणिक्खमित्ता जेणेव साइं साइं गिहाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सकम्मसंपउत्ता जाया यावि होत्था।।

२०. वे सार्थवाह पुत्र देवदत्ता गणिका के साथ सुभूमिभाग उद्यान की उद्यानश्री का अनुभव करते हुए विहार कर, उसी यान पर आरूढ़ हो, जहां चम्पानगरी थी, जहां देवदत्ता गणिका का घर था, वहां आए। वहां आकर देवदत्ता के घर में प्रवेश किया। प्रवेश कर देवदत्ता गणिका को जीवन-निर्वाह योग्य विपुल प्रीतिदान दिया। देकर उसे सत्कृत-सम्मानित किया। सत्कृत-सम्मानित कर देवदत्ता के घर से वापस निकले। निकलकर जहां अपने-अपने घर थे, वहां आए। वहां आकर वे अपने-अपने कार्यों में संप्रयुक्त हो गये।

सागरदत्तपुत्तस्स संदेहेण अंडयविणास-पदं

२१. तत्थ णं जे से सागरदत्तपुत्ते सत्थवाहदारए से णं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते जेणेव से वणमयूरीअंडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तंसि मयूरी-अंडयंसि संकिए कंखिए वितिगिंछसमावण्णे भेयसमावण्णे कलुससमावण्णे किण्णं ममं एत्थ कीलावणए मयूरी-पोयए भविस्सइ उदाहु नो भविस्सइ? त्ति कट्टु तं मयूरी-अंडयं अभिक्खणं-अभिक्खणं उव्वत्तेइ परियत्तेइ आसारेइ संसारेइ चालेइ फंदेइ घट्टेइ खोभेइ अभिक्खणं-अभिक्खणं कण्णमूलंसि टिट्टियावेइ।।

सागरदत्तपुत्र का सन्देह के द्वारा अण्डविनाश पद

२१. किसी समय वह सागरदत्त सार्थवाह का पुत्र उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर जहां वह वन-मयूरी का अण्डा था, वहां आया। वहां आकर वह उस मयूरी के अण्डे के प्रति शंकित, कांक्षित, विचिकित्सित, भेदसमापन्न और कलुषसमापन्न हो गया। उसने सोचा--इस अण्डे से मेरा खिलौना-मयूरी का बच्चा होगा या नहीं? इस दृष्टि से वह उस मयूरी के अण्डे को बार बार उलटता, पलटता, सरकाता, दूर तक सरकाता, चलाता, स्पन्दित करता, स्पर्श करता, क्षुभित करता और कान के पास ले जाकर उसे बार-बार बजाता।[१]

२२. तए णं से मयूरी-अंडए अभिक्खणं-अभिक्खणं उव्वत्तिज्जमाणे परियत्तिज्जमाणे आसारिज्जमाणे संसारिज्जमाणे चालिज्जमाणे फंदिज्जमाणे घट्टिज्जमाणे खोभिज्जमाणे अभिक्खणं-अभिक्खणं कण्णमूलंसि टिट्टियावेज्जमाणे पोच्चडे जाए यावि होत्था।।

२२. इस प्रकार बार-बार उलटने, पलटने, सरकाने, दूर तक सरकाने, चलाने, स्पन्दित करने, स्पर्श करने, क्षुभित करने और कान के पास ले जाकर बार-बार बजाने से वह मयूरी का अण्डा सारहीन[२] हो गया--पोच गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. तए णं से सागरदत्तपुत्ते सत्थवाहदारए अण्णया कयाइं जेणेव से मयूरी-अंडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं मयूरी-अंडयं पोच्चडमेव पासइ, अहो णं ममं एत्थ कीलावणए मयूरी-पोयए न जाए त्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पे करतलपल्हत्थमुहे अट्टज्झाणोवगए झियाइ।।

२३. किसी समय वह सागरदत्त सार्थवाह का पुत्र जहां वह मयूरी का अण्डा था वहां आया। वहां आकर सारहीन हुए उस मयूरी के अण्डे को देखा। अहो! इसमें मेरा खिलौना मयूरी का बच्चा उत्पन्न नहीं हुआ--इस प्रकार वह भग्न हृदय हो हथेली पर मुंह टिकाए आर्त्तध्यान में डूबा हुआ चिन्तामग्न हो गया।

२४. एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे पंचमहव्वएसु छज्जीवनिकाएसु निग्गंथे पावयणे संकिए कंखिए वितिगिंछसमावण्णे भेयसमावण्णे कलुससमावण्णे, से णं इहभवे चेव बहुणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावगाणं बहूणं सावियाण य हीलणिज्जे निंदणिज्जे खिंसणिज्जे गरहणिज्जे परिभवणिज्जे,

परलोए वि य णं आगच्छइ बहूणि दंडणाणि य बहूणि मुंडणाणि य बहूणि तज्जणाणि य बहूणि तालणाणि य बहूणि अंदुबंधणाणि य बहूणि घोलणाणि य बहूणि माइमरणाणि य बहूणि पिइमरणाणि य बहूणि भाइमरणाणि य बहूणि भगिणीमरणाणि य बहूणि भज्जामरणाणि य बहूणि पुत्तमरणाणि य बहूणि धूयमरणाणि य बहूणि सुण्हामरणाणि य,

बहूणं दारिद्दाणं बहूणं दोहग्गाणं बहूणं अप्पियसंवासाणं बहूणं पियविप्पओगाणं बहूणं दुक्ख-दोमणस्साणं आभागी भविस्सति, अणादियं च णं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं भुज्जो- भुज्जो अणुपरियट्टिस्सइ।।

२४. आयुष्मन् श्रमणो! इसी प्रकार हमारा जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य-उपाध्याय के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित हो, पांच महाव्रतों, षड्जीवनिकायों[८] और निर्ग्रन्थ-प्रवचन में शंकित, कांक्षित, विचिकित्सित, भेद-समापन्न और कलुषसमापन्न होता है, वह इस जीवन में भी बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों और बहुत श्राविकाओं द्वारा हीलनीय, निन्दनीय, कुत्सनीय, गर्हणीय और परिभवनीय होता है।

परलोक में भी वह बहुत दण्ड, बहुत मुण्डन, बहुत तर्जना, बहुत ताड़ना, बहुत सांकल-बंधन, बहुत भ्रमण, बहुत मातृ-मरण, बहुत पितृ-मरण, बहुत भ्रातृ-मरण, बहुत भगिनी-मरण, बहुत भार्या-मरण, बहुत पुत्र-मरण, बहुत पुत्री-मरण और बहुत पुत्रवधू- मरण को प्राप्त होता है।

वह बहुत दरिद्रता, बहुत दौर्भाग्य, बहुत अप्रिय संवास, बहुत प्रिय-विप्रयोग और बहुत दु:ख-दौर्मनस्य का आभागी होगा। वह अनादि-अनन्त, प्रलम्ब मार्ग तथा चार अन्त वाले संसार रूपी कान्तार में पुन:पुन: अनुपरिवर्तन करेगा[९]।

जिणदत्तपुत्तस्स सद्धाए मयूर-लद्धि-पदं

२५. तए णं से जिणदत्तपुत्ते जेणेव से मयूरी-अंडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तंसि मयूरी-अंडयंसि निस्संकिए (निक्कंखिए निव्वितिगिंछे?) सुव्वत्तए णं मम एत्थ कीलावणए मयूरी-पोयए भविस्सइ त्ति कट्टु तं मयूरी-अंडयं अभिक्खणं-अभिक्खणं नो उव्वत्तेइ नो परियत्तेइ नो आसारेइ नो संसारेइ नो चालेइ नो फंदेइ नो घट्टेइ नो खोभेइ अभिक्खणं-अभिक्खणं कण्णमूलंसि नो टिट्टियावेइ।।

जिनदत्तपुत्र की श्रद्धा से मयूर उपलब्धि-पद

२५. वह जिनदत्तपुत्र जहां वह मयूरी का अण्डा था, वहां आया, वहां आकर उस मयूरी के अण्डे में नि:शंकित (नि:कांक्षित, निर्विचिकित्सित?) हो, इस अण्डे से मेरा खिलौना-मयूरी का बच्चा होगा, यह स्पष्ट है--ऐसा सोच, वह उस मयूरी के अण्डे को न बार-बार उलटता, न पलटता, न सरकाता, न दूर सरकाता, न चलाता, न स्पन्दित करता, न स्पर्श करता, न क्षुभित करता और न कान के पास ले जाकर उसे बार-बार बजाता।

२६. तए णं से मूयरी-अंडए अणुव्वत्तिज्जमाणे जाव अटिट्टियाविज्जमाणे कालेणं समएणं उब्भिन्ने मयूरी-पोयए एत्थ जाए।।

२६. तब न उलटने यावत् न बजाने के कारण यथाकाल यथासमय वह मयूरी का अण्डा फूटा और उससे मयूरी का बच्चा उत्पन्न हुआ।

२७. तए णं से जिणदत्तपुत्ते तं मयूरी-पोययं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे मयूर-पोसए सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--तुब्भे णं देवाणुप्पिया! इमं मयूर-पोयगं बहूहिं मयूर-पोसण-पाओग्गेहिं दव्वेहिं अणुपुव्वेणं सारक्खमाणा संगोवेमाणा संवड्ढेह, नट्टुल्लगं च सिक्खावेह।।

२७. उस जिनदत्त-पुत्र ने उस मयूरी के बच्चे को देखा। उसे देख, हृष्ट-तुष्ट हो, मयूर-पोषकों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! इस मोर के बच्चे का बहुत से मयूर पोषण-प्रायोग्य द्रव्यों से क्रमश: संरक्षण और संगोपन करते हुए संवर्द्धन करो और इसे नृत्य करना सिखाओ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८. तए णं ते मयूर-पोसगा जिणदत्तपुत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, तं मयूर-पोयगं गेण्हंति, जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छंति, तं मयूर-पोयगं बहूहिं मयूर-पोसण-पाओग्गेहिं दव्वेहिं अणुपुव्वेणं सारक्खमाणा संगोवेमाणा संवड्ढेंति, नदुल्लगं च सिक्खावेंति ।।

२८. उन मयूर-पोषकों ने जिनदत्तपुत्र के इस अर्थ को स्वीकार किया। उस मोर के बच्चे को हाथ में उठाया। जहां अपना घर था, वहां आए। उस मोर के बच्चे का बहुत से मयूर-पोषण-प्रायोग्य द्रव्यों से क्रमशः संरक्षण और संगोपन करते हुए संवर्द्धन किया और उसे नृत्य करना सिखाया।

२९. तए णं से मयूर-पोयए उम्मुक्कबालभावे विण्णय-परिणयमेत्ते जोव्वणगमणुपत्ते लक्खण-वंजण-गुणोववेए माणुम्माण-प्पमाणपडिपुण्णपक्ख-पेहुणकलावे विचित्त-पिच्छसतचंदए नीलकंठए नच्चणसीलए एगाए चप्पुडियाए कयाए समाणीए अणेगाइं नदुल्लगसयाइं केकाइयसयाणि य करेमाणे विहरइ ।।

२९. वह मोर का बच्चा शैशव को पार कर विज्ञ और कला का पारगामी बन, यौवन को प्राप्त हो, लक्षण और व्यञ्जन की विशेषता वाला, मान, उन्मान और प्रमाण से परिपूर्ण पक्ष और मयूरांग कलाप वाला, सैकड़ों चन्द्रों से युक्त रंग-बिरंगी पांखों वाला, नीलकण्ठ, नर्तनशील हो एक चुटकी बजाते ही अनेक सैकड़ों प्रकार के नृत्य और सैकड़ों प्रकार के केकारव करता हुआ विहार करने लगा।

३०. तए णं ते मयूर-पोसगा तं मयूर-पोयगं उम्मुक्कबालभावं जाव केकाइयसयाणि य करेमाणं पासित्ता णं तं मयूर-पोयगं गेण्हंति, गेण्हित्ता जिणदत्तपुत्तस्स उवणेंति ।।

३०. उन मयूर-पोषकों ने उस मोर के बच्चे को शैशव को पार कर यावत् सैकड़ों प्रकार के केकारव करते हुए देखकर उस मोर के बच्चे को हाथ में उठाया। उठाकर जिनदत्त पुत्र को सौंप दिया।

३१. तए णं से जिणदत्तपुत्ते सत्थवाहदारए मयूर-पोयगं उम्मुक्कबालभावं जाव केकाइयसयाणि य करेमाणं पासित्ता हट्ठतुट्ठे तेसिं विपुलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयइ, दलइत्ता पडिविसज्जेइ ।।

३१. उस मोर के बच्चे को शैशव को पार कर यावत् सैकड़ों प्रकार के केकारव करते हुए देखकर हृष्ट-तुष्ट हुए सार्थवाह दारक जिनदत्त पुत्र ने उन मयूर-पोषकों को विपुल जीवन-निर्वाह योग्य प्रीतिदान दिया। प्रीतिदान देकर उन्हें प्रतिविसर्जित कर दिया।

३२. तए णं से मयूर-पोयगे जिणदत्तपुत्तेणं एगाए चप्पुडियाए कयाए समाणीए नंगोला-भंग-सिरोधरे सेयावंगे ओयारिय-पइण्णपक्खे उक्खित्तचंदकाइय-कलावे केक्काइयसयाणि मुंचमाणे नच्चइ ।।

३२. जिनदत्त के द्वारा एक चुटकी बजाते ही वह मोर का बच्चा अपनी गर्दन को पूंछ की भांति टेढ़ा कर अपांग की श्वेतिमा को प्रदर्शित करता हुआ पांखों को फैला (छतरी तान कर) चन्द्रक युक्त कलाप को ऊपर उठा, सैकड़ों प्रकार के केकारव करता हुआ नृत्य करने लगा।

३३. तए णं से जिणदत्तपुत्ते तेणं मयूर-पोयएणं चंपाए नयरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु सएहि य साहस्सिएहि य सयसाहस्सिएहि य पणिएहिं जयं करेमाणे विहरइ ।।

३३. वह जिनदत्तपुत्र उस मोर के बच्चे के कारण चंपानगरी के दोराहों, तिराहों, चौराहों, चौकों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और मार्गों में सैकड़ों, हजारों और लाखों के दांव जीतता हुआ विहार करने लगा।

३४. एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे पंचमहव्वएसु छज्जीवनिकाएसु निग्गंथे पावयणे निस्संकिए निक्कंखिए निव्वितिगिंछे, से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावगाणं बहूणं सावियाण य अच्चणिज्जे वंदणिज्जे नमंसणिज्जे पूयणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं विणएणं पज्जुवासणिज्जे भवइ।

परलोए वि य णं नो बहूणि हत्थच्छेयणाणि य कण्णच्छेयणाणि य नासाछेयणाणि य एवं--हिययउप्पायणाणि य वसणुप्पायणाणि य उल्लंबणाणि य पाविहिइ, पुणो अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइस्सइ ।।

३४. आयुष्मन् श्रमणो ! इसी प्रकार हमारा जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य-उपाध्याय के पास मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित हो, पांच महाव्रतों, षट्जीवनिकायों और निर्ग्रन्थ-प्रवचन में निःशंकित, निःकांक्षित और निर्विचिकित्सित रहता है, वह इस जीवन में बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों और बहुत श्राविकाओं द्वारा अर्चनीय, वन्दनीय, नमस्करणीय, पूजनीय, सत्करणीय, सम्माननीय, कल्याण, मंगल, देव, चैत्य और विनय पूर्वक पर्युपासनीय होता है।

परलोक में भी वह बहुत हस्तछेदन, कर्णछेदन, नासाछेदन तथा इसी प्रकार हृदय-उत्पाटन, वृषण-उत्पाटन और फांसी को प्राप्त नहीं करेगा और वह अनादि-अनन्त, प्रलम्बमार्ग तथा चार अन्त वाले संसार रूपी कान्तार का पार पा लेगा--मुक्त हो जाएगा।[1]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निक्खेव-पदं

३५. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थगरेणं जाव सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपत्तेणं तच्चस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

—त्ति बेमि॥

निक्षेप-पद

३५. जम्बू ! इस प्रकार धर्म के आदिकर्ता, तीर्थंकर यावत् सिद्धिगति नाम वाले स्थान को संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के तीसरे अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

--ऐसा मैं कहता हूं।

वृत्तिकृता समुद्धृता निगमनगाथा—

जिणवरभासियभावेसु, भावसच्चेसु भावओ मइमं।
नो कुज्जा संदेहं, संदेहोऽणत्थहेउ त्ति॥१॥

निसंदेहत्तं पुण, गुणहेउं जं तओ तयं कज्जं।
एत्थं दो सेट्ठिसुया, अंडयगाही उदाहरणं॥२॥

कत्थइ मइदुब्बल्लेण, तव्विहायरियविरहओ वावि।
नेयगहणत्तणेणं, नाणावरणोदयेणं च॥३॥
हेऊदाहरणासंभवे य, सइ सुट्ठु जं न बुज्झेज्जा।
सव्वण्णुमयमवितहं, तहावि इइ चिंतए मइमं॥४॥

अणुवकय-पराणुग्गह-परायणा उ जिणा जगप्पवरा।
जिय-राग-दोस-मोहा, य नन्नहावाइणो तेण॥५॥

वृत्तिकार द्वारा समुद्धृत निगमन गाथा--

१. मतिमान पुरुष जिनवर द्वारा भाषित भावसत्य भावों में भाव से सन्देह न करे। सन्देह अनर्थ का हेतु है।

२. इसके विपरीत नि:संदिहता गुण का हेतु है, अत: भाव से असंदिग्ध रहे। यहां अण्डग्राही दो श्रेष्ठीपुत्र उदाहरण हैं।

३,४. कदाचित् मति की दुर्बलता, तथाविध आचार्य का अभाव, ज्ञेय की अग्रहणता, ज्ञानावरणीय कर्म का उदय, हेतु और दृष्टान्त का अभाव—इन कारणों से एक बार सम्यक् बोध न भी हो, तो भी मतिमान पुरुष यह सोचे सर्वज्ञ द्वारा अनुमत तत्त्व अवितथ है।

५. अकारण परानुग्रह-परायण, राग-द्वेष और मोह के विजेता जगत्-प्रवर जिन अन्यथा भाषण नहीं करते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

सूत्र ६

१. करणीय कार्यों को (किच्चाइं करणिज्जाइं)

कृत्य और करणीय--इनकी व्याख्या वृत्तिकार ने दो प्रकार से की है--

१. विशेषण-विशेष्य के रूप में इनका अर्थ होता है--कृत्यकरणीय कर्त्तव्य प्रयोजन।

२. दोनों पदों को स्वतन्त्र मानकर कृत्य और करणीय का अर्थ किया गया है वहां कृत्य का अर्थ है--नित्य सम्पादित किए जाने वाले कार्य और करणीय का अर्थ है--कदाचित् सम्पादित किए जाने वाले कार्य।[१]

सूत्र ७

२. प्रतिज्ञा (संगारं)

संगार यह देशी शब्द है। इसका अर्थ होता है--संकेत।[२] संस्कृत शब्दकोश में 'संगर' शब्द प्रतिज्ञा के अर्थ में है।[३] प्रस्तुत प्रकरण में यही अर्थ संगत है।

सूत्र ८

३. चौसठ कलाओं में (चउसट्ठिकला)

चौसठ कला--स्त्रियों के लिए उपयोगी गीत, नृत्य आदि विद्या शाखाएं। वात्स्यायन सूत्र में इनका विस्तार से उल्लेख है। ऐसा वृत्तिकार ने भी निर्देश दिया है।[४]

४. कर्णीरथ-वाहन विशेष (कण्णीरह)

कर्णीरथ के दो अर्थ हैं--

१. वह रथ जिसे कहार कंधे पर ढोवें।

२. स्त्रियों के चढ़ने के लिए पर्दा लगा हुआ रथ।[५]

कर्णीरथ किन्ही वैभवशाली व्यक्तियों के पास ही हुआ करता था।[६]

उस समय नगर वधुओं को भी राजकीय सम्मान प्राप्त होता था और कर्णीरथ उन्हें राजाओं द्वारा अनुज्ञात होते थे।

सूत्र १०

५. शीघ्र गतिक्रिया की दक्षता से युक्त (लहुकरणजुत्तजोइयं)

लघुकरण का अर्थ है शीघ्रता से संपादित की जाने वाली गमन आदि क्रिया। दक्षता से युक्त पुरुषों द्वारा जोते गये रथ को लघुकरण युक्त योजित कहा गया है।[७]

सूत्र २१

६. प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त संकिए, कंखिए, वितिगिच्छे, भेद समापन्ने, कलुससमापन्ने--ये पांच शब्द संदिग्ध चेतना की अभिव्यक्ति देने वाले हैं।

शंकित--यह कार्य होगा या नहीं--इस प्रकार के विकल्पों से युक्त चेतना वाला।

कांक्षित--विवक्षित फल कब मिलेगा--इस प्रकार की आकांक्षा-उत्सुकता युक्त चेतनावाला।

विचिकित्सत--अमुक निष्पत्ति का उपयोग मैं कर सकूंगा अथवा नहीं--इस प्रकार की शंकित चेतना वाला।

भेद समापन्न--भेद समापन्न का अर्थ है दुविधापूर्ण मनः स्थिति वाला। उसका चित्त वस्तु के सद्भाव अथवा असद्भाव विषयक विकल्पों से व्याकुलित रहता है।

कलुषसमापन्न--मति की मलिनता को प्राप्त।[८]

सूत्र २२

७. सारहीन (पोच्चडे)

यह देशी शब्द है। इसका अर्थ है सारहीन हो जाना।[९] राजस्थानी भाषा में सड़े-गले के अर्थ में प्रयुक्त होने वाला 'पोचा' या 'पोच जाना' इसी 'पोच्चड' शब्द का प्रतिनिधित्व करता है।

सूत्र २४

८. पांच महाव्रतों व षड्जीवनिकायों में (पंचमहव्वएसु छज्जीवनिकाएसु)

भगवान महावीर ने मुनि के लिए जो आचार-संहिता निर्धारित की

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-९७--किच्चाइं करणीयाइं त्ति--कर्त्तव्यानि यानि प्रयोजनानीत्यर्थः अथवा कृत्यानि--नैत्यिकानि करणीयानि--कादाचित्कानि।

२. वही, पत्र-९८--'संगार' त्ति--संकेतं।

३. अभिधान चिन्तामणि २/१९२

४. ज्ञातावृत्ति, पत्र-९९--चतुः षष्टिकलाः गीतनृत्यादिकाः स्त्रीजनोचिता वात्स्यायनप्रसिद्धाः।

५. अभिधान चिन्तामणि ३/४१७

६. ज्ञातावृत्ति, पत्र-९९--कर्णीरथो हि ऋद्धिमतां केषांचिदेव भवतीति सोपि तस्या अस्तीत्यतिशयप्रतिपादनार्थोऽपि शब्दः।

७. वही--लघुकरणं गमनादिकाशीघ्रक्रिया दक्षत्वमित्यर्थः, तेन युक्ता ये पुरुषास्तैर्योजितं--यन्त्रयूपादिभिः सम्बन्धितं तत्तथा।

८. वही, पत्र-१०२--शङ्कितः--किमिदं निष्पत्स्यते न वेत्येवं विकल्पवान्।

कङ्क्षितः-तत्फलाकाङ्क्षावान् कदा निष्पत्स्यते इतो विवक्षितं फलमित्यौत्सुक्य-वानित्यर्थः।

विचिकित्सितः--जातेऽपीतो मयूरपोतेऽतः किं मम क्रीड़ालक्षणं फलं भविष्यति न वेत्येवं फलं प्रति शङ्कावान्।

भेदसमापन्नोमते-र्द्वैधा-भावं प्राप्तः, सद्भावासद्भाव-विषय-विकल्प-व्याकुलित इति भावः, कलुष-समापन्नो- मतिमालिन्यमुपगतः।

९. वही--पोच्चडं त्ति असारं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसमें षड्जीवनिकाय और पांच महाव्रत का स्थान प्रमुख है।

द्रष्टव्य--दसवेआलियं--४/१-२३

सूयगडो--१/१/५६-५९

आचारांग भाष्यम्--प्रथम अध्ययन

९. (सूत्र २४)

प्रस्तुत सूत्र में हीलनीय, निन्दनीय, कुत्सनीय गर्हणीय और परिभवनीय--ये पांच शब्द अवमानना के द्योतक हैं। इनमें अर्थभेद भी है--

१. हीलनीय--गुरु या कुल की न्यूनता का उद्घाटन कर तिरस्कृत करना।

२. निन्दनीय--वाणी के प्रयोग से तिरस्कृत करना।

३. कुत्सनीय--मन में अवज्ञा के भाव उत्पन्न होना।

४. गर्हणीय--सम्बन्धित व्यक्ति के समक्ष ही उसका तिरस्कार करना।

५. परिभवनीय--अभ्युत्थान आदि लोकोपचार विनय का प्रयोग न करना।[1]

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१०२--हीलनीयो गुरुकुलाद्युद्घट्टनतः निन्दनीयः कुत्सनीयो--मनसा, खिंसनीयो--जनमध्ये गर्हणीयः--समक्षमेव च परिभवनीयोऽनभ्युत्थानादिभिः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

लक्ष्य प्राप्ति की मुख्य बाधा है--इन्द्रिय एवं मन की चंचलता। जिस व्यक्ति का अपनी इन्द्रियों पर सम्यक् नियन्त्रण नहीं होता, प्रिय विषय के प्रति राग और अप्रिय विषय के प्रति द्वेष उसके मन की एकाग्रता को खण्डित करता रहता है। प्रस्तुत अध्ययन में कछुए के दृष्टान्त से इन्द्रिय गुप्ति से होने वाले लाभ और अगुप्तेन्द्रियता की हानि का हृदयग्राही निरूपण हुआ है।

जैन, बौद्ध और वैदिक सभी धर्मग्रन्थों में इन्द्रियनिग्रह के लिए कूर्म का दृष्टान्त प्रसिद्ध है। तथागत बुद्ध ने साधक के लिए कूर्म का रूपक दिया है। सूत्रकृतांग सूत्र में भी इन्द्रियनिग्रह के लिए कूर्म का दृष्टान्त उपलब्ध है।[१] गीता में इन्द्रियनिग्रह को स्थितप्रज्ञता का लक्षण बताया गया है।[२]

मृतगंगातीर नामक द्रह में दो कछुए रहते थे। एक अपनी चंचलता के कारण अकाल-विनाश को प्राप्त हुआ। दूसरे ने अपने अंगों को संयत रखा। चिरकालीन कायगुप्ति के बाद धीरे से ग्रीवा निकालकर दिशावलोकन किया। सियारों की विपत्ति से अपने को मुक्त पाकर एक साथ चारों पैर निकाले और शीघ्रता से पुनः द्रह में जा पहुंचा।

निष्कर्ष की भाषा में ग्रन्थकार कहते हैं--जो साधक जितेन्द्रिय होता है वह सभी प्रकार की ऐहिक और पारलौकिक विपत्तियों से मुक्त हो जाता है, चार तीर्थ की दृष्टि में वन्दनीय-पूजनीय होता है। इसके विपरीत जो इन्द्रिय नियन्त्रण में असफल हो जाता है, वह अपने साधना मार्ग से च्युत हो जाता है और शृगालों से ग्रस्त कूर्म की भांति अनेक अनर्थ परम्पराओं को प्राप्त होता है।

१ सूयगडो १/८/१६--जहा कुम्मे सअंगाइं, सए देहे समाहरे।
एवं पावाइं मेहावी, अज्झप्पेण समाहरे।।

२. श्रीमद्भगवद्गीता २/५८--यदा संहरते चायं, कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउत्थं अज्झयणं : चौथा अध्ययन

कुम्मे : कूर्म

उक्खेव-पदं

१. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं तच्चस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, चउत्थस्स णं भंते! नायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

२. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसी नामं नयरी होत्था--वण्णओ।।

३. तीसे णं वाणारसीए नयरीए उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए गंगाए महानईए मयंगतीरद्दहे नामं दहे होत्था--अणुपुव्वसुजायवप्प-गंभीरसीयलजले अच्छ-विमल-सलिल-पलिच्छण्णे संछण्ण-पत्त-पुप्फ-पलासे बहुउप्पल-पउम-कुमुय-नलिण-सुभग-सोगंधिय-पुंडरीय-महापुंडरीय-सयपत्त-सहस्सपत्त-केसरपुप्फोवचिए पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे।।

४. तत्थ णं बहूणं मच्छाण य कच्छभाण य गाहाण य मगराण य सुंसुमाराण य सयाणि य सहस्साणि य सयसहस्साणि य जूहाइं निब्भयाइं निरुव्विग्गाइं सुहंसुहेणं अभिरममाणाइं-अभिरममाणाइं विहरंति।।

५. तस्स णं मयंगतीरद्दहस्स अदूरसामंते, एत्थ णं महं एगे मालुयाकच्छए होत्था--वण्णओ।।

पावसियालग-पदं

६. तत्थ णं दुवे पावसियालगा परिवसंति--पावा चंडा रुद्दा तल्लिच्छा साहसिया लोहियपाणी आमिसत्थी आमिसाहारा आमिसप्पिया आमिसलोला आमिसं गवेसमाणा रत्तिवियालचारिणो दिया पच्छन्नं या वि चिट्ठंति।।

कुम्म-पदं

७. तए णं ताओ मयंगतीरद्दहाओ अण्णया कयाइं सूरियंसि चिरत्थमियंसि लुलियाए संझाए पविरलमाणुसंसि निसंत-पडिनिसंतंसि समाणंसि

उत्क्षेप-पद

१. भन्ते! यदि श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञातधर्मकथा के तीसरे अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है तो भन्ते! ज्ञातधर्मकथा के चौथे अध्ययन का उन्होंने क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

२. जम्बू! उस काल और उस समय वाराणसी नाम की नगरी थी--वर्णक।

३. उस वाराणसी नगरी के ईशान कोण में महानदी गंगा से निःसृत मृतगंगातीरहृद[1] नाम का हृद था। वह उत्तरोत्तर सुन्दर तट वाला, अगाध और शीतल जल वाला, स्वच्छ और विमल जल से भरा हुआ, पद्मिनी-दल और कुसुम-दल से आच्छादित, प्रफुल्ल और केशर-प्रधान, नाना उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगन्धिक, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र और सहस्रपत्र कमलों से उपचित मन को आह्लादित करने वाला, दर्शनीय, कमनीय और रमणीय था।

४. उस हृद में बहुत प्रकार के मत्स्य, कच्छप, ग्राह (मगर विशेष) मगर (हिंसक जलचर प्राणी) और सुंसुमारों के सैकड़ों, हजारों और लाखों यूथ निर्भय, निरुद्विग्न, सुखपूर्वक अभिरमण करते-करते विहार करने लगे।

५. उस मृतगंगातीरहृद के न दूर, न निकट एक महान् मालुकाकक्ष था--वर्णक।

पाप श्रृगालक-पद

६. वहां दो दुष्ट श्रृगाल रहते थे। वे दुष्ट, चण्ड, रुद्र पाप-लिप्सु, साहसिक, लोहित-पाणि, मांसार्थी, मांसाहारी, मांसप्रिय और मांसलोलुप थे। अतः वे मांस की खोज में रात्रि के समय तथा सन्ध्याकाल में घूमते और दिन में प्रच्छन्न रहते थे।

कूर्म-पद

७. किसी समय जब सूर्यास्त हुए बहुत समय हो चुका, रात गहरा गई, जब मनुष्यों का गमनागमन कम हो गया[2], घर से बाहर गये लोग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुवे कुम्मगा आहारत्थी आहारं गवेसमाणा सणियं-सणियं उत्तरंति, तस्सेव मयंगतीरद्दहस्स परिपेरंतेणं सव्वओ समंता परिघोलमाणा-परिघोलमाणा वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति।।

पुनः अपने-अपने घरों में लौट आए[1], तब दो आहारार्थी कछुए आहार की खोज में धीरे-धीरे मृतगंगातीरहृद से उतरे। उसी मृतगंगातीरहृद के परिपार्श्व में चारों ओर घूमते-घूमते जीवन यापन करते हुए विहार करने लगे।

पावसियालगाणं आहारगवेसण-पदं

८. तयाणंतरं च णं ते पावसियालगा आहारत्थी आहारं गवेसमाणा मालुयाकच्छगाओ पडिणिक्खमंति, पडिणिक्खमित्ता जेणेव मयंगतीरद्दहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तस्सेव मयंगतीरद्दहस्स परिपेरंतेणं परिघोलमाणा-परिघोलमाणा वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति।।

९. तए णं ते पावसियालगा ते कुम्मए पासंति, पासित्ता जेणेव ते कुम्मए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।।

कुम्माणं साहरण-पदं

१०. तए णं ते कुम्मगा ते पावसियालए एज्जमाणे पासंति, पासित्ता भीया तत्था तसिया उव्विग्गा संजायभया हत्थे य पाए य गीवाओ य सएहिं-सएहिं काएहिं साहरंति, साहरित्ता निच्चला निप्फंदा तुसिणीया संचिट्ठंति।।

११. तए णं ते पावसियालगा जेणेव ते कुम्मगा तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता ते कुम्मए सव्वओ समंता उव्वत्तेंति परियत्तेंति आसारेंति संसारेंति चालेंति घट्टेंति फंदेंति खोभेंति नहेहिं आलुंपंति दंतेहि य अक्खोडेंति, नो चेव णं संचाएंति तेसिं कुम्मगाणं सरीरस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पाइत्तए छविच्छेयं वा करेत्तए।।

१२. तए णं ते पावसियालगा ते कुम्मए दोच्चंपि तच्चंपि सव्वओ समंता उव्वत्तेंति परियत्तेंति आसारेंति संसारेंति चालेंति घट्टेंति फंदेंति खोभेंति नहेहिं आलुंपंति दंतेहि य अक्खोडेंति, नो चेव णं संचाएंति तेसिं कुम्मगाणं सरीरस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पाइत्तए छविच्छेयं वा करेत्तए, ताहे संता तंता परितंता निव्विण्णा समाणा सणियं-सणियं पच्चोसक्कंति, एगंतमवक्कमंति, निच्चला निप्फंदा तुसिणीया संचिट्ठंति।।

अगुत्त-कुम्मस्स मच्चु-पदं

१३. तए णं एगे कुम्मए ते पावसियालए चिरगए दूरंगए जाणित्ता सणियं-सणियं एगं पायं निच्छुभइ।।

दुष्ट शृगालों द्वारा आहार-गवेषण-पद

८. तदनन्तर आहारार्थी वे दुष्ट शृगाल आहार की खोज करते करते उस मालुकाकक्ष से बाहर निकले। बाहर निकलकर जहां मृतगंगातीर हृद था, वहां आए। वहां आकर मृतगंगातीरहृद के परिपार्श्व में घूमते-घूमते जीवन-यापन करते हुए विहार करने लगे।

९. तब उन दुष्ट शृगालों ने उन कछुओं को देखा। देखकर जहां वे कछुए थे वहीं जाने का संकल्प किया।

कूर्मों द्वारा संहरण-पद

१०. उन कछुओं ने उन दुष्ट शृगालों को आते हुए देखा, देखकर भीत, त्रस्त, तृषित, उद्विग्न और भयाक्रान्त हो अपने हाथ-पांव एवं गर्दन को अपने-अपने शरीर में संहृत कर लिया। संहृत कर निश्चल, निस्पंद और मौन हो गए।

११. वे दुष्ट शृगाल, जहां वे कछुए थे वहां आए। वहां आकर उन कछुओं को चारों से उलटा, पलटा, सरकाया, दूर तक सरकाया, चलाया, स्पर्श किया, स्पन्दित किया, क्षुभित किया। नखों से नोचा, दांतों से खींचा, पछाड़ा फिर भी वे उन कछुओं के शरीर में किंचित् भी आबाधा या विबाधा उत्पन्न करने में और छविच्छेद (अंगभंग) करने में समर्थ नहीं हुए।

१२. तब उन दुष्ट शृगालों ने दूसरी-तीसरी बार भी उन कछुओं को चारों ओर से उलटा, पलटा, सरकाया, दूर तक सरकाया, चलाया, स्पर्श किया, स्पन्दित किया, क्षुभित किया, नखों से नोचा, दांतों से खींचा, पछाड़ा फिर भी वे उन कछुओं के शरीर में किंचित् भी आबाधा या विबाधा उत्पन्न करने में और छविच्छेद करने में समर्थ नहीं हुए तो वे श्रान्त, क्लान्त, परिक्लान्त और उदास होकर धीरे-धीरे पीछे सरक गए, एकान्त में चले गए और निश्चल निस्पंद तथा मौन हो गए।

अगुप्त कूर्म का मृत्यु-पद

१३. उन दुष्ट शृगालों को गए बहुत समय हो चुका और वे बहुत दूर चले गए, यह जानकर एक कछुए ने धीरे-धीरे अपने एक पांव को बाहर निकाला।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. तए णं ते पावसियालगा तेणं कुम्मएणं सणियं-सणियं एगं पायं नीणियं पासंति, पासित्ता सिग्घं तुरियं चवलं चंडं जइणं वेगियं जेणेव से कुम्मए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तस्स णं कुम्मगस्स तं पायं नखेहिं आलुंपंति दंतेहिं अक्खोडेंति, तओ पच्छा मंसं च सोणियं च आहरेंति, आहारेत्ता तं कुम्मगं सव्वओ समंता उव्वत्तेंति जाव नो चेव णं संचाएंति तस्स कुम्मगस्स सरीरस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पाइत्तए छविच्छेयं वा करेत्तए।।

१४. उन दुष्ट शृगालों ने उस कछुए को धीरे-धीरे एक पांव बाहर निकालते हुए देखा। यह देखकर वे शीघ्र, त्वरित, चपल, चण्ड, तीव्र और उतावली गति से जहां वह कछुआ था, वहां आए। वहां आकर उस कछुए के उस पांव को नखों से नोचा। दांतों से खींचा। उसके बाद उसके मांस और शोणित का आहार किया। आहार कर उस कछुए को चारों ओर से उलटा यावत् वे उस कछुए के शरीर में किंचित् भी आबाधा या विबाधा उत्पन्न करने में और छविच्छेद करने में समर्थ नहीं हुए।

१५. तए णं ते पावसियालगा तं कुम्मयं दोच्चंपि तच्चंपि सव्वओ समंता उव्वत्तेंति परियत्तेंति आसारेंति संसारेंति चालेंति घट्टेंति फंदेंति खोभेंति नहेहिं आलुंपंति दंतेहि य अक्खोडेंति, नो चेव णं संचाएंति तस्स कुम्मगस्स सरीरस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पाइत्तए छविच्छेयं वा करेत्तए, ताहे संता तंता परितंता निव्विण्णा समाणा सणियं-सणियं पच्चोसक्कंति, दोच्चंपि एगंतमवक्कमंति। एवं चत्तारि वि पाया।।

१५. उन दुष्ट शृगालों ने उस कछुए को दूसरी-तीसरी बार भी चारों ओर से उलटा-पलटा, सरकाया, दूर तक सरकाया, चलाया, स्पर्श किया, स्पन्दित किया, क्षुभित किया, नखों से नोचा, दांतों से खींचा, फिर भी वे उस कछुए के शरीर में किंचित् भी आबाधा या विबाधा उत्पन्न करने में और छविच्छेद करने में समर्थ नहीं हुए, तब वे श्रान्त, क्लान्त, परिक्लान्त और उदास होकर धीरे-धीरे पीछे सरकते गए और दूसरी बार भी एकान्त में चले गए।

इस प्रकार उस कछुए ने चारों ही पांवों को बाहर निकाला और दुष्ट शृगालों ने उसके मांस और शोणित का आहार किया।

१६. तए णं से कुम्मए ते पावसियालए चिरगए दूरंगए जाणित्ता सणियं-सणियं गीवं नीणेइ।।

१६. उन दुष्ट शृगालों को गए बहुत समय हो चुका है और वे बहुत दूर चले गये हैं, यह जानकर उस कुछए ने (धीरे-धीरे) अपनी गर्दन को बाहर निकाला।

१७. तए णं ते पावसियालगा तेणं कुम्मएणं (सणियं-सणियं?) गीवं नीणियं पासंति, पासित्ता सिग्घं तुरियं चवलं चंडं जइणं वेगियं जेणेव से कुम्मए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तस्स णं कुम्मगस्स तं गीवं नहेहिं (आलुंपंति?) दंतेहिं कवालं विहाडेंति, विहाडेत्ता तं कुम्मगं जीवियाओ ववरोवेंति, ववरोवेत्ता मंसं च सोणियं च आहारेंति।।

१७. उन दुष्ट शृगालों ने उस कछुए को धीरे-धीरे गर्दन को बाहर निकालते हुए देखा। देखकर वे शीघ्र, त्वरित, चपल, चण्ड, तीव्र और उतावली गति से जहां वह कछुआ था वहां आए। वहां आकर उस कछुए की गर्दन को नखों से नोचा और कपाल को दांतों से विदीर्ण किया। विदीर्ण कर उसे मार डाला, मारकर उसके मांस और शोणित का आहार किया।

१८. एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे, पंच य से इंदिया अगुत्ता भवंति, से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावगाणं बहूणं सावियाण य हीलणिज्जे निंदणिज्जे खिंसणिज्जे गरहणिज्जे परिभवणिज्जे, परलोए वि य णं आगच्छइ--बहूणि दंडणाणि य बहूणि मुंडणाणि य बहूणि तज्जणाणि य बहूणि तालणाणि य बहूणि अंदुबंधणाणि य बहूणि घोलणाणि य बहूणि माइमरणाणि य बहूणि पिइमरणाणि य बहूणि भाइमरणाणि य बहूणि भगिणीमरणाणि य बहूणि भज्जामरणाणि य बहूणि पुत्तमरणाणि य बहूणि धूयमरणाणि य बहूणि सुण्हामरणाणि य। बहूणं दारिद्दाणं बहूणं दोहग्गाणं बहूणं अप्पियसंवासाणं बहूणं पियविप्पओगाणं बहूणं दुक्ख-दोमणस्साणं

१८. आयुष्मन् श्रमणो ! इसी प्रकार हमारा जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी, आचार्य-उपाध्याय के पास मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित हो, विहार करता है, उसकी पांचो इन्द्रियां अगुप्त रहती हैं, तो वह इस जीवन में भी बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों और बहुत श्राविकाओं के द्वारा हीलनीय, निंदनीय, कुत्सनीय, गर्हणीय और परिभवनीय होता है। परलोक में भी वह बहुत दण्ड, बहुत मुण्डन, बहुत तर्जना, बहुत ताड़ना, बहुत सांकल- बन्धन, बहुत भ्रमण, बहुत मातृ-मरण, बहुत पितृ-मरण, बहुत भ्रातृ-मरण, बहुत भगिनी-मरण, बहुत भार्या-मरण, बहुत पुत्र-मरण, बहुत पुत्री-मरण और बहुत पुत्रवधु-मरण को प्राप्त होता है।

वह (भविष्य में भी) बहुत दरिद्रता, बहुत दौर्भाग्य, बहुत अप्रिय संवास, बहुत प्रिय-विप्रयोग और बहुत दुःख-दौर्मनस्य का आभागी होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आभागी भविस्सति, अणादियं च णं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं भुज्जो-भुज्जो अणुपरियट्टिस्सइ--जहा व से कुम्मए अगुत्तिंदिए।

वह अनादि-अनन्त, प्रलम्ब मार्ग तथा चार अन्त वाले संसार रूपी कान्तार में पुन: पुन: अनुपरिवर्तन करेगा--जैसे वह अगुप्तेन्द्रिय कछुआ।

गुत्तकुम्मस्स सोक्ख-पदं

१९. तए णं ते पावसियालगा जेणेव से दोच्चे कुम्मए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं कुम्मगं सव्वओ समंता उव्वत्तेंति परियत्तेंति आसारेंति संसारेंति चालेंति घट्टेंति फंदेंति खोभेंति नहेहिं आलुंपंति दंतेहि य अक्खोडेंति, नो चेव णं संचाएंति तस्स कुम्मगस्स सरीरस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पाइत्तए छविच्छेयं वा करेत्तए।।

२०. तए णं ते पावसियालगा तं कुम्मगं दोच्चंपि तच्चंपि उव्वत्तेंति जाव, नो चेव णं संचायंति तस्स कुम्मगस्स सरीरस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पाइत्तए छविच्छेयं वा करेत्तए, ताहे संता तंता परितंता निव्विण्णा समाणा जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।।

२१. तए णं से कुम्मए ते पावसियालए चिरगए दूरंगए जाणित्ता सणियं-सणियं गीवं नीणेइ, नीणेत्ता दिसावलोयं करेइ, करेत्ता जमगसमगं चत्तारि वि पाए नीणेइ, नीणेत्ता ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए सिग्घाए उद्धुयाए जइणाए छेयाए कुम्मगईए वीईवयमाणे- वीईवयमाणे जेणेव मयंगतीरद्दहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधिपरियणेणं सद्धिं अभिसमण्णागए यावि होत्था।।

२२. एवामेव समणाउसो! जो अम्हं समणो वा समणी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे पंच य से इंदियाइं गुत्ताइं भवंति, से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावगाणं बहूणं सावियाण य अच्चणिज्जे वंदणिज्जे नमंसणिज्जे पूयणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं विणएणं पज्जुवासणिज्जे भवइ।

परलोए वि य णं नो बहूणि हत्थच्छेयणाणि य कण्णच्छेयणाणि य नासाछेयणाणि य एवं हिययउप्पायणाणि य वसणुप्पायणाणि य उल्लंबणाणि य पाविहिइ, पुणो अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरन्तं संसारकंतारं वीईवइस्सइ--जहा व से कुम्मए गुत्तिंदिए।।

गुप्त कूर्म का सौख्य-पद

१९. वे दुष्ट शृगाल जहां वह दूसरा कछुआ था वहां आए। वहां आकर उन्होंने उस कछुए को चारों ओर से उलटा, पलटा, सरकाया, दूर तक सरकाया, चलाया, स्पर्श किया, क्षुभित किया, स्पंदित किया, फिर नखों से नोचा, दांतो से खींचा, फिर भी वे उस कछुए के शरीर में किंचित् भी आबाधा या विबाधा उत्पन्न करने में और छविच्छेद करने में समर्थ नहीं हुए।

२०. उन दुष्ट शृगालों ने उस कछुए को दूसरी-तीसरी बार भी उलटा यावत् वे उस कछुए के शरीर में किंचित भी आबाधा या विबाधा उत्पन्न करने और छविच्छेद करने में समर्थ नहीं हुए। तब वे श्रान्त, क्लान्त, परिक्लान्त और उदास हो, जिस दिशा से आये थे उसी दिशा में चले गये।

२१. उन दुष्ट शृगालों को गये बहुत समय बीत चुका है और वे बहुत दूर चले गये हैं, यह जानकर उस कछुए ने धीरे-धीरे अपनी गर्दन बाहर निकाली। बाहर निकालकर दिशावलोकन किया। अवलोकन कर एक साथ चारों ही पावों को बाहर निकाला। बाहर निकाल कर उस उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, चण्ड, शीघ्र, उद्धत, जवी एवं चतुर कूर्म गति से चलता-चलता वह जहां मृतगंगातीर-हृद था वहां आया। वहां आकर वह अपने मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनों के साथ अभिसमन्वागत हो गया।

२२. आयुष्मन् श्रमणो! इसी प्रकार हमारा जो श्रमण अथवा श्रमणी आचार्य-उपाध्याय के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित हो, विहार करता है और उसकी पांचों इन्द्रियां गुप्त होती हैं, तो वह इस जीवन में भी बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों और बहुत श्राविकाओं द्वारा अर्चनीय, वंदनीय, नमस्करणीय, पूजनीय, सत्करणीय, सम्माननीय, कल्याण, मंगल, देव, चैत्य और विनय पूर्वक पर्युपासनीय होता है।

परलोक में भी वह बहुत हस्त-छेदन, कर्ण-छेदन, नासा-छेदन तथा इसी प्रकार हृदय-उत्पाटन, वृषण-उत्पाटन और फांसी को प्राप्त नहीं करेगा और वह अनादि-अनन्त, प्रलम्बमार्ग तथा चार अन्त वाले संसार रूपी कान्तार का पार पा लेगा--मुक्त हो जायेगा--जैसे, वह गुप्तेन्द्रिय कछुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निक्खेव-पदं

२३. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं चउत्थस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

--त्ति बेमि।।

निक्षेप पद

२३. जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के चौथे अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

--ऐसा मैं कहता हूं।

वृत्तिकृता समुद्धृता निगमनगाथा--

विसएसु इंदियाइं, रुंभंता राग-दोस-निम्मुक्का।
पावेंति निव्वुइसुहं, कुम्मोव्व मयंगदहसोक्खं।।१।।
इयरे उ अणत्थ-परंपराओ पावेंति पावकम्मवसा।
संसार-सागरगया, गोमाउग्गसियकुम्मोव्व।।२।।

वृत्तिकार द्वारा समुद्धृत निगमन-गाथा

१. विषय में प्रवृत्त इन्द्रियों का निरोध करने वाले राग-द्वेष से निर्मुक्त प्राणी मृतगंगातीर-हृद में सुख प्राप्त करने वाले, कछुए की भांति निर्वृति-सुख को प्राप्त करते हैं।

२. इससे प्रतिकूल प्रवृत्ति करने वाले प्राणी पाप-कर्मों के अधीन और संसार-सागर में निमग्न हो श्रृगाल द्वारा ग्रसित कछुए की भांति अनर्थ-परम्परा को प्राप्त करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

सूत्र २

१. मृतगंगातीरहृद (मयंगतीरद्दहे)--

वृत्तिकार के अनुसार मृतगंगा का अर्थ है–वह प्रदेश, जहां कभी गंगा बहती थी। वर्तमान में उसका रास्ता बदल गया हो।[१]

उत्तराध्ययन चूर्णि और सर्वार्थसिद्धि के अनुसार गंगा प्रतिवर्ष नये-नये मार्ग से समुद्र में जाती है। जो मार्ग चिर-त्यक्त हो, जो मार्ग बहते-बहते गंगा ने छोड़ दिया हो--उसे 'मृत-गंगा' कहा जाता है।[२]

द्रष्टव्य उत्तरज्झयणाणि १३/६

सूत्र ७

२. जब मनुष्यों का गमनागमन कम हो गया (पविरलमाणुसंसि)

ऐसा क्षेत्र जहां सन्ध्या के पश्चात् आते-जाते लोग विरल ही दिखाई दें।[३]

३. घर से बाहर गये लोग जब पुनः अपने-अपने घरों में लौट आए (निसंत पडिनिसंतंसि)

जब घर से बाहर गये लोग थक जाने पर भ्रमण से विरत हो, पुनः अपने घरों में लौट विश्राम करने लगे हों।[४] तात्पर्य की भाषा में–जब पथ अत्यन्त जन-संचार-शून्य हो गये हों।

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१०४--मयंगतीरदहे त्ति--मृतगंगातीरहृदः मृतगंगा यत्र देशे गंगाजलं व्यूढमासीदिति।

२. (क) उत्तराध्ययनचूर्णि, पृष्ठ २१५--मतगंगा-हेट्ठाभूमीए गंगा, अण्णमण्णेहिं मग्गेहिं जेण पुव्वं वोढूणं पच्छा ण वहति सा मतगंगा भण्णति।

(ख) सर्वार्थसिद्धि, पृष्ठ २६१--

गंगा वहति पाथोधिं, वर्षेऽपराध्वना।
वाहस्तत्र चिरात् त्यक्तो, मृतगंगे ति कथ्यते।।

३. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१०५

पविरलमाणुस्संसि--प्रविरलं किल मानुषं सन्ध्याकाले यत्र तत्र देशे।

४. वही--निशान्तप्रतिनिशान्ते--अत्यन्तं भ्रमणाद्विरते निशान्तेषु वा गृहेषु प्रतिनिश्रान्ते--विश्रान्ते निलीने अत्यन्तजनसञ्चारविरह इत्यर्थ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

लक्ष्य (मोक्ष) तक पहुंचने के लिए सम्यक् मार्ग, सम्यक् बोध और सम्यक् आचरण की संयुति आवश्यक है।

प्रस्तुत अध्ययन में थावच्चापुत्र द्वारा निर्ग्रन्थ प्रवचन को अंगीकार करना, प्रव्रज्या ग्रहण करना सम्यक् मार्ग की स्वीकृति है। शुक परिव्राजक द्वारा शौचमूल धर्म के स्थान पर विनय मूल धर्म का स्वीकरण व्रत के महत्त्व का पुष्ट प्रमाण है। शैलक अनगार राजर्षि द्वारा शिथिलाचार का त्याग कर उद्यत विहार करना सम्यक् आचार का सूचक है।

भगवान अरिष्टनेमि द्वारका नगरी में पधारे। थावच्चापुत्र ने प्रवचन सुना। मन में अभिनिष्क्रमण का संकल्प उत्पन्न हुआ। थावच्चापुत्र कामभोगों में संवर्धित हुआ फिर भी वह कामभोगों से कमल की भांति निर्लिप्त था। थावच्चा और कृष्ण वासुदेव द्वारा बहुत समझाने पर भी वह अपने संकल्प पर दृढ़ रहा। थावच्चापुत्र ने कृष्ण वासुदेव से कहा--यदि आप मुझे दो वरदान दो तो मैं आपकी बात स्वीकार कर सकता हूं।

१. मैं मौत पर विजय प्राप्त कर सकूं।

२. मैं शरीर के सौन्दर्य को विनष्ट करने वाले बुढ़ापे को रोक सकूं।

कृष्ण वासुदेव ने कहा--ये वरदान चाहते हो तो अरिष्टनेमि के पास जाओ। थावच्चा व कृष्ण वासुदेव से सहर्ष अनुमति प्राप्त कर थावच्चापुत्र ने अरिष्टनेमि के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। इस अवसर पर कृष्ण वासुदेव ने यह घोषणा की--जो लोग थावच्चापुत्र के साथ दीक्षा स्वीकार करना चाहते हैं उनके परिजनों का योगक्षेम मैं वहन करूंगा। सामाजिक प्रोत्साहन के कारण थावच्चापुत्र के साथ एक हजार व्यक्तियों ने दीक्षा ग्रहण की। यह इतिहास की विरल घटना है। वर्तमान समाज के लिए एक प्रेरणा है। प्रस्तुत कथानक के कई मोड़ हैं--

- प्रव्रज्या ग्रहण करने के पश्चात् हजार शिष्यों सहित थावच्चा पुत्र द्वारा उग्रविहार करना।
- शैलक राजर्षि को श्रमणोपासक बनाना।
- सौगंधिका नगरी के सेठ सुदर्शन का विनयमूल धर्म समझना और श्रमणोपासक बनना।
- शुक परिव्राजक के साथ चर्चा करना और उसे प्रतिबोधित करना।
- हजार परिव्राजकों सहित शुक द्वारा दीक्षा ग्रहण करना।
- अगार विनय मूल चातुर्याम रूप गृहस्थ धर्म और अनगार विनय मूल चातुर्याम रूप मुनि धर्म का आख्यान करना।

अध्ययन के अंत में शैलक अनगार की मनोदशा का बहुत ही मनोवैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण किया गया है। जिजीविषा मनुष्य की मौलिक मनोवृत्ति है किंतु इसके साथ जब सुविधावाद की वृत्ति पनप जाती है तब शिथिलाचार का जन्म हो जाता है। शिथिलाचार से तात्पर्य है--स्वीकृत नियमों का पालन न करना।

शैलक अनगार पुत्र मण्डुक द्वारा चिकित्सा की राजकीय सुविधा प्राप्त कर स्वस्थ होने पर भी अशन आदि खाद्य और मदिरादि मादक पेय में आसक्त हो गया। मूलगुण व उत्तरगुण में दोष लगाने लगा। प्रतिक्रमण आदि आवश्यक क्रिया में भी दोष लगाने लगा। शिष्यों द्वारा प्रतिबोधित करने पर भी जागरूक नहीं हुआ। अंत में सभी शिष्य पंथक मुनि को शैलक अनगार की सेवा में छोड़कर उद्यत विहार करने लगे।

प्रस्तुत अध्ययन में थावच्चापुत्र और शुक परिव्राजक के संवाद में साधु जीवन के मुख्य बिन्दुओं पर संक्षिप्त और सारगर्भित विवेचन है।

शैलक अनगार के संयम जीवन के उत्थान-पतन पर महत्त्वपूर्ण विमर्श है। प्रमाद की बहुलता से यदि कोई साधक संयम चर्या में शिथिल हो जाते हैं, किंतु अंत में संवेग--वैराग्य के प्रभाव से पुनः संयम में उद्यत हो जाते हैं। वे शैलक ऋषि की तरह आराधक होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचमं अज्झयणं : पांचवां अध्ययन

सेलगे : शैलक

उक्खेव-पदं

१. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं चउत्थस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, पंचमस्स णं भंते! नायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

२. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवती नामं नयरी होत्था--पाईणपडीणायया उदीणदाहिणवित्थिण्णा नवजोयण-वित्थिण्णा दुवालसजोयणायामा धणवइ-मइ-निम्मिया चामीयर-पवर-पागारा नानामणि-पंचवण्ण-कविसीसग-सोहिया अलकापुरि-संकासा पमुइय-पक्कीलिया पच्चक्खं देवलोगभूया।।

३. तीसे णं बारवईए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए रेवतगे नामं पव्वए होत्था--तुंगे गगणतलमणुलिहंतसिहरे नाणाविहगुच्छ-गुम्म-लया-वल्लिपरिगए हंस-मिग-मयूर-कोंच-सारस-चक्कवाय-मयणसाल-कोइलकुलोववेए अणेगतड-कडग-वियर-उज्झर-पवाय-पब्भारसिहरपउरे अच्छरगण-देवसंघ-चारण-विज्जाहरमिहुण-संविचिण्ण निच्चच्छणए दसारवर-वीरपुरिस-तेलोक्क-बलवगाणं, सोमे सुभगे पियदंसणे सुरूवे पासाईए दरिसणीए अभिरूवे पडिरूवे।।

४. तए णं रेवयगस्स अदूरसामंते, एत्थ णं नंदणवणे नामं उज्जाणे होत्था--सव्वोउय-पुप्फ-फल-समिद्धे रम्मे नंदणवणप्पगासे पासाईए दरिसणीए अभिरूवे पडिरूवे।।

५. तस्स णं उज्जाणस्स बहुमज्झदेसभाए सुरप्पिए नामं जक्खाययणे होत्था-दिव्वे वण्णओ।।

६. तत्थ णं बारवईए नयरीए कण्हे नामं वासुदेवे राया परिवसइ। से णं तत्थ समुद्दविजयपामोक्खाणं दसण्हं दसाराणं, बलदेवपामोक्खाणं पंचण्हं महावीराणं, उग्गसेणपामोक्खाणं सोलसण्हं राईसाहस्सीणं, पज्जुन्नपामोक्खाणं अद्धुट्ठाणं कुमारकोडीणं, संबपामोक्खाणं सट्ठीए दुद्दंतसाहस्सीणं, वीरसेणपामोक्खाणं एक्कवीसाए वीरसाहस्सीणं, महासेणपामोक्खाणं छप्पण्णाए बलवगसाहस्सीणं, रुप्पिणिप्पामोक्खाणं

उत्क्षेप-पद

१. भन्ते! यदि श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के चौथे अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है, तो भन्ते! उन्होंने ज्ञाता के पांचवें अध्ययन का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है ?

२. जम्बू ! उस काल और उस समय द्वारवती नाम की नगरी थी। पूर्व और पश्चिम में आयत, दक्षिण और उत्तर में विस्तीर्ण, नौ योजन चौड़ी, बारह योजन लम्बी, कुबेर द्वारा स्वयं अपनी मति से निर्मित, स्वर्णमय प्रवर प्राकार वाली, नाना मणियों और पंचरंगे कपिशीर्षों से शोभित अलकापुरी--जैसी प्रमुदित नागरिकों की क्रीड़ा स्थली और साक्षात् स्वर्ग तुल्य थी।

३. उस द्वारवती नगरी के बाहर ईशानकोण में रैवतक नाम का पर्वत था। वह ऊंचा, गगन-तल को छूने वाले शिखरों से युक्त, नाना प्रकार के गुच्छ, गुल्म, लता एवं वल्लरियों से परिगत, हंस, मृग, मयूर, क्रोञ्च, सारस, चक्रवाक, मैना एवं कोकिल कुल से उपेत, अनेक तट, कटक, विवर, निर्झर; प्रपात कुछ-कुछ आगे की ओर झुके हुए गिरि-प्रदेश एवं शिखर-समूह से सम्पन्न, अप्सराओं, देवों, चारणों और विद्याधर-मिथुनों से सेवित, सतत उत्सवमय दशार्हों[१] के मध्य प्रवर वीर पुरुष त्रैलोक्य से भी अतिशायी सत्त्व वाले श्री अरिष्टनेमि से सनाथ, सौम्य, सुभग, प्रियदर्शन, सुरूप, मन को आह्लादित करने वाला, दर्शनीय, कमनीय और रमणीय था।

४. उस रैवतक (गिरनार) पर्वत के न अति दूर, न अति निकट नन्दनवन नाम का उद्यान था। वह सभी ऋतुओं में होने वाले फूलों एवं फलों से समृद्ध, रम्य नन्दनवन जैसा मन को आह्लादित करने वाला, दर्शनीय, कमनीय और रमणीय था।

५. उस उद्यान के बीचोंबीच सुरप्रिय नाम का एक यक्षायतन था। वह दिव्य था। वर्णक।

६. उस द्वारवती नगरी में कृष्ण नाम के वासुदेव राजा निवास करते थे। वे वहां समुद्रविजय प्रमुख दश दशार्हों, बलदेव प्रमुख पांच महावीरों, उग्रसेन प्रमुख सोलह हजार राजाओं, प्रद्युम्न प्रमुख साढ़े तीन करोड़ कुमारों, शाम्ब प्रमुख साठ हजार दुर्दान्त योद्धाओं, वीरसेन प्रमुख इक्कीस हजार वीरों, महासेन प्रमुख छप्पन हजार बलवानों, रुक्मिणी प्रमुख बत्तीस हजार महिलाओं, अनंगसेना प्रमुख हजारों गणिकाओं का और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बत्तीसाए महिलासाहस्सीणं, अणंगसेणापामोक्खाणं अणेगाण गणियासाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं ईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहपभिईणं, वेयड्ढगिरि-सागरपेरंतस्स य दाहिणड्ढ-भरहस्स, बारवईए नयरीए आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे विहरइ।।

अन्य बहुत से ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि का, वैताढ्य गिरि से लेकर सागर पर्यन्त दक्षिणार्द्ध भरत का[१] और द्वारवती नगरी का आधिपत्य, पौरपत्य, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरत्व तथा आज्ञा, ऐश्वर्य और सेनापतित्व करते हुए उनका पालन करते हुए विहार करते थे।

थावच्चापुत्त-पदं

७. तत्थ णं बारवईए नयरीए थावच्चा नामं गाहावइणी परिवसइ अड्ढा दित्ता वित्ता वित्थिण्ण-विउल-भवण-सयणासण-जाणवाहणा बहुधण-जायरूव-रयया आओग-पओग-संपउत्ता विच्छड्डिय-पउर-भत्तपाणा बहुदासी-दास-गो-महिसगवेलगप्पभूया बहुजणस्स अपरिभूया।।

थावच्चापुत्र-पद

७. उस द्वारवती नगरी में 'थावच्चा' नाम की एक गृहस्वामिनी रहती थी। वह आढ्य, दीप्त और विख्यात थी। उसके भवन, शयन और आसन विस्तीर्ण थे। वह विपुल यान और वाहन वाली, प्रचुर धन और प्रचुर सोने-चांदी वाली, अर्थ के आयोग और प्रयोग (लेन-देन) में संप्रयुक्त और प्रचुर मात्रा में भक्त पान का वितरण करने वाली थी। उसके अनेक दासी, दास, गाय, भैंस और भेड़ें थी। वह बहुत व्यक्तियों के द्वारा अपराजित थी।

८. तीसे णं थावच्चाए गाहावइणीए पुत्ते थावच्चापुत्ते नामं सत्थवाहदारए होत्था--सुकुमालपाणिपाए अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरे लक्खण- वंजण-गुणोववेए माणुम्माण-प्पमाणपडिपुण्ण-सुजाय-सव्वंगसुंदरंगे ससिसोमाकारे कंते पियदंसणे सुरूवे।।

८. उस थावच्चा गृहस्वामिनी का पुत्र 'थावच्चापुत्र' नाम का एक सार्थवाह पुत्र था। उसके हाथ-पांव सुकुमार थे। उसका शरीर अहीन और परिपूर्ण पांचों इन्द्रियों वाला, लक्षण और व्यंजन की विशेषता से युक्त, मान, उन्मान और प्रमाण की परिपूर्णता वाला, सुजात और सर्वाङ्ग सुन्दर था। वह चन्द्रमा के समान सौम्य आकृति वाला, कमनीय, प्रियदर्शन और सुरूप था।

९. तए णं सा थावच्चा गाहावइणी तं दारगं साइरेगअट्ठवासजाययं जाणित्ता सोहणंसि तिहि-करण-नक्खत्त-मुहुत्तंसि कलायरियस्स उवणेइ जाव भोगसमत्थं जाणित्ता बत्तीसाए इब्भकुलबालियाणं एगदिवसेणं पाणिं गेण्हावेइ।

बत्तीसओ दाओ जाव बत्तीसाए इब्भकुलबालियाहिं सद्धिं विपुले सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोए भुंजमाणे विहरइ।।

९. जब वह बालक कुछ अधिक आठ वर्ष का हुआ, तब थावच्चा गृहस्वामिनी उसे शुभ तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्त में कलाचार्य के पास ले गई यावत् उसे पूर्ण भोग-समर्थ जानकर बत्तीस इभ्य कुल की कन्याओं के साथ एक ही दिन में उसका पाणिग्रहण करवा दिया।

उसे बत्तीस वस्तु-श्रेणियों का दहेज मिला यावत् वह बत्तीस इभ्य कुल कन्याओं के साथ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध पांच प्रकार के मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों को भोगता हुआ विहार करने लगा।

अरिट्ठनेमि-समवसरण-पदं

१०. तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी आइगरे तित्थगरे सो चेव वण्णओ दसधणुस्सेहे नीलुप्पल-गवलगुलिय-अयसिकुसुमप्पगासे अट्ठारसहिं समणसाहस्सीहिं, चत्तालीसाए अज्जियासाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव बारवती नाम नगरी जेणेव रेवतगपव्वए जेणेव नंदणवणे उज्जाणे जेणेव सुरप्पियस्स जक्खस्स जक्खाययणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।।

अरिष्टनेमि का समवसरण-पद

१०. उस काल और उस समय आदि कर्त्ता तीर्थंकर अरिष्टनेमि थे--वर्णक। दस धनुष ऊंचे, नीलोत्पल, महिष के सींग और अतसी कुसुम के समान वर्ण वाले, अर्हत अरिष्टनेमि अपने अठारह हजार श्रमण और चालीस हजार श्रमणियों के साथ उनसे संपरिवृत हो क्रमशः संचार करते हुए, ग्रामानुग्राम परिव्रजन करते हुए, सुखपूर्वक विहार करते हुए, जहां द्वारवती नाम की नगरी थी जहां रैवतक पर्वत था, जहां नन्दनवन उद्यान था, जहां सुरप्रिय यक्ष का यक्षायतन था, जहां प्रवर अशोक वृक्ष था, वहां आए। वहां आकर प्रवास योग्य स्थान की अनुमति लेकर संयम और तप से स्वयं को भावित करते हुए विहार करने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. परिसा निग्गया। धम्मो कहिओ।।

११. परिषद् ने निर्गमन किया। भगवान ने धर्म कहा।

कण्हस्स पज्जुवासणा-पदं

१२. तए णं से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! सभाए सुहम्माए मेघोघरसियं गंभीरमहुरसद्दं कोमुइयं भेरिं तालेह।।

कृष्ण द्वारा पर्युपासना-पद

१२. भगवान के आगमन का संवाद पाकर कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों का बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! शीघ्र ही सुधर्मासभा में मेघमाला के समान गर्जना तथा गंभीर एवं मधुर-शब्द करने वाली कौमुदिकी भेरी को बजाओ।

१३. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया जाव हरिसवस-विसप्पमाणहियया करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं सामी! तह त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता कण्हस्स वासुदेवस्स अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सभा सुहम्मा, जेणेव कोमुइया भेरी, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं मेघोघरसियं गंभीरमहुरसद्दं कोमुइयं भेरिं तालेंति। तओ निद्ध-महुर-गंभीर-पडिसुएणं पिव सारइएणं बलाहएणं अणुरसियं भेरीए।।

१३. कृष्ण वासुदेव के ऐसा कहने पर हृष्ट, तुष्ट और आनन्दित चित्त वाले यावत् हर्ष से विकस्वर हृदय वाले कौटुम्बिक पुरुषों ने सटे हुए दस नखों वाली दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट आकार वाली अञ्जलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार कहा--'ऐसा ही हो स्वामी।' यह कहकर विनयपूर्वक आदेश वचन स्वीकार किया। स्वीकार कर कृष्ण वासुदेव के पास से (उठकर) बाहर आए। आकर जहां सुधर्मा सभा थी, कौमुदिकी भेरी थी, वहां आए। वहां आकर मेघमाला के समान गर्जना तथा गम्भीर एवं मधुर शब्द करने वाली कौमुदिकी भेरी को बजाया। भेरी से उठने वाली स्निग्ध, मधुर और गम्भीर प्रतिध्वनि से ऐसा लग रहा था, मानो शरदकालीन मेघ गरज रहा हो।

१४. तए णं तीसे कोमुइयाए भेरीए तालियाए समाणीए बारवईए नयरीए नवजोयणवित्थिण्णाए दुवालसजोयणायामाए सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-कंदर-दरी-विवर-कुहर-गिरिसिहर-नगरगोउर-पासाय-दुवार-भवण-देउल-पडिस्सुया-सयसहस्ससंकुलं करेमाणे बारवतिं नयरिं सब्भिंतर-बाहिरियं सव्वओ समंता सद्दे विप्पसरित्था।।

१४. उस कौमुदिकी भेरी को बजाने पर, नौ योजन चौड़ी और बारह योजन लम्बी द्वारवती नगरी के दोराहे, तिराहे, चौराहे, चौक, कन्दरा, दरी, विवर, कुहर, गिरि-शिखर, नगर-गोपुर, प्रासाद-द्वार, भवन और देवकुल में लाखों प्रतिध्वनियां उठने लगी। वे द्वारवती नगरी को शत-सहस्र प्रतिध्वनियों से संकुल करती हुई, नगरी के बाहर-भीतर सर्वत्र व्याप्त हो गई।

१५. तए णं बारवईए नयरीए नवजोयणवित्थिण्णाए बारसजोयणायामाए समुद्दविजयपामोक्खा दस दसारा जाव गणियासहस्साइं कोमुईयाए भेरीए सद्दं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया जाव हरिसवस-विसप्पमाणहियया ण्हाया आविद्ध-वग्घारिय-मल्लदाम-कलावा अहयवत्थ-चंदणोकिन्नगायसरीरा अप्पेगइया हयगया एवं गयगया रह-सीया-संदमाणीगया अप्पेगइया पायविहारचारेणं पुरिसव्वगुरा-परिक्खित्ता कण्हस्स वासुदेवस्स अंतियं पाउब्भवित्था।।

१५. नौ योजन चौड़ी और बारह योजन लम्बी द्वारवती नगरी के समुद्रविजय प्रमुख दस दशार्हों यावत् हजारों गणिकाओं ने कौमुदिकी भेरी के शब्द को सुनकर, अवधारण कर हृष्ट, तुष्ट चित्त हो, आनन्दित यावत् हर्ष से विकस्वर हृदय हो, स्नान किया। नीचे तक लटकती पुष्प-मालाएं पहनी, नए वस्त्र धारण किए, शरीर के अंगो पर चन्दन का लेप किया, फिर जन समुदाय से परिवृत हो, उनमें से कुछ एक अश्व पर चढ़कर, इसी प्रकार हाथी पर चढ़कर, रथ, शिविका या पालकी पर बैठकर तथा कुछ पांव-पांव चलकर कृष्ण वासुदेव के पास उपस्थित हुए।

१६. तए णं से कण्हे वासुदेवे समुद्दविजयपामोक्खे दस दसारे जाव अंतियं पाउब्भवमाणे पासित्ता हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए जाव हरिसवस-विसप्पमाणहियए कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! चाउरंगिणिं सेणं सज्जेह, विजयं च

१६. समुद्रविजय प्रमुख दस दशार्हों को यावत् अपने समक्ष उपस्थित हुए देखकर हृष्ट, तुष्ट चित्त वाले आनन्दित यावत् हर्ष से विकस्वर हृदय वाले कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! शीघ्र ही चतुरंगिणी सेना को सजाओ और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गंधहत्थिं उवट्ठवेह। तेवि तहत्ति उवट्ठवेंति।।

विजय गन्ध हस्ती को उपस्थित करो। उन्होंने--'ऐसा ही हो' यह कहकर उपस्थित किया।

१७. तए णं से कण्हे वासुदेवे ण्हाए जाव सव्वालंकारविभूसिए विजयं गंधहत्थिं दुरूढे समाणे सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं महया भड-चडगर-वंद-परियाल-संपरिवुडे बारवतीए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव रेवतगपव्वए जेणेव नंदणवणे उज्जाणे जेणेव सुरप्पियस्स जक्खस्स जक्खाययणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स छत्ताइच्छत्तं पडागाइपडागं विज्जाहर-चारणे जंभए य देवे ओवयमाणे उप्पयमाणे पासइ, पासित्ता विजयाओ गंधहत्थीओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ,

(तं जहा--सचित्ताणं दव्वाणं विउसरणयाए, अचित्ताणं दव्वाणं अविउसरणयाए, एगसाडिय-उत्तरासंगकरणेणं, चक्खुफासे अंजलिपग्गहेणं, मणसो एगत्तीकरणेणं)।

जेणामेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स नच्चासन्ने नाइदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे पंजलिउडे अभिमुहे विणएणं पज्जुवासइ।।

१७. कृष्ण वासुदेव स्नान कर यावत् सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित हो, विजय गन्धहस्ती पर आरूढ़ हुए। कटसरैया के फूलों से बनी मालाओं से युक्त छत्र को धारण किया। महान सुभटों की विभिन्न टुकड़ियों के सुविस्तृत संघातवृन्द से परिवृत हो, द्वारवती नगरी के बीचोंबीच से होकर निर्गमन किया। निर्गमन कर जहां रैवतक पर्वत था, जहां नंदनवन उद्यान था, जहां सुरप्रिय यक्ष का यक्षायतन था और जहां प्रवर अशोकवृक्ष था, वहां आए। वहां आकर अर्हत अरिष्टनेमि के छत्रों, अतिछत्रों, पताकाओं, अतिपताकाओं तथा विद्याधर, चारण और जृम्भक देवों को आते-जाते हुए देखा। देखकर वे विजय गन्धहस्ती से उतरे। उतर कर पांच प्रकार के अभिगमों से अर्हत अरिष्टनेमि के पास आए।

(जैसे--सचित्त द्रव्यों को छोड़ना, अचित्त द्रव्यों को छोड़ना, एक शाटक वाला उत्तरासंग करना, दृष्टिपात होते ही बद्धांजलि होना और मन को एकाग्र करना।)

जहां अर्हत अरिष्टनेमि थे वहां आए। आकर अर्हत अरिष्टनेमि को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा की। वन्दना-नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर अर्हत अरिष्टनेमि के न अति निकट न अति दूर शुश्रूषा और नमस्कार करते हुए सम्मुख रहकर विनयपूर्वक बद्धाञ्जलि पर्युपासना करने लगे।

थावच्चापुत्तस्स पव्वज्जासंकप्प-पदं

१८. थावच्चापुत्ते वि निग्गए। जहा मेहे तहेव धम्मं सोच्चा निसम्म जेणेव थावच्चा गाहावइणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पायग्गहणं करेइ। जहा मेहस्स तहा चेव निवेयणा।।

थावच्चापुत्र का प्रव्रज्या संकल्प-पद

१८. थावच्चापुत्र ने भी घर से निष्क्रमण किया। मेघ की भांति धर्म को सुनकर अवधारण कर वह जहां थावच्चा गृहस्वामिनी थी, वहां आया। वहां आकर प्रणाम किया। वैसे ही निवेदन किया जैसे मेघ ने किया।

१९. तए णं तं थावच्चापुत्तं थावच्चा गाहावइणी जाहे नो संचाएइ विसयाणुलोमाहि य विसयपडिकूलाहि य बहूहिं आघवणाहि य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य आघवित्तए वा पण्णवित्तए वा सण्णवित्तए वा विण्णवित्तए वा ताहे अकामिया चेव थावच्चापुत्तस्स दारगस्स निक्खमणमणुमन्नित्था।।

१९. थावच्चा गृहस्वामिनी जब विषयों के अनुकूल और विषयों के प्रतिकूल बहुत सारी आख्यापनाओं, प्रज्ञापनाओं, संज्ञापनाओं और विज्ञापनाओं के द्वारा थावच्चापुत्र को आख्यापित, प्रज्ञापित, संज्ञापित और विज्ञापित नहीं कर सकी तब उसने न चाहते हुए भी बालक थावच्चापुत्र को अभिनिष्क्रमण की अनुमति दे दी।

२०. तए णं सा थावच्चा (गाहावइणी?) आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता महत्थं महग्घं महरिहं रायारिहं पाहुडं गेण्हइ, गेण्हित्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेणं सद्धिं संपरिवुडा जेणेव कण्हस्स वासुदेवस्स भवणवर-पडिदुवार-देसभाए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता पडिहारदेसिएणं मग्गेणं जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए

२०. वह थावच्चा (गृहस्वामिनी?) आसन से उठी। उठकर महान अर्थवाला, महान मूल्य वाला, महान अर्हता वाला, राजाओं के योग्य उपहार ग्रहण किया। उपहार ग्रहण कर मित्र , ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबन्धी और परिजनों के साथ उनसे संपरिवृत हो, जहां कृष्ण वासुदेव के भवन का प्रवर प्रतिद्वार (मुख्य द्वार) देश भाग था, वहां आयी। वहां आकर प्रहरियों द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से जहां कृष्ण वासुदेव थे, वहां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता तं महत्थं महग्घं महरिहं रायारिहं पाहुडं उवणेइ, उवणेत्ता एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! मम एगे पुत्ते थावच्चापुत्ते नामं दारए--इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणभूए जीवियऊसासए हिययनंदिजणए उंबरपुप्फं पिव दुल्लहे सवणयाए किमंग पुण दरिसणयाए?

से जहानामए उप्पले ति वा पउमे ति वा कुमुदे ति वा पंके जाए जले संवड्ढिए नोवलिप्पइ पंकरएणं नोवलिप्पइ जलरएणं, एवामेव थावच्चापुत्ते कामेसु जाए भोगेसु संवड्ढिए नोवलिप्पइ कामरएणं नोवलिप्पइ भोगरएणं। से णं देवाणुप्पिया! संसारभउव्विग्गे भीए जम्मण-जर-मरणाणं इच्छइ अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए। अहण्णं निक्खमणसक्कारं करेमि। तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! थावच्चापुत्तस्स निक्खममाणस्स छत्तमउड-चामराओ य विदिन्नाओ।।

आयी। वहां आकर सटे हुए दस नखों वाली दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट आकार वाली अञ्जलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर उसने (कृष्ण वासुदेव को) जय-विजय की ध्वनि से वर्धापित किया। वर्धापित कर उसने महान अर्थवाला, महान मूल्य वाला, महान अर्हता वाला, राजाओं के योग्य उपहार भेंट किया। भेंट कर इस प्रकार बोली--देवानुप्रिय! यह थावच्चापुत्र नाम का बालक मेरा एकमात्र पुत्र है--मुझे इष्ट, कमनीय, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर, स्थिरतर, विश्वसनीय, सम्मत, बहुमत, अनुमत, आभरण करण्डक के समान, रत्न रत्नभूत, जीवन-उच्छ्वास (प्राण) और हृदय को आनन्दित करने वाला है। यह उदुम्बर पुष्प के समान श्रवण दुर्लभ है, फिर दर्शन का तो कहना ही क्या?

जैसे उत्पल, पद्म अथवा कमल पंक में उत्पन्न होता है, जल में संवर्धित होता है, किंतु पंक रज, जल रज से उपलिप्त नहीं होता वैसे ही थावच्चापुत्र कामों में उत्पन्न हुआ, भोगों में संवर्धित हुआ, किंतु वह काम रज और भोग रज से उपलिप्त नहीं है।

देवानुप्रिय! यह संसार भय से उद्विग्न है। जन्म, जरा और मृत्यु से भीत है। यह अर्हत अरिष्टनेमि के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित होना चाहता है। मैं इसका अभिनिष्क्रमण-सत्कार, (दीक्षा-महोत्सव) आयोजित कर रही हूं। इसलिए देवानुप्रिय ! मैं चाहती हूं अभिनिष्क्रमण करने वाले थावच्चापुत्र को तुम छत्र, मुकुट और चंवर प्रदान करो।

२१. तए णं कण्हे वासुदेवे थावच्चं गाहावइणिं एवं वयासी--अच्छाहि णं तुमं देवाणुप्पिए! सुनिव्वुत-वीसत्था, अहण्णं सयमेव थावच्चापुत्तस्स दारगस्स निक्खमणसक्कारं करिस्सामि।।

२१. तब कृष्ण वासुदेव ने थावच्चा गृहस्वामिनी को इस प्रकार कहा--देवानुप्रिये! तुम अत्यंत शान्त और विश्वस्त रहो। बालक थावच्चापुत्र का अभिनिष्क्रमण सत्कार स्वयं मैं ही करूंगा।

कण्हस्स थावच्चापुत्तस्स य परिसंवाद-पदं

२२. तए णं से कण्हे वासुदेवे चाउरंगिणीए सेणाए विजयं हत्थिरयणं दुरूढे समाणे जेणेव थावच्चाए गाहावइणीए भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थावच्चापुत्तं एवं वयासी--मा णं तुमं देवाणुप्पिया! मुंडे भवित्ता पव्वयाहि, भुंजाहि णं देवाणुप्पिया! विपुले माणुस्सए कामभोगे मम बाहुच्छाय-परिग्गहिए। केवलं देवाणुप्पियस्स अहं नो संचाएमि वाउकायं उवरिमेणं गच्छमाणं निवारित्तए। अण्णो णं देवाणुप्पियस्स जं किंचि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पाएइ, तं सव्वं निवारेमि।।

कृष्ण और थावच्चापुत्र का परिसंवाद-पद

२२. तब वे कृष्ण वासुदेव चतुरंगिणी सेना के साथ विजय हस्तिरत्न पर आरूढ़ हो, जहां थावच्चा गृहस्वामिनी का भवन था, वहां आये। वहां आकर थावच्चापुत्र से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! तुम मुण्ड हो, प्रव्रजित मत बनो। देवानुप्रिय ! मेरी बाहुच्छाया (छत्रछाया) में रह मनुष्य संबंधी विपुल काम भोगों का भोग करो। मैं केवल देवानुप्रिय के ऊपर से गुजरने वाली हवा का निवारण नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त देवानुप्रिय को जो कुछ भी आबाधा या विबाधा उत्पन्न हो, मैं सबका निवारण कर सकता हूं।

२३. तए णं से थावच्चापुत्ते कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी--जइ णं देवाणुप्पिया! मम जीवियंतकरं मच्चुं एज्जमाणं निवारेसि, जरं वा सरीररूव-विणासणिं सरीरं अइवयमाणिं निवारेसि, तए णं अहं तव बाहुच्छाय-परिग्गहिए विउले माणुस्सए कामभोगे भुंजमाणे विहरामि।।

२३. कृष्ण वासुदेव के ऐसा कहने पर उस थावच्चापुत्र ने इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! यदि आप सामने आती हुई जीवन को समाप्त करने वाली मौत और शरीर के सौन्दर्य को विनष्ट करने वाली तथा शरीर का नाश करने वाली जरा का निवारण कर सकें तो मैं आपकी बाहुच्छाया में रह मनुष्य संबंधी विपुल काम भोग को भोगता हुआ विहार करूं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४. तए णं से कण्हे वासुदेवे थावच्चापुत्तेणं एवं वुत्ते समाणे थावच्चापुत्तं एवं वयासी--एए णं देवाणुप्पिया दुरइक्कमणिज्जा, नो खलु सक्का सुबलिएणावि देवेण वा दाणवेण वा निवारित्तए, नण्णत्थ अप्पणो कम्मक्खएणं ।।

२४. थावच्चापुत्र के ऐसा कहने पर कृष्ण वासुदेव ने उससे इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय ! ये दोनों (मृत्यु और जरा) दुरतिक्रम्य हैं। अपने कर्म-क्षय के सिवाय, अत्यन्त बलिष्ठदेव अथवा दानव भी इनका निवारण नहीं कर सकता।

२५. तए णं से थावच्चापुत्ते कण्हं वासुदेवं एवं वयासी--जइ णं एए दुरइक्कमणिज्जा, नो खलु सक्का सुबलिएणावि देवेण वा दाणवेण वा निवारित्तए, नण्णत्थ अप्पणो कम्मक्खएणं। तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! अण्णाण-मिच्छत्त-अविरइ-कसाय-संचियस्स अत्तणो कम्मक्खयं करित्तए।।

२५. थावच्चापुत्र ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय ! यदि ये दोनों (मृत्यु और जरा) दुरतिक्रम्य हैं, अपने कर्म क्षय के सिवाय अत्यन्त बलिष्ठ देव अथवा दानव भी इनका निवारण नहीं कर सकता, तो देवानुप्रिय! मैं चाहता हूं अज्ञान, मिथ्यात्व, अविरति और कषाय के द्वारा संचित अपने कर्मों का क्षय करूं।

कण्हस्स जोगक्खेम-घोसणा-पदं

२६. तए णं से कण्हे वासुदेवे थावच्चापुत्तेणं एवं वुत्ते समाणे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं देवाणुप्पिया! बारवईए नयरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह पहेसु हत्थिखंधवरगया महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा उग्घोसणं करेह--एवं खलु देवाणुप्पिया! थावच्चापुत्ते संसारभउव्विग्गे भीए जम्मण-जर-मरणाणं, इच्छइ अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे भवित्ता पव्वइत्तए, तं जो खलु देवाणुप्पिया! राया वा जुवराया वा देवी वा कुमारे वा ईसरे वा तलवरे वा कोडुंबिय-माडंबिय-इब्भ-सेट्ठि- सेणावइ-सत्थवाहे वा थावच्चापुत्तं पव्वयंतमणुपव्वयइ, तस्स णं कण्हे वासुदेवे अणुजाणइ पच्छाउरस्स वि य से मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणस्स जोगक्खेम-वट्टमाणीं परिवहइ त्ति कट्टु घोसणं घोसेह जाव घोसंति।।

कृष्ण द्वारा योगक्षेम की घोषणा-पद

२६. थावच्चापुत्र के ऐसा कहने पर कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो ! जाओ, प्रवर हस्ति स्कन्ध पर आरूढ़ होकर द्वारवती नगरी के दोराहों, तिराहों, चौकों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और मार्गों में उच्चस्वर से बार-बार उद्घोष करते हुए यह उद्घोषणा करो--देवानुप्रियो। थावच्चापुत्र संसार के भय से उद्विग्न है। जन्म, जरा और मृत्यु से भीत है। वह अर्हत अरिष्टनेमि के पास मुण्ड हो प्रव्रजित होना चाहता है, अतः देवानुप्रियो! जो भी राजा, युवराज, देवी, कुमार, ईश्वर, तलवर, कौटुम्बिक, माडम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति अथवा सार्थवाह प्रव्रजित होने वाले थावच्चापुत्र के साथ प्रव्रजित होता है, तो उसे कृष्ण वासुदेव अनुमति देता है और (उसकी) दीक्षा के पश्चात् दुःखी[३] जो अपना योगक्षेम[४] करने में समर्थ नहीं हैं उन मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी और परिजन के योगक्षेम और आजीविका के परिवहन का भार लेता है। यह घोषणा करो यावत् उन्होंने घोषणा की।

थावच्चापुत्तस्स अभिनिक्खमण-पदं

२७. तए णं थावच्चापुत्तस्स अणुराएणं पुरिससहस्सं निक्खमणाभिमुहं ण्हायं सव्वालंकारविभूसियं पत्तेयं-पत्तेयं पुरिससहस्सवाहिणीसु सिवियासु दुरूढं समाणं मित्त-नाइ-परिवुडं थावच्चापुत्तस्स अंतियं पाउब्भूयं।।

थावच्चापुत्र का अभिनिष्क्रमण-पद

२७. थावच्चापुत्र के अनुराग से एक हजार पुरुष अभिनिष्क्रमण के लिए तैयार हो गए। वे स्नान कर सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित हो, हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली अपनी-अपनी शिविकाओं पर आरूढ़ और मित्र-ज्ञाति से परिवृत हो थावच्चापुत्र के समक्ष उपस्थित हुए।

२८. तए णं से कण्हे वासुदेवे पुरिससहस्सं अंतियं पाउब्भवमाणं पासइ, पासित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--जहा मेहस्स निक्खमणाभिसेओ खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अणेगखंभ- सयसन्निविट्ठं जाव सीयं उवट्ठवेह ।।

२८. कृष्ण वासुदेव ने अपने सामने उपस्थित हजार पुरुषों को देखा। उन्हें देखकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--अभिनिष्क्रमण की वक्तव्यता मेघकुमार की भांति। देवानुप्रियो! शीघ्र ही सैकड़ों खम्भों से युक्त यावत् शिविका उपस्थित करो।

२९. तए णं से थावच्चापुत्ते बारवतीए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव रेवतगपव्वए जेणेव नंदणवणे उज्जाणे जेणेव

२९. थावच्चापुत्र ने द्वारवती नगरी के बीचोंबीच होकर निर्गमन किया। जहां रैवतक पर्वत था, जहां नंदनवन उद्यान था, जहां सुरप्रिय यक्ष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुरप्पियस्स जक्खस्स जक्खाययणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स छत्ताइछत्तं पडागाइपडागं विज्जाहर-चारणे जंभए य देवे ओवयमाणे उप्पयमाणे पासइ, पासित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ।।

सिस्सभिक्खादाण-पदं

३०. तए णं से कण्हे वासुदेवे थावच्चापुत्तं पुरओ काउं जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेति, करेत्ता वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--एस णं देवाणुप्पिया! थावच्चापुत्ते थावच्चाए गाहावइणीए एगे पुत्ते इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणभूए जीवियऊसासए हिययनंदिजणए उंबरपुप्फं पिव दुल्लहे सवणयाए, किमंग पुण दरिसणयाए?

से जहानामए उप्पले ति वा पउमे ति वा कुमुदे ति वा पंके जाए जले संवड्ढिए नोवलिप्पइ पंकरएणं नोवलिप्पइ जलरएणं, एवामेव थावच्चापुत्ते कामेसु जाए भोगेसु संवड्ढिए नोवलिप्पइ कामरएणं नोवलिप्पइ भोगरएणं। एस णं देवाणुप्पिया! संसारभउव्विगे भीए जम्मण-जर-मरणाणं, इच्छइ देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए। अम्हे णं देवाणुप्पियाणं सिस्सभिक्खं दलयामो। पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया! सिस्सभिक्खं।।

३१. तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे एयमट्ठं सम्मं पडिसुणेइ।।

३२. तए णं से थावच्चापुत्ते अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतियाओ उत्तरपुरत्थिमं दिसीभायं अवक्कमइ, सयमेव आभरण-मल्लालंकारं ओमुयइ।।

३३. तए णं सा थावच्चा गाहावइणी हंसलक्खणेणं पडसाडएणं आभरणमल्लालंकारं पडिच्छइ, हार-वारिधार-सिंदुवार-छिन्नमुत्तावलि-प्पगासाइं अंसूणि विणिम्मुयमाणी-विणिम्मुयमाणी रोयमाणी-रोयमाणी कंदमाणी-कंदमाणी विलवमाणी-विलवमाणी एवं वयासी--जइयव्वं जाया! घडियव्वं जाया! परिक्कमियव्वं जाया! अस्सिं च णं अट्ठे नो पमाएयव्वं। अम्हंपि णं एसेव मग्गे भवउ त्ति कट्टु थावच्चा गाहावइणी अरहं अरिट्ठनेमिं वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।।

का यक्षायतन था, जहां प्रवर अशोक वृक्ष था, वहां आया, वहां आकर अर्हत अरिष्टनेमि के छत्रों, अतिछत्रों, पताकाओ, अतिपताकाओं तथा विद्याधर, चारण और जृम्भक देवों को उड़ते, आते-जाते हुए देखा। देखकर वह शिविका से नीचे उतरा।

शिष्यभिक्षा का दान-पद

३०. कृष्ण वासुदेव थावच्चापुत्र को आगे कर जहां अर्हत अरिष्टनेमि थे वहां आए। आकर अरिष्टनेमि को दांयी ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर वंदना नमस्कार किया। वंदना नमस्कार कर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय ! यह थावच्चापुत्र थावच्चा गृहस्वामिनी का एक मात्र पुत्र है। यह इष्ट, कमनीय, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर, स्थिरतर, विश्वसनीय, सम्मत, बहुमत, अनुमत, आभरण करंडक के समान, रत्न, रत्नभूत, जीवन, उच्छ्वास (प्राण) और हृदय को आनन्दित करने वाला है। यह उदुम्बर पुष्प के समान श्रवण दुर्लभ है, फिर दर्शन का तो कहना ही क्या?

जैसे उत्पल, पद्म अथवा कमल पंक में उत्पन्न होता है और जल में संवर्धित होता है, किन्तु वह पंक रज और जल रज से उपलिप्त नहीं होता। वैसे ही थावच्चापुत्र कामों में उत्पन्न हुआ, भोगों में संवर्धित हुआ, किन्तु यह काम रज और भोग रज से उपलिप्त नहीं हुआ।

देवानुप्रिय ! यह संसार के भय से उद्विग्न है। जन्म, जरा और मृत्यु से भीत है। यह देवानुप्रिय के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित होना चाहता है। इसलिए हम इसे देवानुप्रिय को शिष्य की भिक्षा के रूप में देते हैं।

देवानुप्रिय ! यह शिष्य-भिक्षा को स्वीकार करो।

३१. कृष्ण वासुदेव के ऐसा कहने पर अर्हत अरिष्टनेमि ने उनके इस अर्थ को सम्यक् स्वीकार किया।

३२. वह थावच्चापुत्र अर्हत अरिष्टनेमि के पास से उठकर उत्तर पूर्व दिशा (ईशान कोण) में गया। वहां उसने स्वयं ही आभरण, माल्य और अलंकार उतारे।

३३. थावच्चापुत्र की माता थावच्चा गृहस्वामिनी ने हंस लक्षण पट-शाटक (विशाल-वस्त्र) में उन आभरण, माल्य और अलंकारों को स्वीकार किया। वह हार, जलधारा, सिन्दुवार के फूल और टूटी हुई मोतियों की लड़ी के समान बार-बार आंसू बहाती, रोती, कलपती और विलपती हुई इस प्रकार बोली--जात ! संयम में प्रयत्न करना। जात! संयम में चेष्टा करना। जात ! पराक्रम करना। इस अर्थ में प्रमाद मत करना। हमारा भी यही मार्ग हो ऐसा कहकर थावच्चा गृहस्वामिनी ने अर्हत अरिष्टनेमि को वंदना नमस्कार किया। वंदना नमस्कार कर जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा में लौट गई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थावच्चापुत्तस्स पव्वज्जागहण-पदं

३४. तए णं से थावच्चापुत्ते पुरिससहस्सेणं सद्धिं सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करेत्ता जेणामेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ जाव पव्वइए।।

थावच्चा पुत्र द्वारा प्रव्रज्या ग्रहण-पद

३४. थावच्चापुत्र ने उन हजार पुरुषों के साथ स्वयं ही पंचमुष्टि लोच किया। पंचमुष्टि लोच कर जहां अर्हत अरिष्टनेमि थे, वहां आया। वहां आकर अरिष्टनेमि को दांयी ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर वंदन नमस्कार किया यावत् वह प्रव्रजित हो गया।

थावच्चापुत्तस्स अणगारचरिया-पदं

३५. तए णं से थावच्चापुत्ते अणगारे जाए--इरियासमिए भासासमिए एसणासमिए आयाण-भंड-मत्त-णिक्खेवणासमिए उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-पारिट्ठावणियासमिए मणसमिए वइसमिए कायसमिए मणगुत्ते वइगुत्ते कायगुत्ते गुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी अकोहे अमाणे अमाए अलोहे संते पसंते उवसंते परिनिव्वुडे अणासवे अममे अकिंचणे निरुवलेवे,

कंसपाईव मुक्कतोए संखो इव निरंगणे जीवो विव अप्पडिहयगई गगणमिव निरालंबणे वायुविव अप्पडिबद्धे सारयसलिलं व सुद्धहियए पुक्खरपत्तं पिव निरुवलेवे कुम्मो इव गुत्तिंदिए खग्गविसाणं व एगजाए विहग इव विप्पमुक्के भारंडपक्खीव अप्पमत्ते कुंजरो इव सोंडीरे वसभो इव जायत्थामे सीहो इव दुद्धरिसे मंदरो इव निप्पकंपे सागरो इव गंभीरे चंदो इव सोमलेस्से सूरो इव दित्ततेए जच्चकंचण व जायरूवे वसुंधरव्व सव्वफासविसहे सुहुयहुयासणोव्व तेयसा जलंते।।

थावच्चापुत्र की अनगार चर्या-पद

३५. अब थावच्चापुत्र अनगार हो गया। वह विवेकपूर्वक चलता। विवेक पूर्वक बोलता। विवेक पूर्वक आहार की एषणा करता। विवेकपूर्वक वस्त्र-पात्र आदि को लेता और रखता। विवेकपूर्वक मल-मूत्र, श्लेष्म, नाक के मैल, शरीर के गाढ़े मैल का परिष्ठापन (विसर्जन) करता। मन की संगत प्रवृत्ति करता। वचन की संगत प्रवृत्ति करता। शरीर की संगत प्रवृत्ति करता। मन का निरोध करता। वचन का निरोध करता। शरीर का निरोध करता। अपने आपको सुरक्षित रखता। इन्द्रियों को सुरक्षित रखता। ब्रह्मचर्य को सुरक्षित रखता[१]। क्रोध, मान, माया और लोभ नहीं करता। वह शान्त, प्रशान्त, उपशान्त, परिनिर्वृत[२], अनास्रव, निर्मम, अकिञ्चन और निरुपलेप था।

कांस्य-पात्र की भांति निर्लेप, शंख की भांति निरंजन, जीव की भांति अप्रतिहत गति वाला, गगन की भांति निरालम्बन, वायु की भांति अप्रतिबद्ध, शारद-सलिल की भांति शुद्ध हृदय वाला, पद्मपत्र (नलिनी दल) की भांति निरुपलेप, कछुए की भांति गुप्तेन्द्रिय, गेंडे के सींग की भांति अकेला[३], पक्षी की भांति विप्रमुक्त, भारण्ड पक्षी की भांति अप्रमत्त[४], कुञ्जर की भांति शूर, वृषभ की भांति बलवान, सिंह की भांति दुर्धर्ष (अपराजेय), मन्दर की भांति निष्प्रकम्प, सागर की भांति गम्भीर, चन्द्र की भांति सौम्य कांति वाला, सूर्य की भांति दीप्त तेज वाला, कंचन की भांति स्वरूपोपलब्ध वसुंधरा की भांति सब प्रकार के स्पर्शों को सहन करने वाला और सुहुय (सम्यक् प्रज्ज्वलित) हुताशन की भांति प्रज्ज्वलित था।

३६. नत्थि णं तस्स भगवंतस्स कत्थइ पडिबंधे भवइ। (सेय पडिबंधे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा--दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ। दव्वओ--सच्चित्ताचित्तमीसेसु। खेत्तओ--गामे वा नगरे वा रण्णे वा खले वा घरे वा अंगणे वा। कालओ--समए वा आवलियाए वा आणापाणुए वा थोवे वा लवे वा मुहुत्ते वा अहोरत्ते वा पक्खे वा मासे वा अयणे वा संवच्छरे वा अण्णयरे वा दीहकालसंजोए। भावओ--कोहे वा माणे वा माए वा लोहे वा भए वा होसे वा। एवं तस्स न भवइ)।।

३६. भगवान थावच्चापुत्र के कहीं भी प्रतिबन्ध नहीं था। [प्रतिबंध चार प्रकार का कहा गया है, जैसे--द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः, भावतः। द्रव्यतः-- सचित्त, अचित एवं मिश्र में। क्षेत्रतः--ग्राम, नगर, अरण्य, खल, घर अथवा आंगन में। कालतः--समय, आवलिका, आनापान, स्तोक, लव, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, अयन, संवत्सर अथवा किसी दीर्घकालीन संयोग में। भावतः--क्रोध, मान, माया, लोभ, भय अथवा हास्य में। इस प्रकार का प्रतिबंध उनके नहीं था।]

३७. से णं भगवं वासीचंदणकप्पे समतिणमणि-लेट्ठुकंचणे समसुहदुक्खे

३७. वासी और चंदन में समचित्त[५] तृण और मणि, पत्थर और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इहलोगपरलोग-अप्पडिबद्धे जीविय-मरण-निरवकंखे संसारपारगामी कम्मनिग्घायणट्ठाए एवं च णं विहरइ।।

सोना--उनको समदृष्टि से देखने वाले, सुख और दुःख में सम, इहलोक और परलोक में अप्रतिबद्ध, जीवन और मृत्यु की आकांक्षा से रहित, संसार का पार पाने वाले वे भगवान कर्मों के निर्घातन के लिए इस प्रकार विहार करने लगे।

३८. तए णं से थावच्चापुत्ते अरहओ अरिट्ठनेमिस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।।

३८. उस थावच्चापुत्र अनगार ने अर्हत अरिष्टनेमि के तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि चौदह पूर्वों का अध्ययन किया। अध्ययन कर बहुत सारे चतुर्थ भक्त, षष्ठ भक्त, अष्टम भक्त, दशम भक्त, द्वादश भक्त तथा मासिक और पाक्षिक तप से स्वयं को भावित करते हुए विहार करने लगे।

थावच्चापुत्तस्स जणवयविहार-पदं

थावच्चापुत्र का जनपद विहार-पद

३९. तए णं अरहा अरिट्ठनेमी थावच्चापुत्तस्स अणगारस्स तं इब्भाइयं अणगारसहस्सं सीसत्ताए दलयइ।।

३९. अर्हत अरिष्टनेमि ने थावच्चापुत्र अनगार को उन इभ्य आदि एक हजार अनगारों को शिष्य रूप में प्रदान किया।

४०. तए णं से थावच्चापुत्ते अण्णया कयाइं अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अणगारसहस्सेणं सद्धिं बहिया जणवयविहारं विहरित्तए।

अहासुहं।।

४०. किसी समय थावच्चापुत्र अनगार ने अर्हत अरिष्टनेमि को वंदना की, नमस्कार किया। वंदन नमस्कार कर इस प्रकार कहा-भन्ते! मैं आपसे अनुज्ञा प्राप्त कर उन हजार अनगारों के साथ अन्यत्र जनपद विहार करना चाहता हूँ।"

"जैसा तुम्हें सुख हो।"

४१. तए णं से थावच्चापुत्ते अणगारसहस्सेणं सद्धिं बहिया जणवयविहारं विहरइ।।

४१. थावच्चापुत्र एक हजार अनगारों के साथ बाहर जनपदविहार करने लगा।

सेलगराय-पदं

शैलकराज-पद

४२. तेणं कालेणं तेणं समएणं सेलगपुरे नामं नगरे होत्था। सुभूमिभागे उज्जाणे। सेलए राया। पउमावई देवी। मंडुए कुमारे जुवराया।।

४२. उस काल और उस समय शैलकपुर नाम का नगर था। सुभूमि-भाग उद्यान। शैलक राजा। पद्मावती देवी। मण्डुक कुमार नाम का युवराज।

४३. तस्स णं सेलगस्स पंथगपामोक्खा पंच मंतिसया होत्था--उप्पत्तियाए वेणइयाए कम्मियाए पारिणामियाए उववेया रज्जधुरं चिंतयंति।।

४३. उस शैलक राजा के पन्थक प्रमुख पांच सौ मंत्री थे। औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी एवं पारिणामिकी--इस बुद्धि चतुष्टय से युक्त वे राज्य धुरा का चिंतन करते थे।

४४. थावच्चापुत्ते सेलगपुरे समोसढे। राया निग्गए।।

४४. थावच्चापुत्र शैलकपुर में समवसृत हुआ। राजा ने दर्शन के लिए निर्गमन किया।

सेलगस्स गिहिधम्म-पडिवत्ति-पदं

शैलक द्वारा गृहस्थ-धर्म का स्वीकरण-पद

४५. तए णं से सेलए राया थावच्चापुत्तस्स अणगारस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता थावच्चापुत्तं अणगारं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता

४५. थावच्चापुत्र अनगार के पास धर्म को सुनकर, अवधारण कर हृष्ट-तुष्ट चित्त वाला, आनन्दित, प्रीतिपूर्ण मन वाला, परम सौमनस्य युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाला शैलक राजा स्फूर्ति के साथ उठा। उठकर थावच्चापुत्र अनगार को दांयी ओर से प्रारंभ कर तीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमंसित्ता एवं वयासी--
सद्दहामि णं भंते! निग्गथं पावयणं।
पत्तियामि णं भंते! निग्गथं पावयणं।
रोएमि णं भंते! निग्गथं पावयणं।
अब्भुट्ठेमि णं भंते! निग्गथं पावयणं।

एवमेयं भंते! तहमेयं भंते! अवितहमेयं भंते! असंदिद्धमेयं भंते! इच्छियमेयं भंते! पडिच्छियमेयं भंते! इच्छिय-पडिच्छियमेयं भंते! जं णं तुब्भे वदह त्ति कट्टु वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे उग्गा उग्गपुत्ता भोगा जाव इब्भा इब्भपुत्ता चिच्चा हिरण्णं, एवं-धणं धन्नं बलं वाहणं कोसं कोट्ठागारं पुरं अंतेउरं, चिच्चा विउलं धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-संतसार-सावएज्जं, विच्छड्डित्ता विगोवइत्ता, दाणं दाइयाणं परिभाइत्ता, मुंडा भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइया, तहा णं अहं नो संचाएमि जाव पव्वइत्तए, अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए चाउज्जामियं गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामि।

अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेहि।।

बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर वंदना नमस्कार किया। वंदना नमस्कार कर इस प्रकार कहा--

भन्ते! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ।
भन्ते! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर प्रतीति करता हूँ।
भन्ते! मै। निर्ग्रन्थ प्रवचन पर रुचि करता हूँ।
भन्ते! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन (की आराधना) में अभ्युत्थान करता हूँ।
यह ऐसा ही है भन्ते! यह तथा (संवादिता पूर्ण) है भंते !
यह अवितथ है भन्ते! यह असंदिग्ध है भन्ते! यह इष्ट है भंते!
यह प्रतीप्सित (प्राप्त करने के लिए इष्ट) है भन्ते!
यह इष्ट प्रतीप्सित दोनो है, भन्ते!

जैसा तुम कह रहे हो--ऐसा कहकर वंदना की। नमस्कार किया। वंदना नमस्कार कर इस प्रकार कहा--जैसे देवानुप्रिय के पास बहुत से उग्र, उग्रपुत्र, भोग यावत् इभ्य, इभ्यपुत्र, हिरण्य तथा इसी प्रकार धन-धान्य, बल, वाहन, कोष, कोष्ठागार, पुर तथा अन्तःपुर को त्याग कर विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मौक्तिक, शंख, शिला, प्रवाल, पद्मराग मणियां, श्रेष्ठ सुगन्धित द्रव्य और दान भोग आदि के लिए स्वापतेय का परित्याग कर, विगोपन कर, हिस्सेदारों को दान देकर मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित हुए। वैसा करने में यावत् प्रव्रजित होने में मैं समर्थ नहीं हूं। मैं देवानुप्रिय के पास चातुर्यामरूप गृहस्थ धर्म स्वीकार करूंगा।

देवानुप्रिय!--"जैसा तुम्हें सुख हो, प्रतिबंध मत करो।"

४६. तए णं से सेलए राया थावच्चापुत्तस्स अणगारस्स अंतिए चाउज्जामियं गिहिधम्मं उवसंपज्जइ।।

४६. शैलक राजा ने थावच्चापुत्र अनगार के पास चातुर्याम रूप गृहस्थ धर्म स्वीकार किया।

सेलगस्स समणोवासग-चरिया-पदं

४७. तए णं से सेलए राया समणोवासए जाए--अभिगयजीवाजीवे उवलद्धपुण्णपावे आसव-संवर-निज्जर-किरिया-अहिगरण-बंधमोक्ख-कुसले असहेज्जे देवासुर-णाग-जक्ख-रक्खस-किण्णर-किंपुरिस-गरुल-गंधव्व-महोरगाइएहिं देवगणेहिं निग्गंथाओ पावयणाओ अणइक्कमणिज्जे, निग्गंथे पावयणे णिस्संकिए णिक्कंखिए निव्वितिगिच्छे लद्धट्ठे गहियट्ठे पुच्छियट्ठे अभिगयट्ठे विणिच्छियट्ठे अट्ठिमिंजपेमाणुरागरत्ते अयमाउसो! निग्गंथे पावयणे अट्ठे अयं परमट्ठे सेसे अणट्ठे ऊसियफलिहे अवंगुयदुवारे चियत्तंतेउर-परघरदार-प्पवेसे चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासि-णीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणे समणे निग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं ओसहभेसज्जेणं पाडिहारिएणं य पीढफलग-सेज्जा-संथारएणं पडिलाभेमाणे सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।।

शैलक की श्रमणोपासक-चर्या-पद

४७. शैलक राजा श्रमणोपासक बन गया। जीव अजीव को जानने वाला, पुण्य-पाप के मर्म को समझने वाला, आश्रव, संवर, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण, बन्ध और मोक्ष के विषय में कुशल, सत्य के प्रति स्वयं निश्चल, देव, असुर, नाग, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, गरुड, गंधर्व महोरग आदि देवगणों के द्वारा निर्ग्रन्थ प्रवचन से अविचलनीय, निर्ग्रन्थ प्रवचन में शंका रहित, कांक्षा रहित, विचिकित्सा रहित यथार्थ को सुनने वाला, यथार्थ को ग्रहण करने वाला, उस विषय में पूछने वाला, उसे जानने वाला, उसका विनिश्चय करने वाला, (निर्ग्रन्थ प्रवचन के) प्रेमानुराग से अनुरक्त अस्थि, मज्जा वाला था। आयुष्मन्! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन यथार्थ है, यह परमार्थ है, शेष अनर्थ हैं (ऐसा मानने वाला) आगल को ऊंचा और दरवाजे को खुला रखने वाला, अन्तःपुर और दूसरों के घरों में बिना किसी रुकावट के प्रवेश करने वाला, चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा को प्रतिपूर्ण पौषध व्रत का सम्यक् अनुपालन करने वाला[९], श्रमण निर्ग्रन्थ को प्रासुक एषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कंबल, पाद-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रोञ्छन, औषध, भेषज्य तथा प्रातिहारिक, पीठ, फलक, शय्या और संस्तारक का दान देने वाला बहुत शील व्रत, गुण-विरमण, प्रत्याख्यान और पोषधोपवास के द्वारा तथा यथापरिगृहीत तप: कर्म के द्वारा आत्मा को भावित कर रहने लगा।

४८. पंथगपामोक्खा पंच मंतिसया समणोवासया जाया।।

४८. पन्थक प्रमुख पांच सौ मंत्री भी श्रमणोपासक बने।

४९. थावच्चापुत्ते बहिया जणवयविहारं विहरइ।।

४९. थावच्चापुत्र ने शैलकपुर के बाहर जनपदविहार किया।

५०. तेणं कालेणं तेणं समएणं सोगंधिया नामं नयरी होत्था--वण्णओ। नीलासोए उज्जाणे--वण्णओ।।

५०. उस काल और उस समय सौगन्धिका नाम की नगरी थी–वर्णक। वहां नीलाशोक नाम का उद्यान था--वर्णक।

सुदंसणसेट्ठि-पदं

५१. तत्थ णं सोगंधियाए नयरीए सुदंसणे नामं नयरसेट्ठी परिवसइ, अड्ढे जाव अपरिभूए।।

सुदर्शन श्रेष्ठी-पद

५१. सौगन्धिका नगरी में सुदर्शन नाम का नगर सेठ रहता था। वह आढ्य यावत् अपराजित था।

सुयपरिव्वायग-पदं

५२. तेणं कालेणं तेणं समएणं सुए नामं परिव्वायए होत्था--रिउव्वेय-जजुव्वेय-सामवेय-अथव्वणवेय-सट्ठितंतकुसले संखसमए लद्धट्ठे पंचजम-पंचनियमजुत्तं सोयमूलयं दसप्पयारं परिव्वायगधम्मं दाणधम्मं च सोयधम्मं च तित्थाभिसेयं च आघवेमाणे पण्णवेमाणे धाउरत्त-वत्थ-पवर-परिहिए तिदंड-कुंडिय-छत्त-छन्नालय-अंकुस-पवित्तय-केसरि-हत्थगए परिव्वायगसहस्सेणं सद्धिं संपरिवुडे जेणेव सोगंधिया नयरी जेणेव परिव्वायगावसहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता परिव्वायगावसहंसि भंडगनिक्खेवं करेइ, करेत्ता संखसमएणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।।

शुक परिव्राजक-पद

५२. उस काल और उस समय शुक नाम का परिव्राजक था। वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और षष्टितंत्र में कुशल, सांख्यदर्शन के मर्म को जानने वाला, पांच यम और पांच नियमों से युक्त था। वह शौच मूलक दस प्रकार के परिव्राजक धर्म का तथा दान धर्म, शौच- धर्म और तीर्थाभिषेक का आख्यान और प्ररूपणा करता हुआ प्रवर गेरुए वस्त्र पहने, हाथ में त्रिदण्ड, कमण्डलु, छत्र, त्रिकाष्ठिका, अंकुश, तांबे की अंगुठी और एक वस्त्र-खंड धारण किए हुए एक हजार परिव्राजकों के साथ उनसे परिवृत हो, जहां सौगन्धिका नगरी थी परिव्राजकों का मठ था, वहां आया। वहां आकर परिव्राजकों के मठ में उपकरण रखे। रखकर वहां सांख्य-दर्शन के अनुसार स्वयं को भावित करता हुआ विहार करने लगा।[११]

५३. तए णं सोगंधियाए नगरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ--एवं खलु सुए परिव्वायए इहमागए इह संपत्ते इह समोसढे इह चेव सोगंधियाए नयरीए परिव्वायगावसहंसि संखसमएणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।।

५३. सौगन्धिका नगरी के दौराहों, तिराहों, चौराहों, चौकों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और मार्गों में जन-समूह परस्पर इस प्रकार आख्यान करने लगा--शुक परिव्राजक यहां आया हुआ हैं, यहां संप्राप्त है, यहां समवसृत है और यहीं सौगन्धिका नगरी के परिव्राजक मठ में सांख्य दर्शन (सिद्धान्त) से स्वयं को भावित करता हुआ विहार कर रहा है।

५४. परिसा निग्गया। सुदंसणो वि णीति।।

५४. जन समूह ने निर्गमन किया। सुदर्शन भी आया।

सोयमूलय-धम्म-पदं

५५. तए णं से सुए परिव्वायए तीसे परिसाए सुदंसणस्स य अण्णेसिं च बहूणं संखाणं परिकहेइ--एवं खलु सुदंसणा! अम्हं सोयमूलए धम्मे पण्णत्ते। से वि य सोए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा--दव्वसोए य भावसोए य।

शौचमूलक धर्म-पद

५५. शुक[१२] परिव्राजक ने उस परिषद् को, सुदर्शन को तथा अन्य बहुत से व्यक्तियों को सांख्य दर्शन समझाया--सुदर्शन! हमने शौचमूलक धर्म प्रज्ञप्त किया है। वह शौच भी दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे--द्रव्यशौच और भावशौच। द्रव्यशौच होता है--पानी से, मिट्टी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दव्वसोए उदएणं मट्टियाए य। भावसोए दब्भेहि य मंतेहि य।

जं णं अम्हं देवाणुप्पिया! किंचि असुई भवइ तं सव्वं सज्जपुढवीए आलिप्पइ, तओ पच्छा सुद्धेण वारिणा पक्खालिज्जइ, तओ तं असुई सुई भवइ। एवं खलु जीवा जलाभिसेय-पूयप्पाणो अविग्घेणं सग्गं गच्छंति।।

सुदंसणस्स सोयमूलय-धम्मपडिवत्ति-पदं

५६. तए णं से सुदंसणे सुयस्स अंतिए धम्मं सोच्चा हट्ठतुट्ठे सुयस्स अंतियं सोयमूलयं धम्मं गेण्हइ, गेण्हित्ता परिव्वायए विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेमाणे संखसमएणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।।

५७. तए णं से सुए परिव्वायए सोगंधियाओ नयरीओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।।

थावच्चापुत्तस्स सुदंसणेण संवाद-पदं

५८. तेणं कालेणं तेणं समएणं थावच्चापुत्तस्स समोसरणं। परिसा निग्गया।

सुदंसणो वि णीइ। थावच्चापुत्तं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--तुम्हाणं किंमूलए धम्मे पण्णत्ते?

५९. तए णं थावच्चापुत्ते सुदंसणेणं एवं वुत्ते समाणे सुदंसणं एवं वयासी--सुदंसणा! विणयमूलए धम्मे पण्णत्ते। से वि य विणए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा--अगारविणए अणगारविणए य।

तत्थ णं जे से अगारविणए, से णं चाउज्जामिए गिहिधम्मे। तत्थ णं जे से अणगारविणए, से णं चाउज्जामा, तं जहा--सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमणं।

इच्चेएणं दुविहेणं विणयमूलएणं धम्मेणं आणुपुव्वेणं अट्ठकम्मपगडीओ खवेत्ता लोयग्गपइट्ठाणा भवंति।।

६०. तए णं थावच्चापुत्ते सुदंसणं एवं वयासी--तुब्भण्णं सुदंसणा! किंमूलए धम्मे पण्णत्ते?

अम्हाणं देवाणुप्पिया! सोयमूलए धम्मे पण्णत्ते। से वि य सोए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा--दव्वसोए य भावसोए य।

दव्वसोए उदएणं मट्टियाए य। भावसोए दब्भेहि य मंतेहि य।

जं णं अम्हं देवाणुप्पिया! किंचि असुई भवइ तं सव्वं सज्जपुढवीए आलिप्पइ, तओ पच्छा सुद्धेण वारिणा पक्खालिज्जइ, तओ णं

से। भाव शौच होता है डाभ से और मंत्रों से।

देवानुप्रिय! हमारी जो कोई वस्तु अशुचि होती है, उसे पहले ताजा मिट्टी से मलते है। उसके बाद शुद्ध जल से धोते हैं। ऐसा करने से वह अशुचि शुचि हो जाती है। इस प्रकार जीव जलाभिषेक से स्वयं को पवित्र कर निर्विघ्न स्वर्ग में चले जाते हैं।

सुदर्शन द्वारा शौचमूलक धर्म की प्रतिपत्ति-पद

५६. शुक के पास धर्म को सुन, हृष्ट-तुष्ट हुए सुदर्शन ने शुक के पास शौचमूलक धर्म को स्वीकार किया। स्वीकार कर परिव्राजकों को विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य से प्रतिलाभित करता हुआ और सांख्य दर्शन से स्वयं को भावित करता हुआ विहार करने लगा।

५७. शुक परिव्राजक ने सौगन्धिका नगरी से निर्गमन किया, निर्गमन कर बाहर जनपद-विहार किया।

थावच्चापुत्र का सुदर्शन के साथ संवाद-पद

५८. उस काल और उस समय थावच्चापुत्र का समवसरण हुआ। जन समूह ने निर्गमन किया।

सुदर्शन भी गया। उसने थावच्चापुत्र को वंदना की। नमस्कार किया। वंदना नमस्कार कर इस प्रकार बोला--तुम्हारे धर्म का मूल क्या प्रज्ञप्त है?

५९. सुदर्शन के ऐसा कहने पर थावच्चापुत्र ने इस प्रकार कहा--सुदर्शन! हमारा धर्म विनयमूलक प्रज्ञप्त है। वह विनय भी दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे--अगार विनय और अनगार विनय।

जो अगार विनय है, वह चातुर्यामरूप गृहस्थ धर्म[13] है। जो अनगार विनय है, वे चातुर्याम है, जैसे--सर्व प्राणतिपात से विरमण, सर्व मृषावाद से विरमण, सर्व अदत्तादान से विरमण, सर्व परिग्रह (बाह्य ग्रहण) से विरमण।

इस द्विविध विनयमूलक धर्म के द्वारा क्रमशः आठ कर्म प्रकृतियों को क्षीण कर जीव लोकाग्र में प्रतिष्ठित--सिद्ध हो जाते हैं।

६०. थावच्चापुत्र ने सुदर्शन से इस प्रकार कहा--सुदर्शन! तुम्हारे धर्म का मूल क्या प्रज्ञप्त है?

देवानुप्रिय ! हमारे शौचमूलक धर्म प्रज्ञप्त है। वह शौच भी दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे--द्रव्यशौच और भावशौच।

द्रव्यशौच होता है, पानी से और मिट्टी से। भावशौच होता है डाभ से और मंत्रों से। देवानुप्रिय ! हमारी जो कोई वस्तु अशुचि होती है, उसे पहले ताजा मिट्टी से मलते हैं, उसके बाद उसे शुद्ध जल से धोते हैं, ऐसा करने से वह अशुचि से शुचि हो जाती है। इस प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असुई सुई भवइ। एवं खुल जीवा जलाभिसेय-पूयप्पाणो अविग्घेणं सग्गं गच्छंति।।

जीव जलाभिषेक से स्वयं को पवित्र कर निर्विघ्न स्वर्ग में चले जाते हैं।

६१. तए णं थावच्चापुत्ते सुदंसणं एवं वयासी--सुदंसणा! से जहानामए केइ पुरिसे एगं महं रुहिरकयं वत्थं रुहिरेण चेव धोवेज्जा, तए णं सुदंसणा! तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स रुहिरेण चेव पक्खालिज्जमाणस्स अत्थि काइ सोही?

नो इणट्ठे समट्ठे। एवामेव सुदंसणा! तुब्भं पि पाणाइवाएणं जाव बहिद्धादाणेणं नत्थि सोही, जहा तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स रुहिरेणं चेव पक्खालिज्जमाणस्स नत्थि सोही।

सुदंसणा! से जहानामए केइ पुरिसे एगं महं रुहिरकयं वत्थं सज्जिय- खारेणं आलिंपइ, आलिंपित्ता पयणं आरुहेइ, आरुहेत्ता उण्हं गाहेइ, तओ पच्छा सुद्धेणं वारिणा धोवेज्जा। से नूणं सुदंसणा! तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स सज्जिय-खारेणं अणुलित्तस्स पयणं आरुहियस्स उण्हं गाहियस्स सुद्धेणं वारिणा पक्खालिज्ज माणस्स सोही भवइ?

हंता भवइ। एवामेव सुदंसणा! अम्हं पि पाणाइवायवेरमणेणं जाव बहिद्धादाणवेरमणेणं अत्थि सोही, जहा वा तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स सज्जियखारेणं अणुलित्तस्स पयणं आरुहियस्स उण्हं गाहियस्स सुद्धेणं वारिणा पक्खालिज्जमाणस्स अत्थि सोही।।

६१. थावच्चापुत्र ने सुदर्शन से इस प्रकार कहा--सुदर्शन! जैसे कोई पुरुष खून से सने एक महान वस्त्र को खून से ही धोए तो सुदर्शन! उस खून से सने और खून से ही धुले वस्त्र की कोई शुद्धि होती हैं?

यह अर्थ संगत नहीं है।

सुदर्शन! इसी प्रकार प्राणातिपात यावत् परिग्रह से तुम्हारी भी शुद्धि नहीं होती, जैसे खून से सने वस्त्र की शुद्धि खून से धोने पर नहीं होती।

सुदर्शन! जैसे कोई पुरुष खून से सने एक महान वस्त्र को खार में भिगोता है। भिगोकर उसे आंच पर चढ़ाता है। चढ़ाकर उबालता है उसके बाद स्वच्छ जल से धोता है। सुदर्शन! उस खून से सने वस्त्र को साजी के खार में भिगोने, आंच पर चढ़ाने--उबालने, उसके बाद स्वच्छ जल से धोने से शुद्धि होती है? हां होती है। सुदर्शन! इसी प्रकार हमारे भी प्राणातिपात विरति यावत् परिग्रह विरति से शुद्धि होती है जैसे कि खून से सने वस्त्र की शुद्धि साजी के खार में भिगोने, आंच पर चढ़ाने, उबालने, उसके बाद स्वच्छ जल से धोने पर होती है।

सुदंसणस्स विणयमूलय-धम्मपडिवत्ति-पदं

६२. तत्थ णं सुदंसणे संबुद्धे थावच्चापुत्तं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--इच्छामि णं भंते! (तुब्भं अंतिए?) धम्मं सोच्चा जाणित्तए।।

६३. तए णं थावच्चापुत्ते अणगारे सुदंसणस्स तीसे य महइमहालियाए महच्चपरिसाए चाउज्जामं धम्मं कहेइ, तं जहा--सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमणं जाव।।

६४. तए णं से सुदंसणे समणोवासए जाए--अभिगयजीवाजीवे जाव समणे निग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं ओसह-भेसज्जेणं पाडिहारिएण य पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं पडिलाभेमाणे विहरइ।।

सुदर्शन द्वारा विनयमूलक धर्म की प्रतिपत्ति-पद

६२. उस चर्चा प्रसंग से संबुद्ध होकर सुदर्शन ने थावच्चापुत्र को वंदना की, नमस्कार किया। वंदना-नमस्कार कर इस प्रकार कहा--भन्ते! मैं (आपके पास?) धर्म सुनकर (तत्त्व) जानना चाहता हूं।

६३. थावच्चापुत्र अनगार ने सुदर्शन को और उस सुविशाल महान अर्चा वाली परिषद् को चातुर्याम धर्म कहा--जैसे सर्वप्राणातिपात से विरमण, सर्वमृषावाद से विरमण, सर्व अदत्तादान से विरमण, सर्व परिग्रह से विरमण यावत्.....।

६४. वह सुदर्शन श्रमणोपासक बन गया। जीव अजीव को जानने वाला यावत् वह श्रमण-निर्ग्रन्थों को प्रासुक एषणीय, अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कंबल, पादप्रौञ्छन, औषध, भेषज्य तथा प्रातिहारिक पीठ, फलक, शय्या और संस्तारक से प्रतिलाभित करता हुआ विहार करने लगा।

सुएण सुदंसणस्स पडिसंबोध-पयत्त-पदं

६५. तए णं तस्स सुयस्स परिव्वायगस्स इमीसे कहाए लद्धट्ठस्स समाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--एवं खलु सुदंसणेणं सोयधम्मं विप्पजहाय विणयमूले

शुक द्वारा सुदर्शन को प्रतिसंबोध प्रयत्न-पद

६५. इस वृत्तान्त से अवगत होने पर शुक परिव्राजक के मन में यह विशेष प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--सुदर्शन ने शौचधर्म को त्याग कर विनयमूल धर्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धम्मे पडिवण्णे, तं सेयं खलु मम सुदंसणस्स दिट्ठिं वामेत्तए पुणरवि सोयमूलए धम्मे आघवित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता परिव्वायगसहस्सेणं सद्धिं जेणेव सोगंधिया नगरी जेणेव परिव्वायगावसहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता परिव्वायगावसहंसि भंडगनिक्खेवं करेइ, करेत्ता धाउरत्त-वत्थ-पवर-परिहिए पविरल-परिव्वायगेणं सद्धिं संपरिवुडे परिव्वायगावसहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सोगंधियाए नयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव सुदंसणस्स गिहे जेणेव सुदंसणे तेणेव उवागच्छइ।।

स्वीकार कर लिया। अत: मेरे लिए उचित है, मैं सुदर्शन की दृष्टि को बदल कर पुन: शौचमूलक धर्म का आख्यान करूं--उसने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर हजार परिव्राजकों के साथ जहाँ सौगन्धिका नगरी थी, जहाँ परिव्राजकों का मठ था, वहाँ आया। वहां आकर परिव्राजकों के मठ में अपने उपकरण रखे। उपकरण रखकर प्रवर गेरुए वस्त्र पहने। उसने कुछेक परिव्राजकों के साथ, उनसे परिवृत हो, परिव्राजकों के मठ से निर्गमन किया। निर्गमन कर सौगन्धिका नगरी के बीचों-बीच से गुजरता हुआ जहाँ सुदर्शन का घर था, जहाँ सुदर्शन था, वहाँ आया।

६६. तए णं से सुदंसणे तं सुयं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता नो अब्भुट्ठेइ न पच्चुग्गच्छइ नो आढाइ नो वंदइ तुसिणीए संचिट्ठइ।।

६६. सुदर्शन ने शुक को आते हुए देखा। उसे देखकर वह न आसन से उठा, न सामने गया। न उसे आदर दिया और न वंदना की। वह मौन रहा।

६७. तए णं से सुए परिव्वायए सुदंसणं अणब्भुट्ठियं पासित्ता एवं वयासी--तुमं णं सुदंसणा! अण्णया ममं एज्जमाणं पासित्ता अब्भुट्ठेसि पच्चुग्गच्छसि आढासि वंदसि, इयाणिं सुदंसणा! तुमं ममं एज्जमाणं पासित्ता नो अब्भुट्ठेसि नो पच्चुग्गच्छसि नो आढासि नो वंदसि। तं कस्स णं तुमे सुदंसणा! इमेयारूवे विणयमूले धम्मे पडिवण्णे?

६७. सुदर्शन को बैठे हुए देखकर शुक परिव्राजक ने उससे इस प्रकार कहा--सुदर्शन! सदा तुम मुझे आते हुए देखकर आसन से उठते हो, सामने आते हो, मुझे आदर देते हो और वंदना करते हो। सुदर्शन! इस समय मुझे आते हुए देखकर तुम न आसन से उठे हो, न सामने आए हो, न मुझे आदर दे रहे हो और न वन्दना की। सुदर्शन! यह विशेष प्रकार का विनय मूल धर्म तुमने किससे स्वीकार कर लिया?

६८. तए णं से सुदंसणे सुएणं परिव्वायगेणं एवं वुत्ते समाणे आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु सुयं परिव्वायगं एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतेवासी थावच्चापुत्ते नामं अणगारे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहमागए इह चेव नीलासोए उज्जाणे विहरइ। तस्स णं अंतिए विणयमूले धम्मे पडिवण्णे।।

६८. शुक परिव्राजक के ऐसा कहने पर सुदर्शन आसन से उठा। उठकर दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट आकार वाली अञ्जलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर शुक परिव्राजक से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! अर्हत अरिष्टनेमि के अंतेवासी थावच्चापुत्र नाम के अनगार क्रमश: संचार करते हुए, ग्रामानुग्राम परिव्रजन करते हुए यहाँ आए हैं, वे यहीं नीलाशोक उद्यान में विहार कर रहे हैं। मैंने उनके पास विनयमूलक धर्म को स्वीकार किया है।

६९. तए णं से सुए परिव्वायए सुदंसणं एवं वयासी--तं गच्छामो णं सुदंसणा! तव धम्मायरियस्स थावच्चापुत्तस्स अंतियं पाउब्भवामो, इमाइं च णं एयारूवाइं अट्ठाइं हेऊइं पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं पुच्छामो। तं जइ मे से इमाइं अट्ठाइं हेऊइं पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं वागरेइ, तओ णं वंदामि नमंसामि। अह मे से इमाइं अट्ठाइं हेऊइं पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं नो वागरेइ, तओ णं अहं एएहिं चेव अट्ठेहिं हेऊहिं निप्पट्ठ-पसिणवागरणं करिस्सामि।।

६९. शुक परिव्राजक ने सुदर्शन से इस प्रकार कहा--सुदर्शन ! चलें, तुम्हारे धर्माचार्य थावच्चापुत्र के पास उपस्थित होकर उनसे ये विशेष प्रकार के अर्थ, हेतु, प्रश्न, कारण और व्याकरण पूछें। यदि वह मेरे इन अर्थों, हेतुओं, प्रश्नों, कारणों और व्याकरणों का उत्तर दे सके तो मैं उन्हें वन्दना-नमस्कार करूं और यदि वे मेरे इन अर्थों, हेतुओं, प्रश्नों, कारणों और व्याकरणों का उत्तर न दे सके तो मैं इन्हीं अर्थों और हेतुओं से उन्हें निरुत्तर करूंगा।

सुयस्स थावच्चापुत्तेण संवाद-पदं

७०. तए णं से सुए परिव्वायगसहस्सेणं सुदंसणेण य सेट्ठिणा सद्धिं जेणेव नीलासोए उज्जाणे जेणेव थावच्चापुत्ते अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थावच्चापुत्तं एवं वयासी--जत्ता ते

शुक का थावच्चापुत्र के साथ संवाद-पद

७०. तब शुक हजार परिव्राजकों और सुदर्शन सेठ के साथ जहाँ नीलाशोक उद्यान था, जहाँ थावच्चापुत्र अनगार थे वहां आया। आकर थावच्चापुत्र से इस प्रकार कहा--भंते! क्या तुम्हें यात्रा मान्य हैं?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भंते? जवणिज्जं ते (भंते?) ? अव्वाबाहं (ते भंते?) ? फासुयं विहारं (ते भंते?)?

७१. तए णं से थावच्चापुत्ते अणगारे सुएणं परिव्वायगेणं एवं वुत्ते समाणे सुयं परिव्वायगं एवं वयासी--सुया! जत्तावि मे जवणिज्जं पि मे अव्वाबाहं पि मे फासुयं विहारं पि मे।।

७२. तए णं से सुए थावच्चापुत्तं एवं वयासी--किं ते भंते! जत्ता?

सुया! जण्णं मम नाण-दंसण-चरित्त-तव-संजममाइएहिं जोएहिं जयणा, से तं जत्ता।

से किं ते भंते! जवणिज्जं?

सुया! जवणिज्जे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा--इंदियजवणिज्जे य नोइंदियजवणिज्जे य।

से किं तं इंदियजवणिज्जे?

सुया! जण्णं ममं सोतिंदिय-चक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियाइं निरुवहयाइं वसे वट्टंति, से तं इंदियजवणिज्जे।

से किं तं नोइंदियजवणिज्जे?

सुया! जण्णं मम कोह-माण-माया-लोभा खीणा उवसंता नो उदयंति,

से तं नोइंदियजवणिज्जे।

से किं ते भंते! अव्वाबाहं?

सुया! जण्णं मम वाइय-पित्तिय-सिंभिय-सन्निवाइया विविहा रोगायंका नो उदीरेंति, से तं अव्वाबाहं।

से किं ते भंते! फासुयं विहारं?

सुया! जण्णं आरामेसु उज्जाणेसु देउलेसु सभासु पवासु इत्थी-पसु-पंडग-विवज्जियासु वसहीसु पाडिहारियं पीढ-फलग-सेज्जा- संथारयं ओगिण्हित्ता णं विहरामि, से तं फासुयं विहारं।।

सरिसवयाणं भक्खाभक्ख-पदं

७३. सरिसवया ते भंते! किं भक्खेया? अभक्खेया?

सुया! सरिसवया भक्खेया वि अभक्खेया वि।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ--सरिसवया भक्खेया वि अभक्खेया वि?

सुया! सरिसवया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा--मित्तसरिसवया य धण्णसरिसवया य।

तत्थ णं जेते मित्तसरिसवया ते तिविहा पण्णत्ता, तं जहा--सहजायया सहवड्ढियया सहपंसुकीलियया, ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया।

तत्थ णं जेते धण्णसरिसवया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा--सत्थपरिणया य असत्थपरिणया य। तत्थ णं जेते

भंते! क्या तुम्हें यमनीय मान्य है? भंते! क्या तुम्हें अव्याबाध मान्य है? भन्ते! क्या तुम्हें प्रासुक विहार मान्य है?

७१. शुक परिव्राजक के ऐसा कहने पर थावच्चापुत्र अनगार ने उससे इस प्रकार कहा--शुक! मुझे यात्रा भी मान्य है, यमनीय भी मान्य है, अव्याबाध भी मान्य है और प्रासुक विहार भी मान्य है।

७२. शुक ने थावच्चापुत्र से इस प्रकार कहा--भंते! तुम्हारी यात्रा क्या है?

शुक! ज्ञान, दर्शन, चरित्र, तप और संयम आदि योगों के साथ जो मेरी प्रयत्नशीलता (यतना) है, वह मेरी यात्रा है।

भन्ते! तुम्हारा यमनीय क्या है ?

शुक!, यमनीय दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे--इन्द्रिय यमनीय और नोइन्द्रिययमनीय।

वह इन्द्रिययमनीय क्या है?

शुक! जो श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय निरुपहत (परिपूर्ण) होकर भी मेरे वश में रहते हैं, वह इन्द्रिय-यमनीय है।

वह नोइन्द्रिययमनीय क्या है ?

शुक! मेरे जो क्रोध, मान, माया और लोभ क्षीण या उपशान्त होने से उदय में नहीं आते, वह नोइन्द्रिययमनीय है।

भन्ते! वह अव्याबाध क्या है ?

शुक! जो मेरे वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक--ये विविध रोग और आतंक उदीर्ण नहीं होते, वह अव्याबाध है।

भन्ते! वह प्रासुक विहार क्या है ?

शुक! जो मैं आरामों, उद्यानों, देवकुलों, सभाओं, प्रपाओं और स्त्री, पशु तथा नपुंसक रहित वसतियों में प्रातिहारिक पीठ, फलक, शय्या और संस्तारक का ग्रहण कर विहार करता हूँ, वह प्रासुक विहार है।

सरिसवय की भक्ष्याभक्ष्यता-पद

७३. भन्ते! तुम्हारे सरिसवय भक्ष्य हैं या अभक्ष्य?

शुक! सरिसवय भक्ष्य भी हैं, अभक्ष्य भी हैं।

भन्ते! किस अर्थ से ऐसा कहते हैं--सरिसवय भक्ष्य भी हैं, अभक्ष्य भी हैं?

शुक! सरिसवय के दो प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे मित्र सरिसवय (सदृशवयसा: सवया:) और धान्य सरिसवय (सर्षप)

उनमें जो मित्र सरिसवय हैं, वे तीन प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे--सहजात, सहवर्द्धित, सहपांशुक्रीडित। वे श्रमण निर्ग्रन्थों के अभक्ष्य हैं।

उनमें जो धान्य सर्षप हैं, वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं--जैसे शस्त्रपरिणत और अशस्त्रपरिणत। उनमें वे जो अशस्त्रपरिणत हैं, वे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असत्थपरिणया ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया। तत्थ णं जेते सत्थपरिणया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा--फासुया य अफासुया य। अफासुया णं सुया! (समणाणं निग्गंथाणं?) नो भक्खेया। तत्थ णं जेते फासुया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा--एसणिज्जा य अणेसणिज्जा य। तत्थ णं जेते अणेसणिज्जा ते (णं समणाणं निग्गंथाणं?) अभक्खेया। तत्थ णं जेते एसणिज्जा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा--जाइया य अजाइया य। तत्थ णं जेते अजाइया ते (णं समणाणं निग्गंथाण?) अभक्खेया। तत्थ णं जेते जाइया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा--लद्धा य अलद्धा य। तत्थ णं जेते अलद्धा ते (णं समणाणं निग्गंथाणं?) अभक्खेया। तत्थ णं जेते लद्धा ते णं समणाणं निग्गंथाणं भक्खेया।

एएणं अट्ठेणं सुया! एवं वुच्चइ--सरिसवया भक्खेया वि अभक्खेया वि।।

श्रमण निर्ग्रन्थों के अभक्ष्य हैं। उनमें वे जो शस्त्रपरिणत हैं, वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं--जैसे प्रासुक और अप्रासुक। अप्रासुक भक्ष्य नहीं हैं, उनमें वे जो प्रासुक हैं, वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे--एषणीय और अनेषणीय। उनमें वे जो अनेषणीय हैं वे (श्रमण-निर्ग्रन्थों के?) अभक्ष्य हैं। उनमें वे जो एषणीय हैं वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे याचित और अयाचित। उनमें वे जो अयाचित हैं, वे (श्रमण निर्ग्रन्थों के?) भक्ष्य नहीं हैं। उनमें वे जो याचित हैं, वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे--लब्ध और अलब्ध। उनमें जो अलब्ध हैं वे (श्रमण-निर्ग्रन्थों के?) अभक्ष्य हैं। उनमें वे जो लब्ध हैं, वे श्रमण निर्ग्रन्थों के भक्ष्य हैं।

शुक! इस अर्थ से ऐसा कहते हैं--सरिसवय भक्ष्य भी हैं, अभक्ष्य भी हैं।

कुलत्थाणं भक्खाभक्ख-पदं

७४. कुलत्था ते भंते! किं भक्खेया? अभक्खेया?

सुया! कुलत्था भक्खेया वि अभक्खेया वि।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ--कुलत्था भक्खेया वि अभक्खेया वि?

सुया! कुलत्था दुविहा पण्णत्ता, तं जहा--इत्थिकुलत्था य धण्णकुलत्था य।

तत्थ णं जेते इत्थिकुलत्था ते तिविहा पण्णत्ता, तं जहा--कुलवहुया इ य कुलमाउया इ य कुलधूया इ य। ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया।

तत्थ णं जेते धण्णकुलत्था ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा--सत्थपरिणया य असत्थपरिणया। तत्थ णं जेते असत्थपरिणया ते समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया। तत्थ णं जेते सत्थपरिणया य। तत्थ णं जेते असत्थपरिणया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा--फासुया य अफासुया य। अफासुया णं सुया! समणाणं निग्गंथाणं नो भक्खेया। तत्थ णं जेते फासुया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा--एसणिज्जा य अणेसणिज्जा य। तत्थ णं जेते अणेसणिज्जा ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया। तत्थ णं जेते एसणिज्जा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा--जाइया य अजाइया य। तत्थ णं जेते अजाइया ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया। तत्थ णं जेते जाइया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा--लद्धा य अलद्धा य। तत्थ णं जेते अलद्धा ते अभक्खेया। तत्थ णं जेते लद्धा ते णं समणाणं निग्गंथाणं भक्खेया।

एएणं अट्ठेणं सुया! एवं वुच्चइ--कुलत्था भक्खेया वि अभक्खेया वि।।

कुलत्थों की भक्ष्याभक्ष्यता-पद

७४. भन्ते! तुम्हारे कुलथा भक्ष्य हैं या अभक्ष्य हैं? शुक! कुलथा भक्ष्य भी हैं, अभक्ष्य भी है।

भन्ते! किस अर्थ से ऐसा कहते हैं--कुलथा भक्ष्य भी हैं, अभक्ष्य भी है?

शुक! कुलथा दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे--स्त्रीकुलथा और धान्य कुलथा।

उनमें वे जो स्त्रीकुलथा हैं, वे तीन प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे--कुलवधू, कुलमाता, कुलपुत्री। वे श्रमण निर्ग्रन्थों के अभक्ष्य हैं।

उनमें वे जो धान्यकुलथा हैं--वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त है, जैसे--शस्त्रपरिणत और अशस्त्रपरिणत। उनमें वे जो अशस्त्रपरिणत हैं वे श्रमण निर्ग्रन्थों के अभक्ष्य हैं। उनमें वे जो शस्त्रपरिणत हैं, वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे--प्रासुक और अप्रासुक। शुक! अप्रासुक श्रमण निर्ग्रन्थों के भक्ष्य नहीं है। उनमें वे जो प्रासुक हैं वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे--एषणीय और अनेषणीय। उनमें जो अनेषणीय हैं वे श्रमण निग्रन्थों के अभक्ष्य हैं। उनमें जो एषणीय हैं वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे--याचित और अयाचित। उनमें जो अयाचित हैं वे श्रमण निर्ग्रन्थों के अभक्ष्य हैं। उनमें जो याचित हैं वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे- लब्ध और अलब्ध। उनमें जो अलब्ध हैं, वे अभक्ष्य हैं। उनमें वे जो लब्ध हैं वे श्रमण-निर्ग्रन्थों के भक्ष्य हैं।

शुक! इस अर्थ से ऐसा कहते हैं--कुलथा भक्ष्य भी हैं, अभक्ष्य भी हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मासाणं भक्खाभक्ख-पदं

७५. मासा ते भंते! किं भक्खेया? अभक्खेया?

सुया! मासा भक्खेया वि अभक्खेया वि।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ--मासा भक्खेया वि अभक्खेया वि?

सुया! मासा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा--कालमासा य अत्थमासा य धण्णमासा य।

तत्थ णं जेते कालमासा ते दुवालसविहा पण्णत्ता, तं जहा--सावणे भद्दवए आसोए कत्तिए मग्गसिरे पोसे माहे फग्गुणे चेत्ते वइसाहे जेट्ठामूले आसाढे। ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया।

तत्थं णं जेते अत्थमासा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा--हिरण्णमासा य सुवण्णमासा य। ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया। तत्थ णं जेते धण्णमासा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा--सत्थपरिणया य असत्थपरिणया य। तत्थ णं जेते असत्थपरिणया ते समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया। तत्थ णं जेते सत्थपरिणया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा--फासुया य अफासुया य। अफासुया णं सुया! समणाणं निग्गंथाणं नो भक्खेया। तत्थ णं जेते फासुया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा--एसणिज्जा य अणेसणिज्जा य।

तत्थं णं जेते अणेसणिज्जा ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया।

तत्थं णं जेते एसणिज्जा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा--जाइया य अजाइया य। तत्थ णं जेते अजाइया ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया।

तत्थं णं जेते जाइया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा--लद्धा य अलद्धा य। तत्थ णं जेते अलद्धा ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया।

तत्थ णं जेते लद्धा ते णं समणाणं निग्गंथाणं भक्खेया।

एएणं अट्ठेणं सुया! एवं वुच्चइ--मासा भक्खेया वि अभक्खेया वि।।

मासों (माषों) की भक्ष्याभक्ष्यता-पद

७५. भन्ते! तुम्हारे माष भक्ष्य हैं या अभक्ष्य हैं?

शुक। माष भक्ष्य भी हैं, अभक्ष्य भी हैं।

भन्ते! किस अर्थ से ऐसा कहते हैं--माष भक्ष्य भी हैं अभक्ष्य भी हैं?

शुक! माष तीन प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे--कालमास, अर्थमाष और धान्यमाष।

उनमें वे जो काल मास है--वे बारह प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे--श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मृगसर, पौष, माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठामूल और आषाढ़। वे श्रमण निर्ग्रन्थों के अभक्ष्य हैं।

उनमें वे जो अर्थमाष हैं वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे--हिरण्य माष और सुवर्ण माष। वे श्रमण निर्ग्रन्थों के अभक्ष्य हैं।

उनमें वे जो धान्यमाष हैं, वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे--शस्त्रपरिणत और अशस्त्रपरिणत। उनमें जो अशस्त्रपरिणत हैं, वे श्रमण निर्ग्रन्थों के अभक्ष्य हैं। उनमें वे जो शस्त्रपरिणत हैं वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे--प्रासुक और अप्रासुक। शुक! अप्रासुक श्रमण निर्ग्रन्थों के भक्ष्य नहीं है, उनमें वे जो प्रासुक हैं, वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे--एषणीय और अनेषणीय।

उनमें वे जो अनेषणीय हैं, वे श्रमण निर्ग्रन्थों के अभक्ष्य हैं। उनमें वे जो एषणीय हैं, वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे--याचित और अयाचित। उनमें वे जो अयाचित हैं, वे श्रमण-निर्ग्रन्थों के भक्ष्य नहीं हैं।

उनमें वे जो याचित हैं, वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे--लब्ध और अलब्ध। उनमें वे जो अलब्ध हैं, वे श्रमण निर्ग्रन्थों के अभक्ष्य हैं।

उनमें वे जो लब्ध हैं, वे श्रमण निर्ग्रन्थों के भक्ष्य हैं।

शुक! इस अर्थ से ऐसा कहते हैं, मास भक्ष्य भी हैं, अभक्ष्य भी हैं।

अत्थित्त-पण्ह-पदं

७६. एगे भवं? दुवे भवं? अक्खए भवं? अव्वए भवं? अवट्ठिए भवं? अणेगभूय-भाव-भविए भवं?

सुया! एगे वि अहं, दुवेवि अहं, अक्खए वि अहं, अव्वए वि अहं, अवट्ठिए वि अहं, अणेगभूय-भाव-भविए वि अहं।

से केणट्ठेणं भंते! एगे वि अहं? दुवेवि अहं? अक्खए वि अहं? अव्वए वि अहं? अवट्ठिए वि अहं? अणेगभूय-भाव-भविए वि अहं?

सुया! दव्वट्ठयाए 'एगे वि अहं', नाणदंसणट्ठयाए दुवे वि अहं, पएसट्ठयाए अक्खए वि अहं, अव्वए वि अहं, अवट्ठिए वि अहं, उवओगट्ठयाए अणेगभूय-भाव-भविए वि अहं।।

अस्तित्व-प्रश्न-पद

७६. आप एक हैं? आप दो हैं? आप अक्षय हैं? आप अव्यय हैं? आप अवस्थित हैं? आप भूत, वर्तमान और भावी अनेक पयार्यों से युक्त हैं?

शुक! मैं एक भी हूँ, दो भी हूँ, अक्षय भी हूँ, अव्यय भी हूँ, अवस्थित भी हूँ तथा भूत, वर्तमान और भावी अनेक पर्यायों से युक्त भी हूँ।

किस अर्थ से ऐसा है भन्ते! कि मैं एक भी हूँ? दो भी हूँ? अक्षय भी हूँ? अव्यय भी हूँ? अवस्थित भी हूँ? भूत, वर्तमान और भावी अनेक पर्यायों से युक्त भी हूँ?

शुक! द्रव्य की दृष्टि से मैं एक भी हूं। ज्ञान और दर्शन की दृष्टि से मैं दो भी हूँ। प्रदेश की दृष्टि से मैं अक्षय भी हूँ, अव्यय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुयस्स परिव्वायगसहस्सेण पव्वज्जा-पदं

७७. एत्थ णं से सुए संबुद्धे थावच्चापुत्तं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--इच्छामि णं भंते! तुब्भं अंतिए केवलिपण्णत्तं धम्मं निसामित्तए।।

७८. तए णं थावच्चापुत्ते अणगारे सुयस्स चाउज्जामं धम्मं कहेइ।।

७९. तए णं से सुए परिव्वायए थावच्चापुत्तस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म एवं वयासी--इच्छामि णं भंते! परिव्वायगसहस्सेणं सद्धिं संपरिवुडे देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता पव्वइत्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिया।।

८०. तए णं से सुए परिव्वायए उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए अवक्कमइ, अवक्कमित्ता तिदंडयं य कुंडियाओ य छत्तए य छन्नालए य अंकुसए य पवित्तए य केसरियाओ य धाउरत्ताओ य एगंते एडेइ, सयमेव सिहं उप्पाडेइ, उप्पाडेत्ता जेणेव थावच्चापुत्ते अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थावच्चापुत्तं अणगारं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता थावच्चापुत्तस्स अणगारस्स अंतिए मुंडे भवित्ता पव्वइए। सामाइय-माइयाइं चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जइ।।

सुयस्स जणवयविहार-पदं

८१. तए णं थावच्चापुत्ते सुयस्स अणगारसहस्सं सीसत्ताए वियरइ।।

८२. तए णं थावच्चापुत्ते सोगंधियाओ नयरीओ नीलासोयाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।।

थावच्चापुत्तस्स परिनिव्वाण-पदं

८३. तए णं से थावच्चापुत्ते अणगारसहस्सेणं सद्धिं संपरिवुडे जेणेव पुंडरीए पव्वए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुंडरीयं पव्वयं सणियं-सणियं दुरुहइ, दुरुहित्ता मेघघणसन्निगासं देवसन्निवायं पुढविसिलापट्टयं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता जाव संलेहणा-झूसणा-झूसिए भत्तपाण-पडियाइक्खिए पाओवगमणंणुवन्ने।।

भी हूँ, अवस्थित भी हूं, उपयोग की दृष्टि से मैं भूत, वर्तमान और भावी अनेक पर्यायों से युक्त भी हूँ।

हजार परिव्राजकों के साथ शुक की प्रव्रज्या-पद

७७. इस चर्चा प्रसंग से संबुद्ध हो शुक ने थावच्चापुत्र को वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार कर इस प्रकार कहा--भन्ते ! मैं आपके पास केवलीप्रज्ञप्त धर्म सुनना चाहता हूँ।

७८. थावच्चापुत्र अनगार ने शुक परिव्राजक को चातुर्याम धर्म कहा।

७९. शुक! परिव्राजक ने थावच्चा पुत्र के पास धर्म को सुनकर, अवधारण कर इस प्रकार कहा--भन्ते! मैं हजार परिव्राजकों के साथ उनसे परिवृत हो देवानुप्रिय के पास मुण्ड हो प्रव्रजित होना चाहता हूँ।

जैसा सुख हो, देवानुप्रिय!

८०. शुक परिव्राजक ईशान कोण में गया। वहाँ जाकर उसने त्रिदण्ड, कमण्डलु, छत्र, त्रिकाष्ठिका, अंकुश, तांबे की अंगूठी, एक वस्त्र खण्ड और गेरुएं वस्त्र को एक ओर रखा। अपने आप शिखा का लुञ्चन किया। लुञ्चन कर जहां थावच्चा पुत्र अनगार था वहाँ आया। वहाँ आकर थावच्चापुत्र अनगार को वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार कर वह थावच्चा पुत्र अनगार के पास मुण्ड हो प्रव्रजित हो गया। उसने सामायिक आदि चौदह पूर्वों का अध्ययन किया।

शुक का जनपद विहार-पद

८१. थावच्चापुत्र ने शुक को हजार अनगार शिष्य के रूप में प्रदान किए।

८२. थावच्चापुत्र ने सौगन्धिका नगरी और नीलाशोक उद्यान से निष्क्रमण किया। निष्क्रमण कर उसके बाहर जनपद विहार किया।

थावच्चापुत्र का परिनिर्वाण-पद

८३. थावच्चापुत्र हजार अनगारों के साथ, उनसे परिवृत हो, जहां पुण्डरीक पर्वत[१४] था वहाँ आया। वहाँ आकर धीरे-धीरे पुण्डरीक पर्वत पर चढ़ा। पुण्डरीक पर्वत पर चढ़कर सघन मेघ जैसे वर्ण वाले और देवों के समागम स्थल पृथ्वी शिलापट्ट का प्रतिलेखन किया। प्रतिलेखन कर यावत् संलेखना की आराधना में समर्पित हो, भक्तपान का प्रत्याख्यान कर, उसने प्रायोपगमन अनशन स्वीकार कर लिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८४. तए णं से थावच्चापुत्ते बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता जाव केवलवरनाणदंसणं समुप्पाडेत्ता तओ पच्छा सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिनिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे ।।

८४. थावच्चापुत्र बहुत वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय का पालन कर मासिक संलेखना की आराधना में स्वयं को समर्पित कर, अनशनकाल में साठ भक्तों का परित्याग कर यावत् प्रवर केवल ज्ञान-दर्शन उत्पन्न कर उसके बाद सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिर्वृत और सब दुःखों का अन्त करने वाला हुआ।

सेलगस्स अभिनिक्खमणाभिप्पाय-पदं

शैलक का अभिनिष्क्रमण अभिप्राय-पद

८५. तए णं से सुए अण्णया कयाइ जेणेव सेलगपुरे नगरे जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।।

८५. किसी समय वह शुक जहाँ शैलकपुर नगर था, जहाँ सुभूमिभाग उद्यान था वहाँ आया। वहां आकर वह यथोचित अवग्रह--आवास योग्य स्थान की अनुमति प्राप्त कर, संयम और तप से स्वयं को भावित करता हुआ विहार करने लगा।

८६. परिसा निग्गया। सेलओ निग्गच्छइ ।।

८६. जन समूह ने निर्गमन किया। शैलक भी चला गया।

८७. तए णं से सेलए सुयस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे सुयं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--सद्दहामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं जाव नवरं देवाणुप्पिया! पंथगपामोक्खाइं पंच मंतिसयाइं आपुच्छामि, मंडुयं च कुमारं रज्जे ठावेमि। तओ पच्छा देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि।

अहासुहं देवाणुप्पिया ।।

८७ शुक के पास धर्म को सुनकर, अवधारण कर हृष्ट-तुष्ट हुए शैलक ने शुक को तीन बार दांयी ओर से प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार बोला--भन्ते! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ, यावत् इतना विशेष है--देवानुप्रिय! मैं पंथक प्रमुख पांच सौ मंत्रियों से पूछ लूं। मंडुक कुमार को राज्य (सिंहासन) पर स्थापित कर दूं। उसके बाद देवानुप्रिय के पास मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित बनूं।

जैसा सुख हो, देवानुप्रिय !

८८. तए णं सेलए राया सेलगपुरं नगरं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव सए गिहे जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणे सण्णिसण्णे ।।

८८. शैलक राजा ने शैलकपुर नगर में पुनः प्रवेश किया। प्रवेश कर जहाँ उसका अपना घर था, जहाँ बाहरी सभा मण्डप था, वहाँ आया। वहाँ आकर सिंहासन पर बैठ गया।

८९. तए णं से सेलए राया पंथगपामोक्खे पंच मंतिसए सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! मए सुयस्स अंतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए। तए णं अहं देवाणुप्पिया! संसारभउव्विग्गे भीए जम्मण-जर-मरणाणं सुयस्स अणगारस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि। तुब्भे णं देवाणुप्पिया! किं करेह? किं ववसह ? किं वा भे हियइच्छिए सामत्थे?

८९. शैलक राजा ने पंथक प्रमुख पांच सौ मंत्रियों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! मैंने शुक के पास धर्म सुना है, और वही धर्म मुझे इष्ट, ग्राह्य और रुचिकर है। इसलिए देवानुप्रियो! संसार के भय से उद्विग्न तथा जन्म, जरा और मृत्यु से भीत बना मैं शुक अनगार के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित होता हूँ।

देवानुप्रियो! तुम क्या करते हो? क्या निर्णय लेते हो ? तुम्हारे अन्तर्मन की भावना और सामर्थ्य क्या है?

९०. तए णं ते पंथगपामोक्खा पंच मंतिसया सेलगं रायं एवं वयासी--जइ णं तुब्भे देवाणुप्पिया! संसारभउव्विग्गा जाव पव्वयह, अम्हं णं देवाणुप्पिया! के अण्णे आहारे वा आलंबे वा? अम्हे वि य णं देवाणुप्पिया! संसारभउव्विग्गा जाव पव्वयामो।

जहा णं देवाणुप्पिया! अम्हं बहूसु कज्जेसु य कारणेसु य कुडुंबेसु य मंतेसु य गुज्झेसु य रहस्सेसु य निच्छएसु य आपुच्छणिज्जे

९०. पन्थक प्रमुख पांच सौ मंत्रियों ने शैलक राजा से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! यदि तुम संसार के भय से उद्विग्न हो यावत् प्रव्रजित हो रहे हो तो देवानुप्रिय! हमारा दूसरा आधार और आलम्बन ही क्या है? देवानुप्रिय ! हम भी संसार के भय से उद्विग्न हैं यावत् प्रव्रजित होते हैं।

देवानुप्रिय ! जैसे हमारे बहुत से कार्यों, कारणों, कर्त्तव्यों,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पडिपुच्छणिज्जे, मेढी पमाणं आहारे आलंबणं चक्खू, मेढीभूए पमाणभूए आहारभूए आलंबणभूए चक्खुभूए तहा णं पव्वइयाण वि समाणाणं बहूसु कज्जेसु य जाव चक्खुभूए।।

मन्त्रणाओं, गोपनीय कार्यों, रहस्यों और निर्णयों में तुम्हारा मत पूछा जाता है, बार-बार पूछा जाता है, तुम (हमारे) मेढी, प्रमाण, आधार, आलम्बन और चक्षु हो। तुम मेढ़ीभूत, प्रमाणभूत, आधारभूत, आलम्बनभूत और चक्षुभूत हो। वैसे ही प्रव्रजित हो जाने पर भी तुम हमारे बहुत से कार्यों में मेढ़ीभूत यावत् चक्षुभूत रहोगे।

९१. तए णं से सेलगे पंथगपामोक्खे पंच मंतिसए एवं वयासी--जइ णं देवाणुप्पिया! तुब्भे संसारभउव्विग्गा जाव पव्वयह, तं गच्छह णं देवाणुप्पिया! सएसु-सएसु कुडुंबेसु जेट्ठपुत्ते कुडुंबमज्झे ठावेत्ता पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ दुरूढा समाणा मम अंतियं पाउब्भवह। ते वि तहेव पाउब्भवंति।।

९१. शैलक ने पंथक प्रमुख पांच सौ मंत्रियों से इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो ! यदि तुम संसार के भय से उद्विग्न हो यावत् प्रव्रजित होते हो तो देवानुप्रियो ! जाओ और अपने-अपने कुटुम्बों में जो ज्येष्ठ पुत्र हैं, उन्हें कुटुम्बों के प्रमुख पद पर स्थापित कर, हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली शिविकाओं पर आरूढ़ हो, मेरे पास उपस्थित हो जाओ।

वे भी वैसे ही उपस्थित हो गए।

मंडुयस्स रायाभिसेय-पदं

मंडुक का राज्याभिषेक-पद

९२. तए णं से सेलए राया पंच मंतिसयाइं पाउब्भवमाणाइं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! मंडुयस्स कुमारस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायाभिसेयं उवट्ठवेह।।

९२. शैलक राजा ने पांच सौ मंत्रियों को अपने सामने उपस्थित देखा। देखकर हृष्ट-तुष्ट हो कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! शीघ्र ही कुमार मंडुक के लिए महान अर्थवान, महामूल्य और महान अर्हता वाले विपुल राज्यभिषेक की उपस्थापना करो।

९३. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा मंडुयस्स कुमारस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायाभिसेयं उवट्ठवेंति।।

९३. उन कौटुम्बिक पुरुषों ने कुमार मंडुक के लिये महान अर्थवान, महामूल्य और महान अर्हता वाले विपुल राज्याभिषेक की उपस्थापना की।

९४. तए णं से सेलए राया बहूहिं गणनायगेहि य जाव संधिवालेहि य सद्धिं संपरिवुडे मंडुयं कुमारं जाव रायाभिसेएणं अभिसिंचइ।।

९४. राजा शैलक ने बहुत से गणनायकों यावत् सन्धिपालों के साथ उनसे परिवृत हो कुमार मंडुक को यावत् राज्याभिषेक से अभिषिक्त किया।

९५. तए णं से मंडुए राया जाए--महयाहिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे जाव रज्जं पसासेमाणे विहरइ।।

९५. अब मंडुक राजा बन गया। वह महान हिमालय, महान मलय, मेरु और महेन्द्र पर्वत के समान उन्नत यावत् राज्य का प्रशासन करता हुआ विहार करने लगा।

सेलयस्स निक्खमणाभिसेय-पदं

शैलक का निष्क्रमण-अभिषेक-पद

९६. तए णं से सेलए मंडुय रायं आपुच्छइ।।

९६. शैलक ने राजा मंडुक को पूछा।

९७. तए णं मंडुए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! सेलगपुरं नयरं आसिय-सित्त-सुइय-सम्मज्जिओवलित्तं जाव सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं करेह य कारवेह य, एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।।

९७. राजा मंडुक ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर वह इस प्रकार बोला-देवानुप्रियो! शीघ्र ही शैलकपुर नगर को सामान्य या विशेष जल का छिड़काव कर, बुहार-झाड़, गोबर से लीप यावत् प्रवर सुरभि वाले गन्ध-चूर्णों से सुगन्धित गन्धवर्तिका जैसा बनाओ और बनवाओ। इस आज्ञा को पुन: मुझे प्रत्यर्पित करो।

९८. तए णं से मंडुए दोच्चं पि कोडुंबियपुरिसे एवं वयासी--खिप्पामेव

९८. मंडुक ने दूसरी बार भी कौटुम्बिक पुरुषों को इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भो देवाणुप्पिया! सेलगस्स रण्णो महत्थं महग्घं महरिहं विउलं निक्खमणाभिसेयं (करेह?) जहेव मेहस्स तहेव नवरं--पउमावती देवी अग्गकेसे पडिच्छइ, सच्चेव पडिग्गहं गहाय सीयं दुरुहइ। अवसेसं तहेव जाव।।

शीघ्र ही राजा शैलक का महान अर्थवान, महामूल्य और महान अर्हता वाला निष्क्रमण अभिषेक करो। मेघ की भांति वक्तव्यता। इतना विशेष है--पद्मावती देवी ने अग्र-केशों को ग्रहण किया। उसी पात्र को ग्रहण कर शिविका पर आरूढ़ हुई। अवशेष वर्णन पूर्ववत्।

सेलगस्स पव्वज्जा-पदं

९९. तए णं से सेलगे (पंचहिं मंतिसएहिं सद्धिं?) सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करेत्ता जेणामेव सुए तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुयं अणगारं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ जाव पव्वइए।।

शैलक की प्रव्रज्या-पद

९९. शैलक ने (पांच सौ मंत्रियों के साथ-साथ?) स्वयमेव पंच-मौष्टिक लुञ्चन किया। लुञ्चन कर जहाँ शुक था, वहाँ आया। वहाँ आकर शुक अनगार को दांयी ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर वन्दना, नमस्कार किया, यावत् वह प्रव्रजित हो गया।

सेलगस्स अणगारचरिया-पदं

१००. तए णं से सेलए अणगारे जाए जाव कम्मनिग्घायणट्ठाए एवं च णं विहरइ।।

शैलक की अनगार-चर्या-पद

१००. अब शैलक अनगार बन गया यावत् वह इस प्रकार कर्म-निर्घातन के लिए विहार करने लगा।

१०१. तए णं से सेलए सुयस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।।

१०१. शैलक ने शुक के तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। अध्ययन कर वह बहुत सारे चतुर्थभक्त, षष्ठभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त, द्वादशभक्त तथा मासिक और पाक्षिक तप से स्वयं को भावित करता हुआ विहार करने लगा।

सुयस्स परिनिव्वाण-पदं

१०२. तए णं से सुए सेलगस्स अणगारस्स ताइं पंथगपामोक्खाइं पंच अणगारसयाइं सीसत्ताए वियरइ।।

शुक का परिनिर्वाण पद

१०२. शुक ने शैलक अनगार को पंथक प्रमुख पांच सौ अनगार शिष्य रूप में प्रदान किये।

१०३. तए णं से सुए अण्णया कयाइ सेलगपुराओ नगराओ सुभूमिभागाओ उज्जाणाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।।

१०३. किसी समय शुक ने शैलकपुर नगर और सुभूमिभाग उद्यान से निष्क्रमण किया। वहाँ से निष्क्रमण कर बाहर जनपद विहार करने लगा।

१०४. तए णं से सुए अणगारे अण्णया कयाइ तेणं अणगारसहस्सेणं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव पुंडरीयपव्वए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुंडरीयं पव्वयं सणियं-सणियं दुरुहइ, दुरुहित्ता मेघघणसन्निगासं देवसन्निवायं पुढविसिलापट्टयं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता जाव संलेहणा-झूसणा-झूसिए भत्तपाण-पडियाइक्खिए पाओवगमणंणुवन्ने।।

१०४. शुक अनगार किसी समय उन हजार अनगारों के साथ उनसे परिवृत हो क्रमशः विहरण करता हुआ, ग्रामानुग्राम परिव्रजन करता हुआ, सुखपूर्वक विहार करता हुआ, जहाँ पुण्डरीक पर्वत था, वहाँ आया। वहाँ आकर धीरे-धीरे पुण्डरीक पर्वत पर चढ़ा। पुण्डरीक पर्वत पर चढ़कर सघन मेघ जैसे वर्ण वाले और देवों के समागम स्थल, पृथ्वी शिलापट्ट का प्रतिलेखन किया। प्रतिलेखन कर यावत् संलेखना की आराधना में समर्पित हो, भक्तपान का प्रत्याख्यान कर, उसने प्रायोपगमन अनशन स्वीकार कर लिया।

१०५. तए णं से सुए बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता जाव केवलवरनाणदंसणं समुप्पाडेत्ता तओ पच्छा सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिनिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।।

१०५. वह शुक बहुत वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय का पालन कर, मासिक संलेखना में स्वयं को समर्पित कर, अनशनकाल में साठ भक्तों का परित्याग कर यावत् प्रवर केवलज्ञान-दर्शन को उत्पन्न कर उसके बाद सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिर्वृत और सब दुःखों का अन्त करने वाला हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेलगस्स रोगातंक-पदं

१०६. तए णं तस्स सेलगस्स रायरिसिस्स तेहिं अंतेहि य पंतेहि य तुच्छेहि य लूहेहि य अरसेहि य विरसेहि य सीएहि य उण्हेहि य कालाइक्कंतेहि य पमाणाइक्कंतेहि य निच्चं पाणभोयणेहि य पयइ-सुकुमालस्स सुहोचियस्स सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया--उज्जला विउला कक्खडा पगाढा चंडा दुक्खा दुरहियासा। कंडु-दाह-पित्तज्जर-परिगयसरीरे यावि विहरइ।।

१०७. तए णं से सेलए तेणं रोयायंकेणं सुक्के भुक्खे जाए यावि होत्था।।

१०८. तए णं से सेलए अण्णया कयाइ पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव सेलगपुरे नयरे जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।।

१०९. परिसा निग्गया। मंडुओ वि निग्गओ सेलगं अणगारं वंदइ नमंसइ पज्जुवासइ।।

सेलगस्स तिगिच्छा-पदं

११०. तए णं से मंडुए राया सेलगस्स अणगारस्स सरीरगं सुक्कं भुक्खं सव्वाबाहं सरोगं पासइ, पासित्ता एवं वयासी--अहण्णं भंते! तुब्भं अहापवत्तेहिं तेगिच्छिएहिं अहापवत्तेणं ओसह-भेसज्ज-भत्तपाणेणं तेगिच्छं आउट्टावेमि। तुब्भे णं भंते! मम जाणसालासु समोसरह, फासु-एसणिज्जं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारगं ओगिण्हित्ता णं विहरह।।

१११. तए णं से सेलए अणगारे मंडुयस्स रण्णो एयमट्ठं तह 'त्ति' पडिसुणेइ।।

११२. तए णं से मंडुए सेलगं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।।

११३. तए णं से सेलए कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते सभंडमत्तोवगरणमायाए पंथगपामोक्खेहिं पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं सेलगपुरमणुप्पविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव मंडुयस्स रण्णो जाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता फासु-एसणिज्जं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारगं ओगिण्हित्ताणं विहरइ।।

शैलक का रोगातंक-पद

१०६. शैलक राजर्षि के सहज सुकुमार और सुख भोगने योग्य शरीर में नित्य-सेवित अन्त, प्रान्त, निस्सार, रूक्ष, अरस, विरस, शीत, उष्ण, कालातिक्रांत और प्रमाणातिक्रान्त पान-भोजन के कारण उज्ज्वल, विपुल, कर्कश, प्रगाढ़, चण्ड, दुःखद और दुःसह वेदना प्रादुर्भूत हुई। उसका शरीर कण्डू, दाह और पित्तज्वर से आक्रांत हो गया।[५]

१०७. शैलक उस रोग और आतंक से सूखा और रूखा[६] हो गया।

१०८. किसी समय शैलक क्रमशः विहरण करता हुआ, ग्रामानुग्राम परिव्रजन करता हुआ सुखपूर्वक विहार करता हुआ जहाँ शैलकपुर नगर था, जहाँ सुभूमिभाग उद्यान था वहाँ आया। वहाँ आकर आवास योग्य स्थान की अनुमति प्राप्त कर संयम और तप से स्वयं को भावित करता हुआ विहार करने लगा।

१०९. जन-समूह ने निर्गमन किया। मण्डुक ने भी निर्गमन किया। शैलक अनगार को वन्दना की, नमस्कार किया और पर्युपासना करने लगा।

शैलक की चिकित्सा-पद

११०. मण्डुक ने राजा शैलक अनगार के शरीर को सूखा, रूखा तथा व्याधि और रोग से ग्रस्त देखा। देखकर वह इस प्रकार बोला--भन्ते! मैं यथाप्रवृत्त चिकित्सकों और यथाप्रवृत्त औषध, भेषज्य तथा भक्तपान से आपकी चिकित्सा करवाता हूँ। भन्ते! आप मेरी यानशाला में आएं। वहाँ प्रासुक (अभिलषणीय) एवं एषणीय पीठ, फलक, शय्या और संस्तारक को ग्रहण कर विहार करें।

१११. ऐसा ही हो--इस प्रकार शैलक अनगार ने राजा मण्डुक के इस अर्थ को स्वीकार किया।

११२. मण्डुक ने शैलक को वन्दना-नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर, वह जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में चला गया।

११३. उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर शैलक ने अपने भाण्ड, पात्र आदि उपकरण[७] ले पंथक प्रमुख पांच सौ अनगारों के साथ शैलकपुर नगर में प्रवेश किया। प्रवेश कर जहाँ मण्डुक राजा की यानशाला थी, वहाँ आया। वहाँ आकर प्रासुक, एषणीय, पीठ, फलक, शय्या और संस्तारक को ग्रहण कर विहार करने लगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११४. तए णं ते मंडुए तेगिच्छिए सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--तुब्भे णं देवाणुप्पिया! सेलगस्स फासु-एसणिज्जेणं ओसह-भेसज्ज-भत्तपाणेणं तेगिच्छं आउट्टेह ।।

११४. मण्डुक ने चिकित्सकों को बुलाया, उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम प्रासुक, एषणीय औषध, भेषज्य तथा भक्तपान से शैलक की चिकित्सा करो।

११५. तए णं ते तेगिच्छिया मंडुएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्टतुट्ठा सेलगस्स अहापवत्तेहिं ओसह-भेसज्ज-भत्तपाणेहिं तेगिच्छं आउट्टेंति, मज्जपाणगं च से उवदिसंति ।।

११५. मण्डुक राजा के ऐसा कहने पर हृष्ट, तुष्ट हुए चिकित्सकों ने यथाप्रवृत्त औषध, भेषज्य तथा भक्तपान से शैलक की चिकित्सा की। उन्होंने उसे मादक-पेय सेवन का भी निर्देश दिया।

११६. तए णं तस्स सेलगस्स अहापवत्तेहिं ओसह-भेसज्ज-भत्तपाणेहिं मज्जपाणएण य से रोगायंके उवसंते यावि होत्था--हट्ठे गल्लसरीरे जाए ववगयरोगायंके ।।

११६. यथाप्रवृत्त औषध, भेषज्य, भक्तपान और मादक-पेय के सेवन से शैलक का रोगांतक उपशान्त हो गया। उसका शरीर हृष्ट, स्वस्थ और रोगातंक से मुक्त हो गया।

सेलगस्स पमत्तविहार-पदं

११७. तए णं से सेलए तंसि रोगायंकंसि उवसंतंसि समाणंसि तंसि विपुले असण-पाण-खाइम-साइमे मज्जपाणए य मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववन्ने ओसन्ने ओसन्नविहारी, पासत्थे पासत्थविहारी कुसीले कुसीलविहारी पमत्ते पमत्तविहारी संसत्ते संसत्तविहारी उउबद्ध-पीढ-फलग-सेज्जा-संथारए पमत्ते यावि विहरइ, नो संचाएइ फासु-एसणिज्जं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारयं पच्चप्पिणित्ता मंडुयं च रायं आपुच्छित्ता बहिया जणवयविहारं विहरित्तए ।।

शैलक का प्रमत्त विहार-पद

११७. उस रोगांतक के उपशान्त हो जाने पर भी शैलक उस विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य और मादक-पेय में मूर्च्छित, ग्रथित, गृद्ध और अध्युपपन्न हो, अवसन्न, अवसन्न-विहारी, पार्श्वस्थ, पार्श्वस्थ- विहारी, कुशील, कुशील-विहारी, प्रमत्त, प्रमत्त-विहारी, संसक्त, संसक्त-विहारी तथा ऋतुबद्ध पीठ, फलक, शय्या और संस्तारक में प्रमत्त होकर विहार करने लगा।

वह प्रासुक एवं एषणीय पीठ, फलक, शय्या और संस्तारक को पुन: गृहस्थों को सौंपकर राजा मंडुक से पूछ बाहर जनपद विहार नहीं कर सका।[१८]

साहूहिं सेलगस्स परिच्चाय-पदं

११८. तए णं तेसिं पंथगवज्जाणं पंचण्हं अणगारसयाणं अण्णया कयाइ एगयओ सहियाणं समुवागयाणं सण्णिसण्णाणं सण्णिविट्ठाणं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणाणं अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--एवं खलु सेलए रायरिसी चइत्ता रज्जं जाव पव्वइए विउले असण-पाण-खाइम-साइमे मज्जपाणए य मुच्छिए नो संचाइए फासु-एसणिज्जं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारयं पच्चप्पिणित्ता मंडुयं च रायं आपुच्छित्ता बहिया जणवयविहारं विहरित्तए। नो खलु कप्पइ देवाणुप्पिया! समणाणं निग्गंथाणं ओसन्नाणं पासत्थाणं कुसीलाणं पमत्ताणं संसत्ताणं उउबद्ध-पीढ-फलग-सेज्जा-संथारए पमत्ताणं विहरित्तए। तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं कल्लं सेलगं रायरिसिं आपुच्छित्ता पाडिहारियं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारयं पच्चप्पिणित्ता सेलगस्स अणगारस्स पंथयं अणगारं वेयावच्चकरं ठावेत्ता बहिया अब्भुज्जएणं जणवयविहारेणं विहरित्तए--एवं संपेहेंति, संपेहेत्ता कल्लं जेणेव सेलए रायरिसी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सेलयं रायरिसिं आपुच्छित्ता पाडिहारियं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारयं पच्चप्पिणंति, पच्चप्पिणित्ता पंथयं अणगारं

साधुओं द्वारा शैलक का परित्याग-पद

११८. किसी समय पंथक के सिवाय एकत्र, सम्मिलित, समुपागत, सन्निषण्ण और सन्निविष्ट उन पांच सौ अनगारों के मन में अर्द्धरात्रि के समय धर्म्-जागरिका करते हुए इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--शैलक राजर्षि राज्य त्याग कर यावत् प्रव्रजित हुए हैं। ये विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य और मादक-पेय में मूर्च्छित हो गए हैं। अत: प्रासुक एवं एषणीय पीठ, फलक, शय्या और संस्तारक को पुन: गृहस्थों को सौंपकर राजा मंडुक को पूछकर ये बाहर जनपद विहार नहीं कर पा रहे हैं।

देवानुप्रियो! श्रमण-निर्ग्रन्थों को अवसन्न, पार्श्वस्थ, कुशील, प्रमत्त, संसक्त तथा ऋतुबद्ध पीठ, फलक, शय्या और संस्तारक में प्रमत्त व्यक्तियों के साथ विहार करना नहीं कल्पता। अत: देवानुप्रियो! हमारे लिए उचित है हम प्रभातकाल में शैलक राजर्षि से पूछ प्रातिहारिक पीठ, फलक, शय्या और संस्तारक गृहस्थों को सौंप शैलक अनगार की सेवा में अनगार पंथक को नियुक्त कर, बहिर्वर्ती जनपदों में अभ्युद्यत विहार करें--उन्होंने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर प्रभातकाल में जहाँ शैलक राजर्षि थे, वहाँ आए। वहाँ आकर शैलक राजर्षि से पूछ, प्रातिहारिक पीठ, फलक, शय्या, और संस्तारक गृहस्थों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेयावच्चकरं ठावेंति, ठावेत्ता बहिया जणवयविहारं विहरंति।।

को सौंपे। सौंपकर पन्थक अनगार को सेवा में नियुक्त किया। सेवा में नियुक्त कर वे बाहर जनपद विहार करने लगे।

पंथगस्स चाउम्मासिय-खामणा-पदं

११९. तए णं से पंथए सेलगस्स सेज्जा-संथारय-उच्चार-पासवण-खेल्ल-सिंघाणमत्त-ओसह-भेसज्ज-भत्तपाणएणं अगिलाए विणएणं वेयावडियं करेइ।।

१२०. तए णं से सेलए अण्णया कयाइ कत्तिय-चाउम्मासियंसि विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं आहारमाहारिए सुबहुं च मज्जपाणयं पीए पच्चावरण्हकालसमयंसि सुहप्पसुत्ते।।

१२१. तए णं से पंथए कत्तिय-चाउम्मासियंसि कयकाउस्सग्गे देवसियं पडिक्कमणं पडिक्कंते, चाउम्मासियं पडिक्कमिउकामे सेलगं रायरिसिं खामणट्ठयाए सीसेणं पाएसु संघट्टेइ।।

सेलगस्स कोव-पदं

१२२. तए णं सेलए पंथएणं सीसेणं पाएसु संघट्टिए समाणे आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे उट्ठेइ, उट्ठेत्ता एवं वयासी--से केस णं भो! एस अपत्थियपत्थए, दुरंत-पंत-लक्खणे, हीणपुण्णचाउद्दसिए, सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति-परिवज्जिए, जे णं ममं सुहपसुत्तं पाएसु संघट्टेइ?

१२३. तए णं से पंथए सेलएणं एवं वुत्ते समाणे भीए तत्थे तसिए करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी अहं णं भंते! पंथए कयकाउस्सग्गे देवसियं पडिक्कमणं पडिक्कंते, चाउम्मा-सियं खामेमाणे देवाणुप्पियं वंदमाणे सीसेणं पाएसु संघट्टेमि।

तं खामेमि णं तुब्भे देवाणुप्पिया!

खमंतु णं देवाणुप्पिया!

खंतुमरहंति णं देवाणुप्पिया! नाइ भुज्जो एवंकरणयाए त्ति कट्टु सेलयं अणगारं एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो-भुज्जो खामेइ।।

सेलगस्स अब्भुज्जयविहार-पदं

१२४. तए णं तस्स सेलगस्स रायरिसिस्स पंथएणं एवं वुत्तस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--एवं खलु अहं चइत्ता रज्जं जाव पव्वइए ओसन्ने ओसन्नविहारी, पासत्थे पासत्थविहारी कुसीले कुसीलविहारी पमत्ते पमत्तविहारी

पन्थक द्वारा चातुर्मासिक क्षमापना-पद

११९. पन्थक ने शय्या, संस्तारक, उच्चार, प्रस्रवण, श्लेष्म, सिंघाण (आदि का परिष्ठापन) तथा औषध, भेषज्य और भक्त-पान के द्वारा शैलक की अग्लान-भाव से विनयपूर्वक सेवा की।

१२०. किसी समय कार्तिक चातुर्मासिकी के दिन शैलक ने विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का आहार किया, प्रचुर मादक पेय-पिया और अपराह्नकाल के पश्चात् वह सुखपूर्वक सो गया।

१२१. पन्थक ने कार्तिक--चातुर्मासिक कायोत्सर्ग किया। दैवसिक प्रतिक्रमण किया। चातुर्मासिक प्रतिक्रमण की इच्छा से उसने शैलक राजर्षि से क्षमापना के लिए सिर से उनके पांवों का स्पर्श किया।[१]

शैलक का कोप-पद

१२२. पंथक ने ज्यों ही मस्तक से शैलक के पांवों का स्पर्श किया, शैलक क्रोध से तमतमा उठा। वह रुष्ट, कुपित, चण्ड और क्रोध से जलता हुआ उठा। उठकर इस प्रकार कहा--कौन है रे! यह अप्रार्थित का प्रार्थी! दुरंत प्रांत लक्षण! हीन पुण्यचतुर्दशी का जन्मा! श्री, ह्री, धृति और कीर्ति से शून्य! जो सुख से सोए हुए मेरे पांवों का स्पर्श कर रहा है?

१२३. शैलक के ऐसा कहने पर भीत, त्रस्त और तृषित हुए पन्थक ने सटे हुए दस नखों वाली दोनों हथेलियां से निष्पन्न सम्पुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर, मस्तक पर टिका कर इस प्रकार कहा--मैं हूं भन्ते! पन्थक। कायोत्सर्ग और दैवसिक प्रतिक्रमण करने के पश्चात् चातुर्मासिक क्षमापना और देवानुप्रिय को वन्दना करता हुआ मैं आपका सिर से चरणस्पर्श करता हूं।

इस अविनय के लिए आपको खमाता हूँ देवानुप्रिय!

क्षमा करें देवानुप्रिय !

आप क्षमा करने योग्य हैं देवानुप्रिय! मैं पुन: ऐसा नहीं करूंगा--इस प्रकार उसने इस भूल के लिए शैलक अनगार से भली-भांति विनयपूर्वक पुन:पुन क्षमायाचना की।

शैलक का अभ्युद्यत विहार-पद

१२४. पन्थक के ऐसा कहने पर शैलक राजर्षि के मन में इस प्रकार का आध्यात्मिक चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--इस प्रकार मैं राज्य-त्याग कर यावत् प्रव्रजित हुआ हूं। तथापि अवसन्न, अवसन्न-विहारी, पार्श्वस्थ, पार्श्वस्थ-विहारी, कुशील, कुशील-विहारी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संसत्ते संसत्तविहारी उउबद्ध-पीढ-फलग-सेज्जा-संथारए पमत्ते यावि विहरामि। तं नो खलु कप्पइ समणाणं निग्गंथाणं ओसन्नाणं पासत्थाणं कुसीलाणं पमत्ताणं संसत्ताणं उउबद्ध-पीढ-फलग-सेज्जा-संथारए पमत्ताणं विहरित्तए। तं सेयं खलु मे कल्लं मंडुयं रायं आपुच्छित्ता पाडिहारियं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारगं पच्चप्पिणित्ता पंथएणं अणगारेणं सद्धिं बहिया अब्भुज्जएणं जणवयविहारेणं विहरित्तए--एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं मंडुयं रायं आपुच्छित्ता पाडिहारियं पीढ-फलग- सेज्जा-संथारगं पच्चाप्पिणित्ता पंथएणं अणगारेणं सद्धिं बहिया अब्भुज्जएणं जणवयविहारेणं विहरइ।।

प्रमत्त, प्रमत्त-विहारी, संसक्त, संसक्त-विहारी तथा ऋतुबद्ध पीठ, फलक, शय्या और संस्तारक में प्रमत्त हो विहार कर रहा हूं। श्रमण-निर्ग्रन्थों को अवसन्न, पार्श्वस्थ, कुशील, प्रमत्त, संसक्त तथा ऋतुबद्ध पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक में प्रमत्त होकर रहना कल्पता नहीं। अत: मेरे लिए उचित है, मैं प्रात: काल मंडुक राजा को पूछ, प्रातिहारिक पीठ, फलक, शय्या और संस्तारक गृहस्थों को सौंप अनगार पंथक के साथ बहिर्वर्ती जनपदों में अभ्युद्यत विहार करूं--उसने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर प्रभातकाल में मंडुक राजा से पूछ प्रातिहारिक पीठ, फलक, शय्या और संस्तारक गृहस्थों को सौंप अनगार पंथक के साथ बहिर्वर्ती जनपदों में अभ्युद्यत विहार करने लगा।

१२५. एवामेव समणाउसो! जे निग्गंथे वा निग्गंथी वा ओसन्ने ओसन्नविहारी, पासत्थे पासत्थविहारी कुसीले कुसीलविहारी पमत्ते पमत्तविहारी संसत्ते संसत्तविहारी उउबद्ध-पीढ-फलग-सेज्जा-संथारए पमत्ते विहरइ, से णं इहलोए चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाण य हीलणिज्जे निंदणिज्जे खिंसणिज्जे गरहणिज्जे परिभवणिज्जे,

परलोए वि य णं आगच्छइ बहूणि दंडणाणि य अणादियं च णं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंत-संसार-कंतारं भुज्जो-भुज्जो अणुपरियट्टिस्सइ।।

१२५. आयुष्मन् श्रमणो! इसी प्रकार जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी अवसन्न, अवसन्न-विहारी, पार्श्वस्थ, पार्श्वस्थ-विहारी, कुशील, कुशील-विहारी, प्रमत्त, प्रमत्तविहारी, संसक्त, संसक्त विहारी तथा ऋतुबद्ध पीठ, फलक, शय्या और संस्तारक में प्रमत्त होकर विहार करता है, वह इस लोक में भी बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों और बहुत श्राविकाओं द्वारा हीलनीय, निंदनीय, कुत्सनीय, गर्हणीय और परिभवनीय होता है।

परलोक में भी वह बहुत दण्ड को प्राप्त होगा और अनादि, अनन्त, प्रलम्बमार्ग तथा चार अन्तवाले संसार रूपी कान्तार में पुन: पुन: अनुपरिवर्तन करेगा।

१२६. तए णं ते पंथगवज्जा पंच अणगारसया इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! सेलए रायरिसी पंथएणं अणगारेणं सद्धिं बहिया अब्भुज्जएणं जणवयविहारेणं विहरइ। तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं सेलगं रायरिसिं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए--एवं संपेहेंति, संपेहेत्ता सेलगं रायरिसिं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति।।

१२६. पन्थक के अतिरिक्त उन पांच सौ अनगारों को जब इस बात की सूचना मिली तो उन्होंने एक दूसरे को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! शैलक राजर्षि अनगार पन्थक के साथ बहिर्वर्ती जनपदों में अभ्युद्यत विहार करने लगे हैं। अत: देवानुप्रियो! हमारे लिए उचित है, हम शैलक राजर्षि की उपसम्पदा (निश्रा) में विहार करें--उन्होंने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर शैलक राजर्षि की उपसम्पदा (निश्रा) में विहार करने लगे।

१२७. तए णं से सेलए रायरिसी पंथगपामोक्खा पंच अणगारसया जेणेव पुंडरीए पव्वए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पुंडरीयं पव्वयं सणियं-सणियं दुरुहंति, दुरुहित्ता मेघघणसन्निगासं देवसन्निवायं पुढविसिलापट्टयं पडिलेहंति, पडिलेहित्ता जाव संलेहणा-झूसणा-झूसिया भत्तपाण-पडियाइक्खिया पाओवगमणंणुवन्ना।।

१२७. शैलक राजर्षि और पंथक प्रमुख पांच सौ अनगार जहां पुण्डरीक पर्वत था, वहां आए। आकर धीरे-धीरे पुण्डरीक पर्वत पर चढ़े। चढ़कर सघन मेघ जैसे वर्ण वाले और देवों के सामागम स्थल, योग्य पृथ्वी शिलापट्ट का प्रतिलेखन किया। प्रतिलेखन कर यावत् संलेखना की आराधना में समर्पित हो, भक्तपान का प्रत्याख्यान कर प्रायोपगमन अनशन स्वीकार कर लिया।

१२८. तए णं से सेलए रायरिसी पंथगपामोक्खा पंच अणगारसया बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता जाव केवलवरनाणदंसणं समुप्पाडेत्ता तओ पच्छा सिद्धा बुद्धा मुत्ता अंतगडा परिनिव्वुडा सव्वदुक्खप्पहीणा।।

१२८. शैलक राजर्षि और पन्थक प्रमुख पांच सौ अनगार बहुत वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय का पालन कर, मासिक संलेखना में अपने आपको समर्पित कर अनशन काल में साठ भक्तों का परित्याग कर यावत् प्रवर केवल ज्ञान-दर्शन को उत्पन्न कर, उसके बाद सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिर्वृत और सब दु:खों का अन्त करने वाले हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२९. एवामेव समणाउसो! जो निग्गंथो वा निग्गंथी वा अब्भुज्जएणं जणवयविहारेणं विहरइ, से णं इहलोए चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावगाणं बहूणं सावियाण य अच्चणिज्जे वंदणिज्जे नमंसणिज्जे पूयणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं विणएणं पज्जुवासणिज्जे भवइ,

परलोए वि य णं नो बहूणि हत्थच्छेयणाणि य कण्णच्छेयणाणि य नासाछेयणाणि य एवं हिययउप्पायणाणि य वसणुप्पायणाणि य उल्लंबणाणि य पाविहिइ, पुणो अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइस्सइ।।

१२९. आयुष्मन् श्रमणो ! इसी प्रकार जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी अभ्युद्यत जनपद-विहार करता है, वह इस लोक में भी बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों और बहुत श्राविकाओं द्वारा अर्चनीय, वन्दनीय, नमस्करणीय, पूजनीय, सत्करणीय, सम्माननीय, कल्याण, मंगल, देव, चैत्य और विनयपूर्वक पर्युपासनीय होता है।

परलोक में भी वह नाना प्रकार के हस्त छेदन, कर्ण छेदन, नासा छेदन तथा इसी प्रकार हृदय-उत्पाटन, वृषण-उत्पाटन और फांसी को प्राप्त नहीं करेगा और वह अनादि, अनन्त, प्रलम्ब मार्ग तथा चार अन्त वाले संसार रूपी कान्तार का पार पा लेगा।

निक्खेव-पदं

१३०. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं पंचमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

--त्ति बेमि।।

निक्षेप-पद

१३०. जम्बू! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के पांचवे अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

---ऐसा मैं कहता हूँ।

वृत्तिकृता समुद्धृता निगमनगाथा

सिढिलिय-संजम-कज्जा वि, होइउं उज्जवंति जइ पच्छा।
संवेगाओ ते सेलओ व्व आराहया होंति ।।१।।

वृत्तिकार द्वारा समुद्धृत निगमन-गाथा

१. संयम योग में श्लथ होकर भी बाद में संवेगपूर्वक उद्यत विहारी होने वाले शैलक की भांति आराधक हो जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

सूत्र-३

१. दशार्ह (दसार)

विवरण हेतु द्रष्टव्य उत्तरज्झयणाणि २२/११ का टिप्पण।

सूत्र-६

२. दक्षिणार्ध भरत का (दाहिणड्ढ भरहस्स)

विवरण हेतु द्रष्टव्य--अतीत का अनावरण पृष्ठ १९९-२०६.

सूत्र-२६

३. दीक्षा के पश्चात् दुःखी (पच्छाउरस्स)

इसका तात्पर्य यह है कि यदि कोई अर्हत अरिष्टनेमि के पास दीक्षित होना चाहे तो उसकी दीक्षा के पश्चात् उसका मित्र, ज्ञाति आदि कोई भी दुःखी हो, गरीब हो, ऋणी हो तो उसकी आजीविका की चिन्ता स्वयं कृष्णवासुदेव करेंगे।

इससे श्री कृष्ण का आध्यात्मिक अनुराग प्रकट होता है।[१]

४. योगक्षेम (जोगक्खेम)

योग का अर्थ है--अनुपलब्ध इष्ट पदार्थ का लाभ।

क्षेम का अर्थ है--उपलब्ध इष्ट पदार्थ की सुरक्षा।

इन दोनों के द्वारा होने वाली वर्तमान काल की चिन्ता--वार्ता।[२]

विशेष विवरण हेतु द्रष्टव्य उत्तरज्झयणणि ७/२४

सूत्र-३५

५. शान्त, प्रशान्त, उपशान्त, परिनिर्वृत (संते पसंते उवसंते परिनिव्वुडे)

१. शान्त--इसका तात्पर्य है, कषायों की इतनी मंदता कि कदाचित क्रोध आदि आ जाने पर भी आकृति पर उसकी झलक न मिले। आकृति पर सौम्यता झलकना।

२. प्रशान्त--उदय में आये हुए क्रोध आदि कषायों को विफल कर देना, उन्हें फल शून्य कर देना।

३. उपशान्त--कषाय का उदय में न आना।

४. परिनिर्वृत--पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति।[३]

६. गेंडे के सींग की भांति अकेला (खग्गविसाणं व एगजाए)

गेंडे के सींग एक ही होता है। वैसे ही मुनि एकाकी रहे। वह अनासक्त और स्वावलम्बी रहे।[४]

बौद्ध साहित्य में सुत्त-निपात का तीसरा पूरा अध्याय 'खग्गविसाण' नाम से ही संरचित है। मित्र कैसा हो, कैसे साधक के साथ अध्यात्म की यात्रा सम्पन्न करें--इस विषय में सुन्दर सूचना मिलती है--

अद्धापसंसाम सहायसंपदं सेट्ठा समासे वितव्वासहाया।
एते अलद्धाअनवज्ज भोगी, एको चरे खग्गविसाण कप्पो।
बहुस्सुत्तं धम्मधरं भजेथ, मित्तं उरालं पटिभानवंतं।
अञ्ञाञ अत्थानि विनेय्य-कंखं, एको चरे खग्ग-विसाण-कप्पो।[५]

७. भारण्ड पक्षी की भांति अप्रमत्त (भारण्डपक्खीव अप्पमत्ते)

प्रमत्तता और जागरूकता को बताने के लिए जैन साहित्य में इस उपमा का अनेकत्र प्रयोग हुआ है। प्रस्तुत सूत्र में थावच्चापुत्र अनगार को भारण्डपक्षी की भांति अप्रमत्त बतलाया गया है। वृत्तिकार के अनुसार भारण्डपक्षी के एक शरीर में दो जीव होते हैं। उनके पेट एक होता है। गर्दन पृथक-पृथक होती है। वे अनन्य फलभक्षी होते हैं-दोनों में से कोई एक खाता है। उदर एक है इसलिए दोनों की पूर्ति हो जाती है। वे एक दूसरे के प्रति बड़ी सावधानी बरतते है। सतत जागरूक रहते हैं।[६]

विशेष जानकारी के लिए द्रष्टव्य--उत्तरज्झयणाणि ४/६ का टिप्पण।

सूत्र-३७

८. वासी और चन्दन में सम चित्त (वासीचंदणकप्पे)

विशेष विवरण हेतु द्रष्टव्य--उत्तरज्झयणाणि १९/९२ का टिप्पण।

सूत्र-३८

९ सामायिक आदि (सामाइयमाइयाइं)

इस वाक्यांश में सामायिक का प्रयोग ग्यारह अंगों के साथ नहीं किया गया है।

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-११०--पच्छाउरस्सेत्यादि--पश्चात् अस्मिन् राजादौ प्रव्रजिते सति आतुरस्यापि च द्रव्याद्यभावाद् दुःस्थस्य 'से'--तस्य तदीयस्येत्यर्थः मित्र-ज्ञाति-निजक--सम्बन्धि-परिजनस्य।

२. वही--योगक्षेमवार्त्तमानी प्रतिवहति, तत्रालब्धस्येप्सितस्य वस्तुनो लाभो योगो लब्धस्य परिपालनं क्षेमस्ताभ्यां वर्तमानकालभवा वार्त्तमानी वार्ता योगक्षेमवार्त्तमानी।

३. वही--सन्ते--सौम्यमूर्त्तित्वात्, पसन्ते--कषायोदयस्य विफलीकरणात्, उपसन्ते--कषायोदयाभावात्, परिनिव्वुडे--स्वास्थ्यातिरेकात्।

४. वही--ज्ञातावृत्ति, पत्र-११०-'खग्गिविसाणं व एगजाए'-खड्गिः आरण्यः पशुविशेषः, तस्य विषाणं शृङ्गं तदेकं भवति, तद्वदेकीजातो योऽसंगतः सहायत्यागेन स।

५. सुत्तनिपात, ३/१३, १४

६. ज्ञातावृत्ति, पत्र-११०--भारण्डपक्खीव अप्पमत्ते--भारण्डपक्षिणो हि एकोदराः पृथग्ग्रीवा अनन्यफलभक्षिणो जीवद्वयरूपा भवन्ति, ते च सर्वदा चकितचित्ता भवन्तीति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामाइयमाइयाइं चोद्दसपुव्वाइं--इस वाक्यांश में सामायिक का प्रयोग चौदह पूर्वों के साथ किया गया है।

जहां अंगों के साथ सामायिक का प्रयोग है वहां 'सामाइयमाइयाइं' का अर्थ आचारांग किया जा सकता है किन्तु जहां पूर्वों के साथ सामायिक का प्रयोग है वहां सामायिक का अर्थ आचारांग नहीं किया जा सकता। इससे अनुमान किया जा सकता है कि सामायिक एक स्वतंत्र अध्ययन रहा है। आवश्यक के संकलन के समय उसे आवश्यक का एक अंग/अध्ययन बना दिया गया।[१]

सूत्र-४७

१०. प्रेमानुराग से अनुरक्त अस्थि, मज्जा वाला .... पोषध व्रत का सम्यक् अनुपालन करने वाला (अट्ठिमिंजपेमाणुरागरत्ते.............. पोसहं सम्मं अणुपालेमाणे)

श्रमणोपासक के विषय में आए हुए उपर्युक्त विशेषणों के लिए द्रष्टव्य-भगवई, खण्ड१, पृष्ठ २१७, २१८.

सूत्र-५२

११. प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त त्रिदण्ड, कमण्डलु, छत्र, त्रिकाष्ठिका, अंकुश, तांबे की अंगुठी आदि शब्दों के लिए द्रष्टव्य--भगवई,, खण्ड १, पृष्ठ २१७, २१८

सूत्र-५५

१२. शुक (सुए)

शुक व्यास के पुत्र थे।[२] प्रस्तुत सूत्र में सांख्य दर्शन, उसके सिद्धान्त और सांख्य श्रमणों की विहार-चर्या एवं वेशभूषा पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। यहां निर्दिष्ट कतिपय शब्द मननीय हैं-

शौच प्रधान दस प्रकार का परिव्राजक धर्म--

पांच यम और पांच नियम--इस प्रकार उसके दस भेद होते हैं--

यम--अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अकिञ्चनता।

नियम--शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान।[३]

शुक ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का ज्ञाता था। अध्ययन आठ में चोक्खा परिव्राजिका के लिए भी ऐसा ही उल्लेख है (८/१३९)। किन्तु इतिहास की दृष्टि से यह आलोच्य है। हो सकता है यह ग्रन्थरचना की एक शैली ही हो कि चारों वेदों का उल्लेख एक साथ होने लगा।

१३. चातुर्याम रूप गृहस्थधर्म (चाउज्जामिए गिहिधम्मे)

अर्हत अरिष्टनेमि के समय साधु और गृहस्थ के लिए चातुर्याम धर्म का ही विधान था। भगवान महावीर ने गृहस्थ धर्म की व्यवस्था की। वह मध्यवर्ती तीर्थंकरों के समय में नहीं थी इसीलिए यहां गृहस्थ के लिए भी चाउज्जामिए गिहिधम्मे का प्रयोग किया गया है।

सूत्र-८३

१४. पुण्डरीक पर्वत (पुंडरीयं पव्वयं)

प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ के गणधर पुण्डरीक ने सर्वप्रथम उस पर्वत पर निर्वाण प्राप्त किया था अत: उपलक्षण से शत्रुंजय पर्वत का पुण्डरीक नाम प्रचलित हुआ।[४]

सूत्र-१०६

१५. प्रस्तुत सूत्र में अंत, प्रांत, निस्सार, रूक्ष और अरस, विरस भोजन की सम्यक् जानकारी मिलती है-

अंत--बेर, चने आदि सामान्य अन्न से निष्पन्न भोजन।

प्रांत--बचा खुचा भोजन अथवा बासी भोजन।

तुच्छ--निस्सार ।

रूक्ष--रूखा भोजन।

अरस--हींग आदि के बघार से रहित--असंस्कृत भोजन।

विरस--पुराना हो जाने के कारण विस्वाद।[५]

सूत्र-१०७

१६. रूखा (भुक्खे)

यह देशी शब्द है। यहां यह रूक्ष के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

सूत्र-११३

१७. अपने भाण्ड, पात्र आदि उपकरण (सभंडमत्तोवगरण-मायाए)

यहां भाण्ड और अमत्र शब्द पात्र और वस्त्र के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। 'उपकरण' वर्षाकल्प आदि विशेष वस्त्र के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[६]

सूत्र-११७

१८. प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त कुछ शब्द मुनि की संयम के प्रति उदासीनता और प्रमत्तता के द्योतक हैं। जो मुनि संयम में श्लथ होकर मुनि की चर्या और क्रिया में उपेक्षा भाव बरतने लगता है उसे इन विशेषणों से

---

१. नंदी, सूत्र ७५ का टिप्पण

२. ज्ञातावृत्ति, पत्र-११६--शुको व्यासपुत्र:।

३. वही, पत्र-११६, ११७--तत्र पञ्च यमा:--प्राणातिपातविरमणादय:, नियमास्तु शौच--सन्तोष-तप:-स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि शौचमूलकं यमनियममीलनाद् दशप्रकारम्।

४. वही, पत्र-११७--पुण्डरीकेण आदिदेवगणधरेण निर्वाणत उपलक्षित: पर्वत: तस्य तत्र प्रथमं निर्वृतत्वात् पुण्डरीकपर्वत: शत्रुंजय:।

५. वही, पत्र-११९--अंतै--वल्लचणकादिभि:, प्रान्तै:--तैरेव भुक्तावशेषै: पर्युषितैर्वा, रूक्षै:--नि:स्नेहै:, तुच्छै:--अल्पै:, अरसे:--हिंग्वादिभिरसंस्कृतै-- विरसै:--पुराणत्वाद् विगतरसै:।

६. ज्ञातावृत्ति, पत्र-११९--सभंडमत्तोवगरणमायाए त्तिभांड मात्रापतद्ग्रहपरिच्छदश्च उकरणं च--वर्षाकल्पादि भाण्डमत्रोपकरणं स्वं च-तदात्मीयभंड मत्रोपकरणं तदादाय--गृहीत्वा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषित किया गया है। प्रमाद अनेक विषयों में अनेक प्रकार का होता है इसीलिए उन विभिन्न अवस्थाओं को अभिव्यक्त करने के लिए भिन्न-भिन्न शब्दों का प्रयोग किया गया है।

ओसन्ने, ओसन्नविहारी--विहित अनुष्ठान के सम्पादन में आलस्य करने वाला।

आवश्यक, स्वाध्याय, प्रत्युपेक्षणा, ध्यान आदि को सम्यक्तया सम्पादित न करने वाला।[1]

पासत्थे पासत्थविहारी--पार्श्वस्थ--ज्ञान आदि की आराधना के पार्श्व से बाहर रहने वाला।[2]

पार्श्वस्थ विहारी-बहुत दिनों तक पार्श्वस्थ बनकर वर्तन करने वाला--रहने वाला।[3]

यहां 'विहारी' शब्द के प्रयोग में अतिरिक्त तात्पर्य निहित है, वह यह है कि बीमारी आदि कारण के बिना प्रमादवश यदि कोई मुनि शय्यातर, अभ्याहृत आदि पिण्डग्रहण रूप प्रतिसेवना का कदाचित् सेवन कर ले तो वह पार्श्वस्थ विहारी नहीं कहलाता। यहां 'विहार' से तात्पर्य है लम्बे समय तक प्रतिसेवना करना।

यहां 'विहारी' शब्द का अर्थ सर्वत्र दीर्घकालीन प्रतिसेवना ही है।

पमत्ते, पमत्तविहारी--मद्य, विषय आदि पांच प्रकार के प्रमाद स्थानों का सेवन करने वाला।[4]

कुसीले, कुसील विहारी--काल, विनय आदि भेद-भिन्न ज्ञान, दर्शन और चारित्र के विराधक।[5]

संसत्ते, संसत्तविहारी--कदाचित् संविग्न गुणों और कदाचित् पार्श्वस्थदोषों का सेवन करने के कारण ऋद्धि, रस और साता--इस गौरव त्रयी से संसक्त रहने वाला।[6]

सूत्र-१२१

१९. प्रतिक्रमण के पांच प्रकार हैं--१. दैवसिक २. रात्रिक ३. पाक्षिक ४. चातुर्मासिक ५. सांवत्सरिक।

प्रस्तुत सूत्र में एक साथ दो प्रतिक्रमण करने का उल्लेख है।

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१२०--अवसन्नो--विवक्षितानुष्ठानालसः,आवश्यक-स्वाध्याय-प्रत्युप्रेक्षणा-ध्यानादीनामसम्यक्कारीत्यर्थः।

२. वही--पार्श्वे-ज्ञानादीनां बहिस्तिष्ठतीति पार्श्वस्थः।

३. वही--पार्श्वस्थानां यो विहारो-बहूनि दिनानि यावत् तथा वर्त्तनं स पार्श्वस्थविहारः, योऽस्यास्तीति पार्श्वस्थविहारी।

४. वही--प्रमत्तः- पञ्चविध प्रमादयोगात्।

५. वही--कुशीलः--कालाविनयादि भेदभिन्नानां ज्ञान-दर्शन-चारित्राचाराणां विराधक इत्यर्थः।

६. वही--संसक्तः--कदाचित् संविग्न गुणानां, कदाचित् पार्श्वस्थादिदोषाणां सम्बन्धात् गौरवत्रयसंसजनाच्चेति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

जयन्ती ने भगवान महावीर से पूछा--भंते! जीव भारी कैसे होता है? भगवान ने कहा--जयन्ती! प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य रूप अट्ठारह पापस्थानों के सेवन से जीव भारी होता है। प्राणातिपात आदि के विरमण से जीव हल्का होता है।

भार व्यक्ति को नीचे ले जाता है। जो हल्का होता है, वह ऊपर आ जाता है। आचार्य भिक्षु ने इसी तथ्य को उदाहरण से समझाते हुए कहा--ढब्बुशाही पैसा[1] पानी में डालो, वह डूब जाएगा। उस पैसे की कटोरी बनाओ, वह तर जाएगी। पैसे को कटोरी का नया आयाम मिला, वह तर गया। चित्त जैसे-जैसे भारी होता है, अधोगामी हो जाता है। चित्त को नया आयाम देकर उसे हल्का बना दें। वह ऊपर आ जाएगा। हल्कापन अधोगामी चित्त को ऊर्ध्वगामी बना देता है।

प्रस्तुत अध्ययन 'तुम्ब' का प्रतिपाद्य भी यही है। सूत्रकार ने उदाहरण की भाषा में कहा--तुम्बा हल्का होता है। कोई व्यक्ति यदि उस तुम्बे को डाभ और कुश से आवेष्टित कर उस पर मिट्टी का लेप लगाए और उसे धूप में सुखाए तो वह कुछ भारी हो जाएगा। पानी में डालते ही डूब जाएगा।

जल में प्रक्षिप्त तुम्बा जब आर्द्रता को प्राप्त करता है, मिट्टी के लेप उतरने लगते हैं। क्रमशः आठों लेपों के आर्द्र, कुथित और परिशटित हो जाने पर वह पूर्णतया हल्का होकर पुनः पानी की सतह पर आ जाता है। जीव अट्ठारह पापों से विरत होकर क्रमशः आठों कर्मप्रकृतियों को क्षीण कर देता है। एक क्षण आता है वह पूर्णतया कर्ममुक्त होकर लोक के अग्रभाग पर प्रतिष्ठित हो जाता है।

प्रस्तुत विवेचन का निष्कर्ष यही है--हल्के बनो। ऊर्ध्वारोहण की बहुत बड़ी बाधा है--कर्मों का भारीपन। भोगासक्ति व्यक्ति को भारी बनाती है। भोगासक्त व्यक्ति संसार में परिभ्रमण करता है। जो भोग से त्याग की ओर प्रस्थान कर देता है, वह हल्का होकर ऊर्ध्वारोहण कर लेता है। भोगासक्ति से ऊपर उठना ही अध्यात्म का प्रशस्त मार्ग है।

---

१. **ढब्बुशाही पैसा**--अस्सी तोलों का एक सेर। एक सेर के बीस ढब्बुशाही पैसे होते हैं। एक पैसा लगभग ५० ग्राम का समझना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छट्ठं अज्झयणं : छठा अध्ययन

तुम्बे : तुम्ब

उक्खेव-पद

१. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं पंचमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, छट्ठस्स णं भंते! नायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

२. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं। परिसा निग्गया।।

३. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई नामं अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते जाव सुक्कज्झाणोवगए विहरइ।।

उत्क्षेप-पद

१. भन्ते! यदि श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के पांचवें अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है, तो भन्ते! उन्होंने ज्ञाता के छठे अध्ययन का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

२. जम्बू! उस काल और उस समय राजगृह में समवसरण जुड़ा। परिषद ने निर्गमन किया।

३. उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति नाम के अनगार श्रमण भगवान महावीर के न दूर न निकट यावत् शुक्लध्यान को प्राप्त हो, विहार कर रहे थे।

गरुयत्त-लहुयत्त-पदं

४. तए णं से इंदभूई नामं अणगारे जायसड्ढे जाव एवं वयासी--कहण्णं भंते! जीवा गरुयत्तं वा लहुयत्तं वा हव्वमागच्छंति?

गोयमा! से जहानामए केइ पुरिसे एगं महं सुक्कतुंबं निच्छिड्डं निरुवहयं दब्भेहि य कुसेहि य वेढेइ, वेढेत्ता मट्टियालेवेणं लिंपइ, लिंपित्ता उण्हे दलयइ, दलयित्ता सुक्कं समाणं दोच्चंपि दब्भेहि य कुसेहि य वेढेइ, वेढेत्ता मट्टियालेवेणं लिंपइ, लिंपित्ता उण्हे दलयइ, दलयित्ता सुक्कं समाणं तच्चंपि दब्भेहि य कुसेहि य वेढेइ, मट्टियालेवेणं लिंपइ, उण्हे दलयइ। एवं खलु एएणुवाएणं अंतरा वेढेमाणे अंतरा लिंपमाणे अंतरा सुक्कवेमाणे जाव अट्ठहिं मट्टियालेवेहिं लिंपइ, अत्थाहमतारमपोरिसियंसि उदगंसि पक्खिवेज्जा। से नूणं गोयमा! से तुंबे तेसिं अट्ठण्हं मट्टियालेवेणं गरुयत्ताए भारिययाए गरुय-भारिययाए उप्पिं सलिलमइवइत्ता अहे :णियल-पइट्ठाणे भवइ।

एवामेव गोयमा! जीवा वि पाणाइवाएणं मुसावाएणं अदिण्णादाणेणं मेहुणेणं परिग्गहेणं जाव मिच्छादंसणसल्लेणं अणुपुव्वेणं अट्ठकम्मपगडीओ समज्जिणित्ता तासिं गरुययाए भारिययाए गरुय-भारिययाए कालमासे कालं किच्चा धरणियलमइवइत्ता अहे नरगतल-पइट्ठाणा भवंति। एवं खलु गोयमा! जीवा गरुयत्तं हव्वमागच्छंति। अह णं गोयमा! से तुंबे तंसि पढमिल्लुगंसि मट्टियालेवंसि तित्तंसि कुहियंसि परिसडियंसि ईसिं धरणियलाओ उप्पतित्ता णं चिट्ठइ। तयाणंतरं दोच्चं पि मट्टियालेवे तित्ते कुहिए परिसडिए ईसिं धरणियलाओ उप्पतित्ता णं चिट्ठइ। एवं खलु एएणं उवाएणं तेसु अट्ठसु मट्टियालेवेसु

गुरुत्व-लघुत्व पद

४. इन्द्रभूति अनगार के मन में एक श्रद्धा उत्पन्न हुई यावत् वे इस प्रकार बोले--भन्ते! जीव गुरुता और लघुता को कैसे प्राप्त होते हैं?

गौतम! जैसे कोई पुरुष एक निश्छिद्र, निरुपहत, सूखे हुए बड़े से तुम्बे को डाभ और कुश से आवेष्टित करता है। आवेष्टित कर उस पर मिट्टी का लेप करता है। लेप कर उसे धूप में रखता है और धूप में रखने पर जब वह सूख जाता है तो दूसरी बार भी उसे डाभ और कुश से आवेष्टित करता है, उस पर मिट्टी का लेप करता है, मिट्टी का लेप कर उसे धूप में रखता है और धूप में रखने पर जब वह सूख जाता है तो तीसरी बार भी उसे डाभ और कुश से आवेष्टित करता है, उस पर मिट्टी का लेप करता है और धूप में रखता है। इस प्रकार इस उपाय से बीच-बीच में डाभ-कुश से आवेष्टित करता हुआ, लेप करता हुआ, सुखाता हुआ यावत् आठ बार मिट्टी का लेप करता है। तत्पश्चात् उसे अथाह, अतर और पुरुष प्रमाण से भी अधिक गहरे पानी में प्रक्षिप्त करता है। गौतम! वह तुम्बा मिट्टी के लेप की उन आठ आवृत्तियों के कारण गुरु और भारी हो जाता है। गुरुता और भारीपन के कारण वह पानी सतह को छोड़कर नीचे धरती के तल में प्रतिष्ठित हो जाता है।

गौतम ! इसी प्रकार जीव भी प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह यावत् मिथ्यादर्शनशल्य के कारण क्रमशः आठ कर्म प्रकृतियों का अर्जन करते हैं। उन (कर्म प्रकृतियों) की गुरुता और भारीपन के कारण वे गुरु और भारी हो जाते हैं और इसीलिए मृत्यु के समय मृत्यु को प्राप्त कर वे धरणीतल का अतिक्रमण कर नीचे नरकतल में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। गौतम! इस प्रकार जीव गुरुता को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तित्तेसु कुहिएसु परिसडिएसु (से तुंबे?) विमुक्कबंधणे अहे धरणियलमइवइत्ता उप्पिं सलिलतल-पइट्ठाणे भवइ।

एमामेव गोयमा! जीवा पाणाइवायवेरमणेणं जाव मिच्छादंसणसल्ल-वेरमणेणं अणुपुव्वेणं अट्ठकम्मपगडीओ खवेत्ता गगणतलमुप्पइत्ता उप्पिं लोयग्ग-पइट्ठाणा भवंति। एवं खलु गोयमा! जीवा लहुयत्तं हव्वमागच्छंति।।

प्राप्त होते हैं।

गौतम! उस पहले मिट्टी के लेप के आर्द्र, कुथित और परिशटित हो जाने पर वह तुम्बा धरती के तल से कुछ ऊपर आ जाता है। तदनन्तर दूसरे मिट्टी के लेप के भी आर्द्र, कुथित और परिशटित हो जाने पर वह धरती के तल से कुछ (और) ऊपर आ जाता है। इस प्रकार इस उपाय से मिट्टी के उन आठों ही लेपों के आर्द्र, कुथित और परिशटित हो जाने पर (वह तुम्बा?) बन्धन मुक्त होकर धरती के निम्न तल का अतिक्रमण कर ऊपर पानी की सतह पर प्रतिष्ठित हो जाता है।

गौतम! इसी प्रकार जीव प्राणातिपात विरमण यावत् मिथ्यादर्शनशल्य विरमण के कारण क्रमशः आठ कर्म प्रकृतियों को क्षीण कर गगनतल में उत्पात कर ऊपर लोकाग्र में प्रतिष्ठित हो जाते हैं।

गौतम! इस प्रकार जीव लघुता को प्राप्त होते हैं।

निक्खेव-पदं

५. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं छट्ठस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

--त्ति बेमि।।

निक्षेप-पद

५. जम्बू! इस प्रकार धर्म के आदिकर्त्ता यावत् सिद्धिगति संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के छठे अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

--ऐसा मैं कहता हूँ।

वृत्तिकृता समुद्धृता निगमनगाथा–

जह मिउलेवालित्तं, गुरुयं तुंबं अहो वयइ।
एवं कय-कम्मगुरू, जीवा वच्चंति अहरगइं।।१।।

तं चेव तव्विमुक्कं, जलोवरिं ठाइ जाय-लहुभावं।
जह तह कम्म-विमुक्का, लोयग्ग-पइट्ठिया होंति।।२।।

वृत्तिकार द्वारा समुद्धृत निगमनगाथा–

१. जैसे मिट्टी के लेप से उपलिप्त तुम्बा भारी होने से नीचे चला जाता है। वैसे ही कृतकर्मों से भारी हुए जीव अधोगति में जाते हैं।

२. जैसे वही तुम्बा मिट्टी के लेप से मुक्त हो हल्का होकर पानी की सतह पर आ जाता है, वैसे ही कर्ममुक्त जीव लोकाग्र में प्रतिष्ठित हो जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

अस्तित्व की दृष्टि से सभी जीव समान हैं। फिर भी व्यवहार जगत में भिन्नता अथवा तारतम्य दृष्टिगोचर होता है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में योग्यता का तारतम्य होता है, समझ और मस्तिष्कीय क्षमता का अन्तर होता है, ग्रहणशीलता और पुरुषार्थ में भी भेद होता है। एक ही विषय को पढ़ने वाले विद्यार्थियों में ज्ञान की तरतमता रहती है वैसे ही मनुष्यों में चिन्तन, समझ और भविष्य दर्शन की तरतमता होती है। रोहिणी का दृष्टान्त साधना के क्षेत्र में संवेग और चित्तवृत्ति की तरतमता को समझाने के लिए सुन्दर दृष्टान्त है।

सेठ ने अपनी चारों पुत्रवधुओं को पांच-पांच चावल दिए और कहा--जब मैं मांगू, इन्हें लौटा देना। उज्झिता के संवेग संतुलित नहीं थे। उसने सोचा--पांच चावलों का क्या? उसने उन्हें फैंक दिया। भोगवती ने उज्झिता की अपेक्षा सन्तुलित मनोवृत्ति का परिचय दिया। ससुर के हाथ से प्राप्त चावलों को फैंका नहीं, खा लिया। रक्षिता ने सेठ की बात का आदर किया। मुझे यही दाने लौटाने हैं अत: उनका सम्यक् संरक्षण कर अपने नाम को सार्थक कर दिया। रोहिणी ने सेठ द्वारा प्राप्त चावलों का संगोपन, संवर्द्धन किया।

साधना के क्षेत्र में भी उपर्युक्त चारों मनोवृत्तियां देखी जा सकती हैं। कुछ साधक प्रतिकूल परिस्थिति आते ही सन्तुलन खो देते हैं, स्वीकृत महाव्रतों का परित्याग कर देते हैं। कुछ व्रत ग्रहण करके भी अपनी आसक्ति का परित्याग नहीं कर पाते अत: परमार्थपथ में अपनी वरीयता स्थापित नहीं कर पाते। कुछ साधक रोहणी के समान नया विकास करते हैं, प्रगति में पुरुषार्थ का नियोजन करते हैं। भिन्न भिन्न देश, काल और भाषाओं में इस कथा का संक्रमण हुआ है।

वृत्तिकार ने निगमन गाथाओं में इसके विभिन्न पात्रों की प्रतीक योजना प्रस्तुत की है--

पात्र	**प्रतीक**
धन सार्थवाह	गुरु
ज्ञातिजन	श्रमणसंघ
पांच शालिकण	पंच महाव्रत
उज्झिता	मोह के वशीभूत होकर महाव्रतों का त्याग करने वाला साधक
भोगवती	जीविकोपार्जन, आहार आदि के लिए महाव्रतों का पालन करने वाला साधक
रक्षिता	महाव्रतों का निरतिचार पालन करने वाला साधक
रोहिणी	तीर्थप्रभावना में कुशल साधक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तमं अज्झयणं : सप्तम अध्ययन

रोहिणी : रोहिणी

उक्खेव-पदं

१. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं छट्ठस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, सत्तमस्स णं भंते! नायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

२. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था। सुभूमिभागे उज्जाणे।।

धणसत्थवाह-पदं

३. तत्थ णं रायगिहे नयरे धणे नामं सत्थवाहे परिवसइ--अड्ढे जाव अपरिभूए। भद्दा भारिया--अहीणपंचिंदियसरीरा जाव सुरूवा।।

४. तस्स णं धणस्स सत्थवाहस्स पुत्ता भद्दाए भारियाए अत्तया चत्तारि सत्थवाहदारगा होत्था, तं जहा--धणपाले धणदेवे धणगोवे धणरक्खिए।।

५. तस्स णं धणस्स सत्थवाहस्स चउण्हं पुत्ताणं भारियाओ चत्तारि सुण्हाओ होत्था, तं जहा--उज्झिया भोगवइया रक्खिया रोहिणिया।।

धणस्स परिक्खापओग-पदं

६. तए णं तस्स धणस्स सत्थवाहस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्ताव-रत्तकालसमयंसि इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--एवं खलु अहं रायगिहे नयरे बहूणं ईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहपभिईणं सयस्स य कुडुंबस्स बहूसु कज्जेसु य कारणेसु य कोडुंबेसु य मंतेसु य गुज्झेसु य रहस्सेसु य निच्छएसु य ववहारेसु य आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे, मेढी पमाणं आहारे आलंबणे चक्खू, मेढीभूते पमाणभूते आहारभूते आलंबणभूते चक्खूभूए सव्वकज्जवड्ढावए।

तं न नज्जइ णं मए गयंसि वा चुयंसि वा मयंसि वा भग्गंसि वा लुग्गंसि वा सडियंसि वा पडियंसि वा विदेसत्थंसि वा विप्पवसियंसि वा इमस्स कुडुंबस्स के मन्ने आहारे वा आलंबे वा पडिबंधे वा भविस्सइ?

तं सेयं खलु मम कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-

उत्क्षेप-पद

१. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के छठे अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है तो भन्ते ! उन्होंने ज्ञाता के सातवें अध्ययन का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

२. जम्बू ! उस काल और समय राजगृह नाम का नगर और सुभूमिभाग उद्यान था।

धन सार्थवाह-पद

३. उस राजगृह नगर में धन नाम का सार्थवाह रहता था। वह आढ्य यावत् अपराजित था। उसके भद्रा नाम की भार्या थी। वह अहीन पंचेन्द्रिय शरीर वाली यावत् सुरूपा थी।

४. उस धन सार्थवाह के पुत्र, भद्रा भार्या के आत्मज चार सार्थवाह-बालक थे। जैसे--धनपाल, धनदेव, धनगोप और धनरक्षित।

५. धन सार्थवाह के चारों पुत्रों की चार भार्याएं--चार बहुएं थी। जैसे--उज्झिता, भोगवती, रक्षिता और रोहिणी।

धन द्वारा परीक्षा प्रयोग-पद

६. किसी समय मध्यरात्रि के समय धन सार्थवाह के मन में इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--राजगृह नगर में बहुत से ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि के एवं स्वयं अपने कुटुम्ब के बहुत से कार्यों, कारणों, कर्त्तव्यों, मन्त्रणाओं, गोपनीय कार्यों, रहस्यों, निश्चयों और व्यवहारों में मेरा मत पूछा जाता है, बार-बार पूछा जाता है। मैं उनके लिए मेढ़ी, प्रमाण, आधार, आलम्बन और चक्षु हूँ। मेढ़ीभूत, प्रमाणभूत, आधारभूत, आलम्बनभूत और चक्षुभूत हूँ तथा उनके समस्त कार्यों का संवर्द्धन करने वाला हूं।

अत: न जाने मेरे चले जाने, च्युत हो जाने, मर जाने, भग्न और रुग्ण हो जाने, सड़ जाने, गिर जाने, विदेश चले जाने या प्रवासी बन जाने पर इस कुटुम्ब का आधार, आलम्बन अथवा प्रतिबंध कौन होगा?

अत: मेरे लिए उचित है, मैं उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्त्ररश्मि दिनकर, तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परियणं चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गं आमंतेत्ता तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गं विपुलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं धूव-पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारेण य सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता तस्सेव मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ चउण्हं सुण्हाणं परिक्खणट्ठयाए पंच-पंच सालिअक्खए दलइत्ता जाणामि ताव का किह वा सारक्खेइ वा? संगोवेइ वा? संवड्ढेइ वा? एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेइ, मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गं आमंतेइ, तओ पच्छा ण्हाए भोयणमंडवंसि सुहासणवरगए तेणं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेणं चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गेणं सद्धिं तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं आसादेमाणे जाव सक्कारेइ, सक्कारेत्ता तस्सेव मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ पंच सालिअक्खए गेण्हइ, गेण्हित्ता जेट्ठं सुण्हं उज्झियं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--तुमं णं पुत्ता! मम हत्थाओ इमे पंच सालिअक्खए गेण्हाहि, अणुपुव्वेणं सारक्खमाणी संगोवेमाणी विहराहि। जया णं अहं पुत्ता! तुमं इमे पंच सालिअक्खए जाएज्जा, तया णं तुमं मम इमे पंच सालिअक्खए पडिनिज्जाएज्जासि त्ति कट्टु सुण्हाए हत्थे दलयइ, दलइत्ता पडिविसज्जेइ।।

जाने पर विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य तैयार करवाकर मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी परिजनों और चारों बहुओं के पीहर वालों को आमन्त्रित कर उन मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन और चारों बहुओं के पीहर वालों को विपुल, अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य तथा धूप, पुष्प, वस्त्र, गन्धचूर्ण माला और अलंकारों से सत्कृत सम्मानित कर उन्हीं मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन और चारों बहुओं के पीहर वालों के सामने चारों बहुओं की परीक्षा के लिए उन्हें पांच-पांच शालिकण देकर यह जानूं कि कौन किस प्रकार उनका संरक्षण, संगोपन अथवा संवर्धन करती है। उसने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्त्ररश्मि दिनकर, तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर, विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवाए। मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन और चारों बहुओं के पीहर वालों को आमन्त्रित किया। उसके बाद उसने स्नान कर भोजन मंडप में प्रवर सुखासन में बैठ उन मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन और चारों बहुओं के पीहर वालों के साथ उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का आस्वादन किया यावत् उनको सत्कृत किया। सत्कृत कर उन मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन और चारों बहुओं के पीहर वालों के सामने ही पाँच शालिकण ग्रहण किए। ग्रहण कर बड़ी बहू उज्झिता को बुलाया। उसे बुलाकर इस प्रकार कहा--बेटी! तू मेरे हाथ से ये पांच शालिकण ग्रहण कर और क्रमशः इनका संरक्षण और संगोपन करती रह। बेटी! मैं जब तुझ से ये पांच शालिकण मागूं, तब तू मुझे ये पांच शालिकण लौटा देना--ऐसा कहकर उसने बहू के हाथ में शालिकण दिए। देकर उसे प्रतिविसर्जित कर दिया।

७. तए णं सा उज्झिया धणस्स तह त्ति एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता धणस्स सत्थवाहस्स हत्थाओ ते पंच सालिअक्खए गेण्हइ, गेण्हित्ता एगंतमवक्कमइ, एगंतमवक्कमियाए इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--एवं खलु तायाणं कोट्ठागारंसि बहवे पल्ला सालीणं पडिपुण्णा चिट्ठंति, तं जया णं मम ताओ इमे पंच सालिअक्खए जाएसइ, तया णं अहं पल्लंतराओ अण्णे पंच सालिअक्खए गहाय दाहामि त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता ते पंच सालिअक्खए एगंते एडेइ, सकम्मसंजुत्ता जाया यावि होत्था।।

७. उज्झिता ने 'तथास्तु' कहकर धन सार्थवाह के इस कथन को स्वीकार किया। स्वीकार कर उसने धन सार्थवाह के हाथ से पाँच शालिकण लिए। लेकर एकान्त में गई। एकान्त में जाने पर उसके मन में इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--पिताजी के कोष्ठागार में चावलों के बहुत पल्य भरे हैं। अतः यदि पिताजी मुझसे ये पाँच शालिकण मांगेंगे तो मैं किसी पल्य में से पांच शालिकण निकालकर दे दूंगी--उसने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर उन पाँच शालिकणों को एकान्त में फेंक दिया और अपने काम में लग गई।

८. एवं भोगवइयाए वि, नवरं--सा छोल्लेइ, छोल्लेत्ता अणुगिलइ, अणुगिलित्ता सकम्मसंजुत्ता जाया यावि होत्था।।

८. भोगवती का भी ऐसा ही वर्णन है। इतना विशेष है--उसने शालिकणों को छीला (निस्तुष किया)। छीलकर निगल गई और अपने काम में लग गई।

९. एवं रक्खियाए वि, नवरं--गेण्हइ, गेण्हित्ता एगंतमवक्कमइ,

९. रक्षिता का भी ऐसा ही वर्णन है। इतना विशेष है--उसने शालिकण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एगंतमवक्कमियाए इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--एवं खलु ममं ताओ इमस्स मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ सद्दावेत्ता एवं वयासी--तुमं णं पुत्ता! मम हत्थाओ इमे पंच सालिअक्खए गेण्हाहि, अणुपुव्वेणं सारक्खमाणी संगोवेमाणी विहराहि। जया णं अहं पुत्ता! तुमं इमे पंच सालिअक्खए जाएज्जा, तया णं तुमं मम इमे पंच सालिअक्खए पडिनिज्जाएज्जासि त्ति कट्टु मम हत्थंसि पंच सालिअक्खए दलयइ। तं भवियव्वमेत्थ कारणेणं ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता ते पंच सालिअक्खए सुद्धे वत्थे बंधइ, बंधित्ता रयणकरंडियाए पक्खिवइ, पक्खिवित्ता उसीसामूले ठावेइ, ठावेत्ता तिसंझं पडिजागरमाणी-पडिजागरमाणी विहरइ।।

लिए। लेकर एकान्त में गई। एकान्त में जाने पर उसके मन में इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--पिताजी ने इन मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन और चारों बहुओं के पीहर वालों के सामने बुलाकर मुझे इस प्रकार कहा--बेटी ! तू मेरे हाथ से ये पांच शालिकण ले और क्रमशः इनका संरक्षण, संगोपन करती रह। बेटी! जब मैं तुमसे ये पांच शालिकण मांगूं, तब, तू मुझे ये पांच शालिकण लौटा देना-ऐसा कहकर--उन्होंने मेरे हाथ में पांच शालिकण दिए। अतः यहाँ कोई न कोई कारण होना चाहिए--उसने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर उन पांच शालिकणों को शुद्ध वस्त्र में बांधा। बांधकर उसे रत्न निर्मित डिबिया में रखा। रखकर उसे अपने तकिये (सिरहाने) के नीचे रखा। रखकर तीनों संध्याओं में उसकी देखभाल करती हुई विहार करने लगी।

१०. तए णं से धणे सत्थवाहे तहेव मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ पंच सालिअक्खए गेण्हइ, गेण्हित्ता चउत्थं रोहिणीयं सुण्हं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--तुमं णं पुत्ता! मम हत्थाओ इमे पंच सालिअक्खए गेण्हाहि, जाव गेण्हइ, गेण्हित्ता एगंतमवक्कमइ, एगंतमवक्कमियाए इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--एवं खलु ममं ताओ इमस्स मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ सद्दावेत्ता एवं वयासी--तुमं णं पुत्ता! मम हत्थाओ इमे पंच सालिअक्खए गेण्हाहि, अणुपुव्वेणं सारक्खमाणी संगोवेमाणी विहराहि। जया णं अहं पुत्ता! तुमं इमे पंच सालिअक्खए जाएज्जा, तया णं तुमं मम इमे पंच सालिअक्खए पडिनिज्जाएज्जासि त्ति कट्टु मम हत्थंसि पंच सालिअक्खए दलयइ। तं भवियव्वं एत्थ कारणेणं। तं सेयं खलु मम एए पंच सालिअक्खए सारक्खमाणीए संगोवेमाणीए संवड्ढेमाणीए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कुलघर-पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--तुब्भे णं देवाणुप्पिया! एए पंच सालिअक्खए गेण्हइ, गेण्हित्ता पढमपाउसंसि महावुट्ठिकायंसि निवइयंसि समाणंसि खुड्डागं केयारं सुपरिकम्मियं करेह, करेत्ता इमे पंच सालिअक्खए वावेह, वावेत्ता दोच्चं पि तच्चं पि उक्खय-निहए करेह, करेत्ता वाडिपक्खेवं करेह, करेत्ता सारक्खमाणा संगोवेमाणा अणुपुव्वेणं संवड्ढेह।।

१०. धन सार्थवाह ने उसी प्रकार मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन और चारों बहुओं के पीहर वालों के सामने पांच शालिकण लिए। लेकर चौथी बहू रोहिणी को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--बेटी! तू मेरे हाथ से ये पांच शालिकण ले यावत् उसने लिए। लेकर एकान्त में गई। एकान्त में जाने पर उसके मन में इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--पिताजी ने इन मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन और चारों बहुओं के पीहर वालों के सामने बुला कर मुझे इस प्रकार कहा--बेटी ! तू मेरे हाथ से ये पांच शालिकण ग्रहण कर और क्रमशः इनका संरक्षण, संगोपन करती रह। बेटी! मैं जब तुझसे ये पांच शलिकण मांगूं, तब तू मुझे ये पांच शालिकण लौटा देना--ऐसा कहकर मेरे हाथ में पांच शालिकण दिए। अतः यहां कोई न कोई कारण होना चाहिए। अतः मेरे लिए उचित है, मैं इन पांच शालिकणों का संरक्षण, संगोपन और संवर्धन करूं। उसने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर अपने पीहर वाले पुरुषों को बुलाया। बुलाकर वह इस प्रकार बोली--देवानुप्रियो! तुम ये पांच शालिकण लो। इन्हें लेकर प्रथम पावस में महावृष्टि होने पर एक छोटे खेत को भलीभांति परिकर्मित करो। परिकर्मित कर ये पांच शालिकण बोओ। बोकर उन्हें दूसरी-तीसरी बार शालि निष्पन्न हो जाने पर वहां से उखाड़ कर दूसरे स्थान में रोपो। रोपकर खेतों के बाड़ लगाओ। बाड़ लगाकर उनका संरक्षण, संगोपन करते हुए क्रमशः संवर्धन करो।

११. तए णं ते कोडुंबिया रोहिणीए एयमट्ठं पडिसुणेंति, ते पंच सालिअक्खए गेण्हंति, अणुपुव्वेणं सारक्खंति, संगोविंति।।

११. उन कौटुम्बिक जनों ने रोहिणी के इस कथन को स्वीकार किया। उन पांच शालिकणों को ग्रहण किया और क्रमशः उनका संरक्षण, संगोपन करने लगे।

१२. तए णं कोडुंबिया पढमपाउसंसि महावुट्ठिकायंसि निवइयंसि समाणंसि खुड्डागं केयारं सुपरिकम्मियं करेंति, ते पंच सालिअक्खए ववंति, दोच्चं पि तच्चं पि उक्खय-निहए करेंति, वाडिपरिक्खेवं करेंति,

१२. उन कौटुम्बिक जनों ने प्रथम पावस में महावृष्टि होने पर एक छोटे खेत को भली-भांति परिकर्मित किया। उसमें वे पांच शालिकण बोए। दूसरी-तीसरी बार भी उन्हें उखाड़कर दूसरे स्थान में रोपा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणुपुव्वेणं सारक्खेमाणा संगोवेमाणा संवड्ढेमाणा विहरंति ।।

खेतों के बाड़ लगाई और क्रमशः उनका संरक्षण, संगोपन और संवर्द्धन करने लगे।

१३. तए णं ते साली अणुपुव्वेणं सारक्खिज्जमाणा संगोविज्जमाणा संवड्ढिज्जमाणा साली जाया--किण्हा किण्होभासा नीला नीलोभासा हरिया हरिओभासा सीया सीओभासा णिद्धा णिद्धोभासा तिव्वा तिव्वोभासा किण्हा किण्हच्छाया नीला नीलच्छाया हरिया हरियच्छाया सीया सीयच्छाया णिद्धा णिद्धच्छाया तिव्वा तिव्वच्छाया घणकडियकडच्छाया रम्मा महामेह-निउरंबभूया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ।।

१३. इस प्रकार वे (खेत में बोए गए) शालिकण क्रमशः संरक्षण, संगोपन और संवर्द्धन पाते हुए शालि बन गए। वे (खेतों में लहलहाते शालि) कृष्ण, कृष्ण प्रभावाले, नील, नील प्रभा वाले, हरित, हरित प्रभावाले, शीत, शीत प्रभावाले, स्निग्ध, स्निग्ध प्रभा वाले, तीव्र, तीव्र प्रभा वाले, कृष्ण, कृष्ण छाया वाले, नील, नील छाया वाले, हरित, हरित छाया वाले, शीत, शीत छाया वाले, स्निग्ध, स्निग्ध छाया वाले, तीव्र, तीव्र छाया वाले, सघन और चटाई के पट्टों की भांति परस्पर सटी हुई छाया वाले, सुरम्य, महामेघ-पटली के समान मन को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, सुन्दर और असाधारण बन गए।

१४. तए णं ते साली पत्तिया वत्तिया गब्भिया पसूइया आगयगंधा खीराइया बद्धफला पक्का परियागया सल्लइय-पत्तइया हरिय-फेरंडा जाया यावि होत्था ।।

१४. उन शालि-क्षुपों (छोटी शाखा वाले वृक्षों) के पत्ते आए, वे गोल हुए।[1] गर्भित हुए। प्रसूत हुए। उनमें सुगन्ध फूटी। उनमें दूधिया द्रव-रस पैदा हुआ। दाने पडे। दाने पके। वे निष्पन्नप्रायः हुए। पत्ते सूखकर, मुड़ कर सल्लकी (सलई पेड़) के पत्तों जैसे हो गए और पर्व काण्ड हरित हो गए।

१५. तए णं ते कोडुंबिया ते साली पत्तिए वत्तिए गब्भिए पसूइए आगयगंधे खीराइए बद्धफले पक्के परियागए सल्लइय-पत्तइए जाणित्ता तिक्खेहिं नवपज्जणएहिं असिएहिं लुणंति, लुणित्ता करयलमलिए करेंति, करेत्ता पुणंति। तत्थ णं चोक्खाणं सूइयाणं अखंडाणं अफुडियाणं छडछडापूयाण सालीणं मागहए पत्थए जाए।।

१५. जब उन कौटुम्बिकों ने जाना कि शालि-क्षुपों के क्रमशः पत्ते आ गये हैं। वे गोल हो गए हैं। गर्भित हो गये हैं। प्रसूत हो गए हैं। दाने पक गये हैं। शालि निष्पन्नप्रायः हो गये हैं। पत्ते सूखकर मुड़कर सल्लकी (सलई पेड़) के पत्तों जैसे हो गए हैं। उन्होंने नव निर्मित तीखे दात्रों से उनको काट लिया। काटकर हथेलियों से मला। मलकर साफ किया। उनमें से अच्छे, साफ, अखण्ड, अस्फुटित और छाज से फटके (छड़छडाए) हुए शाली मगध देश प्रसिद्ध प्रस्थ प्रमाण[2] हुए।

१६. तए णं ते कोडुंबिया ते साली नवएसु घडएसु पक्खिवंति पक्खिवित्ता ओलिंपंति, ओलिंपित्ता लंछिय-मुद्दिए करेंति, करेत्ता कोट्ठागारस्स एगदेसंसि ठावेंति, ठावेत्ता सारक्खमाणा संगोवेमाणा विहरंति ।।

१६. कौटुम्बिक पुरुषों ने उन चावलों (शालि) को नये घड़ों में डाला, डालकर उन्हें लीपा। लीपकर लाञ्छित-रेखांकित और मुद्रित किया। उन्हें कोष्ठागार के एक कोने में रखा। रखकर उनका संरक्षण, संगोपन करने लगे।

१७. तए णं ते कोडुंबिया दोच्चंसि वासारत्तंसि पढमपाउसंसि महावुट्ठिकायंसि निवइयंसि (समाणंसि?) खुड्डागं केयारं सुपरिकम्मियं करेंति, ते साली ववंति, दोच्चंपि उक्खय-णिहए करेंति जाव असिएहिं लुणंति लुणित्ता चलणतलमलिए करेंति करेत्ता पुणंति। तत्थ णं सालीणं बहवे कुडवा जाया ।।

१७. उन कौटुम्बिकों ने दूसरे वर्षारात्र में भी प्रथम पावस में महावृष्टि होने पर, एक छोटे से खेत को भली-भांति परिकर्मित किया। उन शालिकणों को बोया। दूसरी बार भी उन्हें उखाड़कर दूसरे स्थान में रोपा, यावत् उन्हें दात्रों से काटा। काटकर उन्हें पांवों के तलवों से मला। मलकर साफ किया। इस बार बहुत कुडव परिमित शालि हुए।

१८. तए णं ते कोडुंबिया ते साली नवएसु घडएसु पक्खिवंति, पक्खिवित्ता ओलिंपंति, ओलिंपित्ता लंछिय-मुद्दिए करेंति, करेत्ता कोट्ठागारस्स एगदेसंसि ठावेंति, ठावेत्ता सारक्खमाणा संगोवेमाणा विहरंति ।।

१८. कौटुम्बिक पुरुषों ने उन चावलों को नये घड़ों में डाला। डालकर घड़ों को लीपा। लीपकर उन्हें लाञ्छित -रेखांकित और मुद्रित किया। मुद्रित कर उन्हें कोष्ठागार के एक देश में रखा। रखकर उनका संरक्षण, संगोपन करने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. तए णं ते कोडुंबिया तच्चंसि वासारत्तंसि महावुट्ठिकायंसि निवइयंसि (समाणंसि?) केयारे सुपरिकम्मिए करेंति जाव असिएहिं लुणेंति, लुणित्ता संवहंति, संवहित्ता खलयं करेंति, मलेंति, पुणंति। तत्थ णं सालीणं बहवे कुंभा जाया।।

२०. तए णं ते कोडुंबिया ते साली कोट्ठागारंसि पल्लंसि पक्खिवंति, पक्खिवित्ता ओलिंपंति ओलिंपित्ता, लंछिय-मुद्दिए करेंति, करेत्ता सारक्खमाणा संगोवेमाणा विहरंति।।

२१. चउत्थे वासारत्ते बहवे कुंभसया जाया।।

परिक्खा-परिणाम-पदं

२२. तए णं तस्स धणस्स पंचमयंसि संवच्छरंसि परिणममाणंसि पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--एवं खलु मए इओ अतीते पंचमे संवच्छरे चउण्हं सुण्हाणं परिक्खणट्ठयाए ते पंच-पंच सालिअक्खया हत्थे दिन्ना। तं सेयं खलु मम कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते पंच सालिअक्खए परिजाइत्तए जाव जाणामि ताव काए किह सारक्खिया वा संगोविया वा संवड्ढिया वत्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गं जाव सम्माणित्ता तस्सेव मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ जेट्ठं उज्झियं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--एवं खलु अहं पुत्ता! इओ अतीते पंचमम्मि संवच्छरे इमस्स मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स य पुरओ तव हत्थंसि पंच सालिअक्खए दलयामि। जया णं अहं पुत्ता! एए पंच सालिअक्खए जाएज्जा तया णं तुमं मम इमे पंच सालिअक्खए पडिनिज्जाएसि। से नूणं पुत्ता! अट्ठे समट्ठे?

हंता अत्थि।

तं णं तुमं पुत्ता! मम ते सालिअक्खए पडिनिज्जाएसि।।

२३. तए णं सा उज्झिया एयमट्ठं धणस्स सत्थवाहस्स पडिसुणेइ, जेणेव कोट्ठागारं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पल्लाओ पंच सालिअक्खए गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव धणे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धणं सत्थवाहं एवं वयासी--एए णं ताओ! पंच सालिअक्खए त्ति कट्टु धणस्स हत्थंसि ते पंच सालिअक्खए दलयइ।।

१९. कौटुम्बिक पुरुषों ने तीसरे वर्षारात्र में भी प्रथम पावस में महावृष्टि होने पर कई खेतों को भली-भांति परिकर्मित किया, यावत् दात्रों से काटा। काटकर खलिहान में लाए। लाकर खला[1] निकाला, मला और साफ किया। इस बार बहुत कुम्भ[2] परिमित चावल हुए।

२०. कौटुम्बिक पुरुषों ने उन चावलों को कोष्ठागार स्थित धान के पल्य में डाला। डालकर उन्हें लीपा। लीपकर लाञ्छित-रेखांकित और मुद्रित किया। मुद्रित कर उनका सरंक्षण, संगोपन करने लगे।

२१. चौथे वर्षारात्र में चावलों के सैकड़ों कुम्भ भर गये।

परीक्षा-परिणाम-पद

२२. पांचवे वर्ष के समाप्त-प्राय: होने पर अर्द्धरात्रि के समय धन सार्थवाह के मन में इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ-मैंने आज से पांच वर्ष पूर्व चारों बहुओं की परीक्षा के लिए उनके हाथों में पांच-पांच शालिकण दिए थे। अत: मेरे लिए उचित है–मैं उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर, तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर उनसे वे पांच शालिकण मागूं यावत् यह जानूं कि किसने किस प्रकार उनका संरक्षण, संगोपन अथवा संवर्द्धन किया है। उसने ऐसी संप्रेक्षा की, संप्रेक्षा कर उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर उसने विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवाकर मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन और चार बहुओं के पीहर वालों को यावत् सम्मानित कर उन्हीं मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन और चारों बहुओं के पीहर वालों के सामने बड़ी बहू उज्झिता को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा–बेटी! मैंने आज से पांच वर्ष पूर्व इन्हीं मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन और चारों बहुओं के पीहर वालों के सामने तेरे हाथ में पांच शालिकण दिये थे। (यह कहकर कि) बेटी! जब मैं इन पांच शालिकणों को मागूं तब तू ये पांच शालिकण मुझे लौटा देना।

बेटी! यह बात सही है?

'हां, सही है।'

तो बेटी! तू वे पांच शालिकण मुझे वापस दे।

२३. उज्झिता ने धन सार्थवाह के इस कथन को स्वीकार किया। जहां कोष्ठागार था वहां आई। आकर पल्य से पांच शालिकण लिए। लेकर जहां धन सार्थवाह था, वहां आई। आकर धन सार्थवाह को इस प्रकार कहा--पिताजी! ये रहे पांच शालिकण--ऐसा कहकर उसने धन सार्थवाह के हाथ में वे पांच शालिकण दिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४. तए णं धणे सत्थवाहे उज्झियं सवह-सावियं करेइ, करेत्ता एवं वयासी--किण्णं पुत्ता! ते चेव पंच सालिअक्खए उदाहु अण्णे?

२५. तए णं उज्झिया धणं सत्थवाहं एवं वयासी--एवं खलु तुब्भे ताओ! इओ अतीए पंचमे संवच्छरे इमस्स मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणस्स चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ पंच सालिअक्खए गेण्हह, गेण्हित्ता ममं सद्दावेह, सद्दावेत्ता एवं वयासी--तुमं णं पुत्ता! मम हत्थाओ इमे पंच सालिअक्खए गेण्हाहि, अणुपुव्वेणं सारक्खमाणी संगोवेमाणी विहराहि। तए णंहं तुब्भं एयमट्ठं पडिसुणेमि, ते पंच सालिअक्खए गेण्हामि, एगंतमवक्कमामि।

तए णं मम इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--एवं खलु ताताणं कोट्ठागारंसि बहवे पल्ला सालीणं पडिपुण्णा चिट्ठंति, तं जया णं मम ताओ इमे पंच सालिअक्खए जाएसइ, तया णं अहं पल्लंतराओ अण्णे पंच सालिअक्खए गहाय दाहामि त्ति कट्टु एवं संपेहेमि, संपेहेत्ता ते पंच सालिअक्खए एगंते एडेमि, सकम्मसंजुत्ता यावि भवामि। तं नो खलु ताओ! ते चेव पंच सालिअक्खए, एए णं अण्णे।।

२६. तए णं से धणे सत्थवाहे उज्झियाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्मा आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे उज्झियं तस्स मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स चउण्हं सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स य पुरओ तस्स कुलघरस्स छारुज्झियं च छाणुज्झियं च कयवरुज्झियं च संपुच्छियं च सम्मज्जियं च पाओवदाइयं च ण्हाणोवदाइयं च बाहिर-पेसणकारियं च ठवेइ।।

२७. एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय- उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, पंच य से महव्वयाइं उज्झियाइं भवंति, से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाण य हीलणिज्जे जाव चाउरंत-संसार-कंतारं भुज्जो-भुज्जो अणुपरियट्टिस्सइ--जहा सा उज्झिया।।

२८. एवं भोगवइया वि, नवरं--छोल्लेमि, छोल्लित्ता अणुगिलेमि, अणुगिलित्ता सकम्मसंजुत्ता यावि भवामि। तं नो खलु ताओ! ते चेव पंच सालिअक्खए, एए णं अण्णे।।

२९. तए णं से धणे सत्थवाहे भोगवइयाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्मा आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे भोगवइं तस्स

२४. धन सार्थवाह ने उज्झिता को सौगन्ध दिलाई। दिलाकर इस प्रकार कहा--बेटी! ये वे ही शालिकण हैं अथवा दूसरे हैं?

२५. उज्झिता ने धन सार्थवाह से इस प्रकार कहा--पिताजी! आपने आज से पांच वर्ष पूर्व इन्हीं मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन और चारों बहुओं के पीहर वालों के सामने पांच शालिकण लिये। लेकर मुझे बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--बेटी! तू मेरे हाथ से ये पांच शालिकण ले और क्रमशः इनका संरक्षण, संगोपन करती रह। उस समय मैंने आपके कथन को स्वीकार किया। उन पांच शालिकणों को ग्रहण किया और एकान्त में गई।

मेरे मन में इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--पिताजी के कोष्ठागार में शालि के बहुत से पल्य भरे पड़े हैं। अतः जब पिताजी मुझसे ये पांच शालिकण मांगेंगे तब मैं किसी पल्य से अन्य पांच शालिकण ग्रहण कर उन्हें दे दूंगी--मैंने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर उन पांच शालिकणों को एकान्त में फैंक दिया और अपने काम में लग गई। अतः पिताजी! ये पांच शालिकण वे नहीं हैं अपितु ये दूसरे हैं।

२६. उज्झिता से यह अर्थ सुनकर, अवधारण कर धन सार्थवाह क्रोध से तमतमा उठा यावत् वह क्रोध से जलता हुआ--उन मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन और चारों बहुओं के पीहर वालों के सामने उज्झिता को उस कुल-घर की राख फैंकने वाली, गोबर फैंकने वाली, कचरा निकालने वाली, साफी लगाने वाली, झाडू लगाने वाली, सबको पाद-प्रक्षालन या स्नान के लिए पानी प्रदान करने वाली और बाहर जाकर प्रेष्य कर्म करने वाली दासी के रूप में नियुक्त किया।

२७. आयुष्मन् श्रमणो! इसी प्रकार हमारा जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य-उपाध्याय के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित होता है। कदाचित् उसके पांच महाव्रत उज्झित 'त्यक्त' हो जाते हैं वह इस भव में भी बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों और बहुत श्राविकाओं द्वारा हीलनीय होता है, यावत् वह चार अन्त वाले संसार कान्तार में पुनः पुनः अनुपरिवर्तन करेगा--जैसे वह उज्झिता।

२८. भोगवती का ऐसा ही वर्णन है। इतना विशेष है--उसने कहा--मैंने उन शालिकणों को छीला। उन्हें छीलकर निगल गई, निगलकर अपने काम में लग गई। अतः पिताजी! ये पांच शालिकण वे ही नहीं हैं अपितु ये दूसरे हैं।

२९. भोगवती से यह अर्थ सुनकर, अवधारण कर धन सार्थवाह क्रोध से तमतमा उठा यावत् वह क्रोध से जलता हुआ उन मित्र, ज्ञाति, निजक,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स चउण्हं सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स य पुरओ तस्स कुलघरस्स कंडिंतियं च कोट्टेंतियं च पीसंतियं च एवं--रुंधंतियं रंधंतियं परिवेसंतियं परिभायंतियं अब्भिंतरियं पेसणकारिं महाणसिणिं ठवेइ।।

स्वजन, सम्बन्धी, परिजन और चारों बहुओं के पीहर वालों के सामने भोगवती को उस घर की ओंखल कूटने वाली, तिलादि का चूर्ण करने वाली, (घट्टी) चक्की पीसने वाली तथा इसी प्रकार--दाल धोने वाली, यंत्र विशेष से चने को द्रव आदि से निस्तुष करने वाली, भोजन पकाने वाली, परोसने वाली, (मिष्टान्नादि) वितरित करने वाली, घर का आन्तरिक प्रेष्यकर्म करने वाली और रसोई बनाने वाली (दासी) के रूप में नियुक्त कर दिया।

३०. एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, पंच य से महव्वयाइं फालियाइं भवंति, से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाण य हीलणिज्जे जाव चाउरंत-संसार-कंतारं भुज्जो-भुज्जो अणुपरियट्टिस्सइ--जहा व सा भोगवइया।।

३०. आयुष्मन् श्रमणो! इसी प्रकार हमारा जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य-उपाध्याय के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित होता है (कदाचित्) उसके पांच महाव्रत खण्डित हो जाते हैं, तो वह इस भव में भी बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों और बहुत श्राविकाओं द्वारा हीलनीय होता है यावत् वह चार अन्त वाले संसार कान्तार में पुनः पुनः अनुपरिवर्तन करेगा--जैसे वह भोगवती।

३१. एवं रक्खियावि, नवरं--जेणेव वासघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मंजूसं विहाडेइ, विहाडेत्ता रयणकरंडगाओ ते पंच सालिअक्खए गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव धणे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंच सालिअक्खए धणस्स हत्थे दलयइ।।

३१. रक्षिता का भी ऐसा ही वर्णन है। इतना विशेष है--रक्षिता जहां उसका वासघर था वहां आई। वहां आकर मंजूषा को खोला। खोलकर रत्न निर्मित डिबिया से वे पांच शालिकण लिए। पांच शालिकण ले, जहां धन सार्थवाह था, वहां आई। वहां आकर पांच शालिकण धन सार्थवाह के हाथ में दे दिए।

३२. तए णं से धणे सत्थवाहे रक्खियं एवं वयासी--किं णं पुत्ता! ते चेव एए पंच सालिअक्खए उदाहु अण्णे?

३२. धन सार्थवाह रक्षिता से इस प्रकार बोला--बेटी! ये वे ही पांच शालिकण हैं अथवा दूसरे?

३३. तए णं रक्खिया धणं सत्थवाहं एवं वयासी--ते चेव ताओ! एए पंच सालिअक्खए, नो अण्णे।

कहण्णं? पुत्ता!

एवं खलु ताओ! तुब्भे इओ अतीते पंचमे संवच्छरे इमस्स मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ पंच सालिअक्खए गेण्हह, गेण्हित्ता ममं सद्दावेह, सद्दावेत्ता ममं एवं वयासी--तुमं णं पुत्ता! मम हत्थाओ इमे पंच सालिअक्खए गिण्हाहि, अणुपुव्वेणं सारक्खमाणी संगोवेमाणी विहराहि। जया णं अहं पुत्ता! तुमं इमे पंच सालिअक्खए जाएज्जा, तया णं तुमं मम इमे पंच सालिअक्खए पडिनिज्जाएज्जासि त्ति कट्टु मम हत्थंसि पंच सालिअक्खए दलयह। तं भवियव्वं एत्थ कारणेणं ति कट्टु ते पंच सालिअक्खए सुद्धे वत्थे बंधेमि, बंधित्ता रयणकरंडियाए पक्खिवेमि, पक्खिवित्ता उसीसामूले ठावेमि, ठावेत्ता तिसंझं पडिजागरणमाणी यावि विहरामि। तओ एएणं कारणेणं ताओ! ते चेव पंच सालिअक्खए, नो अण्णे।।

३३. रक्षिता ने धन सार्थवाह से इस प्रकार कहा--पिताजी! ये वे ही पांच शालिकण हैं, दूसरे नहीं।

यह कैसे बेटी?

पिताजी! आपने आज से पांच वर्ष पूर्व इन्हीं मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन और चारों बहुओं के पीहर वालों के सामने पांच शालिकण लिये। लेकर मुझे बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--बेटी! तू मेरे हाथ से ये पांच शालिकण ले और क्रमशः इनका संरक्षण, संगोपन करती रह। बेटी! जब मैं तुझसे ये पांच शालिकण मागूं, तब तू ये पांच शालिकण मुझे लौटा देना--ऐसा कहकर मेरे हाथ में पांच शालिकण दिये थे। अतः यहां कोई न कोई कारण होना चाहिए--यह सोच मैंने उन पांच शालिकणों को शुद्ध वस्त्र में बांधा। बांधकर उसे रत्ननिर्मित डिबिया में रखा। रखकर उसे अपने तकिये के नीचे (सिराहने) स्थापित किया। स्थापित कर तीनों संध्याओं में उसकी देखभाल करती हुई विहार करने लगी। पिताजी! इसी कारण से ये वे ही पांच शालिकण हैं, दूसरे नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४. तए णं से धणे सत्थवाहे रक्खियाए अंतियं एयमट्ठं सोच्चा हट्ठतुट्ठे तस्स कुलघरस्स हिरण्णस्स य कंस-दूस-विपुल-धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण-संत-सार-सावए-ज्जस्स य भंडागारिणी ठवेइ।।

३४. रक्षिता से यह अर्थ सुनकर हृष्ट तुष्ट हुए धन सार्थवाह ने रक्षिता को उस घर की चांदी तथा कांस्य, दूष्य, विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मौक्तिक, शंख, शिला, प्रवाल, पद्मराग मणियां, श्रेष्ठ सुगन्धित द्रव्य और दान भोग आदि के लिए स्वापतेय के खजाने की स्वामिनी के रूप में नियुक्त कर दिया।

३५. एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, पंच य से महव्वयाइं रक्खियाइं भवंति, से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावगाणं बहूणं सावियाण य अच्चणिज्जे जाव चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइस्सइ--जहा व सा रक्खिया।।

३५. आयुष्मन् श्रमणो! इसी प्रकार हमारा जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य-उपाध्याय के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित होता है और उनके पांच महाव्रत सुरक्षित रहते हैं तो वह इस भव में भी बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों और बहुत श्राविकाओं द्वारा अर्चनीय होता है यावत् वह चार अन्त वाले संसार कान्तार का पार पा लेता है जैसे--वह रक्षिता।

३६. रोहिणीया वि एवं चेव, नवरं--तुब्भे ताओ! मम सुबहुयं सगडि- सागडं दलाह, जा णं अहं तुब्भं ते पंच सालिअक्खए पडिनिज्जाएमि।।

३६. रोहिणी का भी ऐसा ही वर्णन है। इतना विशेष है। उसने पिताजी से कहा—पिताजी! तुम मुझे छोड़े-बड़े वाहन दो जिससे मैं तुम्हारे वे पांच शालिकण लाऊँ।

३७. तए णं से धणे सत्थवाहे रोहिणिं एवं वयासी--कहं णं तुमं पुत्ता! ते पंच सालिअक्खए सगडि-सागडेणं निज्जाइस्ससि?।।

३७. तब धन सार्थवाह ने रोहिणी से इस प्रकार कहा--बेटी! तू उन पांच शालिकणों को छोटे-बड़े वाहनों से कैसे लाएगी?

३८. तए णं सा रोहिणी धणं सत्थवाहं एवं वयासी--एवं खलु ताओ। तुब्भे इओ अतीते पंचमे संवच्छरे इमस्स मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ पंच सालिअक्खए गेण्हह, गेण्हित्ता ममं सद्दावेह, सद्दावेत्ता एवं वयासी--तुमं णं पुत्ता मम हत्थाओ इमे पंच सालिअक्खए गेण्हाहि, अणुपुव्वेणं सारक्खमाणी संगोवेमाणी विहराहि। जया णं अहं पुत्ता! तुमं इमे पंच सालिअक्खए जाएज्जा, तया णं तुमं इमे पंच सालिअक्खए पडिनिज्जाएज्जासि त्ति कट्टु मम हत्थंसि पंच सालिअक्खए दलयह। तं भवियव्वं एत्थ कारणेणं। तं सेयं खलु मम एए पंच सालिअक्खए सारक्खमाणीए संगोवेमाणीए संवड्ढेमाणीए जाव बहवे कुंभसया जाया तेणेव कमेण। एवं खलु ताओ! तुब्भे ते पंच सालिअक्खए सगडि-सागडेणं निज्जाएमि।।

३८. रोहिणी ने धन सार्थवाह से इस प्रकार कहा--पिताजी! आपने आज से पांच वर्ष पहले इन्हीं मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन और चारों बहुओं के पीहर वालों के सामने पांच शालिकण लिए। लेकर मुझे बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--बेटी! तू मेरे हाथ से ये पांच शालिकण ले और क्रमशः इनका संरक्षण, संगोपन करती रह। बेटी! जब मैं तुझसे ये पांच शलिकण मागूं तब तू मुझे ये पांच शालिकण लौटा देना--ऐसा कहकर आपने मेरे हाथ में पांच शालिकण दिये थे। यहां कोई न कोई कारण होना चाहिए अतः मेरे लिए उचित है---मैं इन पांच शालिकणों का संरक्षण, संगोपन और संवर्द्धन करती हुई विहार करूं यावत् उसी क्रम से शालि के अनेक शत कुम्भ भर गये। इसलिए पिताजी मैं आपके उन पांच शालिकणों को छोटे-बड़े वाहनों से लाऊँगी।

३९. तए णं से धणे सत्थवाहे रोहिणीयाए सुबहुयं सगडि-सागडं दलाति।।

३९. धन सार्थवाह ने रोहिणी को बहुत सारे छोटे-बड़े वाहन दिये।

४०. तए णं से रोहिणी सुबहुं सगडि-सागडं गहाय जेणेव सए कुलघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कोट्ठागारे विहाडेइ, विहाडित्ता पल्ले उब्भिंदइ, उब्भिंदित्ता सगडि-सागडं भरेइ, भरेत्ता रायगिहं नगरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे जेणेव धणे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ।।

४०. रोहिणी बहुत सारे छोटे-बड़े वाहन लेकर जहां उसका पीहर था, वहां आयी। वहां आकर कोष्ठागारों को खोला। खोलकर कोठों का उद्भेदन किया। उद्भेदन कर छोटे-बड़े वाहनों को भरा। उन्हें भरकर राजगृह नगर के बीचोंबीच होती हुई जहां अपना घर था, जहां धन सार्थवाह था, वहां आयी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१. तए णं रायगिहे नयरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह--महापहपहेसु बहुजणो अण्णमण्णं एवमाइक्खइ-धण्णे णं देवाणुप्पिया! धणे सत्थवाहे, जस्स णं रोहिणीया सुण्हा पंच सालिअक्खए सगडि-सागडेणं निज्जाएइ।।

४१. राजगृह नगर के दोराहों, तिराहों, चोराहों, चौकों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और मार्गों में जन समूह ने परस्पर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! धन्य है धन सार्थवाह, जिसकी पुत्रवधू रोहिणी पांच शालिकणों को छोटे-बड़े वाहनों से लौटा रही है।

४२. तए णं से धणे सत्थवाहे ते पंच सालिअक्खए सगडि-सागडेणं निज्जाइए पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे पडिच्छइ, पडिच्छित्ता तस्सेव मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ रोहिणीयं सुण्हं तस्स कुलघरस्स बहूसु कज्जेसु य कारणेसु य कुडुंबेसु य मंतेसु य गुज्झेसु य रहस्सेसु य आपुच्छणिज्जं पडिपुच्छणिज्जं मेढिं पमाणं आहारं आलबणं चक्खुं, मेढीभूयं पमाणभूयं आहारभूयं आलंबणभूयं चक्खुभूयं सव्वकज्जवड्ढावियं पमाणभूयं ठवेइ।।

४२. धन सार्थवाह ने उन पांच शालिकणों को छोटे-बड़े वाहनों से लाया जाता हुआ देखा। देखकर हृष्ट तुष्ट हो उन्हें स्वीकार कर लिया। स्वीकार कर उन्हीं मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन और चारों बहुओं के पीहर वालों के सामने पुत्रवधू रोहिणी को उस घर के बहुत से कार्यों, कारणों, कर्त्तव्यों, मंत्रणाओं, गोपनीय कार्यों और रहस्यों में परामर्शदात्री, पुन: पुन: परामर्शदात्री, मेढ़ी, प्रमाण, आधार, आलम्बन, चक्षु, मेढ़ीभूत, प्रमाणभूत, आधारभूत, आलम्बनभूत, चक्षुभूत, समस्त कार्यों का संवर्द्धन करने वाली और प्रमाणभूत घोषित किया।

४३. एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, पंच से महव्वया संवड्ढिया भवंति, से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावगाणं बहूणं सावियाण य अच्चणिज्जे जाव चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइस्सइ--जहा व सा रोहिणीया।।

४३. आयुष्मन् श्रमणो! इसी प्रकार हमारा जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य-उपाध्याय के पास मुण्ड होकर, अगार से अनगारता में प्रव्रजित होता है और उसके पांच महाव्रत संवर्धित होते हैं तो वह उस भव में भी बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों और बहुत श्राविकाओं द्वारा अर्चनीय होता है यावत् वह चार अन्त वाले संसार रूपी कान्तार पार पा लेता है, जैसे--वह रोहिणी।

निक्खेव-पदं

४४. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थगरेणं जाव सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपत्तेणं सत्तमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

—त्ति बेमि।।

निक्षेप-पद

४४. जम्बू! इस प्रकार धर्म के आदिकर्ता तीर्थंकर यावत् सिद्धिगति नामक स्थान को संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के सातवें अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

--ऐसा मैं कहता हूँ।

वृत्तिकृता समुद्धृता निगमनगाथा

जह सेट्ठी तह गुरुणो, जह नाइ-जणो तहा समणसंघो।
जह बहुया तह भव्वा, जह सालिकणा तह वयाइं ।।१।।

वृत्तिकार द्वारा समुद्धृत निगमन-गाथा

१. सेठ के समान गुरु है। ज्ञातिजन के समान श्रमण-संघ है। बहुओं के समान भव्यजीव हैं और शालिकणों के समान व्रत हैं।

उज्झिया

जह सा उज्झियनामा, उज्झियसाली जहत्थमभिहाणा।
पेसणगारित्तेणं, असंखदुक्खक्खणी जाया।।२।।
तह भव्वो जो कोई, संघसमक्खं गुरु-विदिण्णाइं।
पडिवज्जिउं समुज्झइ, महव्वयाइं महामोहा।।३।।
सो इह चेव भवम्मि, जणाण धिक्कार-भायणं होइ।
परलोए उ दुहत्तो, नाणा-जोणीसु संचरइ।।४।।

२-४ उज्झिता

जैसे शलिकणों को फेंककर अपने नाम को चरितार्थ करने वाली उज्झिता नाम की बहू प्रेष्यकारिता को प्राप्त कर असंख्य दु:खों की खान बन गई, वैसे ही जो कोई भव्य संघ के समक्ष गुरु द्वारा प्रदत्त व्रतों को स्वीकार कर मोहवश पुन: छोड़ देता है, वह इस जीवन में भी जन-जन के धिक्कार का पात्र होता है और परलोक में भी दु:खों से पीडित हो नाना योनियों में संचरण करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भोगवती

जह वा सा भोगवती, जहत्थनामोवभुत्तसालिकणा।
पेसणविसेसकारित्तणेण पत्ता दुहं चेव॥५॥
तह जो महव्वयाइं, उवभुंजइ जीवियत्ति पालिंतो।
आहाराइसु सत्तो, चत्तो सिवसाहणिच्छाए॥६॥
सो एत्थ जहिच्छाए, पावइ आहारमाइ लिंगित्ता।
विउसाण नाइपुज्जो, परलोयंसी दुही चेव॥७॥

रक्खिया

जह वा रक्खियबहुया, रक्खियसालीकणा जहत्थक्खा।
परिजणमण्णा जाया, भोगसुहाइं च संपत्ता॥८॥
तह जो जीवो सम्मं, पडिवज्जित्ता महव्वए पंच।
पालेइ निरइयारे, पमाय-लेसंपि वज्जेंतो॥९॥
सो अप्पहिएक्करई, इहलोयम्मिवि विऊहिं पणयपओ।
एगंतसुही जायइ, परम्मि मोक्खंपि पावेइ॥१०॥

रोहिणी

जह रोहिणी उ सुण्हा, रोवियसाली जहत्थमभिहाणा।
वड्ढित्ता सालिकणे, पत्ता सव्वस्स सामित्तं॥११॥
तह जो भव्वो पाविय, वयाइ पालेइ अप्पणा सम्मं।
अण्णेसि वि भव्वाणं, देइ अणेगेसि हियहेउं॥१२॥
सो इह संघप्पहाणो, जुगप्पहाणोत्ति लहइ संसद्दं।
अप्पपरेसिं कल्लाण-कारओ गोयमपहुव्व॥१३॥
तित्थस्स वुड्ढिकारी, अक्खेवणओ कुतित्थियाईणं।
विउस-नरसेविय-कमो, कमेण सिद्धिं पि पावेइ॥१४॥

भोगवती

५-७. जैसे शालिकणों को निगलकर अपने नाम को चरितार्थ करने वाली भोगवती विशेष प्रेष्यकारिता के रूप में नियुक्त हो दुःख को ही प्राप्त हुई, वैसे ही जीविका की दृष्टि से महाव्रतों का पालन करता हुआ भी जो (मात्र सुविधाओं का) उपभोग करता है, वह आहार आदि में आसक्त हो, शिव साधन की इच्छा भी त्याग देता है। वह यहां साधुवेष के कारण मनचाहा आहार आदि तो पा लेता है, पर विद्वानों में पूज्य नहीं होता और परलोक में भी दुःखी होता है।

रक्षिता

८-१०. जैसे शलिकणों की रक्षा कर अपने नाम को चरितार्थ करने वाली रक्षिता नाम वाली बहू परिजनों में सम्मानित भोग-सुखों को प्राप्त हुई, वैसे ही जो जीव पांच महाव्रतों को सम्यक् स्वीकार कर अंशमात्र भी प्रमाद न करता हुआ उसका निरतिचार पालन करता है वह एक मात्र आत्महित में रमण करने वाला मुनि इस लोक मे भी विद्वत्पूज्य और एकान्त सुखी होता है तथा आगे भी मोक्ष को प्राप्त करता है।

रोहिणी

११-१४. जैसे शालिकणों को रोपकर अपने नाम को चरितार्थ करने वाली रोहिणी नाम वाली बहू ने शालिकणों का संवर्द्धन कर सबके स्वामित्व को प्राप्त किया, वैसे ही जो भव्य स्वीकृत व्रतों को स्वयं सम्यक् पालन करता है और बहुतों के हित के लिए अन्य भव्यों को भी व्रती बनाता है(उस पथ पर प्रतिष्ठित करता है) वह इस संघ में संघ-प्रधान युग-प्रधान जैसे श्लाघ्य वचनों को प्राप्त करता है और गौतम स्वामी की भांति अपना और दूसरों का कल्याण करता है।

वह तीर्थ की श्रीवृद्धि करता है। कुतीर्थिकों (के मिथ्या-दर्शन) का निरसन करता है। विद्वज्जन उसके चरणों की सेवा करते हैं और इस क्रम से वह सिद्धि को भी प्राप्त कर लेता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

सूत्र १४

१. (वत्तिया) गोल हुए

व्रीहि के पत्ते मध्यगत शलाका को परिवेष्टित करने के कारण नाल जैसे होते हैं।[1]

सूत्र १५

२. मगधदेश प्रसिद्ध प्रस्थ प्रमाण (मागहए पत्थए)

मागध प्रस्थ एक माप विशेष का वाचक है। जैसे--

दो असईओ पसई, दो पसइओ उ सेइया होइ।
चउसेइयो उ कुडओ, चउकुडओ पत्थओ नेउ।।

इस प्रमाण से मगधदेश में व्यवहृत होने वाला प्रस्थ मागध प्रस्थ कहलाता है।[2]

सूत्र १९

३. खला (खलयं)

वह भूमि जहां कटाई होने के पश्चात् धान का खला निकाला जाता है, धान का मर्दन कर धान्यकणों को तुषों से अलग किया जाता है।[3]

४. कुम्भ (कुंभ)

कुंभ का सामान्य अर्थ है--घड़ा। पर यहां यह परिमाण विशेष का वाचक है। उसके तीन प्रकार हैं--

जघन्य-साठ आढक (एक आढक-चार प्रस्थ)
मध्यम–अस्सी आढक
उत्कृष्ट--सौ आढक।[4]

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१२५--वत्तिय त्ति व्रीहीणां पत्राणिमध्यशलाकापरिवेष्टनेन नालरूपतया वृत्तानि भवन्ति तद्वृत्ततया जातवृत्तत्वाद्वर्तिता: शाखादीनां वा समतया वृत्तीभूता: सन्तो वर्तिता अभिधीयन्ते।

२. वही, पत्र-१२६--अनेन प्रमाणेन मगधदेश व्यवहृत: प्रस्थो मागध प्रस्थ:।

३. वही--खलकं धान्यमलनस्थण्डिलम्।

४. वही--चतुष्प्रस्थं आढक:, आढकानां षष्ट्या जघन्य: कुम्भ:, अशीत्या मध्यम:, शतेनोत्कृष्ट इति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

आगम साहित्य में तीर्थंकरों का जीवन चरित्र उल्लिखित है। कल्पसूत्र में भगवान महावीर का विस्तार व शेष तीर्थंकरों का संक्षिप्त में वर्णन मिलता है।

भगवान ऋषभ का जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में, महावीर का आयारो व आयारचूला में वर्णन है। प्रश्न उठता है ज्ञातधर्मकथा में अन्य तीर्थंकरों का जीवनवृत्त नहीं, केवल मल्लिनाथ पर ही विवेचन क्यों? अनुमान किया जा सकता है कि चौबीस ही तीर्थंकरों का जीवन-चरित्र लिखा गया होगा। अन्य तीर्थंकरों का अन्य आगमों में विवेचन होने से ज्ञातधर्मकथा में नहीं दिया गया और मल्लिनाथ का वर्णन अन्यत्र विस्तार से न होने के कारण ज्ञातधर्मकथा में दे दिया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन के केन्द्र में विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली है। मल्ली का जीव गर्भ में आने पर रानी प्रभावती को माल्य-शयनीय का दोहद उत्पन्न हुआ। रानी के दोहद की पूर्ति होने से इस अध्ययन का नाम भी मल्ली रख दिया गया।

२३६. सूत्रों में आवर्टित यह अध्ययन जितना विस्तृत है, उतना ही प्रेरणादायी और सरस। प्रतिबुद्धि, चन्द्रच्छाय, शंख, रुक्मी, अदीनशत्रु और जितशत्रु राजा किस प्रकार राजकुमारी मल्ली के प्रति अनुरक्त होते हैं और मल्ली किस प्रकार उनके राग को विराग में बदलती है। इसका मनोवैज्ञानिक व प्रयोगात्मक ढंग से बहुत ही सुन्दर विश्लेषण किया गया है।

मल्ली के विषय में एक बड़ा विवाद है। १९ वें तीर्थंकर मल्लीनाथ स्त्री थे। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार स्त्री की मुक्ति हो सकती है किन्तु दिगम्बर परम्परा में स्त्री की मुक्ति मान्य नहीं है।

प्रस्तुत अध्ययन की संग्रहणी गाथा में उल्लेख है--महाबल के भव में तीर्थंकर नाम गोत्र का बंधन होते हुए भी तप विषयक अल्प माया मल्ली के स्त्रीत्व का कारण बन गयी।' प्रस्तुत गाथा पर मनन करने से एक प्रश्न उभरता है कि माया स्त्री बंध का कारण है, इसका हेतु क्या है? माया करने से तिर्यञ्च योनि का बंध होता है ऐसा ठाणं सूत्र व तत्त्वार्थ सूत्र में उल्लेख है किन्तु माया करने से स्त्री गोत्र का बंध होता है यह आज भी शोध का विषय है। उत्तराध्ययन सूत्र में उल्लेख है--'ऋजुभाव से युक्त अमाई स्त्रीवेद और नपुंसक वेद का बंधन नहीं करता किन्तु माया से स्त्री गोत्र का बंध होता है ऐसा उल्लेख वहां भी नहीं है।

प्रस्तुत अध्ययन का प्रतिपाद्य है--तपस्या की आराधना में भी माया का प्रयोग नहीं करना चाहिए। उत्कृष्ट तप करने वाले के लिए भी माया अनर्थ का हेतु बन जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठमं अज्झयणं : आठवां अध्ययन

मल्ली

उक्खेव-पदं

१. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सत्तमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, अट्ठमस्स णं भंते! नायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

उत्क्षेप पद

१. भन्ते! यदि धर्म के आदिकर्ता यावत् सिद्धिगति संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के सातवें अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है, तो भन्ते! उन्होंने ज्ञाता के आठवें अध्ययन का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

बलराय-पदं

२. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, निसढस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, सीओदाए महानदीए दाहिणेणं, सुहावहस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं सलिलावई नामं विजए पण्णत्ते।।

बलराज पद

२. जम्बू! उस काल और उस समय इसी जम्बूद्वीप द्वीप और महाविदेह वर्ष में मन्दर पर्वत के पश्चिम में निषध नाम के वर्षधर पर्वत के उत्तर में, सीतोदा महानदी के दक्षिण में, सुखावह नाम के वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में और पश्चिमी लवण-समुद्र के पूर्व में सलिलावती नाम की विजय थी।

३. तत्थ णं सलिलावईविजए वीयसोगा नामं रायहाणी--नवजोयणवित्थिण्णा जाव पच्चक्खं देवलोगभूया।।

३. उस सलिलावती विजय की वीतशोका नाम की राजधानी थी। वह नौ योजन चौड़ी यावत् प्रत्यक्ष देवलोक तुल्य थी।

४. तीसे णं वीयसोगाए रायहाणीए उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए इंदकुंभे नामं उज्जाणे।।

४. उस वीतशोका राजधानी के ईशानकोण में इन्द्रकुंभ नाम का उद्यान था।

५. तत्थ णं वीयसोगाए रायहाणीए बले नामं राया। तस्स धारिणीपामोक्खं देवीसहस्सं ओरोहे होत्था।।

५. उस वीतशोका राजधानी में बल नाम का राजा था। उसके अन्त:पुर में धारिणी प्रमुख हजार देवियां थीं।

६. तए णं सा धारिणी देवी अण्णया कयाइ सीहं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा जाव महब्बले दारए जाए--उम्मुक्कबालभावे जाव भोगसमत्थे।।

६. किसी समय धारिणी देवी सिंह का स्वप्न देखकर प्रतिबुद्ध हुई यावत् उसने महाबल बालक को जन्म दिया। वह शैशव को लांघकर यावत् पूर्ण भोग-समर्थ हुआ।

७. तए णं तं महब्बलं अम्मापियरो सरिसियाणं कमलसिरिपामोक्खाणं पंचण्हं रायवरकन्नासयाणं एगदिवसेणं पाणिं गेण्हावेंति। पंच पासायसया। पंचसओ दाओ जाव माणुस्सए कामभोगे पच्चणुब्भवमाणे विहरइ।।

७. महाबल के माता-पिता ने कमलश्री प्रमुख एक जैसी पांच सौ प्रवर राजकन्याओं के साथ एक ही दिन में महाबल का पाणिग्रहण करवा दिया। पांच सौ प्रासाद। पांच सौ (वस्तु-श्रेणियों) का प्रीतिदान यावत् वह मनुष्य संबंधी काम-भोगों का अनुभव करता हुआ विहार करने लगा।

८. तेणं कालेणं तेणं समएणं इंदकुंभे उज्जाणे थेरा समोसढा। परिसा निग्गया। बलो वि निग्गओ। धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे थेरे तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता

८. उस काल और उस समय इन्द्रकुम्भ उद्यान में स्थविर समवसृत हुए। परिषद ने निर्गमन किया। बलराजा ने भी निर्गमन किया। धर्म को सुनकर, अवधारण कर हृष्ट तुष्ट हुए बल ने स्थविरों को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमंसित्ता एवं वयासी--सद्दहामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं जाव नवरं महब्बलं कुमारं रज्जे ठावेमि। तओ पच्छा देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि।

अहासुहं देवाणुप्पिया! जाव एक्कारसंगवी। बहूणि वासाणि परियाओ। जेणेव चारुपव्वए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मासिएणं भत्तेणं सिद्धे।।

तीन बार दायीं ओर से प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर वन्दना-नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार कहा--भन्ते! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूं यावत् केवल एक बात-महाबल कुमार को राज्य सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दूं। उसके पश्चात् देवानुप्रिय के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित बनूंगा।

जैसा तुम्हें सुख हो देवानुप्रिय! यावत् वह ग्यारह अंगों का ज्ञाता हो गया। बहुत वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय पालकर जहां चारु पर्वत था, वहां आया। वहां आकर मासिक-भक्त के परित्याग पूर्वक सिद्ध हो गया।

महब्बल-राय-पदं

९. तए णं सा कमलसिरी अण्णया कयाइ सीहं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा जाव। बलभद्दो कुमारो जाओ। जुवराया यावि होत्था।।

महाबल राजा-पद

९. किसी समय वह कमलश्री सिंह का स्वप्न देखकर प्रतिबुद्ध हुई यावत् कुमार बलभद्र जन्मा। वह युवराज बना।

१०. तस्स णं महब्बलस्स रण्णो इमे छप्पि य बालवयंसगा रायाणो होत्था, तं जहा--

अयले धरणे पूरणे वसू वेसमणे अभिचंदे--सहजायया सहवड्ढियया सहपंसुकीलियया सहदारदरिसी अण्णमण्णमणुरत्तया अण्णमण्णमणुव्वयया अण्णमण्णच्छंदाणुवत्तया अण्णमण्णहिय-इच्छियकारया अण्णमण्णेसु रज्जेसु किच्चाइं करणिज्जाइं पच्चणुब्भ-वमाणा विहरंति।।

१०. उस महाबल राजा के ये छह बाल-वयस्य राजा थे, जैसे--अचल, धरण, पूरण, वसु, वैश्रमण, अभिचन्द्र--ये सहजात, सहसंवर्द्धित, सहपांशुक्रीडित, सहविवाहित (सह यौवन-प्रविष्ट) एक-दूसरे में अनुरक्त, एक दूसरे का अनुगमन करने वाले, एक-दूसरे के अभिप्राय का अनुवर्तन करने वाले और एक-दूसरे की आन्तरिक इच्छा को पूर्ण करने वाले थे। वे अपने करणीय कार्य को एक-दूसरे के राज्य में सम्पादित करते हुए विहार करने लगे।

११. तए णं तेसिं रायाणं अण्णया कयाइं एगयओ सहियाणं समुवागयाणं सण्णिसण्णाणं सण्णिविट्ठाणं इमेयारूवे मिहोकहा-समुल्लावे समुप्पज्जित्था--जण्णं देवाणुप्पिया! अम्हं सुहं वा दुक्खं वा पवज्जा वा विदेसगमणं वा समुप्पज्जइ, तण्णं अम्मेहिं एगयओ समेच्चा नित्थरियव्वे त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स अयमट्ठं पडिसुणेंति।।

११. किसी समय एकत्र सम्मिलित, समुपागत, सन्निषण्ण और सन्निविष्ट उन राजाओं के मध्य परस्पर इस प्रकार वार्तालाप हुआ--देवानुप्रियो! हमारे सामने सुख या दुःख, प्रव्रज्या या विदेश-गमन--कोई भी प्रसंग उपस्थित हो, हमें मिल-जुलकर एक साथ उसको पार करना है--उन्होंने परस्पर इस अर्थ को स्वीकार किया।

१२. तेणं कालेणं तेणं समएणं इंदकुंभे उज्जाणे थेरा समोसढा। परिसा निग्गया। महब्बले णं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे। जं नवरं--छप्पि य बालवयंसए आपुच्छामि, बलभद्दं च कुमारं रज्जे ठावेमि, जाव ते छप्पि य बालवयंसए आपुच्छइ।।

१२. उस काल और उस समय इन्द्रकुम्भ उद्यान में स्थविर समवसृत हुए। परिषद ने निर्गमन किया। महाबल भी धर्म को सुनकर, अवधारण कर हृष्ट तुष्ट हुआ। केवल एक बात छहों बाल वयस्यों (बाल-साथियों) से पूछ लेता हूं और कुमार बलभद्र को राज्य सिंहासन पर प्रतिष्ठित करता हूं, यावत् उसने उन छहों बाल-वयस्यों से पूछा।

१३. तए णं ते छप्पि य बालवयंसगा महब्बलं रायं एवं वयासी--जइ णं देवाणुप्पिया! तुब्भे पव्वयह, अम्हं के अण्णे आहारे वा आलंबे वा? अम्हे वि य णं पव्वयामो।।

१३. छहों बाल वयस्यों ने राजा महाबल से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! यदि तुम प्रव्रजित होते हो तो हमारा कौन दूसरा आधार होगा? कौन आलम्बन होगा? हम भी चाहते हैं प्रव्रजित हो जाएं।

१४. तए णं से महब्बले राया ते छप्पि य बालवयंसए एवं वयासी--जइ णं तुब्भे मए सद्धिं पव्वयह, तं गच्छह, जेट्ठपुत्ते सएहिं-सएहिं रज्जेहिं ठावेह, पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ दुरूढा समाणा मम अंतियं पाउब्भवह। तेवि तहेव पाउब्भवंति।।

१४. राजा महाबल ने उन छहों बाल-वयस्यों से इस प्रकार कहा--यदि तुम मेरे साथ प्रव्रजित होते हो तो जाओ, ज्येष्ठ पुत्रों को अपने-अपने राज्यों में प्रतिष्ठापित करो और हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली शिविकाओं पर आरूढ़ होकर मेरे समक्ष उपस्थित हो जाओ। वे वैसे ही उपस्थित हो गये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. तए णं से महब्बले राया छप्पि य बालवयंसए पाउब्भूए पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ जाव बलभद्दस्स अभिसेओ। जाव बलभद्दं रायं आपुच्छइ।।

महब्बलादीणं पव्वज्जा-पदं

१६. तए णं से महब्बले छहिं बालवयंसगेहिं सद्धिं महया इड्ढीए पव्वइए। एक्कारसंगवी। बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।।

१७. तए णं तेसिं महब्बलपामोक्खाणं सत्तण्हं अणगाराणं अण्णया कयाइ एगयओ सहियाणं इमेयारूवे मिहोकहा-समुल्लावे समुप्पज्जित्था--जण्णं अम्हं देवाणुप्पिया! एगे तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ, तण्णं अम्हेहिं सव्वेहिं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।।

महब्बलस्स तवविसय-माया-पदं

१८. तए णं से महब्बले अणगारे इमेणं कारणेणं इत्थिनामगोयं कम्मं निव्वत्तिंसु--जइ णं ते महब्बलवज्जा छ अणगारा चउत्थं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति, तओ से महब्बले अणगारे छट्ठं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। जइ णं ते महब्बलवज्जा छ अणगारा छट्ठं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति, तओ से महब्बले अणगारे अट्ठमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। एवं अह अट्ठमं तो दसमं, अह दसमं तो दुवालसमं। इमेहि य णं वीसाए णं कारणेहिं आसेविय-बहुलीकएहिं तित्थयर-नामगोयं कम्मं निव्वत्तिंसु, तं जहा--

संगहणी-गाहा

अरहंत-सिद्ध-पवयण-गुरु-थेर-बहुस्सुय-तवस्सीसु।
वच्छल्लया य तेसिं, अभिक्ख नाणोवओगे य।।१।।
दंसण-विणए आवस्सए य सीलव्वए निरइयारो।
खणलवतवच्चियाए, वेयावच्चे समाहिए।।२।।
अपुव्वनाणगहणे, सुयभत्ती पवयण-पहावणया।
एएहिं कारणेहिं, तित्थयरत्तं लहइ सो उ।।३।।

१५. महाबल राजा ने उन छहों बाल-वयस्यों को उपस्थित हुए देखा। देखकर उसने हृष्ट तुष्ट हो कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया यावत् बलभद्र का अभिषेक किया। यावत् राजा बलभद्र से पूछा।

महाबल आदि की प्रव्रज्या-पद

१६. महाबल छहों बाल-वयस्यों के साथ महान ऋद्धिपूर्वक प्रव्रजित हुआ। ग्यारह अंगों का ज्ञाता बना। वह बहुत सारे चतुर्थ-भक्त, षष्ठ-भक्त, अष्टम-भक्त, दशम-भक्त, द्वादश भक्त, मासिक और पाक्षिक तप से स्वयं को भावित करता हुआ विहार करने लगा।

१७. किसी समय एकत्र सम्मिलित उन महाबल प्रमुख सातों अनगारों के मध्य आपस में इस प्रकार का वार्त्तालाप हुआ--देवानुप्रियो! हम में से कोई एक जिस तप:कर्म को स्वीकार कर विहार करता है, हम सब उसी तप:कर्म को स्वीकार कर विहार करें--इस प्रकार उन्होंने एकदूसरे के इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। स्वीकार कर बहुत सारे चतुर्थ-भक्त, षष्ठ-भक्त, अष्टम-भक्त, दशम-भक्त, द्वादश-भक्त, मासिक और पाक्षिक तप से स्वयं को भावित करते हुए विहार करने लगे।

महाबल का तपोविषयक माया-पद

१८. महाबल अनगार ने इस कारण से स्त्री नाम-गोत्र कर्म का[१] का उपार्जन किया--महाबल के अतिरिक्त उन छह अनगारों ने यदि चतुर्थ-भक्त स्वीकार कर विहार किया तो महाबल अनगार षष्ठ-भक्त स्वीकार कर विहार करता। महाबल के अतिरिक्त वे छह अनगार यदि षष्ठ-भक्त स्वीकार कर विहार करते, तो वह महाबल अनगार अष्टम-भक्त स्वीकार कर विहार करता। इस प्रकार वे अष्टम-भक्त करते, तो वह दशम-भक्त करता। वे दशम-भक्त करते तो, वह द्वादश-भक्त करता।

इन बीस कारणों से आसेवन और बहुलीकरण (अभ्यास करने से और पुन: पुन: अभ्यास करने) से उसने तीर्थंकर नाम गोत्र कर्म का उपार्जन किया जैसे--

संग्रहणी-गाथा

१. अर्हत् २. सिद्ध ३. प्रवचन ४. गुरु ५. स्थविर ६. बहुश्रुत ७. तपस्वी--इनके प्रति वत्सलता, ८. अभीक्ष्ण--ज्ञानोपयोग ९. दर्शन १०. विनय ११. आवश्यक १२. शील (उत्तरगुण) और व्रतों (महाव्रत) का निरतिचार पालन १३. क्षण-लव मात्र भी प्रमाद न करना १४. तप १५. त्याग १६. वैयावृत्य १७. समाधि १८. अपूर्व-ज्ञान ग्रहण १९. श्रुतभक्ति २०. प्रवचन-प्रभावना--इन कारणों से उसने भी तीर्थंकरत्व को प्राप्त किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महब्बलादीणं विविहतवचरण-पदं

१९. तए णं ते महब्बलपामोक्खा सत्त अणगारा मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति जाव एगराइयं।।

२०. तए णं ते महब्बलपामोक्खा सत्त अणगारा खुड्डागं सीहनिक्कीलियं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति, तं जहा--

चउत्थं करेंति, सव्वकामगुणियं पारेंति।
छट्ठं करेंति, चउत्थं करेंति।
अट्ठमं करेंति, छट्ठं करेंति।
दसमं करेंति, अट्ठमं करेंति।
दुवालसमं करेंति, दसमं करेंति।
चोद्दसमं करेंति, दुवालसमं करेंति।
सोलसमं करेंति, चोद्दसमं करेंति।
अट्ठारसमं करेंति, सोलसमं करेंति।
वीसइमं करेंति, अट्ठारसमं करेंति।
वीसइमं करेंति, सोलसमं करेंति।
अट्ठारसमं करेंति, चोद्दसमं करेंति।
सोलसमं करेंति, दुवालसमं करेंति।
चोद्दसमं करेंति, दसमं करेंति।
दुवालसमं करेंति, अट्ठमं करेंति।
दसमं करेंति, छट्ठं करेंति।
अट्ठमं करेंति, चउत्थं करेंति।
छट्ठं करेंति, चउत्थं करेंति, करेत्ता सव्वत्थ सव्वकामगुणिएणं पारेंति।

एवं खलु एसा खुड्डागसीहनिक्कीलियस्स तवोकम्मस्स पढमा परिवाडी छहिं मासेहिं सत्तहि य अहोरत्तेहिं अहासुत्तं जाव आराहिया भवइ।।

२१. तयाणंतरं दोच्चाए परिवाडीए चउत्थं करेंति, नवरं--विगइवज्जं पारेंति।।

२२. एवं तच्चा वि परिवाडी, नवरं--पारणए अलेवाडं पारेंति।।

२३. एवं चउत्था वि परिवाडी, नवरं--पारणए आयंबिलेण पारेंति।।

२४. तए णं ते महब्बलपामोक्खा सत्त अणगारा खुड्डागं सीहनिक्कीलियं

महाबल आदि का विविध तपश्चरण-पद

१९. महाबल प्रमुख सात अनगार मासिक भिक्षु-प्रतिमा को स्वीकार कर विहार करते। यावत् एक रात्रि की भिक्षु प्रतिमा स्वीकार कर विहार करते।

२०. उसके बाद वे महाबल प्रमुख सात अनगार लघुसिंहनिष्क्रीडित[२] नाम का तपः कर्म स्वीकार कर विहार करते, जैसे--

चतुर्थ भक्त करते, सर्वकाम गुणित (अभिलषणीय रसोपेत आहार से पारणा करते। (इस प्रकार मध्य में एक-एक दिन के भोजन के अन्तराल से वे)

षष्ठ भक्त करते,	चतुर्थ भक्त करते।
अष्टम भक्त करते,	षष्ठ भक्त करते।
दशम भक्त करते,	अष्टम भक्त करते।
द्वादश भक्त करते,	दशम भक्त करते।
चर्तुदश भक्त करते,	द्वादश भक्त करते।
षोडश भक्त करते,	चतुर्दश भक्त करते।
अष्टादश भक्त करते,	षोडश भक्त करते।
विंशति भक्त करते,	अष्टादश भक्त करते।
विंशति भक्त करते,	षोडश भक्त करते।
अष्टादश भक्त करते,	चतुर्दश भक्त करते।
षोडश भक्त करते,	द्वादश भक्त करते।
चतुर्दश भक्त करते,	दशम भक्त करते।
द्वादश भक्त करते,	अष्टम भक्त करते।
दशम भक्त करते,	षष्ठ भक्त करते।
अष्टम भक्त करते,	चतुर्थ भक्त करते।
षष्ठ भक्त करते,	चतुर्थ भक्त करते।

करके सर्वत्र सर्वकाम गुणित आहार से पारणा करते।

इस प्रकार यह लघुसिंहनिष्क्रीड़ित तपः कर्म की प्रथम परिपाटी छः मास और सात अहोरात्र से सूत्रानुसार.................... यावत् आराधित होती है।

२१. तदन्तर वे दूसरी परिपाटी में चतुर्थ भक्त करते। विशेष--विकृति वर्जित आहार से पारणा करते।

२२. इस प्रकार तीसरी परिपाटी भी करते। विशेष--पारणा में लेप रहित आहार से पारणा करते।

२३. इस प्रकार चौथी परिपाटी भी करते। विशेष--पारणा में आचाम्ल से पारणा करते।

२४. वे महाबल प्रमुख सातों अनगार लघुसिंहनिष्क्रीड़ित तपःकर्म की दो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तवोकम्मं दोहिं संवच्छरेहिं अट्ठवीसाए अहोरत्तेहिं अहासुत्तं जाव आणाए आराहेत्ता जेणेव थेरे भगवंते तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--इच्छामो णं भंते! महालयं सीहनिक्कीलियं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए। तहेव जहा खुड्डागं, नवरं--चोत्तीसइमाओ नियत्तइ। एगाए परिवाडीए कालो एगेणं संवच्छरेणं छहिं मासेहिं अट्ठारसहि य अहोरत्तेहिं समप्पेइ। सव्वंपि (महालयं?) सीहनिक्कीलियं छहिं वासेहिं दोहिं मासेहिं बारसहि य अहोरत्तेहिं समप्पेइ।।

वर्ष अठावीस अहोरात्र तक सूत्रानुसार यावत् आज्ञा से आराधना कर जहां स्थविर[१] भगवान थे, वहां आए। वहां आकर स्थविर भगवान को वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर वे इस प्रकार बोले--भन्ते! हम चाहते हैं महासिंहनिष्क्रीड़ित तपःकर्म स्वीकार कर विहार करें।

वह वैसे ही होता है जैसे लघु। विशेष--उसका निवर्तन चौतीसवें भक्त से होता है। एक परिपाटी का काल एक वर्ष, छः मास और अठारह अहोरात्र से सम्पन्न होता है। सम्पूर्ण (महा?) सिंहनिष्क्रीड़ित तप छह वर्ष, दो मास और बारह अहोरात्र से सम्पन्न होता है।

२५. तए णं ते महब्बलपामोक्खा सत्त अणगारा महालयं सीहनिक्कीलियं अहासुत्तं जाव आराहित्ता जेणेव थेरे भगवंते तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता बहूणि चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।।

२५. तब महाबल प्रमुख वे सातों अनगार महासिंहनिष्क्रीड़ित तपःकर्म की सूत्रानुसार यावत् आराधना कर जहां स्थविर भगवान थे, वहां आए। वहां आकर स्थविर भगवान को वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार कर अनेक चतुर्थ-भक्त, षष्ठ-भक्त, अष्टम-भक्त, दशम-भक्त, द्वादश-भक्त, मासिक और पाक्षिक तपः कर्म से स्वयं को भावित करते हुए विहार करने लगे।

समाहिमरण-पदं

२६. तए णं ते महब्बलपामोक्खा सत्त अणगारा तेणं उरालेणं तवोकम्मेणं सुक्का भुक्खा निम्मंसा किडिकिडियाभूया अट्ठिचम्मावणद्धा किसा धमणिसंतया जाया यावि होत्था। जहा खंदओ* नवरं--थेरे आपुच्छित्ता चारुपव्वयं सणियं-सणियं दुरुहंति जाव दोमासियाए संलेहणाए अप्पाणं झोसेत्ता, सवीसं भत्तसयं अणसणाए छेएत्ता, चतुरासीइं वाससयसहस्साइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता, चुलसीइं पुव्वसयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता जयंते विमाणे देवत्ताए उववण्णा। तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। तत्थ णं महब्बलवज्जाणं छण्हं देवाणं देसूणाइं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई। महब्बलस्स देवस्स य पडिपुण्णाइं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई।।

समाधिमरण-पद

२६. उस उदार तपःकर्म से महाबल प्रमुख सातों अनगार सूखे, रूखे और मांस रहित हो गये। उठने-बैठने में कट-कट शब्द होने लगा। वे चर्म मढ़ा हड्डियों का ढांचा भर और कृश होने से मात्र धमनियों के जाल जैसे रह गये, जैसे--स्कन्दक।* विशेष-स्थविरों से पूछकर धीरे-धीरे चारु-पर्वत पर चढ़े यावत् दो महीने की संलेखना की आराधना में स्वयं को समर्पित कर अनशन काल में एक-सौ बीस भक्तों का परित्याग कर चौरासी लाख वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालन कर चौरासी लाख पूर्व की परिपूर्ण आयु को भोग, जयन्त विमान में देवरूप में उत्पन्न हुए। वहां कुछ देवों की स्थिति बत्तीस सागरोपम बतलाई गयी है। उनमें महाबल के अतिरिक्त छह देवों की स्थिति बत्तीस सागरोपम से कुछ कम है। महाबल देव की स्थिति परिपूर्ण बत्तीस सागरोपम है।

पच्चायाति-पदं

२७. तए णं ते महब्बलवज्जा छप्पि देवा जयंताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठितिक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे विसुद्धपिइमाइवंसेसु रायकुलेसु पत्तेयं-पत्तेयं कुमारत्ताए पच्चायाया, तं जहा--

पडिबुद्धि इक्खागराया,

चंदच्छाए अंगराया,

प्रत्यागमन-पद

२७. महाबल के अतिरिक्त वे छह देव आयु-क्षय, भव-क्षय और स्थिति-क्षय के अनन्तर जयन्त देवलोक से च्युत हो पुनः इसी जम्बूद्वीप द्वीप के भारतवर्ष में, विशुद्ध पितृ-मातृ-वंश वाले राजकुलों में एक-एक कुमार के रूप में जन्मे, जैसे--

इक्ष्वाकुराज प्रतिबुद्धि।

अंगराज चन्द्रच्छाय।

---

* भगवती २/१६४-६८।

ज्ञाताधर्मकथा १/१/२०३-२०६ मेघकुमार का वर्णन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संखे कासिराया,
रुप्पि कुणालाहिवई,
अदीणसत्तू कुरुराया,
जियसत्तू पंचालाहिवई।।

काशीराज शंख।
कुणाला का अधिपति रुक्मी।
कुरुराज अदीनशत्रु।
पाञ्चाल का अधिपति जितशत्रु।

२८. तए णं से महब्बले देवे तिहिं नाणेहिं समग्गे उच्चाट्ठाणगएसुं गहेसुं, सोमासु दिसासु वितिमिरासु विसुद्धासु, जइएसु सउणेसु पयाहिणाणुकूलंसि भूमिसप्पिंसि मारुयंसि पवायंसि, निप्फण्ण-सस्स-मेइणीयंसि कालंसि पमुइय-पक्कीलिएसु जणवएसु अद्धरत्तकाल-समयंसि अस्सिणीनक्खत्तेणं जोगमुवागएणं जे से हेमंताणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे, तस्स णं फग्गुणसुद्धस्स चउत्थीपक्खेणं जयंताओ विमाणाओ बत्तीसं सागरोवमठिइयाओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे मिहिलाए रायहाणीए कुंभस्स रण्णो पभावतीए देवीए कुच्छिंसि आहारवक्कंतीए भववक्कंतीए सरीरवक्कंतीए गब्भत्ताए वक्कंते।।

२८. उस समय ग्रह उच्चस्थानीय थे। दिशाएं सौम्य, तिमिररहित[४] और निर्मल थी। शकुन विजय सूचक थे।[५] दक्षिणावर्त्त और अनुकूल हवाएं[६] भूमि का स्पर्श करती हुई बह रही थी। धरती पर पकी हुई फसलें लहलहा रही थी। जनपद प्रमुदित और नाना प्रकार की क्रीड़ाओं में निरत थे। अर्धरात्रि का समय था, अश्विनी नक्षत्र के साथ चन्द्र का योग था। हेमन्त का चौथा महिना, आठवां पक्ष, फाल्गुन शुक्ल पक्ष और चतुर्थी तिथि थी। उस समय वह महाबल देव आहार-अवक्रांति, भव-अवक्रांति और शरीर-अवक्रांति[७] के अनन्तर बत्तीस सागरोपम स्थिति वाले जयन्त विमान से च्युत हो, इसी जम्बूद्वीप द्वीप भारतवर्ष और मिथिला राजधानी में कुम्भराजा की प्रभावती देवी की कुक्षि में तीन ज्ञान के साथ गर्भ रूप में उत्पन्न हुआ।

२९. जं रयणिं च णं महब्बले देवे पभावतीए देवीए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते, तं रयणिं च णं सा पभावती देवी चोद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा। भत्तार-कहणं। सुमिणपाढगपुच्छा जाव विपुलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ।।

२९. जिस रात्रि में महाबल देव प्रभावती देवी की कुक्षि में गर्भ रूप में उत्पन्न हुआ, उस रात्रि में प्रभावती देवी चौदह महास्वप्न देखकर प्रतिबुद्ध हुई। उसने पति से कहा। स्वप्न पाठकों से पूछा--यावत् वह विपुल भोगार्ह भोगों को भोगती हुई विहार करने लगी।

३०. तए णं तीसे पभावईए देवीए तिण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं इमेयारूवे डोहले पाउब्भूए--धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ जाओ णं जल-थलय-भासरप्पभूएणं दसद्धवण्णेणं मल्लेणं अत्थुय-पच्चत्थुयंसि सयणिज्जंसि सण्णिसण्णाओ निवण्णाओ य विहरंति, एगं च महं सिरिदामगंडं पाडल-मल्लिय-चंपग-असोग-पुन्नाग- नाग- मरुयग-दमणग-अणोज्जकोज्जय-पउरं परमसुहफासं दरिसणिज्जं महया गंधद्धणिं मुयंतं अग्घायमाणीओ डोहलं विणेंति।।

३०. पूरे तीन माह बीत जाने पर प्रभावती देवी को यह विशेष प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ--धन्य हैं वे माताएं जो उस प्रकार के शयनीय में बैठी हुई और सोई हुई विहरण करती हैं जिस पर जल, स्थल में खिले हुए प्रभूत पंचरंगे पुष्प बिछे हुए हैं। वे पाटल, मोगरा (मल्लिका) चम्पक, अशोक, पुन्नाग, नाग, मरुवा, दमनक, निर्दोष-कुज्जक आदि पुष्प समूह से[८] निर्मित, परम-सुखद स्पर्श वाले, दर्शनीय और घ्राण को महान तृप्ति देने वाले गन्धमय परमाणुओं को बिखेरती हुई एक महान श्री दामकाण्ड नाम की माला को[९] सूंघती हुई अपना दोहद पूरा करती हैं।

३१. तए णं तीसे पभावईए इमं एयारूवं डोहलं पाउब्भूयं पासित्ता अहासण्णिहिया वाणमंतरा देवा खिप्पामेव जल-थलय-भासरप्पभूयं दसद्धवण्णं मल्लं कुंभग्गसो य भारग्गसो य कुंभस्स रण्णो भवणंसि साहरंति, एगं च णं महं सिरिदामगंडं जाव गंधद्धणिं मुयंतं उवणेंति।।

३१. प्रभावती देवी को इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ है--यह जानकर आस-पास के वानव्यंतर देव तत्काल जल और स्थल में खिलने वाले प्रभूत कुम्भ परिमित और भार परिमित पंचरंगे पुष्प समूह कुम्भ राजा के घर में लाए और यावत् घ्राण को महान तृप्ति देने वाले गंधमय परमाणुओं को बिखेरती हुई एक महान श्रीदामकाण्ड नाम की माला भी लाए।

३२. तए णं सा पभावई देवी जल-थलय-भासरप्पभूएणं दसद्धवण्णेणं मल्लेणं दोहलं विणेइ।।

३२. प्रभावती देवी ने जल और स्थल में खिलने वाले प्रभूत पंचरंगे पुष्प समूह से अपना दोहद पूरा किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३. तए णं सा पभावई देवी पसत्थदोहला सम्माणियदोहला विणीयदोहला संपुण्णदोहला संपत्तदोहला विउलाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं पच्चणुभवमाणी विहरइ।।

३३. प्रभावती देवी ने दोहद को प्रशस्त किया। उसका सम्मान किया, उसका विनयन किया, उसे पूरा किया और संप्राप्त किया। वह मनुष्य संबंधी विपुल भोगार्ह भोगों का अनुभव करती हुई विहार करने लगी।

३४. तए णं सा पभावई देवी नवण्हं मासाणं (बहुपडिपुण्णाणं?) अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं (वीइक्कंताणं?) जे से हेमंताणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे मग्गसिरसुद्धे, तस्स णं एक्कारसीए पुव्वरत्तावरत्त-कालसमयंसि अस्सिणीनक्खत्तेणं (जोगमुवागएणं?) उच्चट्ठाणगएसुं गहेसुं जाव पमुइय-पक्कीलिएसु जणवएसु आरोयारोयं एगूणवीसइमं तित्थयरं पयाया।।

३४. पूरे नौ मास और साढ़े सात दिन रात बीतने पर हेमन्त ऋतु के प्रथम मास दूसरा पक्ष मृगसर शुक्ल एकादशी तिथि को मध्यरात्रि के समय जब अश्विनी नक्षत्र के साथ (चन्द्र का योग) था, ग्रह उच्चस्थानीय थे, यावत् जनपद प्रमुदित और नाना प्रकार की क्रीड़ाओं में निरत थे, उस समय स्वस्थ प्रभावती देवी ने स्वस्थ उन्नीसवें तीर्थंकर को जन्म दिया।

३५. तेणं कालेणं तेणं समएणं अहेलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीम-हयरियाओ जहा जंबुद्दीवपण्णत्तीए जम्मणुस्सवं, नवरं मिहिलाए कुंभस्स पभावईए अभिलाओ संजोएयव्वो जाव नंदीसरवरदीवे महिमा।।

३५. उस काल और उस समय अधोलोक निवासिनी आठ प्रधान दिशा कुमारियों ने जन्मोत्सव किया, जैसे--जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में जन्मोत्सव का वर्णन है। विशेष इतना है--यथास्थान मिथिला, कुम्भ और प्रभावती के नाम संयोजनीय हैं--यावत् नंदीश्वर द्वीप में महिमा।

३६. तया णं कुंभए राया बहूहिं भवणवइ-वाणमंतर-जोइस-वेमाणिएहिं देवेहिं तित्थयर-जम्मणाभिसेयमहिमाए कयाए समाणीए पच्चूसकालसमयंसि नगरगुत्तिए सद्दावेइ जायकम्मं जाव नामकरणं--जम्हा णं अम्हं इमीसे दारियाए माऊए मल्लसयणिज्जंसि डोहले विणीए, तं होउ णं (अम्हं दारिया?) नामेणं मल्ली।।

३६. तब बहुत से भवनपति, वानव्यन्तर, ज्योतिषिक और वैमानिक देवों द्वारा तीर्थंकर की जन्माभिषेक महिमा सम्पन्न हो जाने पर राजा कुम्भ ने प्रभातकाल में नगर-आरक्षक-दल को बुलाया। जातकर्म यावत् नामकरण संस्कार सम्पन्न किया, जैसे हमारी इस बालिका की माँ का माल्यशयनीय का दोहद पूरा हुआ है, अतः (हमारी इस बालिका) इसका नाम 'मल्ली' हो।

३७. तए णं सा मल्ली पंचधाईपरिक्खित्ता जाव सुहंसुहेणं परिवड्ढई।।

३७. वह मल्ली पांच धाय-माताओं से घिरी हुई यावत् सुखपूर्वक बढ़ने लगी।

३८. तए णं सा मल्ली विदेहरायवरकन्ना उम्मुक्कबालभावा विण्णय-परिणयमेत्ता जोव्वणगमणुपत्ता रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य अईव-अईव उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा जाया यावि होत्था।।

३८. विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली शैशव को लांघकर विज्ञ और कला की पारगामी बनकर यौवन में प्रविष्ट हुई। वह रूप, यौवन और लावण्य से अतिशय उत्कृष्ट एवं उत्कृष्ट शरीर वाली हुई।

३९. तए णं सा मल्ली देसूणवाससयजाया ते छप्पि य रायाणो विउलेणं ओहिणा आभोएमाणी-आभोएमाणी विहरइ, तं जहा--पडिबुद्धिं इक्खागरायं, चंदच्छायं अंगरायं, संखं कासिरायं, रुप्पिं कुणालाहिवइं, अदीणसत्तुं कुरुरायं, जियसत्तुं पंचालाहिवइं।।

३९. वह मल्ली कुछ कम सौ वर्ष की हुई तब अपने विपुल अवधिज्ञान से इक्ष्वाकुराज प्रतिबुद्धि, अंगराज चन्द्रच्छाय, काशीराज शंख, कुणाला के अधिपति रुक्मी, कुरुराज अदीनशत्रु और पांचाल देश के अधिपति जितशत्रु इन छहों राजाओं के विषय में जानने लगी।

मल्लिस्स मोहणघर-निम्माण-पदं

४०. तए णं सा मल्ली कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--तुब्भे णं देवाणुप्पिया! असोगवणियाए एगं महं मोहणघरं करेह--अणेगखंभसयसण्णिविट्ठं। तस्स णं मोहणघरस्स बहुमज्झदेसभाए छ गब्भघरए करेह। तेसि णं गब्भघरगाणं बहुमज्झदेसभाए जालघरयं करेह। तस्स णं जालघरयस्स

मल्ली के रतिघर का निर्माण-पद

४०. मल्ली ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--'देवानुप्रियो ! तुम अशोक वनिका में एक विशाल रतिघर का निर्माण कराओ, जो अनेक शत खम्भों पर सन्निविष्ट हो। उस रतिघर के ठीक मध्यभाग में छह तलघर बनाओ। उन छहों तलघरों के ठीक मध्यभाग में जालक-गृह बनाओ। उस जालक-गृह के ठीक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुमज्झदेसभाए मणिपेढियं करेह। एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। तेवि तहेव पच्चप्पिणंति।।

मध्यभाग में मणि-निर्मित पीठिका बनाओ। इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो। उन्होंने भी वैसे ही प्रत्यर्पित किया।

४१. तए णं सा मल्ली मणिपेढियाए उवरिं अप्पणो सरिसियं सरित्तयं सरिव्वयं सरिस-लावण्ण-रूव-जोव्वण-गुणोववेयं कणगामइं मत्थयच्छिड्डं पउमुप्पल-पिहाणं पडिमं करेइ, करेत्ता जं विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं आहारेइ, तओ मणुण्णाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ कल्लाकल्लिं एगमेगं पिंडं गहाय तीसे कणगामईए मत्थयछिड्डाए पउमुप्पल-पिहाणाए पडिमाए मत्थयंसि पक्खिवमाणी- पक्खिवमाणी विहरइ।।

४१. मल्ली ने उस मणिपीठिका पर स्वयं के सदृश, समान त्वचा, समान वय, समान लावण्य, समान रूप, समान यौवन और गुणसम्पन्न एक स्वर्णमयी प्रतिमा स्थापित की, जिसके मस्तक में छेद और पद्म-कमल का ढ़क्कन था। मल्ली जिस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का आहार करती, उस मनोज्ञ अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य में से प्रतिदिन प्रातःकाल एक-एक ग्रास मस्तक में छेद और पद्म-कमल के ढ़क्कन वाली उस स्वर्णमयी प्रतिमा के मस्तक में डाल देती।

४२. तए णं तीसे कणगामईए मत्थयछिड्डाए पउमुप्पल-पिहाणाए पडिमाए एगमेगंसि पिंडे पक्खिप्पमाणे-पक्खिप्पमाणे तओ गंधे पाउब्भवेइ, से जहाणामए--अहिमडे इ वा गोमडे इ वा सुणहमडे इ वा मज्जारमडे इ वा मणुस्समडे इ वा महिसमडे इ वा मूसगमडे इ वा आसमडे इ वा हत्थिमडे इ वा सीहमडे इ वा वग्घमडे इ वा विगमडे इ वा दीविगमडे इ वा। मय-कुहिय-विणट्ठ-दुरभिवावण्ण-दुब्भिगंधे किमिजालाउलसंसत्ते असुइ-विलीण-विगय-बीभत्सदरिसणिज्जे भवेयारूवे सिया?

नो इणट्ठे समट्ठे। एत्तो अणिट्ठतराए चेव अकंततराए चेव अप्पियतराए चेव अमणुण्णतराए चेव अमणामतराए चेव।।

४२. मस्तक में छेद और पद्म-कमल के ढ़क्कन वाली उस स्वर्णमयी प्रतिमा में प्रतिदिन एक-एक ग्रास डालने के कारण ऐसी गन्ध फूटने लगी, मानो कोई मृत सांप, मृत बैल, मृत कुत्ता, मृत बिलाव, मृत मनुष्य, मृत भैंस, मृत चूहा, मृत घोड़ा, मृत हाथी, मृत सिंह, मृत बाघ, मृत भेड़िया अथवा मृत गेंडा हो। जैसे कोई मृत, कुथित, विनष्ट[१०], दुर्गन्धिपूर्ण, तीव्रतम दुर्गन्धयुक्त शृगाल आदि के खा जाने से विरूप तथा कृमि-समूह से आकीर्ण और संसक्त हो जाने से अशुचि, घृणाजनक, विकृत और देखने में बीभत्स[११] दिखाई देता है। क्या वह गन्ध ऐसी ही थी?

यह अर्थ समर्थ नहीं है। वह गन्ध उससे भी अनिष्टतर, अकमनीयतर, अप्रियतर, अमनोज्ञतर और अमनोगततर लगती थी।

पडिबुद्धिराय-पदं

प्रतिबुद्धिराज-पद

४३. तेणं कालेणं तेणं समएणं कोसला नामं जणवए। तत्थ णं सागेए नामं नयरे।।

४३. उस काल और उस समय कौशल नाम का जनपद था। उसमें साकेत नाम का नगर था।

४४. तस्स णं उत्तपुरत्थिमे दिसीभाए, एत्थ णं महेगे नागघरए होत्था--दिव्वे सच्चे सच्चोवाए सण्णिहिय-पाडिहेरे।।

४४. उसके ईशानकोण में एक विशाल नागगृह था। वह दिव्य सत्य, सत्य अवपात वाला और सन्निहित प्रातिहार्य (किसी प्रहरी व्यन्तरदेव द्वारा अधिष्ठित) था।

४५. तत्थ णं सागेए नयरे पडिबुद्धी नामं इक्खागराया परिवसइ। पउमावई देवी। सुबुद्धि अमच्चे साम-दंड-भेय-उवप्पयाण-नीति-सुप्पउत्त-नय-विहण्णू विहरइ।।

४५. उस साकेत नगर में इक्ष्वाकुवंशीय प्रतिबुद्धि नाम का राजा निवास करता था। उसके पद्मावती देवी-थी और सुबुद्धि नाम का अमात्य था, वह साम, दण्ड, भेद, उपप्रदान नीतियों के सम्यक् प्रयोग और न्याय की विद्याओं का ज्ञाता था।

४६. तए णं पउमावईए देवीए अण्णया कयाइ नागजण्णए यावि होत्था।।

४६. किसी समय पद्मावती देवी के यहां नागपूजा का प्रसंग उपस्थित हुआ।

४७. तए णं सा पउमावई देवी नागजण्णमुवट्ठियं जाणित्ता जेणेव पडिबुद्धी राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं

४७. नागपूजा को उपस्थित जानकर वह पद्मावती देवी, जहां राजा प्रतिबुद्धि था, वहां आयी। वहां आकर उसने दोनों हथेलियों से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता एवं वयासी--एवं खलु सामी! मम कल्लं नागजण्णए भविस्सइ। तं इच्छामि णं सामी! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी नागजण्णयं गमित्तए। तुब्भे वि णं सामी! मम नागजण्णयंसि समोसरह।।

निष्पन्न संपुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर जय-विजय की ध्वनि से राजा का वर्धापन किया। वर्धापन कर इस प्रकार कहा--स्वामिन्! कल मेरे नागपूजा होगी, इसलिए स्वामिन्! मैं चाहती हूं तुमसे अनुज्ञा प्राप्त कर नागपूजा में जाऊं! स्वामिन्! तुम भी मेरी नागपूजा में चलो।

४८. तए णं पडिबुद्धी पउमावईए एयमट्ठं पडिसुणेइ।।

४८. प्रतिबुद्धि ने पद्मावती के इस अर्थ को स्वीकार किया।

४९. तए णं पउमावई पडिबुद्धिणा रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी हट्ठतुट्ठा कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! मम कल्लं नागजण्णं भविस्सइ, तं तुब्भे मालागारे सद्दावेह, सद्दावेत्ता एवं वदाह--एवं खलु पउमावईए देवीए कल्लं नागजण्णए भविस्सइ, तं तुब्भे णं देवाणुप्पिया! जल-थलय-भासरप्पभूयं दसद्धवण्णं मल्लं नागघरयंसि साहरह, एगं च णं महं सिरिदामगंडं उवणेह।

तए णं जल-थलय-भासरप्पभूएणं दसद्धवण्णेणं मल्लेणं नाणाविह-भत्ति-सुविरइयं हंस-मिय-मयूर-कोंच-सारस-चक्कवाय-मयणसाल-कोइल-कुलोववेयं ईहामिय-उसभ-तुरय-नर-मगर-विहग-बालग-किंनर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्तं महग्घं महरिहं विउलं पुप्फमंडवं विरएह। तस्स णं बहुमज्झदेसभाए एगं महं सिरिदामगंडं जाव गंधद्धणिं मुयंतं उल्लोयंसि ओलएह, पउमावइं देविं पडिवालेमाणा चिट्ठह।।

४९. प्रतिबुद्धि राजा से अनुज्ञा प्राप्त कर हृष्ट तुष्ट हुई, पद्मावती देवी ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! कल मेरे नाग पूजा होगी, अत: तुम माली को बुलाओ। उसे बुलाकर ऐसा कहो--कल पद्मावती देवी के नागपूजा होगी। अत: देवानुप्रिय! तुम जल और स्थल में खिलने वाले प्रभूत पंचरंगे पुष्प समूह को नागघर में लाओ और एक विशाल श्री दामकाण्ड नाम की माला भी उपस्थित करो।

जल और स्थल में खिलने वाले प्रभूत पंचरंगे पुष्प समूह की नाना भांतों से सुविरचित, हंस, मृग, मयूर, क्रौंच, सारस, चक्रवाक, मदन-सारिका और कोकिल कुल से युक्त, भेड़िये, बैल, घोड़े, मनुष्य, मगरमच्छ, पक्षी, सर्प, किन्नर, मृग, अष्टापद, चमरीगाय, हाथी तथा अशोक आदि की लता और पद्मलता--इनके भांत चित्रों (विविध भांत के पंक्तिबद्ध चित्रों) से युक्त महामूल्य और महान अर्हता वाले विपुल पुष्प-मंडप की रचना करो। उस पुष्प मंडप के ठीक मध्य भाग में घ्राण को महान तृप्ति देने वाले गन्धमय परमाणुओं को बिखेरती हुई एक महान श्रीदामकाण्ड नाम की माला को चन्दोवे के नीचे लटकाओ और वहां पद्मावती देवी की प्रतीक्षा करो।

५०. तए णं ते कोडुंबिया जाव पउमावतिं देविं पडिवालेमाणा चिट्ठंति।।

५०. उन कौटुम्बिक पुरुषों ने यावत् पद्मावती देवी की प्रतीक्षा की।

५१. तए णं सा पउमावई देवी कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते कोडुंबिए पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! सागेयं नयरं सब्भिंतरबाहिरियं आसिय-सम्मज्जिओवलित्तं जाव गंधवट्टिभूयं करेह, कारवेह य, एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। ते वि तहेव पच्चप्पिणंति।।

५१. उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर उस पद्मावती देवी ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! शीघ्र ही साकेत नगर के बाहर और भीतर जल का छिड़काव कर, बुहार-झाड़, गोबर लीप, साफ-सुथरा कराओ यावत् उसे सुगन्धित गन्धवर्तिका जैसा करो और कराओ। इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो। उन्होंने भी वैसे ही प्रत्यर्पित किया।

५२. तए णं सा पउमावई देवी दोच्चंपि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! लहुकरणजुत्तं जाव धम्मियं जाणप्पवरं उवट्ठवेह। ते वि तहेव उवट्ठवेंति।।

५२. पद्मावती देवी ने दूसरी बार भी कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! गतिक्रिया की दक्षता से युक्त यावत् धार्मिक यान प्रवर को तैयार कर शीघ्र उपस्थित करो। उन्होंने भी वैसे ही उपस्थित किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५३. तए णं सा पउमावई देवी अंतो अंतेउरंसि ण्हाया जाव धम्मियं जाणं दुरूढा ।।

५३. पद्मावती देवी ने अपने अन्त:पुर के भीतर स्नान किया यावत् धार्मिक यान पर आरूढ़ हुई।

५४. तए णं सा पउमावई देवी नियग-परियाल-संपरिवुडा सागेयं नयरं मज्झंमज्झेणं निज्जाइ, जेणेव पोक्खरणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोक्खरणिं ओगाहति, ओगाहित्ता जलमज्जणं करेइ जाव परमसुइभूया उल्लपडसाडया जाइं तत्थ उप्पलाइं जाव ताइं गेण्हइ, जेणेव नागघरए तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।।

५४. पद्मावती देवी अपने परिकर से संपरिवृत हो साकेत नगर के बीचोंबीच से गुजरती हुई निकली। जहां पुष्करिणी थी, वहां आयी। आकर पुष्करिणी में अवगाहन किया। अवगाहन कर जल में मज्जन किया यावत् परम शुचिभूत होकर गीले कपड़े पहने ही वहां जो उत्पल यावत् सहस्रपत्र थे, उन्हें ग्रहण किया और जहां नागघर था उधर जाने का संकल्प किया।

५५. तए णं पउमावईए देवीए दासचेडीओ बहूओ पुप्फपडलग-हत्थगयाओ धूवकडच्छुय-हत्थगयाओ पिट्ठओ समणुगच्छंति ।।

५५. पद्मावती देवी की बहुत सी दासियां हाथों में पुष्प-पटल और धूपदानियां लिए हुए उसके पीछे-पीछे चल रही थी।

५६. तए णं पउमावई देवी सव्विड्ढीए जेणेव नागघरए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता नागघरं अणुप्पविसइ, लोमहत्थगं परामुसइ जाव धूवं डहइ, पडिबुद्धिं पडिवालेमाणी-पडिवालेमाणी चिट्ठइ ।।

५६. पद्मावती देवी अपनी सम्पूर्ण ऋद्धि के साथ जहां नागघर था, वहां आयी। वहां आकर नागघर में प्रवेश किया। प्रमार्जनी को हाथों में लिया यावत् धूप खेया और प्रतिबुद्धि की प्रतीक्षा करने लगी।

५७. तए णं से पडिबुद्धी ण्हाए हत्थिखंधवरगए सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं वीइज्जमाणे हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे महया भड-चडगर-रह-पहकर-विंदपरिक्खित्ते सागेयं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव नागघरए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिखंधाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता आलोए पणामं करेइ, करेत्ता पुप्फमंडवं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता पासइ तं एगं महं सिरिदामगंडं ।।

५७. प्रतिबुद्धि राजा ने स्नान कर प्रवर हस्तिस्कन्ध पर आरूढ़ हो कटसरैया के फूलों से बनी मालाओं से युक्त छत्र धारण किया और प्रवर श्वेत चामरों से वीजित होता हुआ वह अश्व, गज, रथ और प्रवर पदाति योद्धाओं से कलित चतुरंगिणी सेना से संपरिवृत हो, महान सुभटों की विभिन्न टुकड़ियों और पथदर्शक वृन्द से घिरा हुआ साकेत नगर के बीचोंबीच से गुजरता हुआ निकला। जहां नागघर था, वहां आया। वहां आकर हस्ति-स्कन्ध से उतरा। उतर कर नाग प्रतिमा को देखते ही प्रणाम किया। प्रणाम कर पुष्प-मंडप में प्रवेश किया। प्रवेश कर उसने एक महान श्रीदामकाण्ड नाम की माला को देखा।

५८. तए णं पडिबुद्धी तं सिरिदामगंडं सुचिरं कालं निरिक्खइ। तंसि सिरिदामगंडंसि जायविम्हए सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी--तुमं देवाणुप्पिया! मम दोच्चेणं बहूणि गामागर जाव सण्णिवेसाइं आहिंडसि, बहूण य राईसर जाव सत्थवाहपभिईणं गिहाइं अणुप्पविससि, तं अत्थि णं तुमे कहिंचि एरिसए सिरिदामगंडे दिट्ठपुव्वे, जारिसए णं इमे पउमावईए देवीए सिरिदामगंडे?

५८. प्रतिबुद्धि ने उस श्रीदामकाण्ड माला को सुचिर काल तक निहारा। उस श्रीदामकाण्ड माला पर अनुरक्त होकर उसने अमात्य सुबुद्धि को इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! तुम हमारे दौत्य कर्म के लिए ग्राम, आकर यावत् सन्निवेशों में घूमते हो और बहुत से राजा, ईश्वर यावत् सार्थवाह आदि के घरों में प्रवेश करते हो, तो क्या तुमने ऐसी श्रीदामकाण्ड नाम की माला कहीं पहले देखी है, जैसी कि इस पद्मावती देवी की यह श्रीदामकाण्ड नाम की माला है।

५९. तए णं सुबुद्धी पडिबुद्धिं रायं एवं वयासी--एवं खलु सामी! अहं अण्णया कयाइ तुब्भं दोच्चेणं मिहिलं रायहाणिं गए। तत्थ णं मए कुंभयस्स रण्णो धूयाए पभावईए देवीए अत्तयाए मल्लीए संवच्छर-पडिलेहणगंसि दिव्वे सिरिदामगंडे दिट्ठपुव्वे। तस्स णं सिरिदामगंडस्स इमे पउमावईए देवीए सिरिदामगंडे सयसहस्सइमंपि कलं न अग्घइ ।।

५९. सुबुद्धि ने प्रतिबुद्धि राजा से इस प्रकार कहा--स्वामिन्! किसी समय मैं आपके दौत्य कर्म के लिए मिथिला राजधानी गया था। वहां मैंने कुम्भ राजा की, प्रभावती देवी की आत्मजा मल्ली के जन्म दिवस के दिन[१२] दिव्य श्रीदामकाण्ड माला देखी थी। पद्मावती देवी की यह श्रीदामकाण्ड माला उस श्रीदामकाण्ड माला के लक्षांश में भी नहीं आती।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

६०. तए णं पडिबुद्धी सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी--केरिसिया णं देवाणुप्पिया! मल्ली विदेहरायवरकन्ना, जस्स णं संवच्छर-पडिलेहणयंसि सिरिदामगंडस्स पउमावईए देवीए सिरिदामगंडे सयसहस्सइमंपि कलं न अग्घइ?

६०. प्रतिबुद्धि ने सुबुद्धि अमात्य से इस प्रकार कहा-देवानुप्रिय! कैसी है वह विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली, जिसके जन्म-दिन पर निर्मित श्रीदामकाण्ड माला के पद्मावती देवी की श्रीदामकाण्ड माला लक्षांश में भी नहीं आती?

६१. तए णं सुबुद्धी पडिबुद्धिं इक्खागरायं एवं वयासी--एवं खलु सामी! मल्ली विदेहरायवरकन्ना सुपइट्ठियकुम्मुण्णय-चारुचरणा जाव पडिरूवा।।

६१. सुबुद्धि ने इक्ष्वाकुराज प्रतिबुद्धि से इस प्रकार कहा--स्वामिन्! विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली सुप्रतिष्ठित, कुर्मोन्नत, सुन्दर चरणों वाली यावत् असाधारण है।

६२. तए णं पडिबुद्धी सुबुद्धिस्स अमच्चस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म सिरिदामगंड-जणियहासे दूयं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छाहि णं तुमं देवाणुप्पिया! मिहिलं रायहाणिं। तत्थ णं कुंभगस्स रण्णो धूयं पभावईए अत्तयं मल्लिं विदेहरायवरकन्नं मम भारियत्ताए वरेहि, जइ वि य णं सा सयं रज्जसुंका।।

६२. अमात्य सुबुद्धि के पास यह अर्थ सुनकर, अवधारण कर प्रतिबुद्धि ने उस श्रीदामकाण्ड माला पर प्रमुदित होकर[13] दूत को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! तुम मिथिला राजधानी जाओ। वहां राजा कुम्भ की पुत्री, प्रभावती की आत्मजा, विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली का मेरी भार्या के रूप में वरण करो। फिर उसका मूल्य राज्य जितना भी क्यों न हो।

६३. तए णं से दूए पडिबुद्धिणा रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता जेणेव सए गिहे जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घंटं आसरहं पडिकप्पावेइ, पडिकप्पावेत्ता दुरूढे हय-गय-रह-पवर-जोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे महया भड-चडगरेणं साएयाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव विदेहजणवए जेणेव मिहिला रायहाणी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।।

६३. राजा प्रतिबुद्धि के ऐसा कहने पर दूत ने हृष्ट तुष्ट होकर उसे स्वीकार किया। स्वीकार कर जहां अपना घर था, जहां चार घंटों वाला अश्व-रथ था, वहां आया। वहां आकर चार घंटो वाले अश्व-रथ को सजाया। सजाकर उस पर आरूढ़ हुआ। अश्व, गज, रथ और प्रवर पदाति योद्धाओं से कलित चतुरंगिणी सेना से संपरिवृत होकर महान सैनिकों की विभिन्न टुकड़ियों से घिरे हुए उसने साकेत नगर से निर्गमन किया। निर्गमन कर जहां विदेह जनपद था। जहां मिथिला राजधानी थी, उधर जाने का संकल्प किया।

चंदच्छाय-राय-पदं

चन्द्रच्छायराज-पद

६४. तेणं कालेणं तेणं समएणं अंगनामं जणवए होत्था। तत्थ णं चंपा नामं नयरी होत्था। तत्थ णं चंपाए नयरीए चंदच्छाए अंगराया होत्था। तत्थ णं चंपाए नयरीए अरहण्णगपामोक्खा बहवे संजत्ता-नावावाणियगा परिवसंति--अड्ढा जाव बहुजणस्स अपरिभूया।।

६४. उस काल और उस समय अंग नाम का जनपद था। उसमें 'चम्पा' नाम की नगरी थी। उस चम्पा नगरी में अंग देश का राजा चन्द्रच्छाय था। उस चम्पानगरी में अर्हन्नक प्रमुख सांयात्रिक पोतवणिक्[14] रहते थे। वे आढ्य यावत् बहुत व्यक्तियों से अपराजित थे।

६५. तए णं से अरहण्णगे समणोवासए यावि होत्था--अहिगयजीवाजीवे वण्णओ।।

६५. अर्हन्नक श्रमणोपासक भी था। वह जीव-अजीव को जानने वाला था--वर्णक।

६६. तए णं तेसिं अरहण्णगपामोक्खाणं संजत्ता-नावावाणियगाणं अण्णया कयाइ एगयओ सहियाणं इमेयारूवे मिहोकहा समुल्लावे समुप्पज्जित्था--सेयं खलु अम्हं गणिमं च धरिमं च मेज्जं च पारिच्छेज्जं च भंडगं गहाय लवणसमुद्दं पोयवहणेणं ओगाहित्तए त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता गणिमं च धरिमं च मेज्जं च पारिच्छेज्जं च भंडगं गेण्हंति, गेण्हित्ता

६६. किसी समय एकत्र सम्मिलित अर्हन्नक प्रमुख सांयात्रिक पोतवणिकों में परस्पर इस प्रकार वार्तालाप हुआ--हमारे लिए उचित है, हम गणनीय, धरणीय, मेय और परिच्छेद्य-क्रयाणक (किराने) को लेकर, पोतवहन से लवण समुद्र का अवगाहन करें। सबने परस्पर इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। स्वीकार कर गणनीय, धरणीय, मेय और परिच्छेद्य-कयाणक लिया। लेकर बहुत से छोटे-बड़े वाहन तैयार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सगडी-सागडयं सज्जेंति, सज्जेत्ता गणिमस्स धरिमस्स मेज्जस्स पारिच्छेज्जस्स य भंडगस्स सगडी-सागडियं भरेंति, भरेत्ता सोहणंसि तिहि-करण-नक्खत्त-मुहुत्तंसि विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेंति, उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणं भोएणवेलाए भुंजावेंति, भुंजावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणं आपुच्छंति, आपुच्छित्ता सगडी-सागडियं जोयंति, जोइत्ता चंपाए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता जेणेव गंभीरए पोयपट्टणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सगडीसागडियं मोयंति, पोयवहणं सज्जेंति, सज्जेत्ता गणिमस्स धरिमस्स मेज्जस्स पारिच्छेज्जस्स य भंडगस्स (पोयवहणं?) भरेंति, तंदुलाण य समियस्स य तेल्लस्स य घयस्स य गुलस्स य गोरसस्स य उदगस्स य भायणाण य ओसहाण य भेसज्जाण य तणस्स य कट्ठस्स य आवरणाण य पहरणाण य अण्णेसिं च बहूणं पोयवहणपाउग्गाणं दव्वाणं पोयवहणं भरेंति। सोहणंसि तिहि-करण-नक्खत्त-मुहुत्तंसि विउलं असणं पाणं खाइमं उवक्खडावेंति, उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं भोयणवेलाए भुंजावेंति, भुंजावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं आपुच्छंति, जेणेव पोयट्ठाणे तेणेव उवागच्छंति।।

किए। तैयार कर गणनीय, धरणीय, मेय और परिच्छेद्य-क्रयाणक से छोटे बड़े वाहनों को भरा। भरकर शोभन तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्त में विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवाया। तैयार करवाकर मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी और परिजनों को भोजन के समय भोजन करवाया। भोजन करवाकर मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनों से पूछा। पूछकर छोटे बड़े वाहन जोते। जोतकर चम्पा नगरी के ठीक बीचोंबीच से होकर निकले। निकलकर जहां गंभीरक बन्दरगाह था, वहां आए। आकर छोटे बड़े वाहनों को मुक्त किया। पोतवहन को सज्जित किया। सज्जित कर उसमें गणनीय, धरणीय, मेय और परिच्छेद्य रूप क्रयाणक को भरा। चावल, गेहूं का आटा, तेल, घी, गुड़, दूध, दही, पानी, बर्तन औषध, भेषज्य, तृणकाष्ठ, आवरण, प्रहरण तथा अन्य भी अनेक प्रकार के पोतवहन प्रायोग्य पदार्थों से जहाज को भरा। पुनः शोभन तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्त में विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य को तैयार करवाया। तैयार करवाकर मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी और परिजनों को भोजन के समय भोजन करवाया। भोजन करवाकर मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी और परिजनों से पूछा और जहां पोत स्थान था, वहां आए।

६७. तए णं तेसिं अरहण्णग-पामोक्खाणं बहूणं संजत्ता-नावा वाणियगाणं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणा ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं ओरालाहिं वग्गूहिं अभिनंदंता य अभिसंथुणमाणा य एवं वयासी--अज्ज! ताय! भाय! माउल! भाइणेज्ज! भगवया समुद्देणं अभिरक्खिज्जमाणा-अभिरक्खिज्जमाणा चिरं जीवह, भद्दं च भे, पुणरवि लद्धट्ठे कयकज्जे अणहसमग्गे नियगं घरं हव्वमागए पासामो त्ति कट्टु ताहिं सोमाहिं निद्धाहिं दीहाहिं सप्पिवासाहिं पप्पुयाहिं दिट्ठीहिं निरिक्खमाणा मुहुत्तमेत्तं संचिट्ठंति। तओ समाणिएसु पुप्फबलिकम्मेसु, दिन्नेसु सरस-रत्त-चंदण-दद्दर-पंचंगुलितलेसु, अणुक्खित्तंसि धूवंसि, पूइएसु समुद्दवाएसु, संसारियासु वलयासु, ऊसिएसु सिएसु झयग्गेसु, पडुप्पवाइएसु तूरेसु, जइएसु सव्वसउणेसु, गहिएसु रायवरसासणेसु महया उक्किट्ठ-सीहनाय-बोल-कलकलरवेणं पक्खुभियमहासमुद्द-रवभूयं पिव मेहणिं करेमाणा एगदिसिं एगाभिमुहा अरहण्णगपा-मोक्खा संजत्ता-नावावाणियगा नावाए दुरूढा।।

६७. उन अर्हन्नक प्रमुख अनेक सांयात्रिक पोतवणिकों के मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनों ने इष्ट, कमनीय, प्रिय, मनोज्ञ, मनोगत और उदार वाणी से उनका अभिनन्दन और गुणोत्कीर्तन करते हुए कहा--हे आर्य! हे तात! हे भ्रात! हे मातुल! हे भागिनेय! भगवान समुद्र के संरक्षण में तुम चिरजीवी हो। तुम्हारा भद्र हो। हम तुम्हें अपना प्रयोजन सिद्ध कर, कृतार्थ हो, निष्कलंक तथा ऐश्वर्य और परिवार से सम्पन्न हो, शीघ्र अपने घर आये हुए देखें--इस प्रकार उन सौम्य, स्नेहिल, दीर्घ, प्यासी और अश्रुपूरित आंखों से उन्हें निहारते हुए वे मुहूर्त भर तक वहीं खड़े रहे। पुष्प पूजा सम्पन्न की। पांचों अंगुलियों समेत हथेली से सरस चन्दन के छापे (हत्थक) लगाए। धूप खेया। समुद्री हवाओं का पूजन किया। पतवारें उचित स्थान में नियोजित की। श्वेत पताकाओं के ध्वजाग्र ऊपर उठे। वाद्य-कला निपुण व्यक्तियों द्वारा बाजे बजाए जाने लगे। विजय सूचक सभी शकुन हुए। प्रवर राज-शासन (पार-पत्र) मिल चुके तब एक दिशा एवं एक लक्ष्य के अभिमुख वे अर्हन्नक प्रमुख सांयात्रिक पोत वणिक् उत्कृष्ट सिंहनाद जनित कोलाहल पूर्ण शब्दों द्वारा प्रक्षुभित महासागर की भांति धरती को शब्दायमान करते हुए नौका पर आरूढ़ हुए।

६८. तओ पुस्समाणवो वक्कमुदाहु--हं भो! सव्वेसिमेव भे अत्थसिद्धी, उवट्ठियाइं कल्लाणाइं, पडिहयाइं सव्वपावाइं, जुत्ता पूसो, विजओ मुहुत्तो अयं देसकालो।।

६८. मंगल-पाठकों ने मंगल-वाक्य कहा--हे समुद्र यात्रियो! आप सभी के अर्थ सिद्ध हों (कामनाएं पूर्ण हों)। कल्याण उपस्थित हों। सर्व पाप (विघ्न) प्रतिहत हों। इस समय चन्द्र के साथ पुष्य नक्षत्र[१५] का योग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। विजय मुहूर्त है। अतः (आपके प्रस्थान के लिए) यह देशकाल सर्वथा उचित है।

६९. ताओ पुस्समाणवेणं वक्कमुदाहिए हट्ठतुट्ठा कण्णधार-कुच्छि-धार-गब्भिज्जसंजत्ता-नावावाणियगा वावारिंसु, तं नावं पुण्णुच्छंगं पुण्णमुहिं बंधणेहिंतो मुंचंति।।

६९. मंगल-पाठक द्वारा यह बात कहते ही हृष्ट तुष्ट हुए कर्णधार (नौ चालक) कुक्षिधार (नौका के पार्श्व भाग में नियुक्त पतवार चालक) कर्मचारी और सांयात्रिक पोतवणिक् अपने-अपने कार्यों में व्यापृत हो गए। जिसका मध्य भाग और अग्रिम भाग विक्रेय वस्तुओं और मांगलिक वस्तुओं से भरा हुआ था, उस नौका को चालकों ने बन्धन मुक्त किया।

७०. तए णं सा नावा विमुक्कबंधणा पवणबल-समाहया ऊसियसिया विततपक्खा इव गरुलजुवई गंगासलिल-तिक्ख-सोयवेगेहिं संखुब्भमाणी-संखुब्भमाणी उम्मी-तरंग-मालासहस्साइं समइच्छमाणी- समइच्छमाणी कइवएहिं अहोरत्तेहिं लवणसमुद्दं अणेगाइं जोयणसयाइं ओगाढा।।

७०. बन्धन-मुक्त वायु बल प्रेरित वह नौका उन्नतपट के कारण ऐसी प्रतीत होती थी, मानो अपने पंख फैलाए कोई गरुड़ युवती खड़ी हो।[१६] वह गंगा-सलिल की तीक्ष्ण धाराओं के वेग से पुनः पुनः संक्षुब्ध होती (टकराती) हुई, हजारों-हजारों उर्मियों और तरंगों को चीरती हुई कतिपय दिनों में लवण-समुद्र में अनेक शत-योजन तक पहुंच गयी।

७१. तए णं तेसिं अरहण्णगपामोक्खाणं संजत्ता-नावावाणियगाणं लवणसमुद्दं अणेगाइं जोयणसयाइं ओगाढाणं समाणाणं बहूइं उप्पाइयसयाइं पाउब्भूयाइं, तं जहा--अकाले गज्जिए अकाले विज्जुए अकाले थणियसद्दे अभिक्खणं-अभिक्खणं आगासे देवयाओ नच्चंति।।

७१. जब वे अर्हन्नक प्रमुख सांयात्रिक पोतवणिक्, लवण-समुद्र में अनेक शत-योजन तक पहुंच गये, तब उनके समक्ष अनेक शत-उत्पात प्रादुर्भूत हुए, जैसे—अकाल में गर्जन, अकाल विद्युत, अकाल में मेघ गंभीर ध्वनि होती और बार-बार आकाश में देव नर्तन करते।

७२. तए णं ते अरहण्णगवज्जा संजत्ता-नावावाणियगा एगं च णं महं तालपिसायं पासंति--तालजंघं दिवंगयाहिं बाहाहिं फुट्टसिरं भमर-निगर-वरमासरासि-महिसकालगं भरिय-मेहवण्णं सुप्पणहं फाल-सरिस-जीहं लंबोट्ठं धवलवट्ट-असिलिट्ठ-तिक्ख-थिर-पीण-कुडिल-दाढोवगूढवयणं विकोसिय-धारासिजुयल-समसरिस-तणुय-चंचल-गलंतरसलोल-चवल-फुरुफुरेंत-निल्लालियग्गजीहं अवयत्थिय-महल्ल-विगय-बीभच्छ-लालपगलंत-रत्ततालुयं हिंगुलय-सगब्भ-कंदरबिलं व अंजणगिरिस्स अग्गिज्जालुग्गिलंतवयणं आऊसिय-अक्खचम्म-उइट्ठगंडदेसं चीण-चिमिढ-वंक-भग्गनासं रोसागय-धमधमेंत-मारुय-निट्ठुर-खर-फरुसझुसिरं ओभुग्ग-नासियपुडं घाडुब्भड-रइय-भीसणमुहं उद्धमुहकण्ण-सक्कुलिय-महंतविगय-लोम-संखालग-लंबंत-चलियकण्णं पिंगल-दिप्पंतलोयणं भिउडि-तडिनिडालं नरसिरमाल-परिणद्धचिंधं विचित्तगोणस-सुबद्धपरिकरं अवहोलंत-फुप्फुयायंत-सप्प-विच्छुय-गोधुंदुर-नउल-सरड-विरइय-विचित्तवेयच्छमालियागं भोगकूर-कण्हसप्प-धमधमेंत-लंबंतकण्णपूरं मज्जार-सियाल-लइयखंधं दित्त-घुघुयंत-घूय-कय-भुंभरसिरं घंटारवेणं भीम-भयंकरं कायर-जणहिययफोडणं दित्तं अट्टट्टहासं विणिम्मुयंतं, वसा-रुहिर-पूय-मंस-मल-मलिण-पोच्चडतणुं उत्तासणयं विसालवच्छं पेच्छंता भिन्ननख-मुह-नयण-कण्णं वरवग्घ-चित्त-कत्ती-णियंसणं सरस-रुहिर-

७२. अर्हन्नक को छोड़ सभी सांयात्रिक पोत-वणिकों ने एक विशालकाय ताल पिशाच को देखा। उसकी जंघाएं ताड़ वृक्ष जैसी लम्बी थी, भुजाएं आकाश को छू रही थी, सिर के बाल बिखरे हुए थे। उसका रंग भौंरों का समूह, प्रवरमाष-राशि और भैंसे के समान काला तथा पानी से भरे बादलों जैसा था। उसके नख छाज जैसे, जीभ लोहे के फाल जैसी और होठ लम्बे थे। उसका मुंह सफेद, गोल, एक दूसरी से अलग-अलग तीखी, स्थिर, मोटी, और टेढ़ी-मेढ़ी दाढ़ाओं से भरा हुआ था। उसकी पतली, चंचल, लालीयुक्त रसलोलुप प्रकम्पित और लपलपाती हुई दो जिह्वाएं कोप से बाहर निकली हुई तीक्ष्ण धार वाली दो तलवारों जैसी लगती थी। उसका तालु मोटा, विकृत, बीभत्स, लारें टपकाता, टेढ़ा-मेढ़ा और लाल था। अग्नि ज्वाला उगलता उसका लाल मुख अञ्जनगिरि के हिंगुल भरे कन्दरा विवर जैसा लगता था। उसके गण्डस्थल सिकुड़ी हुई पखाल जैसे चिपके हुए थे। उसकी नासिका छोटी, चिपटी, टेढ़ी और भग्न थी तथा रोष से धमधमायमान होने के कारण उसका नासा-विवर निष्ठुर, खर और परुष हवा छोड़ रहा था। नासा-पुट अवभग्न था। मस्तक के अवयवों की विकराल रचना के कारण उसका मुख डरावना लग रहा था। उसकी कर्णपाली ऊपर उठी हुई थी। कनपटी पर लम्बे और विकृत रोम उगे हुए थे और उसके कान लटक रहे थे, हिल रहे थे। उसकी आंखें पिंगल और प्रदीप्त थी। ललाट पर भृकुटि रूप बिजली चमक रही थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गयचम्म-वियय-ऊसविय-बाहुजुयलं ताहि य खर-फरुस-असिणिद्ध-दित्त-अणिट्ठ-असुभ-अप्पिय-अकंत-वग्गूहि य तज्जयंतं--तं तालपिसायरूवं एज्जमाणं पासंति, पासित्ता भीया तत्था तसिया उव्विग्गा संजायभया अण्णमण्णस्स कायं समतुरंगेमाणा-समतुरंगेमाणा बहूणं इंदाण य खंदाण य रुद्दाण य सिवाण य वेसमणाण य नागाण य भूयाण य जक्खाण य अज्ज-कोट्टकिरियाण य बहूणि उवाइयसयाणि उवाइमाणा चिट्ठंति।।

नरमुण्डमाल का चिह्न पहना हुआ था। उसका परिकर फण-रहित विचित्र सांपों से कसा हुआ था। वह डोलते-फुफकारते हुए सांप, बिच्छू, गोह, चूहे, नेवले, गिरगिट आदि से विरचित विचित्र प्रकार की छाती पर तिरछी लटकती हुई माला तथा फण से रौद्र और क्रोध से धमधमायमान कृष्ण भुजंगों के लटकते हुए कर्णपूर पहने हुए था। उसके कंधों पर मार्जार और गीदड़ बैठे थे। उसने दृप्त और घू-घू शब्द करते हुए उल्लू को सिर का सेहरा बना रखा था। वह घंटारव से भी भीम, भयंकर तथा कायर मनुष्यों के हृदय को विदीर्ण कर देने वाला दृप्त अट्टहास कर रहा था। उसका शरीर, वसा, रुधिर, पीव, मांस और मल से मलिन तथा लिप्त था। उसका विशाल वक्ष त्रासदायी था। वह प्रवर व्याघ्र-चर्म से निर्मित विचित्र न्यंशुक पहने हुए था, जिससे नख, मुख, नयन और कर्ण पृथक्-पृथक् दिखाई दे रहे थे। वह गीली और खून से सनी हस्ति-चर्म ओढ़े, दोनों भुजाओं को ऊपर उठाए, खर, परुष, स्नेह रहित, दृप्त, अनिष्ट, अशुभ, अप्रिय और अकमनीय वाणी से उन यात्रियों को ललकारता हुआ उनके सामने आ रहा था। उन सब (यात्रियों) ने उस ताड़ जैसे पिशाच रूप को देखा। उसे देखकर भीत, त्रस्त, तृषित, उद्विग्न और भयाक्रान्त होकर वे सब एक दूसरे के शरीर का आश्लेष करते हुए, बहुत से इन्द्र, स्कन्द, रुद्र, शिव, वैश्रमण, नाग, भूत, यक्ष, आर्या अथवा कोट्टक्रिया की नाना प्रकार से मनौतियां करने लगे।

७३. तए णं से अरहण्णए समणोवासए तं दिव्वं पिसायरूवं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता अभीए अतत्थे अचलिए असंभंते अणाउले अणुव्विग्गे अभिण्णमुहराग-नयणवण्णे अदीण-विमण-माणसे पोयवहणस्स एगदेसंसि वत्थंतेणं भूमिं पमज्जइ, पमज्जित्ता ठाणं ठाइ, ठाइत्ता करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासि--नमोत्थु णं अरहंताणं भगवंताणं जाव सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपत्ताणं। जइ णं हं एत्तो उवसग्गाओ मुंचामि तो मे कप्पइ पारित्तए, अह णं एत्तो उवसग्गाओ न मुंचामि तो मे तहा पच्चक्खाएयव्वे ति कट्टु सागारं भत्तं पच्चक्खाइ।।

७३. उस अर्हन्नक श्रमणोपासक ने उस दिव्य पिशाचरूप को अपनी ओर आते हुए देखा। देखकर अभीत, अत्रस्त, अचलित, असंभ्रांत, अनाकुल और अनुद्विग्न रहा। न उसके मुंह का रंग बदला और न आंखों का वर्ण। उसने अदीन और अनातुर मन से जहाज के एक भाग में वस्त्राञ्चल से भूमि का प्रमार्जन किया। प्रमार्जन कर कायोत्सर्ग में स्थित हुआ। स्थित होकर दोनों हाथों से निष्पन्न संपुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर, मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार बोला--नमस्कार हो अर्हत भगवान को यावत् जो सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त कर चुके। यदि मैं इस उपसर्ग से मुक्त हो जाऊं तो मैं कायोत्सर्ग पूरा कर सकता हूं और यदि मैं इस उपसर्ग से मुक्त नहीं होता हूं, तो मेरे प्रत्याख्यान इसी रूप में रहेंगे--ऐसा कहकर उसने सविकल्प भक्त प्रत्याख्यान किया।

७४. तए णं ते पिसायरूवे जेणेव अरहण्णगे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहण्णगं एवं वयासी--हंभो अरहण्णगा! अपत्थियपत्थया! दुरंत-पंत-लक्खणा! हीणपुण्ण-चाउद्दसिया! सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति-परिवज्जिया! नो खलु कप्पइ तव सील-व्वय- गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं चालित्तए वा खोभित्तए वा खंडित्तए वा भंजित्तए वा उज्झित्तए वा परिच्चइत्तए वा। तं जइ णं तुमं सील-व्वय-गुण-वेरमण-

७४. वह पिशाच रूप जहां अर्हन्नक श्रमणोपासक था वहां आया। वहां आकर उसने अर्हन्नक को इस प्रकार कहा--अरे! ओ! अर्हन्नक! अप्रार्थित के प्रार्थी! दुरन्त-प्रान्त-लक्षण! हीन पुण्य-चातुर्दशिक! श्री, ही, धृति और कीर्ति से शून्य! तेरे शील, व्रत, गुण, विरमण, प्रत्याख्यान, पौषधोपवास[१७]--इनसे तुझको चलित नहीं किया जा सकता, क्षुब्ध नहीं किया जा सकता। इनका खण्डन, भञ्जन, त्याग और परित्याग नहीं कराया जा सकता।[१८] अतः यदि तूं अपने शील, व्रत, गुण, विरमण,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं न चालेसि न खोभेसि न खडेसि न भंजेसि न उज्झसि न परिच्चयसि, तो ते अहं एयं पोयवहणं दोहिं अंगुलियाहिं गेण्हामि, गेण्हित्ता सत्तट्ठतलप्पमाण-मेत्ताइं उड्ढं वेहासं उव्विहामि अंतोजलंसि निव्वोलेमि, जेणं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे असमाहिपत्ते अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।।

प्रत्याख्यान, पौषधोपवास से चलित नहीं होता, क्षुब्ध नहीं होता, तूं इसका खण्डन, भञ्जन, त्याग और परित्याग नहीं करता तो मैं तेरे इस जहाज को इन दो अंगुलियों से पकड़ता हूं। पकड़कर सात-आठ तल-प्रमाण[१] ऊपर आकाश में उछालता हूं और फिर समुद्र में डुबोता हूं जिससे तूं आर्त्त, दु:खार्त्त और वासना से आर्त्त हो[२] असमाधि को प्राप्त कर असमय में ही मृत्यु को प्राप्त करेगा।

७५. तए णं अरहण्णगे समणोवासए तं देवं मणसा चेव एवं वयासी--अहं णं देवाणुप्पिया! अरहण्णए नामं समणोवासए अहिगयजीवाजीवे। नो खलु अहं सक्के केणइ देवेण वा दाणवेण वा जक्खेण वा रक्खसेण वा किन्नरेण वा किंपुरिसेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा, तुमं णं जा सद्धा तं करेहि त्ति कट्टु अभीए जाव अभिन्नमुहराग-नयणवण्णे अदीण-विमण-माणसे निच्चले निप्फंदे तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ।।

७५. उस अर्हन्नक श्रमणोपासक ने उस देव को मन ही मन इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! मैं जीव और अजीव का ज्ञाता अर्हन्नक नाम का श्रमणोपासक हूं। मैं किसी भी देव, दानव, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महोरग या गन्धर्व द्वारा निर्ग्रन्थ प्रवचन से चलित, क्षुब्ध और विपरीत परिणाम वाला[३] नहीं हो सकता। तुम्हारी जैसी रुचि हो, करो--ऐसा कहकर वह अभीत रहा यावत् न उसके मुंह का रंग बदला, न आंखों का वर्ण। वह अदीन और अनातुर मन वाला अर्हन्नक निश्चल, नि:स्पन्द और मौन भाव से धर्म्य-ध्यान में लीन हो गया।

७६. तए णं से दिव्वे पिसायरूवे अरहण्णगं समणोवासगं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी--हंभो अरहण्णगा! जाव धम्मज्झाणोवगए विहरइ।।

७६. उस दिव्य पिशाच रूप ने अर्हन्नक श्रमणोपासक से दूसरी बार, तीसरी बार भी इस प्रकार कहा--अरे! ओ! अर्हन्नक! यावत् वह धर्म्य-ध्यान में लीन हो गया।

७७. तए णं से दिव्वे पिसायरूवे अरहण्णगं धम्मज्झाणोवगयं पासइ, पासित्ता बलियतरागं आसुरत्ते तं पोयवहणं दोहिं अंगुलियाहिं गेण्हइ, गेण्हित्ता सत्तट्ठतल-प्पमाणमेत्ताइं उड्ढं वेहासं उव्विहइ, उव्विहित्ता अरहण्णगं एवं वयासी--हंभो अरहण्णगा! अपत्थियपत्थया! नो खलु कप्पइ तव सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं चालित्तए वा खोभित्तए वा खंडित्तए वा भंजित्तए वा उज्झित्तए वा परिच्चइत्तए वा। तं जइ णं तुमं सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं न चालेसि न खोभेसि न खडेसि न भंजेसि न उज्झसि न परिच्चयसि, तो ते अहं एयं पोयवहणं अंतो जलंसि निब्बोलेमि, जेणं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे असमाहिपत्ते अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।।

७७. उस दिव्य पिशाच रूप ने अर्हन्नक श्रमणोपासक को धर्म्य-ध्यान में लीन देखा। लीन देखकर उसने प्रबल क्रोध से तमतमाते हुए उस जहाज को दो अंगुलियों से पकड़ा। पकड़कर सात-आठ तल-प्रमाण ऊपर आकाश में उठाया। उठाकर अर्हन्नक से इस प्रकार बोला--अरे! ओ! अर्हन्नक! अप्रार्थित का प्रार्थी! तेरे शील, व्रत, गुण, विरमण, प्रत्याख्यान, पौषधोपवास--इनसे तुझको चलित नहीं किया जा सकता, क्षुब्ध नहीं किया जा सकता। इनका खण्डन, भंजन, त्याग और परित्याग नहीं कराया जा सकता। अत: यदि तू अपने शील, व्रत, गुण, विरमण, प्रत्याख्यान, पौषधोपवास--इनसे चलित नहीं होता, क्षुब्ध नहीं होता। तू इनका खण्डन, भञ्जन, त्याग और परित्याग नहीं करता तो मैं तेरे इस जहाज को पानी में डूबोता हूं, जिससे तूं आर्त्त, दु:खार्त्त और वासना से आर्त्त हो, असमाधि को प्राप्त कर, असमय में ही मृत्यु को प्राप्त करेगा।

७८. तए णं से अरहण्णगे समणोवासए तं देवं मणसा चेव एवं वयासी--अहं णं देवाणुप्पिया! अरहण्णए नामं समणोवासए--अहिगयजीवाजीवे। नो खलु अहं सक्के केणइ देवेण वा दाणवेण वा जक्खेण वा रक्खसेण वा किन्नरेण वा किंपुरिसेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा, तुमं णं जा सद्धा तं करेहि त्ति कट्टु अभीए जाव अभिन्नमुहराग-नयणवण्णे अदीण-विमण-माणसे

७८. उस अर्हन्नक श्रमणोपासक ने उस देव को मन ही मन इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! मैं जीव और अजीव का ज्ञाता अर्हन्नक नाम का श्रमणोपासक हूं। मैं किसी भी देव, दानव, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महोरग या गन्धर्व के द्वारा निर्ग्रन्थ प्रवचन से चलित क्षुब्ध और विपरीत परिणाम वाला नहीं हो सकता। तुम्हारी जैसी रुचि हो, करो--ऐसा कहकर वह अभीत रहा यावत् न उसके मुंह का रंग बदला, न आंखों का वर्ण। वह अदीन और अनातुर मन वाला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निच्चले निप्फंदे तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ।।

अर्हन्नक निश्चल, नि:स्पन्द और मौन-भाव से धर्म्य-ध्यान में लीन हो गया।

७९. तए णं से पिसायरूवे अरहण्णगं जाहे नो संचाएइ निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा, ताहे संते तंते परितंते निव्विण्णे तं पोयवहणं सणियं-सणियं उवरिं जलस्स ठवेइ, ठवेत्ता तं दिव्वं पिसायरूवं पडिसाहरेइ, पडिसाहरेत्ता दिव्वं देवरूवं विउव्वइ--अंतलिक्खपडिवन्ने संखिखिणीयाइं दसद्धवण्णाइं वत्थाइं पवरपरिहिए अरहण्णगं समणोवासगं एवं वयासी--हं भो अरहण्णगा! समणोवासया! धन्नेसि णं तुमं देवाणुप्पिया! पुण्णेसि णं तुमं देवाणुप्पिया! कयत्थेसि णं तुमं देवाणुप्पिया! कयलक्खणेसि णं तुमं देवाणुप्पिया! सुलद्धे णं तव देवाणुप्पिया! माणुस्सए जम्मजीवियफले, जस्स णं तव निग्गंथे पावयणे इमेयारूवा पडिवत्ती लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया।

एवं खलु देवाणुप्पिया! सक्के देविंदे देवराया सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए बहूणं देवाणं मज्झगए महया-महया सद्देणं एवं आइक्खइ, एवं भासेइ, एवं पण्णवेइ, एवं परूवेइ--एवं खलु देवा! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे चंपाए नयरीए अरहण्णए समणोवासए अभिगयजीवाजीवे। नो खलु सक्के केणइ देवेण वा दाणवेणवा जक्खेण वा रक्खसेण वा किन्नरेण वा किंपुरिसेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा। तए णं अहं देवाणुप्पिया! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो नो एयमट्ठं सद्दहामि, पत्तियामि, रोएमि। तए णं मम इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--गच्छामि णं अहं अरहण्णगस्स अंतियं पाउब्भवामि, जाणामि ताव अहं अरहण्णगं--किं पियधम्मे नो पियधम्मे? दढधम्मे नो दढधम्मे? सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं किं चालेइ नो चालेइ? खोभेइ नो खोभेइ? खंडेइ नो खंडेइ? भंजेइ नो भंजेइ? उज्झइ नो उज्झइ? परिच्चयइ नो परिच्चयइ त्ति कट्टु एवं संपेहेमि, संपेहेत्ता ओहिं पउंजामि, पउंजित्ता देवाणुप्पियं ओहिणा आभोएमि, आभोएत्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमामि उत्तरवेउव्वियं रूवं विउव्वामि, विउव्वित्ता ताए उक्किट्ठाए देवगईए जेणेव लवणसमुद्दे जेणेव देवाणुप्पिए तेणेव उवागच्छामि, उवागच्छित्ता देवाणुप्पियस्स उवसग्गं करेमि, नो चेव णं देवाणुप्पिए भीए तत्थे चलिए संभंते आउले उव्विग्गे भिण्णमुहराग-नयणवण्णे दीणविमणमाणसे जाए। तं जं णं सक्के देविंदे देवराया एवं वयइ, सच्चे णं एसमट्ठे। तं दिट्ठे णं देवाणुप्पियस्स इड्ढी जुई जसो बलं वीरियं पुरिसकार-परक्कमे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए। तं खामेमि णं देवाणुप्पिया। खमेसु णं देवाणुप्पिया! खंतुमरिहसि णं देवाणुप्पिया! नाइ भुज्जो एवंकरणयाए त्ति कट्टु पंजलिउडे पायवडिए एयमट्ठं विणएणं भुज्जो-भुज्जो खामेइ, अरहण्णगस्स य दुवे कुंडलजुयले दलयइ,

७९. वह पिशाच रूप अर्हन्नक को निर्ग्रन्थ-प्रवचन से चलित, क्षुब्ध और विपरीत परिणाम वाला नहीं कर पाया, तो उसने श्रान्त, क्लान्त, परिक्लान्त और खेद खिन्न होकर उस जहाज को धीरे-धीरे पानी पर रख दिया। रखकर उस दिव्य पिशाच रूप को प्रतिसंहृत किया। प्रतिसंहृत कर दिव्य देवरूप की विक्रिया की। छोटी-छोटी घंटिकाओं से युक्त सुन्दर पंचरंगे वस्त्र पहने हुए वह अन्तरिक्ष में स्थित हो अर्हन्नक श्रमणोपासक से इस प्रकार बोला--हे अर्हन्नक! श्रमणोपासक! धन्य हो तुम देवानुप्रिय! पुण्यशाली हो तुम देवानुप्रिय! कृतार्थ हो तुम देवानुप्रिय! कृतलक्षण हो तुम देवानुप्रिय! तुमने ही मनुष्य के जन्म और जीवन का फल पाया है देवानुप्रिय! जो तुम्हें निर्ग्रन्थ प्रवचन में इस प्रकार की प्रतिपत्ति उपलब्ध है, प्राप्त और अभिसमन्वागत है।

देवानुप्रिय! देवेन्द्र देवराज शक्र ने सौधर्म-कल्प, सौधर्मावतंसक विमान और सुधर्मसभा में बहुत से देवों के मध्य ऊंचे-ऊचे शब्द से इस प्रकार आख्यान किया, भाषण किया, प्रज्ञापना की और प्ररूपण किया--हे देवो! जम्बूद्वीप द्वीप, भारतवर्ष और चम्पानगरी में जीव और अजीव का ज्ञाता अर्हन्नक नाम का श्रमणोपासक रहता है। उसे कोई देव, दानव, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महोरग अथवा गन्धर्व निर्ग्रन्थ प्रवचन से चलित, क्षुब्ध और विपरीत परिणाम वाला नहीं कर सकता। देवानुप्रिय! देवेन्द्र, देवराज शक्र के इस कथन पर मुझे न श्रद्धा हुई, न प्रतीति हुई और न रुचि हुई। तब मेरे मन में इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--मैं जाऊं, अर्हन्नक के समक्ष प्रकट होकर उसके सम्बन्ध में यह जानूं--अर्हन्नक प्रियधर्मा है अथवा प्रियधर्मा नहीं है? वह दृढ़धर्मा है अथवा दृढ़धर्मा नहीं है? वह शील, व्रत, गुण, विरमण, प्रत्याख्यान, पौषधोपवास से चलित होता है अथवा नहीं? क्षुब्ध होता है अथवा नहीं? उनका खंडन करता है अथवा नहीं? उनका भञ्जन करता है अथवा नहीं? उनका त्याग करता है अथवा नहीं? उनका परित्याग करता है अथवा नहीं? मैंने इस प्रकार की संप्रेक्षा की; संप्रेक्षा कर अवधिज्ञान का प्रयोग किया। प्रयोग कर देवानुप्रिय को अवधिज्ञान से जाना। जानकर ईशानकोण में गया। उत्तर-वैक्रिय रूप की विक्रिया की। विक्रिया कर उस उत्कृष्ट देव-गति से जहां लवण-समुद्र था और जहां देवानुप्रिय था वहां आया। वहां आकर देवानुप्रिय के सामने उपसर्ग उपस्थित किया। किन्तु देवानुप्रिय भीत, त्रस्त, चलित, सम्भ्रान्त, आकुल और उद्विग्न नहीं हुए। न तुम्हारे मुंह का रंग बदला और न आंखों का वर्ण। तुम अदीन और अनातुर मन रहे। अत: देवेन्द्र, देवराज शक्र ने जो कहा, वह अर्थ सत्य है। मैंने देख लिया है देवानुप्रिय! तुमने ऋद्धि, द्युति, यश,' बल, वीर्य, पुरुषाकार और पराक्रम को उपलब्ध, प्राप्त और अभिसमन्वागत किया है। अत: मैं खमाता हूं देवानुप्रिय! क्षमा करें देवानुप्रिय! तुम क्षमा कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दलइत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।।

सकते हो देवानुप्रिय! मैं पुनः ऐसा नहीं करूंगा--ऐसा कहकर वह प्राञ्जलिपुट हो अर्हन्नक के चरणों में गिर पड़ा और विनयपूर्वक इस अपराध के लिए पुनः पुनः खमाने लगा। अर्हन्नक को दो कुण्डल-युगल दिए। देकर वह जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में चला गया।

८०. तए णं से अरहण्णए निरुवसग्गमिति कट्टु पडिमं पारेइ।।

८०. 'उपसर्ग निवृत्त हो चुका है'--यह जानकर अर्हन्नक ने प्रतिमा को पूरा किया।

८१. तए णं ते अरहण्णगपामोक्खा संजत्ता-नावावाणियगा दक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव गंभीरए पोयट्ठाणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पोयं लंबेंति, लंबेत्ता सगडि-सागडं सज्जेंति, तं गणिमं धरिमं मेज्जं परिच्छेज्जं च सगडि-सागडं संकामेंति, संकामेत्ता सगडि-सागडं जोविंति, जोवित्ता जेणेव मिहिला तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता मिहिलाए रायहाणीए बहिया अग्गुज्जाणंसि सगडि-सागडं मोएंति, मोएत्ता महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायारिहं पाहुडं दिव्वं कुंडलजुयलं च गेण्हंति, गेण्हित्ता (मिहिलाए रायहाणीए?) अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता जेणेव कुंभए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायारिहं पाहुडं दिव्वं कुंडलजुयलं च उवणेंति।।

८१. वे अर्हन्नक प्रमुख सांयात्रिक पोतवणिक् दक्षिणानुकूल पवन के साथ जहां 'गंभीरक' बन्दरगाह था वहां आए। वहां आकर जहाज की लंगर डाली। लंगर डालकर छोटे-बड़े वाहन तैयार किए। उनमें गणनीय, धरणीय, मेय और परिच्छेद्य रूप क्रयाणक संक्रमित किए। संक्रमित कर उन छोटे-बड़े वाहनों को जोता। जोतकर जहां मिथिला थी वहां आए। वहां आकर मिथिला की राजधानी के बाहर प्रधान उद्यान में छोटे-बड़े वाहन खोले। खोलकर महान अर्थ, महामूल्य और महान अर्हता वाला राजाओं के योग्य विपुल उपहार और दिव्य कुण्डल-युगल लिए। लेकर (मिथिला राजधानी में?) प्रवेश किया। प्रवेश कर जहां कुम्भराजा था, वहां आए। वहां आकर दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर महान अर्थवान, महामूल्य और महान अर्हतावाला राजाओं के योग्य विपुल उपहार और दिव्य कुण्डल-युगल राजा को उपहृत किया।

८२. तए णं कुंभए राया तेसिं संजत्ता-नावावाणियगाणं तं महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायारिहं पाहुडं दिव्वं कुंडलजुयलं च पडिच्छइ, पडिच्छित्ता मल्लिं विदेहवररायकन्नं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता तं दिव्वं कुंडलजुयलं मल्लीए विदेहरायकन्नगाए पिणद्धेइ, पिणद्धेत्ता पडिविसज्जेइ।।

८२. राजा कुम्भ ने उन सांयात्रिक पोतवणिकों का वह महान अर्थवान महामूल्य और महान अर्हता वाला राजाओं के योग्य विपुल उपहार और वह दिव्य कुण्डल-युगल स्वीकार किया। स्वीकार कर विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली को बुलाया। बुलाकर दिव्य कुण्डल-युगल विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली को पहनाया। पहनाकर उसे प्रतिविसर्जित किया।

८३. तए णं से कुंभए राया ते अरहण्णगपामोक्खे संजत्ता-नावा-वाणियगे विपुलेणं वत्थ-गंध-मल्लालंकारेण य सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता उस्सुक्कं वियरइ, वियरित्ता रायमग्गमोगाढे य आवासे वियरइ, वियरित्ता पडिविसज्जेइ।।

८३. उस राजा कुम्भ ने अर्हन्नक प्रमुख सांयात्रिक पोतवणिकों को विपुल वस्त्र, गन्धचूर्ण, माला और अलंकारों से सत्कृत किया। सम्मानित किया। सत्कृत सम्मानित कर उन्हें कर-मुक्त किया। उनको राजमार्ग के समीपवर्ती आवास-स्थान देने की आज्ञा दी और उन्हें प्रतिविसर्जित किया।

८४. तए णं अरहण्णगपामोक्खा संजत्ता-नावावाणियगा जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता भंडववहरणं करेंति, पडिभंडे गेण्हंति, गेण्हित्ता सगडी-सागडं भरेंति, भरेत्ता जेणेव गंभीरए पोयपट्टणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पोयवहणं सज्जेंति, सज्जेत्ता भंडं संकामेंति, संकामेत्ता दक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव चंपाए पोयट्ठाणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता

८४. अर्हन्नक प्रमुख सांयात्रिक पोत-वणिक जहां राजमार्ग के समीपवर्ती आवास थे, वहां आये। वहां आकर वे क्रयाणक का व्यापार करने लगे। दूसरा माल खरीदा। खरीदकर उसे छोटे बड़े वाहनों में भरा। भरकर जहां 'गम्भीरक' बन्दरगाह था, वहां आये, वहां आकर जहाज को तैयार किया। तैयार कर क्रयाणक को उसमें संक्रमित किया। संक्रमित दक्षिणानुकूल पवन के साथ जहां चम्पा का बन्दरगाह था,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पोयं लंबेंति, लंबेत्ता सगडी-सागडं सज्जेंति, सज्जेत्ता तं गणिमं धरिमं मेज्जं परिच्छेज्जं च सगडी-सागडं संकामेंति, संकामेत्ता सगडि-सागडं जोविंति, जोवित्ता जेणेव चंपानयरी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता चंपाए रायहाणीए बहिया अग्गुज्जाणंसि सगडि-सागडं मोएंति, मोएत्ता महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायारिहं पाहुडं दिव्वं च कुंडलजुयलं गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव चंदच्छाए अंगराया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायारिहं पाहुडं दिव्वं च कुंडलजुयलं उवणेंति ।।

वहां आये। वहां आकर जहाज की लंगर डाली। छोटे बड़े वाहनों को तैयार किया। तैयार कर गणनीय, धरणीय, मेय और परिच्छेद्य रूप क्रयाणक को छोटे बड़े वाहनों में संक्रमित किया। संक्रमित कर छोटे बड़े वाहनों को जोता। जोत कर जहां चम्पा नगरी थी, वहां आये। आकर चम्पा राजधानी के बाहर प्रधान उद्यान में छोटे बड़े वाहनों को मुक्त किया। उन्हें मुक्त कर महान अर्थवान, महामूल्य और महान अर्हता वाला राजाओं के योग्य विपुल उपहार और दिव्य कुण्डल युगल को लिया। उसे लेकर, जहां अंगराज चन्द्रच्छाय था, वहां आये। वहां आकर वह महान अर्थवान, महामूल्यवान और महान अर्हता वाला राजाओं के योग्य विपुल उपहार और दिव्य कुण्डल युगल राजा को उपहृत किया।

८५. तए णं चंदच्छाए अंगराया तं महत्थं पाहुडं दिव्वं च कुंडलजुयलं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता ते अरहण्णगपामोक्खे एवं वयासी--तुब्भे णं देवाणुप्पिया! बहूणि गामागर जाव सण्णिवेसाइं आहिंडह, लवणसमुद्दं च अभिक्खणं-अभिक्खणं पोयवहणेहिं ओगाहेह, तं अत्थियाइं भे केइ कहिंचि अच्छेरए दिट्ठपुव्वे?

८५. अंगराज चन्द्रच्छाय ने उस महान अर्थवान उपहार और दिव्य कुण्डल-युगल को स्वीकार किया। स्वीकार कर, अर्हन्नक प्रमुख उन (यात्रियों) को इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम बहुत से गांव, आकर यावत् सन्निवेशों में घूमते हो, लवण-समुद्र का बार-बार जहाज से अवगाहन करते हो तो क्या कहीं कोई आश्चर्य तुमने देखा है?

८६. तए णं ते अरहण्णगपामोक्खा चंदच्छायं अंगरायं एवं वयासी--एवं खलु सामी! अम्हे इहेव चंपाए नयरीए अरहण्णगपामोक्खा बहवे संजत्तगा-नावावाणियगा परिवसामो। तए णं अम्हे अण्णया कयाइ गणिमं च धरिमं च मेज्जं च परिच्छेज्जं च गेण्हामो तहेव अहीण-अइरित्तं जाव कुंभगस्स रण्णो उवणेमो। तए णं से कुंभए मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए तं दिव्वं कुंडलजुयलं पिणद्धेइ, पिणद्धेत्ता पडिविसज्जेइ। तं एस णं सामी! अम्हेहिं कुंभगरायभवणंसि मल्ली विदेहरायवरकन्ना अच्छेरए दिट्ठे। तं नो खलु अण्णा कावि तारिसिया देवकन्ना वा असुरकन्ना वा नागकन्ना वा जक्खकन्ना वा गंधव्वकन्ना वा रायकन्ना वा जारिसिया णं मल्ली विदेहरायवरकन्ना।।

८६. वे अर्हन्नक प्रमुख (यात्री) अंगराज चन्द्रच्छाय से इस प्रकार बोले--स्वामिन्! हम अर्हन्नक प्रमुख बहुत से सांयात्रिक पोत वणिक इसी चम्पा नगरी में रहते हैं। इसलिए हम ने किसी समय गणनीय, धरणीय, मेय और परिच्छेद्य रूप क्रयाणक लिया। उसी प्रकार न कम न अधिक (पूरी बात को कहा) यावत् राजा कुम्भ को उपहृत किया। तब उस कुम्भ ने विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली को वह दिव्य कुण्डल युगल पहनाये। पहनाकर उसे प्रतिविसर्जित किया। स्वामिन्! हमने राजा कुम्भ के राजभवन में विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली को ही आश्चर्य रूप में देखा है। क्योंकि अन्य कोई भी देवकन्या, असुरकन्या, नागकन्या, यक्षकन्या, गन्धर्वकन्या अथवा राजकन्या वैसी नहीं है जैसी कि विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली।

८७. तए णं चंदच्छाए अरहण्णगपामोक्खे सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता उस्सुक्कं वियरइ, वियरित्ता पडिविसज्जेइ।।

८७. चन्द्रच्छाय ने अर्हन्नक प्रमुख (वणिकों) को सत्कृत किया। सम्मानित किया। सत्कृत, सम्मानित कर उन्हें कर-मुक्त किया। कर-मुक्त कर प्रतिविसर्जित किया।

८८. तए णं चंदच्छाए वाणियग-जणियहासे दूयं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--जाव मल्लिं विदेहरायवरकन्नं मम भारियत्ताए वरेहि, जइ वि य णं सा सयं रज्जसुंका।।

८८. वणिकों द्वारा उक्त अर्थ को सुनकर चन्द्रच्छाय के मन में मल्ली के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया। उसने तत्काल दूत को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--यावत् विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली को मेरी भार्या के रूप में वरण करो। फिर उसका मूल्य राज्य जितना भी क्यों न हो।

८९. तए णं से दूए चंदच्छाएणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे जाव पहारेत्थ गमणाए।।

८९. चन्द्रच्छाय के ऐसा कहने पर हृष्ट तुष्ट होकर यावत् दूत ने प्रस्थान किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रुप्पि-राय-पदं

९०. तेणं कालेणं तेणं समएणं कुणाला नाम जणवए होत्था। तत्थ णं सावत्थी नाम नयरी होत्था। तत्थ णं रुप्पी कुणालाहिवई नाम राया होत्था। तस्स णं रुप्पिस्स धूया धारिणीए देवीए अत्तया सुबाहू नाम दारिया होत्था—सुकुमाल-पाणिपाया रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा जाया यावि होत्था।।

९१. तीसे णं सुबाहूए दारियाए अण्णया चाउम्मासिय-मज्जणए जाए यावि होत्था।।

९२. तए णं से रुप्पी कुणालाहिवई सुबाहूए दारियाए चाउम्मासिय-मज्जणयं उवट्ठियं जाणइ, जाणित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! सुबाहूए दारियाए कल्लं चाउम्मासिय-मज्जणए भविस्सइ, तं तुब्भे णं रायमग्गमोगाढंसि चउक्कंसि जल-थलय-दसद्धवण्णं मल्लं साहरह जाव एगं महं सिरिदामगंडं गंधद्धणिं मुयंतं उल्लोयंसि ओलएह। ते वि तहेव ओलयंति।।

९३. तए णं से रुप्पी कुणालाहिवई सुवण्णगार-सेणिं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! रायमग्गमोगाढंसि पुप्फमंडवंसि नाणाविहपंचवण्णेहिं तंदुलेहिं नगरं आलिहह, तस्स बहुमज्झदेसभाए पट्टयं रएह, एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। ते वि तहेव पच्चप्पिणंति।।

९४. तए णं से रुप्पी कुणालाहिवई हत्थिखंधवरगए चाउरंगिणीए सेणाए महया भड-चडगर-रह-पहकर-विंदपरिक्खित्ते अंतेउर-परियाल-संपरिवुडे सुबाहुं दारियं पुरओ कट्टु जेणेव रायमग्गे जेणेव पुप्फमंडवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थि-खंधाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पुप्फमंडवे अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे।।

९५. तए णं ताओ अंतेउरियाओ सुबाहुं दारियं पट्टयंसि दुरुहेंति, दुरुहेत्ता सेयापीयएहिं कलसेहिं ण्हाणेंति, ण्हाणेत्ता सव्वालंकारविभूसियं करेंति, करेत्ता पिउणो पायवंदियं उवणेंति।।

९६. तए णं सुबाहू दारिया जेणेव रुप्पी राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पायग्गहणं करेइ।।

रुक्मि-राज-पद

९०. उस काल और उस समय कुणाला नाम का जनपद था। वहां श्रावस्ती नाम की नगरी थी। वहां कुणाला का अधिपति रुक्मी नाम का राजा था। उस रुक्मी राजा की पुत्री धारिणी देवी की आत्मजा सुबाहु नाम की बालिका थी। उसके हाथ, पांव सुकुमार थे। वह रूप, यौवन और लावण्य से उत्कृष्ट एवं उत्कृष्ट शरीर वाली थी।

९१. किसी समय उस सुबाहु बालिका का चातुर्मासिक-मज्जन (महोत्सव) उपस्थित हुआ।

९२. उस कुणाला के अधिपति रुक्मी ने सुबाहु बालिका का चातुर्मासिक-मज्जन (महोत्सव) उपस्थित हुआ जाना। जानकर उसने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! कल सुबाहु बालिका का चातुर्मासिक-मज्जन होगा। अत: तुम राजमार्ग के समीपवर्ती चौक में जल और स्थल में खिलने वाला पंचरंगा पुष्प-समूह लाओ यावत् घ्राण को तृप्ति देने वाले गन्धमय परमाणुओं को बिखेरती एक महान श्रीदामकाण्ड माला चन्दोवे के नीचे लटकाओ। उन्होंने भी वैसे ही लटकाया।

९३. उस कुणाला के अधिपति रुक्मी ने स्वर्णकार-श्रेणि को बुलाया। उसे बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! शीघ्र ही राजमार्ग के समीपवर्ती पुष्प-मंडप में नाना प्रकार के पंचवर्ण तन्दुलों से नगर का आलेखन करो। उसके बीचोंबीच एक पट्ट की रचना करो। इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो। उन्होंने भी वैसे ही प्रत्यर्पित किया।

९४. वह कुणाला का अधिपति रुक्मी प्रवर हस्तिस्कन्ध पर आरूढ़ हो, चतुरंगिणी सेना, महान सुभटों की विभिन्न टुकड़ियों और मार्ग बताने वाले राजपुरुषों से परिक्षिप्त और अन्त:पुर परिवार से संपरिवृत हो, सुबाहु बालिका को आगे कर, जहां राजमार्ग था, जहां पुष्पमंडप था, वहां आया। वहां आकर हस्तिस्कन्ध से उतरा। उतरकर पुष्प-मंडप में प्रविष्ट हुआ। प्रविष्ट होकर पूर्वाभिमुख हो प्रवर-सिंहासन पर आसीन हो गया।

९५. उन अन्त:पुर की महिलाओं ने सुबाहु बालिका को पट्ट पर बिठाया। बिठाकर उसे चांदी-सोने के कलशों से नहलाया। नहलाकर सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित किया। विभूषित कर पाद-वंदन (प्रणाम) के लिए पिता के पास ले गईं।

९६. वह सुबाहु बालिका जहां राजा रुक्मी था, वहां आई। वहां आकर उसने पिता के चरण-ग्रहण किए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९७. तए णं से रुप्पी राया सुबाहुं दारियं अंके निवेसेइ, निवेसित्ता सुबाहूए दारियाए रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य जायविम्हए वरिसधरं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--तुमं णं देवाणुप्पिया! मम दोच्चेणं बहूणि गामागर-नगर जाव सण्णिवेसाइं आहिंडसि, बहूण य राईसर जाव सत्थवाहपभिईणं गिहाणि अणुप्पविससि, तं अत्थियाइं ते कस्सइ रण्णो वा ईसरस्स वा कहिंचि एयारिसए मज्जणए दिट्ठपुव्वे, जारिसए णं इमीसे सुबाहूए दारियाए मज्जणए?

९७. राजा रुक्मी ने कन्या सुबाहु को अपनी गोद में बिठाया। बिठाकर कन्या सुबाहु के रूप, यौवन और लावण्य से विस्मित होकर उसने कञ्चुकी को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! तुम मेरे दौत्यकार्य से अनेक गांव, आकर, नगर यावत् सान्निवेशों में घूमते हो, अनेक राजा, ईश्वर यावत् सार्थवाह आदि के घरों में प्रवेश करते हो, तो क्या तुमने किसी भी राजा, ईश्वर आदि के यहां या अन्यत्र भी कहीं ऐसा मज्जन (महोत्सव) देखा है, जैसा इस सुबाहु बालिका का 'मज्जन' (महोत्सव) हुआ है?

९८. तए णं से वरिसधरे रुप्पिं रायं करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी--एवं खलु सामी! अहं अण्णया तुब्भं दोच्चेणं मिहिलं गए। तत्थ णं मए कुंभगस्स रण्णो धूयाए पभावईए देवीए अत्तयाए मल्लीए विदेहरायवरकन्नगाए मज्जणए दिट्ठे। तस्स णं मज्जणगस्स इमे सुबाहूए दारियाए मज्जणए सयसहस्सइमंपि कलं न अग्घइ।।

९८. कञ्चुकी ने सिर पर प्रदक्षिणा करती अञ्जलि को मस्तक पर टिका कर राजा रुक्मी से इस प्रकार कहा--स्वामिन्! मैं एक बार आपके दौत्यकर्म से मिथिला गया था। वहां मैंने राजा कुम्भ की पुत्री, प्रभावती देवी की आत्मजा, विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली का मज्जन-महोत्सव देखा था। सुबाहु बालिका का यह मज्जन तो मल्ली के उस मज्जन के लक्षांश में भी नहीं आता।

९९. तए णं से रुप्पी राया वरिसधरस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म मज्जणगजणिय-हासे दूयं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--जाव मल्लिं विदेहरायवरकन्नं मम भारियत्ताए वरेहि, जइ वि य णं सा सयं रज्जसुंका।।

९९. कञ्चुकी के पास इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर राजा रुक्मी के मन में उस 'मज्जन' के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। उसने दूत को बुलाया। दूत को बुलाकर इस प्रकार कहा यावत् विदेह की प्रवर-राजकन्या मल्ली को मेरी भार्या के रूप में वरण करो। फिर उसका मूल्य राज्य जितना भी क्यों न हो।

१००. तए णं से दूए रुप्पिणा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे जाव जेणेव मिहिला नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।।

१००. रुक्मी द्वारा ऐसा कहने पर हृष्ट तुष्ट होकर दूत ने यावत्-प्रस्थान किया।

संख-राय-पदं

शंखराज-पद

१०१. तेणं कालेणं तेणं समएणं कासी नामं जणवए होत्था। तत्थ णं वाणारसी नामं नयरी होत्था। तत्थ णं संखे नामं कासीराया होत्था।।

१०१. उस काल और उस समय काशी नाम का जनपद था। वहां वाराणसी नाम की नगरी थी। वहां शंख नाम का काशी का राजा था।

१०२. तए णं तीसे मल्लीए विदेहवररायकन्नाए अण्णया कयाइं तस्स दिव्वस्स कुंडलजुयलस्स संधी विसंघडिए यावि होत्था।।

१०२. किसी समय विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली के उस दिव्य कुण्डल-युगल की सन्धि खुल गई।

१०३. तए णं से कुंभए राया सुवण्णगारसेणिं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--तुब्भे णं देवाणुप्पिया। इमस्स दिव्वस्स कुंडलजुयलस्स संधिं संघाडेह, (संघाडेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह?)।।

१०३. उस राजा कुम्भ ने स्वर्णकार श्रेणि को बुलाया। उसे बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! तुम इस दिव्य कुण्डल-युगल की सन्धि को जोड़ दो। (जोड़कर इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो?)।

१०४. तए णं सा सुवण्णगारसेणी एयमट्ठं तहत्ति पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता तं दिव्वं कुंडलजुयलं गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव सुवण्णगार-भिसियाओ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुवण्णगार-भिसियासु निवेसेइ, निवेसेत्ता बहूहिं आएहि य उवाएहि य उप्पत्तियाहि य वेणइयाहि य कम्मयाहि य पारिणामियाहि य बुद्धीहिं परिणामेमाणा इच्छंति

१०४. उस स्वर्णकार श्रेणि ने इस अर्थ को 'तथेति' कहकर स्वीकार किया। स्वीकार कर उस दिव्य कुण्डल-युगल को लिया। लेकर जहां स्वर्णकारों का आसन था वहां आए। वहां आकर स्वर्णकार-वृषिकाओं (आसन) पर बैठे। वहां बैठकर अनेक आय-उपायों द्वारा तथा औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी और पारिणामिकी बुद्धियों के प्रयोगों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्स दिव्वस्स कुंडलजुयलस्स संधिं घडित्तए, नो चेव णं संचाएइ घडित्तए।।

द्वारा उस दिव्य कुण्डल-युगल की सन्धि को जोड़ना चाहा, किन्तु जोड़ नहीं पाए।

१०५. तए णं सा सुवण्णगारसेणी जेणेव कुंभए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता एवं वयासी--एवं खलु सामी! अज्ज तुम्हे अम्हे सद्दावेह, जाव संधिं संघाडेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। तए णं अम्हे तं दिव्वं कुंडलजुयलं गेण्हामो, गेण्हित्ता जेणेव सुवण्णगार-भिसियाओ तेणेव उवागच्छामो जाव नो संचाएमो संधिं संघाडेत्तए। तए णं अम्हे सामी! एयस्स दिव्वस्स कुंडलजुयलस्स अण्णं सरिसयं कुंडलजुयलं घडेमो।।

१०५. वह स्वर्णकार-श्रेणी जहां राजा कुंभ था वहां आई। वहां आकर उसने दोनों हथेलियां से निष्पन्न सम्पुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर, मस्तक पर टिकाकर जय-विजय की ध्वनि से राजा का वर्धापन किया। वर्धापन कर इस प्रकार कहा--स्वामिन्! आज आपने हमें बुलाया और कहा कि दिव्यकुण्डल-युगल की सन्धि को जोड़ो। जोड़कर इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो। तब हमने उस दिव्यकुण्डल-युगल को लिया। लेकर जहां स्वर्णकारों के आसन थे वहां गए। यावत् हम उसे जोड़ नहीं पाए तो स्वामिन्! हम इस दिव्य-कुण्डल-युगल जैसा दूसरा कुण्डल-युगल बना दें।

१०६. तए णं से कुंभए राया तीसे सुवण्णगारसेणीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु एवं वयासी--केस णं तुब्भे कलाया णं भवह, जे णं तुब्भे इमस्स दिव्वस्स कुंडलजुयलस्स नो संचाएह संधिं संघाडित्तए? ते सुवण्णगारे निव्विसए आणवेइ।।

१०६. वह राजा कुम्भ स्वर्णकार-श्रेणि से यह अर्थ सुनकर, अवधारण कर क्रोध से तमतमा उठा। वह रुष्ट, कुपित, चण्ड और क्रोध से जलता हुआ, त्रिवलीयुक्त भृकुटि को ललाट पर चढ़ाकर इस प्रकार बोला--कैसे स्वर्णकार हो तुम, जो इस दिव्य कुण्डल की सन्धि को भी नहीं जोड़ सकते। उसने उन स्वर्णकारों को निर्वासन का आदेश दिया।

१०७. तए णं ते सुवण्णगारा कुंभगेणं रण्णा निव्विसया आणत्ता समाणा जेणेव साइं-साइं गिहाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सभंडमत्तोवगरणमायाए मिहिलाए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं निक्खमंति, निक्खमित्ता विदेहस्स जणवयस्स मज्झंमज्झेणं निक्खमंति, निक्खमित्ता जेणेव कासी जणवए जेणेव वाणारसी नयरी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अग्गुज्जाणंसि सगडी-सागडं मोएंति, मोएत्ता महत्थं जाव पाहुडं गेण्हंति, गेण्हित्ता वाणारसीए नयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव संखे कासीराया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति, वद्धावेत्ता पाहुडं उवणेंति, उवणेत्ता एवं वयासी--अम्हे णं सामी! मिहिलाओ कुंभएणं रण्णा निव्विसया आणत्ता समाणा इह हव्वमागया। तं इच्छामो णं सामी! तुब्भं बाहुच्छायापरिग्गहिया निब्भया निरुव्विग्गा सुहंसुहेणं परिवसिउं।।

१०७. वे स्वर्णकार राजा कुम्भ से निर्वासन का आदेश पाकर, जहां अपने-अपने घर थे, वहां आए। वहां आकर अपने-अपने भाण्ड, भाजन और उपकरणों को लेकर, मिथिला नगरी के बीचोंबीच से होकर निकले। निकलकर विदेह जनपद के बीचोंबीच से होकर निकले। वहां से निकलकर जहां काशी जनपद था, जहां वाराणसी नगरी थी, वहां आए। वहां आकर प्रधान उद्यान में छोटे-बड़े वाहनों को मुक्त किया। मुक्त कर महान अर्थवान यावत् उपहार लिए। उपहार लेकर वाराणसी नगरी के बीचोंबीच से होते हुए, जहां काशीराज शंख था, वहां आए। वहां आकर दोनों हाथों से निष्पन्न सम्पुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर जय-विजय की ध्वनि से राजा का वर्धापन किया। वर्धापन कर उपहार उपहृत किए। उपहृत कर इस प्रकार कहा--स्वामिन! राजा कुम्भ द्वारा मिथिला से निर्वासन का आदेश प्राप्त कर हम तत्काल यहां चले आए। अतः स्वामिन्! हम चाहते हैं कि आपकी बाहुच्छाया से परिगृहीत हो, निर्भीक, निरुद्विग्न और सुखपूर्वक रहें।

१०८. तए णं संखे कासीराया ते सुवण्णगारे एवं वयासी--किं णं तुब्भे देवाणुप्पिया! कुंभएणं रण्णा निव्विसया आणत्ता?

१०८. काशीराज शंख ने उन स्वर्णकारों से इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! किस कारण से राजा कुम्भ ने तुम्हें निर्वासन का आदेश दिया?

१०९. तए णं ते सुवण्णगारा संखं कासीरायं एवं वयासी--एवं खलु सामी! कुंभगस्स रण्णो धूयाए पभावईए देवीए अत्तयाए मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए कुंडलजुयलस्स संधी विसंघडिए। तए णं से

१०९. उन स्वर्णकारों ने काशीराज शंख से इस प्रकार कहा--स्वामिन्! राजा कुम्भ की पुत्री प्रभावती देवी की आत्मजा विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली के कुण्डल-युगल की सन्धि खुल गयी। तब उस राजा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुंभए राया सुवण्णगारसेणिं सद्दावेइ जाव निव्विसया आणत्ता। तं एएणं कारणेणं सामी! अम्हे कुंभएणं रण्णा निव्विसया आणत्ता।।

कुम्भ ने स्वर्णकार श्रेणि को बुलाया यावत् हमें निर्वासन का आदेश दे दिया। स्वामिन्! इस कारण से राजा कुम्भ ने हमें निर्वासन का आदेश दिया।

११०. तए णं से संखे कासीराया सुवण्णगारे एवं वयासी--केरिसिया णं देवाणुप्पिया! कुंभगस्स रण्णो धूया पभावईदेवीए अत्तया मल्ली विदेहरायवरकन्ना?

११०. उस काशीराज शंख ने स्वर्णकारों से इस प्रकार कहा—कैसी है देवानुप्रियो! राजा कुम्भ की पुत्री प्रभावती देवी की आत्मजा विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली?

१११. तए णं ते सुवण्णगारा संखं कासीरायं एवं वयासी--नो खलु सामी! अण्णा कावि तारिसिया देवकन्ना वा असुरकन्ना वा नागकन्ना वा जक्खकन्ना वा गंधव्वकन्ना वा रायकन्ना वा जारिसिया णं मल्ली विदेहवररायकन्ना।।

१११. वे स्वर्णकार काशीराज शंख से इस प्रकार बोले--स्वामिन्! अन्य कोई भी देवकन्या, असुरकन्या, नागकन्या, यक्षकन्या, गन्धर्वकन्या अथवा राजकन्या वैसी नहीं है जैसी विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली है।

११२. तए णं से संखे कासीराया कुंडल-जणिय-हासे दूयं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--जाव मल्लिं विदेहरायवरकन्नं मम भारियत्ताए वरेहि, जइ वि य णं सा सयं रज्जसुंका।।

११२. काशीराज शंख के मन में कुण्डल के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। उसने दूत को बुलाया। उसे बुलाकर इस प्रकार कहा--यावत् विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली को मेरी भार्या के रूप में वरण करो। फिर उसका मूल्य राज्य जितना भी क्यों न हो।

११३. तए णं से दूए संखेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे जेणेव मिहिला नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।।

११३. शंख द्वारा ऐसा कहने पर हृष्ट तुष्ट होकर दूत ने यावत् प्रस्थान किया।

अदीणसत्तु-राय-पदं

अदीनशत्रुराज-पद

११४. तेणं कालेणं तेणं समएणं कुरुनामं जणवए होत्था। तत्थ णं हत्थिणाउरे नामं नयरे होत्था। तत्थ णं अदीणसत्तू नामं राया होत्था जाव पसासेमाणे विहरइ।।

११४. उस काल और उस समय कुरु नाम का जनपद था। वहां हस्तिनापुर नाम का नगर था। अदीनशत्रु नाम का राजा था यावत् वह राज्य का प्रशासन करता हुआ विहार कर रहा था।

११५. तत्थ णं मिहिलाए तस्स णं कुंभगस्स रण्णो पुत्ते पभावईए देवीए अत्तए मल्लीए अणुमग्गजायए मल्लदिन्ने नामं कुमारे सुकुमालपाणिपाए जाव जुवराया यावि होत्था।।

११५. उस मिथिला में राजा कुम्भ का पुत्र, प्रभावती देवी का आत्मज, मल्ली का अनुजात मल्लदत्त नाम का कुमार था। वह सुकुमार हाथ-पावों वाला यावत् युवराज भी था।

११६. तए णं मल्लदिन्ने कुमारे अण्णया कयाइ कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुब्भे मम पमदवणंसि एगं महं चित्तसभं करेह--अणेगखंभसयसण्णिविट्ठं एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। तेवि तहेव पच्चप्पिणंति।।

११६. किसी समय मल्लदत्त कुमार ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--जाओ, तुम मेरे प्रमदवन में एक महान चित्रसभा कराओ। वह अनेक शत खम्भों पर सन्निविष्ट हो। इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो। उन्होंने भी वैसे ही प्रत्यर्पित किया।

११७. तए णं से मल्लदिन्ने कुमारे चित्तगर-सेणिं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--तुब्भे णं देवाणुप्पिया! चित्तसभं हाव-भाव-विलास-बिब्बोयकलिएहिं रूवेहिं चित्तेह, चित्तेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।।

११७. मल्लदत्त कुमार ने चित्रकार श्रेणि को बुलाया। उसे बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम चित्र सभा को हाव-भाव-विलास और विब्बोक (दर्पवश इष्ट वस्तु में अनादर का भाव) युक्त[२२] रूपों से चित्रित करो। चित्रित कर इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो।

११८. तए णं सा चित्तगर-सेणी एयमट्ठं तहत्ति पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता

११८. चित्रकार-श्रेणि ने इस अर्थ को 'तथेति' कहकर स्वीकार किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जेणेव सयाइं गिहाइं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तूलियाओ वण्णए य गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव चित्तसभा तेणेव अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता भूमिभागे विरचति, विरचित्ता भूमिं सज्जेइ, सज्जेत्ता चित्तसभं हाव-भाव-विलास-बिब्बोयकलिएहिं रूवेहिं चित्तेउं पयत्ता यावि होत्था।।

स्वीकार कर जहां अपने घर थे वहां आयी। वहां आकर तूलिकाएं और रंग लिए। लेकर जहां चित्रसभा थी, वहां प्रवेश किया। प्रवेश कर भूमिभाग पर विभिन्न रचनाएं (रेखांकन) की। रचना कर भूमि को सज्जित (चित्रकर्म योग्य) किया। सज्जित कर चित्र सभा को हाव-भाव-विलास और बिब्बोक युक्त रूपों से चित्रित करने के लिए प्रयत्नशील हो गई।

११९. तए णं एगस्स चित्तगरस्स इमेयारूवा चित्तगर-लद्धी लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया--जस्स णं दुपयस्स वा चउप्पयस्स वा अपयस्स वा एगदेसमवि पासइ, तस्स णं देसाणुसारेणं तयाणुरूवं निव्वत्तेइ।।

११९. एक चित्रकार को यह विशेष प्रकार की चित्रकार लब्धि उपलब्ध, प्राप्त और अभिसमन्वागत थी--जिस द्विपद, चतुष्पद अथवा अपद के एक भाग को भी देखता तो उस एक भाग के अनुसार उसका तदनुरूप चित्र बना लेता।

१२०. तए णं से चित्तगरे मल्लीए जवणियंतरियाए जालंतरेण पायंगुट्ठं पासइ। तए णं तस्स चित्तगरस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था--सेयं खलु ममं मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए पायंगुट्ठाणुसारेणं सरिसगं सरित्तयं सरिव्वयं सरिसलावण्ण-रूव-जोव्वण-गुणोववेयं रूवं निव्वत्तित्तए--एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता भूमिभागं सज्जेइ, सज्जेत्ता मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए पायंगुट्ठाणुसारेणं सरिसगं जाव रूवं निव्वत्तेइ।।

१२०. उस चित्रकार ने गवाक्ष से यवनिका के भीतर बैठी मल्ली के पांव का अंगूठा देखा। उस चित्रकार के मन में इस प्रकार का आन्तरिक यावत् संकल्प उत्पन्न हुआ--मेरे लिए उचित है, मैं विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली के पांव के अंगूठे के अनुसार उसी के सदृश, समान त्वचा, समान वय, समान लावण्य, रूप, यौवन और गुणों से युक्त रूप का आलेखन करूं। उसने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर भूमिभाग को सज्जित (चित्रकर्म योग्य) किया। सज्जित कर विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली के पांव के अंगूठे के अनुसार उसी के सदृश यावत् रूप का आलेखन कर दिया।

१२१. तए णं सा चित्तगर-सेणी चित्तसभं हाव-भाव-विलास-बिब्बोयकलिएहिं रूवेहिं चित्तेइ, चित्तेत्ता जेणेव मल्लदिन्ने कुमारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणइ।।

१२१. उस चित्रकार श्रेणि ने उस चित्रसभा को हाव-भाव-विलास और बिब्बोक युक्त रूपों से चित्रित किया। चित्रित कर जहां मल्लदत्त कुमार था, वहां आयी। वहां आकर इस आज्ञा को प्रत्यर्पित किया।

१२२. तए णं से मल्लदिन्ने कुमारे चित्तगर-सेणिं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता विपुलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयइ, दलइत्ता पडिविसज्जेइ।।

१२२. कुमार मल्लदत्त ने उस चित्रकार श्रेणि को सत्कृत किया, सम्मानित किया। सत्कृत-सम्मानित कर विपुल जीविका योग्य प्रीतिदान दिया। प्रीतिदान देकर उसे विसर्जित कर दिया।

१२३. तए णं से मल्लदिन्ने कुमारे ण्हाए अंतेउर-परियाल-संपरिवुडे अम्मधाईए सद्धिं जेणेव चित्तसभा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चित्तसभं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता हाव-भाव-विलास-बिब्बोय-कलियाइं रूवाइं पासमाणे-पासमाणे जेणेव मल्लीए विदेहरायवर-कन्नाए तयाणुरूवे रूवे निव्वत्तिए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।।

१२३. कुमार मल्लदत्त स्नान कर अन्तःपुर परिवार से संपरिवृत हो, धायमाता के साथ जहां वह चित्रसभा थी वहां आया। वहां आकर चित्रसभा में प्रवेश किया। प्रवेश कर हाव, भाव, विलास और बिब्बोक से युक्त रूपों को देखता-देखता जहां विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली का जो तदनुरूप चित्र आलेखित था, उधर जाने का निश्चय किया।

१२४. तए णं से मल्लदिन्ने कुमारे मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए तयाणुरूवं रूवं निव्वत्तियं पासइ, पासित्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था--एस णं मल्ली विदेहरायवरकन्ने त्ति कट्टु लज्जिए विलिए वेड्डे सणियं-सणियं पच्चोसक्कइ।।

१२४. वहां कुमार मल्लदत्त ने विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली का जो तदनुरूप चित्र आलेखित था, उसे देखा। उसे देखकर उसके मन में इस प्रकार का आन्तरिक यावत् संकल्प उत्पन्न हुआ--यह तो विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली है--ऐसा सोचकर वह लज्जित, व्रीड़ित और अपमानित[११] अनुभव करता हुआ धीरे-धीरे वहां से सरक गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२५. तए णं तं मल्लदिन्नं कुमारं अम्मधाई सणियं-सणियं पच्चोसक्कंतं पासित्ता एवं वयासी--किण्णं तुमं पुत्ता! लज्जिए विलिए वेड्डे सणियं-सणियं पच्चोसक्कसि?

१२५. कुमार मल्लदत्त को चित्रसभा से धीरे-धीरे सरकते हुए देखकर उसकी धायमाता ने पूछा--पुत्र! तू लज्जित, व्रीडित और अपमानित अनुभव करता हुआ चित्रसभा से धीरे-धीरे क्यों सरक रहा है?

१२६. तए णं से मल्लदिन्ने कुमारे अम्मधाइं एवं वयासी--जुत्तं णं अम्मो! मम जेट्ठाए भगिणीए गुरु-देवयभूयाए लज्जणिज्जाए मम चित्तसभं अणुपविसित्तए?

१२६. मल्लदत्त कुमार ने धायमाता से इस प्रकार कहा--अम्मा! जिससे लज्जा करना उचित है, उस देव और गुरु तुल्य ज्येष्ठ भगिनी के रहते, चित्रसभा में प्रवेश करना क्या मेरे लिए उचित है?

१२७. तए णं अम्मधाई मल्लदिन्नं कुमारं एवं वयासी--नो खलु पुत्ता! एस मल्ली विदेहरायवरकन्ना। एस णं मल्लीए विदेहरायवर-कन्नाए चित्तगरएणं तयाणुरूवे रूवे निव्वत्तिए।।

१२७. धायमाता ने कुमार मल्लदत्त से इस प्रकार कहा--पुत्र! यह विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली नहीं है। यह तो चित्रकार द्वारा आलेखित विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली का उसी जैसा चित्र है।

१२८. तए णं से मल्लदिन्ने कुमारे अम्मधाईए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते एवं वयासी--केस णं भो! से चित्तारए अपत्थियपत्थए, दुरंत-पंत-लक्खणे, हीणपुण्णचाउद्दसिए, सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति-परिवज्जिए, जे णं मम जेट्ठाए भगिणीए गुरु-देवयभूयाए लज्जणिज्जाए मम चित्तसभाए तयाणुरूवे रूवे निव्वत्तिए त्ति कट्टु तं चित्तगरं वज्झं आणवेइ।।

१२८. धायमाता से इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर कुमार मल्लदत्त क्रोध से तमतमा उठा। वह इस प्रकार बोला--कौन है रे! वह अप्रार्थित का प्रार्थी, दुरन्त प्रान्त लक्षण, हीन पुण्य चातुर्दशिक, श्री, ह्री धृति और कीर्ति से शून्य, चितेरा जिसने, जिससे लज्जा करना उचित है उस देव और गुरु तुल्य ज्येष्ठ भगिनी का उसी के सदृश चित्र मेरी चित्रसभा में आलेखित किया है। ऐसा कहकर उसने उस चित्रकार के वध का आदेश दे दिया।

१२९. तए णं सा चित्तगर-सेणी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा जेणेव मल्लदिन्ने कुमारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ वद्धावेत्ता एवं वयासी--एवं खलु सामी! तस्स चित्तगरस्स इमेयारूवा चित्तगर-लद्धी लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया--जस्स णं दुपयस्स वा चउप्पयस्स वा अपयस्स वा एगदेसमवि पासइ, तस्स णं देसाणुसारेणं तयाणुरूवं रूवं निव्वत्तेइ। तं मा णं सामी! तुब्भे तं चित्तगरं वज्झं आणवेह। तं तुब्भे णं सामी! तस्स चित्तगरस्स अण्णं तयाणुरूवं दंडं निव्वत्तेह।।

१२९. जब उस चित्रकार श्रेणि को इस बात का पता चला तब वह जहां कुमार मल्लदत्त था, वहां आयी। वहां आकर दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर अञ्जलि को मस्तक पर टिकाकर जय-विजय की ध्वनि से वर्धापन किया। वर्धापन कर इस प्रकार कहा--स्वामिन्! उस चित्रकार को यह विशिष्ट चित्रकार-लब्धि लब्ध, प्राप्त और अभिसमन्वागत है। वह जिस द्विपद, चतुष्पद अथवा अपद के एक भाग को भी देख लेता है, उस एक भाग के अनुसार तदनुरूप चित्र बना लेता है। इसलिए स्वामिन्! तुम उस चित्रकार को वध का आदेश मत दो। स्वामिन्! तुम उस चित्रकार को तदनुरूप अन्य दण्ड दे दो।

१३०. तए णं से मल्लदिन्ने कुमारे तस्स चित्तगरस्स संडासगं छिंदावेइ, छिंदावेत्ता निव्विसयं आणवेइ।।

१३०. कुमार मल्लदत्त ने उस चित्रकार के संडासग (अंगूठे और अंगुली के पकड़ का भाग) का छेदन करवा दिया। छेदन करवाकर उसे निर्वासन का आदेश दे दिया।

१३१. तए णं से चित्तगरे मल्लदिन्नेणं कुमारेणं निव्विसए आणत्ते समाणे सभंडमत्तोवगरणमायाए मिहिलाओ नयरीओ निक्खमइ, निक्खमित्ता विदेहस्स जणवयस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव कुरुजणवए जेणेव हत्थिणाउरे नयरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भंडनिक्खेवं करेइ, करेत्ता चित्तफलगं सज्जेइ, सज्जेत्ता मल्लीए

१३१. चित्रकार कुमार मल्लदत्त द्वारा निर्वासन का आदेश प्राप्त कर, अपने भाण्ड, भाजन और उपकरण लेकर मिथिला नगरी से निकला। निकलकर विदेह जनपद के बीचोंबीच से होता हुआ वहां कुरु जनपद था, जहां हस्तिनापुर नगर था, वहां आया। जहां आकर भाण्ड रखे, रखकर चित्रपट को सज्जित किया। सज्जित कर विदेह की प्रवर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विदेहरायवरकन्नाए पायंगुट्ठाणुसारेण रूवं निव्वत्तेइ, निव्वत्तेत्ता कक्खंतरंसि छुब्भइ, छुब्भित्ता महत्थं जाव पाहुडं गेण्हइ, गेण्हित्ता हत्थिणाउरस्स नयरस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव अदीणसत्तू राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ , वद्धावेत्ता पाहुडं उवणेइ, उवणेत्ता एवं वयासी--एवं खलु अहं सामी! मिहिलाओ रायहाणीओ कुंभगस्स रण्णो पुत्तेण पभावईए देवीए अत्तएणं मल्लदिन्नेणं कुमारेणं निव्विसए आणत्ते समाणे इहं हव्वमागए। तं इच्छामि णं सामी! तुब्भं बाहुच्छाया-परिग्गहिए निब्भए निरुव्विग्गे सुहंसुहेणं परिवसित्तए।।

राजकन्या मल्ली का उसके पांव के अंगूठे के अनुसार चित्र बनाया। चित्र बनाकर उसे बगल में रखा। रखकर महान अर्थवान यावत् उपहार लिए। उपहार लेकर हस्तिनापुर नगर के बीचोंबीच से होता हुआ जहां अदीनशत्रु राजा था, वहां आया। वहां आकर सिर पर प्रदक्षिणा करती अञ्जलि को मस्तक पर टिकाकर जय-विजय की ध्वनि से वर्धापन किया। वर्धापन कर उपहार उपहृत किया। उपहृत कर इस प्रकार बोला--स्वामिन्! मैं मिथिला नगरी से राजा कुम्भ के पुत्र, प्रभावती देवी के आत्मज कुमार मल्लदत्त द्वारा निर्वासन का आदेश प्राप्त कर यहां चला आया। अतः स्वामिन्! मैं चाहता हूं तुम्हारी बाहुच्छाया से परिगृहीत हो, निर्भीक, निरुद्विग्न सुखपूर्वक रहूं।

१३२. तए णं से अदीणसत्तू राया तं चित्तगरं एवं वयासी--किण्णं तुमं देवाणुप्पिया! मल्लदिन्नेणं निव्विसए आणत्ते?

१३२. राजा अदीनशत्रु ने उस चित्रकार से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! किस कारण से मल्लदत्त ने तुझे निर्वासन का आदेश दिया?

१३३. तए णं से चित्तगरे अदीणसत्तुं रायं एवं वयासी--एवं खलु सामी! मल्लदिन्ने कुमारे अण्णया कयाइ चित्तगर-सेणिं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--तुब्भे णं देवाणुप्पिया! मम चित्तसभं हाव-भाव-विलास-बिब्बोयकलिएहिं रूवेहिं चित्तेह तं चेव सव्वं भाणियव्वं जाव मम संडासगं छिंदावेइ, छिंदावेत्ता निव्विसयं आणवेइ। एवं खलु अहं सामी! मल्लदिन्नेणं कुमारेणं निव्विसए आणत्ते।।

१३३. चित्रकार ने राजा अदीनशत्रु से इस प्रकार कहा--स्वामिन्! कुमार मल्लदत्त ने किसी समय चित्रकार-श्रेणि को बुलाया। उसे बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम मेरी चित्रसभा को हाव-भाव-विलास और बिब्बोक युक्त रूपों से चित्रित करो, वही सब कथनीय है यावत् मेरे संडासग (अंगूठा और अंगुली की पकड़) का छेदन करवा दिया। छेदन करवाकर निर्वासन का आदेश दे दिया। इस प्रकार स्वामिन्! कुमार मल्लदत्त द्वारा मुझे निर्वासन का आदेश दिया गया।

१३४. तए णं अदीणसत्तू राया तं चित्तगरं एवं वयासी--से केरिसए णं देवाणुप्पिया! तुमे मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए तयाणुरूवे रूवे निव्वत्तिए।।

१३४. अदीनशत्रु राजा ने उस चित्रकार से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! तूने विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली का जो तदनुरूप चित्र बनाया है, वह कैसा है?

१३५. तए णं से चित्तगरे कक्खंतराओ चित्तफलगं नीणेइ, नीणेत्ता अदीणसत्तुस्स उवणेइ, उवणेत्ता एवं वयासी--एस णं सामी मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए तयाणुरूवस्स रूवस्स केइ आगार-भाव-पडोयारे निव्वत्तिए। नो खलु सक्का केणइ देवेण वा दाणवेण वा जक्खेण वा रक्खसेण वा किन्नरेण वा किंपुरिसेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए तयाणुरूवे रूवे निव्वत्तित्तए।।

१३५. चित्रकार ने बगल से वह चित्रपट निकाला। निकालकर अदीनशत्रु के सामने प्रस्तुत किया। प्रस्तुत कर इस प्रकार कहा--स्वामिन्! विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली के तदनुरूप रूप की आकृति और चेष्टा को मैंने इस चित्रपट पर उभारा है। वस्तुतः किसी भी देव, दानव, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महोरग अथवा गन्धर्व के द्वारा विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली का यथार्थ चित्र बनाना शक्य नहीं है।

१३६. तए णं से अदीणसत्तू पडिरूव-जणिय-हासे दूयं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--जाव मल्लिं विदेहरायवरकन्नं मम भारियत्ताए वरेहि, जइ वि य णं सा सयं रज्जसुंका।।

१३६. तब अदीनशत्रु के मन में उस प्रतिच्छवि के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया। उसने दूत को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--यावत् विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली को मेरी भार्या के रूप में वरण करो। फिर उसका मूल्य राज्य जितना भी क्यों न हो?

१३७. तए णं से दूए अदीणसत्तुणा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे जाव जेणेव मिहिला नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।।

१३७. अदीनशत्रु के ऐसा कहने पर हृष्ट तुष्ट हुए दूत ने जहां मिथिला नगरी थी, उधर प्रस्थान किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जियसत्तु-राय-पदं

१३८. तेणं कालेणं तेणं समएणं पंचाले जणवए। कंपिल्लपुरे नयरे। जियसत्तू नामं राया पंचालाहिवई। तस्स णं जियसत्तुस्स धारिणीपामोक्खं देवीसहस्सं ओरोहे होत्था।।

१३९. तत्थ णं मिहिलाए चोक्खा नामं परिव्वाइया--रिउव्वेय-यज्जुव्वेद-सामवेद-अहव्वणवेद-इतिहासपंचमाणं निघंटुछट्ठाणं संगोवंगाणं सरहस्साणं चउण्हं वेदाणं सारगा जाव बंभण्णएसु य, सत्थेसु सुपरिणिट्ठिया यावि होत्था।।

१४०. तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया मिहिलाए बहूणं राईसर जाव सत्थवाहपभिईणं पुरओ दाणधम्मं च सोयधम्मं च तित्थाभिसेयं च आघवेमाणी पण्णवेमाणी परूवेमाणी उवदंसेमाणी विहरइ।।

१४१. तए णं सा चोक्खा अण्णया कयाइं तिदंडं च कुंडियं च जाव धाउरत्ताओ य गेण्हइ, गेण्हित्ता परिव्वाइगावसहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता पविरल-परिव्वाइया-सद्धिं संपरिवुडा मिहिलं रायहाणिं मज्झंमज्झेणं जेणेव कुंभगस्स रण्णो भवणे जेणेव कन्नंतेउरे जेणेव मल्ली विदेहरायवरकन्ना तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता उदयपरिफोसियाए दब्भोवरिपच्चत्थुयाए भिसियाए निसीयइ, निसीइत्ता मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए पुरओ दाणधम्मं च सोयधम्मं च तित्थाभिसेयं च आघवेमाणी पण्णवेमाणी परूवेमाणी उवदंसेमाणी विहरइ।।

१४२. तए णं मल्ली विदेहरायवरकन्ना चोक्खं परिव्वाइयं एवं वयासी--तुब्भण्णं चोक्खे! किंमूलए धम्मे पण्णत्ते?

१४३. तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया मल्लिं विदेहरायवरकन्नं एवं वयासी--अम्हं णं देवाणुप्पिए! सोयमूलए धम्मे पण्णत्ते। जं णं अम्हं किंचि असुई भवइ तं णं उदएण य मट्टियाए य सुई भवइ। एवं खलु अम्हे जलाभिसेय-पूयप्पाणो अविग्घेण सग्गं गच्छामो।।

१४४. तए णं मल्ली विदेहरायवरकन्ना चोक्खं परिव्वाइयं एवं वयासी--चोक्खे! से जहानामए केइ पुरिसे रुहिरकयं वत्थं रुहिरेणं चेव धोवेज्जा, अत्थि णं चोक्खे! तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स रुहिरेणं धोव्वमाणस्स काइ सोही?

नो इणट्ठे समट्ठे।

एवामेव चोक्खे! तुब्भण्णं पाणाइवाएणं जाव मिच्छादंसण-

जितशत्रुराज-पद

१३८. उस काल और उस समय पाञ्चाल जनपद। काम्पिल्यपुर नगर। पाञ्चाल का अधिपति जितशत्रु नाम का राजा था उस जितशत्रु राजा के अन्तःपुर में धारिणी प्रमुख हजार देवियां थी।

१३९. उस मिथिला में चोक्षा नाम की परिव्राजिका थी। वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद--ये चार वेद, पांचवां इतिहास और छठा निघण्टु-इनकी सांगोपांग-रहस्य सहित सारक (प्रवर्तक) यावत् ब्राह्मण नय संबंधी ग्रन्थों में निष्णात थी।

१४०. वह चोक्षा परिव्राजिका मिथिला में बहुत से राजा, ईश्वर यावत् सार्थवाह आदि के सामने दान धर्म, शौच धर्म और तीर्थाभिषेक का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण और उपदर्शन करती हुई विहार करती थी।

१४१. किसी समय चोक्षा परिव्राजिका ने त्रिदण्ड, कुण्डिका आदि उपकरण लिए यावत् गेरुए वस्त्रों को धारण किया। धारण कर परिव्राजिकामठ से निष्क्रमण किया। वहां से निष्क्रमण कर कुछ परिव्राजिकाओं के साथ, उनसे परिवृत हो, वह मिथिला राजधानी के बीचोंबीच होती हुई जहां राजा कुम्भ का भवन था, जहां कन्याओं का अन्तःपुर था, जहां विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली थी, वहां आयी। वहां आकर वह जल-सिक्त डाभ पर बिछी वृषिका पर बैठ गई। बैठकर विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली के सामने दान धर्म, शौच धर्म और तीर्थाभिषेक का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण और उपदर्शन करती हुई विहार करने लगी।

१४२. विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली ने परिव्राजिका चोक्षा से इस प्रकार कहा--चोक्षे! तुम्हारे धर्म का मूल क्या है?

१४३. चोक्षा परिव्राजिका ने विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! हमारे शौचमूलक धर्म प्रज्ञप्त है। हमारी जो कोई वस्तु अशुचि होती है, वह उदक और मिट्टी से शुचि हो जाती है। इस प्रकार हम जलाभिषेक से पवित्र आत्मा बन निर्विघ्न स्वर्ग जाते हैं।

१४४. विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली ने परिव्राजिका चोक्षा से इस प्रकार कहा--चोक्षे! जैसे कोई पुरुष खून से सने वस्त्र को खून से ही धोए तो चोक्षे! उस खून से सने और खून से ही धुले वस्त्र की कोई शुद्धि होती है?

यह अर्थ समर्थ नहीं है।

इस प्रकार चोक्षे! प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शन शल्य से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सल्लेणं नत्थि काइ सोही, जहा तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स रुहिरेणं चेव धोव्वमाणस्स।।

तुम्हारी भी कोई शुद्धि नहीं होती। जैसे खून से सने वस्त्र की शुद्धि खून से ही धोने पर नहीं होती।

१४५. तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए एवं वुत्ता समाणी संकिया कंखिया वितिगिंछिया भेयसमावण्णा जाया यावि होत्था, मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए नो संचाएइ किंचिवि पामोक्खमाइक्खित्तए, तुसिणीया संचिट्ठइ।।

१४५. विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली के ऐसा कहने पर वह चोक्षा परिव्राजिका शंकित, कांक्षित, विचिकित्सा प्राप्त और भेदसमापन्न हो गई। वह विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली के प्रश्नों का कोई उत्तर[१४] नहीं दे पाई, अतः मौन हो गई।

१४६. तए णं तं चोक्खं मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए बहूओ दासचेडीओ हीलेंति निंदंति खिंसंति गरिहंति, अप्पेगइयाओ हेरुयालेंति अप्पेगइयाओ मुहमक्कडियाओ करेंति अप्पेगइयाओ वग्घाडियाओ करेंति अप्पेगइयाओ तज्जेमाणीओ तालेमाणीओ निच्छुहंति।।

१४६. विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली की बहुत सी दास-चेटियों ने चोक्षा की अवहेलना, निन्दा, कुत्सा और गर्हा की।[१५] कुछ ने उसको कुपित किया। किसी ने मुंह बनाया। कोई ठहाका मारकर हंसने लगीं और कोई उसकी तर्जना-ताड़ना करती हुई बाहर निकल गई।

१४७. तए णं सा चोक्खा मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए दासचेडियाहिं हीलिज्जमाणी निंदिज्जमाणी खिंसिज्जमाणी गरहिज्जमाणी आसुरुत्ता जाव मिसिमिसेमाणी मल्लीए विदेहरायवरकन्नयाए पओसमावज्जइ, भिसियं गेण्हइ, गेण्हित्ता कन्नंतेउराओ पडिणिक्खमई, पडिणिक्खमित्ता मिहिलाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता परिव्वाइया-संपरिवुडा जेणेव पंचालजणवए जेणेव कंपिल्लपुरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बहूणं राईसर जाव सत्थवाहपभिईणं पुरओ दाणधम्मं च सोयधम्मं च तित्थाभिसेयं च आघवेमाणी पण्णवेमाणी परूवेमाणी उवदंसेमाणी विहरइ।।

१४७. विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली की दास-चेटियों द्वारा हीलित निन्दित, कुत्सित, गर्हित होने के कारण वह चोक्षा क्रोध से तमतमा उठी यावत् क्रोध से जलती उसने विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली पर प्रद्वेष किया। उसने वृषिका को उठाया। उसे उठाकर कन्याओं के अन्तःपुर से वापस निकल गई। वहां से निकलकर मिथिला से निष्क्रमण किया। निष्क्रमण कर परिव्राजिकाओं से परिवृत हो, जहां पाञ्चाल जनपद था, जहां काम्पिल्यपुर नगर था, वहां आयी। वहां आकर बहुत से राजा, ईश्वर यावत् सार्थवाह आदि के सामने दानधर्म, शौचधर्म और तीर्थाभिषेक का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण और उपदर्शन करती हुई विहार करने लगी।

१४८. तए णं से जियसत्तू अण्णया कयाइ अंतो अंतेउर-परियाल-सद्धिं संपरिवुडे सीहासणवरगए यावि विहरइ।।

१४८. किसी समय वह जितशत्रु राजा अपने अन्तरंग अन्तःपुर परिवार के साथ, उससे परिवृत हो प्रवर सिंहासन पर बैठा हुआ था।

१४९. तए णं सा चोक्खा, परिव्वाइया-संपरिवुडा जेणेव जियसत्तुस्स रण्णो भवणे जेणेव जियसत्तू राया तेणेव अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जियसत्तुं जएणं विजएणं वद्धावेइ।।

१४९. परिव्राजिकाओं से परिवृत चोक्षा ने जहां राजा जितशत्रु का भवन था, जहां राजा जितशत्रु था, वहां प्रवेश किया। वहां प्रवेश कर जय-विजय की ध्वनि से जितशत्रु का वर्धापन किया।

१५०. तए णं से जियसत्तू चोक्खं परिव्वाइयं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता चोक्खं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता आसणेणं उवनिमंतेइ।।

१५०. जितशत्रु ने आती हुई परिव्राजिका चोक्षा को देखा। देखकर सिंहासन से उठा। उठकर चोक्षा को सत्कृत किया। सम्मानित किया। सत्कृत-सम्मानित कर आसन से उपनिमन्त्रित किया।

१५१. तए णं सा चोक्खा उदगपरिफोसियाए दब्भोवरिपच्चत्थुयाए भिसियाए निविसइ, निविसित्ता जियसत्तुं रायं रज्जे य रट्ठे य कोसे य कोट्ठागारे य बले य वाहणे य पुरे य अंतेउरे य कुसलोदंतं पुच्छइ।।

१५१. वह चोक्षा जल-सिक्त डाभ पर बिछी वृषिका पर बैठ गई। बैठकर उसने राजा जितशत्रु से राज्य, राष्ट्र, कोष, कोष्ठागार, बल, वाहन, पुर और अन्तःपुर के विषय में कुशल-समाचार पूछे।

१५२. तए णं सा चोक्खा जियसत्तुस्स रण्णो दाणधम्मं च सोयधम्मं च तित्थाभिसेयं च आघवेमाणी पण्णवेमाणी परूवेमाणी उवदंसेमाणी विहरइ।।

१५२. चोक्षा राजा जितशत्रु के सामने दानधर्म, शौचधर्म और तीर्थाभिषेक का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण और उपदर्शन करती हुई विहार करने लगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५३. तए णं से जियसत्तू अप्पणो ओरोहंसि जायविम्हए चोक्खं एवं वयासी--तुमं णं देवाणुप्पिया! बहूणि गामागर जाव सण्णिवेसंसि आहिंडसि, बहूण य राईसर-सत्थवाहप्पभिईणं गिहाइं अणुप्पविससि, तं अत्थियाइं ते कस्सइ रण्णो वा ईसरस्स वा कहिंचि एरिसए ओरोहे दिट्ठपुव्वे, जारिसए णं इमे मम ओरोहे?

१५४. तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया जियसत्तुणा एवं वुत्ता समाणी ईसिं विहसियं करेइ, करेत्ता एवं वयासी--सरिसए णं तुमं देवाणुप्पिया! तस्स अगडदद्दुरस्स।

के णं देवाणुप्पिए! से अगडदद्दुरे?

जियसत्तू! से जहानामए अगडदद्दुरे सिया। सेणं तत्थ जाए तत्थेव वुड्ढे अण्णं अगडं वा तलागं वा दहं वा सरं वा सागरं वा अपासमाणे मण्णइ--अयं चेव अगडे वा तलागे वा दहे वा सरे वा सागरे वा।

तए णं तं कूवं अण्णे सामुद्दए दद्दुरे हव्वमागए।

तए णं से कूवदद्दुरे तं सामुद्दयं दद्दुरं एवं वयासी--से के तुमं देवाणुप्पिया! कत्तो वा इह हव्वमागए?

तए णं से सामुद्दए दद्दुरे तं कूवदद्दुरं एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! अहं सामुद्दए दद्दुरे।

तए णं से कूवदद्दुरे तं सामुद्दयं दद्दुरं एवं वयासी--केमहालए णं देवाणुप्पिया! से समुद्दे?

तए णं से सामुद्दए दद्दुरे तं कूवदद्दुरं एवं वयासी--महालए णं देवाणुप्पिया! समुद्दे।

तए णं से कूवदद्दुरे पाएणं लीहं कड्ढेइ, कड्ढेत्ता एवं वयासी--एमहालए णं देवाणुप्पिया! से समुद्दे?

नो इणट्ठे समट्ठे। महालए णं से समुद्दे।

तए णं से कूवदद्दुरे पुरत्थिमिल्लाओ तीराओ उप्फिडित्ता णं पच्चत्थिमिल्लं तीरं गच्छइ, गच्छित्ता एवं वयासी--एमहालए णं देवाणुप्पिया! से समुद्दे?

नो इणट्ठे समट्ठे।

एवामेव तुमंपि जियसत्तू अण्णेसिं बहूणं राईसर जाव सत्थवाहप्पभिईणं भज्जं वा भगिणिं वा धूयं वा सुण्हं वा अपासमाणे जाणसि जारिसए मम चेव णं ओरोहे, तारिसए नो अण्णेसिं।

तं एवं खलु जियसत्तू! मिहिलाए नयरीए कुंभगस्स धूया पभावईए अत्तया मल्ली नामं विदेहरायवरकन्ना रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा, नो खलु अण्णा काइ (तारिसिया?) देवकन्ना वा असुरकन्ना वा नागकन्ना वा जक्खकन्ना वा गंधव्वकन्ना वा रायकन्ना वा जारिसिया मल्ली विदेहरायवरकन्ना (तीसे?) छिन्नस्स वि पायंगुट्ठगस्स इमे तवोरोहे सयसहस्सइमंपि कलं न अग्घइ त्ति कट्टु जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।।

१५३. अपने अन्त:पुर में अनुरक्त हुए राजा जितशत्रु ने चोक्षा से इस प्रकार कहा–देवानुप्रिये! तुम बहुत से गांव, आकर यावत् सन्निवेशों में घूमती हो और बहुत से राजा, ईश्वर, सार्थवाह इत्यादि के घरों में प्रवेश करती हो तो क्या तुमने किसी राजा अथवा ईश्वर के कहीं भी ऐसा अन्त:पुर पहले देखा है जैसा मेरा यह अन्त:पुर है?

१५४. जितशत्रु के ऐसा कहने पर परिव्राजिका चोक्षा ने ईषद् हास्य किया। ईषद् हास्य कर उसने इस प्रकार कहा--तुम उस कूप-मण्डूक के समान हो, देवानुप्रिय!

कौन है देवानुप्रिये! वह कूप-मण्डूक?

जितशत्रु! जैसे कोई कूप-मण्डूक था। वह वहीं जन्मा, वहीं बढ़ा और अन्य कूप, तालाब, द्रह, सर अथवा सागर उसने नहीं देखा था। वह मानता था–यही कूप है, यही तालाब है, यही द्रह है, यही सरोवर है और यही सागर है।

उस कूप में दूसरा समुद्र का मेंढ़क आ गया।

उस कूप-मण्डूक ने समुद्र के मेंढ़क से इस प्रकार कहा--कौन हो तुम देवानुप्रिय! कहां से यहां चले आए?

समुद्र के मेंढ़क ने कूप-मण्डूक से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! मैं समुद्र का मेंढ़क हूं।

कूप-मण्डूक ने उस समुद्र के मेंढ़क से इस प्रकार कहा--कितना बड़ा है देवानुप्रिय! वह समुद्र?

समुद्र के मेंढ़क ने कूप-मण्डूक से इस प्रकार कहा--बड़ा है देवानुप्रिय! समुद्र।

कूप-मण्डूक ने पांव से लकीर खींची। खींचकर इस प्रकार कहा--इतना बड़ा है देवानुप्रिय! वह समुद्र?

यह अर्थ समर्थ नहीं है। बड़ा है वह समुद्र।

तब वह कूप-मण्डूक पूर्वी तट से छलांग भर कर पश्चिमी तट पर गया। जाकर इस प्रकार कहा--इतना बड़ा है देवानुप्रिय, वह समुद्र?

यह अर्थ समर्थ नहीं है।

इसी प्रकार तुम भी जितशत्रु! बहुत से राजा, ईश्वर, सार्थवाह इत्यादि की भार्या, भगिनी, पुत्री अथवा पुत्रवधू को बिना देखे यही जानते हो,जैसे मेरा अन्त:पुर है, वैसा दूसरों का नहीं है।

जितशत्रु! मिथिला नगरी में कुम्भ की पुत्री, प्रभावती की आत्मजा मल्ली नाम की विदेह की प्रवर राजकन्या रूप से, यौवन से और लावण्य से उत्कृष्ट तथा उत्कृष्ट शरीर वाली है। अन्य कोई भी देवकन्या, असुरकन्या, नागकन्या, यक्षकन्या, गन्धर्वकन्या अथवा राजकन्या वैसी नहीं है, जैसी विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली। तुम्हारा यह अन्त:पुर तो उसके छिन्न पादांगुष्ठ के लक्षांश में भी नहीं आता--ऐसा कहकर, वह जिस दिशा से आयी थी, उसी दिशा में चली गयी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५५. तए णं से जियसत्तू परिव्वाइया-जणिय-हासे दूयं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--जाव मल्लिं विदेहरायवरकन्नं मम भारियत्ताए वरेहि, जइ वि य णं सा सयं रज्जसुंका ।।

१५५. उस परिव्राजिका ने जितशत्रु के मन में अनुराग उत्पन्न कर दिया। राजा ने दूत को बुलाया। उसे बुलाकर इस प्रकार कहा--यावत् विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली को मेरी भार्या के रूप में वरण करो। फिर उसका मूल्य राज्य जितना भी क्यों न हो?

१५६. तए णं से दूए जियसत्तुणा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे जाव जेणेव मिहिला नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।।

१५६. जितशत्रु के ऐसा कहने पर हृष्ट तुष्ट हुए दूत ने यावत् जहां मिथिला नगरी थी, उस ओर प्रस्थान कर दिया।

दूयाणं संदेस-निवेदण-पदं

दूतों द्वारा सन्देश निवेदन-पद

१५७. तए णं तेसिं जियसत्तुपामोक्खाणं छण्हं राईणं दूया जेणेव मिहिला तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।।

१५७. जितशत्रु प्रमुख उन छहों राजाओं के दूतों ने जहां मिथिला नगरी थी, उस ओर प्रस्थान किया।

१५८. तए णं छप्पि दूयगा जेणेव मिहिला तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता मिहिलाए अग्गुज्जाणंसि पत्तेयं-पत्तेयं खंधावारनिवेसं करेंति, करेत्ता मिहिलं रायहाणिं अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता जेणेव कुंभए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पत्तेयं करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु साणं-साणं राईणं वयणाइं निवेदेंति ।।

१५८. वे छहों दूत जहां मिथिला थी, वहां आए। वहां आकर मिथिला के प्रधान उद्यान में अपनी-अपनी सेना का पड़ाव डाला। पड़ाव डालकर मिथिला राजधानी में प्रवेश किया। प्रवेश कर जहां कुम्भ था, वहां आए। वहां आकर प्रत्येक ने दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर अपने-अपने राजाओं के सन्देश अलग-अलग निवेदित किए।

कुंभएण दूयाणं असक्कार-पदं

कुम्भ द्वारा दूतों का असत्कार-पद

१५९. तए णं से कुंभए तेसिं दूयाणं अंतियं एयमट्ठं सोच्चा आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु एवं वयासी--न देमि णं अहं तुब्भं मल्लिं विदेहरायवरकन्नं ति कट्टु ते छप्पि दूए असक्कारिय असम्माणिय अवद्दारेणं निच्छुभावेइ ।।

१५९. उन दूतों से यह अर्थ सुनकर कुम्भ क्रोध से तमतमा उठा। वह रुष्ट, कुपित, चण्ड और क्रोध से जलता हुआ त्रिवलित भृकुटी को ललाट पर चढ़ाता हुआ इस प्रकार बोला--मैं नहीं देता तुम्हें विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली--ऐसा कहकर उसने छहों दूतों को असत्कृत, असम्मानित कर पार्श्वद्वार से निकलवा दिया।

१६०. तए णं ते जियसत्तुपामोक्खाणं छण्हं राईणं दूया कुंभएणं रण्णा असक्कारिय असम्माणिय अवद्दारेणं निच्छुभाविया समाणा जेणेव सगा-सगा जणवया जेणेव सयाइं-सयाइं नगराइं जेणेव सया-सया रायाणो तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी--एवं खलु सामी! अम्हे जियसत्तुपामोक्खाणं छण्हं राईणं दूया जमगसमगं चेव जेणेव मिहिला तेणेव उवागया जाव अवद्दारेणं निच्छुभावेइ। "तं न देइ णं सामी! कुंभए मल्लिं विदेहरायवरकन्नं" साणं-साणं राईणं एयमट्ठं निवेदेंति ।।

१६०. वे जितशत्रु प्रमुख छहों राजाओं के दूत राजा कुम्भ द्वारा असत्कृत, असम्मानित कर पार्श्वद्वार से निकाल दिये जाने पर वे जहां अपने-अपने जनपद थे, जहां अपने-अपने नगर थे और जहां अपने-अपने राजा थे, वहां आए। वहां आकर सिर पर प्रदक्षिणा करती अञ्जलि को मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार बोले--स्वामिन्! हम जितशत्रु प्रमुख छह राजाओं के दूत एक ही साथ जहां मिथिला थी, वहां गये यावत् वहां हमें पार्श्वद्वार से निकलवा दिया गया। अतः स्वामिन्! राजा कुम्भ विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली को नहीं देता--इस प्रकार अपने-अपने राजा से यह अर्थ निवेदन किया।

जियसत्तुपामोक्खाणं कुंभएणं जुज्झ-पदं

जितशत्रु प्रमुखों का कुम्भ के साथ युद्ध-पद

१६१. तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा छप्पि रायाणो तेसिं दूयाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ता रुट्ठा कुविया चंडिक्किया

१६१. जितशत्रु प्रमुख वे छहों राजा उन दूतों से यह अर्थ सुनकर, अवधारण कर क्रोध से तमतमा उठे। रुष्ट, कुपित, चण्ड और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिसिमिसेमाणा अण्णमण्णस्स दूयसपेसणं करेंति, करेत्ता एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं छण्हं राईणं दूया जमगसमगं चेव मिहिला तेणेव उवागया जाव अवद्दारेणं निच्छूढा। तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! कुंभगस्स जत्तं गेण्हित्तए त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता ण्हाया सण्णद्धा हत्थिखंधरवरगया सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं वीइज्जमाणा महया हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडा सव्विड्ढीए जाव दुंदुभि-नाइयरवेणं सएहिंतो-सएहिंतो नगरेहिंतो निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता एगयओ मिलायंति, जेणेव मिहिला तेणेव पहारेत्थ गमणाए।।

क्रोध से जलते हुए उन्होंने एक दूसरे के पास दूतों को संप्रेषित किया। संप्रेषित कर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! हम छहों राजाओं के दूत एक साथ, जहां मिथिला थी, वहां गये यावत् पार्श्वद्वार से निकलवा दिये गए। अतः देवानुप्रियो! उचित है कुम्भ के साथ युद्ध करने के लिए प्रयाण करें--ऐसा कहकर उन्होंने एक दूसरे के इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। स्वीकार कर, स्नान कर, सन्नद्ध हो, प्रवर हस्ति-स्कन्ध पर आरूढ़ हुए। कटसरैया के फूलों से बनी मालाओं से युक्त छत्र धारण किया। प्रवर श्वेत चामरों से वीजित होते हुए, वे महान अश्व, गज, रथ और प्रवर पदाति योद्धाओं से कलित चतुरंगिणी सेना के साथ उससे परिवृत हो सम्पूर्ण ऋद्धि यावत् दुन्दुभि के निनादित स्वरों के साथ अपने-अपने नगरों से निकले, वहां से निकलकर एक स्थान में मिले और जहां मिथिला थी, उधर प्रस्थान कर दिया।

१६२. तए णं कुंभए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे बलवाउयं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--खिप्पामेव हय-गय-रह-पवरजोहकलियं चाउरंगिणिं सेणं सन्नाहेहि, सन्नाहेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि सेवि जाव पच्चप्पिणति।।

१६२. जब राजा कुम्भ को इस बात का पता चला, तब उसने सेनाध्यक्ष को बुलाया। उसे बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! शीघ्र ही अश्व, गज, रथ और प्रवर पदाति योद्धाओं से कलित चतुरंगिणी सेना को सन्नद्ध करो। सन्नद्ध कर इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो। उसने भी यावत् प्रत्यार्पित किया।

१६३. तए णं कुंभए राया ण्हाए सण्णद्धे हत्थिखंधवरगए सकोरेंटमल्ल-दामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं वीइज्जमाणे महया हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव दुंदुभि-नाइयरवेणं मिहिलं मज्झंमज्झेणं निज्जाइ, निज्जावेत्ता विदेहजणवयं मज्झंमज्झेणं जेणेव देसग्गं तेणेव खंधावारनिवेसं करेइ, करेत्ता जियसत्तुपामोक्खा छप्पि य रायाणो पडिवालेमाणे जुज्झसज्जे पडिचिट्ठइ।।

१६३. राजा कुम्भ स्नान कर, सन्नद्ध हो प्रवर हस्तिस्कन्ध पर आरूढ़ हुआ। कटसरैया के फूलों से बनी मालाओं से युक्त छत्र धारण किया। प्रवर श्वेत चामरों से वीजित होता हुआ महान अश्व, गज, रथ और प्रवर पदाति योद्धाओं से कलित चतुरंगिणी सेना के साथ उससे परिवृत हो, सम्पूर्ण ऋद्धि यावत् दुन्दुभि के निनादित स्वरों के साथ मिथिला के बीचोंबीच से होकर निर्याण किया। निर्याण कर विदेह जनपद के बीचोंबीच होता हुआ जहां देश की सीमा थी, वहां सेना का पड़ाव डाला। पड़ाव डालकर जितशत्रु प्रमुख छहों राजाओं की प्रतीक्षा करता हुआ, युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर बैठ गया।

१६४. तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा छप्पि रायाणो जेणेव कुंभए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता कुंभएण रण्णा सद्धिं संपलग्गा यावि होत्था।।

१६४. जितशत्रु प्रमुख, वे छहों राजा जहां राजा कुम्भ था, वहां आए। वहां आकर वे राजा कुम्भ के साथ युद्ध-संलग्न हो गये।

१६५. तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा छप्पि रायाणो कुंभयं रायं हय-महिय-पवरवीर-घाइय-विवडियचिंध-धय-पडागं किच्छोव-गयपाणं दिसोदिसिं पडिसेहेति।।

१६५. जितशत्रु प्रमुख उन छहों राजाओं ने राजा कुम्भ को हत और मथित कर डाला। उसके प्रवर वीरों को यमधाम पहुंचा दिया। सेना के चिह्न-ध्वजाओं और पताकाओं को गिरा दिया। उसके प्राण संकट में डाल दिए और सब दिशाओं से उसके प्रहारों को विफल कर दिया।[२६]

१६६. तए णं से कुंभए जियसत्तुपामोक्खेहिं छहिं राईहिं हय-महिय-पवरवीर-घाइय-विवडियचिंध-धय-पडागे किच्छोवगयपाणे दिसोदिसिं पडिसेहिए समाणे अत्थामे अबले अवीरिए

१६६. जितशत्रु प्रमुख छहों राजाओं द्वारा राजा कुम्भ हत और मथित हो गया। उसके प्रवर वीर युद्ध में काम आ गए। सेना के चिह्न-ध्वजाएं और पताकाएं नीचे गिर गयी। उसके प्राण संकट में पड़ गये और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपुरिसक्कारपरक्कमे अधारणिज्जमिति कट्टु सिग्घं तुरियं चवलं चंडं जइणं वेइयं जेणेव मिहिला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मिहिलं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता मिहिलाए दुवाराइं पिहेइ, पिहेत्ता रोहसज्जे चिट्ठइ।।

सब दिशाओं से उसके प्रहार विफल कर दिये गये। तब वह प्राणहीन, बलहीन, वीर्यहीन तथा पुरुषकार और पराक्रमहीन हो गया। अब (रण भूमि में) डटे रहना अशक्य है--ऐसा सोचकर वह शीघ्र, त्वरित, चपल, चण्ड, जयी और वेगपूर्ण गति से, जहां मिथिला थी, वहां आया। वहां आकर मिथिला में प्रवेश किया। प्रवेश कर मिथिला के द्वार बन्द कर लिए। द्वार बन्द कर घेरा डालकर बैठ गया।

१६७. तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा छप्पि रायाणो जेणेव मिहिला तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता मिहिलं रायहाणिं निस्संचारं निरुच्चारं सव्वओ समंता ओरुंभित्ता णं चिट्ठंति।।

१६७. जितशत्रु प्रमुख वे छहों राजा-जहां मिथिला थी, वहां आए। वहां आकर उन्होंने मिथिला राजधानी को संचार रहित, उच्चार रहित[२७]-(उत्सर्ग के लिए भी बाहर जाना रोककर)बनाकर चारों ओर से घेर लिया।

१६८. तए णं से कुंभए राया मिहिलं रायहाणिं ओरुद्धं जाणित्ता अब्भिंतरियाए उवट्ठाणसालाए सीहासणवरगए तेसिं जियसत्तुपामोक्खाणं छण्हं राईणं अंतराणि य छिद्दाणि य विवराणि य मम्माणि य अलभमाणे बहूहिं आएहि य उवाएहि य, उप्पत्तियाहि य वेणइयाहि य कम्मयाहि य पारिणामियाहि य--बुद्धीहिं परिणामेमाणे-परिणामेमाणे किंचि आयं वा उवायं वा अलभमाणे ओहयमणसंकप्पे करतलपल्हत्थमुहे अट्टज्झाणोवगए झियायइ।।

१६८. वह राजा कुम्भ मिथिला राजधानी को अवरुद्ध जानकर अन्तरंग सभा मण्डप में प्रवर सिंहासन पर बैठा हुआ जितशत्रु प्रमुख छहों राजाओं को पराजित करने का उचित अवसर, छिद्र, सुराख और मर्म को उपलब्ध नहीं हुआ, बहुत से मार्गों और उपायों से तथा औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी और पारिणामिकी--इस बुद्धि चतुष्टय से बार-बार परिणमन करने पर भी किसी मार्ग अथवा उपाय को उपलब्ध नहीं हुआ, तब वह भग्न हृदय हो, हथेली पर मुंह टिकाए, आर्त्तध्यान में डूबा हुआ चिन्तामग्न हो गया।

मल्लीए चिंताहेउ-पुच्छा-पदं

१६९. इमं च णं मल्ली विदेहरायवरकन्ना ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय-मंगलपायच्छित्ता सव्वालंकारविभूसिया बहूहिं खुज्जाहिं संपरिवुडा जेणेव कुंभए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कुंभगस्स पायग्गहणं करेइ।।

मल्ली द्वारा चिन्ता का कारण पृच्छा-पद

१६९. विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली स्नान बलिकर्म और कौतुक मंगल रूप प्रायश्चित्त कर समस्त अलंकारों से विभूषित और बहुत सी कुब्जाओं से परिवृत हो, जहां कुम्भ था वहां आयी। वहां आकर कुम्भ को पाद-वंदन किया।

१७०. तए णं कुंभए मल्लिं विदेहरायवरकन्नं नो आढाइ नो परियाणाइ तुसिणीए संचिट्ठइ।।

१७०. कुम्भ ने विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली को न आदर दिया, न उसकी ओर ध्यान दिया। वह चुपचाप बैठा रहा।

१७१. तए णं मल्ली विदेहरायवरकन्ना कुंभगं एवं वयासी--तुब्भे णं ताओ! अण्णया ममं एज्जमाणिं पासित्ता आढाह परियाणाह अंके निवेसेह। इयाणिं ताओ! तुब्भे ममं नो आढाह नो परियाणाह नो अंके निवेसेह। किण्णं तुब्भं अज्ज ओहयमणसंकप्पा करतल-पल्हत्थमुहा अट्टज्झाणोवगया झियायह?

१७१. विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली ने कुम्भ से इस प्रकार कहा--तात! जब कभी मुझे आती हुई देखते हो, तुम मेरा आदर करते हो, मेरी ओर ध्यान देते हो और मुझे गोद में बैठाते हो। तात! इस समय तुम न मेरा आदर करते हो, न मेरी ओर ध्यान देते हो और न मुझे गोद में बिठाते हो। आज तुम भग्न हृदय हो, हथेली पर मुंह टिकाए, आर्तध्यान में डूबे हुए क्यों चिन्तामग्न हो रहे हो?

कुंभगस्स चिंताहेउ-कहण-पदं

१७२. तए णं कुंभए मल्लिं विदेहरायवरकन्नं एवं वयासी--एवं खलु पुत्ता! तव कज्जे जियसत्तुपामोक्खेहिं छहिं राईहिं दूया संपेसिया। ते णं मए असक्कारिय असम्माणिय अवद्दारेणं निच्छूढा। तए णं

कुम्भ द्वारा चिन्ता का कारण कथन-पद

१७२. कुम्भ ने विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली से इस प्रकार कहा--पुत्री! बात ऐसी है--तेरे लिए जितशत्रु प्रमुख छह राजाओं ने दूत भेजे थे। उनको मैंने असत्कृत, असम्मानित कर पार्श्वद्वार से निकलवा दिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जियसत्तुपामोक्खा छप्पि रायाणो तेसिं दूयाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा परिकुविया समाणा मिहिलं रायहाणिं निस्संचारं निरुच्चारं सव्वओ समंता ओरुंभित्ता णं चिट्ठंति।

तए णं अहं पुत्ता तेसिं जियसत्तुपामोक्खाणं छण्हं राईणं अंतराणि (य छिद्दाणि य विवराणि य मम्माणि य?) अलभमाणे जाव अट्टज्झाणोवगए झियामि।।

तब उन दूतों से यह अर्थ सुनकर परिकुपित हुए वे जितशत्रु प्रमुख छहों राजा मिथिला राजधानी को संचार रहित, उच्चार रहित कर उसे चारों ओर से घेरे हुए बैठे हैं।

पुत्री! मुझे उन जितशत्रु प्रमुख छहों राजाओं को पराजित करने का उचित अवसर (छिद्र, सुराख और मर्म) उपलब्ध नहीं हो रहा है यावत् मैं आर्त्तध्यान में डूबा हुआ, चिन्तामग्न हो रहा हूं।

मल्लीए उवायनिरूवण-पदं

१७३. तए णं सा मल्ली विदेहरायवरकन्ना कुंभगं रायं एवं वयासी--मा णं तुब्भे ताओ! ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुहा अट्टज्झाणोवगया झियायह। तुब्भे णं ताओ! तेसिं जियसत्तुपामोक्खाणं छण्हं राईणं पत्तेयं-पत्तेयं रहस्सिए दूयसंपेसे करेह, एगमेगं एवं वयह--तव देमि मल्लिं विदेहरायवरकन्नं ति कट्टु संझकालसमयंसि पविरल- मणूसंसि निसंत-पडिनिसंतंसि पत्तेयं-पत्तेयं मिहिलं रायहाणिं अणुप्पवेसेह, अणुप्पवेसेत्ता गब्भघरएसु अणुप्पवेसेह, अणुप्पवेसेत्ता मिहिलाए रायहाणीए दुवाराइं पिहेह, पिहेत्ता रोहासज्जा चिट्ठह।।

मल्ली द्वारा उपाय-निरूपण-पद

१७३. विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली ने राजा कुम्भ से इस प्रकार कहा--तात! तुम भग्न हृदय हो, हथेली पर मुंह टिकाए, आर्त्तध्यान मे डूबे हुए चिन्तामग्न मत बनो। तात! तुम जितशत्रु प्रमुख उन छहों राजाओं के पास एकान्त में पृथक-पृथक दूतों को भेजो। एक-एक राजा को इस प्रकार कहो--तुझे विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली देता हूं--ऐसा कहकर सन्ध्याकाल के समय, जब मनुष्यों का गमनागमन कम हो जाए, घर से बाहर गये लोग पुनः अपने-अपने घरों में लौट आये, तब तुम उन्हें पृथक-पृथक रूप से राजधानी मिथिला में प्रविष्ट कराओ। प्रविष्ट कराकर तलघरों में प्रविष्ट कराओ। तलघरों में प्रविष्ट कराकर राजधानी मिथिला के द्वार बन्द कर दो। द्वार बन्द कर घेरा डालकर बैठ जाओ।

१७४. तए णं कुंभए तेसिं जियसत्तुपामोक्खाणं छण्हं राईणं पत्तेयं-पत्तेयं रहस्सिए दूयसंपेसे करेइ जाव रोहासज्जे चिट्ठइ।।

१७४. तब कुम्भ ने जितशत्रु प्रमुख उन छहों राजाओं के पास एकान्त में पृथक-पृथक दूत भेजे यावत् घेरा डालकर बैठ गया।

मल्लीए जियसत्तुपामोक्खाणं संबोह-पदं

१७५. तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा छप्पि रायाणो कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते जालंतरेहिं कणगमइं मत्थयछिड्डं पउमुप्पल-पिहाणं पडिमं पासंति--एस णं मल्ली विदेहरायवरकन्नत्ति कट्टु मल्लीए रायवरकन्नाए रूवे य जोव्वणे य लावण्णे य मुच्छिया गिद्धा गढिया अज्झोववण्णा अणिमिसाए दिट्ठीए पेहमाणा-पेहमाणा चिट्ठंति।।

मल्ली द्वारा जितशत्रु प्रमुखों को संबोध-पद

१७५. उषा काल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर, तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर जितशत्रु प्रमुख उन छहों राजाओं ने मस्तक में छेद और पद्मकमल के ढ़क्कन वाली उस स्वर्णमयी प्रतिमा को जाली के छिद्रों से देखा। यही विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली है--ऐसा सोचकर वे प्रवर राजकन्या मल्ली के रूप, यौवन और लावण्य पर मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित और अध्युपपन्न होकर उसे अनिमिष दृष्टि से बार-बार देखने लगे।

१७६. तए णं सा मल्ली विदेहरायवरकन्ना ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय-मंगल पायच्छित्ता सव्वालंकारविभूसिया बहूहिं खुज्जाहिं जाव परिक्खित्ता जेणेव जालघरए, जेणेव कणगमई मत्थयछिड्डा पउमुप्पल-पिहाणा पडिमा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तीसे कणगमईए मत्थयछिड्डाए पउमुप्पलपिहाणाए पडिमाए मत्थयाओ तं पउमुप्पल-पिहाणं अवणेइ। तओ णं गंधे निद्धावेइ, से जहाणामए--अहिमडे इ वा जाव एत्तो असुभतराए चेव।।

१७६. विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली स्नान कर, बलिकर्म तथा कौतुक-मंगल रूप प्रायश्चित्त कर सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित और बहुत सी कुब्जाओं से यावत् परिवृत हो, जहां जालक गृह था, जहां मस्तक में छेद और पद्म-कमल के ढ़क्कन वाली स्वर्णमयी प्रतिमा थी, वहां आयी। वहां आकर मस्तक में छेद और पद्म-कमल के ढ़क्कन वाली उस स्वर्णमयी प्रतिमा के मस्तक पर से पद्म-कमल के उस ढ़क्कन को हटाया। उससे ऐसी गन्ध फूटी जैसे कोई मृत सांप हो, यावत् वह गन्ध उससे भी अशुभतर थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७७. तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा छप्पि रायाणो तेणं असुभेणं गंधेणं अभिभूया समाणा सएहिं-सएहिं उत्तरिज्जेहिं आसाइं पिहेंति, पिहेत्ता परम्मुहा चिट्ठंति।।

१७७. जितशत्रु प्रमुख उन छहों राजाओं ने उस अशुभ गन्ध से अभिभूत होकर अपने-अपने उत्तरीय-वस्त्रों से मुंह को ढ़ंक लिया। मुंह ढ़ंक कर पीठ फेर ली।

१७८. तए णं सा मल्ली विदेहरायवरकन्ना ते जियसत्तुपामोक्खे एवं वयासी--किण्णं तुब्भे देवाणुप्पिया! सएहिं-सएहिं उत्तरिज्जेहिं आसाइं पिहेत्ता परम्मुहा चिट्ठह?

१७८. विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली ने जितशत्रु प्रमुख उन छहों राजाओं से इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम अपने-अपने उत्तरीय-वस्त्रों से मुंह ढ़ंक कर और पीठ फेर कर क्यों बैठे हो?

१७९. तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा मल्लिं विदेहरायवरकन्नं एवं वयंति--एवं खलु देवाणुप्पिए! अम्हे इमेणं असुभेणं गंधेणं अभिभूया समाणा सएहिं-सएहिं उत्तरिज्जेहिं आसाइं पिहेत्ता परम्मुहा चिट्ठामो।।

१७९. वे जितशत्रु प्रमुख राजा विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली से इस प्रकार बोले--देवानुप्रिये! हम इस अशुभ गन्ध से अभिभूत होकर अपने-अपने उत्तरीय वस्त्रों से मुंह ढ़ंक कर बैठे हैं।

१८०. तए णं मल्ली विहेहरायवरकन्ना ते जियसत्तुपामोक्खे एवं वयासी--जइ ताव देवाणुप्पिया! इमीसे कणगमईए मत्थयछिड्डाए पउमुप्पल-पिहाणाए पडिमाए कल्लाकल्लिं ताओ मणुण्णाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ एगमेगे पिंडे पक्खिप्पमाणे-पक्खिप्पमाणे इमेयारूवे असुभे पोग्गल-परिणामे, इमस्स पुण ओरालियसरीरस्स खेलासवस्स वंतासवस्स पित्तासवस्स सुक्कासवस्स सोणियपूयासवस्स दुरुय-ऊसास-नीसासस्स दुरुय-मुत्त-पूइय-पुरीस-पुण्णस्स सडण-पडण-छेयण-विद्धंसण-धम्मस्स केरिसए य परिणामे भविस्सइ? तं मा णं तुब्भे देवाणुप्पिया! माणुस्सएसु कामभोगेसु सज्जह रज्जह गिज्झह मुज्झह अज्झोववज्जह। एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हे इमाओ तच्चे भवग्गहणे अवरविदेहवासे सलिलावत्तिंसि विजए वीयसोगाए रायहाणीए महब्बलपामोक्खा सत्तवि य बालवयंसया रायाणो होत्था--सहजाया जाव पव्वइया। तए णं अहं देवाणुप्पिया! इमेणं कारणेणं इत्थीनामगोयं कम्मं निव्वत्तेमि--जइ णं तुब्भे चउत्थं उवसंपज्जित्ता णं विहरह, तए णं अहं छट्ठं उवसंपज्जित्ता णं विहरामि सेसं तहेव सव्वं। तए णं तुब्भे देवाणुप्पिया! कालमासे कालं किच्चा जयंते विमाणे उववण्णा। तत्थ णं तुब्भं देसूणाइं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई। तए णं तुब्भे ताओ देवलोगाओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे जाव साइं-साइं रज्जाइं उवसंपज्जित्ता णं विहरह। तए णं अहं ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं जाव दारियत्ताए पच्चायाया।।

१८०. विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली जितशत्रु प्रमुख उन (छहों राजाओं) से इस प्रकार बोली--देवानुप्रियो! यदि मस्तक में छेद और पद्म-कमल के ढ़क्कन वाली इस स्वर्णमयी प्रतिमा में, प्रतिदिन प्रभातकाल में उस मनोज्ञ अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य में से प्रक्षिप्त एक-एक पिण्ड का यह इस प्रकार का अशुभ पुद्गल परिणमन है तो इस औदारिक शरीर का--जिससे कफ, वमन, पित्त, शुक्र, शोणित और पीव झरते हैं, उच्छवास-निःश्वास से दुर्गन्ध आती है जो दुर्गन्धित मल-मूत्र और पीव से प्रतिपूर्ण है, जो सड़ने, गिरने, कटने और विध्वस्त होने वाला है, का--कैसा परिणमन होगा? इसलिए देवानुप्रियो! तुम मनुष्य संबंधी काम भोगों में आसक्त, अनुरक्त, गृद्ध, मुग्ध और अध्युपपन्न[२८] मत बनो। देवानुप्रियो! इससे पूर्व तीसरे भव में हम सातों ही अपर विदेह वर्ष, सलिलावती विजय और वीतशोका राजधानी में महाबल प्रमुख सात बालवयस्य राजा थे--सहजात यावत् सहदीक्षित थे।

देवानुप्रियो! उस समय मैंने इस कारण से स्त्री नाम-गोत्र-कर्म का निवर्तन किया यदि तुम चतुर्थ-भक्त स्वीकार कर विहार करते तो मैं षष्ठ-भक्त स्वीकार कर विहार करती। इसी प्रकार शेष सम्पूर्ण वर्णन। तत्पश्चात् देवानुप्रियो! तुम मृत्यु के समय मृत्यु को प्राप्त कर जयंत-विमान में उत्पन्न हुए। वहां तुम्हारी स्थिति कुछ कम बत्तीस सागरोपम थी। तुम उस देवलोक से च्युत होकर सीधे इसी जम्बूद्वीप द्वीप में उत्पन्न हुए यावत् अपने-अपने राज्यों का संचालन करने लगे। मैं उस देवलोक से आयुक्षय होने पर यावत् बालिका के रूप में यहां आई हूं।

गाहा--

किंथ तयं पम्हुट्ठं, जंथ तया भो! जयंतपवरम्मि।
वुत्था समय-णिबद्धा, देवा तं संभरह जाइं।।१।।

गाथा--

हे राजाओ! क्या तुम उसे भूल गए। उस समय हम संकेत में बंधे हुए[२९] (एक-दूसरे को प्रतिबोध देंगे) देव प्रवर जयन्त-विमान में निवास करते थे। उस जन्म को याद करो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जियसत्तुपामोक्खाणं जाइसरण-पदं

१८१. तए णं तेसिं जियसत्तुपामोक्खाणं छण्हं राईणं मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म सुभेणं परिणामेणं पसत्थेणं अज्झवसाणेणं लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहापूह-मग्गण-गवेसणं करेमाणाणं सण्णिपुव्वे जाइसरणे समुप्पण्णे, एयमट्ठं सम्मं अभिसमागच्छंति।।

जितशत्रु प्रमुखों का जाति-स्मरण-पद

१८१. विदेह की प्रवर राजकन्या मल्ली से यह अर्थ सुनकर, अवधारण कर, शुभ परिणाम, प्रशस्त अध्यवसाय और विशुद्ध्यमान लेश्याओं के कारण तदावरणीय (जाति-स्मृति के आवारक) कर्मों का क्षयोपशम होने से ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करते-करते जितशत्रु प्रमुख उन छहों राजाओं को समनस्क जन्मों को जानने वाला जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। उन्होंने यह अर्थ भली-भांति जान लिया।

मल्लीए पव्वज्जा-पदं

१८२. तए णं मल्ली अरहा जियसत्तुपामोक्खे छप्पि रायाणो समुप्पण्णजाईसरणे जाणित्ता गब्भघराणं दाराइं विहाडेइ।।

मल्ली की प्रव्रज्या-पद

१८२. जितशत्रु प्रमुख छहों राजाओं को जाति-स्मरण-ज्ञान समुत्पन्न हुआ जानकर अर्हत मल्ली ने तलघरों के द्वार खोल दिए।

१८३. तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा छप्पि रायाणो जेणेव मल्ली अरहा तेणेव उवागच्छंति।।

१८३. जितशत्रु प्रमुख वे छहों राजा जहां अर्हत मल्ली थी, वहां आए।

१८४. तए णं महब्बलपामोक्खा सत्तवि य बालवयंसा एगयओ अभिसमण्णागया वि होत्था।।

१८४. महाबल प्रमुख सातों ही बालवयस्य एकत्र अभिसमन्वागत हो गए।

१८५. तए णं मल्ली अरहा ते जियसत्तुपामोक्खे छप्पि रायाणो एवं वयासी--एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! संसारभउव्विग्गा जाव पव्वयामि। तं तुब्भे णं किं करेह? किं ववसह? किं वा भे हियइच्छिए सामत्थे?

१८५. अर्हत मल्ली ने जितशत्रु प्रमुख उन छहों राजाओं से इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! मैं इस संसार के भय से उद्विग्न हूं यावत् प्रव्रजित होती हूं। तुम क्या करते हो? क्या निश्चय करते हो अथवा तुम्हारे अन्तर्मन की अभ्यर्थना क्या है?

१८६. तए णं जियसत्तुपामोक्खा छप्पि रायाणो मल्लिं अरहं एवं वयासी--जइ णं तुब्भे देवाणुप्पिया! संसारभउव्विग्गा जाव पव्वयह, अम्हं णं देवाणुप्पिया! के अण्णे आलंबणे वा आहारे वा पडिबंधे वा? जह चेव णं देवाणुप्पिया! तुब्भे अम्हं इओ तच्चे भवग्गहणे बहूसु कज्जेसु य मेढी पमाणं जाव धम्मधुरा होत्था, तह चेव णं देवाणुप्पिया! इण्हिं पि जाव धम्मधुरा भविस्सह। अम्हे वि णं देवाणुप्पिया! संसारभउव्विग्गा भीया जम्मणमरणाणं देवाणुप्पिया-सद्धिं मुंडा भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वयामो।।

१८६. जितशत्रु प्रमुख उन छहों राजाओं ने अर्हत मल्ली से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिये! यदि तुम संसार के भय से उद्विग्न हो यावत् प्रव्रजित होती हो तो देवानुप्रिये! हमारा अन्य कौन आलम्बन, आधार अथवा प्रतिबन्ध है? देवानुप्रिये! जैसे इससे पूर्व तीसरे भव में तुम ही हमारे बहुत से कार्यों में मेढ़ी, प्रमाण यावत् धर्म की धुरा थी। वैसे ही देवानुप्रिये! इस जन्म में भी यावत् धर्म की धुरा बनोगी। देवानुप्रिये! हम भी संसार के भय से उद्विग्न और जन्म-मरण से भीत हैं। अतः देवानुप्रिया के साथ मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित होते हैं।

१८७. तए णं मल्ली अरहा ते जियसत्तुपामोक्खे छप्पि रायाणो एवं वयासी--जइ णं तुब्भे संसारभउव्विगा जाव मए सद्धिं पव्वयह, तं गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! सएहिं-सएहिं रज्जेहिं जेट्ठपुत्ते ठावेह, ठावेत्ता पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ दुरुहह, मम अंतियं पाउब्भवह।।

१८७. अर्हत मल्ली ने जितशत्रु प्रमुख उन छहों राजाओं से इस प्रकार कहा--यदि तुम संसार के भय से उद्विग्न हो यावत् मेरे साथ प्रव्रजित होते हो तो देवानुप्रियो! तुम जाओ, अपने-अपने राज्यों में ज्येष्ठ पुत्रों को स्थापित करो। उन्हें स्थापित कर हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली शिविकाओं पर आरोहण करो और मेरे समीप उपस्थित हो जाओ।

१८८. तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा छप्पि रायाणो मल्लिस्स अरहओ एयमट्ठं पडिसुणेंति।।

१८८. जितशत्रु प्रमुख उन छहों राजाओं ने अर्हत मल्ली के इस अर्थ को स्वीकार किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८९. तए णं मल्ली अरहा ते जियसत्तुपामोक्खा छप्पि रायाणो गहाय जेणेव कुंभए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कुंभगस्स पाएसु पाडेइ।।

१८९. अर्हत मल्ली जितशत्रु प्रमुख उन छहों राजाओं को लेकर जहां राजा कुम्भ था, वहां आयी। वहां आकर उन्हें कुम्भ के चरणों में झुकाया।

१९०. तए णं कुंभए ते जियसत्तुपामोक्खे विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ।।

१९०. राजा कुम्भ ने जितशत्रु प्रमुख उन छहों राजाओं को विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य से तथा पुष्प, वस्त्र, गन्धचूर्ण, माला और अलंकारों से सत्कृत एवं सम्मानित किया। सत्कृत-सम्मानित कर उन्हें प्रतिविसर्जित किया।

१९१. तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा छप्पि रायाणो कुंभएणं रण्णा विसज्जिया समाणा जेणेव साइं-साइं रज्जाइं जेणेव (साइं-साइं?) नगराइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सगाइं-सगाइं रज्जाइं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति।।

१९१. राजा कुम्भ द्वारा प्रतिविसर्जित होकर जितशत्रु प्रमुख वे छहों राजा जहां अपने-अपने राज्य थे, जहां (अपने-अपने) नगर थे, वहां आए। वहां आकर अपने-अपने राज्यों का संचालन करने लगे।

१९२. तए णं मल्ली अरहा संवच्छरावसाणे निक्खमिस्सामि त्ति मणं पहारेइ।।

१९२. अर्हत मल्ली ने एक वर्ष पूरा होने पर अभिनिष्क्रमण करूंगी--ऐसा मानसिक संकल्प किया।

१९३. तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्कस्स आसणं चलइ।।

१९३. उस काल और उस समय शक्र का आसन चलित हुआ।

१९४. तए णं से सक्के देविंदे देवराया आसणं चलियं पासइ, पासित्ता ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता मल्लिं अरहं ओहिणा आभोएइ। इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--एवं खलु जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे मिहिलाए नयरीए कुंभगस्स रण्णो (धूया पभावईए देवीए अत्तया?) मल्ली अरहा निक्खमिस्सामित्ति मणं पहारेइ। तं जीयमेयं तीय-पच्चुप्पण्ण-मणागयाणं सक्काणं अरहंताणं भगवंताणं निक्खममाणाणं इमेयारूवं अत्थसंपयाणं दलइत्तए, (तं जहा--

१९४. देवेन्द्र देवराज शक्र ने आसन को चलित देखा। यह देखकर उसने अवधि (ज्ञान) का प्रयोग किया। प्रयोग कर अवधि से अर्हत मल्ली को देखा। उसके मन में यह विशेष प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--इसी जम्बूद्वीप द्वीप भारतवर्ष और मिथिला नगरी में राजा कुम्भ की पुत्री (प्रभावती देवी की आत्मजा?) अर्हत् मल्ली ने 'अभिनिष्क्रमण करूंगी' ऐसा मानसिक संकल्प किया है। इसलिए अतीत, वर्तमान और भविष्य के जितने भी शक्र हैं उन सबका यह जीत (आचार या परम्परागत व्यवहार) है कि वे अभिनिष्क्रमण करने वाले अर्हत भगवान को यह विशिष्ट प्रकार की अर्थ-सम्पदा प्रदान करें। जैसे--

संगहणी-गाहा--

तिण्णेव य कोडिसया, अट्ठासीइं च हुंति कोडीओ।
असिइं च सयसहस्सा, इंदा दलयंति अरहाणं ।।१।।

एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता वेसमणं देवं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे मिहिलाए रायहाणीए कुंभगस्स रण्णो धूया पभावईए देवीए अत्तया मल्ली अरहा निक्खमिस्सामित्ति मणं पहारेइ जाव इंदा दलयंति अरहाणं। तं गच्छह णं देवाणुप्पिया! जंबुद्दीवं दीवं भारहं वासं मिहिलं रायहाणिं गच्छह णं देवाणुप्पिया! जंबुद्दीवं दीवं भारहं वासं मिहिलं रायहाणिं कुंभगस्स रण्णो भवणंसि इमेयारूवं अत्थ-संपयाणं साहराहि, साहरित्ता खिप्पामेव मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि।।

संग्रहणी गाथा--

इन्द्र तीन सौ अठासी करोड़, अस्सी लाख स्वर्ण-मुद्राएं अर्हतों को प्रदान करते हैं।

शक्र ने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर वैश्रवण देव को बुलाया। उसे बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! जम्बूद्वीप द्वीप, भारतवर्ष और मिथिला की राजधानी में राजा कुम्भ की पुत्री प्रभावती देवी की आत्मजा अर्हत मल्ली ने अभिनिष्क्रमण करूंगी--ऐसा मानसिक संकल्प किया है यावत् इन्द्र अर्हतों को प्रदान करते हैं। अत: देवानुप्रियो! जाओ जम्बूद्वीप द्वीप, भारतवर्ष और मिथिला राजधानी और कुम्भ नरेश के भवन में इस प्रकार अर्थ-सम्पदा पहुंचाओ, पहुंचाकर शीघ्र ही इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९५. तए णं से वेसमणे देवे सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं देवो! तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता जंभए देवे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! जंबुद्दीवं दीवं भारहं वासं मिहिलं रायहाणिं कुंभगस्स रण्णो भवणंसि तिण्णि कोडिसया अट्ठासीइं च कोडीओ असीइं सयसहस्साइं--इमेयारूवं अत्थ-संपयाणं साहरह, साहरित्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।।

१९५. देवेन्द्र देवराज शक्र के ऐसा कहने पर हृष्ट तुष्ट हुआ वैश्रवण देव सिर पर प्रदक्षिणा करती अञ्जलि को टिकाकर इस प्रकार बोला--'तथास्तु देव।' इस प्रकार उसने इन्द्र के आज्ञा वचन को विनय पूर्वक स्वीकार किया। स्वीकार कर जृम्भक देवों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम जाओ और जम्बूद्वीप द्वीप, भारतवर्ष, मिथिला राजधानी में कुम्भ नरेश के भवन में तीन सौ अठासी करोड़ अस्सी लाख स्वर्ण मुद्रा--यह विशेष प्रकार की अर्थ सम्पदा पहुंचाओ। पहुंचाकर शीघ्र ही इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो।

१९६. तए णं ते जंभगा देवा वेसमणेणं देवेणं एवं वुत्ता समाणा जाव पडिसुणेत्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति, अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णंति, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरंति जाव उत्तरवेउव्वियाइं रूवाइं विउव्वंति, विउव्वित्ता ताए उक्किट्ठाए जाव देवगईए वीईवयमाणा-वीईवयमाणा जेणेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे जेणेव मिहिला रायहाणी जेणेव कुंभगस्स रण्णो भवणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता कुंभगस्स रण्णो भवणंसि तिण्णि कोडिसया जाव साहरंति, साहरित्ता जेणेव वेसमणे देवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।।

१९६. वैश्रवण देव के ऐसा कहने पर वे जृम्भक देव यावत् आज्ञा वचन को स्वीकार कर ईशानकोण में गए। वहां जाकर वैक्रिय समुद्घात से समवहत हुए। समवहत होकर संख्यात योजन का एक दण्ड निर्मित किया यावत् उत्तर वैक्रिय रूपों की विक्रिया की। विक्रिया कर उस उत्कृष्ट यावत् देवगति से चलते-चलते जहां जम्बूद्वीप द्वीप था, जहां भारतवर्ष था, जहां मिथिला राजधानी थी और जहां राजा कुम्भ का भवन था, वहां आए। वहां आकर राजा कुम्भ के भवन में तीन सौ अठासी करोड़ अस्सी लाख यावत् अर्थ सम्पदा पहुंचाई। पहुंचाकर जहां वैश्रवण देव था, वहां आए। वहां आकर सटे हुए दस नखों वाली अंजलि को मस्तक पर टिकाकर उस आज्ञा को प्रत्यर्पित किया।

१९७. तए णं से वेसमणे देवे जेणेव सक्के देविंदे देवराया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं जाव तमाणत्तियं पच्चप्पिणइ।।

१९७. वह वैश्रवण देव, जहां देवेन्द्र देवराज शक्र था, वहां आया। वहां आकर दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट-आकार वाली अंजलि को यावत् उस आज्ञा को प्रत्यर्पित किया।

१९८. तए णं मल्ली अरहा कल्लाकल्लिं जाव मागहओ पायरासो त्ति बहूणं सणाहाण य अणाहाण य पंथियाण य पहियाण य करोडियाण य कप्पडियाण य एगमेगं हिरण्णकोडिं अट्ठ य अणूणाइं सयसहस्साइं-- इमेयारूवं अत्थ-संपयाणं दलयइ।।

१९८. अर्हत मल्ली प्रतिदिन मगध प्रदेश के प्रभातकालीन भोजन[३०] के समय तक (प्रथम दो प्रहर तक) बहुत से सनाथों को, अनाथों को, पान्थों को[३१], पथिकों को[३२], कापालिकों को और कन्थाधारियों को एक-एक करोड़ और पूरी आठ लाख स्वर्ण मुद्राएं--इस प्रकार की अर्थ-सम्पदा का दान करने लगी।

१९९. तए णं कुंभए राया मिहिलाए रायहाणीए तत्थ-तत्थ तहिं-तहिं देसे-देसे बहूओ महाणससालाओ करेइ। तत्थ णं बहवे मणुया दिण्णभइ-भत्त-वेयणा विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडेंति। जे जहा आगच्छंति, तं जहा--पंथिया वा पहिया वा करोडिया वा कप्पडिया वा पासंडत्था वा गिहत्था वा, तस्स य तहा आसत्थस्स वीसत्थस्स सुहासणवरगयस्स तं विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं परिभाएमाणा परिवेसेमाणा विहरंति।।

१९९. राजा कुम्भ ने मिथिला राजधानी के उन-उन विशिष्ट स्थानों में बहुत सी महानस शालाएं चालू करवाई। वहां भृति, भोजन और वेतन प्राप्त करने वाले बहुत से मनुष्य विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करते। वहां जो व्यक्ति जैसे ही आता, यथा--पान्थ, पथिक, कापालिक, कन्थाधारी, पाषण्डस्थ अथवा गृहस्थ उसको उसी रूप में जब वह आश्वस्त-विश्वस्त हो प्रवर सुखासन में बैठ जाता, तब वे विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य को बांटते और परोसते रहते।

२००. तए णं मिहिलाए नयरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ--एवं खलु देवाणुप्पिया! कुंभगस्स रण्णो भवणंसि सव्वकामगुणियं

२००. मिथिला नगरी के दोराहों, तिराहों, चौराहों, चौकों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और मार्गों में जन-समूह परस्पर इस प्रकार कहता--देवानुप्रियो! राजा कुम्भ के भवन में बहुत से श्रमणों को, ब्राह्मणों को, सनाथों को,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किमिच्छियं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं बहूणं समणाण य माहणाण य सणाहाण य अणाहाण य पंथियाण य पहियाण य करोडियाण य कप्पडियाण य परिभाइज्जइ परिवेसिज्जइ।

अनाथों को, पान्थों को, पथिकों को, कापालिकों को और कन्थाधारियों को इच्छानुसार सर्वकामगुणित विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य बांटा जाता है, परोसा जाता है।

संगहणी-गाहा--

वरवरिया घोसिज्जइ, किमिच्छियं दिज्जए बहुविहीयं।
सुर-असुर-देव-दाणव-नरिंद-महियाण निक्खमणे।।१।।

संग्रहणी गाथा--

सुर-असुर-देव-दानव और नरेन्द्रों द्वारा पूजित अर्हतों के अभिनिष्क्रमण के अवसर पर 'मांगो-मांगो' यह घोषणा की जाती है और 'तुम क्या चाहते हो' ऐसा पूछकर बहुविध दान दिया जाता है।

२०१. तए णं मल्ली अरहा संवच्छरेणं तिण्णि कोडिसया अट्ठासीइं च कोडीओ असीइं सयसहस्साइं--इमेयारूवं अत्थ-संपयाणं दलइत्ता निक्खमामि त्ति मणं पहारेइ।।

२०१. एक वर्ष में तीन सौ अठासी करोड़ और अस्सी लाख अर्थ-सम्पदा का दान कर अर्हत मल्ली ने निष्क्रमण करने का मानसिक संकल्प किया।

२०२. तेणं कालेणं तेणं समएणं लोगंतिया देवा बंभलोए कप्पे रिट्ठे विमाणपत्थडे सएहिं-सएहिं विमाणेहिं सएहिं-सएहिं पासायवडिंसएहिं पत्तेयं-पत्तेयं चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अणिएहिं सत्तहिं अणियाहिवईहिं सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहि अण्णेहि य बहूहिं लोगंतिएहिं देवेहिं सद्धिं संपरिवुडा महयाऽहय-नट्ट- गीय-वाइय-तंती-तल-ताल-तुडिय-घण-मुइंग-पडुप्पवाइयरवेणं (विउलाइं भोगभोगाइं?) भुंजमाणा विहरंति, तं जहा--

२०२. उस काल और उस समय ब्रह्मलोक कल्प में, रिष्ट विमान के प्रस्तट में, लोकान्तिक देव विहार करते थे। वे अपने-अपने विमानों और अपने-अपने प्रासादावतंसों में चार-चार हजार सामानिक देवों, तीन-तीन परिषदों, सात-सात सेनाओं, सात-सात सेनापतियों, सोलह-सोलह हजार आत्मरक्षक देवों और अन्य अनेक लोकान्तिक देवों के साथ उनसे परिवृत हो, महान आहत, नाट्य, गीत, वाद्य, तंत्री, तल, ताल, तूरी और घन मृदंग इनके पटु प्रवादित स्वरों के साथ भोगार्ह विपुल भोगों का उपभोग करते हुए विहार कर रहे थे। जैसे--

संगहणी-गाहा--

सारस्सयमाइच्चा, वण्ही वरुणा य गद्दतोया य।
तुसिया अव्वाबाहा, अग्गिच्चा चेव रिट्ठा य।।१।।

संग्रहणी गाथा--

१. सारस्वत २. आदित्य ३. वह्नि ४. वरुण ५. गर्दतोय ६. तुषित ७. अव्याबाध ८. आग्नेय ९. रिष्ट (ये नौ प्रकार के लोकान्तिक देव हैं)

२०३. तए णं तेसिं लोगंतियाणं देवाणं पत्तेयं-पत्तेयं आसणाइं चलंति तहेव जाव तं जीयमेयं लोगंतियाणं देवाणं अरहंताणं भगवंताणं निक्खममाणाणं संबोहणं करित्तए त्ति। तं गच्छामो णं अम्हे वि मल्लिस्स अरहओ संबोहणं करेमो त्ति कट्टु एवं संपेहेंति, संपेहेत्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति, अवक्कमित्ता वेउव्विय-समुग्घाएणं समोहण्णंति, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरंति, एवं जहा जंभगा जाव जेणेव मिहिला रायहाणी जेणेव कुंभगस्स रण्णो भवणे जेणेव मल्ली अरहा तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अंतलिक्खपडिवण्णा सखिंखिणियाइं दसद्धवण्णाइं वत्थाइं पवर परिहिया करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं वग्गूहिं एवं वयासी--बुज्झाहि भगवं लोगणाहा! पवत्तेहि धम्मतित्थं जीवाणं हियसुहनिस्सेयसकरं भविस्सइ त्ति कट्टु दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयंति, मल्लिं अरहं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव

२०३. उन लोकान्तिक देवों में से प्रत्येक के आसन कम्पित हुए। यावत् यह लोकान्तिक देवों का जीत-आचार है कि वे निष्क्रमणाभिमुख अर्हत भगवान को सम्बोधित करें। इसलिए जाएं हम भी अर्हत मल्ली को सम्बोधित करे। उन्होंने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर ईशानकोण में आए। वहां आकर वैक्रिय समुद्घात से समवहत हुए। समवहत होकर संख्यात योजन का एक दण्ड निर्मित किया। इसी प्रकार जृम्भक देवों की भांति यावत् जहां मिथिला राजधानी थी, जहां राजा कुम्भ का भवन था, जहां अर्हत मल्ली थी, वहां आए। वहां आकर अन्तरिक्ष में अवस्थित हो, घुंघरू लगे पंचरंगे प्रवर वस्त्र पहने, सटे हुए दस नखों वाली, दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट आदर वाली अञ्जलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर उस इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ और मनोगत वाणी से इस प्रकार कहा--लोकनाथ! भगवन्! संबुद्ध हों। धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करें। वह जीवों के लिए हित, सुख और निःश्रेयस्कर होगा--उन्होंने दूसरी बार, तीसरी बार भी इस प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।।

कहा। अर्हत मल्ली को वन्दना की, नमस्कार किया। वंदना-नमस्कार कर जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा में वापस चले गये।

२०४. तए णं मल्ली अरहा तेहिं लोगंतिएहिं देवेहिं संबोहिए समाणे जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल परिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी--इच्छामि णं अम्मयाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह।।

२०४. अर्हत मल्ली उन लोकान्तिक देवों से संबोधित होने पर, जहां माता-पिता थे, वहां आई। वहां आकर सटे हुए दस नखों वाली दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार कहा--माता-पिता! मैं चाहती हूं तुमसे अनुज्ञा प्राप्त कर, मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित बनूं।

जैसा सुख हो देवानुप्रिये! प्रतिबन्ध मत करो।

२०५. तए णं कुंभए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अट्ठसहस्सेणं सोवण्णियाणं कलसाणं जाव अट्ठसहस्सेणं भोमेज्जाणं कलसाणं अण्णं च महत्थं महग्घं महरिहं विउलं तित्थयराभिसेयं उवट्ठवेह। तेवि जाव उवट्ठवेंति।।

२०५. राजा कुम्भ ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! शीघ्र ही आठ हजार स्वर्णमय कलश यावत् आठ हजार मिट्टी के कलश तथा अन्य भी महान अर्थवान, महान मूल्यवान, महान अर्हता वाले विपुल तीर्थंकर-अभिषेक (योग्य सामग्री) की उपस्थापना करो। उन्होंने भी यावत् उपस्थापना की।

२०६. तेणं कालेणं तेणं समएणं चमरे असुरिंदे जाव अच्चुयपज्जवसाणा आगया।।

२०६. उस काल और उस समय असुरेन्द्र चमर यावत् अच्युत कल्प तक के इन्द्र आये।

२०७. तए णं सक्के देविंदे देवराया आभिओगिए देवे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अट्ठसहस्सेणं सोवण्णियाणं कलसाणं जाव अण्णं च महत्थं महग्घं महरिहं विउलं तित्थयराभिसेयं उवट्ठवेह। तेवि जाव उवट्ठवेंति। तेवि कलसा तेसु चेव कलसेसु अणुपविट्ठा।।

२०७. देवेन्द्र देवराज शक्र ने आभियोगिक देवों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! शीघ्र ही आठ हजार स्वर्णमय कलश यावत् अन्य भी महान अर्थवान, महान मूल्यवान, महान अर्हता वाले विपुल तीर्थंकर-अभिषेक (योग्य सामग्री) की उपस्थापना करो। उन्होंने भी यावत् उपस्थापना की। वे (इन्द्र द्वारा मंगाए गए) कलश भी उन्हीं (कुम्भ के) कलशों में अनुप्रविष्ट हो गये।

२०८. तए णं से सक्के देविंदे देवराया कुंभए य राया मल्लिं अरहं सीहासणंसि पुरत्थाभिमुहं निवेसेंति, अट्ठसहस्सेणं सोवण्णियाणं कलसाणं जाव तित्थयराभिसेयं अभिसिंचंति।।

२०८. देवेन्द्र देवराज शक्र और राजा कुम्भ ने अर्हत मल्ली को सिंहासन पर पूर्वाभिमुख बिठाया। आठ हजार स्वर्णमय कलशों से यावत् तीर्थंकर अभिषेक से अभिषिक्त किया।

२०९. तए णं मल्लिस्स भगवओ अभिसेए वट्टमाणे अप्पेगइया देवा मिहिलं च सब्भिंतरबाहिरियं जाव सव्वओ समंता आधावंति परिधावंति।।

२०९. भगवान मल्ली का अभिषेक हो रहा था, उस समय कुछ देव मिथिला नगरी को भीतर-बाहर (सजा रहे थे) यावत् चारों ओर भाग दौड कर रहे थे।

२१०. तए णं कुंभए राया दोच्चंपि उत्तरावक्कमणं सीहासणं रयावेइ, जाव सव्वालंकारविभूसियं करेइ, करेत्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! मणोरमं सीयं उवट्ठवेह। तेवि उवट्ठवेंति।।

२१०. राजा कुम्भ ने दूसरी बार उत्तराभिमुख सिंहासन स्थापित करवाया। यावत् सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित किया। विभूषित कर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! शीघ्र ही मनोरम शिविका उपस्थित करो। उन्होंने भी उपस्थित की।

२११. तए णं सक्के देविंदे देवराया आभिओगिए देवे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अणेगखंभसय-सण्णिविट्ठं

२११. देवेन्द्र देवराज शक्र ने आभियोगिक देवों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! शीघ्र ही सैकड़ों खम्भों पर सन्निविष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाव मणोरमं सीयं उवट्ठवेह। तेवि जाव उवट्ठवेंति। सावि सीया तं चेव सीयं अणुप्पविट्ठा।।

यावत् मनोरम शिविका उपस्थित करो। उन्होंने भी यावत् प्रस्तुत की। वह (दिव्य) शिविका भी (राजा कुम्भ द्वारा आनीत) उस शिविका में अनुप्रविष्ट हो गई।

२१२. तए णं मल्ली अरहा सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता जेणेव मणोरमा सीया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मणोरमं सीयं अणुपयाहिणीकरेमाणे मणोरमं सीयं दुरुहइ, दुरुहित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे।।

२१२. अर्हत मल्ली सिंहासन से उठी। उठकर जहां मनोरम शिविका थी, वहां आयी। वहां आकर अनुकूलता के लिए उस मनोरम शिविका को अपनी दाहिनी ओर लेती हुई, वह उस मनोरम शिविका पर आरूढ़ हो गई। आरूढ़ होकर पूर्वाभिमुख होकर सिंहासन पर सम्यक् रूप से आसीन हुई।

२१३. तए णं कुंभए अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--तुब्भे णं देवाणुप्पिया! ण्हाया जाव सव्वालंकारविभूसिया मल्लिस्स सीयं परिवहह। तेवि जाव परिवहंति।।

२१३. राजा कुम्भ ने अठारह श्रेणि-प्रश्रेणियों (शिविका वाहक अवान्तर जातीय पुरुषों) को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम स्नान कर यावत् सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित हो मल्ली की शिविका का परिवहन करो यावत् उन्होंने परिवहन किया।

२१४. तए णं सक्के देविंदे देवराया मणोरमाए सीयाए दक्खिणिल्लं उवरिल्लं बाहं गेण्हइ, ईसाणे उत्तरिल्लं उवरिल्लं बाहं गेण्हइ, चमरे दाहिणिल्लं हेट्ठिल्लं, बली उत्तरिल्लं हेट्ठिल्लं, अवसेसा देवा जहारिहं मणोरमं सीयं परिवहंति।

२१४. देवेन्द्र देवराज शक्र ने मनोरम शिविका का दक्षिण उपरितन दण्ड पकड़ा। ईशान ने उत्तर का उपरितन दण्ड पकड़ा। चमर ने दक्षिण का अधस्तन दण्ड पकड़ा। बली ने उत्तर का अधस्तन दण्ड पकड़ा। अवशिष्ट देवों ने उसका यथायोग्य भाग पकड़कर मनोरम शिविका का परिवहन किया।

संगहणी-गाहा

पुव्विं उक्खित्ता, माणुसेहिं साहट्टरोमकूवेहिं।
पच्छा वहंति सीयं, असुरिंदसुरिंदनागिंदा।।१।।
चलचवलकुंडलधरा, सच्छंदविउव्वियाभरणधारी।
देविंददाणविंदा, वहंति सीयं जिणिंदस्स।।२।।

संग्रहणीय-गाथा

१. उस शिविका को आगे से मनुष्यों ने उठाया। उनके रोमकूप विकस्वर हो रहे थे। पीछे से असुरेन्द्र, सुरेन्द्र और नागेन्द्र उसका वहन कर रहे थे।
२. वे चल और चपल कुण्डल धारण किए हुए अपनी इच्छा से निर्मित आभरण पहने हुए थे। देवेन्द्र और दानवेन्द्र जिनेन्द्र की शिविका का वहन कर रहे थे।

२१५. तए णं मल्लिस्स अरहओ मणोरमं सीयं दुरूढस्स समाणस्स इमे अट्ठट्ठमंगला पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थिया--एवं निग्गमो जहा जमालिस्स।।

२१५. मनोरम शिविका पर आरूढ़ अर्हत मल्ली के आगे ये आठ-आठ मंगल क्रमशः संप्रस्थित हुए। वैसे ही निर्गम हुआ जैसे--जमालि का।*

२१६. तए णं मल्लिस्स अरहओ निक्खममाणस्स अप्पेगइया देवा मिहिलं रायहाणिं अब्भिंतरबाहिरं आसिय-संमज्जिय-संमट्ठ-सुइ-रत्थंतरावणवीहियं करेंति जाव परिधावंति।।

२१६. अर्हत मल्ली के निष्क्रमण करने पर कुछ देवों ने मिथिला राजधानी के भीतर-बाहर जल का छिड़काव कर, बुहार, झाड़, गोबर लीप उसे साफ सुथरा कर, गलियों में आपण-वीथी की रचना की, यावत् चारों ओर भाग-दौड़ करने लगे।

२१७. तए णं मल्ली अरहा जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ, आभरणालंकारं ओमुयइ।।

२१७ अर्हत मल्ली जहां सहस्राम्रवन उद्यान था, जहां प्रवर अशोक वृक्ष था, वहां आयी। वहां आकर शिविका से उतरी। आभरण और अलंकारों को उतारा।

---

*भगवाई ९/३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१८. तए णं पभावई हंसलक्खणेणं पडसाडएणं आभरणालंकारं पडिच्छइ।।

२१८. प्रभावती ने हंस लक्षण वाले पट-शाटक में आभरण और अलंकार स्वीकार किए।

२१९. तए णं मल्ली अरहा सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ।।

२१९. अर्हत मल्ली ने स्वयं ही पंचमौष्टिक लुंचन किया।

२२०. तए णं सक्के देविंदे देवराया मल्लिस्स केसे पडिच्छइ, पडिच्छित्ता खीरोदगसमुद्दे साहरइ।।

२२०. देवेन्द्र देवराज शक्र ने मल्ली के केश लिए। लेकर क्षीरोदक समुद्र में विसर्जित कर दिया।

२२१. तए णं मल्ली अरहा नमोत्थु णं सिद्धाणं ति कट्टु सामाइयचरित्तं पडिवज्जइ। जं समयं च णं मल्ली अरहा सामाइयचरित्तं पडिवज्जइ, तं समयं च णं देवाण माणुसाण य निग्घोसे तुडिय-णिणाए गीय-वाइय-निग्घोसे य सक्कवयणसंदेसेणं निलुक्के यावि होत्था। जं समयं च णं मल्ली अरहा सामाइयचारित्तं पडिवण्णे तं समयं च मल्लिस्स अरहओ माणुसधम्माओ उत्तरिए मणपज्जवणाणे समुप्पण्णे।।

२२१. अर्हत मल्ली ने 'सिद्धों को नमस्कार हो' ऐसा कहकर सामायिक चारित्र स्वीकार किया। जिस समय अर्हत मल्ली ने सामायिक चारित्र, स्वीकार किया उस समय देवों और मनुष्यों के निर्घोष, त्रुटित-निनाद गीत और वादित्र के निर्घोष शक्र के संदेश-वचन के साथ ही रुक गए। जिस समय अर्हत मल्ली ने सामायिक-चारित्र स्वीकार किया, उस समय उसे मनुष्य-धर्मता युक्त (केवल मनुष्य को होने वाला) श्रेष्ठ मन:पर्यव ज्ञान समुत्पन्न हुआ।

२२२. मल्ली णं अरहा जे से हेमंताणं दोच्चे मासे चउत्थे पक्खे पोससुद्धे तस्स णं पोससुद्धस्स एक्कारसीपक्खेणं पुव्वण्हकालसमयंसि अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं अस्सिणीहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं तिहिं इत्थीसएहिं--अब्भिंतरियाए परिसाए, तिहिं पुरिससएहिं--बाहिरियाए परिसाए सद्धिं मुंडे भवित्ता पव्वइए।।

२२२. अर्हत मल्ली हेमन्त के दूसरे मास, चौथे पक्ष, पौष शुक्ल पक्ष, उस पौष शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन, पूर्वाह्न के समय, निर्जल अष्टमभक्त पूर्वक, अश्विनी नक्षत्र के साथ चन्द्र का योग होने पर, तीन सौ स्त्रियों की अतंरंग परिषद् के साथ तीन सौ पुरुषों की बहिरंग परिषद् के साथ मुण्ड हो प्रव्रजित हो गई।

२२३. मल्लिं अरहं इमे अट्ठ नायकुमारा अणुपव्वइंसु, तं जहा--

२२३. अर्हत मल्ली के साथ ये आठ नाग कुमार[११] प्रव्रजित हुए। जैसे--

गाहा–

नंदे य नंदिमित्ते, सुमित्त बलमित्त भाणुमित्ते य।
अमरवइ अमरसेणे, महसेणे चेव अट्ठमए।।

गाथा–

नंद नंदिमित्र, सुमित्र, बलमित्र भानुमित्र।
अमरपति, अमरसेन और आठवां महासेन।।

२२४. तए णं ते भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया देवा मल्लिस्स अरहओ निक्खमण-महिमं करेंति, करेत्ता जेणेव नंदीसरे दीवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अट्ठाहियं महिमं करेंति, करेत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।।

२२४. भवनपति, वाणमन्तर, ज्योतिषिक और वैमानिक देवों ने अर्हत मल्ली की निष्क्रमण-महिमा की। ऐसा करके वे जहां नंदीश्वर द्वीप था वहां आए। वहां आकर अष्टान्हिक-महिमा की। महिमा करके जिस दिशा से आए थे उसी दिशा में चले गए।

मल्लिस्स केवलणाण-पदं

२२५. तए णं मल्ली अरहा जं चेव दिवसं पव्वइए, तस्सेव दिवसस्स पच्चावरण्हकालसमयंसि असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टयंसि सुहासणवरगयस्स सुहेणं परिणामेणं पसत्थाहिं लेसाहिं तयावरण-कम्मरय-विकरणकरं अपुव्वकरणं अणुपविट्ठस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवल-वरनाणदंसणे समुप्पण्णे।।

मल्ली का केवलज्ञान-पद

२२५. अर्हत मल्ली जिस दिन प्रव्रजित हुई उसी दिन प्रत्यापराह्नकाल के समय वह प्रवर अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वी शिलापट्ट पर प्रवर सुखासन में आसीन थी। शुभ परिणामों और प्रशस्त लेश्याओं के कारण तदावरणीय कर्म-रजों का विकिरण करने वाले अपूर्व करण में अनुप्रविष्ट होने पर अर्हत् मल्ली को अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, कृत्स्न, प्रतिपूर्ण, प्रवर केवलज्ञान और दर्शन समुत्पन्न हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२६. तेणं कालेणं तेणं समएणं सव्वदेवाणं आसणाइं चलेंति, समोसढा धम्मं सुणेंति, सुणेत्ता जेणेव नंदीसरे दीवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अट्ठाहियं महिमं करेंति, करेत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया। कुंभए वि निग्गच्छइ।।

२२६. उस काल और उस समय सब देवों के आसन कम्पित हो गए। उन्होंने समवसृत हो, धर्म को सुना। धर्म सुनकर, जहां नंदीश्वर द्वीप था, वहां आए। वहां आकर अष्टाह्निक महिमा की। महिमा कर जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा में चले गए। कुम्भ ने भी निष्क्रमण किया।

जियसत्तुपामोक्खाणं पव्वज्जा-पदं

२२७. तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा छप्पि रायाणो जेट्ठपुत्ते रज्जे ठावेत्ता पुरिससहस्सवाहिणीयाओ (सीयाओ?) दुरूढा (समाणा?) सव्विड्ढीए जेणेव मल्ली अरहा तेणेव उवागच्छंति जाव पज्जुवासंति।।

२२८. तए णं मल्ली अरहा तीसे महइमहालियाए परिसाए, कुंभगस्स रण्णो, तेसिं च जियसत्तुपामोक्खाणं छण्हं राईणं धम्मं परिकहेइ। परिसा जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया। कुंभए समणोवासए जाव पडिगए, पभावई य।।

२२९. तए णं जियसत्तुपामोक्खा छप्पि रायाणो धम्मं सोच्चा निसम्म एवं वयासी--आलित्तए णं भंते! लोए, पलित्तए णं भंते! लोए, आलित्त-पलित्तए णं भंते! लोए जराए मरणेण य जाव पव्वइया जाव चोद्दसपुव्विणो। अणंते वरनाणदंसणे केवले (समुप्पाडेत्ता तओ पच्छा?) सिद्धा।।

जितशत्रु प्रमुखों की प्रव्रज्या-पद

२२७. जितशत्रु प्रमुख वे छहों राजा ज्येष्ठ पुत्रों को राज्य (सिंहासन) पर स्थापित कर, हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली (शिविकाओं पर?) आरूढ़ हो, सम्पूर्ण ऋद्धि के साथ, जहां अर्हत मल्ली थी, वहां आए यावत् पर्युपासना की।

२२८. अर्हत मल्ली ने उस सुविशाल परिषद् को, राजा कुम्भ को और जितशत्रु प्रमुख उन छहों राजाओं को धर्म का परिकथन किया। जन-समूह जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में वापस चला गया। कुम्भ श्रमणोपासक बना यावत् वापस चला गया। प्रभावती भी श्राविका बनी।

२२९. जितशत्रु प्रमुख छहों राजाओं ने धर्म सुनकर, अवधारण कर इस प्रकार कहा—भन्ते! यह लोक जल रहा है। भन्ते! यह लोक प्रज्ज्वलित हो रहा है। भन्ते! यह लोक जरा और मृत्यु से जल रहा है, प्रज्ज्वलित हो रहा है यावत् वे प्रव्रजित हुए, यावत् चौदहपूर्वी बने। अनन्त प्रवर केवलज्ञान और दर्शन को (समुत्पादित कर तत्पश्चाद्?) सिद्ध हुए।

मल्लिस्स सिस्ससंपदा-पदं

२३०. तए णं मल्ली अरहा सहस्संबवणाओ उज्जाणाओ निक्खमइ, निक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।।

२३१. मल्लिस्स णं अरहओ भिसगपामोक्खा अट्ठावीसं गणा अट्ठावीसं गणहरा होत्था।।

२३२. मल्लिस्स णं अरहओ चत्तालीसं समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था, बंधुमइपामोक्खाओ पणपन्नं अज्जियासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया होत्था, सावयाणं एगा सयसाहस्सी चुलसीइं सहस्सा, सावियाणं तिण्णि सयसाहस्सीओ पण्णट्ठिं च सहस्सा, छस्सया चोद्दसपुव्वीणं, वीसं सया ओहिनाणीणं बत्तीसं सया केवलनाणीणं, पणतीसं सया वेउव्वियाणं, अट्ठसया मणपज्जव-नाणीणं, चोद्दससया वाईणं, वीसं सया अणुत्तरोववाइयाणं।।

२३३. मल्लिस्स णं अरहओ दुविहा अंतकरभूमी होत्था, तं जहा—जुगंतकरभूमी परियायंतकरभूमी य। जाव वीसइमाओ पुरिसजुगाओ जुगंतकरभूमी दुवासपरियाए अंतमकासी।।

मल्ली की शिष्य-सम्पदा-पद

२३०. अर्हत मल्ली ने सहस्राम्रवन उद्यान से निष्क्रमण किया। निष्क्रमण कर बाहर जनपद विहार करने लगी।

२३१. अर्हत मल्ली के भिषक् प्रमुख अठाईस गण और अठाईस गणधर थे।

२३२. अर्हत मल्ली के चालीस हजार श्रमणों की उत्कृष्ट श्रमण-सम्पदा थी। बन्धुमती प्रमुख पचपन हजार आर्यिकाओं की उत्कृष्ट आर्यिका-सम्पदा थी। एक लाख चौरासी हजार श्रावक, तीन लाख पैंसठ हजार श्राविकाएं, छः सौ चौदहपूर्वी, दो हजार अवधिज्ञानी, तीन हजार दो सौ केवलज्ञानी, तीन हजार पांच सौ वैक्रिय लब्धिधारी, आठ सौ मनःपर्यवज्ञानी, चौदह सौ वादी और दो हजार अनुत्तरोपपातिक थे।

२३३. अर्हत मल्ली के दो प्रकार की अन्तकर-भूमि[३४] थी, जैसे—युगान्तकर भूमि और पर्यायान्तकर-भूमि। बीसवें पुरुष-युग तक युगान्तकर-भूमि रही। पर्यायान्तकर भूमि उनकी केवलिपर्याय के दो वर्ष पश्चात् प्रारम्भ हुई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३४. मल्ली णं अरहा पणुवीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं, वण्णेणं पियंगुसामे समचउरंससंठाणे वज्जरिसहनाराय-संघयणे मज्झदेसे सुहंसुहेणं विहरित्ता जेणेव सम्मेए पव्वए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सम्मेयसेलसिहरे पाओवगमणंणुवन्ने ।।

२३४. अर्हत मल्ली की ऊंचाई पचीस धनुष्य थी। उनका वर्ण प्रियंगु जैसा श्याम, संस्थान समचतुरस्र और संहनन वज्रऋषभनाराच था। वे मध्य देश में सुख-पूर्वक विहरण कर जहां सम्मेद-पर्वत था, वहां आयी। वहां आकर सम्मेदशैल के शिखर पर प्रायोपगमन अनशन स्वीकार किया।

मल्लिस्स निव्वाण-पदं

२३५. मल्ली णं अरहा एगं वाससयं अगारवासमज्झे पणपण्णं वाससहस्साइं वाससयऊणाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता पणपण्णं वाससहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता जे से गिम्हाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे चेत्तसुद्धे, तस्स णं चेत्तसुद्धस्स चउत्थीए पक्खेणं भरणीए नक्खत्तेणं (जोगमुवागएणं?) अद्धरत्तकालसमयंसि पंचहिं अज्जियासएहिं--अब्भिंतरियाए परिसाए, पंचहिं अणगारसएहिं--बाहिरियाए परिसाए, मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं वग्घारियपाणी पाए साहट्टु खीणे वेयणिज्जे आउए नामगोए सिद्धे। एवं परिनिव्वाणमहिमा भाणियव्वा जहा जंबुद्दीवपण्णत्तीए, नंदीसरे अट्ठाहियाओ पडिगयाओ ।।

मल्ली का निर्वाण-पद

२३५. अर्हत मल्ली एक सौ वर्ष गृहवास में रही। पचपन हजार वर्षों में सौ वर्ष कम केवलि-पर्याय में रहकर, पचपन हजार वर्ष की सम्पूर्ण आयु को भोगकर, ग्रीष्म के प्रथम मास, दूसरा पक्ष, चैत्र शुक्ल पक्ष, उस चैत्र शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को भरणी नक्षत्र के साथ (चन्द्र का योग होने पर?) अर्धरात्रि के समय, पांच सौ साध्वियों की अन्तरंग परिषद् और पांच सौ अनगारों की बहिरंग परिषद् के साथ निर्जल-मासिक-भक्त पूर्वक, जब वे भुजाओं को प्रलम्बित कर और दोनों पैरों को सटाकर (ध्यानरत) थी तब वेदनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र कर्म को क्षीण कर सिद्ध बनी। जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति की भांति परिनिर्वाण-महिमा की वक्तव्यता। नंदीश्वर द्वीप में अष्टाह्निक महोत्सव किया गया।

निक्खेव-पदं

२३६. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

--त्ति बेमि ।।

निक्षेप-पद

२३६. जम्बू! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के आठवें अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया।

--ऐसा मैं कहता हूं।

वृत्तिकृता समुद्धृता निगमनगाथा--

उग्गतवसंजमवओ, पगिट्ठफलसाहगस्स वि जयिस्स।
धम्मविसए वि सुहमा वि, होइ माया अणत्थाय।।१।।
जह मल्लिस्स महाबल-भवम्मि तित्थयरनामबंधे वि।
तव-विसय-थेवमाया जाया जुवइत्त-हेउत्ति।।२।।

वृत्तिकार द्वारा समुद्धृत निगमन-गाथा--

१. उग्र तप और संयम के धनी, प्रकृष्ट फल के साधक मुनि की धर्म के क्षेत्र में सूक्ष्म माया भी अनर्थ का हेतु बन जाती है।
२. जैसे महाबल के भव में, तीर्थंकर नाम गोत्र का बन्धन होते हुए भी तप विषयक अल्प माया मल्ली के स्त्रीत्व का कारण बन गयी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

सूत्र-१८

१. स्त्रीनाम गोत्र (इत्थिनामगोयं)

स्त्रीनाम का एक अर्थ है स्त्रीपरिणाम अथवा जिस कर्म के उदय से स्त्री ऐसा अभिधान प्राप्त होता है वह स्त्रीनाम गोत्र कर्म है।

इसका दूसरा अर्थ है--स्त्रीप्रायोग्य नाम और गोत्र।

अर्हत मल्ली ने महाबल की अवस्था में मुनि पर्याय में स्त्रीनाम गोत्र कर्म का बन्धन किया था। वृत्तिकार का मन्तव्य है कि उस समय तपस्वी महाबल ने अवश्य ही मिथ्यात्व या सास्वादन गुणस्थान का अनुभव किया था क्योंकि स्त्रीनाम गोत्र का बन्धन अनन्तानुबन्धी मिथ्यात्व की स्थिति में ही संभव है।[1]

सूत्र-२०

२. सिंहनिष्क्रीडित (सीहनिक्कीलियं)

यह एक विशेष प्रकार का तपोनुष्ठान है। जैसे सिंह चलता हुआ, अपने पृष्ठभाग का अवलोकन करता है वैसे ही तपस्वी जिस तप में प्राक्तन तप की आवृत्ति कर, फिर उत्तर उत्तर तप का अनुष्ठान करता है उसको सिंहनिष्क्रीडित तप कहा गया है। वह दो प्रकार का होता है--१. लघुसिंहनिष्क्रीडित २. महासिंहनिष्क्रीडित।

इनका प्रस्तार इस प्रकार है--

१

१	२	१	३	२	४	३	५	४	६	५	७	६	८	७	९	८
१	२	१	३	२	४	३	५	४	६	५	७	६	८	७	९	

२

१	२	३	२	४	३	५	४	६	५	७	६	८	७	९	८	१०	९	११	१०	१२	११	१३	१२	१४	१३	१५	१४	१६	१५
१	२	३	२	४	३	५	४	६	५	७	६	८	७	९	८	१०	९	११	१०	१२	११	१३	१२	१४	१३	१५	१४	१६	

सूत्र-२४

३. स्थविर (थेरे)

स्थविर के तीन प्रकार होते हैं--

जातिस्थविर--साठ वर्ष की वय वाला।

श्रुतस्थविर--समवायधर।

पर्यायस्थविर--बीस वर्ष का दीक्षित।[2]

सूत्र-२८

४. दिशाएं सौम्य, तिमिर रहित (सोमासु वितिमिरासु)

सौम्य-दिग्दाह आदि उत्पात रहित दिशाएं सौम्य कहलाती हैं[3]। दिग्दाह के आधार पर भावी शुभाशुभ का विचार किया जाता है। इस विषय में प्रचलित श्लोक है--

दाहो दिशां राजभयाय पीतो, देशस्य नाशाय हुताशवर्णः।
यश्चारुणः स्यादपसव्य वायुः, शस्यस्य नाशं स करोति दुष्ट।।

वितिमिर--तीर्थंकरों के गर्भाधान के प्रभाव से दिशाओं का अन्धकार समाप्त हो जाता है।[4]

५. शकुन विजय सूचक थे (जइएसु सउणेसु)

प्रस्थान करते समय यदि कौवा दो, तीन, अथवा चार शब्द बोलता है तो वह शुभ फलकारक होता है।[5]

६. दक्षिणावर्त और अनुकूल हवाएं (पयाहिणानुकूलंसि)

अर्हत मल्ली के गर्भाधान के समय हवाएं प्रदक्षिणावर्त होने के कारण प्रदक्षिण और सुरभित, शीतल एवं मन्द होने के कारण अनुकूल थीं।[6]

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१२९--इत्थीनामगोयं ति स्त्रीनामः स्त्रीपरिणामः, स्त्रीत्वं यदुदयाद् भवति गोत्रं--अभिधानं यस्य तत् स्त्रीनामगोत्रं अथवा यत् स्त्रीप्रायोग्यं नामकर्म गोत्रं च तत् स्त्रीनामगोत्रं कर्म निर्वर्तितवान् तत्काले च मिथ्यात्वं सास्वादनं वा अनुभूतवान् स्त्रीनामकर्मणो मिथ्यात्वानन्तानुबन्धिप्रत्ययत्वात्।

२. वही, पत्र-१३०--स्थविराः--जातिश्रुत-पर्याय-भेदभिन्नास्तत्र जातिस्थविरः षष्टिवर्षः, श्रुतस्थविरः समवायधरः, पर्यायस्थविरो विंशतिवर्षपर्यायः।

३. वही, पत्र-१३२--सौम्यासु--दिग्दाहाद्युत्पातवर्जितासु।

४. वही--वितिमिरासु -तीर्थंकरगर्भाधानानुभावेन गतान्धकारासु।

५. वही--जयिकेषु--राजादीनां विजयकारिषु शकुनेषु, यथा काकानां श्रावणे द्वित्रिचतुः शब्दाः शुभावहा इति।

६. वही--प्रदक्षिणः प्रदक्षिणावर्तत्वात् अनुकूलश्च यः सुरभिशीतमन्दत्वात्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. अवक्रान्ति (वक्कंतीए)

प्रस्तुत सूत्र में अवक्रान्ति के तीन प्रकारों का निरूपण है-

१. आहार अवक्रान्ति--मनुष्य भवयोग्य आहर का ग्रहण।

२. भव अवक्रान्ति--मनुष्य भवयोग्य गति का संग्रहण।

३. शरीर अवक्रान्ति--मनुष्य के योग्य औदारिक शरीर का ग्रहण।

वृत्तिकार ने--'वक्कंतीए' का संस्कृत रूपान्तर अपक्रान्ति मानकर उसका अर्थ परित्याग किया है। वैकल्पिक अर्थ में व्युत्क्रान्ति शब्द मानकर उसकी व्याख्या उत्पत्ति के रूप में भी की है।[१] वक्कंती का संस्कृत रूप अवक्रान्ति होना चाहिए।

सूत्र-३०

८. पुष्प समूह से (मल्लेणं)

माल्य का अर्थ कुसुमसमूह है। जातिवाचक होने से एक वचन का प्रयोग है। जिससे माला बने, जो माला के काम आए, वह माल्य है।[२]

९. श्री दामकाण्ड नाम की माला को (सिरिदामगंडं)

सिरिदामगंड के संस्कृत रूप दो बनते हैं--श्रीदामकाण्ड और श्रीदामगण्ड। श्रीदामकाण्ड का अर्थ है--विशिष्ट शोभा सम्पन्न मालाओं का समूह। श्रीदामगण्ड का अर्थ है--विशिष्ट शोभा सम्पन्न मालाओं से निर्मित एक दण्ड।[३]

यह एक विशिष्ट प्रकार की माला होती है जो अनेक सुन्दर मालाओं को मिलाकर बनाई जाती है।

सूत्र-४२

१०. विनष्ट (विणट्ठ)

प्रस्तुत प्रसंग में विनष्ट का अर्थ पूर्ण नष्ट हो जाना नहीं है किन्तु विकृत हो जाने के कारण उसके मूल रूप का बदल जाना है।[४]

११. अशुचि........बीभत्स (असुइ.......बीभत्त)

अशुचि, विलीन, विकृत और बीभत्स ये चारों ही शब्द निर्दिष्ट वस्तु के प्रति घृणा प्रदर्शित करने वाले हैं। फिर भी इनमें अवस्थाकृत भेद है--

अशुचि--अस्पृश्य होने के कारण अपवित्र।

विलीन--जुगुप्सा-उत्पादक।

विकृत--विकारयुक्त।

बीभत्स--जिसे देखते ही मन में ग्लानि पैदा हो।[५]

सूत्र-५९

१२. जन्म दिवस के दिन (संवच्छरपडिलेहणगंसि)

जन्म दिन से लेकर पूरे वर्ष की प्रतिलेखना की जाए, उसे संवत्सर प्रतिलेखन दिन कहा जाता है। अर्थात् जिस दिन अमुक व्यक्ति की आयु का अमुक संख्या वाला (जैसे सातवां, आठवां) संवत्सर पूरा हो गया है--ऐसा निरूपण कर महोत्सवपूर्वक संवत्सर की प्रत्युपेक्षा की जाती है, उस दिन को संवत्सर प्रतिलेखन दिन कहा जाता है।

वर्ष की संख्या का ज्ञान स्मरण में रहे, इसलिए प्रतिवर्ष एक गांठ बांध दी जाती थी। इसीलिए जन्मदिन के अर्थ में वर्षगांठ शब्द रूढ़ हो गया।[६]

सूत्र-६२

१३. श्रीदामकाण्ड माला पर प्रमुदित होकर (सिरिदामगंडजणियहासे)

हास का संस्कृत रूप हर्ष बनता है। वृत्तिकार के अनुसार हर्ष के दो अर्थ है--प्रमोद और अनुराग।

प्रस्तुत सन्दर्भ में प्रमोद अर्थ अधिक संगत प्रतीत होता है।[७]

सूत्र-६४

१४. सांयांत्रिक पोतवणिक (संजत्ता-नावावाणियगा)

सांयात्रिक का अर्थ है--मिलजुल कर-समूह के साथ यात्रा-देशान्तर गमन करने वाले। पोतवणिक् का अर्थ है--जहाजों द्वारा समुद्र पार जाकर व्यापार करने वाले--समुद्री यात्री।[८]

सूत्र-६८

१५. पुष्य नक्षत्र (पूसो)

पुष्य नक्षत्र को यात्रा में सिद्धिदायक माना जाता है। वैसे बारहवां चन्द्र घातक-विनाशक माना जाता है, किन्तु बारहवें चन्द्र के साथ यदि पुष्य नक्षत्र का योग हो तो वह सर्वार्थसाधक होता है।[९]

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१३२--आहारापक्रान्त्या--देवाहारपरित्यागेन, भवापक्रान्त्या--देवगतित्यागेन, शरीरापक्रान्त्या--वैक्रियशरीरत्यागेन; अथवा-आहारव्युत्क्रान्त्या--अपूर्वाहारोत्पादेन मनुष्योचिताहारग्रहणेणेत्यर्थः, एवमन्यदपि पदद्वयमिति, गर्भतया व्युत्क्रान्तः--उत्पन्नः।

२. वही--मालाभ्यो हितं माल्यं-कुसुमं जातावेकवचनम्।

३. वही--श्रीदाम्नां-शोभावन्मालानां काण्डं समूहः श्रीदामकण्डम्, अथवा गण्डो-दण्डः ....। श्रीदाम्नां गण्डः श्रीदामगण्डः।

४. वही, पत्र-१३६--विनष्टं-उच्छूनत्वादिभिर्विकारैः स्वरूपादपेतम्।

५. वही--अशुचि--अपवित्रमस्पृश्यत्वात्, विलीनं-जुगुप्सासमुत्पादकत्वात्, विकृतं-विकारत्वात्, बीभत्सं-द्रष्टुमयोग्यत्वात्।

६. वही, पत्र-१३८-संवच्छरपडिलेणगंसि त्ति--जन्मदिनादारभ्य संवत्सरः प्रत्युपेक्ष्यते-एतावतिथः संवत्सरोद्य पूर्ण इत्येवं निरूप्यते महोत्सवपूर्वकं यत्र दिने तत् संवत्सर-प्रत्युपेक्षणकं, यत्र वर्षं वर्षं प्रति संख्याज्ञानार्थं ग्रन्थिबन्धः क्रियते, यदिदानीं वर्षग्रन्थिरिति रूढम्।

७. वही--सिरिदामगंड-जणियहासेत्ति--श्रीदामकाण्डेन जनितो-हर्षः- प्रमोदोऽनुरागो यस्य स।

८. वही, पत्र-१४२--संजत्ता णावावाणियगा-संगता यात्रा-देशान्तरगमनं संयात्रा, तत्प्रधाना नौवाणिजकाः-पोतवणिजः संयात्रानौवाणिजकाः।

९. वही, पत्र-१४३--पुष्यो नक्षत्रविशेषः चन्द्रमसा इहावसरे इति गम्यते, पुष्यनक्षत्रं हि यात्रायां सिद्धिकरं यदाह--अपि द्वादशमे चन्द्रे पुष्यःसर्वार्थसाधनः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र-७०

१६. मानो अपने पंख फैलाए कोई गरुड़ युवती खड़ी हो (विततपक्खा विव गरुलजुवई)

समुद्री जहाज जब बन्धन मुक्त हो, वायुबल से प्रेरित हो आगे बढ़ रहा था, तब हवा को नियन्त्रित रखने के लिए लगाए हुए पालों के कारण ऐसा लग रहा था, मानो कोई गरुड़ युवती अपने पंख फैलाए उड़ी जा रही हो। यह एक बहुत ही स्वाभाविक उपमा है।

सूत्र-७४

१७. पौषधोपवास (पोसहोववासाइं)

पौषधोपवास का सामान्य अर्थ है--पौषध पूर्वक उपवास। उपवास में मात्र आहार परिहार किया जाता है वहां पौषधोपवास में आहार और शरीर सत्कार का वर्जन कर, ब्रह्मचर्य की साधना पूर्वक सावद्य व्यापार मात्र का परिवर्जन किया जाता है। जैन श्रमणोपासक के लिए अष्टमी आदि पर्व दिनों में इस आध्यात्मिक अनुष्ठान का विशेष रूप से विधान है।[1]

विशेष विवरण हेतु द्रष्टव्य--भगवई, खण्ड १ पृष्ठ २६६, २६७.

१८. चलित नहीं .... कराया जा सकता। (चालित्तए, खोभित्तए........परिच्चइत्तए)

१. चालित्तए--विपरिणामित अथवा विचलित करने का अर्थ है-जिस करण और योग के विकल्प से व्रत स्वीकार किए हों, परिस्थिति से बाध्य होकर उस विकल्प को परिवर्तित कर लेना।[2]

२. खोभित्तए--क्षुब्ध का अर्थ है--स्वीकृत व्रतों का पालन करूं या त्याग दूं इस प्रकार की दुविधापूर्ण मानसिकता का निर्माण। संशयपूर्ण मनः स्थिति का निर्माण।[3]

३. खंडित्तए--स्वीकृत संकल्प का आंशिक विनाश।[4]

४. भंजित्तए--स्वीकृत संकल्प का सर्वात्मना विनाश।

५. उज्झित्तए--एक संकल्प से ही नहीं, सम्पूर्ण देशविरति-श्रावक धर्म से भी भ्रष्ट हो जाना।

६. परिच्चइत्तए--केवल व्रत से ही नहीं, सम्यग् दर्शन से भी भ्रष्ट हो जाना।[5]

चालित्तए, खोभित्तए आदि चारित्रिक पतन की क्रमिक भूमिकाएं है।

१९. सात-आठ तल प्रमाण (सत्तट्ठतलप्पमाणमेत्ताइं)

यहां तल का अर्थ है--हस्ततल अथवा-'ताल' नाम का बहुत लम्बा वृक्ष। अतः इसका वाच्यार्थ है--सात-आठ ताडवृक्ष परिमित ऊंचा।[6]

२०. आर्त, दुखार्त्त और वासना से आर्त्त हो (अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे)

वृत्तिकार के अनुसार आर्त्तध्यान की दुर्निवार पराधीनता से पीड़ित।[7]

सूत्र-७५

२१. विपरीत परिणाम वाला (विपरिणामित्तए)

अध्यवसाय के स्तर पर भी विपरिणमित कर देना।[8] अध्यवसाय का अर्थ है--सूक्ष्म-शरीर के साथ काम करने वाला सूक्ष्म भाव। अच्छे और बुरे व्यक्तित्व के निर्माण में अध्यवसाय की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। जिसका आन्तरिक भावतन्त्र विकृत नहीं होता, उस व्यक्ति को अनेक दिव्य शक्तियां भी अपने पथ और संकल्प से च्युत नहीं कर सकती।

सूत्र-११७

२२. हाव-भाव विलास ....युक्त (हाव-भाव-विलास-बिब्बोय)

ये चारों शब्द स्त्रियों की विभिन्न काम-चेष्टाओं के वाचक हैं। तथापि सब अपने-अपने विशेष अर्थ का वहन करते हैं--

- हाव-मुख से प्रकट होने वाला काम विकार-चेष्टा।
- भाव-चित्त की भूमिका पर उभरने वाला काम-विकार।
- विलास-नेत्र से व्यक्त होने वाला विकार।
- विभ्रम-भोंहों से व्यक्त होने वाला विकार।[9]

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१४६--अष्टम्यादिषु पर्वदिनेषूपवसनं आहारशरीरसत्कारा-ब्रह्मव्यापारपरिवर्जनमित्यर्थः।

२. वही--भंगकान्तर-गृहीतान् भंगकान्तरेण कर्त्तुम्.....।

३. वही, पत्र-१४६--क्षोभयितुं-एतान्येवं परिपालयाम्युतोज्झामीति क्षोभविषयान् कर्तुम्।

४. वही--खण्डयितुं-देशतः भंक्तुम्।

५. वही--उज्झितुं-सर्वस्या देशविरत्यात्यागेन, परित्यक्तुं-सम्यक्त्वस्यापि त्यागत इति।

६. वही--सत्तट्ठतलप्पमाणमेत्तायं त्ति-तलो-हस्ततलः तालाभिधानो वाऽतिदीर्घवृक्षविशेषः स एव प्रमाणं-मानं तलप्रमाणं सप्ताष्टौ वा सप्ताष्टानि तलप्रमाणानि परिमाणं येषां ते।

७. वही--अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे त्ति-आर्त्तस्य-ध्यानविशेषस्य यो दुहट्ट त्ति दुर्घटः दुःस्थगो दुर्निरोधो वशः-पारतन्त्र्यं, तेन ऋतः-पीडितः आर्त दुर्घटवशार्त्तः किमुक्तं भवति? असमाधिप्राप्तः।

८. वही--विपरिणामित्तए, त्ति-विपरिणामयितुं विपरीताध्यवसायोत्पादनतः।

९. वही, पत्र-१५०--हावभावविलासबिब्बोयकलिएहि त्ति--हावभावादयः सामान्येन स्त्रीचेष्टा-विशेषाः, विशेषः पुनरयम्--

हावो मुखविकारः स्याद्, भावश्चित्तसमुद्भवः।
विलासो नेत्रजो ज्ञेयो, विभ्रमो भ्रूसमुद्भवः।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विब्बोक--दर्पवश प्रिय-वस्तुओं के प्रति होने वाला अनादर का भाव।[१]

विलास का मतान्तर सम्मत वैकल्पिक अर्थ प्रस्तुत करते हुए वृत्तिकार लिखते हैं--स्थान, आसन, गमन तथा हाथों, भोहों, आंखों और अन्य प्रवृत्ति के माध्यम से जो श्लिष्ट भावों की अभिव्यक्ति होती है, वह सारा 'विलास' है।[२]

सूत्र-१२४

२३. लज्जित, व्रीडित और अपमानित (लज्जिए-विलिए-वेड्डे)

लज्जित, व्रीडित और वेड्ड--ये तीनों शब्द पर्यायवाची हैं, फिर भी लज्जा के उत्तरोत्तर प्रकर्ष के वाचक हैं। वेड्ड देशी शब्द है।[३]

सूत्र-१४५

२४. उत्तर (पामोक्खं)

प्रश्न का उत्तर, समाधान। उत्तराध्ययन में भी 'उत्तर' के अर्थ में 'पामोक्ख' शब्द का प्रयोग है।

प्रमोक्ष शब्द का प्रयोग प्रधानत: दो अर्थों में होता है--१. मोक्ष[४] २. उत्तर (समाधान)[५]

सूत्र १४६

२५. निंदा, कुत्सा और गर्हा की (निन्दति, खिंसंति गरिहंति)

मन से कुत्सा करना निंदा, आपस में एक दूसरे पर दोषारोपण करना कुत्सा और सबंधित व्यक्ति के सामने ही उसका दोषोद्घाटन करना गर्हा है।[६]

निशीथ चूर्णि के अनुसार निष्ठुर और स्नेह रहित वचन खिंसा है।[७]

सूत्र-१६५

२६. प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त हय-महिय-पवरवीर-घाइय-विवडियचिंध धम-पडागं-वाक्य शत्रु सेना को पछाड़ देने के अर्थ में एक मुहावरा-सा प्रयुक्त हुआ है।

शत्रुसेना के विनाश के कारण हत एवं मान-मर्दन के कारण मथित होता है।

जब सेना के प्रमुख सुभट योद्धा वीरगति को प्राप्त हो जाते हैं या रणभूमि से भाग जाते हैं तब सेना के चिह्न स्वरूप ध्वज और पताकाएं नीचे गिर जाती हैं अथवा अपनी पराजय स्वीकार करने की सूचना देने के लिए वे झुका दी जाती हैं।[८]

ध्वजा और पताका का अन्तर

सेना की विभिन्न टुकड़ियों की अलग पहचान के लिए गरुड़ आदि विविध चिह्नों से अंकित झंडे ध्वज कहलाते हैं।

हाथियों के ऊपर फहराने वाली पताकाएं होती हैं।[९]

सूत्र-१६७

२७. संचार रहित, उच्चार रहित (निस्संचारं निरुच्चारं)

नगर के मुख्य द्वार और पार्श्व द्वार से नागरिकों का गमनागमन रोक देना निस्संचार है और नगर के प्राकार के ऊपर से गमनागमन को रोक देना निरुच्चार है।[१०]

सूत्र १८०

२८. आसक्त, अनुरक्त, गृद्ध, मुग्ध और अध्युपपन्न (सज्जह रज्जह गिज्झह मुज्झह अज्झोववज्जह)

सामान्यत: उक्त शब्द एकार्थक ही हैं, फिर भी इनमें अवस्थाकृत भेद है।

सज्ज--आसक्त होना,

रज्ज--अनुरक्त होना,

गृद्ध--प्राप्त भोगों में अतृप्त रहना,

मुग्ध--भोगों में दोष जानते हुए भी उनमें मूढ़ रहना।

अध्युपपन्न--अप्राप्त भोगों की प्राप्ति के लिए एकाग्रचित्त रहना।[११]

निशीथ चूर्णिकार ने भी इन शब्दों को एकार्थक माना है, फिर

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१५०--विब्बोकलक्षणं चेदम्--
इष्टानामर्थानां प्राप्तावभिमानगर्भ-सम्भूत:।
स्त्रीणामनादरकृतो विब्बोको नाम विज्ञेय:।।

२. वही--अन्येत्वेवं विलासमाहु:--
स्थानासनगमनानां हस्तभ्रूनेत्रकर्मणां चैव।
उत्पद्यते विशेषो य: श्लिष्टोऽसौ विलास: स्यात्।।

३. वही--लज्जितो व्रीडितो व्यर्द्द: इत्येते त्रयोऽपि पर्यायशब्दा: लज्जाप्रकर्षाभिधानायोक्ता:।

४. आयारो ५/३६--बन्धपमोक्खो तुज्झ अज्झत्थेव।

५. उत्तरज्झयणाणि २५/१३ तस्सऽक्खेवपमोक्खं।

६. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१५५--निन्दन्ति-मनसा कुत्सन्ति, खिंसंति-परस्परस्याग्रत: तद्दोषकीर्तनेन, गर्हन्ते-तत्समक्षमेव।

७. निशीथ भाष्य-भाग ३, पृ. ६--निट्ठुरं णिण्हेहवयणं खिंसा।

८. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१५५--हयमहियपवरवीर-घाइय-विवडिय-चिंधद्धय-पडागे-त्ति-हत:--सैन्यस्य हतत्वात्, मथितो-मानस्य निर्मथनात्, प्रवरवीरा-भटा घातिता--विनाशिता यस्स स तथा।

९. वही--चिह्नध्वजा:-चिह्नभूतगरुड-सिंहधरा वलकध्वजादय: पताकाश्च हस्तिनामुपरिवर्तिन्य:।

१०. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१५६--'निस्संचारं' ति-द्वारापद्वारै: जनप्रवेशनिर्गमवर्जितं यथा भवति, 'निरुच्चारं'-प्राकारस्योर्ध्वं जनप्रवेशनिर्गमवर्जितं यथा भवति अथवा उच्चार:-पुरीष तद्विसर्गार्थं यज्जनानां बहिर्निर्गमनं तदपि स एवेति तेन वर्जितम्।

११. वही--सज्जत-संगं कुरुत, रज्यत--रागं कुरुत, गिज्झह-गृध्यत गृद्धिं प्राप्तभोगेष्वतृप्तिलक्षणां कुरुत, मुज्झह-मुह्यत मोहं तद्दोषदर्शने मूढत्वं कुरुत अज्झोववज्जह-अध्युपद्ध्वं तदप्राप्तप्रापणायाध्युपपत्तिं- तदेकाग्रता-लक्षणां कुरुत।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी इनके भिन्न-भिन्न अर्थों की व्याख्या की है, जैसे--

संग--आसवेन की भावना।

अनुराग--मानसिक प्रीति।

गृद्धि--विषय सेवन के दोषों को जानते हुए भी उससे विराम न लेना।

अध्युपपात--अगम्य का गमन एवं आसेवन।[1]

२९. संकेत में बन्धे हुए (समय-णिबद्धा)

समय निबद्धा का मूल अर्थ है--संकेत में बंधे हुए।

१. अर्हत मल्लि प्रमुख सातों मित्र देव भव में इस संकेत में बंधे हुए थे कि हम एक दूसरे को प्रतिबोध देंगे।

२. वृत्तिकार ने इसका वैकल्पिक अर्थ किया है--हमने एक साथ अनुत्तर देव जाति प्राप्त की थी।[2]

सूत्र-१९८

३०. प्रभातकालीन भोजन (मागहओ पायरासो)

उस समय मगधदेश में दिन के प्रथम दो प्रहर तक का समय प्रातराश--प्रभातकालीन भोजन का समय था।[3]

३१. पान्थों को (पंथियाणं)

पथिक और पान्थ--इनमें प्रवृत्तिलभ्य अर्थभेद है।

आवश्यकता वश यदा कदा पथ पर चलने वाले पथिक और सतत भ्रमणशील पान्थ कहलाते थे।[4]

३२. पथिकों को (पहियाणं)

'पहिय' के संस्कृत रूप दो बनते हैं--पथिक और प्रहित।

पथिक--पथ पर चलने वाले--राहगीर

प्रहित--किसी के द्वारा कहीं प्रेषित।[5]

सूत्र २२३

३३. नागकुमार (नायकुमारा)

इसका वाच्यार्थ है इक्ष्वाकुवंश में समुद्भूत क्षत्रियों के राज्य संचालन की क्षमता वाले कुमार।[6]

सूत्र २३३

३४. अन्तकरभूमि (अंतकरभूमि)

अन्तकरभूमि का अर्थ है--भव-परम्परा का अन्त कर निर्वाण प्राप्त करने वालों की भूमि--समय। इसलिए इसका दूसरा नाम कालान्तर भूमि भी है।[7]

अन्तकर भूमि दो प्रकार की होती है--युगान्तकर भूमि और पर्यायान्तकर भूमि।

युगान्तकर भूमि-युग का अर्थ है--विशेष कालमान। युग क्रमवर्ती होते हैं। उसके साधर्म्य से गुरु-शिष्य-प्रशिष्य आदि के रूप में होने वाली क्रमभावी पुरुष परम्परा को भी युग कहा जाता है। उस युग प्रमित अन्तकर भूमि को युगान्तकर भूमि कहा गया है। पर्यायान्तकर भूमि-तीर्थंकर के केवलित्व काल के आश्रित जो अन्तकर भूमि होती है उसे पर्यायान्तकर भूमि कहा गया है।[8]

अर्हत मल्ली के बीसवें पुरुषयुग अर्थात् बीसवीं शिष्य परम्परा तक युगान्तकर भूमि रही। तात्पर्य की भाषा में अर्हत मल्ली से लेकर उनके तीर्थ में बीसवीं शिष्य परम्परा तक साधु सिद्ध हुए, उसके पश्चात् सिद्धिगति का व्यवच्छेद हो गया। उनके तीर्थ में पर्यायान्तकर भूमि दो वर्ष पश्चात् प्रारम्भ हुई। अर्थात् मल्ली को कैवल्य प्राप्त हुए जब दो वर्ष सम्पन्न हुए, तब उनके तीर्थ में साधु सिद्ध हुए। उससे पहले किसी श्रमण ने मुक्ति प्राप्त नहीं की।

मतान्तर से केवलिपर्याय के दो मास अथवा चार मास से भी पर्यायान्तकर भूमि का उल्लेख है।

---

१. निशीथ भाष्य, भाग-३, पृ.३५०--सज्जणादी पदा एगट्ठिया। अहवा-आसेवणभावे सज्जणता, मणसा पीतिगमणं रज्जणता, सदोसुवलद्धे वि अविरमो गेधी, अगम्मगमणासेवणे वि अज्जुववातो।

२. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१५६--समयनिबद्धं--मनसा निबद्ध-संकेतं यथा प्रति-बोधनीया वयं परस्परेणेति। समक-निबद्धां वा सहितैर्या उपात्ता जातिस्तां देवा अनुत्तरसुराः सन्तः।

३. वही, पत्र-१५९--मागहओ पायरासो त्ति--मगधदेशसम्बन्धिनं प्रातराशं-प्राभातिकं भोजनकालं यावत् प्रहरद्वयादिकमित्यर्थः।

४. वही--पंथियाणं-ति-पन्थानं नित्यं गच्छतीति पान्थास्त एव पान्थिकास्तेभ्यः।

५. वही--पहियाणं-पथि गच्छन्तीति पथिकास्तेभ्यः प्रहितेभ्यो वा केनापि क्वचित् प्रेषितेभ्यः।

६. वही, पत्र-१६०--णायकुमार त्ति--ज्ञाताः इक्ष्वाकुवंश-विशेषभूताः, तेषां कुमाराः-राज्यार्हा ज्ञातकुमाराः।

७. वही, पत्र-१६१--अन्तकराः भवान्तकराः निर्वाणयायिनस्तेषां भूमि-कालान्तर-भूमिः।

८. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१६१--युगानि-कालमानविशेषास्तानि च क्रमवर्तीनि तत्सा-धर्म्याद्ये क्रमवर्तिनो गुरुशिष्यप्रशिष्यादिरूपाः पुरूषास्तेऽपि युगानि तैः प्रमिताऽन्तरकरभूमिः युगान्तकरभूमिः। परियायंतकरभूमीति पर्यायः-तीर्थकरस्य केवलित्वकालस्तमाश्रित्यान्तकरभूमिर्या सा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

प्रस्तुत अध्ययन में माकन्दी सार्थवाह के पुत्र--जिनपालित और जिनरक्षित के चरित्र का निरूपण है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में अनुकूल व प्रतिकूल दोनों तरह के प्रसंग आते रहते हैं। प्रतिकूलता में अविचल रहने वाला कभी-कभी अनुकूलता में विचलित हो जाता है। रत्नद्वीपदेवी ने बहुत सारे प्रतिकूल उपसर्गों से उन माकन्दिक-पुत्रों को विचलित--विपरिणामित करने का प्रयास किया। उसका वह प्रयास विफल रहा। उसने अनुकूल उपसर्गों का आलम्बन लिया। रत्नद्वीप देवी के मधुर व कामोत्तेजक वचनों से जिनरक्षित का मन पिघल गया। भयोत्पादक तर्जना से अभीत रहने वाला जिनरक्षित कामाशंसा से विचलित हो गया। इसलिए उसे अकालमृत्यु से मरना पड़ा।

जिनपालित अपने संकल्प पर दृढ़ रहा। उसके वज्र सदृश संकल्प को रत्नद्वीपदेवी के कामबाण भी बींध नहीं सके। वह सकुशल अपने घर लौट आया।

इस दृष्टान्त के द्वारा संबोध दिया गया है कि मुनि के जीवन में अनुकूल व प्रतिकूल दोनों प्रकार के उपसर्ग आते हैं। प्रतिकूल उपसर्गों की अपेक्षा अनुकूल उपसर्गों को सहन करना अधिक कठिन होता है। जो मुनि दीक्षित होकर अनुकूल उपसर्गों पर विजय पा लेते हैं, लक्ष्य तक पहुंच जाते हैं। अनुकूल उपसर्गों पर विजय न पाने वाले विचलित हो जाते हैं।

जिनरक्षित ने रत्नद्वीपदेवी का करुण विलाप सुना। उसके मन में उसके प्रति करुणा का भाव उदित हुआ। यहां उल्लेखनीय है कि जिनरक्षित की वह करुणा किसी धार्मिक प्रेरणा से उद्भूत नहीं थी। वह वस्तुत: मोहावेशजन्य थी। अत: धार्मिक दृष्टि से उसे उपादेय नहीं कहा जा सकता।

प्राचीन काल में समुद्र यात्राओं का बहुत प्रचलन था। लोग अर्थार्जन के उद्देश्य से लम्बी-लम्बी समुद्रयात्राएं किया करते थे। प्रस्तुत अध्ययन में माकन्दिक पुत्रों की समुद्रयात्रा का सरस प्रतिपादन है। सूत्रकार ने समुद्रयात्रा के दौरान कालिक वात (तूफान) से प्रकम्पित नौका के लिए अनेक सजीव व हृदयग्राही उपमाओं का प्रयोग किया है।

प्रस्तुत अध्ययन के अंत में निगमन-गाथाओं के द्वारा दृष्टान्त का सार तत्त्व निरूपित किया गया है। इस दृष्टि से निम्नोक्त तालिका द्रष्टव्य है--

रत्नद्वीपदेवी	अविरति
लाभार्थी वणिक्	सुखार्थी जीव
वधस्थान में अवस्थित पुरुष	धर्मकथी मुनि
भयभीत व्यापारी	संसार के दु:खों से भीत प्राणी
शैलकयक्ष द्वारा व्यापारियों का निस्तार	जिनप्रज्ञप्त धर्म द्वारा प्राणियों का निस्तार
समुद्र पार कर घर पहुंचना	संसार समुद्र को पारकर निर्वाण को प्राप्त करना
जिनरक्षित	चरित्रभ्रष्ट व्यक्ति।
जिनपालित	चरित्रसंपन्न मुनि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवमं अज्झयणं : नवां अध्ययन

मायंदी : माकन्दी

उक्खेव-पदं

१. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, नवमस्स णं भंते! नायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

२. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी। पुण्णभद्दे चेइए।।

३. तत्थ णं मायंदी नाम सत्थवाहे परिवसइ—अड्ढे। तस्स णं भद्दा नामं भारिया। तीसे णं भद्दाए अत्तया दुवे सत्थवाहदारया होत्था, तं जहा--जिणपालिए य जिणरक्खिए य।।

मागंदिय-दारगाणं समुद्द-जत्ता-पदं

४. तए णं तेसिं मागंदिय-दारगाणं अण्णया कयाइ एगयओ सहियाणं इमेयारूवे मिहोकहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था--एवं खलु अम्हे लवणसमुद्दं पोयवहणेणं एक्कारसवाराओ ओगाढा। सव्वत्थ वि य णं लद्धट्ठा कयकज्जा अणहसमग्गा पुणरवि नियघरं हव्वमागया। तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया! दुवालसंपि लवणसमुद्दं पोयवहणेणं ओगाहित्तए त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुर्णेति, पडिसुणेत्ता जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता एवं वयासी--एवं खलु अम्हे अम्मयाओ! लवणसमुद्दं पोयवहणेणं एक्कारसवाराओ ओगाढा। सव्वत्थ वि य णं लद्धट्ठा कयकज्जा अणहसमग्गा पुणरवि नियघरं हव्वमागया। तं इच्छामो णं अम्मयाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा दुवालसंपि लवणसमुद्दं पोयवहणेणं ओगाहित्तए।।

५. तए णं ते मागंदिय-दारए अम्मापियरो एवं वयासी--इमे भे जाया! अज्जय-पज्जय-पिउपज्जयागए सुबहु हिरण्णे य सुवण्णे य कंसे य दूसे य मणिमोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण- संतसार-सावएज्जे य अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ पगामं दाउं पगामं भोत्तुं पगामं परिभाएउं। तं अणुहोह ताव जाया! विपुले माणुस्सए इड्ढीसक्कारसमुदए। किं भे सपच्चावाएणं निरालंबणेणं लवणसमुद्दोत्तारेणं? एवं खलु पुत्ता! दुवालसमी जत्ता सोवसग्गा यावि भवइ। तं मा णं तुब्भे दुवे पुत्ता! दुवालसंपि लवणसमुद्दं पोयवहणेणं ओगाहेह। मा हु तुब्भं सरीरस्स वावत्ती भविस्सइ।।

उत्क्षेप-पद

१. भन्ते! यदि धर्म के आदिकर्ता यावत् सिद्धि गति संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के आठवें अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है तो भन्ते! उन्होंने ज्ञाता के नौवें अध्ययन का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

२. जम्बू उस काल और उस समय चम्पा नाम की नगरी थी। पूर्णभद्र चैत्य था।

३. वहां माकन्दी नाम का सार्थवाह रहता था, वह आढ्य था। उसके भद्रा नाम की भार्या थी। उस भद्रा के आत्मज दो सार्थवाह बालक थे, जैसे--जिनपालित और जिनरक्षित।

माकन्दिक पुत्रों की समुद्र यात्रा-पद

४. किसी समय एकत्र सम्मिलित उन माकन्दिक पुत्रों के मध्य परस्पर यह विशिष्ट प्रकार का वार्तालाप हुआ-हमने पोत-वहन से ग्यारह बार लवण-समुद्र का अवगाहन कर लिया। सभी जगह हमने प्रचुर मात्रा में धन कमाया, कृतकार्य हुए और निर्विघ्न रूप से हम पुनः अपने घर लौट आए। अतः देवानुप्रियो! हमारे लिए उचित है, बारहवीं बार भी हम पोत-वहन से लवणसमुद्र का अवगाहन करें। इस प्रकार उन्होंने परस्पर इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। स्वीकार कर जहां माता-पिता थे वहां आए। वहां आकर इस प्रकार कहा--माता-पिता! हमने पोत-वहन से ग्यारह बार लवण-समुद्र का अवगाहन कर लिया। सभी जगह हमने प्रचुर मात्रा में धन कमाया, कृतकार्य हुए और निर्विघ्न रूप से हम पुनः अपने घर लौट आए। अतः माता-पिता! हम चाहते हैं तुमसे अनुज्ञा प्राप्त कर बारहवीं बार भी पोत-वहन से लवण-समुद्र का अवगाहन करें।

५. माता-पिता ने माकन्दिक-पुत्रों से इस प्रकार कहा--पुत्रो! तुम्हारे पितामह, प्रपितामह और प्रप्रपितामह से परम्परा प्राप्त यह बहुत सारा हिरण्य, सुवर्ण, कांस्य, दूष्य, मणि, मौक्तिक, शंख, शिला, प्रवाल, रक्तरत्न तथा श्रेष्ठ सुगन्धित द्रव्य एवं दान भोग आदि के लिए स्वापतेय है, जो यावत् सात पीढ़ी तक प्रचुर मात्रा में दान करने, प्रचुर मात्रा में भोगने और प्रचुर मात्रा में बांटने (विभाग करने) में पर्याप्त है। अतः जात! तुम इस मनुष्य-संबंधी विपुल ऋद्धि, सत्कार और समुदय का अनुभव करो। विघ्न बहुल, निरालम्बन लवण-समुद्र को तैरने से तुम्हें क्या प्रयोजन है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुत्रो! बारहवीं यात्रा में उपसर्ग भी होता है। अतः पुत्रो! तुम दोनों बारहवीं बार पोत-वहन से लवण-समुद्र का अवगाहन मत करो। तुम्हारे शरीर की व्यापत्ति न हो।

६. तए णं ते मागंदिय-दारगा अम्मापियरो दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी—एवं खलु अम्हे अम्मयाओ! एक्कारसवाराओ लवणसमुद्दं पोयवहणेणं ओगाढा। सव्वत्थ वि य णं लद्धट्ठा कयकज्जा अणहसमग्गा पुणरवि नियघरं हव्वमागया। तं सेयं खलु अम्हं अम्मयाओ! दुवालसंपि लवणसमुद्दं पोयवहणेणं ओगाहित्तए।।

६. उन माकन्दिक-पुत्रों ने दूसरी बार, तीसरी बार भी माता-पिता से इस प्रकार कहा--माता-पिता! हमने ग्यारह बार पोत-वहन से लवण-समुद्र का अवगाहन कर लिया। सभी जगह हमने प्रचुर मात्रा में धन कमाया, कृतकार्य हुए और निर्विघ्न रूप से हम पुनः अपने घर लौट आए। अतः माता-पिता! हमारे लिए उचित है, हम बारहवीं बार भी पोत-वहन से लवण-समुद्र का अवगाहन करें।

७. तए णं ते मागंदिय-दारए अम्मापियरो जाहे नो संचाएंति बहूहिं आघवणाहि य पण्णवणाहि य आघवित्तए वा पण्णवित्तए वा ताहे अकामा चेव एयमट्ठं अणुमण्णित्था।।

७. माता-पिता माकन्दिक पुत्रों को बहुत-सी आख्यापनाओं और प्रज्ञापनाओं के द्वारा आख्यापित और प्रज्ञापित करने में समर्थ नहीं हुए तो उन्होंने न चाहते हुए भी अनुमति दे दी।

८. तए णं ते मागंदिय-दारगा अम्मापिऊहिं अब्भणुण्णाया समाणा गणिमं च धरिमं च मेज्जं च पारिच्छेज्जं व भंडगं गेण्हंति, जहा अरहन्नगस्स जाव लवणसमुद्दं बहूइं जोयणसयाइं ओगाढा।।

८. माता-पिता से अनुज्ञा प्राप्त कर माकन्दिक-पुत्रों ने गणनीय, धरणीय, मेय और परिच्छेद्य रूप क्रयाणक (किराना) लिए। अर्हन्नक की भांति यावत् वे लवण-समुद्र में अनेक शत योजन तक पहुंच गए।

नावा-भंग-पदं

९. तए णं तेसिं मागंदिय-दारगाणं लवणसमुद्दं अणेगाइं जोयणसयाइं ओगाढाणं समाणाणं अणेगाइं उप्पाइयसयाइं पाउब्भूयाइं, तं जहा-- अकाले गज्जिए अकाले विज्जुए अकाले थणियसद्दे कालियवाए जाव समुट्ठिए।।

नावा-भंग-पद

९. वे माकन्दिक -पुत्र जब लवण-समुद्र में अनेक शत योजन तक पहुंच गये, तब उनके सामने अनेक शत-उत्पात प्रादुर्भूत हुए, जैसे--अकाल में गर्जन, अकाल में विद्युत, अकाल में मेघ की गंभीर ध्वनि यावत् कालिक-वात (तूफान) उठा।

१०. तए णं सा नावा तेणं कालियवाएणं आहुणिज्जमाणी-आहुणिज्जमाणी संचालिज्जमाणी-संचालिज्जमाणी संखोभिज्जमाणी-संखोभिज्जमाणी सलिलतिक्ख-वेगेहिं अइअट्टिज्जमाणी-अइअट्टिज्जमाणी कोट्टिमंसि करतलाहते विव तिंदूसए तत्थेव-तत्थेव ओवयमाणी य उप्पयमाणी य, उप्पयमाणी विव धरणीयलाओ सिद्धविज्जा विज्जाहरकन्नगा, ओवयमाणी विव गगणतलाओ भट्ठविज्जा विज्जाहरकन्नगा, विपलायमाणी विव महागरुल-वेग-वित्तासिय भुयगवरकन्नगा, धावमाणी विव महाजण-रसियसद्द-वित्तत्था ठाणभट्ठा आसकिसोरी, निगुंजमाणी विव गुरुजण-दिट्ठावराहा सुजणकुलकन्नगा, घुम्ममाणी विव वीचि-पहार-सय-तालिया, गलिय-लंबणा विव गगणतलाओ, रोयमाणी विव सलिलगंथी-विप्पइरमाण-थोरंसुवाएहिं नववहू उवरयभत्तुया, विलवमाणी विव परचक्करायाभिरोहिया परममहब्भयाभिद्दुया महापुरवरी, झायमाणी विव कवड-च्छोमण-पओगजुत्ता जोगपरिव्वाइया, नीससमाणी विव महाकंतार-विणिग्गय-परिस्संता परिणयवया अम्मया, सोयमाणी विव तव-चरण-खीण-परिभोगा

१०. वह नौका उस कालिक-वात से बार-बार कम्पित, संचालित, संक्षुब्ध हो रही थी। पानी के तेज प्रवाह से बार-बार आक्रान्त होती हुई पक्के आंगन में करतल से आहत गेंद की भांति वहीं वहीं गिरकर उछल रही थी, विद्यासिद्ध विद्याधर-कन्या की भांति भूतल से ऊपर उछल रही थी, विद्याभ्रष्ट विद्याधर कन्या की भांति गगनतल से नीचे गिर रही थी। महागरुड़ की तेज गति से वित्रासित प्रवर नाग-कन्या की भांति इधर-उधर भाग रही थी। जन-समूह के कोलाहल से वित्रस्त, स्थान-भ्रष्ट अश्व-किशोरी की भांति दौड़ रही थी। गुरुजनों को अपराध का पता लग जाने के कारण (लज्जावनत) कुलीन-कन्या की भांति झुकी हुई थी। लहरों के सैकड़ों प्रहारों से प्रताड़ित होकर कांपती हुई, बन्धन मुक्त होकर मानों गगनतल से गिर रही थी। जल से भीगी हुई गांठों से टपकते जल-कणों के कारण किसी परित्यक्ता नवोढ़ा की भांति रो रही थी। परम महाभय से अभिद्रुत होने के कारण शत्रु राजा की सेना से घिरी हुई महानगरी की भांति विलाप कर रही थी। कपट और छद्म प्रयोग से युक्त योग-परिव्राजिका की भांति ध्यान कर रही थी। महाकान्तार को पार करने के श्रम से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चवणकाले देववरबहू, संचुण्णियकट्ठ-कूवरा, भग्गमेढि-मोडिय-सहस्समाला, सूलाइय-वंकपरिमासा, फलहंतर-तडतडेंत-फुट्टंत-संधिवियलंत-लोहकीलिया, सव्वंग-वियंभिया, परिसडियरज्जुविसरंत-सव्वगत्ता, आमगमल्लगभूया, अकयपुण्ण-जणमणोरहो विव चिंति-ज्जमाणगुरुई हाहाक्कय-कण्णधार-नाविय-वाणियगजण-कम्मकर-विलविया नाणाविह-रयण-पणिय-संपुण्णा बहूहिं पुरिससएहिं रोयमाणेहिं कंदमाणेहिं सोयमाणेहिं तिप्पमाणेहिं विलवमाणेहिं एगं महं अंतोजलगयं गिरिसिहरमासाइत्ता संभग्गकूवतोरणा मोडियज्झयदंडा वलयसयखंडिया करकरस्स तत्थेव विद्दवं उवगया ।।

परिश्रान्त पुत्रवती प्रौढ़ महिला की भांति निःश्वास छोड़ रही थी। च्यवन काल में तपश्चरण जनित परिभोगो के क्षीण होने पर (चिन्ताकुल) प्रवर देववधू की भांति चिन्ता कर रही थी। उस नौका के काष्ठ और मुखभाग चूर चूर हो गए। मेढ़ी भग्न हो गई। अकस्मात उसकी छत टूट गई। परिमर्श--नौका का काष्ठ वक्र और शूल जैसा हो गया। फलक के विवरों में तड़ तड़ आवाज करती हुई संधियां टूट गई। संधियों में लगी लोह की कीलें निकल गयी। उसके सारे अंग खुल गये। फलक को बांधकर रखनेवाली रस्सियां टूटकर गिर गई। फलतः नौका के सारे अवयव चरमरा गए। वह कच्ची मिट्टी के शिकोरे के समान विगलित हो गई। पुण्यहीन व्यक्ति के मनोरथ की भांति चिन्तनीय होने से भारी हो गयी। उसमें हाहाकार करते कर्णधारों, नाविकों, व्यापारियों और कर्मचारियों का विलाप होने लगा। नाना प्रकार के रत्नों तथा क्रयाणक से भरी हुई वह नौका रोते-चिल्लाते, चिन्ता करते, आंसू बहाते और विलपते हुए अनेक शत-पुरुषों सहित जलगत एक विशाल गिरि-शिखर से टकरा गयी। उसका मस्तूल और तोरण भग्न हो गया। ध्वज दण्ड टूट गए। वह सैंकड़ों वलयाकार टुकड़ों में बिखर गयी और कर-कर शब्द करती हुई वहीं डूब गयी।

११. तए णं तीए नावाए भिज्जमाणीए ते बहवे पुरिसा विपुल-पणिय-भंडमायाए अंतोजलंमि निमज्जाविया यावि होत्था ।।

११. उस भग्न नौका ने उन बहुत से पुरुषों को जल में डुबो दिया जो विपुल क्रयाणक के पात्र लेकर आए थे।

१२. तए णं ते मागंदिय-दारगा छेया दक्खा पत्तट्ठा कुसला मेहावी निउणसिप्पोवगया बहूसु पोयवहण-संपराएसु कयकरणा लद्धविजया अमूढा अमूढहत्था एगं महं फलगखंडं आसादेंति ।।

१२. तब छेक, दक्ष, अनुभवी, कुशल, मेधावी, तैरने की कला में निपुण, बहुत से पोत-वहन के विघ्नों को पार करने के कारण अनुभव प्राप्त, विजयी, अमूढ़ और अमूढ़ हाथों वाले उन माकन्दिक-पुत्रों ने एक विशाल फलक-खण्ड को प्राप्त किया।

रयणदीव-पदं

१३. जंसि च णं पएसंसि से पोयवहणे विवण्णे तंसि च णं पएसंसि एगे महं रयणदीवे नाम दीवे होत्था--अणेगाइं जोयणाइं आयामविक्खंभेणं अणेगाइं जोयणाइं परिक्खेवेणं नाणादुमसंड-मंडिउद्देसे सस्सिरीए पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे।

तस्स बहुमज्झदेसभाए, एत्थ णं महं एगे पासायवडेंसए यावि होत्था--अब्भुग्गयमूसिय-पहसिए जाव सस्सिरीयरूवे पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे।

तत्थ णं पासायवडेंसए रयणदीव-देवया नामं देवया परिवसइ--पावा चंडा रुद्दा खुद्दा साहस्सिया।

तस्स णं पासायवडेंसयस्स चउद्दिसिं चत्तारि वणसंडा--किण्हा किण्होभासा ।।

रत्नद्वीप-पद

१३. जिस प्रदेश में वह पोत-वहन भग्न हुआ था, उस प्रदेश में एक महान रत्नद्वीप नाम का द्वीप था। उसका आयाम विष्कम्भ अनेक योजन परिमित था। उसकी परिधि भी अनेक योजन-परिमित थी। वह नाना द्रुम खण्डों से परिमंडित, श्रीसम्पन्न, चित्त को आल्हादित करने वाला, दर्शनीय, सुन्दर और असाधारण था।

उस द्वीप के बीचों-बीच एक महान, श्रेष्ठ प्रासाद भी था। वह अभ्युद्गत, समुन्नत, प्रहसित यावत् श्री-सम्पन्न, चित्त को आल्हादित करने वाला, दर्शनीय, सुन्दर और असाधारण था।

उस श्रेष्ठ प्रासाद में 'रत्न द्वीप देवता' नाम की एक देवी रहती थी। वह दुष्ट, चण्ड, रौद्र, क्षुद्र और साहसिक थी।

उस श्रेष्ठ प्रासाद के चारों ओर कृष्ण और कृष्णप्रभा वाले चार वनखण्ड थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. तए णं ते माकंदिय-दारगा तेणं फलयखंडेणं ओवुज्झमाणा-ओवुज्झमाणा रयणदीवंतेणं संवूढा यावि होत्था ।।

१४. वे माकन्दिक-पुत्र उस फलक-खण्ड के सहारे तैरते-तैरते उस रत्नद्वीप के किनारे पहुंच गए।

१५. तए णं ते मागंदिय-दारगा थाहं लभंति, मुहुत्तंतरं आससंति, फलगखंडं विसज्जेंति, रयणदीवं उत्तरंति, फलाणं मग्गण-गवेसणं करेंति, फलाइं आहारेंति, नालिएराणं मग्गण-गवेसणं करेंति, नालिएराइं फोडेंति, नालिएरतेल्लेणं अण्णमण्णस्स गायाइं अब्भंगेंति, पोक्खरणीओ ओगाहेंति, जलमज्जणं करेंति, पोक्खरणीओ पच्चुत्तरंति, पुढविसिलावट्टयंसि निसीयंति, निसीइत्ता आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया चंपं नयरिं अम्मापिउआपुच्छणं च लवणसमुद्दोत्तारणं च कालियवायसम्मुच्छणं च पोयवहणविवत्तिं च फलयखंडस्सासायणं च रयणदीवोत्तारं च अणुचिंतेमाणा-अणुचिंतेमाणा ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुहा अट्टज्झाणोवगया झियायंति ।।

१५. उन माकन्दिक-पुत्रों ने समुद्र का थाह पा लिया। मुहूर्त भर आश्वस्त हुए। फलक-खण्ड को विसर्जित किया। रत्नद्वीप पर उतरे। फलों की मार्गणा-गवेषणा की। फल खाए। नारियलों की मार्गणा-गवेषणा की। नारियल फोड़े। नारियल के तेल से एक दूसरे के शरीर पर मालिश की। पुष्करिणी में उतरे। जल-स्नान किया। पुष्करिणी से बाहर आए। पृथ्वी-शिला पट्ट पर बैठे। बैठकर आश्वस्त-विश्वस्त हुए। प्रवर सुखासन में बैठ गए। चम्पानगरी, माता-पिता से अनुमति लेना, लवण-समुद्र को तैरना, तूफानी हवाओं का संमूर्च्छन, नौका की व्यापत्ति, फलक-खण्ड को पाना, रत्न-द्वीप पर उतरना इत्यादि घटनाओं का बार-बार अनुचिन्तन करते हुए वे भग्न-हृदय हो हथेली पर मुंह टिकाए, आर्त्तध्यान में डूबे हुए चिन्तामग्न हो रहे थे।

रयणदीवदेवया-पदं

रत्नद्वीपदेवता-पद

१६. तए णं सा रयणदीवदेवया ते मागंदिय-दारए ओहिणा आभोएइ, असि-खेडग-वग्ग-हत्था सत्तट्ठतलप्पमाणं उड्ढं वेहासं उप्पयइ, उप्पइत्ता ताए उक्किट्ठाए जाव देवगईए वीईवयमाणी-वीईवयमाणी जेणेव मागंदिय-दारया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आसुरुत्ता ते मागंदिय-दारए खर-फरुस-निट्ठुर-वयणे एवं वयासी--हंभो मागंदिय-दारया! जइ णं तुब्भे मए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरह, तो भे अत्थि जीवियं। अहण्णं तुब्भे मए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा नो विहरह, तो भे इमेणं नीलुप्पल-गवलगुलिय - अयसिकुसुमप्पगासेणं खुरधारेणं असिणा रत्तगंडमंसुयाइं माउआहिं उवसोहियाइं तालफलाणि व सीसाइं एगंते एडेमि ।।

१६. उस रत्नद्वीपदेवी ने उन माकन्दिक-पुत्रों को अवधिज्ञान से देखा। तलवार और ढाल से व्यग्र हाथों वाली वह सात-आठ हस्त-तल प्रमाण ऊपर आकाश में उछली। उछलकर उस उत्कृष्ट यावत् देवगति से चलती-चलती जहां माकन्दिक-पुत्र थे, वहां आयी। वहां आकर क्रोध से तमतमाती हुई खर, परुष और निष्ठुर शब्दों से उन माकन्दिक पुत्रों से इस प्रकार बोली--हे माकन्दिक-पुत्रो ! यदि तुम लोग मेरे साथ विपुल भोगार्ह भोगों को भोगते हुए रहते हो तो तुम्हारा जीवन है। यदि मेरे साथ विपुल भोगार्ह भोगों को भोगते हुए नहीं रहते हो, तो मैं इस नीलोत्पल, भैंसे के सींग और अतसी पुष्प के समान प्रभा और तेज धार वाली तलवार से तुम्हारे रक्ताभ कपोल, दाढ़ी और मूछों से उपशोभित मस्तकों को काटकर तालवृक्ष के फल की भांति एकान्त में फेंक दूंगी।

१७. तए णं ते मागंदिय-दारगा रयणदीवदेवयाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म भीया करयल परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी--जण्णं देवाणुप्पिया वइस्संति तस्स आणा-उववाय-वयण-निद्देसे चिट्ठिस्सामो ।।

१७. उस रत्नद्वीपदेवी के पास यह अर्थ सुनकर, अवधारण कर भयभीत हुए उन माकन्दिक पुत्रों ने जुड़ी हुई, सिर पर प्रदक्षिणा करती अञ्जलि को मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिया जिसके लिए कहेगी हम उसी की आज्ञा, उपपात, वचन और निर्देश में रहेंगे।

१८. तए णं सा रयणदीवदेवया ते मागंदिय-दारए गेण्हइ, जेणेव पासायवडेंसए तेणेव उवागच्छइ, असुभपोग्गलावहारं करेइ, सुभपोग्गल-पक्खेवं करेइ, तओ पच्छा तेहिं सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ, कल्लाकल्लिं च अमयफलाइं उवणेइ ।।

१८. रत्नद्वीपदेवी ने उन माकन्दिक पुत्रों को (साथ) लिया। जहां श्रेष्ठ प्रासाद था, वहां आयी। अशुभ पुद्गलों का अपहार किया। शुभ पुद्गलों का प्रक्षेप किया। तत्पश्चात् उनके साथ विपुल भोगार्ह भोगों को भोगती हुई विहार करने लगी और प्रतिदिन उन्हें अमृतफल लाकर देने लगी।

रयणदीवदेवयाए मागंदिय-पुत्ताणं निद्देस-पदं

रत्नद्वीपदेवी का माकन्दिक-पुत्रों को निर्देश-पद

१९. तए णं सा रयणदीवदेवया सक्कवयण-संदेसेणं सुट्ठिएणं

१९. शक्र के सन्देश वचन के अनुसार लवणसमुद्र के अधिपति सुस्थित देव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लवणाहिवइणा लवणसमुद्दे तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टेयव्वे त्ति जं किंचि तत्थ तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा कयवरं वा असुइ पूइयं दुरभिगंधमचोक्खं, तं सव्वं आहुणिय-आहुणिय तिसत्तखुत्तो एगंते एडेयव्वं ति कट्टु निउत्ता।।

ने उस रत्नद्वीपदेवी को एक विशेष कार्य के लिए नियुक्त किया--तुम्हें इक्कीस बार लवण-समुद्र के चक्कर लगाने हैं, वहां जो कुछ घास, पात, काठ, कचरा, अशुचि, पीव और दुर्गन्ध पूर्ण खराब पदार्थ हो, उसे इक्कीस बार उठा उठाकर एकान्त में फेंकना है।

२०. तए णं सा रयणदीवदेवया ते मागंदिय-दारए एवं वयासी--एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! सक्कवयण-संदेसेणं सुट्ठिएणं लवणाहिवइणा तं चेव जाव निउत्ता। तं जाव अहं देवाणुप्पिया! लवणसमुद्दे तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टित्ता जं किंचि तत्थ तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा कयवरं वा असुइ पूइयं दुरभिगंधमचोक्खं, तं सव्वं आहुणिय-आहुणिय तिसत्तखुत्तो एगंते एडेमि ताव तुब्भे इहेव पासायवडेंसए सुहंसुहेणं अभिरममाणा चिट्ठह। जइ णं तुब्भे एयंसि अंतरंसि उव्विग्गा वा उस्सुया वा उप्पुया वा भवेज्जाह तो णं तुब्भे पुरत्थिमिल्लं वणसंडं गच्छेज्जाह। तत्थ णं दो उऊ सया साहीणा, तं जहा--पाउसे य वासारत्ते य।

२०. उस रत्नद्वीपदेवी ने उन माकन्दिक-पुत्रों से इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! शक्र के सन्देश वचन के अनुसार लवण-समुद्र के अधिपति सुस्थित देव ने मुझे एक विशेष कार्य के लिए नियुक्त किया है। अतः देवानुप्रियो! जब तक मैं इक्कीस बार लवण-समुद्र का चक्कर लगाकर वहां जो कुछ घास, पात, काठ, कचरा, अशुचि, पीव और दुर्गन्ध पूर्ण खराब पदार्थ हैं, उसे इक्कीस बार उठा-उठाकर एकान्त में फेंककर वापस आऊं, तब तक तुम यहीं श्रेष्ठ प्रासाद में सुखपूर्वक रमण करते रहो। यदि तुम इस अन्तराल में उद्विग्न, उत्सुक, उत्प्लुत (भयभीत) हो जाओ तो पूर्व वाले वन-खण्ड में चले जाना। वहां दो ऋतुएं सदा उपलब्ध रहती हैं जैसे--प्रावृट् और वर्षा।[1]

गाहा--

तत्थ उ--
कंदल-सिलिंध-दंतो, निउर-वरपुप्फपीवरकरो।
कुडयज्जुण-नीव-सुरभिदाणो, पाउसउऊ गयवरो साहीणो।।१।।
तत्थ य--
सुरगोवमणि-विचित्तो, दद्दुरकुलरसिय-उज्झररवो।
बरहिणवंद-परिणद्धसिहरो, वासारत्तउऊ पव्वओ साहीणो।।२।।

गाथा--

१. वहां कन्दल और सिलिन्ध्र रूप दांतों वाला प्रवर पुष्पों से लदे निकुर वृक्ष रूप शुण्डादण्ड वाला और कुटज, अर्जुन एवं कदम्ब वृक्षों के फूलों की सुरभि रूप मद जल वाला, पावस ऋतु रूप प्रवर गज विद्यमान है।

२. वहां इन्द्रगोप रूप मणियों से विचित्र, मेढ़कों के टर-टर ध्वनि रूप झरनों के कलरव और मयूर समूह सेवित वृक्ष रूप शिखरों वाला वह वर्षा ऋतु रूप पर्वत विद्यमान है।

तत्थ णं तुब्भे देवाणुप्पिया! बहूसु वावीसु य जाव सरसरपंतियासु य बहूसु आलीघरएसु य मालीघरएसु य जाव कुसुमघरएसु य सुहंसुहेणं अभिरममाणा अभिरममाणा विहरिज्जाह। जइ णं तुब्भे तत्थ वि उव्विग्गा वा उस्सुया वा उप्पुया वा भवेज्जाह तो णं तुब्भे उत्तरिल्लं वणसंडं गच्छेज्जाह। तत्थ णं दो उऊ सया साहीणा, तं जहा--सरदो य हेमंतो य।

देवानुप्रियो! वहां तुम बहुत-सी वापियों यावत् सरोवर से संलग्न सरपंक्तियों में और बहुत से आलिगृहों, मालिगृहों यावत् कुसुमगृहों में सुखपूर्वक अभिरमण करते रहना। यदि तुम वहां भी उद्विग्न, उत्सुक, उत्प्लुत हो जाओ तो तुम उत्तर वाले वन-खण्ड में चले जाना। वहां दो ऋतुएं सदा विद्यमान हैं, जैसे--शरद और हेमन्त।

गाहा--

तत्थ उ--
सण-सत्तिवण्ण-कउहो, नीलुप्पल-पउम-नलिण-सिंगो।
सारस-चक्काय-रवियघोसो, सरयउऊ गोवई साहीणो।।३।।
तत्थ य--
सियकुंद-धवलजोण्हो, कुसुमिय-लोद्धवणसंड-मंडलतलो।
तुसार-दगधार-पीवरकरो, हेमंतउऊ ससी सया साहीणो।।४।।

गाथा--

१. वहां सन और सप्तवर्ण रूप ककुद वाला, नीलोत्पल, पद्म और नलिन रूप सींगों वाला और सारस एवं चक्रवाक के शब्द रूप घोष वाला शरद् ऋतु रूप वृषभ विद्यमान है।

२. वहां श्वेत कुन्द-पुष्प रूप धवल ज्योत्स्ना वाला, कुसुमित लोध्र-वन-खण्ड-रूप मण्डल वाला और तुषार, जलधार रूप पुष्ट किरणों वाला हेमन्त ऋतु रूप चन्द्रमा सदा विद्यमान है।

तत्थ णं तुब्भे देवाणुप्पिया! बहूसु वावीसु य जाव सरसरपंतियासु

देवानुप्रियो! वहां तुम बहुत-सी वापियों यावत् सरोवर से संलग्न

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

य बहूसु आलीघरएसु य मालीघरएसु य जाव कुसुमघरएसु य सुहंसहेणं अभिरममाणा-अभिरममाणा विहरिज्जाह। जइ णं तुब्भे तत्थ वि उव्विग्गा वा उस्सुया वा उप्पुया वा भवेज्जाह तो णं तुब्भे अवरिल्लं वणसंडं गच्छेज्जाह। तत्थ णं दो उऊ सया साहीणा तं जहा--वसंते य गिम्हे य।

सरपंक्तियों में और बहुत से आलिगृहों, मालिगृहों यावत् कुसुमगृहों में सुखपूर्वक अभिरमण करते रहना। यदि तुम वहां भी उद्विग्न, उत्सुक, उत्प्लुत हो जाओ तो तुम पश्चिम वाले वनखण्ड में चले जाना। वहां दो ऋतुएं सदा विद्यमान हैं, जैसे--वसन्त और ग्रीष्म।

गाहा--

तत्थ उ--
सहकार-चारुहारो, किंसुय-कण्णियारासोगमउडो।
ऊसियतिलग-बकुलायवत्तो, वसंतउऊ नरवई साहीणो।।५।।
तत्थ य--
पाडल-सिरीस-सलिलो, मल्लिया-वासंतिय-धवलवेलो।
सीयलसुरभि-निल-मगरचरिओ, गिम्हउऊ सागरो साहीणो।।६।।

गाथा--

१. वहां सहकार रूप सुन्दर हार वाला, किंशुक, कर्णिकार और अशोक (वृक्ष) रूप मुकुट वाला एवं समुन्नत तिलक और बकुल (वृक्ष) रूप छत्र वाला बसंत रूप राजा विद्यमान है।
२. वहां गुलाब और शिरीष के पुष्प रूप जल वाला, मल्लिका और वसन्तिका लता रूप उज्ज्वल बेला वाला और शीतल, सुवासित पवन रूप मकर-संचार वाला ग्रीष्म ऋतु रूप सागर विद्यमान है।

तत्थ णं बहूसु वावीसु य जाव सरसरपंतियासु य बहूसु आलीघरएसु य मालीघरएसु य जाव कुसुमघरएसु य सुहंसुहेणं अभिरममाणा-अभिरममाणा विहरेज्जाह। जइ णं तुब्भे देवाणुप्पिया! तत्थ वि उव्विग्गा वा उस्सुया वा उप्पुया वा भवेज्जाह तओ तुब्भे जेणेव पासायवडेंसए तेणेव उवागच्छेज्जाह ममं पडिवालेमाणा-पडिवालेमाणा चिट्ठेज्जाह, मा णं तुब्भे दक्खिणिल्लं वणसंडं गच्छेज्जाह। तत्थ णं महं एगे उग्गविसे चंडविसे घोरविसे अइकाए महाकाए मसि-महिस-मूसा-कालए नयणविसरोसपुण्णे अंजणपुंज-नियरप्पगासे रत्तच्छे जमल-जुयल-चंचल-चलंतजीहे धरणितल-वेणिभूए उक्कड-फुड-कुडिल-जडुल-कक्खड-वियड-फडाडोव-करणदच्छे लोहागर-धम्ममाण-धमधमेंतघोसे अणागलिय-चंडतिव्वरोसे समुहिय-तुरिय-चवलं धमंते दिट्ठीविसे सप्पे परिवसइ। मा णं तुब्भं सरीरगस्स वावत्ती भविस्सइ--ते मागंदिय-दारए दोच्चंपि तच्चंपि एवं वदति, वदित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ, समोहणित्ता ताए उक्किट्ठाए देवगईए लवणसमुद्दं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टेउं पयत्ता यावि होत्था।।

वहां तुम बहुत सी वापियों यावत् सरोवर से संलग्न सर-पंक्तियों में और बहुत से आलिगृहों, मालिगृहों यावत् कुसुमगृहों में सुखपूर्वक अभिरमण करते रहना। देवानुप्रियो! यदि तुम वहां भी उद्विग्न उत्सुक, उत्प्लुत हो जाओ तो तुम जहां श्रेष्ठ प्रासाद है, वहां चले जाना और मेरी प्रतीक्षा करते रहना, लेकिन-तुम दक्षिण दिशा वाले वन-खण्ड में मत जाना।

वहां एक महान दृष्टिविष सर्प रहता है। वह उग्रविष, चण्डविष, घोर-विष, अतिकाय, महाकाय, स्याही, महिष और मूषा (स्वर्ण को तपाने वाला भाजन) जैसा काला, विष और रोष से परिपूर्ण आंखों वाला, अंजन पुञ्ज के निकर जैसी प्रभा वाला, रक्त-लोचन, अपनी दो जिह्वाओं को चपलतापूर्वक एक साथ भीतर बाहर ले जाने वाला, धरणि-तल की वेणी जैसा, उत्कट, स्फुट, कुटिल, जटिल, कर्कश और विकट फटाटोप करने में दक्ष, भट्टी में तपते हुए लोहे की भांति धमधमायमान, दुर्निवार, चण्ड और तीव्र रोष वाला और कुत्ते के भौंकने जैसा त्वरित, चपल शब्द करने वाला है। अतः कहीं तुम्हारे शरीर की व्यापत्ति न हो जाए--उसने माकन्दिक-पुत्रों को दूसरी बार, तीसरी बार भी इस प्रकार कहा। ऐसा कहकर वैक्रिय-समुद्घात से समवहत हुई। समवहत होकर उस उत्कृष्ट देवगति से इक्कीस बार लवण-समुद्र के चक्कर लगाने में प्रवृत्त हो गई।

मागंदियपुत्ताणं वणसंडगमण-पदं

२१. तए णं ते मागंदिय-दारया तओ मुहुत्तंतरस्स पासायवडेंसए सइं वा रइं वा धिइं वा अलभमाणा अण्णमण्णं एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! रयणदीव-देवया अम्हे एवं वयासी--एवं खलु अहं सक्कवयण-संदेसेणं सुट्ठिएणं लवणाहिवइणा निउत्ता जाव मा णं तुब्भं सरीरगस्स वावत्ती भविस्सइ। तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया! पुरत्थिमिल्लं वणसंडं गमित्तए--अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता जेणेव पुरत्थिमिल्ले वणसंडे तेणेव उवागच्छंति। तत्थ

माकन्दिक-पुत्रों का वनखण्ड गमन-पद

२१. मुहूर्त भर के बाद ही वे माकन्दिक-पुत्र जब उस श्रेष्ठ प्रासाद में स्मृति, रति और धृति को उपलब्ध नहीं हुए, तो वे एक दूसरे से इस प्रकार कहने लगे--देवानुप्रिय! रत्नद्वीप देवी ने हमें इस प्रकार कहा था-शक्र के संदेश-वचन के अनुसार लवणद्वीप के अधिपति सुस्थित देव ने मुझे एक विशेष कार्य के लिए नियुक्त किया है, यावत् कहीं तुम्हारे शरीर की व्यापत्ति न हो जाए। अतः देवानुप्रिय! हमारे लिए उचित है हम पूर्व दिशा वाले वनखण्ड में जाएं। उन्होंने परस्पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णं वावीसु य जाव आलीघरएसु य जाव सुहंसुहेणं अभिरममाणा-अभिरममाणा विहरंति ।।

इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। स्वीकार कर जहां पूर्व दिशा वाला वनखण्ड था वहां आए। वहां आकर वापियों में यावत् आलिगृहों में यावत् सुखपूर्वक अभिरमण करते हुए विहार करने लगे।

२२. तए णं ते मागंदिय-दारगा तत्थ वि सइं वा रइं वा धिइं वा अलभमाणा जेणेव उत्तरिल्ले वणसंडे तेणेव उवागच्छंति। तत्थ णं वावीसु य जाव आलीघरएसु य सुहंसुहेणं अभिरममाणा-अभिरममाणा विहरंति ।।

२२. वे माकन्दिक-पुत्र वहां भी जब स्मृति, रति और धृति को उपलब्ध नहीं हुए तो वे जहां उत्तर दिशा वाला वन-खण्ड था वहां गए। वहां जाकर वापियों में यावत् आलिगृहों में सुखपूर्वक अभिरमण करते हुए विहार करने लगे।

२३. तए णं ते मागंदिय-दारगा तत्थ वि सइं वा रइं वा धिइं वा अलभमाणा जेणेव पच्चत्थिमिल्ले वणसंडे तेणेव उवागच्छंति। तत्थ णं वावीसु य जाव आलीघरएसु य सुहंसुहेणं अभिरममाणा-अभिरममाणा विहरंति ।।

२३. वे माकन्दिक-पुत्र वहां भी जब स्मृति, रति और धृति को उपलब्ध नहीं हुए, तो वे जहां पश्चिम दिशा वाला वनखण्ड था वहां गए। वहां जाकर वापियों में यावत् आलिगृहों में सुखपूर्वक अभिरमण करते हुए विहार करने लगे।

२४. तए णं ते मागंदिय-दारगा तत्थ वि सइं वा रइं वा धिइं वा अलभमाणा अण्णमण्णं एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हे रयणदीवदेवया एवं वयासी--एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! सक्कवयण-संदेसेणं सुट्ठिएणं लवणाहिवइणा निउत्ता जाव मा णं तुब्भं सरीरगस्स वावत्ती भविस्सइ। तं भवियव्वं एत्थ कारणेणं। तं सेयं खलु अम्हं दक्खिणिल्लं वणसंडं गमित्तए त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता जेणेव दक्खिणिल्ले वणसंडे तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तओ णं गंधे निद्धाइ, से जहानामए--अहिमडे इ वा जाव अणिट्ठतराए चेव ।।

२४. वे माकन्दिक पुत्र वहां भी जब स्मृति, रति और धृति को उपलब्ध नहीं हुए, तो उन्होंने एक दूसरे से इस प्रकार कहा--रत्नद्वीप देवी ने हमें इस प्रकार कहा था--देवानुप्रियो! शक्र के संदेश वचन के अनुसार लवणसमुद्र के अधिपति सुस्थित देव ने मुझे एक विशेष कार्य के लिए नियुक्त किया है। यावत् कहीं तुम्हारे शरीर की व्यापत्ति न हो जाए। तो यहां कोई कारण होना चाहिए। अतः हमारे लिए उचित है, हम दक्षिण दिशा वाले वनखण्ड में जाएं। उन्होंने परस्पर इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। स्वीकार कर जहां दक्षिण दिशा वाला वनखण्ड था, वहां जाने का संकल्प किया। वहां मृत सर्प जैसी दुर्गन्ध फूटने लगी, यावत् वह गन्ध उससे भी अनिष्टतर थी।

२५. तए णं ते मागंदिय-दारगा तेणं असुभेणं गंधेणं अभिभूया समाणा सएहिं-सएहिं उत्तरिज्जेहिं आसाइं पिहेंति, पिहेत्ता जेणेव दक्खिणिल्ले वणसंडे तेणेव उवागया। तत्थ णं महं एगं आघयणं पासंति--अट्ठियरासि-सय-संकुलं भीम-दरिसणिज्जं। एगं च तत्थ सूलाइयं पुरिसं कलुणाइं कट्ठाइं विस्सराइं कूवमाणं पासंति, भीया तत्था तसिया उव्विग्गा संजायभया जेणेव से सूलाइए पुरिसे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं सूलाइयं पुरिसं एवं वयासी--एस णं देवाणुप्पिया! कस्साघयणे? तुमं च णं के कओ वा इहं हव्वमागए? केण वा इमेयारूवं आवयं पाविए?

२५. उस अशुभ गंध से अभिभूत होकर उन माकन्दिक-पुत्रों ने अपने-अपने उत्तरीय वस्त्रों से मुंह ढ़क लिए। मुंह ढ़ककर वे जहां दक्षिण दिशा वाला वनखण्ड था वहां आए। वहां आकर एक महान वधस्थान को देखा। वह हड्डियों के सैकड़ों ढ़ेरों से संकुल और देखने में भीम था। वहां उन्होंने शूली पर चढ़े हुए एक पुरुष को देखा। वह पुरुष करुण, कष्टकर और विरूप स्वर से क्रन्दन कर रहा था। उसे देख वे भीत, त्रस्त, तृषित, उद्विग्न और भयाक्रान्त होकर, जहां शूली पर चढ़ा हुआ पुरुष था, वहां आए। वहां आकर शूली पर चढ़े हुए पुरुष से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! यह वधस्थान किसका है? तुम कौन हो? यहां कहां से आए हो? और तुम्हें इस प्रकार की विपदा में किसने डाला?

२६. तए णं से सूलाइए पुरिसे ते मागंदिय-दारगे एवं वयासी--एस णं देवाणुप्पिया! रयणदीवदेवयाए आघयणे। अहं णं देवाणुप्पिया! जंबुद्दीवाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ कागंदए आसवाणियए विपुलं पणियभंडमायाए पोयवहणेणं लवणसमुद्दं ओयाए। तए णं अहं पोयवहण-विवत्तीए निब्बुड-भंडसारे एगं फलगखंडं आसाएमि।

२६. शूली पर चढ़ा हुआ वह पुरुष उन माकन्दिक-पुत्रों से इस प्रकार बोला--देवानुप्रियो! यह वध-स्थान रत्नद्वीपदेवी का है। देवानुप्रियो! मैं जम्बूद्वीपद्वीप भारतवर्ष और काकन्दी नगरी का अश्व-वणिक् (घोड़ों का व्यापारी) हूँ। मैं वहां से विपुल पण्य, क्रयाणक लेकर पोत-वहन से लवण-समुद्र में उतरा था। पोत-वहन के भग्न हो जाने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तए णं अहं ओवुज्झमाणे-ओवुज्झमाणे रयणदीवंतेणं संवूढे। तए णं सा रयणदीवदेवया ममं पासइ, पासित्ता ममं गेण्हइ, गेण्हित्ता मए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ। तए णं सा रयणदीवदेवया अण्णया कयाइ अहालहुसगंसि अवराहंसि परिकुविया समाणी ममं एयारूवं आवयं पावेइ। तं न नज्जइ णं देवाणुप्पिया! तुब्भं पि इमेसिं सरीरगाणं का मण्णे आवई भविस्सइ?

और माल के डूब जाने पर मैं एक फलक-खण्ड को प्राप्त हुआ और उसके सहारे तैरता-तैरता मैं रत्नद्वीप के तट पर पहुंचा। रत्नद्वीपदेवी ने मुझे देखा। देखकर मुझे अपने साथ लिया और मेरे साथ विपुल भोगार्ह भोगों को भोगती हुई विहार करने लगी। किसी समय मुझसे छोटा सा अपराध हो जाने पर परिकुपित हुई रत्नद्वीपदेवी ने मुझे इस प्रकार की विपदा मे डाल दिया।

पता नहीं, देवानुप्रियो! तुम्हारे भी इन शरीरों पर क्या आपदा आएगी?

२७. तए णं ते मागंदिय-दारगा तस्स सूलाइगस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म बलियतरं भीया तत्था तसिया उव्विग्गा संजायभया सूलाइयं पुरिसं एवं वयासी--कहण्णं देवाणुप्पिया! अम्हे रयणदीव-देवयाए हत्थाओ साहत्थिं नित्थरेज्जामो?

२७. वे माकन्दिक-पुत्र शूली पर चढ़े हुए पुरुष के पास यह अर्थ सुनकर, अवधारण कर अत्यधिक भीत, त्रस्त, तृषित, उद्विग्न और भयाक्रान्त हो शूली पर चढ़े हुए पुरुष से इस प्रकार बोले--देवानुप्रिय! हम रत्नद्वीपदेवी के हाथ से कैसे निकलें?

२८. तए णं से सूलाइए पुरिसे ते मागंदिय-दारगे एवं वयासी--एस णं देवाणुप्पिया! पुरत्थिमिल्ले वणसंडे सेलगस्स जक्खस्स जक्खाययणे सेलए नामं आसरूवधारी जक्खे परिवसइ। तए णं से सेलए जक्खे चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु आगयसमए पत्तसमए महया-महया सद्देणं एवं वदइ--कं तारयामि? कं पालयामि? तं गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! पुरत्थिमिल्लं वणसंडं सेलगस्स जक्खस्स महरिहं पुप्फच्चणियं करेह, करेत्ता जन्नुपायवडिया पंजलिउडा विणएणं पज्जुवासमाणा विहरह। जाहे णं से सेलए जक्खे आगयसमए पत्तसमए एवं वएज्जा--कं तारयामि? कं पालयामि? ताहे तुब्भे एवं वदह-- अम्हे तारयाहि अम्हे पालयाहि। सेलए भे जक्खे परं रयणदीवदेवयाए हत्थाओ साहत्थिं नित्थारेज्जा। अण्णहा भे न याणामि इमेसिं सरीरगाणं का मण्णे आवई भविस्सइ?

२८. वह शूलि पर चढ़ा हुआ पुरुष उन माकन्दिक-पुत्रों से इस प्रकार बोला--देवानुप्रियो! पूर्व दिशावाले वनखण्ड में शैलकयक्ष का यक्षायतन है। वहां अश्वरूपधारी शैलक नाम का यक्ष रहता है। वह शैलक यक्ष चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा का समय निकट या उपस्थित होने पर ऊंचे-ऊंचे स्वर से इस प्रकार कहता है--किसको तारूं? किसकी रक्षा करूं? इसलिए देवानुप्रियो! तुम पूर्व दिशावाले वन-खण्ड में जाओ। वहां शैलक यक्ष की महान् अर्हता वाली पुष्प-पूजा करो। फिर घुटनों के बल बैठ, यक्ष के चरणों में मस्तक रख, प्राञ्जलिपुट हो, विनयपूर्वक उसकी पर्युपासना करो। जब समय निकट होने या उपलब्ध होने पर शैलक यक्ष यह कहे कि--किसको तारूं? किसकी रक्षा करूं? तब तुम इस प्रकार कहना--हमें तारो। हमारी रक्षा करो।

वह शैलक यक्ष निश्चित ही तुमको रत्नद्वीपदेवी के हाथों से बचा लेगा। अन्यथा न जाने तुम्हारे इन शरीरों पर क्या आपदा आएगी?

सेलगजक्ख-पदं

२९. तए णं ते मागंदिय-दारगा तस्स सूलाइयस्स पुरिसस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म सिग्घं चंडं चवलं तुरियं वेइयं जेणेव पुरत्थिमिल्ले वणसंडे जेणेव पोक्खरिणी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पोक्खरिणिं ओगाहेंति, ओगाहेत्ता जलमज्जणं करेंति, करेत्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं जाव ताइं गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव सेलगस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता आलोए पणामं करेंति, करेत्ता महरिहं पुप्फच्चणियं करेंति, करेत्ता जन्नुपायवडिया सुस्सूसमाणा नमंसमाणा पज्जुवासंति।।

शैलक यक्ष-पद

२९. वे माकन्दिक पुत्र उस शूली पर चढ़े हुए पुरुष से यह अर्थ सुनकर, अवधारण कर, शीघ्र, चण्ड, चपल, त्वरित और वेगपूर्ण गति से जहां पूर्व दिशा वाला वन-खण्ड था, जहां पुष्करिणी थी वहां आए। आकर पुष्करिणी में उतरे, उतरकर जलमज्जन किया। जलमज्जन कर वहां जो उत्पल यावत् जो भी शत-पत्र, सहस्रपत्र थे, उन्हें लिया। लेकर वे जहां शैलक यक्ष का यक्षायतन था, वहां आए। वहां आकर शैलक यक्ष को देखते ही प्रणाम किया। प्रणाम कर महान अर्हता वाली पुष्पपूजा की। पुष्पपूजा कर घुटनों के बल बैठ, शुश्रूषा करते हुए नमन की मुद्रा में पर्युपासना करने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०. तए णं से सेलए जक्खे आगयसमए पत्तसमए एवं वयासी--कं तारयामि? कं पालयामि?

३०. वह शैलक यक्ष समय के निकट और उपस्थित होने पर इस प्रकार बोला--किसको तारूं? किसकी रक्षा करूं?

३१. तए णं ते मागंदिय-दारगा उट्ठाए उट्ठेंति, उट्ठेत्ता करयल परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी--अम्हे तारयाहि अम्हे पालयाहि।।

३१. वे माकन्दिकपुत्र स्फूर्ति के साथ उठे। उठकर सिर पर प्रदक्षिणा करती अञ्जलि को मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार कहा--हमें तारो। हमारी रक्षा करो।

३२. तए णं से सेलए जक्खे ते मागंदिय-दारए एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! तुब्भं मए सद्धिं लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयमाणाणं सा रयणदीवदेवया पावा चंडा रुद्दा खुद्दा साहसिया बहूहिं खरएहि य मउएहि य अणुलोमेहि य पडिलोमेहि य सिंगारेहि य कलुणेहि य उवसग्गेहिं उवसग्गं करेहिइ। तं जए णं तुब्भे देवाणुप्पिया! रयणदीवदेवयाए एयमट्ठं आढाह वा परियाणह वा अवयक्खह वा तो भे अहं पट्ठाओ विहुणामि। अह णं तुब्भे रयणदीवदेवयाए एयमट्ठं नो आढाह नो परियाणह नो अवयक्खह तो भे रयणदीवदेवयाए हत्थाओ साहत्थिं नित्थारेमि।।

३२. वह शैलक यक्ष उन माकन्दिकपुत्रों से इस प्रकार बोला--देवानुप्रियो! जब तुम मेरे साथ लवण-समुद्र के बीचों-बीच से होकर चलोगे, तब वह दुष्ट, चण्ड, रौद्र, क्षुद्र, साहसिक रत्नद्वीपदेवी नाना प्रकार के कठोर, कोमल, अनुकूल, प्रतिकूल, कामोत्पादक, करुणा-जनक उपसर्गों (वचनों) से उपसर्ग करेगी। देवानुप्रियो! यदि तुम रत्नद्वीप देवी के इस अर्थ को आदर दोगे, उसकी ओर ध्यान दोगे या उसकी ओर देखोगे तो मैं तुम्हें अपनी पीठ से नीचे पटक दूंगा।

इसके विपरीत यदि तुम रत्नद्वीपदेवी के अर्थ को आदर नहीं दोगे, उसकी ओर ध्यान नहीं दोगे तथा उसकी ओर नहीं देखोगे तो मैं रत्नद्वीपदेवी के हाथों से तुम्हारा निस्तार कर दूंगा।

३३. तए णं ते मागंदिय-दारगा सेलगं जक्खं एवं वयासी--जं णं देवाणुप्पिया वइस्संति तस्स णं (आणा?) उववाय-वयण-निद्देसे चिट्ठिस्सामो।।

३३. वे माकन्दिक-पुत्र शैलक यक्ष से इस प्रकार बोले--देवानुप्रिय! जिसके लिए कहेंगे, हम उसी की आज्ञा, उपपात, वचन और निर्देश में रहेंगे।

३४. तए णं से सेलए जक्खे उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निस्सिरइ, दोच्चंपि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ, समोहणित्ता एगं महं आसरूवं विउव्वइ, विउवित्ता मागंदिय-दारए एवं वयासी--हं भो मागंदिय-दारया! आरुहह णं देवाणुप्पिया! मम पट्ठंसि।।

३४. वह शैलक-यक्ष ईशान-कोण में गया। वहां जाकर वैक्रिय समुद्घात से समवहत हुआ। समवहत होकर संख्यात योजन का एक दण्ड निर्मित किया, यावत् दूसरी बार वैक्रिय समुद्घात से समवहत हुआ। समवहत होकर एक महान अश्वरूप की विक्रिया की। विक्रिया कर माकन्दिक पुत्रों से इस प्रकार कहा--माकन्दिक-पुत्रो! देवानुप्रियो! मेरी पीठ पर आरूढ़ हो जाओ।

३५. तए णं ते मागंदिय-दारया हट्ठा सेलगस्स जक्खस्स पणामं करेंति, करेत्ता सेलगस्स पट्ठं दुरूढा।।

३५. माकन्दिक-पुत्रों ने हर्षित होकर शैलक यक्ष को प्रणाम किया। प्रणाम कर वे शैलक की पीठ पर आरूढ़ हो गए।

३६. तए णं से सेलए ते मागंदिय-दारए पट्ठे दुरूढे जाणित्ता सत्तट्ठतलप्पमाणमेत्ताइं उड्ढं वेहासं उप्पयइ, उप्पइत्ता ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए दिव्वाए देवगईए लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं जेणेव जंबुद्दीवे दीवे जेणेव भारहे वासे जेणेव चंपा नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।।

३६. वह शैलक उन माकन्दिक-पुत्रों को अपनी पीठ पर आरूढ़ हआ जानकर सात-आठ हस्ततल-प्रमाण ऊपर आकाश में उछला। उछलकर उस उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, चण्ड, दिव्य देवगति से लवणसमुद्र के बीचोंबीच से गुजरता हुआ जहां जम्बूद्वीप द्वीप, भारतवर्ष और चम्पानगरी थी, वहां जाने का संकल्प किया।

रयणदीवदेवया-उवसग्ग-पदं

रत्नद्वीपदेवी का उपसर्ग-पद

३७. तए णं सा रयणदीवदेवया लवणसमुद्दं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टइ, जं तत्थ तणं वा जाव एगंते एडेइ, जेणेव पासायवडेंसए तेणेव

३७. रत्नद्वीपदेवी ने इक्कीस बार लवणसमुद्र के चक्कर लगाए। वहां घास यावत् जो कुछ था उसे उठा-उठाकर एकान्त में फेंका। जहां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ते मागंदिय-दारए पासायवडेंसए अपासमाणी जेणेव पुरत्थिमिल्ले वणसंडे तेणेव उवागच्छइ जाव सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेइ, करेत्ता तेसिं मागंदिय-दारगाणं कत्थइ सुइं वा खुइं वा पउत्तिं वा अलभमाणी जेणेव उत्तरिल्ले, एवं चेव पच्चत्थिमिल्ले वि जाव अपासमाणी ओहिं पउंजइ, ते मागंदिय-दारए सेलएणं सद्धिं लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयमाणे पासइ, पासित्ता आसुरुत्ता असिखेडगं गेण्हइ, गेण्हित्ता सत्तट्ठ तलप्पमाणमेत्ताइं उड्ढं वेहासं उप्पयइ, उप्पइत्ता ताए उक्किट्ठाए देवगईए जेणेव मागंदिय-दारया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी--हंभो मागंदिय-दारगा! अपत्थियपत्थया! किण्णं तुब्भे जाणह ममं विप्पजहाय सेलएणं जक्खेणं सद्धिं लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयमाणा? तं एवमवि गए। जइ णं तुब्भे ममं अवयक्खह तो भे अत्थि जीवियं। अह णं नावयक्खह तो भे इमेणं नीलुप्पल गवलगुलिय-अयसिकुसुमप्पगासेणं खुरधारेणं असिणा रत्तगंडमंसुयाइं माउआहिं उवसोहियाइं तालफलाणि व सीसाइं एगंते एडेमि।।

श्रेष्ठ प्रासाद था वहां आयी। आकर उस श्रेष्ठ प्रासाद में माकन्दिक-पुत्रों को न देख वह जहां पूर्व दिशा वाला वनखण्ड था वहां आयी यावत् सब ओर मार्गणा-गवेषणा की। मार्गणा-गवेषणा करने के उपरान्त भी जब उन माकन्दिक-पुत्रों का कहीं भी कोई सुराख, चिह्न अथवा वृतान्त नहीं मिला, तब वह जहां उत्तर दिशा वाला वनखण्ड था, वहां आयी। इसी प्रकार पश्चिम दिशा वाले वनखण्ड में आयी यावत् वे दिखाई नहीं दिए तब अवधिज्ञान का प्रयोग किया। उन माकन्दिक-पुत्रों को शैलक के साथ लवणसमुद्र के बीचोंबीच होकर जाते हुए देखा, देखकर क्रोध से तमतमा उठी। उसने तलवार और ढ़ाल ली। उसे लेकर सात-आठ हस्ततल-प्रमाण ऊपर आकाश में उछली। उछलकर उस उत्कृष्ट देवगति से जहां वे माकन्दिक-पुत्र थे, वहां आयी। वहां आकर उसने इस प्रकार कहा-अप्रार्थित की प्रार्थना करने वाले माकन्दिक पुत्रो! क्या तुम समझते हो कि मुझे छोड़कर शैलक यक्ष के साथ लवणसमुद्र के बीचोंबीच होकर जा सकोगे? यदि तुम मेरी ओर देखते हो तो तुम्हारा जीवन है। यदि तुम मेरी ओर नहीं देखते हो तो इस नीलोत्पल भैंसे के सींग और अतसी पुष्प के समान प्रभा और तेज धार वाली तलवार से तुम्हारे रक्ताभ कपोल, दाढ़ी और मूछों से उपशोभित मस्तकों को काटकर तालवृक्ष के फल की भांति एकान्त में फेंक दूंगी।

३८. तए णं ते मागंदिय-दारगा रयणदीवदेवयाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म अभीया अतत्था अणुव्विग्गा अक्खुभिया असंभंता रयणदीवदेवयाए एयमट्ठं नो आढंति नो परियाणंति नो अवयक्खंति अणाढायमाणा अपरियाणमाणा अणवयक्खमाणा सेलएणं जक्खेणं सद्धिं लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयंति।।

३८. रत्नद्वीप देवी के पास यह अर्थ सुनकर, अवधारण कर अभीत, अत्रस्त, अनुद्विग्न, अक्षुब्ध और असम्भ्रान्त उन माकन्दिक-पुत्रों ने रत्नद्वीपदेवी के इस अर्थ को न आदर दिया, न उसकी ओर ध्यान दिया और न उसकी ओर देखा। वे उसको आदर न देते हुए, उसकी ओर ध्यान न देते हुए तथा उसकी ओर न देखते हुए शैलक यक्ष के साथ लवण-समुद्र के बीचोंबीच जा रहे थे।

३९. तए णं सा रयणदीवदेवया ते मागंदिय-दारए जाहे नो संचाएइ बहूहिं पडिलोमेहिं उवसग्गेहिं चालित्तए वा लोभित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा ताहे महुरेहिं सिंगारेहि य कलुणेहि य उवसग्गेहिं उवसग्गेउं पयत्ता यावि होत्था--हंभो मागंदिय-दारगा! जइ णं तुब्भेहिं देवाणुप्पिया! मए सद्धिं हसियाणि य रमियाणि य ललियाणि य कीलियाणि य हिंडियाणि य मोहियाणि य ताहे णं तुब्भे सव्वाइं अगणेमाणा ममं विप्पजहाय सेलएणं सद्धिं लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयह।।

३९. वह रत्नद्वीपदेवी बहुत सारे प्रतिकूल उपसर्गों से उन माकन्दिक-पुत्रों को विचलित, लुब्ध, क्षुब्ध और विपरिणामित करने में समर्थ नहीं हुई, तब वह उन्हें मधुर, कामोत्तेजक और करुण उपसर्गों (वचनों) से उपसर्ग देने का प्रयत्न करने लगी--हे माकन्दिक-पुत्रो! देवानुप्रियो! यदि तुमने मेरे साथ हास्य, रति, लीला, क्रीड़ा, परिभ्रमण और मोहन क्रियाएं की हैं, तो भी तुम उन सबको उपेक्षित कर मुझे छोड़, शैलक-यक्ष के साथ लवणसमुद्र के बीचोंबीच जा रहे हो।

४०. तए णं सा रयणदीवदेवया जिणरक्खियस्स मणं ओहिणा आभोएइ, आभोएत्ता एवं वयासी--निच्चंपि य णं अहं जिणपालियस्स अणिट्ठा अकंता अप्पिया अमणुण्णा अमणामा। निच्चं मम जिणपालिए अणिट्ठे अकंते अप्पिए अमणुण्णे अमणामे। निच्चंपि य णं अहं जिणरक्खियस्स इट्ठा कंता पिया मणुण्णा मणामा। निच्चंपि य णं

४०. उस रत्नद्वीपदेवी ने जिनरक्षित के मन को अवधिज्ञान से देखा। देखकर वह इस प्रकार बोली--जिनपालित को मैं सदा अनिष्ट, अकमनीय, अप्रिय, अमनोज्ञ और मन को न लुभाने वाली रही हूं। जिनपालित भी मुझे सदा अनिष्ट, अकमनीय, अप्रिय, अमनोज्ञ और मन को न लुभाने वाला रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ममं जिणरक्खिए इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे। जइ णं ममं जिणपालिए रोयमाणिं कंदमाणिं सोयमाणिं तिप्पमाणिं विलवमाणिं नावयक्खइ, किण्णं तुमंपि जिणरक्खिया! ममं रोयमाणिं कंदमाणिं सोयमाणिं तिप्पमाणिं विलवमाणिं नावयक्खसि?

मैं जिनरक्षित को सदा इष्ट, कमनीय, प्रिय, मनोज्ञ और मन को लुभाने वाली रही हूं। जिनरक्षित भी मुझे सदा इष्ट, कमनीय, प्रिय, मनोज्ञ और मन को लुभाने वाला रहा है।

यदि जिनपालित मुझको रोती, कलपती, शोक करती, आंसू बहाती और विलपती हुई को नहीं देखता है तो क्या जिनरक्षित तुम भी मुझको रोती, कलपती, शोक करती, आंसू बहाती और विलपती हुई को नहीं देखोगे?

जिणरक्खियविवत्ति-पदं

४१. तए णं से जिणरक्खिए चलमणे तेणेव भूसणरवेणं कण्णसुहमणहरेणं तेहि य सप्पणय-सरल-महुर-भणिएहिं संजाय-विउण-राए रयणदीवस्स देवयाए तीसे सुंदरथण-जहण-वयण-कर-चरण-नयण-लावण्ण-रूव-जोव्वणसिरिं च दिव्वं सरभस-उवगूहियाइं बिब्बोय-विलसियाणि य विहसिय-सकडक्खदिट्ठि-निस्ससिय-मलिय-उवललिय-थिय-गमण-पणयखिज्जिय-पसाइयाणि य सरमाणे रागमोहियमती अवसे कम्मवसगए अवयक्खइ मग्गतो सविलियं।।

जिनरक्षित का विपत्ति-पद

४१. जिनरक्षित का मन विचलित हो गया। उस कर्णसुखद, मनोहर, आभूषणों की झंकार से एवं उन प्रणय भरे सरल, मधुर वचनों से उसका कामराग द्विगुणित हो गया। उस रत्नद्वीपदेवी के सुन्दर स्तन, जघन, मुख, हाथ, पैर, नयन, लावण्य, रूप और दिव्य यौवनश्री, स्नेहिल आलिंगन, विभ्रम, विलास, मुस्कान, कटाक्ष-युक्त दृष्टिक्षेप निःश्वास, मर्दन, क्रीड़ा, बैठना, हंस गति से चंक्रमण करना तथा प्रणय के समय होने वाली नाराजगी और प्रसन्नता इन सबको याद करते-करते उसकी मति राग से मोहित हो गयी। विवश और कर्मों के अधीन हो उसने संकोच के साथ पीछे देखा।

४२. तए णं जिणरक्खियं समुप्पण्णकलुणभावं मच्चु-गलत्थल्ल-णोल्लियमइं अवयक्खंतं तहेव जक्खे उ सेलए जाणिऊण सणियं-सणियं उव्विहइ नियगपट्ठाहि विगयसड्ढे।।

४२. जिनरक्षित के मन में करुणा उत्पन्न हो गई। मृत्यु गले में बांह डालकर उसकी मति को प्रेरित कर रही थी, वह रत्नद्वीपदेवी की ओर देख रहा था--यह सब कुछ जानकर शैलक-यक्ष का उस पर से विश्वास उठ गया और उसने उसे अपनी पीठ से धीरे-धीरे ऊपर उछाल दिया।

४३. तए णं सा रयणदीवदेवया निस्संसा कलुणं जिणरक्खियं सकलुसा सेलगपट्ठाहि ओवयंतं--दास! मओसि त्ति जंपमाणी अपत्तं सागरसलिलं गेण्हिय बाहाहिं आरसंतं उड्ढं उव्विहइ अंबरतले ओवयमाणं च मंडलग्गेण पडिच्छित्ता नीलुप्पल-गवलगुलिय-अयसिकुसुमप्पगासेण असिवरेण खंडाखंडिं करेइ, करेत्ता तत्थेव विलवमाणं तस्स य सरस-वहियस्स घेत्तूणं अंगमंगाइं सरुहिराइं उक्खित्तबलिं चउद्दिसिं करेइ, सा पंजली पहिट्ठा।।

४३. जिनरक्षित शैलकयक्ष की पीठ से गिरने के साथ-साथ करुण विलाप करने लगा। यह देख नृशंस और कलुष हृदय वाली रत्नद्वीप देवी बोली--हे दास! अब तूं मर गया। यह कहकर उसने समुद्र के जल में गिरने से पहले ही अपनी बाहों में जकड़ लिया। जिनरक्षित चिल्लाने लगा। रत्नद्वीपदेवी ने उसे आकाश की ओर उछाला। आकाश से गिरने लगा तब उसे तलवार की नोक से बींधकर नीलोत्पल, भैंसे के सींग और अतसी-पुष्प के समान प्रभा वाली तलवार से उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए। टुकड़े करते समय वह विलाप कर रहा था। उसको देवी ने रस लेते हुए मार डाला। उसके रुधिर-सने अंगोपांग को लेकर बलि के रूप में चारों दिशाओं में उछाला और वह अञ्जलिबद्ध होकर हर्षातिरेक का अनुभव करने लगी।

४४. एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे पुणरवि माणुस्सए कामभोगे आसयइ पत्थयइ

४४. आयुष्मन् श्रमणो! इसी प्रकार हमारा जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य-उपाध्याय के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित हो, पुनरपि मनुष्य-सम्बन्धी काम-भोगों का आश्रय लेता है, प्रार्थना,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पीहेइ अभिलसइ, से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाण य हीलणिज्जे जाव चाउरंतं संसारकंतारं भुज्जो-भुज्जो अणुपरियट्टिस्सइ--जहा व से जिणरक्खिए।

गाहा–

छलिओ अवयक्खंतो, निरवयक्खो गओ अविग्घेणं।
तम्हा पवयणसारे, निरावयक्खेण भवियव्वं।।१।।
भोगे अवयक्खंता, पडंति संसारसागरे घोरे।
भोगेहिं निरवयक्खा, तरंति संसारकंतारं।।२।।

स्पृहा और अभिलाषा करता है, वह इस जीवन में भी बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों और बहुत श्राविकाओं द्वारा हीलनीय होता है यावत् वह चार अन्त वाले संसार रूपी कान्तार में पुनः पुनः अनुपरिवर्तन करेगा। जैसे--जिनरक्षित।

गाथा–

१. भोगों की ओर पीछे मुड़कर देखने वाला जिनरक्षित छला गया। भोगों को पीछे मुड़कर न देखने वाला जिनपालित निर्विघ्न ईप्सित स्थान में पहुंच गया। अतः प्रवचन-सार (चारित्र) को प्राप्त कर परित्यक्त काम-भोगों से निरपेक्ष रहें।

२. भोगों को पीछे मुड़कर देखने वाले घोर संसार-सागर में गिरते हैं और भोगों को पीछे मुड़कर न देखने वाले संसार-कान्तार का पार पा जाते हैं।

जिणपालियस्स चंपागमण-पदं

४५. तए णं सा रयणदीवदेवया जेणेव जिणपालिए तेणेव उवागच्छइ, बहूहिं अणुलोमेहि य पडिलोमेहि य खरएहि य मउएहि य सिंगारेहि य कलुणेहि य य उवसग्गेहिं जाहे नो संचाइए चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा ताहे संता तंता परितंता निव्विण्णा समाणा जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।।

४६. तए णं से सेलए जक्खे जिणपालिएण सद्धिं लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयइ, वीईवइत्ता जेणेव चंपा नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चंपाए नयरीए अग्गुज्जाणंसि जिणपालियं पट्ठाओ ओयारेइ, ओयारेत्ता एवं वयासी--एस णं देवाणुप्पिया! चंपा नयरी दीसइ त्ति कट्टु जिणपालियं पुच्छइ, जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।।

४७. तए णं से जिणपालिए चंपं नयरिं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव सए गिहे जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अम्मापिऊणं रोयमाणे कंदमाणे सोयमाणे तिप्पमाणे विलवमाणे जिणरक्खिय-वावत्तिं निवेदेइ।।

४८. तए णं जिणपालिए अम्मापियरो (य?) मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि परियणेण सद्धिं रोयमाणा कंदमाणा सोयमाणा तिप्पमाणा विलवमाणा बहूइं लोइयाइं मयकिच्चाइं करेंति, करेत्ता कालेणं विगयसोया जाया।।

४९. तए णं जिणपालियं अण्णया कयाइं सुहासणवरगयं अम्मापियरो एवं वयासी--कहण्णं पुत्ता! जिणरक्खिए कालगए?

५०. तए णं से जिणपालिए अम्मापिऊणं लवणसमुद्दोत्तारं च कालियवाय-

जिनपालित का चम्पागमन-पद

४५. वह रत्नद्वीपदेवी जहां जिनपालित था, वहां आयी। बहुत सारे अनुकूल, प्रतिकूल, कठोर, मधुर, कामोत्तेजक करुण उपसर्गों (वचनों) से जब वह उसको विचलित, क्षुब्ध और विपरिणामित नहीं कर सकी, तो वह श्रान्त, क्लान्त, परिक्लान्त और उदास होकर जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा में चली गयी।

४६. वह शैलक-यक्ष जिनपालित के साथ लवणसमुद्र के बीचोंबीच होकर गया। जाकर जहां चम्पा नगरी थी वहां आया। आकर चम्पानगरी के प्रधान उद्यान में जिनपालित को अपनी पीठ से उतारा। उतारकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! यह चम्पानगरी दिखाई दे रही है--ऐसा कहकर उसने जिनपालित से पूछा और उसके पश्चात् जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में चला गया।

४७. जिनपालित ने चम्पानगरी में प्रवेश किया। प्रवेश कर जहां अपना घर था, जहां माता-पिता थे, वहां आया। वहां आकर उसने रोते, कलपते, शोक करते, आंसू बहाते और विलपते हुए माता-पिता से जिनरक्षित के मरण की बात कही।

४८. जिनपालित और उसके माता-पिता ने मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनों के साथ रोते, कलपते, शोक करते, आंसू बहाते और विलपते हुए बहुत सारे लौकिक मृतक कार्य किए और यथासमय वे शोक-मुक्त हो गए।

४९. किसी समय प्रवर सुखासन में बैठे हुए जिनपालित से माता-पिता ने इस प्रकार कहा--पुत्र! जिनरक्षित कैसे काल को प्राप्त हुआ?

५०. जिनपालित ने लवण-समुद्र को तैरना, कालिक वात का उठना, नौका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संमुच्छणं च पोयवहण-विवत्तिं च फलहखंड-आसायणं च रयणदीकुत्तारं च रयणदीवदेवया-गिण्हणं च भोगविभूइं च रयणदीवदेवया-आघयणं च सूलाइयपुरिसदरिसणं च सेलगजक्खआरुहण च रयणदीवदेवया-उवसग्गं च जिणरक्खियवावत्तिं च लवणसमुद्द-उत्तरणं च चंपागमणं च सेलगजक्खआपुच्छणं च जहाभूयमवितहमसंदिद्धं परिकहेइ।।

का डूबना, फलक खण्ड की प्राप्ति, रत्नद्वीप पर उतरना, रत्नद्वीपदेवी द्वारा ग्रहण (उसकी) भोग-विभूति, रत्नद्वीपदेवी का वध-स्थान शूली पर चढ़े पुरुष का दर्शन, (अश्व-रूपधारी) शैलकयक्ष पर आरोहण, रत्नद्वीपदेवी का उपसर्ग, जिनरक्षित की मौत, लवणसमुद्र को पार करना, चम्पा पहुंचना और शैलक यक्ष द्वारा पूछना--ये सारी बातें यथाभूत अवितथ और असंदिग्ध रूप से माता-पिता को सुना दी।

५१. तए णं से जिणपालिए अप्पसोग (जाए?) जाव' विपुलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।।

५१. जिनपालित शोक-मुक्त हुआ यावत् वह विपुल भोगार्ह भोगों को भोगता हुआ विहार करने लगा।

५२. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसढे। जिणपालिए धम्मं सोच्चा पव्वइए। एगारसंगवी। मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झोसेत्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेएत्ता कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उववण्णे। दो सागरोवमाइं ठिई। महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ जाव सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।।

५२. उस काल और उस समय 'श्रमण भगवान महावीर' समवसृत हुए। धर्म सुनकर जिनपालित प्रव्रजित हुआ। ग्यारह अंगों का ज्ञाता बना। मासिक संलेखना में स्वयं का समर्पण और अनशन-काल में साठ भक्तों का परित्याग कर, मृत्यु के समय मृत्यु को प्राप्त कर वह सौधर्म कल्प में देवरूप में उपपन्न हुआ। उसकी स्थिति दो सागरोपम है। वह महाविदेह वर्ष में सिद्ध होगा यावत् सब दु:खों का अन्त करेगा।

५३. एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे माणुस्सए कामभोगे नो पुणरवि आसयइ पत्थयइ पीहेइ, सेणं इह भवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाण य अच्चणिज्जे जाव चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइस्सइ--जहा व से जिणपालिए।।

५३. आयुष्मन् श्रमणो! इसी प्रकार हमारा जो भी निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य-उपाध्याय के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित होकर पुनरपि मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों का आश्रय नहीं लेता। उनकी प्रार्थना और स्पृहा नहीं करता, वह इस लोक में भी बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों और बहुत श्राविकाओं द्वारा अर्चनीय होता है, यावत् वह चार अन्त वाले संसार-रूपी कान्तार का पार पा लेगा। जैसे--जिनपालित।

निक्खेव-पदं

५४. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थगरेणं जाव सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपत्तेणं नवमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

--त्ति बेमि।।

निक्षेप-पद-

५४. जम्बू! इस प्रकार धर्म के आदिकर्ता, तीर्थंकर यावत् सिद्धिगति नामक स्थान को संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के नौवें अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

--ऐसा मैं कहता हूँ।

वृत्तिकृता समुद्धृता निगमनगाथा--

जह रयणदीवदेवी, तह एत्थं अविरई महापावा।
जह लाहत्थी वणिया, तह सुहकामा इहं जीवा।।१।।

जह तेहिं भीएहिं, दिट्ठो आघायमंडले पुरिसो।
संसारदुक्खभीया, पासंति तहेव धम्मकहं।।२।।

जह तेण तेसि कहिया, देवी दुक्खाण कारणं घोरं।
तत्तो चिय नित्थारो, सेलगजक्खाउ नन्नत्तो।।३।।

वृत्तिकार द्वारा समुद्धृत निगमन-गाथा-

१. जैसे रत्नद्वीपदेवी है, वैसे यहां (अध्यात्म प्रसंग में) महान पाप की हेतुभूत अविरति है। जैसे लाभार्थी वणिक् है वैसे यहां सुखार्थी जीव है।

२. जैसे उन भयभीत व्यापारियों ने वध-स्थान में एक पुरुष को देखा, वैसे ही संसार के दु:खों से भीत प्राणी धर्मकथी को देखते हैं।

३. जैसे उस पुरुष ने उन व्यापारियों से कहा--देवी घोर दु:खों का कारण है और उसके हाथों से शैलकयक्ष द्वारा ही निस्तार हो सकता है, दूसरे से नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तह धम्मकही भव्वाण, साहए दिट्ठअविरइसहावा।
सयलदुहहेउभूया, विसया विरयंति जीवा णं।।४।।

४. वैसे ही अविरति के स्वभाव को साक्षात् देखने वाले धर्मकथी कहते हैं--विषय समस्त दुःखों के हेतुभूत हैं--यह बताकर वे भव्य-जीवों को उन से विरत करते हैं।

सत्ताण दुहत्ताणं, सरणं चरणं जिणिंदपण्णत्तं।
आणंदरूव-निव्वाण-साहणं तह य दंसेइ।।५।।

५. जिनेन्द्र प्रज्ञप्त चारित्र ही दुःखार्त्त प्राणियों की शरण और आनंद स्वरूप निर्वाण का साधन है, ऐसा वे निदेशन करते हैं।

जह तेसिं तरियव्वो, रुद्दसमुद्दो तहेह संसारो।
जह तेसि सगिहगमणं, निव्वाणगमो तहा एत्थ।।६।।

६. जैसे उन व्यापारियों का लक्ष्य है--रुद्र समुद्र को पार करना और अपने घर पहुंचना, वैसे ही यहां (अध्यात्म साधक का) लक्ष्य है--संसार-समुद्र का पार पाना, निर्वाण को प्राप्त करना।

जह सेलगपट्ठाओ, भट्ठो देवीए मोहियमई उ।
सावय-सहस्सपउरम्मि, सायरे पाविओ निहणं।।७।।

तह अविरईइ नडिओ, चरणचुओ दुक्खसावयाइण्णो।
निवडइ अगाह-संसार-सागरं अणंतमविकालं।।८।।

७-८. जैसे देवी के प्रति मोहित-मति वाला जिनरक्षित शैलक की पीठ से भ्रष्ट होकर, हजारों हिंस्र-जन्तुओं से संकुल समुद्र में निधन को प्राप्त हुआ वैसे ही अविरति से भ्रमित व्यक्ति चारित्र से भ्रष्ट हो दुःख रूप हिंस्र जन्तुओं से आकीर्ण हो जाता है, वह अनन्त-काल तक अगाध संसार-सागर में गिरता रहता है।

जह देवीए अक्खोहो, पत्तो सट्ठाण-जीवियसुहाइं।
तह चरणठिओ साहू, अक्खोहो जाइ निव्वाणं।।९।।

९. जैसे देवी से क्षुब्ध न होने वाला जिनपालित अपने स्थान पर पहुंच गया और जीवन के सुखों को उपलब्ध हुआ, वैसे ही चरण में स्थित मुनि (विषयानुराग से) क्षुब्ध न हो निर्वाण को प्राप्त करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

सूत्र-२०

१. सूत्रकार ने छह ऋतुओं के छह रूपक बतलाए हैं--

	ऋतु	मास	रूपक
१.	प्रावृट्	आषाढ़, श्रावण	हाथी (गजवर)
२.	वर्षा	भाद्रपद, आश्विन	पर्वत
३.	शरद्	कार्तिक, मृगशिर	वृषभ
४.	हेमन्त	पोष, माघ	चन्द्रमा
५.	बसन्त	फाल्गुन, चैत्र	नरपति
६.	ग्रीष्म	वैशाख, ज्येष्ठ	सागर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

द्रव्य की अपेक्षा जीव अनन्त हैं। प्रदेश परिमाण की दृष्टि से प्रत्येक जीव के असंख्य प्रदेश होते हैं। इन दोनों दृष्टियों से जीव न घटते हैं और न बढ़ते हैं। फिर भी प्राचीनकाल से जीव की वृद्धि और हानि का प्रश्न पूछा जाता रहा है। प्रस्तुत अध्ययन का प्रारम्भ भी गौतम के इसी प्रश्न से हुआ है।[१] गुणों की अपेक्षा जीव की वृद्धि भी होती है और हानि भी। चन्द्रमा के रूपक से साधनागत हानि एवं वृद्धि का निरूपण किया गया है इसलिए प्रस्तुत अध्ययन का नाम चन्दिगा (चन्द्रमा) रखा गया।

व्यक्ति के उत्थान और पतन में कर्म के उदय और परिस्थिति दोनों की ही अपनी भूमिका है। वृत्तिकार श्री अभयदेवसूरि ने व्यक्ति के अपकर्ष के चार कारण बतलाए हैं--

१. कुशील व्यक्तियों का संसर्ग।

२. सद्गुरु की उपासना का अभाव।

३. प्रतिदिन प्रमाद का आसेवन।

४. चारित्र मोहनीय कर्म का उदय।[२]

उपर्युक्त कारणों से साधक के क्षान्ति आदि गुणों की क्रमशः हानि होती जाती है फलतः वह कृष्णपक्ष के चन्द्रमा के समान घटता चला जाता है। जो साधक कुशील संसर्ग, प्रमाद आदि का परिवर्जन करता है उसके क्षान्ति आदि गुणों का विकास होता है। फलतः विकास को प्राप्त करता हुआ शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान पूर्णता को प्राप्त कर लेता है।

साधनागत ह्रास-विकास का निरूपण करने के लिए प्रस्तुत रूपक अत्यन्त सरस एवं समीचीन है, विषयवस्तु को सम्यक् प्रकार से स्पष्ट करने वाला है।

---

१. नायाधम्मकहाओ १/१०/२

२. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१७८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दसमं अज्झयणं : दसवां अध्ययन

चंदिमा : चंद्रमा

उक्खेव-पदं

१. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं नवमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, दसमस्स णं भंते! नायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

उत्क्षेप-पद

१. भन्ते! यदि श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के नौवें अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है, तो भन्ते! उन्होंने ज्ञाता के दसवें अध्ययन का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

परिहायमाण-पदं

२. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे गोयमो एवं वयासी--कहण्णं भंते! जीवा वड्ढंति वा हायंति वा?

गोयमा! से जहानामए बहुलपक्खस्स पाडिवय-चंदे पुण्णिमा-चंदं पणिहाय हीणे वण्णेणं हीणे सोम्माए हीणे निद्धयाए हीणे कंतीए एवं--दित्तीए जुत्तीए छायाए पभाए ओयाए लेसाए हीणे मंडलेणं।

तयाणंतरं च णं बीयाचंदे पाडिवय-चंदं पणिहाय हीणतराए वण्णेणं जाव हीणतराए मंडलेणं।

तयाणंतरं च णं तइयाचंदे बीयाचंदं पणिहाय हीणतराए वण्णेणं जाव हीणतराए मंडलेणं।

एवं खलु एएणं कमेणं परिहायमाणे-परिहायमाणे जाव अमावसाचंदे चाउद्दसिचंदं पणिहाय नट्ठे वण्णेणं जाव नट्ठे मंडलेणं।।

परिहायमान-पद

२. जम्बू उस काल और उस समय राजगृह नगर में गौतम ने इस प्रकार कहा--भन्ते! जीव कैसे बढ़ते हैं, कैसे हीन होते हैं?

गौतम ! जैसे कृष्णपक्ष की प्रतिपदा का चन्द्र पूर्णिमा के चन्द्र की अपेक्षा वर्ण से हीन, सौम्यभाव से हीन, स्निग्धता से हीन और कान्ति से हीन होता है, इसी प्रकार दीप्ति, द्युति,[1] छाया, प्रभा, ओज और लेश्या से हीन होता है। मण्डल से हीन होता है।

तदनन्तर द्वितीया का चन्द्र प्रतिपदा के चन्द्र की अपेक्षा वर्ण से हीनतर यावत् मण्डल से हीनतर होता है।

तदनन्तर तृतीया का चन्द्र द्वितीया के चन्द की अपेक्षा वर्ण से हीनतर यावत् मण्डल से हीनतर होता है।

इस क्रम से हीन होते-होते यावत् अमावस्या का चन्द्र चतुर्दशी के चन्द्र की अपेक्षा वर्ण से नष्ट यावत् मण्डल से नष्ट हो जाता है।

३. एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे हीणे खंतीए एवं--मुत्तीए गुत्तीए अज्जवेणं मद्दवेणं लाघवेणं सच्चेणं तवेणं चियाए अकिंचणयाए हीणे बंभचेरवासेणं।

तयाणंतरं च णं हीणतराए खंतीए जाव हीणतराए बंभचेरवासेणं।

एवं खलु एएणं कमेणं परिहायमाणे-परिहायमाणे नट्ठे खंतीए जाव नट्ठे बंभचेरवासेणं।।

३. आयुष्मन् श्रमणो! इसी प्रकार हमारा जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य-उपाध्याय के पास मुण्ड हो, अनगार से अनगारता में प्रव्रजित होकर क्षान्ति से हीन होता है। इसी प्रकार मुक्ति, गुप्ति, आर्जव, मार्दव, लाघव, सत्य, तप, त्याग और अकिंचनता से हीन होता है। ब्रह्मचर्य वास से हीन होता है।

तदनन्तर वह क्षान्ति से हीनतर होता है, यावत् ब्रह्मचर्य वास से हीनतर होता है।

इस क्रम से हीन होते-होते क्षान्ति से नष्ट हो जाता है यावत् ब्रह्मचर्यवास से नष्ट हो जाता है।

परिवड्ढमाण-पदं

४. से जहा वा सुक्कपक्खस्स पाडिवय-चंदे अमावसा-चंदं पणिहाय अहिए वण्णेणं अहिए सोम्माए अहिए निद्धयाए अहिए कंतीए एवं--दित्तीए जुत्तीए छायाए पभाए ओयाए लेसाए अहिए मंडलेणं।

तयाणंतरं च णं बीयाचंदे पाडिवयचंदं पणिहाय अहिययराए वण्णेणं जाव अहिययराए मंडलेणं।

परिवर्द्धमान-पद

४. जैसे शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा का चन्द्र अमावस्या के चन्द्र की अपेक्षा वर्ण से अधिक, सौम्यभाव से अधिक, स्निग्धता से अधिक और कान्ति से अधिक होता है, इसी प्रकार दीप्ति, द्युति, छाया, प्रभा, ओज और लेश्या से अधिक प्रशस्त होता है। मण्डल से अधिक प्रशस्त होता है।

तदनन्तर द्वितीया का चन्द्र प्रतिपदा के चन्द्र की अपेक्षा वर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं खलु एएणं कमेणं परिवड्ढेमाणे-परिवड्ढेमाणे जाव पुण्णिमाचंदे चाउद्दसिचंदं पणिहाय पडिपुण्णे वण्णेणं जाव पडिपुण्णे मंडलेणं।।

५. एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे अहिए खंतीए एवं--मुत्तीए गुत्तीए अज्जवेणं मद्दवेणं लाघवेणं सच्चेणं तवेणं चियाए अकिंचणयाए अहिए बंभचेरवासेणं।

तयाणंतर च णं अहिययराए खंतीए जाव अहिययराए बंभचेरवासेणं।

एवं खलु एएणं कमेणं परिवड्ढेमाणे-परिवड्ढेमाणे पडिपुण्णे खंतीए जाव पडिपुण्णे बंभचेरवासेणं।

एवं खलु जीवा वड्ढंति वा हायंति वा।।

निक्खेव-पदं

६. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं दसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

--त्ति बेमि।।

वृत्तिकृता समुद्धृता निगमनगाथा—

जह चंदो तह साहू, राहुवरोहो जहा तह पमाओ।
वण्णाइगुणगणो जह, तहा खमाइसमणधम्मो।।१।।
पुण्णोवि पइदिणं जह, हायंतो सव्वहा ससी नस्से।
तह पुण्णचरित्तो वि हु, कुसीलसंसग्गिमाईहिं।।२।।
जणिय-पमाओ साहू, हायंतो पइदिणं खमाईहिं।
जायइ नट्ठचरित्तो, तत्तो दुक्खाइ पावेइ।।३।।
हीणगुणो वि हु होउं, सुहगुरुजोगाइ-जणियसंवेगो।
पुण्णसरूवो जायइ, विवद्धमाणो ससहरोव्व।।४।।

से अधिक यावत् मण्डल से अधिक प्रशस्त होता है।

इस क्रम से बढ़ते-बढ़ते......यावत् पूर्णिमा का चन्द्र चतुर्दशी के चन्द्र की अपेक्षा वर्ण से प्रतिपूर्ण यावत् मण्डल से प्रतिपूर्ण होता है।

५. आयुष्मन् श्रमणो! इसी प्रकार हमारा जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य-उपाध्याय के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित होकर क्षान्ति से अधिक होता है, इसी प्रकार मुक्ति, गुप्ति, आर्जव, मार्दव, लाघव, सत्य, तप, त्याग और अकिंचनता से अधिक होता है, ब्रह्मचर्यवास से अधिक होता है।

तदनन्तर वह क्षान्ति से अधिकतर होता है, यावत् ब्रह्मचर्यवास से अधिकतर होता है।

इस क्रम से बढ़ते-बढ़ते वह क्षान्ति से प्रतिपूर्ण होता है, यावत् ब्रह्मचर्यवास से प्रतिपूर्ण होता है।

इस प्रकार जीव बढ़ते हैं यावत् हीन होते हैं।

निक्षेप-पद

६. जम्बू! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के दसवें अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

--ऐसा मैं कहता हूँ।

वृत्तिकार द्वारा समुद्धृत निगमन-गाथा

१. चन्द्रमा के समान साधु हैं। राहु के अवरोध के समान प्रमाद है। वर्ण आदि गुण-समूह के समान क्षमा आदि श्रमण धर्म हैं।
२. जैसे प्रतिपूर्ण चन्द्रमा भी प्रतिदिन हीन होते-होते सर्वथा नष्ट हो जाता है, वैसे ही चरित्र से प्रतिपूर्ण मुनि भी कुशील-संसर्ग आदि कारणों से नष्ट हो जाता है।
३. प्रमादी साधु प्रतिदिन क्षमा आदि गुणों से हीन होता हुआ चरित्र से नष्ट हो जाता है और उससे दुःख आदि को प्राप्त करता है।
४. गुणों से हीन होते हुए भी सद्गुरु के योग से संवेग उत्पन्न हो जाने पर वह विवर्द्धमान चन्द्रमा की भांति पूर्ण स्वरूप वाला हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

सूत्र २

१. द्युति (जुत्तीए)

'जुत्ती' का अर्थ है--द्युति। वृत्तिकार ने इसकी व्याख्या 'युक्ति' रूपान्तरण मानकर की है।

युक्ति का अर्थ है--योग। हीनतर चन्द्रमा अपने मण्डल से अल्पतर आकाश-प्रदेशों के साथ ही अभिसम्बद्ध होता है।[1]

---

१. ज्ञातावृत्ति पत्र १७८--जुत्तीए-त्ति-युक्त्या आकाशसंयोगेन-खण्डेन हि मण्डलेनाल्पतरमाकाशं युज्यते न पुनर्यावत्सम्पूर्णेन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

प्रस्तुत अध्ययन का नाम दावद्रव है। समुद्र के तट पर पैदा होने वाले दावद्रव वृक्षों के आधार पर इसका यह नाम दिया गया है।

आराधक-विराधक का प्रयोग सापेक्ष है। स्वीकृत लक्ष्य की साधना करने वाला आराधक और उसकी साधना न करने वाला विराधक होता है।

प्रस्तुत अध्ययन का प्रतिपाद्य है मुनि के आराधक और विराधक जीवन का निरूपण। आराधना और विराधना को पवन से प्रभावित दावद्रव वृक्ष के उदाहरण द्वारा समझाया गया है।

मोक्ष मार्ग की साधना का एक महत्त्वपूर्ण साधन है--क्षमा-तितिक्षा की भावना। सामुदायिक जीवन में अनेक स्थितियों को सहन करना जरूरी होता है।

सहिष्णुता साधना की कसौटी है। दूसरों को सहन करना सरल है। स्वपक्ष को सहन करना बहुत कठिन है। यह एक मनोवैज्ञानिक और व्यावहारिक तथ्य है कि व्यक्ति जिन्हें अपना नहीं मानता उनके कटु वचनों को सहन कर लेता है और जिनको अपना मानता है उनके प्रतिकूल वचनों को सहन नहीं कर सकता। प्रस्तुत अध्ययन में यह सच्चाई बहुत ही सहजता और सरसता के साथ उजागर हुई है।

सहिष्णुता के आधार पर मुनि की चार श्रेणियां की गई हैं--

१. देश विराधक	स्वपक्ष को सहन करता है।	परपक्ष को सहन नहीं करता।
२. देश आराधक	स्वपक्ष को सहन नहीं करता।	परपक्ष को सहन करता है।
३. सर्व विराधक	स्वपक्ष को सहन नहीं करता।	परपक्ष को सहन नहीं करता।
४. सर्व आराधक	स्वपक्ष को सहन करता है।	परपक्ष को सहन करता है।

वृत्तिकार के अनुसार दावद्रव वृक्षों के समान मुनि है। द्वीप से उठने वाली हवाओं के समान स्वपक्षी-श्रमणों आदि के वचन हैं। सामुद्रिक हवाओं के समान परपक्षी-अन्यतीर्थिकों आदि के वचन हैं और कुसुम आदि की सम्पदा के समान मोक्ष मार्ग की आराधना है।

प्रस्तुत अध्ययन जितना लघुकाय है उतना ही महत्त्वपूर्ण। इसमें दृष्टांत के माध्यम से मुनि के तितिक्षा धर्म का बहुत ही सम्यक् और हृदयग्राही प्रतिपादन किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक्कारसमं अज्झयणं : ग्यारहवां अध्ययन

दावद्दवे : दावद्रव

उक्खेव-पदं

१. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं दसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, एक्कारसमस्स णं भंते! नायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

उत्क्षेप-पद

१. भन्ते! यदि श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के दसवें अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है, तो भन्ते! उन्होंने ज्ञाता के ग्यारहवें अध्ययन का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

देसविराहय-पदं

२. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नगरे गोयमो एवं वयासी--कहण्णं भंते! जीवा आराहगा वा विराहगा वा भवंति?

गोयमा! से जहानामए एगंसि समुद्दकूलंसि दावद्दवा नामं रुक्खा पण्णत्ता--किण्हा जाव निउरंबभूया पत्तिया पुप्फिया फलिया हरियग-रेरिज्जमाणा सिरीए अईव उवसोभेमाणा-उवसोभेमाणा चिट्ठंति।

जया णं दीविच्चगा ईसिं पुरेवाया पच्छावाया मंदावाया महावाया वायंति, तया णं बहवे दावद्दवा रुक्खा पत्तिया पुप्फिया फलिया हरियग-रेरिज्जमाणा सिरीए अईव उवसोभेमाणा-उवसोभेमाणा चिट्ठंति। अप्पेगइया दावद्दवा रुक्खा जुण्णा झोडा परिसडिय-पंडुपत्त-पुप्फ-फला सुक्करुक्खओ विव मिलायमाणा-मिलायमाणा चिट्ठंति।।

देश विराधक-पद

२. जम्बू! उस काल और उस समय राजगृह नगर में गौतम ने इस प्रकार कहा--भन्ते! जीव आराधक अथवा विराधक[1] कैसे होते हैं?

गौतम! जैसे एक समुद्र तट पर 'दावद्रव' नाम के वृक्ष होते हैं। वे कृष्ण यावत् सघन मेघ-पटली के समान, पल्लवित, पुष्पित, फलित, हरीतिमा से अतिशय आकर्षक और पत्र, पुष्पादि की श्री से अतीव उपशोभित, अतीव उपशोभित होते हैं।

जब द्वीप से उत्पन्न होने वाली[2] कुछ पूर्वी हवाएं[3] चलती हैं, पश्चिमी हवाएं[4] चलती हैं, मन्द हवाएं[5] चलती हैं और महावात[6] उठते हैं तब बहुत से दावद्रव वृक्ष पल्लवित, पुष्पित, फलित, हरीतिमा से आकर्षक और पत्र-पुष्पादि की श्री से अतीव उपशोभित, अतीव उपशोभित होते हैं।

कुछ दावद्रव वृक्ष, जो जीर्ण हैं, ठूंठ हैं, जिनके पत्ते, फूल और फल गिर चुके हैं, पीले पड़ गये हैं, सूखे वृक्षों की भांति ग्लान हो जाते हैं।

३. एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाण य सम्मं सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ, बहूणं अण्णउत्थियाणं बहूणं गिहत्थाणं नो सम्मं सहइ जाव नो अहियासेइ--एस णं मए पुरिसे देसविराहए पण्णत्ते।।

३. आयुष्मन् श्रमणो! इसी प्रकार हमारा जो भी निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य-उपाध्याय के पास मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित होकर बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों और बहुत श्राविकाओं को सम्यक् सहन करता है, उन्हें सहने में समर्थ होता है, तितिक्षा रखता है और अविचल रहता है तथा बहुत अन्यतीर्थिकों और गृहस्थों को सम्यक् सहन नहीं करता, यावत् अविचल नहीं रहता--ऐसे पुरुष को मैंने देशविराधक कहा है।

देसाराहय-पदं

४. समणाउसो! जया णं सामुद्दगा ईसिं पुरेवाया पच्छावाया मंदावाया महावाया वायंति, तया णं बहवे दावद्दवा रुक्खा जुण्णा झोडा परिसडिय-पंडुपत्त-पुप्फ-फला सुक्करुक्खओ विव मिलायमाणा-मिलायमाणा चिट्ठंति। अप्पेगइया दावद्दवा रुक्खा पत्तिया पुप्फिया

देश आराधक-पद

४. आयुष्मन् श्रमणो! जब समुद्र से उठने वाली कुछ पूर्वी हवाएं चलती हैं, पश्चिमी हवाएं चलती हैं, मन्द हवाएं चलती हैं, महावात उठते हैं, तब बहुत से दावद्रव वृक्ष जो जीर्ण हैं, ठूंठ है, जिनके पत्ते, फूल और फल गिर चुके हैं या पीले पड़ गये हैं वे सूखे वृक्षों की भांति ग्लान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फलिया हरियग-रेरिज्जमाणा सिरीए अईव उवसोभेमाणा-उवसोभेमाणा चिट्ठंति ।।

हो जाते हैं।

कुछ दावद्रव वृक्ष पल्लवित, पुष्पित, फलित, हरीतिमा से आकर्षक और पत्र, पुष्पादि की श्री से अतीव उपशोभित, अतीव उपशोभित रहते हैं।

५. एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे बहूणं अण्णउत्थियाणं बहूणं गिहत्थाणं सम्मं सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ, बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाण य नो सम्मं सहइ जाव नो अहियासेइ--एस णं मए पुरिसे देसाराहए पण्णत्ते ।।

५. आयुष्मन् श्रमणो! इसी प्रकार हमारा जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य उपाध्याय के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित होकर बहुत से अन्यतीर्थिकों और बहुत से गृहस्थों को सम्यक् सहन करता है, सहने में समर्थ होता है, तितिक्षा रखता है और अविचल रहता है। बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों और बहुत श्राविकाओं को सम्यक् सहन नहीं करता यावत् अविचल नहीं रहता--ऐसे पुरुष को मैंने देश आराधक कहा है।

सव्वविराहय-पदं

६. समणाउसो! जया णं नो दीविच्चगा नो सामुद्दगा ईसिं पुरेवाया पच्छावाया मंदावाया महावाया वायंति, तया णं सव्वे दावद्दवा रुक्खा जुण्णा झोडा परिसडिय-पंडुपत्त-पुप्फ-फला सुक्करुक्खओ विव मिलायमाणा-मिलायमाणा चिट्ठंति। अप्पेगइया दावद्दवा रुक्खा पत्तिया पुप्फिया फलिया हरियग-रेरिज्जमाणा सिरीए अईव उवसोभेमाणा- उवसोभेमाणा चिट्ठंति ।।

सर्व विराधक-पद

६. आयुष्मन् श्रमणो! जब द्वीप से उठने वाली और समुद्र से उठने वाली न कोई पूर्वी हवाएं चलती हैं, न पश्चिमी हवाएं चलती हैं, न मन्द हवाएं चलती हैं, न महावात उठते हैं तब सब दावद्रव वृक्ष जो जीर्ण हैं, ठूंठ हैं, जिनके पत्ते, फूल और फल गिर चुके हैं, पीले पड़ गये हैं वे सूखे वृक्षों की भांति ग्लान हो जाते हैं।

कुछ दावद्रव वृक्ष जो पल्लवित, पुष्पित, फलित, हरीतिमा से आकर्षक और पत्र, पुष्पादि की श्री से अतीव उपशोभित, अतीव उपशोभित रहते हैं।

७. एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं बहूणं अण्णउत्थियाणं बहूणं गिहत्थाणं नो सम्मं सहइ जाव नो अहियासेइ--एस णं मए पुरिसे सव्वविराहए पण्णत्ते ।।

७. आयुष्मन् श्रमणो! इसी प्रकार हमारा जो भी निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य उपाध्याय के पास मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित होकर बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों, बहुत श्राविकाओं तथा बहुत अन्यतीर्थिकों और बहुत गृहस्थों को सम्यक् सहन नहीं करता यावत् अविचल नहीं रहता--ऐसे पुरुष को मैंने सर्व विराधक कहा है।

सव्वाराहय-पदं

८. समणाउसो! जया णं दीविच्चगा वि सामुद्दगा वि ईसिं पुरेवाया पच्छावाया मंदावाया महावाया वायंति, तया णं सव्वे दावद्दवा रुक्खा पत्तिया पुप्फिया फलिया हरियग-रेरिज्जमाणा सिरीए अईव उवसोभेमाणा-उवसोभेमाणा चिट्ठंति ।।

सर्व आराधक-पद

८. आयुष्मन् श्रमणो! जब द्वीप से उठने वाली एवं समुद्र से उठने वाली दोनों ही प्रकार की कुछ पूर्वी हवाएं चलती हैं, पश्चिमी हवाएं चलती हैं, मन्द हवाएं चलती हैं तथा महावात उठते हैं, तब सभी दावद्रव वृक्ष, पल्लवित, पुष्पित, फलित, हरीतिमा से आकर्षक तथा पत्र, पुष्पादि की श्री से अतीव उपशोभित, अतीव उपशोभित रहते हैं।

९. एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं बहूणं अण्णउत्थियाणं बहूणं गिहत्थाणं सम्मं

९. आयुष्मन् श्रमणो! इसी प्रकार हमारा जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य उपाध्याय के पास मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित होकर बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों, बहुत श्राविकाओं तथा बहुत अन्यतीर्थिकों और बहुत गृहस्थों को सम्यक् सहन करता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ--एस णं मए पुरिसे सव्वआराहए पण्णत्ते। एवं खलु गोयमा! जीवा आराहगा वा विराहगा वा भवंति।।

है, सहने में समर्थ होता है, तितिक्षा रखता है और अविचल रहता है--ऐसे पुरुष को मैंने सर्व आराधक कहा है।

गौतम! जीव इस प्रकार आराधक अथवा विराधक होते हैं।

निक्खेव-पदं

१०. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं एक्कारसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

--त्ति बेमि।।

निक्षेप-पद

१०. जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के ग्यारहवें अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

--ऐसा मैं कहता हूँ।

वृत्तिकृता समुद्धृता निगमनगाथा—

जह दावद्दव-तरुणो, एवं साहू जहेह दीविच्चा।
वाया तह समणा इय, सपक्ख-वयणाइं दुसहाइं।।१।।
जह सामुद्दय-वाया, तहण्णतित्थाइ-कडुयवयणाइं।
कुसुमाइं संपया जह, सिवमग्गाराहणा तह उ।।२।।
जह कुसुमाइ-विणासो, सिवमग्ग-विराहणा तहा णेया।
जह दीववायु-जोगे, बहु इड्ढी ईसि य अणिड्ढी।।३।।
तह साहम्मिय-वयणाण, सहणमाराहणा भवे बहुया।
इयराणमसहणे, पुण सिवमग्ग-विराहणा थोवा।।४।।
जह जलहिवाय-जोगे, थेविड्ढी बहुयरा अणिड्ढी य।
तह परपक्खक्खमणे, आराहणमीसि बहु इयरं।।५।।
जह उभयवाय-विरहे, सव्वा तरुसंपया विणट्ठत्ति।
अणिमित्तोभय-मच्छर-रूवेह विराहणा तह य।।६।।
जह उभयवाय-जोगे, सव्वसमिद्धी वणस्स संजाया।
तह उभयवयण-सहणे सिवमग्गाराहणा पुण्णा।।७।।
ता पुण्णसमणधम्माराहणचित्तो सया महापुण्णो।
सव्वेण वि कीरंतं, सहेज्ज सव्वं पि पडिकूलं।।८।।

वृत्तिकार द्वारा समुद्धृत निगमन-गाथा

१-२. दावद्रव वृक्षों के समान साधु हैं। द्वीप से उठने वाली हवाओं के समान श्रमणों आदि के लिए स्वपक्ष वचन दु:सह-सहना कठिन है। सामुद्रिक हवाओं के समान अन्यतीर्थिकों आदि के कटु-वचन हैं। कुसुम आदि की सम्पदा के समान मोक्ष-मार्ग की आराधना है।

३-४. कुसुम आदि के विनाश के समान मोक्ष-मार्ग की विराधना है। जैसे द्वीप की हवा के योग से वन-सम्पदा में अधिक वृद्धि होती है, कम हानि होती है, वैसे ही साधर्मिकों के दुर्वचनों को सहन करना बहुत आराधना है और अन्यतीर्थिकों के दुर्वचनों को सहन न करना मोक्ष-मार्ग की स्वल्प विराधना है।

५. जैसे समुद्री-हवाओं के योग से वन-सम्पदा में कुछ वृद्धि होती है और बहुतर हानि होती है, वैसे ही पर-पक्ष के वचनों को सहन करने और स्व-पक्ष के वचनों को सहन न करने से आराधना कम होती है विराधना अधिक होती है।

६. जैसे द्वीप और समुद्र--दोनों की हवाओं के अभाव में सम्पूर्ण तरु-सम्पदा विनष्ट हो जाती है, वैसे ही स्वपक्ष और परपक्ष दोनों से अकारण ही मत्सर भाव रखने से मोक्ष-मार्ग की सम्पूर्ण विराधना होती है।

७. जैसे दोनों ही प्रकार की हवाओं के योग से वन-सम्पदा सम्पूर्णत: समृद्ध हो जाती है, वैसे ही स्वपक्ष और परपक्ष दोनों के दुर्वचनों को सहन करने से मोक्ष-मार्ग की सम्पूर्ण आराधना होती है।

८. इसीलिए श्रमण-धर्म की पूर्ण आराधना में दत्तचित्त महापुण्यशाली मुनि स्वपक्ष और परपक्ष--दोनों द्वारा किये गये सब प्रकार के प्रतिकूल व्यवहारों को सहन करे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

सूत्र-२

१. आराधक, विराधक (आराहगा/विराहगा)।

मोक्ष मार्ग के तीन अंग हैं--ज्ञान, दर्शन और चारित्र। इन तीनों की स्वीकृत साधना का अनुपालन करने वाला आराधक और इनका अतिक्रमण करने वाला विराधक कहलाता है।[१]

२. द्वीप से उत्पन्न होने वाली (दीविच्चगा)

द्वीप से उठने वाली हवा[२] वनस्पति जगत के लिए बहुत अनुकूल रहती है। प्रस्तुत सूत्र में उसके चार प्रकार बतलाए गए हैं--पुरेवाया, पच्छावाया, मंदावाया और महावाया।

३. पूर्वी हवा (पुरेवाया)

इसका शाब्दिक अर्थ है पूर्वदिशा की हवा, किन्तु वृत्तिकार ने मुख्य अर्थ किया है--कुछ स्नेह युक्त पवन, नम हवा।[३]

४. पश्चिमी हवा (पच्छावाया)

वृत्तिकार ने इसकी व्याख्या दो प्रकार से की है--पथ्यावाता और पश्चात् वाता। सामान्यतः यह हवा वनस्पति के लिए हितकर होती है।[४]

राजस्थानी भाषा में पूर्वी और पश्चिमी हवा के लिए क्रमशः पुरवाई और परवाई अथवा पुरवा और परवा शब्दों का प्रयोग होता है।

५. मंद हवा (मंदावाया)

मंद मंद पवन।[५]

६. महावात (महावाया)

महावात का अर्थ है--उद्दण्डवात। आंधी, तूफान।[६]

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१७९--आराधका ज्ञानादिमोक्षमार्गस्य विराधका-अपि तस्यैव।

२. वही--दीविच्चगा-द्वैप्या द्वीपसम्भवा।

३. वही--ईषत् पुरोवाताः-मनाक्-सस्नेहवाता इत्यर्थः, पूर्वदिक्-सम्बन्धिनो वा।

४. वही--पथ्या वाता-वनस्पतीनां सामान्येन हिता वायवः पश्चाद्वाता वा।

५. वही--मन्दाः- शनैः सञ्चारिणः।

६. वही--महावाताः उद्दण्डवाताः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

अनेकान्त का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है--परिणामवाद। जड़ व चेतन सभी में परिणमन होता है। परिणमन द्रव्य का अनिवार्य अंग है। सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें तो प्रत्येक वस्तु में प्रतिक्षण परिणमन अथवा पर्यायान्तर गमन का सिद्धांत स्पष्ट होता है। स्थूल दृष्टि से विचार करें तो इष्ट वर्ण, गंध, रस, स्पर्श का अनिष्ट वर्ण आदि के रूप में तथा अनिष्ट वर्ण आदि का इष्ट वर्ण आदि के रूप में परिवर्तन होता रहता है। परिवर्तन स्वगत भी होता है और निमित्तों से भी होता है। वह स्वभाव से भी होता है और प्रयत्न से भी होता है। प्रस्तुत अध्ययन में प्रयत्नजन्य परिवर्तन के सिद्धान्त को एक सुन्दर उदाहरण के माध्यम से समझाया गया है।

परिखा का जल वर्ण, गंध, रस और स्पर्श से अमनोज्ञ था। जिसकी गंध मृत सांप जैसी अथवा उससे भी अधिक अमनोगत थी। सुबुद्धि मंत्री ने प्रक्रिया विशेष के द्वारा उसे मनोज्ञ बना दिया। दुर्गंधयुक्त पानी भी पथ्य, निर्मल, आरोग्यवर्धक और बलवर्धक बन गया।

वर्तमान युग में पानी को फिल्टर करने का प्रचलन है। फिल्टर किए गए पानी को स्वास्थ्य के लिए उत्तम माना गया है। प्राचीन काल में इसकी अपनी पूरी विधि थी। प्रस्तुत अध्ययन को उस विधि का निदर्शन माना जा सकता है।

वृत्तिकार ने निगमन में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण संकेत दिया है। जिस प्रकार मलिन जल को प्रयोग से निर्मल बनाया जा सकता है, उसी प्रकार गुरु विगुण को गुणवान बना देते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बारसमं अज्झयणं : बारहवां अध्ययन

उदगणाए : उदकज्ञात

उक्खेव-पदं

१. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं एक्कारसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, बारसमस्स णं भंते! नायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

२. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नाम नयरी। पुण्णभद्दे चेइए। जियसत्तू राया। धारिणी देवी। अदीणसत्तू कुमारे जुवराया वि होत्था। सुबुद्धि अमच्चे जाव रज्जधुराचिंतए, समणोवासए।।

फरिहोदग-पदं

३. तीसे णं चंपाए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमेणं एगे फरिहोदए यावि होत्था--मेय-वसा-रुहिर-मंस-पूय-पडल-पोच्चडे मयग-कलेवर-संछण्णे अमणुण्णे वण्णेणं अमणुण्णे गंधेणं अमणुण्णे रसेणं अमणुण्णे फासेणं, से जहानामए--अहिमडे इ वा गोमडे इ वा जाव मय-कुहिय-विणट्ठ-किमिण-वावण्ण-दुरभिगंधे किमिजालाउले संसत्ते असुइ-विगय-बीभच्छ-दरिसणिज्जे। भवेयारूवे सिया?

नो इणट्ठे समट्ठे। एत्तो अणिट्ठतराए चेव अकंततराए चेव अप्पियतराए चेव अमणुण्णतराए चेव अमणामतराए चेव गंधेणं पण्णत्ते।।

जियसत्तुणा पाणभोयणपसंसा-पदं

४. तए णं से जियसत्तू राया अण्णया कयाइ ण्हाए कयबलिकम्मे जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे बहूहिं ईसर जाव सत्थवाहपभिईहिं सद्धिं भोयणमंडवंसि भोयणवेलाए सुहासणवरगए विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं आसाएमाणे विसाएमाणे परिभाएमाणे परिभुंजेमाणे एवं च णं विहरइ। जिमियभुत्तुत्तरागए वि य णं समाणे आयंते चोक्खे परमसुइभूए तंसि विपुलंसि असण-पाण-खाइम-साइमंसि जायविम्हए ते बहवे ईसर जाव सत्थवाहपभिइओ एवं वयासी--अहो णं देवाणुप्पिया! इमे मणुण्णे असण-पाण- खाइम-साइमे वण्णेणं उववेए गंधेणं उववेए रसेणं उववेए फासेणं उववेए अस्सायणिज्जे विसायणिज्जे 'पीणणिज्जे दीवणिज्जे' दप्पणिज्जे मयणिज्जे बिंहणिज्जे सव्विंदियगाय-पल्हायणिज्जे।।

उत्क्षेप-पद

१. भन्ते! यदि श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के ग्यारहवें अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है, तो भन्ते! उन्होंने ज्ञाता के बारहवें अध्ययन का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

२. जम्बू! उस काल और उस समय चम्पा नाम की नगरी थी। पूर्णभद्र चैत्य था। जितशत्रु राजा था। धारिणी रानी थी। अदीनशत्रु कुमार युवराज था। सुबुद्धि मंत्री था यावत् वह राज्य धुरा की चिन्ता करने वाला और श्रमणोपासक था।

परिखोदक (खाई का पानी) पद

३. उस चम्पा नगरी के बाहर ईशानकोण में एक खाई में जल भरा हुआ था। वह मेद, वसा, रुधिर, मांस और पीव-पटल जैसा सड़ा हुआ, मृत कलेवरों से संच्छन्न, वर्ण से अमनोज्ञ, गन्ध से अमनोज्ञ, रस से अमनोज्ञ और स्पर्श से अमनोज्ञ था। जैसे कोई सांप का मृत कलेवर यावत् गो का मृत कलेवर कुथित, विनष्ट, कृमिल, व्यापन्न, दुर्गन्ध पूर्ण, कृमिसमूह से आकीर्ण एवं संसक्त, अशुचि, विकृत और देखने में बीभत्स होता है, क्या वह जल भी ऐसा ही है?

यह अर्थ समर्थ नहीं है। वह इससे भी अनिष्टतर, अकमनीयतर, अप्रियतर, अमनोज्ञतर और अमनोगततर गन्ध वाला प्रज्ञप्त है।

जितशत्रु द्वारा पान-भोजन की प्रशंसा-पद

४. किसी समय जितशत्रु राजा ने स्नान, बलिकर्म यावत् अल्पभार और महामूल्य वाले आभरणों से शरीर को अलंकृत किया। वह बहुत-से ईश्वर यावत् सार्थवाह आदि के साथ भोजन-मण्डप में भोजन की बेला में प्रवर सुखासन में बैठ विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का आस्वादन करता हुआ, विशेष स्वाद लेता हुआ, बांटता हुआ और खाता हुआ विहार करने लगा। भोजनोपरान्त आचमन कर, साफ सुथरा और परम पवित्र होकर, उस विपुल, अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य से विस्मित होकर वह उन बहुत से ईश्वर यावत् सार्थवाह आदि से इस प्रकार बोला--अहो देवानुप्रियो! यह मनोज्ञ अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य वर्ण से उपेत, गन्ध से उपेत, रस से उपेत, स्पर्श से उपेत, स्वाद लेने योग्य, विशेष स्वाद लेने योग्य, धातु साम्य करने वाला, अग्नि-दीपन करने वाला, पुष्टिकारक, वीर्य को बढ़ाने वाला, धातुओं को उपचित करने वाला तथा सब इन्द्रियों और अवयवों को प्रल्हादित करने वाला है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. तए णं ते बहवे ईसर जाव सत्थवाहपभिइओ जियसत्तुं रायं एवं वयासी--तहेव णं सामी! जण्णं तुब्भे वयह--अहो णं इमे मणुण्णे असण-पाण-खाइम-साइमे वण्णेणं उववेए जाव सव्विंदियगाय-पल्हायणिज्जे।।

५. वे बहुत से ईश्वर यावत् सार्थवाह आदि राजा जितशत्रु से इस प्रकार बोले--स्वामिन्! यह भोजन वैसा ही है, जैसा तुम कह रहे हो। अहो! यह मनोज्ञ, अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य वर्ण से उपेत है...यावत् सब इन्द्रियों और अवयवों को प्रल्हादित करने वाला है।

सुबुद्धिस्स उवेहा-पदं

६. तए णं जियसत्तू राया सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी--अहो णं देवाणुप्पिया सुबुद्धि! इमे मणुण्णे असण-पाण-खाइम-साइमे जाव सव्विंदियगाय-पल्हायणिज्जे।

७. तए णं सुबुद्धी जियसत्तुस्स रण्णो एयमट्ठं नो आढाइ नो परियाणाइ तुसिणीए संचिट्ठइ।

८. तए णं जियसत्तू राया सुबुद्धिं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी--अहो णं देवाणुप्पिया सुबुद्धि! इमे मणुण्णे असण-पाण-खाइम-साइमे जाव सव्विंदियगायपल्हायणिज्जे।।

९. तए णं से सुबुद्धी अमच्चे जियसत्तुणा रण्णा दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्ते समाणे जियसत्तुं रायं एवं वयासी--नो खलु सामी! अम्हं एयंसि मणुण्णंसि असण-पाण-खाइमं-साइमंसि केइ विम्हए।

एवं खलु सामी! सुब्भिसद्दा वि पोग्गला दुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति, दुब्भिसद्दा वि पोग्गला सुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति। सुरूवा वि पोग्गला दुरूवत्ताए परिणमंति, दुरूवा वि पोग्गला सुरूवत्ताए परिणमंति।

सुब्भिगंधा वि पोग्गला दुब्भिगंधत्ताए परिणमंति, दुब्भि-गंधा वि पोग्गला सुब्भिगंधत्ताए परिणमंति। सुरसा वि पोग्गला दुरसत्ताए परिणमंति, दुरसा वि पोग्गला सुरसत्ताए परिणमंति। सुहफासा वि पोग्गला दुहफासत्ताए परिणमंति, दुहफासा वि पोग्गला सुहफासत्ताए परिणमंति, पओग-वीससा-परिणया वि य णं सामी! पोग्गला पण्णत्ता।।

१०. तए णं जियसत्तू राया सुबुद्धिस्स अमच्चस्स एवमाइक्खमाणस्स भासमाणस्स पण्णवेमाणस्स परूवेमाणस्स एयमट्ठं नो आढाइ नो परियाणइ तुसिणीए संचिट्ठइ।।

जियसत्तुणा फरिहोदगस्स गरहा-पदं

११. तए णं से जियसत्तू राया अण्णया कयाइ ण्हाए आसखंधवरगए महयाभडचडगर-आसवाहिणिआए निज्जायमाणे तस्स फरीहोदयस्स अदूरसामंतेणं वीईवयइ।।

सुबुद्धि की उपेक्षा-पद

६. राजा जितशत्रु ने अमात्य सुबुद्धि से इस प्रकार कहा--अहो देवानुप्रिय सुबुद्धि! यह मनोज्ञ, अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य वर्ण से उपेत यावत् सब इन्द्रियों और अवयवों को प्रल्हादित करने वाला है।

७. सुबुद्धि ने राजा जितशत्रु के इस अर्थ को न आदर दिया, न उसकी ओर ध्यान दिया किन्तु वह मौन रहा।

८. राजा जितशत्रु ने सुबुद्धि से दूसरी, तीसरी बार भी इस प्रकार कहा--अहो देवानुप्रिय सुबुद्धि! यह मनोज्ञ, अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य वर्ण से उपेत यावत् सब इन्द्रियों और अवयवों को प्रल्हादित करने वाला है।

९. राजा जितशत्रु के दूसरी, तीसरी बार भी इस प्रकार कहने पर अमात्य सुबुद्धि ने राजा जितशत्रु से इस प्रकार कहा--स्वामिन्! हमें तो इस मनोज्ञ अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य में कोई विस्मय नहीं होता। स्वामिन्! प्रशस्त शब्द-पुद्‌गल भी अप्रशस्त शब्दों के रूप में परिणत हो जाते हैं और अप्रशस्त शब्द-पुद्‌गल भी प्रशस्त शब्दों के रूप में परिणत हो जाते हैं। सुरूप पुद्‌गल भी कुरूपता में परिणत हो जाते हैं और कुरूप पुद्‌गल भी सुरूपता में परिणत हो जाते हैं। सुरभि-गन्ध-पुद्‌गल भी दुरभिगन्धता में परिणत हो जाते हैं और दुरभि गन्ध-पुद्‌गल भी सुरभिगन्धता में परिणत हो जाते हैं। सुरस पुद्‌गल भी विरसता में परिणत हो जाते हैं और विरस पुद्‌गल भी सुरसता में परिणत हो जाते हैं। सुखद स्पर्श वाले पुद्‌गल भी, दुःखद स्पर्श के रूप में परिणत हो जाते हैं और दुःखद स्पर्श वाले पुद्‌गल भी सुखद स्पर्श के रूप में परिणत हो जाते हैं। स्वामिन्! पुद्‌गल प्रयत्न परिणत भी हैं और विस्रसा-परिणत भी हैं--ऐसा प्रज्ञप्त है।[१]

१०. जितशत्रु राजा ने इस प्रकार आख्यान, भाषण, प्रज्ञापना और प्ररूपणा करते हुए सुबुद्धि अमात्य के इस अर्थ को न आदर दिया न उसकी ओर ध्यान दिया किन्तु वह मौन रहा।

जितशत्रु द्वारा परिखोदक की गर्हा-पद

११. किसी समय वह जितशत्रु राजा स्नान कर, प्रवर अश्व-स्कन्ध पर आरूढ़ हो, महान सैनिकों की टुकड़ियों के साथ घुड़सवारी के लिए जाता हुआ, उस परिखा के जल के आसपास से होकर गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. तए णं जियसत्तू राया तस्स फरिहोदगस्स असुभेणं गंधेणं अभिभूए समाणे सएणं उत्तरिज्जगेणं आसगं 'पिहेइ, पिहेत्ता' एगंतं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता बहवे ईसर जाव सत्थवाहपभियओ एवं वयासी--अहो णं देवाणुप्पिया! इमे फरिहोदए अमणुण्णे वण्णेणं अमणुण्णे गंधेणं अमणुण्णे रसेणं अमणुण्णे फासेणं, से जहानामए--अहिमडे इ वा जाव अमणामतराए चेव गंधेणं पण्णत्ते।।

१३. तए णं ते बहवे ईसर जाव सत्थवाहपभियओ एवं वयासी--तहेव णं तं सामी! जं णं तुब्भे वयह--अहो णं इमे फरिहोदए अमणुण्णे वण्णेणं अमणुण्णे गंधेणं अमणुण्णे रसेणं अमणुण्णे फासेणं, से जहानामए--अहिमडे इ वा जाव अमणामतराए चेव गंधेणं पण्णत्ते।।

१४. तए णं से जियसत्तू राया सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी--अहो णं सुबुद्धि! इमे फरिहोदए अमणुण्णे वण्णेणं अमणुण्णे गंधेणं अमणुण्णे रसेणं अमणुण्णे फासेणं, से जहानामए--अहिमडे इ वा जाव अमणामतराए चेव गंधेणं पण्णत्ते।।

सुबुद्धिस्स उवेहा-पदं

१५. तए णं से सुबुद्धी अमच्चे जियसत्तुस्स रण्णो एयमट्ठं नो आढाइ नो परियाणाइ तुसिणीए संचिट्ठइ।।

१६. तए णं से जियसत्तू राया सुबुद्धिं अमच्चं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी--अहो णं सुबुद्धि! इमे फरिहोदए अमणुण्णे वण्णेणं अमणुण्णे गंधेणं अमणुण्णे रसेणं अमणुण्णे फासेणं, से जहानामए--अहिमडे इ वा जाव अमणामतराए चेव गंधेणं पण्णत्ते।।

१७. तए णं से सुबुद्धी अमच्चे जियसत्तुणा रण्णा दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्ते समाणे एवं वयासी--नो खलु सामी! अम्हं एयंसि फरिहोदगंसि केइ विम्हए। एवं खलु सामी! सुब्भिसद्दा वि पोग्गला दुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति, दुब्भिसद्दा वि पोग्गला सुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति। सुरूवा वि पोग्गला दुरूवत्ताए परिणमंति, दुरूवा वि पोग्गला सुरूवत्ताए परिणमंति। सुब्भिगंधा वि पोग्गला दुब्भिगंधत्ताए परिणमंति, दुब्भिगंधा वि पोग्गला सुब्भिगंधत्ताए परिणमंति। सुरसा वि पोग्गला दुरसत्ताए परिणमंति, दुरसा वि पोग्गला सुरसत्ताए परिणमंति। सुहफासा वि पोग्गला दुहफासत्ताए परिणमंति, दुहफासा वि पोग्गला सुहफासत्ताए परिणमंति। पओग-वीससा-परिणया वि य णं सामी! पोग्गला पण्णत्ता।।

१२. जितशत्रु राजा ने परिखा के जल की उस अशुभ गंध से अभिभूत होकर अपने उत्तरीय-वस्त्र से मुँह ढंक लिया। मुँह ढंक कर वह एकान्त में चला गया। एकान्त में जाकर वह बहुत से ईश्वर यावत् सार्थवाह आदि से इस प्रकार बोला--अहो देवानुप्रियो! यह परिखा का जल वर्ण से अमनोज्ञ है, गन्ध से अमनोज्ञ है, रस से अमनोज्ञ है और स्पर्श से अमनोज्ञ है--जैसे कोई मृत सांप हो यावत् यह उससे भी अमनोगततर गन्ध वाला है।

१३. बहुत से ईश्वर यावत् सार्थवाद आदि ने राजा जितशत्रु से इस प्रकार कहा--स्वामिन्! यह जल वैसा ही है जैसा तुम कह रहे हो। यह परिखा का जल वर्ण से अमनोज्ञ है, गन्ध से अमनोज्ञ है, रस से अमनोज्ञ है और स्पर्श से अमनोज्ञ है, जैसे कोई मृत सांप हो...यावत् यह उससे भी अमनोगततर गन्ध वाला है।

१४. राजा जितशत्रु ने अमात्य सुबुद्धि से इस प्रकार कहा--अहो सुबुद्धि! यह परिखा का जल वर्ण से अमनोज्ञ है, गन्ध से अमनोज्ञ है, रस से अमनोज्ञ है और स्पर्श से अमनोज्ञ है, जैसे कोई मृत सांप हो...यावत् यह उससे भी अमनोगततर गन्ध वाला है।

सुबुद्धि की उपेक्षा पद

१५. सुबुद्धि अमात्य ने राजा जितशत्रु के इस अर्थ को न आदर दिया, न उसकी ओर ध्यान दिया किन्तु वह मौन रहा।

१६. जितशत्रु राजा ने दूसरी बार, तीसरी बार भी अमात्य सुबुद्धि से इस प्रकार कहा--अहो सुबुद्धि! यह परिखा का जल वर्ण से अमनोज्ञ है, गन्ध से अमनोज्ञ है, रस से अमनोज्ञ है, स्पर्श से अमनोज्ञ है जैसे कोई मृत सांप हो यावत् यह उससे भी अमनोगततर गन्ध वाला है।

१७. राजा जितशत्रु के दूसरी, तीसरी बार भी ऐसा कहने पर अमात्य सुबुद्धि ने राजा जितशत्रु से इस प्रकार कहा--स्वामिन्! हमें तो इस परिखा के जल में कोई विस्मय नहीं होता। स्वामिन्! प्रशस्त शब्द पुद्गल भी अप्रशस्त शब्दों के रूप में परिणत हो जाते हैं और अप्रशस्त शब्द पुद्गल भी प्रशस्त शब्दों के रूप में परिणत हो जाते हैं। सुरूप पुद्गल भी कुरूपता में परिणत हो जाते हैं और कुरूप पुद्गल भी सुरूपता में परिणत हो जाते हैं। सुरभि गन्ध-पुद्गल भी दुरभिगन्धता में परिणत हो जाते हैं और दुरभि गन्ध-पुद्गल भी सुरभिगन्धता में परिणत हो जाते हैं। सुरस पुद्गल भी विरसता में परिणत हो जाते हैं और विरस पुद्गल भी सुरसता में परिणत हो जाते हैं। सुखद स्पर्श वाले पुद्गल भी दुःखद स्पर्श के रूप में परिणत हो जाते हैं और दुःखद स्पर्श वाले पुद्गल भी सुखद स्पर्श के रूप में परिणत हो जाते हैं। स्वामिन्! पुद्गल प्रयत्न-परिणत भी हैं और विस्रसा-परिणत भी हैं--ऐसा प्रज्ञप्त है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जियसत्तुस्स विरोध-पदं

१८. तए णं जियसत्तू राया सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी--मा णं तुमं देवाणुप्पिया! अप्पाणं च परं च तदुभयं च बहूणि य असब्भावुब्भावणाहिं मिच्छत्ताभिनिवेसेण य वुग्गाहेमाणे वुप्पाएमाणे विहराहि।।

सुबुद्धिणा जलसोधण-पदं

१९. तए णं सुबुद्धिस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--अहो णं जियसत्तू राया संते तच्चे तहिए अवितहे सब्भूए जिणपण्णत्ते भावे नो उवलभइ। तं सेयं खलु मम जियसत्तुस्स रण्णो संताणं तच्चाणं तहियाणं अवितहाणं सब्भूयाणं जिणपण्णत्ताणं भावाणं अभिगमणट्ठयाए एयमट्ठं उवाइणावेत्तए-- एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता पच्चइएहिं पुरिसेहिं सद्धिं अंतरावणाओ नवए घडए य पडए य गेण्हइ, गेण्हित्ता संझाकालसमयंसि विरलमणूसंसि निसंत-पडिनिसंतंसि जेणेव फरिहोदए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं फरिहोदगं गेण्हावेइ, गेण्हावित्ता नवएसु पडएसु गालावेइ, गालावेत्ता नवएसु घडएसु पक्खिवावेइ, पक्खिवावेत्ता सज्जखारं पक्खिवावेइ, पक्खिवावेत्ता लंछियमुद्दिए कारावेइ, कारावेत्ता सत्तरत्तं परिवसावेइ, परिवसावेत्ता दोच्चंपि नवएसु पडएसु गालावेइ, गालावेत्ता नवएसु घडएसु पक्खिवावेइ, पक्खिवावेत्ता सज्जखारं पक्खिवावेइ, पक्खिवावेत्ता लंछिय-मुद्दिए कारावेइ, कारावेत्ता सत्तरत्तं परिवसावेइ, परिवसावेत्ता तच्चंपि नवएसु पडएसु गालावेइ, गालावेत्ता नवएसु घडएसु पक्खिवावेइ, पक्खिवावेत्ता सज्जखारं पक्खिवावेइ, पक्खिवावेत्ता लंछिय-मुद्दिए कारावेइ, कारावेत्ता सत्तरत्तं संवसावेइ। एवं खलु एएणं उवाएणं अंतरा गालावेमाणे अंतरा पक्खिवावेमाणे अंतरा य संवसावेमाणे सत्तसत्त य राइंदियाइं परिवसावेइ। तए णं से फरिहोदए सत्तमंसि सत्तयंसि परिणममाणंसि उदगरयणे जाए यावि होत्था--अच्छे पत्थे जच्चे तणुए फालियवण्णाभे वण्णेणं उववेए गंधेणं उववेए रसेणं उववेए फासेणं उववेए आसायणिज्जे विसायणिज्जे पीणणिज्जे दीवणिज्जे दप्पणिज्जे मयणिज्जे बिंहणिज्जे सव्विंदियगाय-पल्हाय-णिज्जे।।

जितशत्रु का विरोध-पद

१८. राजा जितशत्रु ने अमात्य सुबुद्धि से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! तुम इस प्रकार असद्भूत तत्त्व की उद्भावनाओं और मिथ्या-अभिनिवेश से स्व[1] को 'पर' को तथा 'स्व-पर' दोनों को आग्रही और भ्रान्त[2] मत बनाओ।

सुबुद्धि द्वारा जल शोधन-पद

१९. सुबुद्धि के मन में इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--अहो! राजा जितशत्रु सत्, तत्त्व, तथ्य, अवितथ, सद्भूत जिनप्रज्ञप्त भावों को उपलब्ध नहीं हो रहा है। अतः मेरे लिए उचित है, मैं राजा जितशत्रु को सत्, तत्त्व, तथ्य, अवितथ, सद्भूत जिन-प्रज्ञप्त भावों की अवगति के लिए, उसे वस्तुओं के इस परिणमन-धर्म को समझाऊं। उसने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर अपने विश्वास-पात्र पुरुषों के साथ मार्गवर्ती दुकान से नए घड़े और नये कपड़े लिए। उन्हें लेकर संध्या काल के समय जब मनुष्यों का गमनागमन कम हो गया और बाहर गये हुए व्यक्ति अपने घरों में लौट आए तब वह जहां परिखा का जल था वहां आया। वहां आकर परिखा के जल को पात्र में भरवाया। भरवाकर नये कपड़ों (गलनों) से छनवाया। छनवाकर नये घड़ों में प्रक्षिप्त करवाया। करवाकर उसमें साजी का क्षार[3] प्रक्षिप्त करवाया। प्रक्षिप्त करवाकर घड़ों को लाञ्छित-मुद्रित करवाया। मुद्रित करवाकर सात रात तक उस जल को परिवासित करवाया। परिवासित करवाकर उसे दूसरी बार भी नये कपड़ों से छनवाया। छनवाकर नए घड़ों में प्रक्षिप्त करवाया। प्रक्षिप्त करवाकर उसमें साजी का क्षार प्रक्षिप्त करवाया। करवाकर घड़ों को लाञ्छित-मुद्रित करवाया। करवाकर सात रात तक उस जल को परिवासित करवाया। परिवासित करवाकर उसे तीसरी बार भी नये कपड़ों से छनवाया। छनवाकर नये घड़ों में प्रक्षिप्त करवाया। करवाकर उसमें साजी का क्षार प्रक्षिप्त करवाया। करवाकर घड़ों को लाञ्छित-मुद्रित करवाया। करवाकर सात रात तक उस जल को परिवासित करवाया।

क्रमशः इस उपाय से वह बीच -बीच में (नितरे हुए) पानी को छनवाता हुआ, दूसरे घड़ों में प्रक्षिप्त करवाता हुआ, साजी का क्षार प्रक्षिप्त करवाता हुआ और सम्यक् वासित करवाता हुआ सात सप्ताह तक उसे परिवासित करवाता रहा। इस प्रकार वह परिखा का जल परिणमित होते-होते सातवें सप्ताह में उदक-रत्न बन गया।

वह निर्मल पथ्य (आरोग्य वर्द्धक) जात्य (उत्तम गुणों से युक्त) हल्का (सुपाच्य) और वर्ण से स्फटिक जैसी आभा वाला हो गया। वह वर्ण से उपेत, गंध से उपेत, रस से उपेत और स्पर्श से उपेत हो गया। वह स्वाद लेने-योग्य, विशेष स्वाद लेने योग्य, धातु साम्य करने वाला, अग्नि-दीपन करने वाला, बल बढ़ाने वाला, वीर्य बढ़ाने वाला, मांस को पुष्ट करने वाला तथा सब इन्द्रियों और अवयवों को प्रल्हादित करने वाला बन गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुबुद्धिणा जलपेसण-पदं

२०. तए णं सुबुद्धी जेणेव से उदगरयणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलंसि आसादेइ, आसादेत्ता तं उदगरयणं वण्णेणं उववेयं गंधेणं उववेयं रसेणं उववेयं फासेणं उववेयं आसायणिज्जं विसायणिज्जं पीणणिज्जं दीवणिज्जं दप्पणिज्जं मयणिज्जं बिंहणिज्जं सव्विंदियगाय-पल्हायणिज्जं जाणित्ता हट्ठतुट्ठे बहूहिं उदगसंभा- रणिज्जेहिं दव्वेहिं संभारेइ, संभारेत्ता जियसत्तुस्स रण्णो पाणियघरियं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--तुमं णं देवाणुप्पिया! इमं उदगयरणं गेण्हाहि, गेण्हित्ता जियसत्तुस्स रण्णो भोयणवेलाए उवणेज्जासि।।

सुबुद्धि-द्वारा-जल-प्रेषण-पद

२०. सुबुद्धि जहां वह उदक-रत्न था, वहां आया। वहां जाकर उसे हथेली में लेकर चखा। चखकर उस उदक-रत्न को वर्ण से उपेत, गन्ध से उपेत, रस से उपेत और स्पर्श से उपेत, स्वाद लेने योग्य, विशेष स्वाद लेने योग्य, धातु साम्य करने वाला, अग्नि-दीपन करने वाला, बल बढ़ाने वाला, वीर्य बढ़ाने वाला, मांस को पुष्ट करने वाला तथा सब इन्द्रियों और अवयवों को प्रल्हादित करने वाला हो गया है--ऐसा जानकर हृष्ट-तुष्ट हुआ। जल को सुगन्धित करने वाले[१] बहुत से गन्ध द्रव्यों से उसे सुगन्धित किया। सुगन्धित कर जितशत्रु राजा के जलगृह के अधिकारी को बुलाया। उसको बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! तुम यह उदक-रत्न लो। लेकर भोजन बेला में जितशत्रु राजा के समक्ष प्रस्तुत करो।

जियसत्तुणा उदगरयणपसंसा-पदं

२१. तए णं से पाणियघरिए सुबुद्धिस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता तं उदगरयणं गेण्हइ, गेण्हित्ता जियसत्तुस्स रण्णो भोयणवेलाए उवट्ठवेइ।।

जितशत्रु द्वारा उदक-रत्न की प्रशंसा-पद

२१. जलगृह के अधिकारी ने सुबुद्धि के इस कथन को स्वीकार किया। स्वीकार कर उस उदक-रत्न को लिया। उसे लेकर भोजन की वेला में जितशत्रु राजा के समक्ष प्रस्तुत किया।

२२. तए णं से जियसत्तू राया तं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं आसाएमाणे विसाएमाणे परिभाएमाणे परिभुंजेमाणे, एवं च णं विहरइ। जिमियभुत्तुत्तरागए वि य णं समाणे आयंते चोक्खे परमसुइभूए तंसि उदगरयणंसि जायविम्हए ते बहवे राईसर जाव सत्थवाहपभिइओ एवं वयासी--अहो णं देवाणुप्पिया! इमे उदगरयणे अच्छे जाव सव्विंदियगाय-पल्हायणिज्जे।।

२२. राजा जितशत्रु उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का आस्वादन करता हुआ, विशेष स्वाद लेता हुआ और बांटता हुआ भोजन कर रहा था। वह भोजनोपरान्त आचमन कर, साफ सुथरा और परम पवित्र हो उस उदक-रत्न में विस्मित होकर उन बहुत सारे राजा ईश्वर यावत् सार्थवाह आदि से इस प्रकार बोला--अहो देवानुप्रियो! यह उदक-रत्न निर्मल यावत् सब इन्द्रियों और अवयवों को प्रल्हादित करने वाला है।

२३. तए णं ते बहवे राईसर जाव सत्थवाहपभिइओ एवं वयासी--तहेव णं सामी! जण्णं तुब्भे वयह--इमे उदगरयणे अच्छे जाव सव्विंदियगाय-पल्हायणिज्जे।।

२३. वे बहुत से ईश्वर यावत् सार्थवाह आदि इस प्रकार बोले--स्वामिन्! यह जल वैसा ही है जैसा तुम कह रहे हो--यह उदक-रत्न निर्मल यावत् सब इन्द्रियों और अवयवों को प्रल्हादित करने वाला है।

जियसत्तुणा उदगाणयणपुच्छा-पदं

२४. तए णं जियसत्तू राया पाणिय-घरियं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--एस णं तुमे देवाणुप्पिया! उदगरयणे कओ आसादिते?

जितशत्रु द्वारा जल लाने के सम्बन्ध में पृच्छा-पद

२४. राजा जितशत्रु ने जलगृह के अधिकारी को बुलाया। उसे बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! तुझे यह उदक-रत्न कहां से प्राप्त हुआ?

२५. तए णं से पाणियघरिए जियसत्तुं एवं वयासी--एस णं सामी! मए उदगरयणे सुबुद्धिस्स अंतियाओ आसादिते।।

२५. जलगृह के अधिकार ने जितशत्रु से इस प्रकार कहा--स्वामिन्! मुझे यह उदक-रत्न सुबुद्धि के यहां से प्राप्त हुआ है।

२६. तए णं जियसत्तू सुबुद्धिं अमच्चं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--अहो णं सुबुद्धि! केणं कारणेणं अहं तव अणिट्ठे अकंते अप्पिए अमणुण्णे अमणामे जेणं तुमं मम कल्लाकल्लिं भोयणवेलाए इमं उदगरयणं न उवट्ठवेसि? तं एस णं तुमे देवाणुप्पिया! उदगरयणे कओ उवलद्धे?

२६. जितशत्रु ने अमात्य सुबुद्धि को बुलाया। उसे बुलाकर इस प्रकार कहा--अहो सुबुद्धि! क्या कारण हैं मैं तुझे अनिष्ट, अकमनीय, अप्रिय, अमनोज्ञ और अमनोगत लगता हूँ, जिससे तू मेरे लिए प्रतिदिन भोजन की वेला में यह उदक-रत्न प्रस्तुत नहीं करता? देवानुप्रिय! तुझे यह उदक-रत्न कहां से उपलब्ध हुआ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुबुद्धिस्स उत्तर-पदं

२७. तए णं सुबुद्धी जियसत्तुं एवं वयासी--एस णं सामी! से फरिहोदए।।

२८. तए णं से जियसत्तू सुबुद्धिं एवं वयासी--केणं कारणेणं सुबुद्धी! एस से फरिहोदए?

२९. तए णं सुबुद्धी जियसत्तुं एवं वयासी--एवं खलु सामी! तुब्भे तया मम एवमाइक्खमाणस्स भासमाणस्स पण्णवेमाणस्स परूवेमाणस्स एयमट्ठं नो सद्दहह। तए णं मम इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुपज्जित्था--अहो णं जियसत्तू राया संते तच्चे तहिए अवितहे सब्भूए जिणपण्णत्ते भावे नो सद्दहइ नो पत्तियइ नो रोएइ। तं सेयं खलु मम जियसत्तुस्स रण्णो संताणं तच्चाणं तहियाणं अवितहाणं सब्भूयाणं जिणपण्णत्ताणं भावाणं अभिगमणट्ठयाए एयमट्ठं उवाइणावेत्तए--एवं संपेहेमि, संपेहेत्ता तं चेव जाव पाणिय-घरियं सद्दावेमि, सद्दावेत्ता एवं वदामि--तुमं णं देवाणुप्पिया! उदगरयणं जियसत्तुस्स रण्णो भोयणवेलाए उवणेहि। तं एएणं कारणेणं सामी! एस से फरिहोदए।।

जियसत्तुणा जलसोधण-पदं

३०. तए णं जियसत्तू राया सुबुद्धिस्स एवमाइक्खमाणस्स भासमाणस्स पण्णवेमाणस्स परूवेमाणस्स एयमट्ठं नो सद्दहइ नो पत्तियइ नो रोएइ, असद्दहमाणे अपत्तियमाणे अरोएमाणे अब्भिंतरठाणिज्जे पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! अंतरावणाओ नवए घडए पडए य गेण्हह जाव उदगसंभारणिज्जेहिं दव्वेहिं संभारेह। तेवि तहेव संभारेंति, संभारेत्ता जियसत्तुस्स उवणेंति।।

जियसत्तुस्स जिण्णासा-पदं

३१. तए णं से जियसत्तू राया तं उदगरयणं करयलंसि आसाएइ, आसाएत्ता आसायणिज्जं जाव सव्विंदियगाय-पल्हायणिज्जं जाणित्ता सुबुद्धिं अमच्चं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--सुबुद्धी! एए णं तुमे संता तच्चा तहिया अवितहा सब्भूया भावा कओ उवलद्धा?

सुबुद्धिस्स उत्तर-पदं

३२. तए णं सुबुद्धी जियसत्तुं एवं वयासी--एए णं सामी! मए संता तच्चा तहिया अवितहा सब्भूया भावा जिणवयणाओ उवलद्धा।।

सुबुद्धि का उत्तर-पद

२७. सुबुद्धि ने जितशत्रु से इस प्रकार कहा--स्वामिन्! यह वही परिखा का जल है।

२८. जितशत्रु ने सुबुद्धि से इस प्रकार कहा--सुबुद्धि! यह वही परिखा का जल है, इसका हेतु क्या है?

२९. सुबुद्धि ने जितशत्रु से इस प्रकार कहा--स्वामिन्! उस समय ऐसा आख्यान, भाषण, प्रज्ञापना और प्ररूपणा करते हुए मेरे इस अर्थ पर तुम्हें श्रद्धा नहीं हुई। तब मेरे मन में इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलाषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--अहो! राजा जितशत्रु सत्, तत्त्व, तथ्य, अवितथ, सद्भूत, जिनप्रज्ञप्त भावों में श्रद्धा नहीं करता, प्रतीति नहीं करता और उसे यह रुचिकर नहीं लगता। अतः मेरे लिए उचित है, मैं राजा जितशत्रु को सत्, तत्त्व, तथ्य, अवितथ, सद्भुत, जिनप्रज्ञप्त भावों की अवगति के लिए उसे वस्तुओं के इस परिणमन धर्म को समझाऊं। मैंने यह संप्रेक्षा की यावत् जल गृह अधिकारी को बुलाया। उसे बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! तुम यह उदक-रत्न भोजन की बेला में राजा जितशत्रु के समक्ष प्रस्तुत करो। स्वामिन्! इस हेतु के आधार पर मैं कहता हूँ यह वही परिखा का जल है।

जितशत्रु द्वारा जल-शोधन-पद

३०. राजा जितशत्रु ने सुबुद्धि के उस आख्यान, भाषण, प्रज्ञापना और प्ररूपण पर श्रद्धा नहीं की, प्रतीति नहीं की, उसे वह रुचिकर नही लगा। उसे सुबुद्धि के आख्यान पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं हुई इसलिए उसने अपने अंतरंग सेवकों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम जाओ, नगर के मध्यवर्ती बाजार से नये घड़े और नये कपड़े लाओ यावत् जल को सुगन्धित करने वाले बहुत से द्रव्यों से उसे सुगन्धित करो। उन्होने वैसे ही सुगन्धित किया। सुगन्धित कर जितशत्रु के समक्ष प्रस्तुत किया।

जितशत्रु का जिज्ञासा-पद

३१. राजा जितशत्रु ने उस उदक-रत्न को हथेली में लेकर चखा। चखकर उसे स्वाद लेने योग्य यावत् सब इन्द्रियों और अवयवों को प्रल्हादित करने वाला जानकर अमात्य सुबुद्धि को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--सुबुद्धि! ये सत्, तत्त्व, तथ्य, अवितथ, सद्भूत भाव तुम्हें कहां से उपलब्ध हुए?

सुबुद्धि का उत्तर पद

३२. सुबुद्धि ने जितशत्रु से इस प्रकार कहा--स्वामिन्! ये सत्, तत्त्व, तथ्य, अवितथ और सद्भूत भाव मुझे जिन-प्रवचन से उपलब्ध हुए हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३. तए णं जियसत्तू सुबुद्धिं एवं वयासी--तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! तव अंतिए जिणवयणं निसामित्तए।।

३३. जितशत्रु ने सुबुद्धि से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! मैं तुमसे जिन-प्रवचन सुनना चाहता हूँ।

जियसत्तुस्स समणोवासयत्त-पदं

जितशत्रु की श्रमणोपासकता-पद

३४. तए णं सुबुद्धी जियसत्तुस्स विचित्तं केवलिपण्णत्तं चाउज्जामं धम्मं परिकहेइ।।

३४. सुबुद्धि ने जितशत्रु को विचित्र केवली-प्रज्ञप्त, चातुर्याम-धर्म समझाया।[५]

३५. तए णं जियसत्तू सुबुद्धिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी--सद्दहामि णं देवाणुप्पिया! निग्गंथं पावयणं। पत्तियामि णं देवाणुप्पिया! निग्गंथं पावयणं। रोएमि णं देवाणुप्पिया! निग्गंथं पावयणं। अब्भुट्ठेमि णं देवाणुप्पिया! निग्गंथं पावयणं। एवमेवं देवाणुप्पिया! तहमेयं देवाणुप्पिया! अवितहमेयं देवाणुप्पिया! इच्छियमेयं देवाणुप्पिया! पडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया! इच्छिय-पडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया! से जहेयं तुब्भे वयह। तं इच्छामि णं तव अंतिए 'चाउज्जामियं गिहिधम्मं' उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह।।

३५. सुबुद्धि के पास धर्म को सुनकर, अवधारण कर हृष्ट-तुष्ट हुआ जितशत्रु अमात्य सुबुद्धि से इस प्रकार बोला--

देवानुप्रिय! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ।
देवानुप्रिय! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर प्रतीति करता हूँ।
देवानुप्रिय! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर रुचि करता हूँ।
देवानुप्रिय! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन में अभ्युत्थान करता हूँ।
यह ऐसा ही है देवानुप्रिय!
यह तथ्य है देवानुप्रिय!
यह अवितथ है देवानुप्रिय!
यह इष्ट है देवानुप्रिय!
यह ग्राह्य है देवानुप्रिय!
यह इष्ट और ग्राह्य दोनों है देवानुप्रिय!
जैसा तुम कह रहे हो-

मैं चाहता हूँ तुम्हारे पास चातुर्याम रूप गृहस्थ-धर्म को स्वीकार कर विहार करूं।

जैसा सुख हो देवानुप्रिय! प्रतिबन्ध मत करो।

३६. तए णं से जियसत्तू सुबुद्धिस्स अंतिए चाउज्जामियं गिहिधम्मं पडिवज्जइ।।

३६. जितशत्रु ने सुबुद्धि के पास चातुर्याम रूप गृहस्थ-धर्म को स्वीकार किया।

३७. तए णं जियसत्तू समणोवासए जाए--अहिगयजीवाजीवे जाव पडिलाभेमाणे विहरइ।।

३७. जितशत्रु श्रमणोपासक बन गया। वह जीवाजीव को जानने वाला यावत् (श्रमणों को) प्रतिलाभित करता हुआ विहार करने लगा।

पव्वज्जा-पदं

प्रव्रज्या-पद

३८. तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरागमणं। जियसत्तू राया सुबुद्धी य निग्गच्छइ। सुबुद्धी धम्मं सोच्चा निसम्म एवं वयासी--जं नवरं--जियसत्तुं आपुच्छामि तओ पच्छा मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वयामि।

अहासुहं देवाणुप्पिया!

३८. उस काल और उस समय स्थविरों का आगमन हुआ। राजा जितशत्रु और सुबुद्धि वहां गए। धर्म सुनकर, अवधारण कर सुबुद्धि ने इस प्रकार कहा--विशेष इतना--मैं जितशत्रु से पूछता हूँ तत्पश्चात् मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित होता हूँ।

--जैसा सुख हो देवानुप्रिय!

३९. तए णं सुबुद्धी जेणेव जियसत्तू तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी--एवं खलु सामी! मए थेराणं अंतिए धम्मे निसंते। से वि य धम्मे 'इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए'। तए णं अहं सामी!

३९. सुबुद्धि, जहां जितशत्रु था, वहां आया। वहां आकर इस प्रकार बोला--स्वामिन्! मैंने स्थविरों के पास धर्म सुना है। वही धर्म मुझे इष्ट, ग्राह्य और रुचिकर है। अतः स्वामिन्! मैं संसार के भय से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संसारभउव्विग्गे भीए जम्मणजर-मरणाणं इच्छामि णं तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे थेराणं अंतिए मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।।

उद्विग्न हूँ। जन्म, जरा और मृत्यु से भीत हूँ। मैं चाहता हूँ तुमसे अनुज्ञा प्राप्त कर स्थविरों के पास मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित बनूं।

४०. तए णं जियसत्तू राया सुबुद्धिं एवं वयासी–अच्छसु ताव देवाणुप्पिया! कइवयाइं वासाइं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा तओ पच्छा एगयओ थेराणं अंतिए मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामो।।

४०. राजा जितशत्रु ने सुबुद्धि से इस प्रकार कहा--ठहरो देवानुप्रिय! कुछ वर्षों तक हम मनुष्य सम्बन्धी प्रधान भोगार्ह भोगों का अनुभव करें। तत्पश्चात् हम एक साथ स्थविरों के पास मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित होंगे।

४१. तए णं सुबुद्धि जियसत्तुस्स रण्णो एयमट्ठं पडिसुणेइ।।

४१. सुबुद्धि ने राजा जितशत्रु के इस अर्थ को स्वीकार कर लिया।

४२. तए णं तस्स जियसत्तुस्स रण्णो सुबुद्धिणा सद्धिं विपुलाइं माणुस्सगाइं कामभोगाइं पच्चणुब्भवमाणस्स दुवालस वासाइं वीइक्कंताइं।।

४२. राजा जितशत्रु को सुबुद्धि के साथ मनुष्य-सम्बन्धी विपुल कामभोगों का अनुभव करते हुए बारह वर्ष बीत गए।

४३. तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरागमणं। जियसत्तू राया धम्मं सोच्चा निसम्म एवं वयासी--जं नवरं--देवाणुप्पिया! सुबुद्धिं अमच्चं आमंतेमि, जेट्ठपुत्तं रज्जे ठावेमि, तए णं तुब्भण्णं अंतिए मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वयामि।

--अहासुहं देवाणुप्पिया!

४३. उस काल और उस समय स्थविरों का आगमन हुआ। जितशत्रु राजा ने धर्म सुनकर, अवधारण कर इस प्रकार कहा--विशेष--देवानुप्रिय! मैं अमात्य सुबुद्धि को बुलाता हूँ। ज्येष्ठ पुत्र को राज्य (सिंहासन) पर स्थापित करता हूं और उसके पश्चात् तुम्हारे पास मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित होता हूं।

--जैसा सुख हो देवानुप्रिय!

४४. तए णं जियसत्तू राया जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुबुद्धिं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--एवं खलु मए थेराणं अंतिए धम्मे निसंते जाव पव्वयामि। तुमं णं किं करेसि?

४४. राजा जितशत्रु जहां अपना घर था, वहां आया। आकर सुबुद्धि को बुलाया। उसको बुलाकर इस प्रकार कहा--मैंने स्थविरों के पास धर्म सुना है यावत् मैं प्रव्रजित हो रहा हूँ। तुम क्या करोगे?

४५. तए णं सुबुद्धी जियसत्तुं रायं एवं वयासी--जइ णं तुब्भे देवाणुप्पिया! संसारभउव्विग्गा जाव पव्वयह, अम्हं णं देवाणुप्पिया! के अण्णे आहारे वा आलंबे वा? अहं वि य णं देवाणुप्पिया! संसारभउव्विग्गे जाव पव्वयामि। तं जइ णं देवाणुप्पिया! जाव पव्वाहि। गच्छह णं देवाणुप्पिया! जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठावेहि, ठावेत्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरुहित्ता णं ममं अंतिए पाउब्भवउ। सो वि तहेव पाउब्भवइ।।

४५. सुबुद्धि ने राजा जितशत्रु से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! यदि तुम संसार के भय से उद्विग्न हो यावत् प्रव्रजित हो रहे हो तो देवानुप्रिय! हमारा दूसरा आलम्बन और आधार ही क्या है?

देवानुप्रिय मैं भी संसार के भय से उद्विग्न हूं......यावत् प्रव्रजित होता हूं। तुम संसार के भय से उद्विग्न हो यावत् प्रव्रजित हो रहे हो तो देवानुप्रिय ! जाओ, ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित करो। उसे स्थापित कर हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली शिविका पर आरूढ़ होकर मेरे समक्ष उपस्थित हो जाओ।

वह भी वैसे ही उपस्थित हुआ।

४६. तए णं जियसत्तू राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! अदीणसत्तुस्स कुमारस्स रायाभिसेयं उवट्ठवेह। ते वि तहेव उवट्ठवेंति जाव अभिसिंचति जाव पव्वइए।।

४६. राजा जितशत्रु ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--जाओ देवानुप्रियो! तुम कुमार अदीनशत्रु के राज्याभिषेक की उपस्थापना करो। उन्होंने वैसे ही उपस्थापना की यावत् अभिषेक किया, यावत् वह प्रव्रजित हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७. तए णं जियसत्तू रायरिसी एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता, बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता जाव सिद्धे ।।

४८. तए णं सुबुद्धी एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता, बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता जाव सिद्धे ।।

निक्खेव-पदं

४९. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं बारसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।

--त्ति बेमि ।।

वृत्तिकृत्ता समुद्धृत्ता निगमनगाथा--

मिच्छत्त-मोहियमणा, पावपसत्ता वि पाणिणो विगुणा ।
फरिहोदगं व गुणिणो, हवंति वरगुरुपसायाओ ।।१।।

४७. राजार्षि जितशत्रु ने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। अध्ययन कर बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्याय का पालन कर मासिक संलेखना की आराधना में स्वयं को समर्पित कर यावत् सिद्ध हुआ।

४८. सुबुद्धि ने ग्यारह अंगों का अध्ययन कर बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्याय का पालन कर मासिक संलेखना की आराधना में स्वयं को समर्पित कर यावत् सिद्ध हुआ।

निक्षेप-पद

४९. जम्बू! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के बारहवें अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

--ऐसा मैं कहता हूँ।

वृत्तिकार द्वारा समुद्धृत निगमन गाथा

जिनका मन मिथ्यात्व से मूढ़ और पाप में आसक्त है वे गुणहीन प्राणी भी गुरु के प्रवर प्रसाद से गुणी बन जाते हैं, जैसे वह परिखा का जल।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

सूत्र-९

१. प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि पुद्गल परिवर्तनशील है। उसके परिवर्तन के दो हेतु हैं--प्रयोग परिणत--प्रयोग से परिणत और विस्रसा परिणत--स्वभाव से परिणत।

परिणत का अर्थ है--एक अवस्था से दूसरी अवस्था को प्राप्त करना।[१]

सूत्र-१८

२. भ्रान्त (वुप्पाएमाणे)

टीकाकार ने इसका अर्थ किया है--अव्युत्पन्न मति को व्युत्पन्न करना।[२] यहां अव्युत्पन्न को व्युत्पन्न करने का तात्पर्य है--उल्टी सीख देना अर्थात् भ्रान्ति में डालना।

सूत्र-१९

३. साजी का खार (सज्जखारं)

सज्ज के संस्कृत रूप सर्ज और सद्य दोनों बनते हैं। खार के साथ सज्ज का प्रयोग है अतः यहां सर्ज रूप अधिक उपयुक्त है। सर्ज (सलई का पेड़) से साजी खार बनता है।

वृत्तिकार ने इसका अर्थ सद्यो भस्म किया है।[३]

सूत्र-२०

४. जल को सुगंधित करने वाले (उदगसंभारणिज्जेहिं)

जल को परिवासित या संस्कृत करने वाले द्रव्य। वृत्तिकार के अनुसार वालक (नेत्रवाला) मुस्ता (नागरमोथा) आदि से जल परिवासित होता है।[४]

सूत्र-३४

५. चातुर्याम धर्म (चाउज्जामं धम्मं)

पार्श्व के समय साधु व गृहस्थ दोनों के लिए चातुर्याम धर्म की व्यवस्था थी। इसीलिए श्रावक को चातुर्याम धर्म की देशना दी गई। बारह व्रत की व्यवस्था महावीर की देन है। द्रष्टव्य ५/५९ का टिप्पण।

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१८४ पओगवीससापरिणय त्ति-प्रयोगेण-जीवव्यापारेण, विस्रसया च-स्वभावेन परिणताः-अवस्थान्तरमापन्ना ये ते।

२. वही--व्युत्पादयन्-अव्युत्पन्नमतिं व्युत्पन्नं कुर्वन्।

३. वही--सज्जखार त्ति सद्यो भस्मः।

४. वही--उदकवासकैः- वालकमुस्तादिभिः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

प्रस्तुत अध्ययन का नाम 'मंडुक्के' है। सूत्र ३२ से अग्रिम अनेक सूत्रों में दर्दुर शब्द का प्रयोग मिलता है। मण्डूक और दर्दुर एकार्थक हैं पर मूल अध्ययन का नाम दर्दुर नहीं है। समवायांग सूत्र में जहां ज्ञातधर्मकथा के १९ अध्ययनों के नाम बतलाए गए हैं वहां तेरहवें अध्ययन का नाम 'मण्डुक्क' है।[1]

प्रस्तुत अध्ययन में नन्द मणिकार के जीवन के दो पक्षों का निरूपण है-

१. वापी का निर्माण और उसके प्रति ममत्व।

२. दर्दुर के भव में व्रत-स्वीकार।

नन्द मणिकार ने भगवान महावीर से श्रावक व्रत ग्रहण किया। पर कालान्तर में वह सम्यक्त्व से च्युत हो गया। मिथ्यात्व की प्रतिपत्ति हो गई। सूत्रकार ने उसके चार कारण बतलाए हैं–

१. साधुओं के दर्शन का अभाव

२. साधुओं की पर्युपासना का अभाव

३. शुश्रूषा का अभाव

४. अनुशासन का अभाव।[2]

तेले की तपस्या में पौषध अवस्था में क्षुधा और पिपासा परीषह से अभिभूत होकर उसने पुष्करिणी के निर्माण का संकल्प कर लिया। पुष्करिणी, उसके चारों ओर वनखण्ड तथा उनमें क्रमश: चित्रसभा, महानसशाला, चिकित्सा शाला और अलंकार सभा का निर्माण करवाया। जन-जन के मुख से प्रशंसा सुन वह उस वापी में अत्यन्त आसक्त हो गया।

नन्द मणिकार ने मनुष्य जन्म में व्रतों की सम्यक् आराधना नहीं की फलत: उसे तिर्यक् योनि में जाना पड़ा। मेंढ़क के भव में जातिस्मृति प्राप्त की। शुभ परिणामधारा के क्षण में उसकी मृत्यु हुई। उसने देवयोनि प्राप्त की।

प्रस्तुत अध्ययन में नन्द मणिकार के दो जन्मों की आसक्ति और अनासक्ति का सुन्दर चित्रण है। इसमें हमारे चिन्तन मनन की पर्याप्त सामग्री है।

१. समवाओ १९/१

२. नायाधम्मकहाओ १/१३/१३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेरसमं अज्झयणं : तेरहवां अध्ययन

मंडुक्के : मण्डूक

उक्खेव-पदं

१. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं बारसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, तेरसमस्स णं भंते! नायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

२. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। समोसरणं। परिसा निग्गया।।

३. तेणं कालेणं तेणं समएणं सोहम्मे कप्पे दद्दुरवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए दद्दुरंसि सीहासणंसि दद्दुरे देवे चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं चउहिं अग्गमहिसीहिं सपरिसाहिं एवं जहा सूरियाभे जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ। इमं च णं केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणे जाव नट्टविहिं उवदंसित्ता पडिगए, जहा--सूरियाभे।।

गोयमस्स पुच्छा-पदं

४. भंतेति! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--अहो णं भंते! दद्दुरे देवे महिड्ढिए महज्जुईए महब्बले महायसे महासोक्खे महाणुभागे।।

५. दद्दुरस्स णं भंते! देवस्स सा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुती दिव्वे देवाणुभावे कहिं गए? कहिं अणुपविट्ठे?

गोयमा! सरीरं गए सरीरं अणुपविट्ठे कूडागारदिट्ठंतो।।

६. दद्दुरेणं भंते! देवेणं सा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुती दिव्वे देवाणुभावे किण्णा लद्धे? किण्णा पत्ते? किण्णा अभिसमण्णागए?

भगवओ उत्तरे दद्दुरदेवस्स नंदभव-पदं

७. एवं खलु गोयमा! इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया।।

८. तत्थ णं रायगिहे नंदे नामं मणियारसेट्ठी--अड्ढे दित्ते।।

उत्क्षेप-पद

१. भन्ते! यदि श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के बारहवें अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है, तो भन्ते! उन्होंने ज्ञाता के तेरहवें अध्ययन का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

२. जम्बू! उस काल और उस समय राजगृह नगर था। गुणशिलक चैत्य था। समवसरण जुड़ा। जन-समूह ने निर्गमन किया।

३. उस काल और उस समय सौधर्म-कल्प, दर्दुरावतंसक विमान और सुधर्मा-सभा में दर्दुर-सिंहासन पर दर्दुर नाम का देव चार-हजार सामानिक देवों तथा सपरिषद् चार अग्र-महीषियों के साथ सूर्याभदेव की भांति यावत् दिव्य भोगार्ह भोगों को भोगता हुआ विहार कर रहा था। वह इस परिपूर्ण[1] जम्बूद्वीप द्वीप को विपुल अवधि-ज्ञान से देखता हुआ यावत् नाट्य विधि का प्रदर्शन कर चला गया, जैसे--सूर्याभ।

गौतम का पृच्छा-पद

४. भन्ते! इस प्रकार भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार कहा--अहो भन्ते! दर्दुरदेव महान ऋद्धि, महान द्युति, महान बल, महान यश, महान सुख और महान अनुभाग वाला है।

५. भन्ते! दर्दुरदेव की वह दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवानुभाव कहां गया? कहां अनुप्रविष्ट हो गया?

गौतम! वह शरीरगत हो गया। शरीर में अनुप्रविष्ट हो गया। यहां कूटागार[2] दृष्टान्त ज्ञातव्य है।

६. भन्ते! दर्दुरदेव को वह दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देव-द्युति और दिव्य देवानुभाव कैसे उपलब्ध हुआ? कैसे प्राप्त हुआ? कैसे अभिसमन्वागत हुआ?

भगवान का उत्तर, दर्दुर देव का नन्दभव-पद

७. गौतम ! इसी जम्बूद्वीप द्वीप और भारतवर्ष में राजगृह नगर, गुणशिलक चैत्य और श्रेणिक राजा।

८. उस राजगृह नगर में 'नन्द' नाम का मणिकार श्रेष्ठी रहता था। वह आढ्य और दीप्त था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नंदस्स धम्मपडिवत्ति-पदं

९. तेणं कालेणं तेणं समएणं अहं गोयमा! समोसढे। परिसा निग्गया। सेणिए वि निग्गए।।

१०. तए णं से नंदे मणियारसेट्ठी इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे पायविहारचारेणं जाव पज्जुवासइ।।

११. नंदे मणियारसेट्ठी धम्मं सोच्चा समणोवासए जाए।।

१२. तए णंऽहं रायगिहाओ पडिनिक्खंते बहिया जणवयविहारेणं विहरामि।।

नन्द का धर्म प्रतिपत्ति-पद

९. गौतम! उस काल और उस समय मैं वहां समवसृत हुआ। जन-समूह ने निर्गमन किया। श्रेणिक भी गया।

१०. जब नन्द मणिकार श्रेष्ठी को यह संवाद मिला तो उसने भी पांव-पांव चलकर यावत् पर्युपासना की।

११. धर्म को सुनकर नन्द मणिकार श्रेष्ठी श्रमणोपासक बन गया।

१२. मैं राजगृह से निष्क्रमण कर बाहर जनपद विहार करने लगा।

मिच्छत्तपडिवत्ति-पदं

१३. तए णं से नंदे मणियारसेट्ठी अण्णया कयाइ असाहुदंसणेण य अपज्जुवासणाए य अणणुसासणाए य असुस्सूसणाए य सम्मत्तपज्जवेहिं परिहायमाणेहिं-परिहायमाणेहिं मिच्छत्तपज्जवेहिं परिवड्ढमाणेहिं-परिवड्ढमाणेहिं मिच्छत्तं विप्पडिवण्णे जाए यावि होत्था।।

१४. तए णं नंदे मणियारसेट्ठी अण्णया कयाइ गिम्हकालसमयंसि जेट्ठामूलंसि मासंसि अट्ठमभत्तं परिगेण्हइ, परिगेण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभचारी उमुक्कमणिसुवण्णे ववगयमालावण्णगविलेवणे निक्खित्तसत्थमुसले एगे अबीए दब्भसंथारोवगए विहरइ।।

मिथ्यात्व-प्रतिपत्ति-पद

१३. एक समय ऐसा आया उसे साधुओं के दर्शन, पर्युपासना, अनुशासना का योग नहीं मिला तथा सुनने की इच्छा भी नहीं रही। फलस्वरूप सम्यक्त्व के पर्यव हीन होने लगे। मिथ्यात्व के पर्यव बढ़ने लगे। वह गाढ़ मिथ्यात्वी हो गया।

१४. किसी समय नन्द मणिकार श्रेष्ठी ने ग्रीष्मकाल के समय, ज्येष्ठ मास में, अष्टम-भक्त तप स्वीकार किया। स्वीकार कर, पौषध-शाला में ब्रह्मचर्य पूर्वक, मणि-सुवर्ण से विमुक्त, माला, वर्ण, विलेपन आदि से दूर रह, शस्त्र, मूसल का परित्याग कर अकेला, अद्वितीय, डाभ के बिछौने पर बैठ पौषध निरत होकर विहार कर रहा था।

पोक्खरिणी-निम्माण-पदं

१५. तए णं नंदस्स अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि तण्हाए छुहाए य अभिभूयस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--धण्णा णं ते ईसरपभियओ, संपुण्णा णं ते ईसरपभियओ, कयत्था णं ते ईसरपभियओ, कयपुण्णा णं ते ईसरपभियओ, कयलक्खणा णं ते ईसरपभियओ, कयविभवा णं ते ईसरपभियओ, जेसिं णं रायगिहस्स बहिया बहूओ वावीओ पोक्खरिणीओ दीहियाओ गुंजालियाओ सरपंतियाओ सरसरपंतियाओ, जत्थ णं बहुजणो 'ण्हाइ य पियइ य पाणियं च संवहइ। तं सेयं खलु मम कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते सेणियं रायं आपुच्छित्ता रायगिहस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभागे वेब्भारपव्वयस्स अदूरसामंते वत्थुपाढग-रोइयंसि भूमिभागंसि नंदं पोक्खरिणिं खणावेत्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते पोसहं पारेइ, पारेत्ता ण्हाए कयबलिकम्मे मित्त-नाइ- नियग-सयण-

पुष्करिणी का निर्माण-पद

१५. अष्टम-भक्त परिणमित हो रहा था, प्यास और भूख से अभिभूत नन्द के मन में इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--धन्य हैं वे ईश्वर आदि, पुण्यशाली हैं वे ईश्वर आदि, कृतार्थ हैं--वे ईश्वर आदि, कृतपुण्य हैं वे ईश्वर आदि, कृतलक्षण हैं वे ईश्वर आदि, वैभवशाली हैं वे ईश्वर आदि, जिनकी राजगृह नगर के बाहर बहुत-सारी वापिकाएं, पुष्करिणियां, दीर्घिकाएं, गुञ्जालिकाएं, सरः पंक्तिकाएं और सरोवर से संलग्न सरः पंक्तिकाएं हैं। जहां जन-समूह नहाता है, पानी पीता है और पानी ले जाता है। अतः मेरे लिए उचित है, मैं उषाकाल में, पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर राजा श्रेणिक से अनुज्ञा प्राप्त कर राजगृह नगर के बाहर ईशान-कोण में वैभार-पर्वत के आसपास वास्तुशास्त्रविद् के मनपसन्द भू-भाग में 'नन्दा' नाम की पुष्करिणी खुदवाऊं--उसने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संबंधि-परियणेणं सद्धिं संपरिवुडे महत्थं महग्घं महरिहं रायारिहं पाहुडं गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छइ जाव पाहुडं उवट्ठवेइ, उवट्ठवेत्ता एवं वयासी--इच्छामि णं सामी! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे रायगिहस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभागे वेब्भारपव्वयस्स अदूरसामंते वत्थुपाढग-रोइयंसि भूमिभागंसि नंदं पोक्खरिणिं खणावेत्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिया!

१६. तए णं से नंदे मणियारसेट्ठी सेणिएणं रण्णा अब्भणुण्णाए समाणे हट्ठतुट्ठे रायगिहं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निगच्छित्ता वत्थुपाठय- रोइयंसि भूमिभागंसि नंद पोक्खरिणिं खणावेउं पयत्ते यावि होत्था।।

१७. तए णं सा नंदा पोक्खरिणी अणुपुव्वेणं खम्ममाणा-खम्ममाणा पोक्खरिणी जाया यावि होत्था--चाउक्कोणा समतीरा अणुपुव्वं सुजायवप्पसीयलजला संछन्नपत्त-भिसमुणाला बहुउप्पल-पउम-कुमुद-नलिण-सुभग-सोगंधिय-पुंडरीय-महापुंडरीय-सयपत्त-सहस्सपत्त-पप्फुल्लकेसरोववेया परिहत्थ-भमंत-मत्तछप्पय-अणेग-सउणगण-मिहुण-वियरिय-सद्दुन्नइय-महुरसरनाइया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।।

वणसंड-पदं

१८. तए णं से नंदे मणियारसेट्ठि नंदाए पोक्खरिणीए चउदिसिं चत्तारि वणसंडे रोवावेइ।।

१९. तए णं ते वणसंडा अणुपुव्वेणं सारक्खिज्जमाणा संगोविज्जमाणा संवड्ढिज्जमाणा य वणसंडा जाया--किण्हा जाव महामेह-निउरंबभूया पत्तिया पुप्फिया फलिया हरियग-रेरिज्जमाणा सिरीए अईव उवसोभेमाणा-उवसोभेमाणा चिट्ठंति।।

चित्तसभा-पदं

२०. तए णं नंदे मणियारसेट्ठी पुरत्थिमिल्ले वणसंडे एगं महं चित्तसभं कारावेइ--अणेगखंभसयसण्णिविट्ठं पासाईयं दरिसणिज्जं अभिरूवं पडिरूवं। तत्थ णं बहूणि किण्हाणि य नीलाणि य लोहियाणि य हालिद्दाणि य सुक्किलाणि य कट्ठकम्माणि य पोत्थकम्माणि य चित्त-लेप्प-गंथिम-वेढिम-पूरिम-संघाइमाइं उवदंसिज्जमाणाइं-उवदंसिज्जमाणाइं चिट्ठंति।

जाने पर पौषध-व्रत को संपन्न किया। संपन्न कर स्नान और बलिकर्म कर मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनों के साथ, उनसे परिवृत हो महान अर्थवान, महान मूल्यवान, महान अर्हता वाला, राजाओं के योग्य उपहार लिया। उपहार लेकर जहां राजा श्रेणिक था, वहां आया यावत् उपहार दिया। उपहार देकर इस प्रकार बोला--स्वामिन्! मैं चाहता हूँ आपसे अनुज्ञा प्राप्त कर, राजगृह नगर के बाहर ईशान-कोण में वैभार-पर्वत के आसपास वास्तु-शास्त्रविदों के मन पसन्द भू-भाग में 'नन्दा' पुष्करिणी खुदवाऊं।

जैसा तुम्हें सुख हो देवानुप्रिय!

१६. राजा श्रेणिक से अनुज्ञा प्राप्त होने पर वह नन्द मणिकार श्रेष्ठी हृष्ट-तुष्ट हुआ राजगृह नगर के बीचों-बीच होकर निकला। निकलकर वह वास्तु-शास्त्रविदों के मन-पसन्द भू-भाग में नन्दा पुष्करिणी खुदवाने में प्रयत्नशील हो गया।

१७. वह नन्दा पुष्करिणी क्रमशः खुदाई करते-करते पुष्करिणी बन गई। वह चतुष्कोण, समान तीरों वाली क्रमशः सुनिर्मित वप्र और शीतल जल वाली, कमल-दल, कमल-कन्द और कमल-नाल से संच्छन्न, प्रफुल्लित और केश८ प्रधान बहुत से उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगन्धिक पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र और सहस्रपत्र कमलों से उपेत, रस लुब्ध, मंडराते हुए मत्त भ्रमरों से व्याप्त, पक्षी-समूहों के अनेक युगलों द्वारा कृत प्रकृष्ट मधुर, सरस शब्दों से निनादित, चित्त को आल्हादित करने वाली दर्शनीय, सुन्दर और असाधारण थी।

वन-खण्ड-पद

१८. नन्द मणिकार श्रेष्ठी ने नन्दा पुष्करिणी के चारों ओर चार वन-खण्ड लगवाए।

१९. वे वनखण्ड क्रमशः संरक्षित, संगोपित और संवर्द्धित होते-होते पूर्ण वनखण्ड के रूप में विकसित हो गये। वे कृष्ण यावत् महामेघ-पटल के समान पल्लवित, पुष्पित, फलित, हरीतिमा से आकर्षक तथा पत्र, पुष्पादि की श्री से अतीव उपशोभित अतीव उपशोभित हो रहे थे।

चित्रसभा-पद

२०. नन्द मणिकार श्रेष्ठी ने पूर्व दिशा वाले वन-खण्ड में एक महान चित्रसभा बनवायी। वह अनेक शत खम्भों पर सन्निविष्ट, चित्त को आल्हादित करने वाली, दर्शनीय, सुन्दर और असाधारण थी। उस चित्रसभा में बहुत सारे कृष्ण, नील, लोहित, पीत और श्वेत रंगों वाले काष्ठकर्म, पुस्तकर्म, चित्रकर्म, लेप्यकर्म तथा ग्रथित, वेष्टित, पूरित और संघात्य कलाकृतियां थी। जिन्हें दर्शक एक दूसरे को दिखाते रहते थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्थ णं बहूणि आसणाणि य सयणाणि य अत्थुय-पच्चत्थुयाइं चिट्ठंति।

तत्थ णं बहवे नडा य नट्टा य जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय-वेलंबग-कहग-पवग-लासग-आइक्खग-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुंबवीणिया य दिन्नभइ-भत्त-वेयणा तालायरकम्मं करेमाणा-करेमाणा विहरंति।

रायगिहविणिग्गओ एत्थ णं बहुजणो तेसु पुव्वन्नत्थेसु आसण-सयणेसु सण्णिसण्णो य संतुयट्टो य सुयमाणो य पेच्छमाणो य साहेमाणो य सुहंसुहेणं विहरइ।।

वहां बहुत सारे आसन और शयन बिछे रहते थे।

वहां भृति, भोजन और वेतन पर काम करने वाले बहुत-से नट, नर्तक, कोड़ी से जूआ खेलने वाले, पहलवान, मुष्टि युद्ध करने वाले, शुभाशुभ बताने वाले, बड़े बांस पर चढ़कर खेल करने वाले, चित्रपट दिखाकर आजीविका करने वाले (मंखलि), तूण (मशक के आकार का वाद्य) वादक, तम्बूरा-वादक, तालाचर कर्म[3] (नाट्यकर्म) करने वाले रहते थे।

वहां राजगृह से विनिर्गत जन-समूह उन पूर्वन्यस्त आसनों और शयनीयों पर बैठता, सोता, सुनता, देखता और चित्रसभा को सराहता हुआ सुखपूर्वक विहार करता।

महाणससाला-पदं

२१. तए णं नंदे मणियारसेट्ठी दाहिणिल्ले वणसंडे एगं महं महाणससालं कारावेइ--अणेगखंभसयसण्णिविट्ठं जाव पडिरूवं। तत्थ णं बहवे पुरिसा दिन्नभइ-भत्त-वेयणा विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडेंति, बहूणं समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमगाणं परिभाएमाणा-परिभाएमाणा विहरंति।।

महानसशाला-पद

२१. नन्द मणिकार श्रेष्ठी ने दक्षिण दिशा वाले वन-खण्ड में एक महान महानसशाला बनवायी। वह अनेक शत खम्भों पर सन्निविष्ट यावत् असाधारण थी। वहां भृति, भोजन और वेतन पर काम करने वाले बहुत से पुरुष विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करते और बहुत से श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, कृपण और वनीपकों को वितरित करते रहते।

तिगिच्छियसाला-पदं

२२. तए णं नंदे मणियारसेट्ठी पच्चत्थिमिल्ले वणसंडे एगं महं तिगिच्छियसालं कारावेइ--अणेगखंभसयसण्णिविट्ठं जाव पडिरूवं। तत्थ णं बहवे वेज्जा य वेज्जपुत्ता य जाणुया य जाणुयपुत्ता य कुसला य कुसलपुत्ता य दिन्नभइ-भत्त-वेयणा बहूणं वाहियाण य गिलायाण य रोगियाण य दुब्बलाण य तेइच्छकम्मं करेमाणा-करेमाणा विहरंति। अण्णे य एत्थ बहवे पुरिसा दिन्नभइ-भत्त-वेयणा तेसिं बहूणं वाहियाण य गिलाणाण य रोगियाण य दुब्बलाण य ओसह-भेसज्ज-भत्तपाणेणं पडियारकम्मं करेमाणा विहरंति।।

चिकित्साशाला-पद

२२. नन्द मणिकार श्रेष्ठी ने पश्चिम वाले वन-खण्ड में एक विशाल चिकित्साशाला बनवायी। वह अनेक शत खम्भों पर सन्निविष्ट यावत् असाधारण थी। वहां भृति, भोजन और वेतन पर काम करने वाले बहुत वैद्य, वैद्य-पुत्र, चिकित्सा-शास्त्रज्ञ, चिकित्सा-शास्त्रज्ञ-पुत्र, कुशल-कुशल-पुत्र बहुत से व्याधितों, ग्लानों, रोगियों[4] और दुर्बलों की चिकित्सा करते रहते थे।

वहां भृति, भोजन और वेतन पर काम करने वाले अन्य बहुत से परिचारक पुरुष उन व्याधितों, ग्लानों, रोगियों और दुर्बलों की औषध, भैषज्य एवं भक्त-पान से परिचर्या करते रहते थे।

अलंकारियसभा-पदं

२३. तए णं नंदे मणियारसेट्ठी उत्तरिल्ले वणसंडे एगं महं अलंकारियसभं कारावेइ--अणेगखंभसयसण्णिविट्ठं जाव पडिरूवं। तत्थ णं बहवे अलंकारिय-मणुस्सा दिन्नभइ-भत्त-वेयणा बहूणं समणाण य अणाहाण य गिलाणाण य रोगियाण य दुब्बलाण य अलंकारियकम्मं करेमाणा- करेमाणा विहरंति।।

आलंकारिकसभा-पद

२३. नन्द मणिकार श्रेष्ठी ने उत्तर वाले वन-खण्ड में एक महान आलंकारिक सभा[5] बनवायी। वह अनेक शत खम्भों पर सन्निविष्ट यावत् असाधारण थी। वहां भृति, भोजन और वेतन पर काम करने वाले बहुत से आलंकारिक-पुरुष बहुत से श्रमणों, अनाथों, ग्लानों, रोगियों और दुर्बलों का अलंकरण करते रहते थे।

नंदस्स पसंसा-पदं

२४. तए णं तीए नंदाए पोक्खरिणीए बहवे सणाहा य अणाहा य पंथिया य पहिया य करोडिया य तणहारा य पत्तहारा य कट्ठहारा

नन्द का प्रशंसा-पद

२४. उस नन्दा पुष्करिणी में अनेक सनाथ, अनाथ, पान्थ, पथिक, कापालिक, तृणहारक, पत्रहारक, काष्ठहारक व्यक्ति आते। उनमें से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

य--अप्पेगइया ण्हायंति अप्पेगइया पाणियं पियंति अप्पेगइया पाणियं संवहंति अप्पेगइया विसज्जियसेय-जल्ल-मल-परिस्सम-निद्द-खुप्पिवासा सुहंसुहेणं विहरंति।

रायगिहविणिग्गओ वि यत्थ बहुजणो किं ते जलरमण-विविहमज्जण-कयलिलयाहरय-कुसुम-सत्थरय-अणेगसउणगण-कयरिभियसंकुलेसु सुहंसुहेणं अभिरममाणो-अभिरममाणो विहरइ।।

कुछ स्नान करते, कुछ पानी पीते, कुछ पानी ले जाते और कुछ वहां पसीना, जल्ल, मल, परिश्रम, नींद और भूख-प्यास का अपनयन कर सुखपूर्वक क्रीड़ा करते।

राजगृह नगर से विनिर्गत जन-समूह भी अनेक शकुनि-समूहों द्वारा कृत मधुर कलरव से संकुल उन जल-क्रीड़ा-गृहों, स्नान-गृहों, कदली-गृहों, लता-गृहों और पुष्प-शय्याओं में सुख-पूर्वक अभिरमण करता हुआ अभिरमण करता हुआ विहार करने लगा।

२५. तए णं नंदाए पोक्खरिणीए बहुजणो ण्हायमाणो य पियमाणो य पाणियं च संवहमाणो य अण्णमण्णं एवं वयासी--धण्णे णं देवाणुप्पिया! नंदे मणियारसेट्ठी, कयत्थे णं देवाणुप्पिया! नंदे मणियारसेट्ठी, कयलक्खणे णं देवाणुप्पिया! नंदे मणियारसेट्ठी, कयपुण्णे णं देवाणुप्पिया! नंदे मणियारेसेट्ठी, कया णं लोया! सुलद्धे माणुस्सए जम्मजीवियफले (नंदस्स मणियारस्स?) ? जस्स णं इमेयारूवा नंदा पोक्खरिणी चाउक्कोणा जाव पडिरूवा जाव रायगिहविणिग्गओ जत्थ बहुजणो आसणेसु य सयणेसु य सण्णिसण्णो य संतुयट्टो य पेच्छमाणो य साहेमाणो य सुहंसुहेणं विहरइ। तं धन्ने णं देवाणुप्पिया! नंदे मणियारसेट्ठी, कयत्थे णं देवाणुप्पिया! नंदे मणियारसेट्ठी, कयलक्खणे णं देवाणुप्पिया! नंदे मणियारसेट्ठी, कयपुण्णे णं देवाणुप्पिया! नंदे मणियारसेट्ठी, कया णं लोया! सुलद्धे माणुस्सए जम्मजीवियफले नंदस्स मणियारस्स?

२५. नन्दा पुष्करिणी में स्नान करता हुआ, पानी पीता हुआ और पानी ले जाता हुआ जन-समूह परस्पर इस प्रकार कहता--

धन्य है देवानुप्रियो! नन्द मणिकार श्रेष्ठी,
कृतार्थ है देवानुप्रियो! नन्द मणिकार श्रेष्ठी,
कृतलक्षण है देवानुप्रियो! नन्द मणिकार श्रेष्ठी,
कृतपुण्य है देवानुप्रियो! नन्द मणिकार श्रेष्ठी।

लोगों! मनुष्य-जन्म और जीवन का फल किसने प्राप्त किया है? (नन्द मणिकार ने?) जिसने इस विशिष्ट प्रकार की चतुष्कोण यावत् असाधारण नन्दा पुष्करिणी बनवाई, यावत् राजगृह से विनिर्गत जन-समूह वहां आसनों और शयनीयों पर बैठता हुआ, सोता हुआ, देखता हुआ और सराहता हुआ सुखपूर्वक विहार करता।

इसलिए धन्य है देवानुप्रियो! नन्द मणिकार श्रेष्ठी,
कृतार्थ है देवानुप्रियो! नन्द मणिकार श्रेष्ठी,
कृतलक्षण है देवानुप्रियो! नन्द मणिकार श्रेष्ठी,
कृतपुण्य है देवानुप्रियो! नन्द मणिकार श्रेष्ठी।

लोगों ! मनुष्य जन्म और जीवन का फल किसने प्राप्त किया है, नंद मणिकार ने?

२६. तए णं रायगिहे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ--धन्ने णं देवाणुप्पिया! नंदे मणियारसेट्ठी सो चेव गमओ जाव सुहंसुहेणं विहरइ।।

२६. राजगृह में दोराहों, तिराहों, चौराहों, चौकों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और मार्गों में जन-समूह परस्पर इस प्रकार आख्यान, भाषण, प्रज्ञापना और प्ररूपणा करता--धन्य है देवानुप्रियो! नन्द मणिकार श्रेष्ठी...वर्णन पूर्ववत् यावत् सुखपूर्वक विहार करता।

२७. तए णं से नंदे मणियारसेट्ठी बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे धाराहत-कलंबगं विव समूसवियरोमकूवे परं सायासोक्खमणुभवमाणे विहरइ।।

२७. वह नन्द मणिकार श्रेष्ठी जन-समूह से यह अर्थ सुनकर, अवधारण कर, हृष्ट तुष्ट होता। उसके रोमकूप धारा से आहत कदम्ब-कुसुम की भांति उच्छ्वसित हो उठते। वह परम साता और सुख का अनुभव करता हुआ विहार करने लगा।

नंदस्स रोगुप्पत्ति-पदं

नन्द के शरीर में रोगोत्पत्ति-पद

२८. तए णं तस्स नंदस्स मणियारसेट्ठिस्स अण्णया कयाइ सरीरगंसि सोलस रोगायंका पाउब्भूया। तं जहा--

गाहा--

सासे कासे जरे दाहे, कुच्छिसूले भगंदरे।
अरिसा अजीरए, दिट्ठी-मुद्धसूले अकारए।।
अच्छिवेयणा कण्णवेयणा कंडू दउदरे कोढे।।१।।

२८. एक समय उस नन्द मणिकार श्रेष्ठी के शरीर में सोलह रोगातंक प्रादुर्भूत हुए। जैसे--

गाथा--

श्वास, कास, ज्वर, दाह, उदर-शूल, भगंदर, अर्श, अजीर्ण, दृष्टि-शूल, शिर:शूल, अरुचि, अक्षि-वेदना, कर्ण-वेदना, कण्डू, जलोदर और कुष्ठ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिगिच्छा-पदं

२९. तए णं से नंदे मणियारसेट्ठी सोलसहिं रोगायंकेहिं अभिभूए समाणे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! रायगिहे नयरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एवं वयह--एवं खलु देवाणुप्पिया! नंदस्स मणियारस्स सरीरगंसि सोलस रोयायंका पाउब्भूया। (तं जहा--सासे जाव कोढे) तं जो णं इच्छइ देवाणुप्पिया! विज्जो वा विज्जपुत्तो वा जाणुओ वा जाणुअपुत्तो वा कुसलो वा कुसलपुत्तो वा नंदस्स मणियारस्स तेसिं च णं सोलसण्हं रोगायंकाणं एगमवि रोगायंकं उवसामित्तए, तस्स णं नंदे मणियारसेट्ठी विउलं अत्थसंपयाणं दलयइ त्ति कट्टु दोच्चंपि तच्चंपि घोसणं घोसेह, घोसेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। तेवि तहेव पच्चप्पिणंति।।

चिकित्सा-पद

२९. नन्द मणिकार श्रेष्ठी ने सोलह रोगातंकों से अभिभूत होकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम जाओ और राजगृह नगर में दोराहों, तिराहों, चौराहों, चौकों, चतुर्मुखों, राजमार्गों, और मार्गों पर ऊंचे स्वर से उद्घोषणा करते-करते इस प्रकार कहो--देवानुप्रियो! नन्द मणिकार के शरीर में सोलह रोगातंक प्रादुर्भूत हुए हैं। (जैसे-श्वास यावत् कुष्ठ) अतः देवानुप्रियो! जो भी वैद्य अथवा वैद्य-पुत्र, चिकित्सा-शास्त्रज्ञ अथवा चिकित्सा शास्त्रज्ञ-पुत्र, कुशल अथवा कुशल-पुत्र नन्द मणिकार के उन सोलह रोगातंकों में से एक भी रोगातंक को उपशांत करना चाहे, नन्द मणिकार श्रेष्ठी उसे विपुल अर्थ-सम्पदा प्रदान करेगा। इस प्रकार दूसरी, तीसरी बार भी घोषणा करो। घोषणा कर इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो। उन्होंने भी वैसे ही प्रत्यर्पित किया।

३०. तए णं रायगिहे नगरे इमेयारूवं घोसणं सोच्चा निसम्म बहवे वेज्जा य वेज्जपुत्ता य जाणुया य जाणुयपुत्ता य कुसला य कुसलपुत्ता य सत्थकोसहत्थगया य सिलियाहत्थगया य गुलियाहत्थगया य ओसह-भेसज्जहत्थगया य सएहिं-सएहिं गिहेहिंतो निक्खमंति, निक्खमित्ता रायगिहं मज्झंमज्झेणं जेणेव नंदस्स मणियारसेट्ठिस्स गिहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता नंदस्स मणियारसेट्ठिस्स सरीरं पासंति, पासित्ता तेसिं रोगायंकाणं नियाणं पुच्छंति, पुच्छित्ता नंदस्स मणियारसेट्ठिस्स बहूहिं उव्वलणेहि य उव्वट्टणेहि य सिणेहपाणेहि य वमणेहि य विरेयणेहि य सेयणेहि य अवदहणेहि य अवण्हावणेहि य अणुवासणाहि य वत्थिकम्मेहि य निरूहेहि य सिरावेहेहि य तच्छणाहि य पच्छणाहि य सिरावत्थीहि य तप्पणाहि य पुडवाएहि य छल्लीहि य वल्लीहि य मूलेहि य कंदेहि य पत्तेहि य पुप्फेहि य फलेहि य बीएहि य सिलियाहि य गुलियाहि य ओसहेहि य भेसज्जेहि य इच्छंति तेसिं सोलसण्हं रोगायंकाणं एगमवि रोगायंकं उवसामित्तए, नो चेव णं संचाएंति उवसामेत्तए।।

३०. राजगृह नगर में यह घोषणा सुनकर, अवधारण कर बहुत से वैद्य और वैद्य-पुत्र, चिकित्सा-शास्त्रज्ञ और चिकित्सा शास्त्रज्ञ-पुत्र, कुशल और कुशल-पुत्र अपने हाथों में शस्त्र-कोश, शिलिका,[१] गुलिका तथा औषध-भेषज्य लेकर अपने-अपने घरों से निकले। निकलकर राजगृह नगर के बीचो-बीच होते हुए जहां नन्द मणिकार श्रेष्ठी का घर था, वहां आए। वहां आकर नन्द मणिकार श्रेष्ठी के शरीर को देखा। देखकर रोगातंक का कारण पूछा। पूछकर बहुत से उपलेपन, उबटन, स्नेह-पान, वमन, विरेचन, स्वेदन, अवदहन, अपस्नापन, अनुवासन, वस्तिकर्म, निरूह (द्रव्य पक्व तेल की एनिमा-विरेचन विशेष), शिरावेध, तक्षण, प्रतक्षण, शिरोवस्ति, तर्पण, पुटपाक तथा छाल, बेल, मूल, कन्द, पत्र, पुष्प, फल, बीज, शिलिका, गुलिका, औषध, भेषज्य के द्वारा नन्द मणिकार श्रेष्ठी के सोलह रोगातंकों में से एक रोगातंक को भी उपशान्त करना चाहा, किन्तु वे उपशान्त नहीं कर पाए।[७]

३१. तए णं ते बहवे वेज्जा य वेज्जपुत्ता य जाणुया य जाणुयपुत्ता य कुसला य कुसलपुत्ता य जाहे नो संचाएंति तेसिं सोलसण्हं रोगायंकाणं एगमवि रोगायंकं उवसामित्तए, ताहे संता तंता परितंता निव्विण्णा समाणा जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।।

३१. वे बहुत से वैद्य, वैद्य-पुत्र, चिकित्सा-शास्त्रज्ञ, चिकित्सा-शास्त्रज्ञ-पुत्र, कुशल और कुशल-पुत्र उन सोलह रोगातंकों में से एक भी रोगातंक को उपशांत नहीं कर पाए, तो वे श्रान्त, क्लान्त, परिक्लान्त और उदास होकर जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा में चले गए।

भगवओ उत्तरे दद्दुरदेवस्स दद्दुरभव-पदं

३२. तए णं नंदे मणियारसेट्ठी तेहिं सोलसेहिं रोगायंकेहिं अभिभूए समाणे नंदाए पुक्खरिणीए मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववण्णे तिरिक्खजोणिएहिं निबद्धाउए बद्धपएसिए अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे कालमासे कालं किच्चा नंदाए पोक्खरिणीए दद्दुरीए कुच्छिंसि दद्दुरत्ताए उववण्णे।।

भगवान के उत्तर के अन्तर्गत दर्दुरदेव का दर्दुर-भव-पद

३२. वह नन्द मणिकार श्रेष्ठी उन सोलह रोगातंकों से अभिभूत होकर, नन्दा पुष्करिणी में मूर्च्छित, ग्रथित, गृद्ध और अध्युपन्न होकर प्रदेशबन्धपूर्वक तिर्यक् योनिक आयुष्य का बन्धन कर[८] आर्त्त, दुःखार्त्त और वासना से आर्त्त हो, मृत्यु के समय मृत्यु को प्राप्त कर, नन्दा पुष्करिणी में एक मण्डूकी की कुक्षि में दर्दुर के रूप में उत्पन्न हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३. तए णं नंदे दद्दुरे गब्भाओ विणिमुक्के समाणे उम्मुक्कबालभावे विण्णय-परिणयमित्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते नंदाए पोक्खरिणीए अभिरममाणे-अभिरममाणे विहरइ।।

३३. गर्भ से विनिर्मुक्त होने पर वह नन्द-दर्दुर शैशव को लांघकर विज्ञ और परिपक्व हो, यौवन को प्राप्त कर उस नन्दा पुष्करिणी में अभिरमण करता हुआ अभिरमण करता हुआ विहार करने लगा।

३४. तए णं नंदाए पोक्खरिणीए बहुजणो ण्हायमाणो य पियमाणो य पाणियं च संवहमाणो य अण्णमण्णं एवमाइक्खइ एवं भासइ एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ--धन्ने णं देवाणुप्पिया! नंदे मणियारे, जस्स णं इमेयारूवा नंदा पुक्खरिणी--चाउक्कोणा जाव पडिरूवा।।

३४. नन्दा पुष्करिणी में स्नान करता हुआ, पानी पीता हुआ और पानी ले जाता हुआ जनसमूह परस्पर यह आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन एवं प्ररूपण करता--धन्य है देवानुप्रियो! नन्द मणिकार श्रेष्ठी, जिसकी यह नंदा पुष्करिणी चतुष्कोण यावत् असाधारण है।

दद्दुरस्स जाइसरण-पदं

दर्दुर का जातिस्मरण-पद

३५. तए णं तस्स दद्दुरस्स तं अभिक्खणं-अभिक्खणं बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--कहिं मन्ने मए इमेयारूवे सद्दे निसंतपुव्वे त्ति कट्टु सुभेणं परिणामेणं पसत्थेणं अज्झवसाणेणं लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहापूह-मग्गण-गवेसणं करेमाणस्स सण्णिपुव्वे जाईसरणे समुप्पण्णे, पुव्वजाइं सम्मं समागच्छइ।।

३५. जन-समूह से बार-बार इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर उस दर्दुर के मन में इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--लगता है, इस प्रकार के शब्द मैंने कहीं पहले भी सुने हैं। इस प्रकार चिन्तन करते-करते शुभपरिणामों, प्रशस्त अध्यवसायों और विशुद्धयमान लेश्याओं के कारण तदावरणीय कर्मों का क्षयोपशम होने से ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करते हुए उसे समनस्क जन्मों को जानने वाला जाति-स्मरण ज्ञान समुत्पन्न हुआ। वह पूर्व-जन्म को भली-भांति जानने लगा।

३६. तए णं तस्स दद्दुरस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--एवं खलु अहं इहेव रायगिहे नयरे नंदे नामं मणियारे--अड्ढे। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसढे। तए णं मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइए सत्तसिक्खावइए--दुवालसविहे गिहिधम्मे पडिवण्णे। तए णं अहं अण्णया कयाइ असाहुदंसणेण य जाव मिच्छत्तं विप्पडिवण्णे।

तए णं अहं अण्णया कयाइ गिम्हकालसमयंसि जाव पोसहं उवसंपज्जित्ता णं विहरामि। एवं जहेव चिंता। आपुच्छणा। नंदापुक्खरिणी। वणसंडा। सभाओ। तं चेव सव्वं जाव नंदाए दद्दुरत्ताए उववण्णे। तं अहो णं अहं अधण्णे अपुण्णे अकयपुण्णे निग्गंथाओ पावयणाओ नट्ठे भट्ठे परिब्भट्ठे। तं सेयं खलु ममं सयमेव पुव्वपडिवण्णाइं पंचाणुव्वयाइं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए--एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता पुव्वपडिवण्णाइं पंचाणुव्वयाइं आरुहेइ, आरुहेत्ता इमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ--कप्पइ मे जावज्जीवं छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणस्स विहरित्तए, छट्ठस्स वि य णं पारणगंसि कप्पइ मे नंदाए पोक्खरिणीए परिपेरंतेसु फासुएणं ण्हाणोदएणं उम्मद्दणालोलियाहि य वित्तिं कप्पेमाणस्स विहरित्तए--इमेयारूवं अभिग्गहं अभिगेण्हइ, जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।।

३६. उस दर्दुर के मन में इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--मैं इसी राजगृह नगर में 'नन्द' नाम का मणिकार था--आढ्य। उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर समवसृत हुए। मैंने श्रमण भगवान महावीर के पास पांच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत--इस बारह प्रकार का गृही-धर्म स्वीकार किया था। किसी समय साधु-दर्शन के अभाव में यावत् मैं गाढ़ मिथ्यात्व को प्रतिपन्न हो गया।

मैं एक बार ग्रीष्म-ऋतु के समय यावत् पौषध स्वीकार कर विहार कर रहा था। इस प्रकार चिन्तन, आपृच्छना, नन्दा पुष्करिणी, वन-खण्ड, सभाएं इत्यादि वह सम्पूर्ण दृश्य उसकी स्मृति में उभर आये यावत् नन्दा में दर्दुर रूप में उत्पन्न हुआ। अतः अहो! मैं अधन्य हूँ, अपुण्य हूँ, अकृतपुण्य हूँ जो कि निर्ग्रन्थ प्रवचन से नष्ट, भ्रष्ट और परिभ्रष्ट हो गया। अतः मेरे लिए उचित है मैं स्वयमेव पूर्व स्वीकृत पांच अणुव्रतों को स्वीकार कर विहार करूं--उसने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर पूर्व स्वीकृत पांच अणुव्रतों का आरोपण किया। आरोपण कर यह अभिग्रह स्वीकार किया--मैं जीवनपर्यन्त निरन्तर षष्ठ-षष्ठ तपःकर्म (दो-दो दिन का उपवास) से स्वयं को भावित करते हुए विहार करूंगा। षष्ठ भक्त के पारणक में नन्दा पुष्करिणी के आसपास प्रासुक स्नानोदक तथा इधर-उधर बिखरी हुई पिष्टिका (पीठी) से वृत्ति का निर्वाह करते हुए विहार करूंगा--ऐसा अभिग्रह स्वीकार किया और जीवनपर्यन्त निरन्तर षष्ठ-षष्ठ भक्त तपःकर्म से स्वयं को भावित करता हुआ विहार करने लगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवओ रायगिहे समवसरण-पदं

३७. तेण कालेणं तेण समएणं अहं गोयमा! गुणसिलए समोसढे। परिसा निग्गया।।

३८. तए णं नंदाए पोक्खरिणीए बहुजणो ण्हायमाणो य पियमाणो य पाणियं च संवहमाणो य अण्णमण्णं एवमाइक्खइ--एवं खलु समणे भगवं महावीरे इहेव गुणसिलए चेइए समोसढे। तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया। समणं भगवं महावीरं वंदामो णमंसामो सक्कारेमो सम्माणेमो कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामो। एयं णे इहभवे परभवे य हियाए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ।।

भगवान का राजगृह में समवसरण-पद

३७. गौतम ! उस काल और उस समय मैं गुणशिलक चैत्य में समवसृत हुआ। जन-समूह ने निर्गमन किया।

३८. नन्दा पुष्करिणी पर स्नान करता हुआ, पानी पीता हुआ और पानी ले जाता हुआ जन-समूह परस्पर इस प्रकार कह रहा था--श्रमण भगवान महावीर यहीं गुणशिलक चैत्य में समवसृत हैं। इसलिए देवानुप्रियो! हम चलें। श्रमण भगवान महावीर को वंदना करें, नमस्कार करें। उनका सत्कार करें, सम्मान करें। वे कल्याण-कारक, मंगलमय, धर्मदेव और ज्ञानमय हैं, अतः उनकी पर्युपासना करें। यह हमारे इस भव और परभव--दोनों में हित, सुख, क्षेम, निःश्रेयस और आनुगामिकता के लिए होगा।

दद्दुरस्स समवसरणं पइ गमण-पदं

३९. तए णं तस्स दद्दुरस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था --एवं खलु समणे भगवं महावीरे समोसढे। तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि--एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता नंदाओ पोक्खरिणीओ सणियं-सणियं पच्चुत्तरेइ, जेणेव रायमग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ताए उक्किट्ठाए दद्दुरगईए वीईवयमाणे-वीईवयमाणे जेणेव ममं अंतिए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।।

४०. इमं च णं सेणिए राया भंभसारे ण्हाए जाव सव्वालंकारविभूसिए हत्थिखंधवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामरेहि य उद्धुव्वमाणेहिं महयाहय-गय-रह-भड-चडगर-(कलियाए?) चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे मम पायवंदए हव्वमागच्छइ।।

दर्दुर का समवसरण की ओर गमन-पद

३९. जन-समूह से यह अर्थ सुनकर, अवधारण कर उस दर्दुर के मन में इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--श्रमण भगवान महावीर समवसृत हुए हैं। अतः मैं जाऊं और श्रमण भगवान महावीर को वन्दना करूं--ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर नन्दा पुष्करिणी से धीरे-धीरे बाहर निकला। जहां राजमार्ग था वहां आया। वहां आकर वह उस उत्कृष्ट दर्दुर गति से चलता-चलता जहां मैं था वहां मेरे पास आने का संकल्प किया।

४०. श्रेणिक राजा भंभासार[१] स्नान कर यावत् सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित हो, प्रवर हस्ति-स्कन्ध पर आरूढ़ हो, कटसरैया के फूलों से बनी मालाओं से युक्त छत्र धारण कर, प्रवर श्वेत चामर डुलाते हुए अश्व, गज, रथ तथा पदाति सैनिकों की नाना टुकड़ियों से यावत् चतुरंगिणी सेना के साथ, उससे परिवृत हो मेरे पाद-वन्दन के लिए शीघ्रता से आया।

दद्दुरस्स मच्चु-पदं

४१. तए णं से दद्दुरे सेणियस्स रण्णो एगेणं आसकिसोरएणं वामपाएणं अक्कंते समाणे अंतनिग्घाइए कए यावि होत्था।।

४२. तए णं से दद्दुरे अथामे अबले अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कमे अधारणिज्जमित्ति कट्टु एगंतमवक्कमइ, करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी--नमोत्थु णं अरहंताणं जाव सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपत्ताणं। नमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपाविउकामस्स। पुव्विंपि य णं मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए, थूलए मुसावाए पच्चक्खाए, थूलए अदिण्णादाणे पच्चक्खाए, थूलए मेहुणे पच्चक्खाए, थूलए परिग्गहे

दर्दुर का मृत्यु-पद

४१. वह दर्दुर, राजा श्रेणिक के एक अश्व-किशोर के बांए पांव से आक्रान्त होने पर भीतर तक आहत[२] हो गया।

४२. वह दर्दुर शक्ति-हीन, बल-हीन, वीर्य-हीन तथा पुरुषाकार और पराक्रम से हीन हो गया। यह शरीर अधारणीय है--ऐसा सोचकर वह एकान्त में गया। वहां जाकर दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार कहा--नमस्कार हो, धर्म के आदिकर्ता यावत् सिद्धि गति नामक स्थान को संप्राप्त अर्हत भगवान को। नमस्कार हो सिद्धि गति नामक स्थान को संप्राप्त करने वाले श्रमण भगवान महावीर को।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पच्चक्खाए। तं इयाणिं पि तस्सेव अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जाव सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि जावज्जीवं, सव्वं असण-पाण-खाइम-साइमं पच्चक्खामि जावज्जीवं। जंपि य इमं सरीरं इट्ठं कंतं जाव मा णं विविहा रोगायंका परीसहोवसग्गा फुसंतु एयंपि य णं चरिमेहिं ऊसासेहिं वोसिरामि त्ति कट्टु।।

पहले भी मैंने श्रमण भगवान महावीर के पास स्थूल प्राणातिपात का प्रत्याख्यान किया था।

स्थूल मृषावाद का प्रत्याख्यान किया था।

स्थूल अदत्तादान का प्रत्याख्यान किया था।

स्थूल मैथुन का प्रत्याख्यान किया था।

स्थूल परिग्रह का प्रत्याख्यान किया था।

अत: इस समय भी मैं उन्हीं के परिपार्श्व में जीवनपर्यंत सर्व प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूँ[१] यावत् सर्व परिग्रह का प्रत्याख्यान करता हूँ। मैं जीवनपर्यन्त सर्व अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का प्रत्याख्यान करता हूँ और जो यह शरीर मुझे इष्ट, कमनीय है यावत् इसे विविध प्रकार के रोग, आतंक तथा परीषह और उपसर्ग न छू पाएं, इस का भी अन्तिम श्वास-प्रश्वास तक व्युत्सर्ग करता हूँ।

४३. तए णं से दद्दुरे कालमासे कालं किच्चा जाव सोहम्मे कप्पे दद्दुरवडिंसए विमाणे उववायसभाए दद्दुरदेवत्ताए उववण्णे। एवं खलु गोयमा! दद्दुरेणं सा दिव्वा देविड्ढी लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया।।

४३. वह दर्दुर मृत्यु के समय मृत्यु को प्राप्त कर यावत् सौधर्म कल्प और दर्दुरावतंसक-विमान की उपपात सभा में दर्दुर-देव के रूप में उपपन्न हुआ।

गौतम! इस प्रकार दर्दुर को वह दिव्य देवर्द्धि उपलब्ध, प्राप्त और अभिसमन्वागत है।

४४. दद्दुरस्स णं भंते! देवस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। से णं दद्दुरे देवे महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ परिनिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणं अंतं करेहिइ।।

४४. भन्ते! दर्दुर-देव की स्थिति कितने काल की बतलायी गयी है?

गौतम! उसकी स्थिति चार पल्योपम बतलायी गयी है। वह दर्दुर देव महाविदेह वर्ष में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होगा तथा सब दु:खों का अन्त करेगा।

निक्खेव-पदं

४५. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं तेरसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

--त्ति बेमि।।

निक्षेप-पद

४५. जम्बू! इस प्रकार धर्म के आदिकर्ता यावत् सिद्धिगति को संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के तेरहवें अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

--ऐसा मैं कहता हूँ।

वृत्तिकृता समुद्धृता निगमनगाथा-

संपन्नगुणो वि जओ, सुसाहु-संसग्गवज्जिओ पायं।
पावइ गुणपरिहाणिं, दद्दुरजीवोव्व मणियारो ।।१।।

वृत्तिकार द्वारा समुद्धृत निगमन-गाथा

१. गुण-सम्पन्न व्यक्ति भी सुसाधुओं के ससंर्ग के अभाव में प्राय: गुण-परिहानि को प्राप्त होता है, जैसे--दर्दुर का जीव मणिकार।

अयवा--

तित्थयर-वंदणत्थं, चलिओ भावेण पावए सग्गं।
जह दद्दुरदेवेणं, पत्तं वेमाणिय-सुरत्तं ।।२।।

अथवा---

तीर्थंकर को वन्दना करने के लिए चलने वाला (शुभ) भावना के कारण स्वर्ग को पा लेता है, जैसे--दर्दुर देव ने वैमानिक सुर की अवस्था को प्राप्त किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

सूत्र-३

१. परिपूर्ण (केवलकप्पं)

अपना कार्य करने की सामर्थ्य से परिपूर्ण अथवा परिपूर्ण।[१]

प्रस्तुत सूत्र में यह बताया गया है कि दर्दुर देव परिपूर्ण जम्बू द्वीप को जानता, देखता है।

स्थानांगवृत्ति में केवलकल्प के तीन अर्थ किए गए हैं--

१. अपना कार्य करने की सामर्थ्य से परिपूर्ण।

२. केवल ज्ञान की भांति परिपूर्ण।

३. समय के (आगम के) सांकेतिक शब्द के अनुसार केवल कल्प अर्थात् परिपूर्ण।[२]

सूत्र-५

२. कूटागार (कूडागार)

विवरण हेतु द्रष्टव्य--भगवई खण्ड १. पृ. १९

सूत्र-२०

३. तालाचर कर्म (तालायरकम्मं)

तालाचर कर्म का अर्थ है नाट्य कर्म [३]

इसका अर्थ अभिनय भी मिलता है।[४]

सूत्र २२

४. व्याधितों, ग्लानों, रोगियों (वाहियाण-गिलाण-रोगियाण य)

व्याधि--शारीरिक रोग।

वृत्तिकार ने व्याधित का अर्थ विशिष्ट चैतसिक पीड़ायुक्त अर्थात् शोक आदि के कारण विक्षिप्तचित्त, मनोरोगी तथा वैकल्पिक अर्थ--विशिष्ट व्याधि--कुष्ठादि स्थिररोगों से पीड़ित किया है।[५]

ग्लान--अशक्त, जिनका हर्ष क्षीण हो चुका है।[६]

रोगी--ज्वर, कुष्ठ आदि रोगों से पीड़ित अथवा आशुघाती रोगों से पीड़ित।[७]

सूत्र-२३

५. आलंकारिकसभा (आलंकारिकसभा)

सौन्दर्य-प्रसाधन सभा (Beauty parlor)

वृत्तिकार ने इसका अर्थ नापित कर्मशाला किया है।[८]

सूत्र-३०

६. शिलिका (सिलिया)

शस्त्र को तीखा करने के लिए किरात (चिराईता), खदिर आदि तृण वृक्षों का प्रयोग किया जाता था। इसी प्रकार पत्थर का भी प्रयोग किया जाता था।[९]

सूत्र-३०

७. प्रस्तुत सूत्र में आयुर्वेद की पद्धति से की जाने वाली चिकित्सा का प्रतिपादन किया गया है। पंचकर्म की प्रक्रिया में स्नेहपान, वमन, विरेचन, स्वेदन, अनुवासन तथा निरुहवस्ति आदि करने का विधान है। उपलेपन आदि उस चिकित्सा के प्रयोग और साधन हैं--

१. उपलेपन--औषधियों का लेप।

२. उद्वर्तन--उबटन

३. स्नेहपान--स्निग्ध द्रव्यों--घृत आदि को पकाकर पिलाना।

४. पुटपाक--औषधि द्रव्य के कल्प को भेषज्य विधि से पकाकर औषध तैयार करने की विधि।

५. विरेचन--अधो विरेचक।

६. स्वेदन--रोग की शान्ति के लिए सात प्रकार के धान्य की पोटली बांधना।

७. अपदहन--रोग प्रतिकार के लिए रुग्ण अंग पर डाम लगाना।

८. अपस्नान--शरीर की चिकनाई दूर करने वाले द्रव्यों से मिश्रित जल से स्नान करना।

९. अनुवासन--चर्मयन्त्र के प्रयोग से अपानमार्ग द्वारा जठर में तैल आदि का प्रवेशन।

१०. वस्तिकर्म--चर्म वेष्टन प्रयोग से सिर आदि में स्नेहद्रव्य को भरना अथवा गुदा में बत्ती आदि लगाना।

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१८७--केवल: परिपूर्ण: स चासौ कल्पश्च स्वकार्यकरण-समर्थ: इति केवलकल्प:, केवल एव वा कल्प: केवलकल्प:।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र-५७--केवल:-- परिपूर्ण: स चासौ स्वकार्यसामर्थ्यात् कल्पश्च केवलज्ञानमिव वा परिपूर्णतयेति केवलकल्प:, अथवा कल्प: समयभाषया परिपूर्ण:।

३. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१८७-तालाचरकम्मं ति प्रेक्षणककर्मविशेष:।

४. आप्टे

५. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१८७--वाहियाणं ति व्याधितानां विशिष्टचित्तपीडावतां शोकादि-विप्लुतचित्तानामित्यर्थ: अथवा--विशिष्टा आधिर्यस्मात् स व्याधि: स्थिररोग: कुष्ठादिस्तद्वताम्।

६. वही--ग्लानानां--क्षीणहर्षाणामशक्तानामित्यर्थ:।

७. वही--रोगितानां-सञ्जातज्वरकुष्ठादिरोगाणामाशुघातिरोगाणां वा।

८. वही, पत्र-१८८--अलंकारियसहं ति--नापितकर्मशाला।

९. वही, पत्र-१९०--शिलिका:-किराततिक्तादितृणरूपा: प्रतत्तपाषाणरूपा वा शस्त्रतीक्ष्णीकरणार्था:।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. निरूह--यह अनुवासन का ही एक प्रकार है। मात्र द्रव्यकृत भेद है।

१२. शिरावेधन--नाड़ी वेधन-विस्तार हेतु द्रष्टव्य सूयगडो १/९/२२ का टिप्पण।

१३. तक्षण--क्षुरप्र आदि से त्वचा को पतला करना।

१४. प्रतक्षण--त्वचा को कुछ विदीर्ण करना। इससे ज्ञात होता है उस समय शल्य चिकित्सा भी प्रचलित थी।

१५. शिरोवस्ति--सिर पर चर्ममय कोश बांधकर उसे संस्कारित तेल से भरना।

१६. तर्पणा--स्नेह द्रव्य विशेष से उपबृंहण बल आदि का संवर्धन करना।[1]

सूत्र-३२

८. आयुष्य का बन्धन कर (निबद्धाउए)

आयुष्य कर्म की प्रकृति, स्थिति और अनुभाग का बन्ध।[2]

बंधपएसिए-आयुष्यकर्म संबन्धी प्रदेश बन्ध।[3]

सूत्र-४०

९. भंभासार (भंभसारे)

भंभासार श्रेणिक का नाम है। विस्तार हेतु द्रष्टव्य--उत्तरज्झयणाणि २, परिशिष्ट ४, पृ.५६-५७

सूत्र-४१

१०. भीतर तक आहत (अंतनिग्घाइए)

इस पद में अन्त शब्द को अन्तस् मानकर उसका अनुवाद किया गया है अतः इसका अर्थ है भीतर तक। इसका आन्त्र अर्थ भी किया जा सकता है--आन्त्र तक आहत हो गया।[4]

सूत्र-४२

११. सर्व प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूं (सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि)

प्रस्तुत सूत्र में मेंढ़क अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में सब प्रकार के प्राणातिपात आदि का प्रत्याख्यान करता है। यहां सर्व शब्द का ग्रहण हुआ है, फिर भी यह सर्वविरति का बोधक नहीं है। क्योंकि तिर्यंच गति में देशविरति ही होती है।[5]

दर्दुर ने "सर्व प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूँ"-ऐसा संकल्प किया--यह विमर्शनीय है। विमर्श का हेतु एक सिद्धान्त है-तिर्यक् जीवों के सर्वविरति नहीं होती।

वृत्तिकार ने इस समस्या पर विमर्श किया है। उन्होंने दो गाथाएं उद्धृत कर इस समस्या को सुलझाने का प्रयास किया है। उद्धृत गाथा का प्रतिपादन यह है--तिर्यंचों में महाव्रत का सद्भाव होने पर भी उनमें चारित्र का परिणाम नहीं होता।[6]

---

१. (क) ज्ञातावृत्ति, पत्र-१९०
 (ख) आयुर्वेदीय शब्दकोष

२. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१९०--निबद्धाउए त्ति-प्रकृतिस्थित्यनुभागबन्धापेक्षया।

३. वही--बंधपएसिए त्ति-प्रदेशबन्धापेक्षयेति।

४. वही--'अंतनिग्घाइए त्ति-निर्घातितान्तः।

५. भगवई ६/६५, ७/५४-५६

६. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१९०--सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि' इत्यनेन यद्यपि सर्वग्रहणं तथापि तिरश्चां देशविरतिरेव, इहार्थे गाथे--

तिरियाणं चारित्तं निवारियं अह य तो पुणो तेसिं।
सुव्वइ बहुयाणंपि हु महव्वयारोहणं समए ।।१।।
न महव्वयं सब्भावेवि चरणपरिणामसम्भवो तेसिं।
न बहुगुणाणंपि जओ केवलसंभूइ परिणामो ।।२।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

प्रस्तुत अध्ययन में तेतलीपुत्र का आख्यान वर्णित है। इसलिए इसका यह नाम रखा है। इस अध्ययन का प्रतिपाद्य है--दु:ख भी वैराग्य का एक हेतु बनता है। जीवन में दु:ख या प्रतिकूलता आने पर व्यक्ति को धर्म के मर्म को समझने का अवसर मिलता है। धर्म का हार्द समझ में आने पर अहंकार और ममकार का विलय हो जाता है। दु:ख सुख में बदल जाता है और आनंद की अनुभूति होने लगती है।

तेतलीपुत्र का आख्यान एक रोमांचकारी आख्यान है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में प्रकर्ष एवं अपकर्ष की स्थितियां आती हैं। अनुकूलता और प्रतिकूलता की परिस्थिति में, आरोह-अवरोह की स्थिति में व्यक्ति की क्या मनोदशा होती है? उसे कैसी अनुभूति होती है? किस प्रकार प्रियता अप्रियता में बदल जाती है और उस अवस्था में व्यक्ति का व्यवहार कैसा हो जाता है। प्रस्तुत अध्ययन में इन सब प्रश्नों का बहुत ही मनोवैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण किया गया है।

व्यक्ति के भीतर जब क्रूरता और महत्त्वाकांक्षा जाग्रत होती है तब मानवीय संवेदना और करुणा का स्रोत सूख जाता है। राजा कनकरथ राज्यासक्ति में आसक्त होकर अपने पुत्रों को पैदा होते ही विकलांग कर देता। पदलिप्सा की आकांक्षा व्यक्ति को कितनी क्रूर बना देती है। यह अध्ययन इसका हृदयविदारक निदर्शन है।

गुणीजनों की संगत से व्यक्ति को सही मार्गदर्शन मिल जाता है। पतन उत्थान में बदल जाता है और जीवन क्रम उत्कर्ष को प्राप्त करता है। तेतलीपुर में सुव्रता आर्या का आगमन पोट्टिला के लिए वरदान बन गया और उसके जीवन में एक नया मोड़ आ गया। पोट्टिला का यह वृतान्त अन्त:चेतना को झकझोरने वाला है।

देवता के द्वारा तेतलीपुत्र को संबोध देना। संबोध के समय अप्रिय वातावरण का निर्माण करना व उस समय की मनोदशा का चित्रण भी बड़ा रोचक और उत्सुकता पैदा करने वाला है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चोद्दसमं अज्झयणं : चौदहवां अध्ययन

तेयली : तेतली

उक्खेव-पदं

१. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं तेरसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, चोद्दसमस्स णं भंते! नायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

२. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं तेयलिपुरं नाम नयरं। पमयवणे उज्जाणे। कणगरहे राया।।

३. तस्स णं कणगरहस्स पउमावई देवी।।

४. तस्स णं कणगरहस्स तेयलिपुत्ते नाम अमच्चे--'साम-दंड-भेय-उवप्पयाण-नीति-सुपउत्त-नयविहण्णू विहरइ।।

५. तत्थ णं तेयलिपुरे कलादे नामं मूसियारदारए होत्था--अड्ढे जाव अपरिभूए।।

६. तस्स णं भद्दा नामं भारिया।।

७. तस्स णं कलायस्स मूसियारदारगस्स धूया भद्दाए अत्तया पोट्टिला नामं दारिया होत्था--रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा।।

पोट्टिलाए कीडा-पदं

८. तए णं सा पोट्टिला दारिया अण्णया कयाइ ण्हाया सव्वालंकार-विभूसिया चेडिया-चक्कवाल-संपरिवुडा-उप्पिं पासायवरगया आगासतलगंसि कणगतिंदूसएणं कीलमाणी-कीलमाणी विहरइ।।

तेयलिपुत्तस्स आसत्ति-पदं

९. इमं च णं तेयलिपुत्ते अमच्चे ण्हाए आसखंधवरगए महया-भड-चडगर-आसवाहणियाए निज्जायमाणे कलायस्स मूसियारदारगस्स गिहस्स अदूरसामंतेणं वीईवयइ।।

उत्क्षेप पद

१. भन्ते! यदि धर्म के आदिकर्ता, सिद्धि गति संप्राप्त यावत् श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के तेरहवें अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है, तो उन्होंने ज्ञाता के चौदहवें अध्ययन का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

२. जम्बू ! उस काल और उस समय तेतलीपुर नाम का नगर, प्रमदवन उद्यान और कनकरथ राजा था।

३. उस कनकरथ के पद्मावती देवी थी।

४. उस कनकरथ के तेतलीपुत्र नाम का अमात्य था। वह साम, दण्ड, भेद और उपप्रदान आदि नीतियों तथा सुप्रयुक्त नयविधियों का ज्ञाता था।

५. तेतलीपुर में कलाद नाम का स्वर्णकार-पुत्र था। वह आढ्य यावत् अपराजित था।

६. उसके भद्रा नाम की भार्या थी।

७. उस स्वर्णकार-पुत्र कलाद की पुत्री, भद्रा की आत्मजा पोट्टिला नाम की बालिका थी। वह रूप , यौवन और लावण्य से उत्कृष्ट तथा उत्कृष्ट शरीर वाली थी।

पोट्टिला का क्रीड़ा-पद

८. किसी समय वह पोट्टिला बालिका स्नान कर, सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित और दासियों के समूह से परिवृत हो प्रवर प्रासाद के ऊपर खुले आकाश में सोने की गेंद से क्रीड़ा करती हुई विहार कर रही थी।

तेतलीपुत्र का आसक्ति-पद

९. अमात्य तेतलीपुत्र स्नान कर, प्रवर अश्व-स्कन्ध पर आरूढ़ हो, महान सुभटों की विभिन्न टुकड़ियों के साथ, अश्व वाहिनिका (क्रीड़ा) के लिए निर्याण करता हुआ स्वर्णकार-पुत्र कलाद के घर के आसपास से होकर गुजरा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०. तए णं से तेयलिपुत्ते अमच्चे मूसियारदारगस्स गिहस्स अदूरसामंतेणं वीईवयमाणे-वीईवयमाणे पोट्टिलं दारियं उप्पिं आगासतलगंसि कणग-तिंदूसएणं कीलमाणिं पासइ, पासित्ता पोट्टिलाए दारियाए रूवे य जोव्वणे य लावण्णे य अज्झोववण्णे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--एस णं देवाणुप्पिया! कस्स दारिया किं नामधेज्जा वा?

१०. स्वर्णकार-पुत्र के घर के आसपास से गुजरते-गुजरते अमात्य तेतलीपुत्र ने ऊपर खुले में सोने की गेंद से क्रीड़ा करती हुई पोट्टिला बालिका को देखा। देखकर पोट्टिला बालिका के रूप, यौवन और लावण्य पर अध्युपपन्न होकर उसने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार पूछा--देवानुप्रियो! वह बालिका किसकी है? इसका नाम क्या है?

११. तए णं कोडुंबियपुरिसा तेयलिपुत्तं एवं वयासी--एस णं सामी! लायस्स मूसियारदारयस्स धूया भद्दाए अत्तया पोट्टिला नामं दारिया--रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठ-सरीरा।।

११. वे कौटुम्बिक पुरुष तेतलीपुत्र से इस प्रकार बोले--स्वामिन्! यह स्वर्णकार पुत्र कलाद की पुत्री और भद्रा की आत्मजा पोट्टिला नाम की बालिका है। वह रूप, यौवन और लावण्य से उत्कृष्ट तथा उत्कृष्ट-शरीर वाली है।

पोट्टिलाए वरण-पदं

पोट्टिला का वरण-पद

१२. तए णं से तेयलिपुत्ते आसवाहणियाओ पडिणियत्ते समाणे अब्भिंतरठाणिज्जे पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता, एवं वयासी--गच्छह, णं तुब्भे देवाणुप्पिया! कलायस्स मूसियारदारयस्स धूयं भद्दाए अत्तयं पोट्टिलं दारियं मम भारियत्ताए वरेह।।

१२. तेतलीपुत्र ने अश्व-वाहिनिका से लौटकर अपने आभ्यन्तर-स्थानीय पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम जाओ और स्वर्णकार पुत्र कलाद की पुत्री और भद्रा की आत्मजा पोट्टिला नाम की बालिका का मेरी भार्या के रूप में वरण करो।

१३. तए णं ते अब्भिंतरठाणिज्जा पुरिसा तेयलिणा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा करयल परिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु "एवं सामी"! तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता तेयलिस्स अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव कलायस्स मूसियारदारयस्स गिहे तेणेव उवागया।।

१३. तेतलीपुत्र के ऐसा कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुए आभ्यन्तर-स्थानीय पुरुषों ने सटे हुए दस नखों वाली सिर पर प्रदक्षिणा करती अञ्जलि को मस्तक पर टिकाकर 'ऐसा ही होगा स्वामिन्!' यह कहकर उस आज्ञा-वचन को विनयपूर्वक स्वीकार किया। स्वीकार कर तेतलीपुत्र के पास से उठकर गए। जाकर जहां स्वर्णकार-पुत्र कलाद का घर था वहां आए।

१४. तए णं ते कलाए मूसियारदारए ते पुरिसे एज्जमाणे पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता आसणेणं उवणिमंतेइ, उवणिमंतेत्ता आसत्थे वीसत्थे सुहासणवरगए एवं वयासी--संदिसंतु णं देवाणुप्पिया! किमागमणप- ओयणं?

१४. स्वर्णकार-पुत्र कलाद ने उन पुरुषों को आते हुए देखा। उन्हें देखकर वह हृष्ट-तुष्ट होकर आसन से उठा। उठकर सात-आठ पद सामने गया। जाकर उन्हें आसन से उपनिमन्त्रित किया। उपनिमन्त्रित कर आश्वस्त-विश्वस्त हो प्रवर सुखासन पर बैठ इस प्रकार कहा--कहें देवानुप्रियो! किस प्रयोजन से आगमन हुआ है?

१५. तए णं ते अब्भिंतरठाणिज्जा पुरिसा कलायं मूसियारदारयं एवं वयासी--अम्हे णं देवाणुप्पिया! तव धूयं भद्दाए अत्तयं पोट्टिलं दारियं तेयलिपुत्तस्स भारियत्ताए वरेमो। तं जइ णं जाणसि देवाणुप्पिया! जुत्तं वा पत्तं वा सलाहणिज्जं वा सरिसो वा संजोगो वा दिज्जउ णं पोट्टिला दारिया तेयलिपुत्तस्स। तो भण देवाणुप्पिया! किं दलामो सुंकं।।

१५. उन आभ्यन्तर स्थानीय-पुरुषों ने स्वर्णकार-पुत्र कलाद से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! हम तुम्हारी पुत्री, भद्रा की आत्मजा पोट्टिला बालिका को तेतलीपुत्र की भार्या के रूप में वरण करना चाहते हैं। अतः देवानुप्रिय! यदि इस (संबंध) को युक्त, पात्र, सराहनीय और समान संयोग के रूप में जानो तो बालिका पोट्टिला को तेतलीपुत्र के लिए दे दो। देवानुप्रिय! कहो, हम क्या शुल्क दें?

१६. तए णं कलाए मूसियारदारए ते अब्भिंतरठाणिज्जे पुरिसे एवं वयासी--एस चेव णं देवाणुप्पिया! मम सुंके जण्णं तेयलिपुत्ते मम दारियानिमित्तेणं अणुग्गहं करेइ। ते अब्भिंतरठाणिज्जे पुरिसे

१६. स्वर्णकारपुत्र कलाद ने उन आभ्यन्तर-स्थानीय पुरुषों से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! यही मेरा शुल्क है कि तेतलीपुत्र मेरी बालिका के निमित्त से मुझ पर अनुग्रह कर रहा है। उसने उन आभ्यन्तर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विपुलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ ।।

स्थानीय पुरुषों को विपुल अशन, पान खाद्य और स्वाद्य से तथा पुष्प, वस्त्र, गन्ध-चूर्ण, माला और अलंकारों से सत्कृत किया, सम्मानित किया। सत्कृत सम्मानित कर प्रतिविसर्जित कर दिया।

१७. (तए णं ते अब्भिंतरठाणिज्जा पुरिसा?) कलायस्स मूसियारदारयस्स गिहाओ पडिनियत्तंति, जेणेव तेयलिपुत्ते अमच्चे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तेयलिपुत्तं अमच्चं एयमट्ठं निवेइंति ।।

१७. वे (आभ्यन्तर-स्थानीय पुरुष?) स्वर्णकार पुत्र कलाद के घर से लौटे। लौटकर जहां अमात्य तेतलीपुत्र था, वहां आए। वहां आकर अमात्य तेतलीपुत्र को यह अर्थ निवेदित किया।

पोट्टिलाए विवाह-पदं

१८. तए णं कलाए मूसियारदारए अण्णया कयाइं सोहणंसि तिहि-करण-नक्खत्त-मुहुत्तंसि पोट्टिलं दारियं ण्हायं सव्वालंकार-विभूसियं सीयं दुरुहेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेणं सद्धिं संपरिवुडे साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सव्विड्ढीए तेयलिपुरं नयरं मज्झंमज्झेणं जेणेव तेयलिस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, पोट्टिलं दारियं तेयलिपुत्तस्स सयमेव भारियत्ताए दलयइ ।।

पोट्टिला का विवाह-पद

१८. किसी समय वह स्वर्णकार-पुत्र कलाद शोभन तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्त्त में बालिका पोट्टिला को स्नान करा, सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित कर, शिविका पर चढ़ा अपने मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी और परिजनों के साथ उनसे परिवृत हो अपने घर से निकला। निकल कर सम्पूर्ण ऋद्धि के साथ तेतलीपुर नगर के बीचोंबीच होता हुआ जहां तेतली का घर था वहां आया। आकर पोट्टिला बालिका को तेतलीपुत्र की भार्या के रूप में स्वयं ही प्रदान कर दिया।

१९. तए णं तेयलिपुत्ते पोट्टिलं दारियं भारियत्ताए उवणीयं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे पोट्टिलाए सद्धिं पट्टयं दुरुहइ, दुरुहित्ता सेयापीएहिं कलसेहिं अप्पाणं मज्जावेइ, मज्जावेत्ता अग्गिहोमं कारेइ, कारेत्ता पाणिग्गहणं करेइ, करेत्ता पोट्टिलाए भारियाए मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ ।।

१९. तेतलीपुत्र ने भार्या के रूप में उपनीत बालिका पोट्टिला को देखा। देखकर हृष्ट-तुष्ट हो, पोट्टिला के साथ पट्ट पर आरोहण किया। आरोहण कर रजत और स्वर्णमय कलशों से स्वयं का मज्जन करवाया। मज्जन करवा कर अग्नि-होम करवाया। अग्नि-होम करवा कर पाणिग्रहण किया। पाणिग्रहण कर पोट्टिला भार्या के मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनों को विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य तथा पुष्प, वस्त्र, गन्धचूर्ण, माला और अलंकारों से सत्कृत किया, सम्मानित किया। सत्कृत-सम्मानित कर उन्हें प्रतिविसर्जित किया।

२०. तए णं से तेयलिपुत्ते पोट्टिलाए भारियाए अणुरत्ते अविरत्ते उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ ।।

२०. वह तेतलीपुत्र पोट्टिला भार्या में अनुरक्त और अविरक्त रहता हुआ, उसके साथ प्रधान मनुष्य-सम्बन्धी भोगार्ह भोगों को भोगता हुआ विहार करने लगा।

कणगरहस्स रज्जासत्ति-पदं

२१. तए णं से कणगरहे राया रज्जे य रट्ठे य बले य वाहणे य कोसे य कोट्ठागारे य 'पुरे य' अंतेउरे य मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववण्णे जाए, जाए पुत्ते वियंगेइ--अप्पेगइयाणं हत्थंगुलियाओ छिंदइ, अप्पेगइयाणं हत्थंगुट्ठए छिंदइ, अप्पेगइयाणं पायंगुलियाओ छिंदइ, अप्पेगइयाणं पायंगुट्ठए छिंदइ, अप्पेगइयाणं कण्णसक्कुलीओ पायंगुट्ठए छिंदइ, अप्पेगइयाणं नासापुडाइं फालेइ, अप्पेगइयाणं अंगोवंगाइं वियत्तेइ ।।

कनकरथ का राज्यासक्ति-पद

२१. राजा कनकरथ राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, कोष कोष्ठागार, पुर और अन्तःपुर में मूर्च्छित, ग्रथित, गृद्ध और अध्युपपन्न हो गया। वह अपने पुत्रों को पैदा होते ही विकलांग बना देता। वह किन्हीं के हाथों की अंगुलियां काट देता। किन्हीं के हाथों के अंगूठे काट देता। किन्हीं के पावों की अंगुलियां काट देता। किन्हीं के पावों के अंगूठे काट देता। किन्हीं की कर्णपाली काट देता। किन्हीं के नासापुट चीर देता और किन्हीं के अंगोपांग विकृत कर देता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पउमावईए अमच्चेण मंतणा-पदं

२२. तए णं तीसे पउमावईए देवीए अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकाल-समयंसि अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--एवं खलु कणगरहे राया रज्जे य रट्ठे य बले य वाहणे य कोसे य कोट्ठागारे य पुरे य अंतेउरे य मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववण्णे जाए, जाए पुत्ते वियंगेइ--अप्पेगइयाणं हत्थंगुलियाओ छिंदइ, अप्पेगइयाणं हत्थंगुट्ठए छिंदइ, अप्पेगइयाणं पायंगुलियाओ छिंदइ, अप्पेगइयाणं पायंगुट्ठए छिंदइ, अप्पेगइयाणं कण्णसक्कुलीओ छिंदइ, अप्पेगइयाणं नासापुडाइं फालेइ, अप्पेगइयाणं अंगमंगाइं वियत्तेइ। तं जइ णं अहं दारयं पयायामि, सेयं खलु मम तं दारगं कणगरहस्स रहस्सिययं चेव सारक्खमाणीए संगोवेमाणीए विहरित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता तेयलिपुत्तं अमच्चं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! कणगरहे राया रज्जे य रट्ठे य बले य वाहणे य कोसे य कोट्ठागारे य पुरे य अंतेउरे य मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववण्णे जाए, जाए पुत्ते वियंगेइ--अप्पेगइयाणं हत्थंगुलियाओ छिंदइ, अप्पेगइयाणं हत्थंगुट्ठए छिंदइ, अप्पेगइयाणं पायंगुलियाओ छिंदइ, अप्पेगइयाणं पायंगुट्ठए छिंदइ, अप्पेगइयाणं कण्णसक्कुलीओ छिंदइ, अप्पेगइयाणं नासापुडाइं फालेइ, अप्पेगइयाणं अंगोवंगाइं वियत्तेइ। तं जइ णं अहं देवाणुप्पिया! दारगं पयायामि, तए णं तुमं कणगरहस्स रहस्सिययं चेव अणुपुव्वेणं सारक्खमाणे संगोवेमाणे संवड्ढेहि। तए णं से दारए उम्मुक्कबालभावे विण्णय-परिणयमेत्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते 'तव मम य' भिक्खाभायणे भविस्सइ।।

पद्मावती का अमात्य के साथ मन्त्रणा-पद

२२. किसी समय पद्मावती के मन में मध्यरात्रि के समय इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--इस प्रकार राजा कनकरथ राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, कोष, कोष्ठागार, पुर और अन्तःपुर में मूर्च्छित, ग्रथित, गृद्ध और अध्युपपन्न हो रहा है। वह अपने पुत्रों को पैदा होते ही विकलांग बना देता है। वह किन्हीं के हाथों की अंगुलियां काट देता है। किन्हीं के हाथों के अंगूठे काट देता। किन्हीं के पांवों की अंगुलियां काट देता। किन्हीं के पावों के अंगूठे काट देता है। किन्हीं की कर्णपाली काट देता है, किन्हीं के नासापुट चीर देता है और किन्हीं के अंगोपांग विकृत कर देता है।

अतः यदि मैं बालक का प्रसव करूं तो मेरे लिए उचित है मैं मेरे उस बालक को कनकरथ से गुप्त रखकर ही उसका संरक्षण, संगोपन करती हुई विहार करूं। उसने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर अमात्य तेतलीपुत्र को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! इस प्रकार राजा कनकरथ राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, कोष, कोष्ठागार, पुर और अन्तःपुर में मूर्च्छित, ग्रथित, गृद्ध और अध्युपपन्न हो रहा है। वह अपने पुत्रों को पैदा होते ही विकलांग बना देता है, वह किन्हीं के हाथों की अंगुलियां काट देता है। किन्हीं के हाथों के अंगूठे काट देता है। किन्हीं के पावों की अंगुलियां काट देता है, किन्हीं के पावों के अंगूठे काट देता है। किन्हीं की कर्णपाली काट देता है। किन्हीं के नासापुट चीर देता है और किन्हीं के अंगोपांग विकृत कर देता है।

अतः देवानुप्रिय! यदि मैं बालक का प्रसव करूं तो, तुम राजा कनकरथ से गुप्त रख कर ही क्रमशः संरक्षण, संगोपन करते हुए उसका संवर्धन करना। वह बच्चा शैशव को लांघकर विज्ञ और कला पारगामी बन यौवन को प्राप्त कर तेरे और मेरे--दोनों के लिए भिक्षापात्र (के समान) होगा।

२३. तए णं से तेयलिपुत्ते अमच्चे पउमावईए देवीए एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता पडिगए।।

२३. अमात्य तेतलीपुत्र ने पद्मावती देवी के इस अर्थ को स्वीकार किया। स्वीकार कर वह चला गया।

अवच्च-परिवत्तण-पदं

२४. तए णं पउमावई देवी पोट्टिला य अमच्ची सममेव गब्भं गेण्हंति, सममेव परिवहंति।।

२५. तए णं सा पउमावई देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं जाव पियदंसणं सुरूवं दारगं पयाया। जं रयणिं च णं पउमावई देवी दारयं पयाया तं रयणिं च णं पोट्टिला वि अमच्ची नवण्हं मासाणं विणिहायमावन्नं दारियं पयाया।।

२६. तए णं सा पउमावई देवी अम्मधाइं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुमं अम्मो! तेयलिपुत्तं रहस्सिययं चेव सद्दावेहि।।

अपत्य-परिवर्तन पद

२४. देवी पद्मावती और अमात्य-पत्नी पोट्टिला दोनों ने एक साथ गर्भ धारण किया और एक साथ ही गर्भ का परिवहन करने लगी।

२५. पूरे नौ मास पश्चात् यावत् पद्मावती देवी ने प्रियदर्शन और सुरूप बालक को जन्म दिया। जिस रात्रि में पद्मावती देवी ने पुत्र को जन्म दिया उसी रात्रि में अमात्य-पत्नी पोट्टिला ने नौ मास पूर्ण होने पर एक मृत बालिका को जन्म दिया।

२६. पद्मावती देवी ने धायमाता को बुलाया। उसे बुलाकर इस प्रकार कहा--अम्मा! तुम जाओ और गुप्त रूप से तेतलीपुत्र को बुलाओ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७. तए णं सा अम्मधाई तहत्ति पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता अंतेउरस्स अवदारेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव तेयलिस्स गिहे जेणेव तेयलिपुत्तं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! पउमावई देवी सद्दावेइ।।

२७. तब धायमाता ने 'ऐसा ही होगा'--कहकर स्वीकार किया। स्वीकार कर अन्त:पुर के पार्श्वद्वार से निकली। निकलकर जहां तेतली का घर था, जहां तेतलीपुत्र था, वहां आयी। वहां आकर सिर पर प्रदक्षिणा करती अञ्जलि को मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! देवी पद्मावती बुला रही है।

२८. तए णं तेयलिपुत्ते अम्मधाईए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा हट्ठतुट्ठे अम्मधाईए सद्धिं साओ गिहाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता अंतेउरस्स अवदारेणं रहस्सिययं चेव अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव पउमावई देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी--संदिसंतु णं देवाणुप्पिया! जं मए कायव्वं।।

२८. धायमाता से यह अर्थ सुनकर हृष्ट-तुष्ट हुआ तेतलीपुत्र धायमाता के साथ अपने घर से निकला। निकलकर अन्त:पुर के पार्श्वद्वार से गुप्त रूप से भीतर आया। भीतर आकर जहां पद्मावती देवी थी वहां आया। वहां आकर सिर पर प्रदक्षिणा करती अञ्जलि को मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार कहा--कहें, देवानुप्रिये! जो मुझे करना है।

२९. तए णं पउमावई देवी तेयलिपुत्तं एवं वयासी--एवं खलु कणगरहे राया जाव पुत्ते वियंगेइ। अहं च णं देवाणुप्पिया! दारगं पयाया। तं तुमं णं देवाणुप्पिया! एयं दारगं गेण्हाहि जाव तव मम य भिक्खाभायणे भविस्सइ त्ति कट्टु तेयलिपुत्तस्स हत्थे दलयइ।।

२९. देवी पद्मावती ने तेतलीपुत्र से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! इस प्रकार राजा कनकरथ यावत् पुत्रों को विकलांग बना देता है। देवानुप्रिय! मैंने बालक को जन्म दिया है। अत: देवानुप्रिय! तुम इस बालक को लो, यावत् यह तेरे और मेरे--दोनों के लिए भिक्षापात्र होगा--यह कहकर उसने बालक को तेतलीपुत्र के हाथ में दिया।

३०. तए णं तेयलिपुत्ते पउमावईए हत्थाओ दारगं गेण्हइ, उत्तरिज्जेणं पिहेइ, अंतेउरस्स रहस्सिययं अवदारेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव सए गिहे जेणेव पोट्टिला भारिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोट्टिलं एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिए! कणगरहे राया जाव पुत्ते वियंगेइ। अयं च णं दारए कणगरहस्स पुत्ते पउमावईए अत्तए। तन्नं तुमं देवाणुप्पिया! इमं दारगं कणगरहस्स रहस्सिययं चेव अणुपुव्वेणं सारक्खाहि य संगोवेहि य संवड्ढेहि य। तए णं एस दारए उम्मुक्कबालभावे तव य मम य पउमावईए य आहारे भविस्सइ त्ति कट्टु पोट्टिलाए पासे निक्खिवइ, निक्खिवित्ता पोट्टिलाए पासाओ तं विणिहायमावण्णियं दारियं गेण्हइ, गेण्हित्ता उत्तरिज्जेणं पिहेइ, पिहेत्ता अंतेउरस्स अवदारेणं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव पउमावई देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पउमावईए देवीए पासे ठावेइ जाव पडिनिग्गए।।

३०. तेतलीपुत्र ने पद्मावती के हाथ से बालक को लिया। उसे उत्तरीय वस्त्र से ढका। गुप्त रूप से अन्त:पुर के पार्श्वद्वार से निकला। निकलकर जहां उसका घर था, जहां पोट्टिला आर्या थी, वहां आया। वहां आकर पोट्टिला से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिये! राजा कनकरथ यावत् पुत्रों को विकलांग बनाता है। यह बालक राजा कनकरथ का पुत्र और देवी पद्मावती का आत्मज है। अत: देवानुप्रिये! तूं राजा कनकरथ से गुप्त रखकर ही इस बालक का क्रमश: संरक्षण, संगोपन करती हुई संवर्धन कर।

यह बालक शैशव को लांघकर तेरा-मेरा और पद्मावती देवी का आधार बनेगा--यह कहकर बालक को पोट्टिला के पास रखा। रखकर पोट्टिला के पास से उस मृत बालिका को लिया। लेकर उत्तरीय वस्त्र से ढंका। ढककर अन्त:पुर के पार्श्वद्वार से भीतर प्रवेश किया। प्रवेश कर जहां प्रद्मावती देवी थी, वहां आया। वहां आकर उस बालिका को देवी पद्मावती के पास रखा यावत् वापस चला गया।

दारियाए मयकिच्च-पदं

३१. तए णं तीसे पउमावईए देवीए अंगपडियारियाओ पउमावइं देविं विणिहायमावण्णियं च दारियं पयायं पासंति, पासित्ता जेणेव कणगरहे राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी--एवं खलु सामी! पउमावई देवी मएल्लियं दारियं पयाया।।

बालिका का मृतकार्य-पद

३१. जब देवी पद्मावती की अंग-परिचारिकाओं ने देखा, देवी पद्मावती ने मृत-बालिका को जन्म दिया है तो वे जहां राजा कनकरथ था, वहां आयीं। आकर सिर पर प्रदक्षिणा करती अञ्जलि को मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार बोली--स्वामिन्! देवी पद्मावती ने मृत-बालिका को जन्म दिया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२. तए णं कणगरहे राया तीसे मएल्लियाए दारियाए नीहरणं करेइ, बहूइं लोगियाइं मयकिच्चाइं करेइ, करेत्ता कालेणं विगयसोए जाए।।

३२. राजा कनकरथ ने उस मृत-बालिका का निर्हरण किया। नाना प्रकार के लौकिक मृतक-कार्य सम्पन्न किए और सम्पन्न कर यथासमय वह शोक-मुक्त हो गया है।

अमच्चपुत्तस्स उस्सव-पदं

अमात्य पुत्र का उत्सव-पद

३३. तए णं से तेयलिपुत्ते कल्लं कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! चारगसोहणं करेह जाव ठिइपडियं दसदेवसियं करेह, कारवेह य, एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।।

३३. तेतलीपुत्र ने प्रभातकाल में कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! शीघ्र ही चारक-शोधन (बन्दी-जनों को मुक्त) करो यावत् कुल परम्परा के अनुसार दस दैवसिक उत्सव करो और करवाओ। इस आज्ञा को पुन: मुझे प्रत्यर्पित करो।

३४. तेवि तहेव करेंति, तहेव पच्चप्पिणंति।।

३४. उन्होंने भी वैसे ही किया, वैसे ही आज्ञा को प्रत्यर्पित किया।

३५. जम्हा णं अम्हं एस दारए कणगरहस्स रज्जे जाए तं होउ णं दारए नामेणं कणगज्झए जाव अलंभोगसमत्थे जाए।।

३५. हमारा यह बालक राजा कनकरथ के राज्य में जन्मा है अत: इसका नाम 'कनकध्वज' हो यावत् वह कनकध्वज पूर्ण भोग समर्थ हुआ।

पोट्टिलाए अप्पियत्त-पदं

पोट्टिला का अप्रियता-पद

३६. तए णं सा पोट्टिला अण्णया कयाइ तेयलिपुत्तस्स अणिट्ठा अकंता अप्पिया अमणुण्णा अमणामा जाया यावि होत्था--नेच्छइ णं तेयलिपुत्ते पोट्टिलाए नामगोयमवि सवणयाए, किं पुण दंसणं वा परिभोगं वा?

३६. वह पोट्टिला किसी समय तेतलीपुत्र को अनिष्ट, अकमनीय, अप्रिय, अमनोज्ञ और अमनोगत लगने लगी। तेतलीपुत्र पोट्टिला का नाम-गोत्र भी सुनना नहीं चाहता दर्शन और परिभोग की तो बात ही कहां?

३७. तए णं तीसे पोट्टिलाए अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--एवं खलु अहं तेयलिस्स पुव्विं इट्ठा कंता पिया मणुण्णा मणामा आसि, इयाणिं अणिट्ठा अकंता अप्पिया अमणुण्णा अमणामा जाया। नेच्छइ णं तेयलिपुत्ते मम नामगोयमवि सवणयाए, किं पुण दंसणं वा परिभोगं वा? (त्ति कट्टु?) ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया झियायइ।।

३७. एक बार मध्यरात्रि के समय पोट्टिला के मन में इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--मैं तेतलीपुत्र को पहले इष्ट, कमनीय, प्रिय, मनोज्ञ, और मनोगत थी। अब अनिष्ट, अकमनीय, अप्रिय, अमनोज्ञ और अमनोगत हो गई हूं। तेतलीपुत्र मेरा नाम-गोत्र भी सुनना नहीं चाहता, दर्शन और परिभोग की तो बात ही कहां? (इस प्रकार?) वह भग्न हृदय हो हथेली पर मुंह टिकाए आर्त्त ध्यान में डूबी हुई चिन्तामग्न हो रही थी।

पोट्टिलाए दाणसाला-पदं

पोट्टिला का दानशाला-पद

३८. तए णं तेयलिपुत्ते पोट्टिलं ओहयमणसंकप्पं करतलपल्हत्थमुहिं अट्टज्झाणोवगयं झियायमाणिं पासइ, पासित्ता एवं वयासी--मा णं तुमं देवाणुप्पिए! ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया झियाहि। तुमं णं मम महाणसंसि विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेहि, उवक्खडावेत्ता बहूणं समण-माहण-अतिहि-किवण- वणीमगाणं देयमाणी य दवावेमाणी य विहराहि।।

३८. तेतलीपुत्र ने पोट्टिला को भग्न हृदय हो हथेली पर मुंह टिकाए आर्तध्यान में डूबी हुई चिन्तामग्न देखा। देखकर इस प्रकार बोला--देवानुप्रिये! तुम भग्न हृदय हो हथेली पर मुंह टिकाए आर्त्त-ध्यान में डूबी हुई चिन्तामग्न मत बनो। तुम मेरी पाकशाला में विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य को तैयार कराओ। तैयार करवाकर बहुत-से श्रमणों, ब्राह्मणों, अतिथियों, कृपणों और वनीपकों को दान देती और दिलाती हुई विहार करो।

३९. तए णं सा पोट्टिला तेयलिपुत्तेणं अमच्चेणं एवं वुत्ता समाणी हट्ठा तेयलिपुत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता कल्लाकल्लिं महाणसंसि

३९. अमात्य तेतलीपुत्र के ऐसा कहने पर हर्षित हुई पोट्टिला ने तेतलीपुत्र के इस अर्थ को स्वीकार किया। स्वीकार कर वह प्रतिदिन पाकशाला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता बहूणं समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमगाणं देयमाणी य दवावेमाणी य विहरइ।।

में विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य को तैयार कराती। तैयार कराकर बहुत से श्रमणों, ब्राह्मणों, अतिथियों, कृपणों और वनीपकों को दान देती और दिलाती हुई विहार करने लगी।

अज्जा-संघाडगस्स भिक्खायरियागमण-पदं

४०. तेणं कालेणं तेणं समएणं सुव्वयाओ नामं अज्जाओ इरियासमियाओ भासासमियाओ एसणासमियाओ आयाण-भंड-मत्तणिक्खेवणा-समियाओ उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-पारिट्ठा-वणियासमियाओ मणसमियाओ वइसमियाओ कायसमियाओ मणगुत्ताओ वइगुत्ताओ कायगुत्ताओ गुत्ताओ गुत्तिंदियाओ गुत्तबंभचारिणीओ बहुस्सुयाओ बहुपरिवाराओ पुव्वाणुपुव्विं चरमाणीओ जेणामेव तेयलिपुरे नयरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हंति, ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणीओ विहरंति।।

४१. तए णं तासिं सुव्वयाणं अज्जाणं एगे संघाडए पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, बीयाए पोरिसीए झाणं झियाइ, तइयाए पोरिसीए अतुरियमचवलमसंभंते मुहपोत्तियं पडिलेहेइ, भायणवत्थाणि पडिलेहेइ, भायणाणि पमज्जेइ, भायणाणि ओगाहेइ, जेणेव सुव्वयाओ अज्जाओ तेणेव उवागच्छइ, सुव्वयाओ अज्जाओ वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--इच्छामो णं तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए तेयलीपुरे नयरे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेहि।।

४२. तए णं ताओ अज्जाओ सुव्वयाहिं अज्जाहिं अब्भणुण्णाया समाणीओ सुव्वयाणं अज्जाणं अंतियाओ पडिस्सयाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता अतुरियमचवलमसंभंताए गतीए जुगंतरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओ रियं सोहेमाणीओ तेयलीपुरे नयरे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियं अडमाणीओ तेयलिस्स गिहं अणुपविट्ठाओ।।

पोट्टिलाए अमच्चपसायोवाय-पुच्छा-पदं

४३. तए णं सा पोट्टिला ताओ अज्जाओ एज्जमाणीओ पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठा आसणाओ अब्भुट्ठेइ, वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता विपुलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेइ, पडिलाभेत्ता एवं वयासी--एवं खलु अहं अज्जाओ! तेयलिपुत्तस्स अमच्चस्स पुव्विं इट्ठा कंता पिया मणुण्णा मणामा आसि, इयाणिं अणिट्ठा अकंता अप्पिया अमणुण्णा अमणामा जाया। नेच्छइ णं तेयलिपुत्ते मम नामगोयमवि सवणयाए, किं पुण दंसणं वा परिभोगं वा? तं

आर्या-संघाटक का भिक्षा के लिए आगमन-पद

४०. उस काल और उस समय सुव्रता नाम की आर्या थी। वह ईर्या-समिति, भाषा-समिति, एषणा-समिति, आदान-भाण्ड अमत्रनिक्षेपणा-समिति, उच्चार-प्रस्रवण-क्ष्वेड-सिंघाण-जल्ल- परिष्ठापनिका समिति, मन समिति, वचन समिति और काय समिति से समित, मन गुप्ति, भाषा-गुप्ति, काय गुप्ति से गुप्त, गुप्तेन्द्रिय, गुप्त ब्रह्मचारिणी, बहुश्रुत और बहु परिवार वाली थी। वे क्रमशः संचार करती हुई जहां तेतलीपुर नगर था, वहां आयी। वहां आकर समुचित आवास को प्राप्त किया। प्राप्त कर संयम और तप से स्वयं को भावित करती हुई विहार करने लगी।[1]

४१. आर्या सुव्रता का एक संघाटक प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करता, दूसरे प्रहर में ध्यान करता, तीसरे प्रहर में अत्वरित, अचपल एवं असंभ्रान्त-भाव से मुखवस्त्रिका का प्रतिलेखन करता। भाजन-वस्त्रों का प्रतिलेखन करता। पात्रों का प्रमार्जन करता और पात्रों को लेकर जहां आर्या सुव्रता थी वहां आता। आर्या सुव्रता को वन्दना करता। नमस्कार करता। वन्दना-नमस्कार कर आर्या सुव्रता से इस प्रकार कहता--हम आपसे अनुज्ञा प्राप्त कर, तेतलीपुर नगर के ऊंच, नीच और मध्यम कुलों के घरों में सामुदानिक भिक्षा के लिए जाना चाहती हैं।

जैसा सुख हो देवानुप्रिये! प्रतिबंध मत करो।

४२. आर्या सुव्रता से अनुज्ञा प्राप्त कर उन आर्याओं ने आर्या सुव्रता के पास से उठकर उपाश्रय से निष्क्रमण किया। निष्क्रमण कर अत्वरित, अचपल और असंभ्रान्त गति से युग-परिमित भूमि का प्रलोकन करने वाली दृष्टि से आगे-आगे ईर्या का शोधन करते हुए, तेतलीपुर नगर के ऊंच, नीच और मध्यम कुल के घरों में सामुदानिक भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए तेतली के घर में प्रवेश किया।

पोट्टिला द्वारा अमात्य को प्रसन्न करने का उपाय पृच्छा-पद

४३. पोट्टिला ने उन आर्याओं को आते हुए देखा। देखकर वह हृष्ट-तुष्ट हो आसन से उठी। वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य से उन्हें प्रतिलाभित किया। प्रतिलाभित कर वह इस प्रकार बोली--आर्याओ! मैं पहले अमात्य तेतलीपुत्र को इष्ट, कमनीय, प्रिय, मनोज्ञ और मनोगत थी। अब अनिष्ट, अकमनीय, अप्रिय, अमनोज्ञ और अमनोगत हो गई हूँ। तेतलीपुत्र मेरा नाम-गोत्र भी सुनना नहीं चाहता, दर्शन और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुब्भे णं अज्जाओ बहुनायाओ बहुसिक्खियाओ बहुपढियाओ बहूणि गामागर-णगर-खेड-कब्बड-दोणमुह-मडंब-पट्टण-आसम-नियम-संबाह-सण्णिवेसाइं आहिंडह, बहूणं राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि- सेणावइ-सत्थवाहपभिईणं गिहाइं अणुपविसह। तं अत्थियाइं भे अज्जाओ! केइ कहिंचि चुण्णजोए वा मंतजोगे वा कम्मणजोए वा कम्मजोए वा हियउड्डावणे वा काउड्डावणे वा आभिओगिए वा वसीकरणे वा कोउयकम्मे वा भूयकम्मे वा मूले वा कंदे वा छल्ली वल्ली सिलिया वा गुलिया वा ओसहे वा भेसज्जे वा उवलद्धपुव्वे, जेणाहं तेयलिपुत्तस्स पुणरवि इट्ठा कंता पिया मणुण्णा मणामा भवेज्जामि?

परिभोग की तो बात ही कहां?

अतः आर्याओ! तुम बहुत जानकार हो, बहुत शिक्षित हो, बहुत पढ़ी-लिखी हो और अनेक गांव, आकर, नगर, खेट, कर्बट, द्रोणमुख, मडम्ब, पत्तन, आश्रम, निगम, संबाह और सन्निवेशों में घूमती हो, तथा बहुत-से राजा, ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि के घरों में प्रवेश करती हो, तो आर्याओ! कहीं कोई चूर्णयोग, मंत्रयोग, कार्मणयोग, कर्मयोग, चित्ताकर्षण, शरीराकर्षण, पराभिभवन, वशीकरण, कौतुककर्म, भूतिकर्म, मूल, कंद, छल्ली, वल्ली, शिलिका गुटिका, औषध अथवा भेषज्य उपलब्ध हुआ है, जिससे मैं तेतलीपुत्र को पुनः इष्ट, कमनीय, प्रिय, मनोज्ञ और मनोगत हो जाऊं?[१]

अज्जा-संघाडगस्स उत्तर-पदं

४४. तए णं ताओ अज्जाओ पोट्टिलाए एवं वुत्ताओ समाणीओ दोवि कण्णे ठएंति, ठवेत्ता पोट्टिलं एवं वयासी--अम्हे णं देवाणुप्पिए! समणीओ निग्गंथीओ जाव गुत्तबंभचारिणीओ। नो खलु कप्पइ अम्हं एयप्पगारं कण्णेहिं वि निसामित्तए, किमंग पुण उवदंसित्तए वा आयरित्तए वा? अम्हे णं तव देवाणुप्पिए! विचित्तं केवलिपण्णत्तं धम्मं परिकहिज्जामो।।

आर्या संघाटक का उत्तर-पद

४४. पोट्टिला के ऐसा कहने पर उन आर्याओं ने दोनों कान बंद कर लिए। दोनों कान बंद कर वे पोट्टिला से इस प्रकार बोली--देवानुप्रिये! हम श्रमणियां, निर्ग्रन्थिकाएं यावत् गुप्त-ब्रह्मचारिणियां हैं। हमें इस प्रकार का शब्द सुनना भी नहीं कल्पता, फिर उपदेश और आचरण का तो प्रश्न ही कहां ?

देवानुप्रिये! हम तुझे विचित्र केवली-प्रज्ञप्त धर्म सुनाती हैं।

पोट्टिलाए साविया-पदं

४५. तए णं सा पोट्टिला ताओ अज्जाओ एवं वयासी--इच्छामि णं अज्जाओ! तुब्भं अंतिए केवलिपण्णत्तं धम्मं निसामित्तए।।

पोट्टिला का श्राविका पद

४५. पोट्टिला ने उन आर्याओं से इस प्रकार कहा--आर्याओ! मैं चाहती हूँ तुमसे केवली-प्रज्ञप्त धर्म सुनूं।

४६. तए णं ताओ अज्जाओ पोट्टिलाए विचित्तं केवलिपण्णत्तं धम्मं परिकहेंति।।

४६. उन आर्याओं ने पोट्टिला को विचित्र केवली-प्रज्ञप्त धर्म सुनाया।

४७. तए णं सा पोट्टिला धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठा एवं वयासी--सद्दाहामि णं अज्जाओ! निग्गंथं पावयणं जाव से जहेयं तुब्भे वयह। इच्छामि णं अहं तुब्भं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं--दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जित्तए। अहासुहं देवाणुप्पिए!

४७. धर्म को सुनकर, अवधारण कर हर्षित हुई पोट्टिला ने इस प्रकार कहा--आर्याओ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करती हूँ, यावत् वह वैसा ही है जैसा तुम कह रही हो। मैं तुम्हारे पास पांच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का गृही-धर्म स्वीकार करना चाहती हूँ। जैसा तुम्हें सुख हो देवानुप्रिये!

४८. तए णं सा पोट्टिला तासिं अज्जाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं जाव गिहिधम्मं पडिवज्जइ, ताओ अज्जाओ वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता पडिविसज्जेइ।।

४८. पोट्टिला ने उन आर्याओं के पास पांच अणुव्रत यावत् गृही-धर्म को स्वीकार किया। उन आर्याओं को वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर उन्हें प्रतिविसर्जित कर दिया।

४९. तए णं सा पोट्टिला समणोवासिया जाया जाव समणे निग्गंथे फासुएणं एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं ओसहभेसज्जेणं पाडिहारिएण य पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं पडिलाभेमाणी विहरइ।।

४९. पोट्टिला श्रमणोपासिका बन गई यावत् वह श्रमण-निर्ग्रन्थों को प्रासुक, एषणीय, अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पाद-प्रोञ्छन, औषध, भेषज्य तथा प्रातिहारिक पीठ, फलक, शय्या और संस्तारक से प्रतिलाभित करती हुई विहार करने लगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पोट्टिलाए पव्वज्जा-पदं

५०. तए णं तीसे पोट्टिलाए अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुंबजागरियं जागरमाणीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--एवं खलु तेयलिपुत्तस्स पुव्विं इट्ठा कंता पिया मणुण्णा मणामा आसि, इयाणिं अणिट्ठा अकंता अप्पिया अमणुण्णा अमणामा जाया। नेच्छइ णं तेयलिपुत्ते मम नामगोयमवि सवणयाए किं पुण दंसणं वा परिभोगं वा? तं सेयं खलु ममं सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए पव्वइत्तए--एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते जेणेव तेयलिपुत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! मए सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए। तं इच्छामि णं तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया पव्वइत्तए।।

५१. तए णं तेयलिपुत्ते पोट्टिलं एवं वयासी--एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए! मुंडा पव्वइया समाणी कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववज्जिहिसि। तं जइ णं तुमं देवाणुप्पिए! ममं ताओ देवलोगाओ आगम्म केवलिपण्णत्ते धम्मे बोहेहि, तो हं विसज्जेमि। अह णं तुमं ममं न संबोहेसि, तो ते न विसज्जेमि।।

५२. तए णं सा पोट्टिला तेयलिपुत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ।।

५३. तए णं तेयलिपुत्ते विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं आमंतेइ जाव सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पोट्टिलं ण्हायं सव्वालंकारविभूसियं पुरिससहस्सवाहिणीयं सीयं दुरुहित्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेणं सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव दुंदुहिनिग्घोसनाइय-रवेणं तेयलिपुरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सुव्वयाणं उवस्सए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पोट्टिलं पुरओ कट्टु जेणेव सुव्वया अज्जा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! मम पोट्टिला भारिया इट्ठा कंता पिया मणुण्णा मणामा। एस णं संसारभउव्विग्गा भीया जम्मण-जर-मरणाणं इच्छइ देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया! सिस्सिणिभिक्खं अहासुहं, मा पडिबंधं करेहि।।

पोट्टिला का प्रव्रज्या-पद

५०. एक बार कुटुम्ब जागरिका करते हुए पोट्टिला के मन में मध्यरात्रि के समय इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--मैं तेतलीपुत्र को पहले इष्ट, कमनीय, प्रिय, मनोज्ञ और मनोगत थी। अब अनिष्ट, अकमनीय, अप्रिय, अमनोज्ञ और अमनोगत हो गई हूँ। तेतलीपुत्र मेरा नाम-गोत्र भी सुनना नहीं चाहता, दर्शन और परिभोग की तो बात ही कहां? अत: मेरे लिए उचित है मैं आर्या सुव्रता के पास प्रव्रजित बनूं। उसने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर उषा काल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर जहां तेतलीपुत्र था, वहां आयी। वहां आकर सिर पर प्रदक्षिणा करती अञ्जलि को मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! मैंने आर्या सुव्रता से धर्म सुना है और वही धर्म मुझे इष्ट, ग्राह्य और रुचिकर है। अत: मैं तुमसे अनुज्ञा प्राप्त कर प्रव्रजित होना चाहती हूँ।

५१. तेतलीपुत्र ने पोट्टिला से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिये! तू मुण्ड और प्रव्रजित हो, मृत्यु के समय मृत्यु को प्राप्त कर किसी देवलोक में देवरूप से उत्पन्न होगी। अत: यदि देवानुप्रिये! तू उस देवलोक से आकर मुझे केवली-प्रज्ञाप्त धर्म का संबोध दो तो मैं तुझे विसर्जित करूं। यदि तू मुझे संबोध नहीं देगी तो मैं तुझे विसर्जित नहीं करूंगा।

५२. पोट्टिला ने तेतलीपुत्र के इस अर्थ को स्वीकार कर लिया।

५३. तेतलीपुत्र ने विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवाया। तैयार करवाकर अपने मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनों को आमन्त्रित किया यावत् उनको सत्कृत और सम्मानित किया। सत्कृत-सम्मानित कर, स्नान कर सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित पोट्टिला को हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली शिविका पर चढ़ाकर मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी और परिजनों के साथ उन से परिवृत हो, सम्पूर्ण ऋद्धि यावत् दुन्दुभि-निर्घोष से निनादित स्वरों के साथ तेतलीपुर नगर के बीचोंबीच गुजरता हुआ, जहां आर्या सुव्रता का उपाश्रय था, वहां आया। वहां आकर शिविका से उतरा। उतरकर पोट्टिला को आगे कर जहां आर्या सुव्रता थी, वहां आया। वहां आकर आर्या सुव्रता को वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिये! यह पोट्टिला भार्या मुझे इष्ट, कमनीय, प्रिय, मनोज्ञ और मनोगत है। यह संसार के भय से उद्विग्न है। जन्म, जरा और मृत्यु से भीत है। अत: यह देवानुप्रिया के पास मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित होना चाहती है। देवानुप्रिये! यह शिष्या की भिक्षा स्वीकार करो। जैसा सुख हो, प्रतिबन्ध मत करो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५४. तए णं पोट्टिला सुव्वयाहिं अज्जाहिं एवं वुत्ता समाणी हट्ठा उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, जेणेव सुव्वयाओ अज्जाओ तेणेव उवागच्छइ, वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--आलित्ते णं अज्जा! लोए एवं जहा देवाणंदा जाव एक्कारस्स अंगाइं अहिज्जइ, बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झोसेत्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणेणं छेएत्ता आलोइय-पडिक्कंत्ता समाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववण्णा ।।

५४. आर्या सुव्रता के ऐसा कहने पर हर्षित हुई पोट्टिला ईशान-कोण में गई। वहां जाकर स्वयं आभरण, माला और अलंकार उतारे। उतारकर स्वयं ही पंचमौष्टिक लुञ्चन किया। जहां आर्या सुव्रता थी वहां आई। वहां आकर वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार कर इस प्रकार बोली--आर्ये! यह लोक जल रहा है यावत् उसने देवानन्दा की भांति ग्यारह अंगो का अध्ययन किया। बहुत वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय का पालन किया। पालन कर मासिक संलेखना की आराधना में स्वयं को समर्पित किया। अनशन-काल में साठ-भक्तों का परित्याग किया। आलोचना की, प्रतिक्रमण किया और समाधि को प्राप्त हो, मृत्यु के समय मृत्यु को प्राप्त कर किसी देवलोक में देव रूप में उत्पन्न हुई।

कणगरहस्स मच्चु-पदं

५५. तए णं से कणगरहे राया अण्णया कयाइ कालधम्मुणा संजुत्ते यावि होत्था ।।

कनकरथ का मृत्यु-पद

५५. किसी समय राजा कनकरथ भी काल-धर्म को प्राप्त हो गया।

५६. तए णं ते ईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाह-पभिइणो रोयमाणा कंदमाणा विलवमाणा तस्स कणगरहस्स सरीरस्स महया इड्ढी-सक्कार-समुदएणं नीहरणं करेंति, करेत्ता अण्णमण्णं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया! कणगरहे राया रज्जे य जाव मुच्छिए पुत्ते वियंगित्था। अम्हे णं देवाणुप्पिया! रायाहीणा रायाहिट्ठिया रायाहीणकज्जा। अयं च णं तेयली अमच्चे कणगरहस्स रण्णो सव्वट्ठाणेसु सव्वभूमियासु लद्धपच्चए दिन्नवियारे सव्वकज्जवड्ढावए यावि होत्था। तं सेयं खलु अम्हं तेयलिपुत्तं अमच्चं कुमारं जाइत्तए त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता जेणेव तेयलिपुत्ते अमच्चे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तेयलिपुत्तं एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! कणगरहे राया रज्जे य जाव मुच्छिए पुत्ते वियंगित्था। अम्हे णं देवाणुप्पिया! रायाहीणा रायाहिट्ठिया रायाहीणकज्जा। तुमं च णं देवाणुप्पिया! कणगरहस्स रण्णो सव्वठाणेसु सव्वभूमियासु लद्धपच्चए दिन्नवियारे रज्जधुराचिंतए होत्था। तं जइ णं देवाणुप्पिया! अत्थि केइ कुमारे रायलक्खणसंपण्णे अभिसेयारिहे तण्णं तुमं अम्हं दलाहि, जण्णं अम्हे महया-महया रायाभिसेएणं अभिसिंचामो ।।

५६. ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह प्रभृति ने रोते, कलपते और विपलते हुए कनकरथ राजा के शरीर का महान ऋद्धि और सत्कार-समुदय के साथ निर्हरण किया। निर्हरण कर परस्पर इस प्रकार बोले--देवानुप्रियो! राजा कनकरथ ने राज्य में यावत् मूर्च्छित हो, पुत्रों को विकलांग कर दिया। देवानुप्रियो! हम राजा के अधीन हैं, राजा के द्वारा अधिष्ठित हैं और हमारा प्रत्येक कार्य राजा के अधीन है और यह अमात्य तेतली कनकरथ राजा के सभी स्थानों और सभी भूमिकाओं में विश्वास-पात्र, परामर्श देने वाला तथा सब कार्यों को बढ़ाने वाला था। अतः हमारे लिए उचित है, हम अमात्य तेतलीपुत्र से कुमार की याचना करें। इस प्रकार उन्होंने परस्पर यह प्रस्ताव स्वीकार किया। स्वीकार कर जहां अमात्य तेतलीपुत्र था, वहां आए। वहां आकर तेतलीपुत्र से इस प्रकार बोले--देवानुप्रिय! राजा कनकरथ ने राज्य में यावत् मूर्च्छित हो पुत्रों को विकलांग कर दिया। देवानुप्रिय! हम राजा के अधीन हैं, राजा के द्वारा अधिष्ठित हैं और हमारा प्रत्येक कार्य राजा के अधीन है। देवानुप्रिय! तुम राजा कनकरथ के सभी स्थानों और सभी भूमिकाओं में विश्वास-पात्र, परामर्श देने वाले और राज्य-धुरा के चिन्तक थे। अतः देवानुप्रिय! यदि कोई राजलक्षण सम्पन्न[१], अभिषेक के योग्य कुमार हो, तो तुम हमें दो, जिससे हम उसे महान राज्याभिषेक से अभिषिक्त करें।

कणगज्झयस्स रायाभिसेय-पदं

५७. तए णं तेयलिपुत्ते तेसिं ईसरपभिईणं एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता कणगज्झयं कुमारं ण्हायं जाव सस्सिरीयं करेइ, करेत्ता तेसिं

कनकध्वज का राज्याभिषेक-पद

५७. तेतलीपुत्र ने उन ईश्वर प्रभृति अधिकारियों के इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। स्वीकार कर उसने कुमार कनकध्वज को नहलाकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ईसरपभिईणं उवणेइ, उवणेत्ता एवं वयासी--एस णं देवाणुप्पिया! कणगरहस्स रण्णो पुत्ते पउमावईए देवीए अत्तए कणगज्झए नामं कुमारे अभिसेयारिहे रायलक्खसंपण्णे, मए कणगरहस्स रण्णो रहस्सिययं संवड्ढिए। एयं णं तुब्भे महया-महया रायाभिसेएणं अभिसिंचह। सव्वं च से उट्ठाणपरियावणियं परिकहेइ।।

यावत् श्रीसम्पन्न किया। श्रीसंपन्न कर उन ईश्वर प्रभृति अधिकारियों के पास ले गया। ले जाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! यह राजा कनकरथ का पुत्र और पद्मावती देवी का आत्मज कनकध्वज नाम का कुमार है। यह अभिषेक के योग्य और राजलक्षणों से सम्पन्न है। मैंने इसका संवर्धन राजा कनकरथ से गुप्त रखकर किया है। इसे तुम महान राज्याभिषेक से अभिषिक्त करो। तेतलीपुत्र ने उसके जन्म से लेकर वर्तमान तक की सम्पूर्ण घटना कह सुनायी।

५८. तए णं ते ईसरपभिइओ कणगज्झयं कुमारं महया-महया रायाभिसेएणं अभिसिंचंति।।

५८. ईश्वर प्रभृति अधिकारियों ने कनकध्वज कुमार को महान राज्यभिषेक से अभिषिक्त किया।

५९. तए णं से कणगज्झए कुमारे राया जाए--महया हिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे जाव रज्जं पसासेमाणे विहरइ।।

५९. कनकध्वज कुमार राजा बन गया। वह महान हिमालय, महान मलय, मेरू और महेन्द्र पर्वत के समान उन्नत था यावत् वह राज्य का प्रशासन करता हुआ विहार करने लगा।

तेयलिपुत्तस्स सम्माण-पदं

तेतलीपुत्र का सम्मान-पद

६०. तए णं सा पउमावई देवी कणगज्झयं रायं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--एस णं पुत्ता! तव रज्जे य रट्ठे य बले य वाहणे य कोसे य कोट्ठागारे य पुरे य अंतेउरे य, तुमं च तेयलिपुत्तस्स अमच्चस्स पभावेणं। तं तुमं णं तेयलिपुत्तं अमच्चं आढाहि परिजाणाहि सक्कारेहि सम्माणेहि, इंतं अब्भुट्ठेहि, ठियं पज्जुवासेहि, वच्चंतं पडिसंसाहेहि, अद्धासणेणं उवणिमंतेहि, भोगं च से अणुवड्ढेहि।।

६०. पद्मावती देवी ने राजा कनकध्वज को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--पुत्र! तुम्हारा यह राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, कोष, कोष्ठागार, पुर, अन्तःपुर और तुम स्वयं अमात्य तेतलीपुत्र के प्रभाव से ही अस्तित्व में हो। अतः तुम अमात्य तेतलीपुत्र का आदर करो, उसकी ओर ध्यान दो, उसका सत्कार करो और सम्मान करो। जब वह आये तो खड़े हो जाओ, जब वह खड़ा रहे तो उसकी पर्युपासना करो, वह जाए तो उसका अनुगमन करो। उसे अपने आधे आसन से उपनिमन्त्रित करो और उसके भोगों का संवर्धन करो।

६१. तए णं से कणगज्झए पउमावईए तहत्ति वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता तेयलिपुत्तं अमच्चं आढाइ परिजाणाइ सक्कारेइ सम्माणेइ, इंतं अब्भुट्ठेइ, ठियं पज्जुवासेइ, वच्चंतं पडिसंसाहेइ, अद्धासणेणं उवणिमंतेइ, भोगं च से अणुवड्ढेइ।।

६१. पद्मावती के वचन को कनकध्वज ने 'तथेति' कहकर स्वीकार किया। स्वीकार कर वह अमात्य तेतलीपुत्र को आदर देता, उसकी ओर ध्यान देता, सत्कार करता, सम्मान करता, जब वह आता तो खड़ा होता, जब वह खड़ा रहता तो पर्युपासना करता, जब वह जाता तो अनुगमन करता, उसे आधे आसन से उपनिमन्त्रित करता और उसके भोगों का संवर्धन करता।

पोट्टिलदेवेण तेयलिपुत्तस्स संबोह-पदं

पोट्टिलदेव द्वारा तेतलीपुत्र को संबोधपद

६२. तए णं से पोट्टिले देवे तेयलिपुत्तं अभिक्खणं-अभिक्खणं केवलिपण्णत्ते धम्मे संबोहेइ, नो चेव णं से तेयलिपुत्ते संबुज्झइ।।

६२. वह पोट्टिल देव तेतलीपुत्र को बार-बार केवली प्रज्ञप्त धर्म का संबोध देता, किन्तु तेतलीपुत्र संबुद्ध नहीं होता।

६३. तए णं तस्स पोट्टिलदेवस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--एवं खलु कणगज्झए राया तेयलिपुत्तं आढाइ जाव भोगं च से अणुवड्ढेइ, तए णं से तेयलिपुत्ते अभिक्खणं-अभिक्खणं संबोहिज्जमाणे वि धम्मे नो संबुज्झइ। तं सेयं खलु ममं कणगज्झयं तेयलिपुत्ताओ विप्परिणामित्तए त्ति

६३. उस पोट्टिल देव के मन में इस प्रकार आन्तरिक, चिन्तित अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--राजा कनकध्वज तेतलीपुत्र को आदर देता है यावत् उसके भोगों का संवर्धन करता है, इसलिए बार-बार संबोध देने पर भी तेतलीपुत्र धर्म में संबुद्ध नहीं हो रहा है। अतः मेरे लिए उचित है मैं कनकध्वज को तेतलीपुत्र से विपरीत कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कणगज्झयं तेयलिपुत्ताओ विप्परिणामेइ।।

दूं--उसने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर कनकध्वज को तेतलीपुत्र के प्रति विपरीत परिणाम वाला कर दिया।

६४. तए णं तेयलिपुत्ते कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते आसखंधवरगए बहूहिं पुरिसेहिं सद्धिं संपरिवुडे साओ गिहाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव कणगज्झए राया तेणेव पहारेत्थ गमणाए।।

६४. उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर, तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर तेतलीपुत्र स्नान, बलि कर्म और कौतुक मंगल रूप प्रायश्चित्त कर प्रवर अश्व स्कंध पर आरूढ़ हो, बहुत से पुरुषों के साथ उनसे परिवृत हो, अपने घर से निकला। निकलकर जहां कनकध्वज राजा था, वहां जाने का संकल्प किया।

६५. तए णं तेयलिपुत्तं अमच्चं जे जहा बहवे राईसर-तलवर माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहपभियओ पासंति ते तहेव आढायंति परियाणंति अब्भुट्ठेंति, अंजलिपग्गहं करेंति, इट्ठाहिं कंताहिं जाव वग्गूहिं आलवमाणा य संलवमाणा य पुरओ य पिट्ठओ य पासओ य समणुगच्छंति।।

६५. अमात्य तेतलीपुत्र को बहुत से राजा, ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह प्रभृति अधिकारियों ने जैसे ही देखा वैसे ही उसका आदर किया, उसकी ओर ध्यान दिया, खड़े हुए, हाथ जोड़े एवं इष्ट, कमनीय यावत् वचनों से आलाप-संलाप करते हुए उसके आगे-पीछे, दाएं-बाएं, साथ-साथ चलने लगे।

६६. तए णं से तेयलिपुत्ते जेणेव कणगज्झए तेणेव उवागच्छइ।।

६६. तेतलीपुत्र जहां राजा कनकध्वज था, वहां आया।

६७. तए णं से कणज्झए तेयलिपुत्तं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता नो आढाए, नो परियाणाइ, नो अब्भुट्ठेइ अणाढायमाणे अपरियाणमाणे अणब्भुट्ठेमाणे परम्मुहे संचिट्ठइ।।

६७. कनकध्वज ने तेतलीपुत्र को आते हुए देखा। उसे देखकर न आदर दिया, न उसकी ओर ध्यान दिया और न वह खड़ा हुआ। वह उसे आदर न देता हुआ, उसकी ओर ध्यान न देता हुआ, खड़ा न होता हुआ, मुंह फेर कर बैठ गया।

६८. तए णं से तेयलिपुत्ते अमच्चे कणगज्झयस्स रण्णो अंजलिं करेइ। तओ य णं से कणगज्झए राया अणाढायमाणे अपरियाणमाणे अणब्भुट्ठेमाणे तुसिणीए परम्मुहे संचिट्ठइ।।

६८. अमात्य तेतलीपुत्र ने राजा कनकध्वज को हाथ जोड़े, तो भी राजा कनकध्वज ने उसका न आदर किया, न उसकी ओर ध्यान दिया और न खड़ा हुआ। वह मुंह फेर कर मौन बैठा रहा।

६९. तए णं तेयलिपुत्ते कणगज्झयं रायं विप्परिणयं जाणित्ता भीए तत्थे तसिए उव्विग्गे संजायभए एवं वयासी--रुट्ठे णं मम कणगज्झए राया। हीणे णं मम कणगज्झए राया। अवज्झाए णं मम कणगज्झए राया। तं न नज्जइ णं मम केणइ कु-मारेण मारेहिइ त्ति कट्टु भीए तत्थे जाव सणियं-सणियं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता तमेव आसखंधं दुरूहइ, दुरूहित्ता तेयलिपुरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।।

६९. राजा कनकध्वज के विपरीत भावों को जानकर तेतलीपुत्र ने भीत, त्रस्त, तुषित, उद्विग्न और भयाक्रान्त होकर इस प्रकार कहा--राजा कनकध्वज मुझ से रुष्ट है। राजा कनकध्वज मुझे हीन मानने लगा है। राजा कनकध्वज मेरे प्रति दुश्चिन्तन करता है। अतः पता नहीं, यह मुझे कैसी कुमौत मरवा दे। ऐसा सोचकर वह भीत, त्रस्त हो यावत् वहां से धीरे-धीरे पीछे सरक गया। वहां से पीछे सरक कर उसने उसी अश्व-स्कन्ध पर आरोहण कर तेतलीपुत्र के बीचोंबीच होता हुआ, जहां अपना घर था वहां जाने का संकल्प किया।

७०. तए णं तेयलिपुत्तं जे जहा ईसर जाव सत्थवाहपभियओ पासंति ते तहा नो आढायंति नो परियाणंति नो अब्भुट्ठेंति नो अंजलिपग्गहं करेंति, इट्ठाइं जाव वग्गूहिं नो आलवंति नो संलवंति नो पुरओ य पिट्ठओ य पासओ य समणुगच्छंति।।

७०. तेतलीपुत्र को ईश्वर यावत् सार्थवाह प्रभृति अधिकारियों ने जैसे ही देखा वैसे ही न उसको आदर दिया, न उसकी ओर ध्यान दिया, न खड़े हुए, न हाथ जोड़े और न इष्ट यावत् वचनों से आलाप-संलाप किया तथा न आगे-पीछे या दाएं-बाएं रह, उसका अनुगमन किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७१. तए णं तेयलिपुत्ते अमच्चे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए। जा वि य से तत्थ बाहिरिया परिसा भवइ, तं जहा--दासे इ वा पेसे इ वा भाइल्लए इ वा, सा वि य णं नो आढाइ नो परियाणाइ नो अब्भुट्ठेइ। जा वि य से अब्भिंतरिया परिसा भवइ, तं जहा--पिया इ वा माया इ वा भाया इ वा भगिणी इ वा भज्जा इ वा पुत्ता इ वा धूया इ वा, सुण्हा इ वा, सा वि य णं नो आढाइ नो परियाणाइ नो अब्भुट्ठेइ।।

७१. तेतलीपुत्र अमात्य जहां अपना घर था, वहां आया। वहां उसकी जो भी बहिरंग-परिषद् थी, जैसे--दास, प्रेष्य, भागीदार उसने भी उसे न आदर दिया, न उसकी ओर ध्यान दिया और न ही खड़ी हुई। उसकी जो अंतरंग परिषद थी, जैसे--माता-पिता, भाई-बहिन, भार्या, पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू--उसने भी उसे न आदर दिया, न उसकी ओर ध्यान दिया और न ही खड़ी हुई।

तेयलिपुत्तस्स मरणचेट्ठा-पदं

तेतलीपुत्र की मरण-चेष्टा-पद

७२. तए णं से तेयलिपुत्ते जेणेव वासघरे जेणेव सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयणिज्जंसि निसीयइ, निसीइत्ता एवं वयासी--एवं खलु अहं सयाओ गिहाओ निग्गच्छामि तं चेव जाव अब्भिंतरिया परिसा नो आढाइ नो परियाणाइ नो अब्भुट्ठेइ। तं सेयं खलु मम अप्पाणं जीवियाओ ववरोवित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता तालउडं विसं आसगंसि पक्खिवइ। से य विसे नो कमइ।।

७२. वह तेतलीपुत्र जहां उसका वास-गृह था, जहां शयनीय था, वहां आया। वहां आकर शयनीय पर बैठा। बैठकर इस प्रकार बुदबुदाया--मैं अपने घर से निकला हूं, वही सम्पूर्ण वर्णन यावत् मेरी अंतरंग परिषद ने मुझे न आदर दिया, न मेरी ओर ध्यान दिया और न खड़ी हुई। इसलिए मेरे लिए उचित है मैं जीवन को समाप्त कर दूं। उसने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर उसने अपने मुंह में तालपुट विष रखा किन्तु वह विष मारक रूप में परिणत नहीं हुआ।

७३. तए णं से तेयलिपुत्ते अमच्चे नीलुप्पल-गवलगुलिय-अयसिकुसुम-प्पगासं खुरधारं असिं खंधंसि ओहरइ। तत्थ वि य से धारा ओएल्ला।।

७३. अमात्य तेतलीपुत्र ने अपने कन्धे पर नीलोत्पल, भैंसे का सींग और अतसी कुसुम के समान प्रभा तथा तीक्ष्णधार वाली तलवार का प्रहार किया, किन्तु वहां भी उसकी धार कुण्ठित हो गई।

७४. तए णं से तेयलिपुत्ते जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पासगं गीवाए बंधइ, बंधित्ता रुक्खं दुरुहइ, दुरुहित्ता पासगं रुक्खे बंधइ, बंधित्ता अप्पाणं मुयइ। तत्थ वि य से रज्जू छिन्ना।।

७४. वह तेतलीपुत्र जहां अशोक-वनिका थी, वहां आया। वहां आकर गले में फन्दा डाला। डाल कर वृक्ष पर चढ़ा। फन्दे को वृक्ष से बांधा और स्वयं नीचे कूद गया, किन्तु वहां भी फांसी की रस्सी टूट गई।

७५. तए णं से तेयलिपुत्ते महइमहालियं सिलं गीवाए बंधइ, बंधित्ता अत्थाहमतारमपोरिसीयंसि उदगंसि अप्पाणं मुयइ। तत्थ वि से थाहे जाए।।

७५. तेतलीपुत्र ने एक सुविशाल शिला को अपने गले में बांधा। बांधकर वह अथाह, अतार एवं पुरुष प्रमाण से भी अधिक गहरे पानी में कूद गया, किन्तु वह अगाध-जल भी स्ताघ--थाह वाला बन गया।

७६. तए णं से तेयलिपुत्ते सुक्कंसि तणकूडंसि अगणिकायं पक्खिवइ, पक्खिवित्ता अप्पाणं मुयइ। तत्थ वि य से अगणिकाए विज्झाए।।

७६. तेतलीपुत्र ने सूखी घास के ढेर में आग लगायी। आग लगाकर स्वयं उसमें प्रविष्ट हो गया, किन्तु वहां भी आग बुझ गई।

तेयलिपुत्तस्स विम्हयकरण-पदं

तेतलीपुत्र का विस्मयकरण पद

७७. तए णं से तेयलिपुत्ते एवं वयासी--सद्धेयं खलु भो! समणा वयंति। सद्धेयं खलु भो! माहणा वयंति। सद्धेयं खलु भो! समण-माहणा वयंति। अहं एगो असद्धेयं वयामि। एवं खलु--

अहं सह पुत्तेहिं अपुत्ते। को मेदं सद्दहिस्सइ?
सह मित्तेहिं अमित्ते। को मेदं सद्दहिस्सइ?
सह अत्थेणं अणत्थे। को मेदं सद्दहिस्सइ?
सह दारेणं अदारे। को मेदं सद्दहिस्सइ?

७७. तब वह तेतलीपुत्र इस प्रकार बोला--
वह श्रद्धेय है, जो श्रमण कहते हैं।
वह श्रद्धेय है, जो ब्राह्मण कहते हैं।
वह श्रद्धेय है, जो श्रमण-ब्राह्मण कहते हैं।

एक मैं अश्रद्धेय वचन कह रहा हूं। वह इसलिए कि पुत्र होते हुए भी मैं अपुत्र हूं। मेरी इस बात पर कौन श्रद्धा करेगा?

मित्र होते हुए भी मैं अमित्र हूं। मेरी इस बात पर कौन श्रद्धा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सह दासेहिं अदासे। को मेंद सद्दहिस्सइ?

सह पेसेहिं अपेसे। को मेदं सद्दहिस्सइ?

सह परिजणेणं अपरिजणे। को मेदं सद्दहिस्सइ?

एवं खलु तेयलिपुत्तेणं अमच्चेणं कणगज्झएणं रण्णा अवज्झाएणं समाणेणं तालपुडगे विसे आसगंसि पक्खित्ते। से वि य नो कमइ। को मेयं सद्दहिस्सइ?

तेयलिपुत्तेणं नीलुप्पल-गवलगुलिय-अयसि-कुसुमप्पगासे खुरधारे असी खंधंसि ओहरिए। तत्थ वि य से धारा ओएल्ला। को मेयं सद्दहिस्सइ?

तेयलिपुत्तेणं पासगं गीवाए बंधित्ता रुक्खं दुरूढे, पासगं रुक्खे बंधित्ता अप्पा मुक्के। तत्थ वि य से रज्जू छिन्ना। को मेयं सद्दहिस्सइ?

तेयलिपुत्तेणं महइमहालियं सिलं गीवाए बंधित्ता अत्थाहमतारमपोरिसीयंसि उदगंसि अप्पा मुक्के। तत्थ वि य णं से थाहे जाए। को मेयं सद्दहिस्सइ?

तेयलिपुत्तेणं सुक्कंसि तणकूडंसि अगणिकायं पक्खिवित्ता अप्पा मुक्के। तत्थ वि य से अग्गी विज्झाए। को मेयं सद्दहिस्सइ?—ओहयमणसंकप्पे करतलपल्हत्थमुहे अट्टज्झाणोवगए झियायइ।।

करेगा?

धन होते हुए भी मैं निर्धन हूं। मेरी इस बात पर कौन श्रद्धा करेगा?

पत्नी होते हुए भी मैं पत्नी-रहित हूं। मेरी इस बात पर कौन श्रद्धा करेगा?

दास संपन्न होते हुए भी मैं दास विपन्न हूं। मेरी इस बात पर कौन श्रद्धा करेगा?

प्रेष्य संपन्न होते हुए भी में प्रेष्य से विपन्न हूं। मेरी इस बात पर कौन श्रद्धा करेगा?

परिजनों के होते हुए भी मैं परिजन-रहित हूं। मेरी इस बात पर कौन श्रद्धा करेगा?

इस प्रकार राजा कनकध्वज के दुश्चिन्तन के कारण अमात्य तेतलीपुत्र ने अपने मुंह में तालपुट विष रख लिया किन्तु वह विष भी मारक रूप में परिणत नहीं हुआ, मेरी इस बात पर कौन श्रद्धा करेगा?

तेतलीपुत्र ने अपने कंधे पर नीलोत्पल, भैंसे का सींग और अतसि कुसुम के समान प्रभा तथा तीक्ष्ण धार वाली तलवार से प्रहार किया किन्तु वहां भी उसकी धार कुण्ठित हो गई। मेरी इस बात पर कौन श्रद्धा करेगा?

तेतलीपुत्र गले में फन्दा डालकर वृक्ष पर चढ़ा, फन्दे को वृक्ष पर बांधकर स्वयं नीचे कूद गया। वहां भी फांसी की रस्सी टूट गई। मेरी इस बात पर कौन श्रद्धा करेगा?

तेतलीपुत्र एक सुविशाल शिला को गले में बांधकर अथाह, अतार एवं पुरुष प्रमाण से भी अधिक गहरे पानी में कूद गया। किन्तु वहां भी वह अगाध जल उसके लिए स्ताघ--थाह वाला बन गया। मेरी इसी बात पर कौन श्रद्धा करेगा?

तेतलीपुत्र सूखी घास के ढेर में आग लगाकर स्वयं उसमें प्रविष्ट हो गया। किन्तु वहां भी आग बुझ गई। मेरी इस बात पर कौन श्रद्धा करेगा? इस प्रकार वह भग्न हृदय हो हथेली पर मुंह टिकाए आर्तध्यान में डूबा हुआ, चिन्ता मग्न हो रहा था।

पोट्टिलदेवस्स संवाद-पदं

७८. तए णं से पोट्टिले देवे पोट्टिलारूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता तेयलिपुत्तस्स अदूरसामंते ठिच्चा एवं वयासी--हं भो तेयलिपुत्ता! पुरओ पवाए, पिट्ठओ हत्थिभयं, दुहओ अचक्खुफासे, मज्झे सराणि वरिसंति। गामे पलित्ते रण्णे झियाइ, रण्णे पलित्ते गामे झियाइ। आउसो तेयलिपुत्ता! कओ वयामो?

पोट्टिल देव का संवाद-पद

७८. पोट्टिल देव ने पोट्टिला के रूप की विक्रिया की। विक्रिया कर तेतलीपुत्र के न दूर न निकट स्थित होकर इस प्रकार कहा--हंभो! तेतलीपुत्र! आगे प्रपात है, पीछे हाथी का भय है, दोनों ओर गाढ़ अंधकार है और मध्य में बाणों की वर्षा हो रही है। गांव में आग लगने पर व्यक्ति जंगल में जाने की सोचता है और जंगल में आग लगने पर गांव में जाने की सोचता है। आयुष्मन् तेतलीपुत्र ! बोलो, अब हम कहां जाएं?

७९. तए णं से तेयलिपुत्ते पोट्टिलं एवं वयासी--भीयस्स खलु भो!

७९. तेतलीपुत्र ने पोट्टिला से इस प्रकार कहा--पोट्टिले! भयभीत के लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पव्वज्जा, उक्कंठ्ठियस्स सदेसगमणं, छुहियस्स अन्नं, तिसियस्स पाणं, आउरस्स भेसज्जं, माइयस्स रहस्सं, अभिजुत्तस्स पच्चयकरणं, अद्धाणपरिसंतस्स वाहणगमणं, तरिउकामस्स पवहणकिच्चं, परं अभिउंजिउकामस्स सहायकिच्चं। खंतस्स दंतस्स जिइंदियस्स एत्तो एगमवि न भवइ।।

प्रव्रज्या ही शरण है, जैसे उत्कंठित प्रवासी के लिए स्वदेश गमन, भूखे के लिए अन्न, प्यासे के लिए पानी, रोगी के लिए भेषज्य, मायावी के लिए रहस्य, अभियुक्त के लिए प्रत्ययकरण (साक्षी), पथ परिश्रान्त के लिए वाहन-गमन, तैरने के इच्छुक के लिए नौका तथा शत्रु पर आक्रमण करने के इच्छुक के लिए सहायता शरणभूत होती है।

क्षान्त, दान्त और जितेन्द्रिय के लिए इन में से एक भी भय नहीं होता।

८०. तए णं से पोट्टिले देवे तेयलिपुत्तं अमच्चं एवं वयासी--सुट्ठु णं तुमं तेयलिपुत्ता! एयमट्ठं आयाणाहि त्ति कट्टु दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयइ, वइत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।।

८०. पोट्टिलदेव ने अमात्य तेतलीपुत्र से इस प्रकार कहा--तेतलीपुत्र ! तुमने यह अर्थ भलीभांति जान लिया है? उसने दूसरी-तीसरी बार भी इस प्रकार कहा। यह कहकर वह जिस दिशा से आया, उसी दिशा में चला गया।

तेयलिपुत्तस्स जाईसरणपुव्वं पव्वज्जा-पदं

८१. तए णं तस्स तेयलिपुत्तस्स सुभेणं परिणामेणं जाईसरणे समुप्पन्ने।।

तेतलीपुत्र का जातिस्मरण पूर्वक प्रव्रज्या-पद

८१. शुभ परिणामों के कारण तेतलीपुत्र को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया।

८२. तए णं तेयलिपुत्तस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--एवं खलु अहं इहेव जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे पोक्खलावईए विजए पोंडरीगिणीए रायहाणीए महापउमे नामं राया होत्था। तए णं हं थेराणं अंतिए मुंडे भवित्ता पव्वइए सामाइयमाइयाइं चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए महासुक्के कप्पे देवत्ताए उववण्णे। तए णं हं ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता इहेव तेयलिपुरे तेयलिस्स अमच्चस्स भद्दाए भारियाए दारगत्ताए पच्चायाए। तं सेयं खलु मम पुव्वुद्दिट्ठाइं महव्वयाइं सयमेव उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए--एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता सयमेव महव्वयाइं आरुहेइ, आरुहेत्ता जेणेव पमयवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टयंसि सुहनिसण्णस्स अणुचिंतेमाणस्स पुव्वाहीयाइं सामाइयमाइयाइं चोद्दसपुव्वाइं सयमेव अभिसमण्णागयाइं।।

८२. तेतलीपुत्र के मन में इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--इस प्रकार जम्बूद्वीप द्वीप, महाविदेह वर्ष, पुष्करावती विजय और पुण्डरीकिणी राजधानी में मैं महापद्म नाम का राजा था। वहां मैं स्थविरों के पास मुण्ड हो, प्रव्रजित हुआ। सामायिक आदि चौदहपूर्वों का अध्ययन कर, बहुत वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालन कर मैं मासिक संलेखना पूर्वक महाशुक्र विमान में देव रूप में उत्पन्न हुआ।

उसके पश्चात् आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय के अनन्तर उस देवलोक से च्युत होकर, इसी तेतलीपुर नगर में अमात्य तेतली की भार्या भद्रा के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ हूं। अतः मेरे लिए उचित है मैं पूर्व-उद्दिष्ट महाव्रतों को स्वयं ही स्वीकार कर, विहार करूं--उसने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर स्वयं महाव्रतों का आरोपण किया। आरोपण कर, जहां प्रमदवन उद्यान था, वहां आया। वहां आकर प्रवर अशोकवृक्ष के नीचे पृथ्वी शिलापट्ट पर सुखासन में बैठा। अनुचिन्तन करते-करते उसे पूर्व अधीत सामायिक आदि चौदह पूर्व स्वयं ही अभिसमन्वागत हो गये।

केवलणाण-पदं

८३. तए णं तस्स तेयलिपुत्तस्स अणगारस्स सुभेणं परिणामेणं पसत्थेणं अज्झवसाणेणं लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं कम्मरयविकरणकरं अपुव्वकरणं पविट्ठस्स केवलवरनाणदंसणे समुप्पण्णे।।

केवलज्ञान-पद

८३. तत्पश्चात् शुभ परिणाम, प्रशस्त अध्यवसाय और विशुद्ध्यमान लेश्याओं के कारण तदावरणीय कर्मों का क्षयोपशम होने से, कर्मरजों का विकिरण करने वाले अपूर्वकरण में प्रविष्ट तेतलीपुत्र अनगार को प्रवर केवलज्ञान और केवलदर्शन समुत्पन्न हुए।

८४. तए णं तेयलिपुरे नयरे अहासन्निहिएहिं वाणमंतरेहिं देवेहिं

८४. तेतलीपुत्र नगर में यथोचित सानिध्य देने वाले वाणव्यन्तर देव और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवीहि य देवदुंदुहीओ समाहयाओ, दसद्धवण्णे कुसुमे निवाइए, चेलुक्खेवे दिव्वे गीयगंधव्वनिनाए कए यावि होत्था।।

देवियों ने देव-दुन्दुभियां बजाईं। पंचरंगे फूल बरसाये, वस्त्रों की वर्षा की, दिव्य गीत गाये और गान्धर्व निनाद भी किया।

कणगज्झयस्स सावगधम्म-पदं

८५. तए णं से कणगज्झए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे एवं वयासी--एवं खलु तेयलिपुत्ते मए अवज्झाए मुंडे भवित्ता पव्वइए। तं गच्छामि णं तेयलिपुत्तं अणगारं वंदामि नमंसामि, वंदित्ता नमंसित्ता एयमट्ठं विणएणं भुज्जो भुज्जो खामेमि--एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता ण्हाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं जेणेव पमयवणे उज्जाणे जेणेव तेयलिपुत्ते अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तेयलिपुत्तं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एयमट्ठं च णं विणएणं भुज्जो-भुज्जो खामेइ, खामेत्ता नच्चासण्णे नाइदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे पंजलिउडे अभिमुहे विणएणं पज्जुवासइ।।

कनकध्वज राजा का श्रावक-धर्म पद

८५. राजा कनकध्वज को इस बात का पता चला तो उसने इस प्रकार कहा--मेरे दुश्चिन्तन के कारण ही तेतलीपुत्र मुण्ड हो, प्रव्रजित हुआ। अतः मैं जाऊं और तेतलीपुत्र अनगार को वन्दना-नमस्कार करूं। वन्दना-नमस्कार कर इस अर्थ के लिए विनयपूर्वक पुनः पुनः क्षमायाचना करूं।

उसने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर स्नान कर यावत् चतुरंगिणी सेना के साथ जहां प्रमदवन उद्यान था, जहां तेतलीपुत्र अनगार था, वहां आया। आकर तेतलीपुत्र को वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर अपने अपराध के लिए पुनः पुनः विनयपूर्वक क्षमायाचना की। क्षमायाचना कर न अति दूर न अति निकट बैठ कर शुश्रूषा और नमन की मुद्रा में प्राञ्जलिपुट और अभिमुख हो विनय पूर्वक पर्युपासना करने लगा।

८६. तए णं से तेयलिपुत्ते अणगारे कणगज्झयस्स रण्णो तीसे य महइमहालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ।।

८६. तेतलीपुत्र अनगार ने राजा कनकध्वज और उस सुविशाल परिषद को धर्म की देशना दी।

८७. तए णं से कणगज्झए राया तेयलिपुत्तस्स केवलिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्मा पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं--दुवालसविहं सावगधम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता समणोवासए जाए--अभिगयजीवाजीवे।।

८७. केवली तेतलीपुत्र से धर्म को सुनकर, अवधारण कर राजा कनकध्वज ने पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप-बारह प्रकार का श्रावक-धर्म स्वीकार किया। स्वीकार कर वह श्रमणोपासक बन गया--जीव और अजीव को जानने वाला।

तेयलिपुत्तस्स सिद्धि-पदं

८८. तए णं तेयलिपुत्ते केवली बहूणि वासाणि केवलिपरियागं पाउणित्ता जाव सिद्धे।।

तेतलीपुत्र का सिद्धि-पद

८८. केवली तेतलीपुत्र बहुत वर्षों तक केवलीपर्याय का पालन कर यावत् सिद्ध बना।

निक्खेव-पदं

८९. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं चोद्दसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

--त्ति बेमि।।

निक्षेप-पद

८९. जम्बू! इस प्रकार धर्म के आदिकर्ता यावत् सिद्धि गति संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के चौदहवें अध्ययन का यह अर्थ किया है।

--ऐसा मैं कहता हूं।

वृत्तिकृता समुद्धृता निगमनगाथा--

जाव न दुक्खं पत्ता, माणब्भंसं च पाणिणो पायं।
ताव न धम्मं गेण्हंति भावओ तेयलिसुयव्व।।१।।

वृत्तिकार द्वारा समुद्धृत निगमन-गाथा

१. प्राणी जब तक दुःख को प्राप्त नहीं होते और जब-तक उनका अहं विगलित नहीं होता तब तक वे प्रायः भाव से धर्म को स्वीकार नहीं करते, जैसे--तेतलीपुत्र।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

सूत्र-४०

१. समिति और गुप्ति के दो वर्गीकरण मिलते हैं--

(अ) उत्तराध्ययन में आठ समितियां बतलाई गई हैं--

१. ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा आदि समितियां।[१]

(ब) दूसरे वर्गीकरण में पांच समितियां और तीन गुप्तियों का उल्लेख है--१. ईर्या समिति, भाषा समिति आदि।[२]

प्रस्तुत सूत्र में प्रथम वर्गीकरण के अनुसार मन, वचन और काय समिति का उल्लेख है।

सूत्र-४३

२. (सूत्र ४३)

(अ) तंत्रशास्त्र में कामना की पूर्ति के लिए कर्म का विधान है। उसके दो वर्गीकरण मिलते हैं--

प्राचीन वर्गीकरण के अनुसार कर्म के दस प्रकार हैं--शान्तिकर्म, पुष्टिकर्म, आकर्षणकर्म, मोहनकर्म, वशीकरणकर्म, जृम्भणकर्म, उच्चाटनकर्म, स्तम्भनकर्म, विद्वेषणकर्म और मारण कर्म।

अर्वाचीन वर्गीकरण के अनुसार कर्म के छह प्रकार हैं--शान्तिकर्म, आकर्षणकर्म, वशीकरणकर्म, उच्चाटनकर्म, स्तम्भनकर्म और मरणकर्म।

(ब) मंत्र और तंत्र से संबंधित अनेक प्रयोगों का उल्लेख प्रस्तुत प्रकरण में किया गया है--

चूर्णयोग, मंत्रयोग, कार्मणयोग काम्ययोग, हृदयोड्डापन, कायोड्डापन, आभियोगिक, वशीकरण, कौतुकर्म ओर भूतिकर्म।[३]

१. चूर्णयोग--स्तम्भन, वशीकरण आदि के लिए किया जाने वाला औषधियों के चूर्ण का प्रयोग।

औषधि आदि के द्वारा बनाया गया वासक द्रव्य। वशीकरण आदि के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। स्तम्भन के द्वारा व्यक्ति को जड़वत विवेकशून्य कर दिया जाता है।[४]

२. मन्त्रयोग--मन्त्र का प्रयोग।

३. कार्मणयोग--मन्त्र आदि योगविद्या। मूलकर्म-मंत्र, औषधि आदि के द्वारा वशीकरण आदि का प्रयोग।

४. कर्मयोग--कम्म शब्द के दो संस्कृत रूप किए जा सकते हैं--काम्य और कर्म। इन दोनों का तात्पर्यार्थ मोहनकर्म किया जा सकता है। यह सम्मोहन की विद्या है। इसके द्वारा व्यक्ति को सम्मोहित कर अपनी इच्छानुसार कार्य करवाया जा सकता है।

५. हृदयोड्डापन-कायोड्डापन--ये दोनों मोहनकर्म के अन्तर्गत आते हैं।

६. आभियोगिक--दूसरे को अभिभूत अथवा पराजित करने वाला प्रयोग।

सूत्र-५६

३. राजलक्षण सम्पन्न (रायलक्खणसंपन्ने)

सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार राजा के लक्षण, चक्र स्वस्तिक, अंकुश आदि होते हैं और योग्यता की दृष्टि से त्याग, सत्य, शौर्य आदि गुण हैं।[५]

---

१. उत्तरज्झयणाणि २४/३

२. वही २४/१

३. भारतीय तंत्र विद्या, पृ. ६६, ७४

४. ज्ञातावृत्ति, पत्र-१९५--चुण्णजोए त्ति--द्रव्यचूर्णानां योगः स्तम्भनादि-कर्मकारी।

५. उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति पत्र-४८९--राजेव राजा तस्य लक्षणानि-चक्रस्वस्तिकाङ्कुशादीनि त्यागसत्यशौर्यादीनि वा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

प्रस्तुत अध्ययन में नन्दीवृक्ष के फल की प्रियता और परिणाम के माध्यम से इन्द्रियविषयों की प्रियता व परिणाम का संबोध कराया गया है। इसलिए इस अध्ययन का नाम नन्दीफल है। नन्दीफल दिखने में सुन्दर, खाने में स्वादिष्ट पर परिणाम में विरस होते हैं।

जो इन वृक्षों के मूल, कन्द, फल, फूल आदि का उपभोग करता है अथवा उनकी छाया में विश्राम करता है, वह कुछ समय के लिए प्रियता और तृप्ति का अनुभव करता है। कुछ समय पश्चात् परिणति होने पर वह असमय में ही मृत्यु का ग्रास बन जाता है। धर्म की आराधना का लक्ष्य है--मोक्ष। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए यात्रा करने वाला यदि विषयों की प्रियता में ही लुब्ध हो जाता है, लक्ष्य तक पहुंच नहीं पाता। इसलिए दृष्टि हमेशा परिणाम पर रहे, प्रियता पर नहीं। यह इस अध्ययन का मुख्य प्रतिपाद्य है।

प्राचीन काल में यात्राएं होती तो पूरा सार्थ एक साथ चलता। अनेक साधु-सन्यासी, परिव्राजक आदि भी उस सार्थ के साथ ही यात्रा करते। सार्थवाह जो निर्देश देता, सार्थ का हर सदस्य उसका पालन करता। मार्ग में सभी सदस्यों की सुरक्षा का दायित्व सार्थवाह के कंधों पर होता। प्रस्तुत अध्ययन में धन सार्थवाह की जागरूकता और दायित्वशीलता का सुन्दर प्रतिपादन है।

वृत्तिकार ने धन सार्थवाह की आज्ञा के समान तीर्थंकर की देशना को माना है। जिन यात्रियों ने सार्थवाह की आज्ञा के शिरोधार्य कर नन्दीफलों का भोग नहीं किया, वे अपनी नगरी में सुरक्षित लौट आए। इसी प्रकार जो तीर्थंकरों की आज्ञा की आराधना करता है, अपने लक्ष्य तक पहुंचने में सफल हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पण्णरसमं अज्झयणं : पन्द्रहवां अध्ययन

नंदीफले : नन्दीफल

उक्खेव-पदं

१. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं चोद्दसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, पण्णरसमस्स णं भंते! नायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

२. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नाम नयरी होत्था। पुण्णभद्दे चेइए। जियसत्तू राया।।

३. तत्थ णं चंपाए नयरीए धणे नामं सत्थवाहे होत्था--अड्ढे जाव अपरिभूए।।

४. तीसे णं चंपाए नयरीए उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए अहिच्छत्ता नाम नयरी होत्था--रिद्धत्थिमिय-समिद्धा वण्णओ।।

५. तत्थ णं अहिच्छत्ताए नयरीए कणगकेऊ नामं राया होत्था--महया वण्णओ।।

धणस्स घोसणा-पदं

६. तए णं तस्स धणस्स सत्थवाहस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्त-कालसमयंसि इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--सेयं खलु मम विपुलं पणियभंडमायाए अहिच्छत्तं नयरिं वाणिज्जाए गमित्तए--एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता गणिमं च धरिमं च मेज्जं च पारिच्छेज्जं च--चउव्विहं भंडं गेण्हइ, गेण्हित्ता सगडी-सागडं सज्जेइ, सज्जेत्ता सगडी-सागडं भरेइ, भरेत्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! चंपाए नयरीए सिंघाडग जाव महापहपहेसु (उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा?) एवं वयह--एवं खलु देवाणुप्पिया! धणे सत्थवाहे विपुलं पणियं आदाय इच्छइ अहिच्छत्तं नयरिं वाणिज्जाए गमित्तए। तं जो णं देवाणुप्पिया! चरए वा चीरिए वा चम्मखंडिए वा भिच्छुंडे वा पंडुरंगे वा गोयमे वा गोव्वतिए वा गिहिधम्मे वा धम्मचिंतए वा अविरुद्ध-विरुद्ध-वुड्ढसावग-रत्तपड-निग्गंथप्पभिई पासंडत्थे वा गिहत्थे वा धणेणं सत्थवाहेणं सद्धिं अहिच्छत्तं नयरिं गच्छइ, तस्स णं धणे सत्थवाहे अच्छत्तगस्स छत्तगं दलयइ, अणुवाहणस्स उवाहणाओ दलयइ, अकुंडियस्स कुंडियं दलयइ, अपत्थयणस्स पत्थयणं दलयइ,

उत्क्षेप-पद

१. भन्ते! यदि श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के चौदहवें अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है, तो भन्ते! उन्होंने ज्ञाता के पन्द्रहवें अध्ययन का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

२. जम्बू! उस काल और उस समय चम्पा नाम की नगरी थी। पूर्णभद्र चैत्य था। जितशत्रु राजा था।

३. उस चम्पा नगरी में धन नाम का सार्थवाह था--आढ्य यावत् अपराजित।

४. उस चम्पा नगरी के ईशान कोण में अहिच्छत्रा नाम की नगरी थी। वह ऐश्यर्वशाली, शान्त और समृद्ध थी--वर्णन वाची आलापक।

५. उस अहिच्छत्रा नगरी में कनककेतु नाम का राजा था, वह महान था--वर्णन वाची आलापक।

धन का घोषणा-पद

६. एक बार मध्यरात्रि के समय धन सार्थवाह के मन में इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--मेरे लिए उचित है, मैं विपुल पण्य-क्रयाणक लेकर वाणिज्य के लिए अहिच्छत्रा नगरी जाऊं--उसने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर गणनीय, धरणीय, मेय और परिच्छेद्य-रूप चतुर्विध क्रयाणक ग्रहण किया। ग्रहण कर छोटे-बड़े वाहन सज्जित किए। सज्जित कर छोटे-बड़े वाहन भरे। भर कर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम जाओ और चम्पानगरी के दोराहों यावत् राजमार्गों और मार्गों में बार-बार--उद्घोषणा करते हुए? इस प्रकार कहो--देवानुप्रियो! धन सार्थवाह विपुल पण्य लेकर वाणिज्य के लिए अहिच्छत्रा नगरी जाना चाहता है। अत: जो भी चरक, चीरिक, चर्मखण्डिक, भिक्षाजीवी, पाण्डुरंग, गौतम, गौव्रतिक, गृहिधर्मा, धर्मचिन्तक, अविरुद्ध--वैनयिक, विरुद्ध--अक्रियावादी, वृद्धश्रावक, रक्तपट और निर्ग्रन्थ आदि सम्प्रदायों के पाषण्डी--व्रती अथवा गृहस्थ धन सार्थवाह के साथ अहिच्छत्रा नगरी जाएगा, तो धन सार्थवाह जिसके पास छत्र नहीं है, उसे छत्र देगा। जिसके पास जूते नहीं है, उसे जूते देगा। जिसके पास कुण्डिका नहीं है, उसे कुण्डिका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपक्खेवगस्स पक्खेवं दलयइ, अंतरा वि य से पडियस्स वा भग्गलुग्गस्स साहेज्जं दलयइ, सुहंसुहेण य अहिच्छत्तं संपावेइ त्ति कट्टु दोच्चंपि तच्चंपि घोसणं घोसेह, घोसेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।।

देगा। जिसके पास पाथेय नहीं है, उसे पाथेय देगा। जिसका पाथेय मार्ग में समाप्त हो जाएगा, उसके भोजन की पुन: व्यवस्था करेगा। मार्ग में भी वह पतित, भग्न और रुग्ण को सहयोग देगा और सुखपूर्वक उसे अहिच्छत्रा नगरी पहुंचाएगा—इस प्रकार तुम दूसरी-तीसरी बार भी यह घोषणा करो। घोषणा कर इस आज्ञा को पुन: मुझे प्रत्यर्पित करो।

७. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा धणेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा चंपाए नयरीए सिंघाडग जाव महापहपहेसु एवं वयासी--हंदि सुणंतु भगवंतो! चंपानयरीवत्थव्वा! बहवे चरगा! वा जाव गिहत्था! वा, जो णं धणेणं सत्थवाहेणं सद्धिं अहिच्छत्तं नयरिं गच्छइ, तस्स णं धणे सत्थवाहे अच्छत्तगस्स छत्तगं दलयइ जाव सुहंसुहेण य अहिच्छत्तं संपावेइ त्ति कट्टु दोच्चंपि तच्चंपि घोसणं घोसेत्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।।

७. धन सार्थवाह के ऐसा कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुए कौटुम्बिक पुरुषों ने चम्पा नगरी के दोराहों यावत् राजमार्गों और मार्गों में घोषणा करते हुए कहा--हे भगवन्तो![१] सुनें, चम्पा-नगरी निवासियो! चरको! यावत् गृहस्थो! जो व्यक्ति धन सार्थवाह के साथ अहिच्छत्रा नगरी जाएगा, तो धन सार्थवाह जिसके पास छत्र नहीं है, उसे छत्र देगा यावत् सुखपूर्वक अहिच्छत्रा पहुंचाएगा। उन्होंने इस प्रकार दूसरी-तीसरी बार भी यह घोषणा की और उस आज्ञा को पुन: प्रत्यर्पित किया।

८. तए णं तेसिं कोडुंबियपुरिसाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा चंपाए नयरीए बहवे चरगा य जाव गिहत्था य जेणेव धणे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छंति ।।

८. कौटुम्बिक पुरुषों के पास यह अर्थ सुनकर चम्पानगरी के बहुत से चरक यावत् गृहस्थ जहां धन सार्थवाह था, वहां आए।

९. तए णं धणे सत्थवाहे तेसिं चरगाण य जाव गिहत्थाण य अच्छत्तगस्स छत्तं दलयइ जाव अपत्थयणस्स पत्थयणं दलयइ, दलयित्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! चंपाए नयरीए बहिया अग्गुज्जाणंसि ममं पडिवालेमाणा-पडिवालेमाणा चिट्ठह ।।

९. धन सार्थवाह ने उन चरकों यावत् गृहस्थों को जिनके पास छत्र नहीं थे, उन्हें छत्र दिये यावत् जिनके पास पाथेय नहीं था, उन्हें पाथेय दिया। देकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! जाओ और चम्पानगरी के बाहर प्रधान उद्यान में मेरी प्रतीक्षा करते हुए ठहरो।

१०. तए णं से चरगा य जाव गिहत्था य धणेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा चंपाए नयरीए बहिया अग्गुज्जाणंसि धणं सत्थवाहं पडिवालेमाणा-पडिवालेमाणा चिट्ठंति ।।

१०. धन सार्थवाह के ऐसा कहने पर वे चरक यावत् गृहस्थ चम्पानगरी के बाहर प्रधान उद्यान में धन सार्थवाह की प्रतीक्षा करने लगे।

धणस्स निद्देस-पदं

११. तए णं धणे सत्थवाहे सोहणंसि तिहि-करण-नक्खत्तंसि विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं आमंतेइ, आमंतेत्ता भोयणं भोयावेइ, भोयावेत्ता आपुच्छइ, आपुच्छित्ता सगडी-सागडं जोयावेइ, जोयावेत्ता चंपाओ नयरीओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता नाइविप्पगिट्ठेहिं अद्धाणेहिं वसमाणे-वसमाणे सुहेहिं वसहि-पायरासेहिं अंगं जणवयं मज्झंमज्झेणं जेणेव देसग्गं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सगडी-सागडं मोयावेइ, सत्थनिवेसं करेइ, करेत्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--तुब्भे णं देवाणुप्पिया! मम सत्थनिवेसंसि महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एवं वयह--एवं खलु देवाणुप्पिया! इमीसे आगामियाए छिण्णावायाए दीहमद्धाए अडवीए बहुमज्झदेसभाए, एत्थ णं बहवे नंदिफला

धन का निर्देश-पद

११. धन सार्थवाह ने शोभन तिथि, करण और नक्षत्र में विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवाया। तैयार करवाकर मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनों को आमन्त्रित किया। आमन्त्रित कर भोजन करवाया। भोजन करवाकर उन्हें पूछा। पूछकर छोटे-बड़े वाहन जुताए। जुताकर चम्पा नगरी से निष्क्रमण किया। निष्क्रमण कर थोड़ी-थोड़ी दूर पर मार्ग में ठहरता-ठहरता सुखपूर्वक निवास करता-करता और प्रातराश करता-करता, अंग जनपद के बीचोंबीच होते हुए जहां अंग-देश की सीमा थी, वहां आया। वहां आकर छोटे-बड़े वाहनों को मुक्त करवाया। सार्थ को ठहराया। ठहराकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम मेरे सार्थ के शिविर में ऊंचे-ऊंचे स्वर में बार-बार उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहो--इस आने वाली,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नामं रुक्खा—किण्हा जाव पत्तिया पुप्फिया फलिया हरिया रेरिज्जमाणा सिरीए अईव-अईव उवसोभेमाणा चिट्ठंति--मणुण्णा वण्णेणं मणुण्णा गंधेणं मणुण्णा रसेणं मणुण्णा फासेणं मणुण्णा छायाए।

तं जो णं देवाणुप्पिया! तेसिं नंदिफलाणं रुक्खाणं मूलाणि वा कंदाणि वा तयाणि वा पत्ताणि वा पुप्फाणि वा फलाणि वा बीयाणि वा हरियाणि वा आहारेइ, छायाए वा वीसमइ, तस्स णं आवाए भद्दए भवइ। तओ पच्छा परिणममाणा-परिणममाणा अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेंति। तं मा णं देवाणुप्पिया! केइ तेसिं नंदिफलाणं मूलाणि वा जाव हरियाणि वा आहरउ, छायाए वा वीसमउ, मा णं से वि अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जिस्सउ। तुब्भे णं देवाणुप्पिया! अण्णेसिं रुक्खाणं मूलाणि य जाव हरियाणि य आहारेह, छायासु वीसमह त्ति घोसणं घोसेह, घोसेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। ते वि तहेव घोसणं घोसेत्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।।

आवागमन रहित, प्रलम्ब मार्ग वाली अटवी के ठीक मध्यभाग में यहां नन्दीफल नाम के बहुत से वृक्ष हैं। वे कृष्ण यावत् पल्लवित, पुष्पित, फलित, हरीतिमा से आकर्षक और श्री से अतीव-अतीव उपशोभित हैं। वे वर्ण से मनोज्ञ, गंध से मनोज्ञ, स्पर्श से मनोज्ञ और छाया से मनोज्ञ हैं।

अत: देवानुप्रियो! जो उन नन्दीफल वृक्षों के मूल, कन्द, छाल, पत्ते, फूल, फल, बीज अथवा हरित खाता है अथवा छाया में विश्राम करता है, वह उसके लिए आपातभद्र होता है। तत्पश्चात् परिणत होते-होते वे असमय में ही जीवन का विनाश कर देते हैं।

अत: देवानुप्रियो! कोई भी उन नन्दीफलों के मूल यावत् हरित न खाए। उनकी छाया में विश्राम न करे। जिससे असमय में ही उसके जीवन का विनाश न हो। देवानुप्रियो! तुम अन्य वृक्षों के मूल यावत् हरित खाओ और उनकी छाया में विश्राम करो--तुम यह घोषणा करो। यह घोषणा कर इस आज्ञा को पुन: मुझे प्रत्यर्पित करो। उन्होंने भी वैसे ही घोषणा कर, उस आज्ञा को पुन: प्रत्यर्पित किया।

१२. तए णं धणे सत्थवाहे सगडी-सागडं जोएइ, जोएत्ता जेणेव नंदिफला रुक्खा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तेसिं नंदिफलाणं अदूरसामंते सत्थनिवेसं करेइ, करेत्ता दोच्चंपि तच्चंपि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--तुब्भे णं देवाणुप्पिया! मम सत्थनिवेसंसि महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एवं वयह--एए णं देवाणुप्पिया! ते नंदिफला रुक्खा किण्हा जाव मणुण्णा छायाए।

तं जो णं देवाणुप्पिया! एएसिं नंदिफलाणं रुक्खाणं मूलाणि वा कंदाणि वा तयाणि वा पत्ताणि वा पुप्फाणि वा फलाणि वा बीयाणि वा हरियाणि वा आहारेइ जाव अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेइ। तं मा णं तुब्भे तेसिं नंदिफलाणं मूलाणि वा जाव आहारेह, छायाए वा वीसमह, मा णं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जिस्सह, अण्णेसिं रुक्खाणं मूलाणि य जाव आहारेह, छायाए वा वीसमह त्ति कट्टु घोसणं घोसेह, घोसेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। ते वि तहेव घोसणं घोसेत्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।।

१२. धन सार्थवाह ने छोटे-बड़े वाहन जुतवाए। जुतवाकर[1] जहां नन्दीफल वृक्ष थे, वहां पहुंचा। पहुंचकर उन नन्दीफलों के आस-पास सार्थ को ठहराया। ठहराकर दूसरी-तीसरी बार भी कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम मेरे सार्थ के शिविर में ऊंचे-ऊंचे स्वर से बार-बार उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! ये ही वे नन्दीफल वृक्ष हैं, जो कृष्ण यावत् छाया से मनोज्ञ हैं।

देवानुप्रियो!-जो भी इन नन्दीफल वृक्षों के मूल, कन्द, छाल, पत्ते, फूल, फल, बीज अथवा हरित खाता है यावत् वह अकाल में ही जीवन का विनाश करता है। अत: तुम लोग उन नन्दीफलों के मूल यावत् हरित मत खाना। उनकी छाया में विश्राम मत करना। जिससे अकाल में ही जीवन का विनाश न हो। तुम लोग अन्य वृक्षों के मूल यावत् हरित खाओ और उनकी छाया में विश्राम करो। ऐसी घोषणा करो। घोषणा कर इस आज्ञा को पुन: मुझे प्रत्यर्पित करो। उन्होंने भी वैसी ही घोषणा कर, उस आज्ञा को पुन: प्रत्यर्पित किया।

निद्देसपालणस्स निगमण-पदं

१३. तत्थ णं अत्थेगइया पुरिसा धणस्स सत्थवाहस्स एयमट्ठं सद्दहंति पत्तियंति रोयंति, एयमट्ठं सद्दहमाणा पत्तियमाणा रोयमाणा तेसिं नंदिफलाणं दूरंदूरेणं परिहरमाणा-परिहरमाणा अण्णेसिं रुक्खाणं मूलाणि य जाव आहारेंति, छायासु वीसमंति। तेसि णं आवाए नो भद्दए भवइ, तओ पच्छा परिणममाणा-परिणममाणा सुभरूवत्ताए सुभगंधत्ताए सुभरसत्ताए सुभफासत्ताए सुभछायत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमंति।।

निर्देश-पालन का निगमन-पद

१३. वहां कुछ पुरुषों ने धन सार्थवाह के इस अर्थ पर श्रद्धा की, प्रतीति की और रुचि की। उस अर्थ पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि करते हुए, उन नन्दीफलों का दूर-दूर से ही परिहार करते हुए अन्य वृक्षों के मूल यावत् हरित खाया और उनकी छाया में विश्राम किया। वह उनके लिए आपातभद्र नहीं हुआ। उसके पश्चात् परिणत होते-होते वे शुभ रूप, शुभ गंध, शुभ रस, शुभ स्पर्श और शुभ छाया के रूप में पुन: पुन: परिणत हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे पंचसु कामगुणेसु नो सज्जइ नो रज्जइ नो गिज्झइ नो मुज्झइ नो अज्झोववज्जइ, से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावगाणं बहूणं सावियाण य अच्चणिज्जे भवइ, परलोए वि य णं नो बहूणि हत्थछेयणाणि य कण्णछेयणाणि य नासाछेयणाणि य एवं--हिययउप्पायणाणि य वसणुप्पायणाणि उल्लंबणाणि य पाविहिइ, पुणो अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइस्सइ--जहा व ते पुरिसा।।

१४. आयुष्मन् श्रमणो! इसी प्रकार हमारा जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य, उपाध्याय के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित हो, पांच काम गुणों में न आसक्त होता है, न अनुरक्त होता है, न गृद्ध होता है, न मूढ़ होता है और न अध्युपपन्न होता है, वह इस जीवन में भी बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों और बहुत श्राविकाओं द्वारा अर्चनीय होता है और परलोक में भी वह बहुत हस्त-छेदन, कर्ण-छेदन, नासा-छेदन तथा इसी प्रकार हृदय उत्पाटन, वृषण-उत्पाटन और फांसी को प्राप्त नहीं होता। वह अनादि-अनन्त, प्रलम्ब-मार्ग और चार अन्त वाले संसार रूपी कान्तार का पार पा लेता है, जैसे वे पुरुष।

निद्देसाऽपालणस्स निगमण-पदं

१५. तत्थ णं अप्पेगइया पुरिसा धणस्स एयमट्ठं नो सद्दहंति नो पत्तियंति नो रोयंति, धणस्स एयमट्ठं असद्दहमाणा अपत्तियमाणा अरोयमाणा जेणेव ते नंदिफला तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तेसिं नंदिफलाणं मूलाणि य जाव आहारंति, छायासु वीसमंति। तेसि णं आवाए भद्दए भवइ, तओ पच्छा परिणममाणा-परिणममाणा अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेंति।।

निर्देश के अपालन का निगमन-पद

१५. वहां कुछ पुरुषों ने धन सार्थवाह के इस अर्थ पर न श्रद्धा की, न प्रतीति की और न रुचि की। वे इस अर्थ पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि न करते हुए जहां नन्दीफल थे, वहां आए। वहां आकर उन नन्दीफलों के मूल यावत् हरित खाए और उनकी छाया में विश्राम किया। वह उनके लिए आपातभद्र हुआ, उसके पश्चात् परिणत होते-होते अकाल में ही जीवन का विनाश कर दिया।

१६. एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिए-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे पंचसु कामगुणेसु सज्जइ रज्जइ गिज्झइ मुज्झइ अज्झोववज्जइ, से णं इहभवे जाव अणादियं च णं अणवयग्गं दीहमद्धं संसारकंतारं भुज्जो-भुज्जो अणुपरियट्टिस्सइ--जहा व ते पुरिसा।।

१६. आयुष्मन् श्रमणो! इसी प्रकार हमारा जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य, उपाध्याय के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित हो, पांच काम गुणों में आसक्त होता है, अनुरक्त होता है, गृद्ध होता है, मूढ़ होता है और अध्युपपन्न होता है, वह इस जीवन में भी यावत् अनादि-अनन्त, प्रलम्ब-मार्ग वाले संसार रूपी कान्तार में पुनः पुनः अनुपरिवर्तन करता है, जैसे वे पुरुष।

धणस्स अहिच्छत्ताऽगमण-पदं

१७. तए णं से धणे सत्थवाहे सगडी-सागडं जोयावेइ, जोयावेत्ता जेणेव अहिच्छत्ता नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहिच्छत्ताए नयरीए बहिया अग्गुज्जाणे सत्थनिवेसं करेइ, करेत्ता सगडी-सागडं मोयावेइ।।

धन का अहिच्छत्रा आगमन-पद

१७. धन सार्थवाह ने छोटे-बड़े वाहन जुताए। जुतवाकर जहां अहिच्छत्रा नगरी थी, वहां आया। वहां आकर अहिच्छत्रा नगरी के बाहर प्रधान उद्यान में सार्थ को ठहराया। ठहराकर छोटे-बड़े वाहनों को मुक्त किया।

१८. तए णं से धणे सत्थवाहे महत्थं महग्घं महरिहं रायारिहं पाहुडं गेण्हइ, गेण्हित्ता बहुपुरिसेहिं सद्धिं संपरिवुडे अहिच्छत्तं नयरिं मज्झंमज्झेणं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव कणगकेऊ राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता तं महत्थं महग्घं महरिहं रायारिहं पाहुडं उवणेइ।।

१८. धन सार्थवाह ने महान अर्थवान, महान मूल्यवान, महान अर्हतावाला और राजाओं के योग्य उपहार लिया। उपहार लेकर बहुत से पुरुषों के साथ उनसे परिवृत हो, अहिच्छत्रा नगरी के बीचोंबीच प्रवेश किया। प्रवेश कर जहां कनककेतु राजा था, वहां आया। वहां आकर जुड़ी हुई, सिर पर प्रदक्षिणा करती अञ्जलि को मस्तक पर टिकाकर, जय-विजय की ध्वनि से वर्धापन किया। वर्धापन कर महान अर्थवान, महान मूल्यवान, महान अर्हतावाला और राजाओं के योग्य उपहार भेंट किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. तए णं से कणगकेऊ राया हट्ठतुट्ठे धणस्स सत्थवाहस्स तं महत्थं महग्घं महरिहं रायारिहं पाहुडं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता धणं सत्थवाहं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता उस्सुक्कं वियरइ, वियरित्ता पडिविसज्जेइ, भंडविणिमयं करेइ, करेत्ता पडिभंडं गेण्हइ, गेण्हित्ता सुहंसुहेणं जेणेव चंपा नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेणं सद्धिं अभिसमण्णागए विपुलाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं पच्चणुभवमाणे विहरइ।।

१९. राजा कनककेतु ने हृष्ट-तुष्ट हो धन सार्थवाह के महान अर्थवान, महान मूल्यवान, महान अर्हतावाला और राजाओं के योग्य उपहार को स्वीकार किया। स्वीकार कर धन सार्थवाह को सत्कृत किया। सम्मानित किया। सत्कृत-सम्मानित कर उसे करमुक्त किया। करमुक्त कर प्रतिविसर्जित कर दिया। धन सार्थवाह ने क्रयाणक का विनिमय किया। विनिमय कर दूसरा क्रयाणक लिया। लेकर सुखपूर्वक जहां चम्पा नगरी थी, वहां आया। वहां आकर मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनों से अभिसमन्वागत होकर मनुष्य सम्बन्धी विपुल भोगार्ह भोगों का अनुभव करता हुआ विहार करने लगा।

धणस्स पव्वज्जा-पदं

२०. तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरागमणं।।

धन का प्रव्रज्या-पद

२०. उस काल और उस समय स्थविरों का आगमन हुआ।

२१ धणे सत्थवाहे धम्मं सोच्चा जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठावेत्ता पव्वइए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता, बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेत्ता, अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववण्णे।

महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ परिनिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणमंतं करेहिइ।।

२१. धन सार्थवाह धर्म को सुनकर, ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित कर प्रव्रजित हुआ। सामायिक आदि ग्यारह अंग पढ़कर बहुत वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालन किया और मासिक संलेखना की आराधना में स्वयं को समर्पित कर किसी एक देवलोक में देव रूप में उत्पन्न हुआ। वह महाविदेह वर्ष में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होगा तथा सब दु:खों का अन्त करेगा।

निक्खेव-पदं

२२. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं पण्णरसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

—त्ति बेमि।।

निक्षेप-पद

२२. जम्बू! इस प्रकार धर्म के आदिकर्ता यावत् सिद्धिगति संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के पन्द्रहवें अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

—ऐसा मैं कहता हूं।

वृत्तिकृता समुद्धृता निगमनगाथा

चंपा इव मणुयगई, धणोव्व भयवं जिणो दएक्करसो।
अहिच्छत्ता नयरिसमं, इह निव्वाणं मुणेयव्वं ।।१।।
घोसणया इव तित्थंकरस्स सिवमग्गदेसणमहग्घं।
चरगाइणो व्व एत्थं, सिवसुहकामा जिया बहवे।।२।।
नंदिफलाइ व्व इहं, सिवपहपडिपण्णगाण विसया उ।
तब्भक्खणाओ मरणं, जह तह विसएहि संसारो।।३।।
तव्वज्जणेण जह इट्ठपुरगमो विसयवज्जणेण तहा।
परमानंदनिबंधण-सिवपुरगमणं मुणेयव्वं।।४।।

वृत्तिकार द्वारा समुद्धृत निगमन-गाथा

१. चम्पा के समान मनुष्य गति है। धन सार्थवाह के समान एक मात्र दया रस से परिपूरित जिनेश्वर भगवान हैं। अहिच्छत्रा नगरी के समान निर्वाण है, ऐसा इस (उपनय) में समझना चाहिए।
२. धन की घोषणा के समान, शिव-मार्ग-दर्शक महामूल्य तीर्थंकर की देशना है। चरक आदि के समान मोक्ष-सुख के अभिलाषी बहुत से जीव हैं।
३. शिव-पथ-प्रतिपन्न व्यक्तियों के लिए विषय नंदी-फलों के समान हैं। जैसे--नन्दीफलों के भक्षण से मृत्यु होती है, वैसे ही विषयों से संसार बढ़ता है।
४. जैसे नन्दीफलों के वर्जन से इष्ट नगरी में गमन हो सका, वैसे ही विषयों के वर्जन से मोक्ष-गमन हो सकता है, वह मोक्ष परमानन्द की प्राप्ति का हेतु है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

सूत्र-६

१. **चरक.......व्रती (चरए........पासंडत्थे)**

चरक, चीरिक आदि शब्दों के लिए द्रष्टव्य--अणुओगदाराइं सूत्र २० का टिप्पण।

सूत्र-७

२. **भगवन्तो (भगवंतो)**

यहां भगवान शब्द का प्रयोग ऐश्वर्यशाली के लिए किया गया है।

सूत्र-१२

३. **जुतवाता है, जुतवाकर (जोएइ, जोएत्ता)**

अर्थ की दृष्टि से यहां जोयावेइ जोयावेत्ता पाठ होना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

प्रस्तुत अध्ययन में वर्णित घटना का मुख्य स्थान अवरकंका है अत: इसका नाम अवरकंका रखा गया।

समय क्षेत्र (मनुष्य लोक) के मुख्य तीन विभाग हैं--जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड तथा पुष्करार्द्ध। अवरकंका राजधानी की अवस्थिति धातकीखण्ड द्वीप के भारतवर्ष में है। वहां के राजा पद्मनाभ ने नारद के मुख से द्रौपदी के सौन्दर्य का वर्णन सुना। उसमें आसक्त होकर उसने द्रौपदी का अपहरण करवा लिया। वासुदेव श्रीकृष्ण ने पद्मनाभ को पराजित कर द्रौपदी को मुक्त करवाया।

अवरकंका ज्ञात में द्रौपदी के जीवन के दो वृत्तों का विस्तृत निरूपण हुआ है–

१. अतीत जीवन (सूत्र ४-११९)

२. वर्तमान जीवन (सूत्र १२०-३२४)

द्रौपदी के अतीत जीवन में मुख्यत: नागश्री ब्राह्मणी और श्रेष्ठी पुत्री सुकुमालिका का भव आता है। श्रेष्ठी पुत्री सुकुमालिका के भव में तपस्या और आतापना से उत्कृष्ट पुण्य का अर्जन किया। साथ ही शरीर के प्रति अति ममत्व एवं बकुशवृत्ति से निदान कर आगामी भवपरम्परा का बीजारोपण भी किया।

द्रौपदी के भव में उसके जन्म, स्वयंवर, अपहरण, खोज, युद्ध आदि का सविस्तर निरूपण हुआ है।

पाण्डव वीर थे; पर संकल्प दृढ़ न होने के कारण विजय पद्मनाभ की हुई। वासुदेव श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को उनकी पराजय का कारण बताया और विजय का संकल्प किया–**'अहं, णो पउमनाभे रायत्ति।'** फलत: वे विजयी हुए।

प्रस्तुत अध्ययन में अनेक घटनाओं का परिणाम सहित निरूपण हुआ है–

घटना	परिणाम
धर्मरुचि मुनि की अहिंसात्मक दृष्टि	सुगति और मोक्ष
निदान और वाकुशिकता	पंचपतित्व
अपरीक्षणीय की परीक्षा	निर्वासन

इस अध्ययन में देव-आराधन विधि, समुद्र से मार्ग की याचना, कृष्ण का नृसिंह रूप, दो वासुदेवों का परोक्ष मिलन आदि अनेक घटनाओं का निरूपण हुआ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोलसमं अज्झयणं : अध्ययन-सोलहवां

अवरकंका : अवरकंका

उक्खेव-पदं

१. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं पण्णरसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, सोलसमस्स णं भंते! नायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

२. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था।।

३. तीसे णं चंपाए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए सुभूमिभागे नामं उज्जाणे होत्था।।

नागसिरी-कहाणग-पदं

४. तत्थ णं चंपाए नयरीए तओ माहणा भायरो परिवसंति, तं जहा--सोमे सोमदत्ते सोमभूई--अड्ढा जाव अपरिभूया रिउव्वेय-जउव्वेय-सामवेय-अथव्वणवेय जाव बंभण्णएसु य सत्थेसु सुपरिनिट्ठिया।।

५. तेसि णं माहणाणं तओ भारियाओ होत्था, तं जहा--नागसिरी भूयसिरी जक्खसिरी--सुकुमालपाणिपायाओ जाव तेसि णं माहणाणं इट्ठाओ, तेहिं माहणेहिं सद्धिं विउले माणुस्सए कामभोए पच्चणुभवमाणीओ विहरंति।।

नागसिरीए तित्तालाउय-उवक्खडण-पदं

६. तए णं तेसिं माहणाणं अण्णया कयाइ एगयओ समुवागयाणं जाव इमेयारूवे मिहोकहा--समुल्लावे समुप्पज्जित्था--एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं इमे विउले धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण-संत-सार-सावएज्जे, अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ पकामं दाउं पकामं भोत्तुं पकामं परिभाएउं। तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया! अण्णमण्णस्स गिहेसु कल्लाकल्लिं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडेउं परिभुंजेमाणा णं विहरित्तए। अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, कल्लाकल्लिं अण्णमण्णस्स गिहेसु विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेंति, परिभुंजेमाणा विहरति।।

उत्क्षेप पद

१. भन्ते! यदि धर्म के आदिकर्त्ता यावत् सिद्धिगति संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के पन्द्रहवें अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है तो भंते! उन्होंने ज्ञाता के सोलहवें अध्ययन का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

२. जम्बू! उस काल और उस समय, चम्पा नाम की नगरी थी।

३. उस चम्पा नगरी के बाहर ईशान कोण में सुभूमिभाग नाम का उद्यान था।

नागश्री कथानक-पद

४. उस चम्पानगरी में तीन ब्राह्मण बन्धु रहते थे। जैसे--सोम, सोमदत्त, सोमभूति। वे आढ्य यावत् अपराजित थे। वे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद यावत् ब्राह्मण संबंधी शास्त्रों में सुपरिनिष्ठित थे।

५. उन ब्राह्मणों के तीन भार्या थी। जैसे--नागश्री, भूतश्री, यक्षश्री। वे तीनों सुकुमार हाथ-पांवों वाली यावत् उन ब्राह्मणों को इष्ट थीं। वे उन तीनों ब्राह्मणों के साथ मनुष्य-सम्बन्धी विपुल कामभोगों का अनुभव करती हुई विहार करती थीं।

नागश्री द्वारा तिक्त अलाबू का निष्पादन-पद

६. किसी समय एकत्र सम्मिलित उन ब्राह्मणों में परस्पर इस प्रकार का वार्तालाप हुआ--देवानुप्रियो! हमारे पास यह विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मौक्तिक, शंख, शिला, प्रवाल, पद्मराग-मणियां सार, (सुगन्धित द्रव्यवर्ग) और स्वापतेय है, जो सात पीढ़ी तक प्रचुर मात्रा में दान करने, प्रचुर मात्रा में भोगने और प्रचुर मात्रा में बांटने में पर्याप्त है।

अत: देवानुप्रियो! हमारे लिए उचित है हम प्रतिदिन एक दूसरे के घर विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार कर उसका परिभोग करते हुए विहार करें। उन्होंने परस्पर इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। प्रतिदिन एक दूसरे के घर विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवाते तथा उसका परिभोग करते हुए विहार करते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. तए णं तीसे नागसिरीए माहणीए अण्णया कयाइ भोयणवारए जाए यावि होत्था।।

७. किसी दिन उस नागश्री ब्राह्मणी का भोजन बनाने का क्रम आया।

८. तए णं सा नागसिरी विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडेइ, एगं महं सालइयं तित्तालाउयं बहुसंभारसंजुत्तं नेहावगाढं उवक्खडेइ, एगं बिंदुयं करयलंसि आसाएइ, तं खारं कडुयं अखज्जं विसभूयं जाणित्ता एवं वयासी--धिरत्थु णं मम नागसिरीए अधन्नाए अपुण्णाए दूभगाए दूभगसत्ताए दूभगनिंबोलियाए, जाए णं मए सालइए तित्तालाउए बहुसंभारसंभिए नेहावगाढे उवक्खडिए, सुबहुदव्वक्खए नेहक्खए य कए। तं जइ णं ममं जाउयाओ जाणिस्संति तो णं मम खिंसिस्संति। तं जाव ममं जाउयाओ न जाणंति ताव मम सेयं एयं सालइयं तित्तालाउयं बहुसंभारसंभियं नेहावगाढं एगंते गोवित्तए, अण्णं सालइयं महुरालाउयं बहुसंभार-संभियं नेहावगाढं उवक्खडित्तए--एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता तं सालइयं तित्तालाउयं बहुसंभारसंभियं नेहावगाढं एगंते गोवेइ, गोवेत्ता अण्णं सालइयं महुरालाउयं बहुसंभारसंभियं नेहावगाढं उवक्खडेइ, उवक्खडेत्ता तेसिं माहणाणं ण्हायाणं भोयणमंडवंसि सुहासणवरगयाणं तं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं परिवेसेइ।।

८. नागश्री ने विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार किया तथा वृक्ष की शाखा पर निष्पन्न एक बड़े तिक्त तुम्बे का प्रचुर मसाले और भरपूर स्नेह (घी-तेल) डालकर शाक बनाया। उसकी एक बून्द को हथेली में लेकर चखा। उसे खारा, कटु, अभक्ष्य और विष तुल्य जानकर इस प्रकार मन ही मन कहा--धिक्कार है, अधन्या, अपुण्या, दुर्भगा, दुर्भगसत्त्वा, दुर्भगनिम्बोलिका मुझ नागश्री को जिसने वृक्ष की शाखा पर निष्पन्न एक बड़े तिक्त तुम्बे का प्रचुर मसाले और भरपूर स्नेह डालकर शाक बनाया। बहुत से द्रव्यों को तथा स्नेह को खोया।

अतः मेरी देवरानियां यह जानेंगी तो वे मेरी कुत्सा करेंगी। इसलिए जब तक मेरी देवरानियों को पता न चले, तब तक मेरे लिए उचित है, मैं वृक्ष की शाखा पर निष्पन्न तिक्त तुम्बे के प्रचुर मसाले भरकर और भरपूर स्नेह डालकर बनाए गए इस शाक को एकान्त में छिपा दूं और वृक्ष की शाखा पर निष्पन्न मधुर तुम्बे का प्रचुर मसाला डालकर और भरपूर स्नेह डालकर दूसरा शाक बनाऊं। उसने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर वृक्ष की शाखा पर निष्पन्न तिक्त तुम्बे के प्रचुर मसाले भरकर और भरपूर स्नेह डालकर बनाए गए उस शाक को एकान्त में छिपा दिया। उसे छिपाकर मधुर तुम्बे का प्रचुर मसाले भरकर और भरपूर स्नेह डालकर दूसरा शाक बनाया। बनाकर स्नान कर भोजन-मण्डप में प्रवर सुखासन में आसीन उन ब्राह्मणों को विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य परोसा।

९. तए णं ते माहणा जिमियभुत्तुत्तरागया समाणा आयंता चोक्खा परमसुइभूया सकम्मसंपउत्ता जाया यावि होत्था।।

९. वे ब्राह्मण भोजनोपरान्त आचमन कर साफ सुथरे और परम पवित्र हो अपने-अपने कार्यों में संप्रयुक्त हो गये।

१०. तए णं ताओ माहणीओ ण्हायाओ जाव विभूसियाओ तं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं आहारेंति, जेणेव सयाइं गिहाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सकम्मसंपउत्ताओ जायाओ।।

१०. उन तीनों ब्राह्मणियों ने स्नान कर यावत् विभूषित हो, उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य को खाया और जहां अपने-अपने घर थे वहां आयीं। वहां आकर अपने-अपने कार्यों में संप्रयुक्त हो गईं।

धम्मरुइस्स तित्तालाउय-दाण-पदं

११. तेणं कालेणं तेणं समएणं धम्मघोसा नामं थेरा जाव बहुपरिवारा जेणेव चंपा नयरी जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति। परिसा निग्गया। धम्मो कहिओ। परिसा पडिगया।।

धर्मरुचि को तिक्त-अलाबू का दान-पद

११. उस काल और उस समय धर्मघोष नाम के स्थविर यावत् बहुत परिवार के साथ जहां चम्पा नगरी थी, जहां सुभूमिभाग उद्यान था, वहां आए। वहां आकर यथोचित अवग्रह--आवास को ग्रहण कर संयम और तप से स्वयं को भावित करते हुए विहार करने लगे। जनसमूह ने निर्गमन किया। धर्म कहा। जन समूह वापस चला गया।

१२. तए णं तेसिं धम्मघोसाणं थेराणं अंतेवासी धम्मरुई नामं अणगारे ओराले घोरे घोरगुणे घोरतवस्सी घोरबंभचेरवासी उच्छूढसरीरे

१२. उस समय स्थविर धर्मघोष के अन्तेवासी धर्मरुचि नाम के अनगार मास-मासखमण तप करते हुए विहार कर रहे थे। वे उदार, घोर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संखित्त-विउल-तेयलेस्से मासंमासेणं खममाणे विहरइ।।

घोर गुण वाले, घोर-तपस्वी, घोर ब्रह्मचर्यवासी, लघिमा ऋद्धि से सम्पन्न तथा विपुल तेजोलेश्या को अपने भीतर समेटे हुए थे।

१३. तए णं से धम्मरुई अणगारे मासखमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, बीयाए पोरिसीए झाणं झियाइ, एवं जहा गोयमसामी तहेव भायणाइं ओगाहेइ, तहेव धम्मघोसं थेरं आपुच्छइ जाव चंपाए नयरीए उच्च-नीअ-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे जेणेव नागसिरीए माहणीए गिहे तेणेव अणुपविट्ठे।।

१३. धर्मरुचि अनगार ने मासखमण के पारणक के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया। दूसरे प्रहर में ध्यान किया। इसी प्रकार गौतम स्वामी की भांति पात्र लिए, वैसे ही धर्मघोष स्थविर से पूछा यावत् चम्पा नगरी के ऊंच, नीच और मध्यम कुलों के घरों में सामुदानिक भिक्षाचर्या के लिए अटन करते हुए जहां नागश्री ब्राह्मणी का घर था वहां अनुप्रविष्ट हुए।

१४. तए णं सा नागसिरी माहणी धम्मरुइं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता तस्स सालइयस्स तित्तालाउयस्स बहुसंभारसंभियस्स नेहावगाढस्स एडणट्ठयाए हट्ठतुट्ठा उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं सालइयं तित्तालाउयं बहुसंभारसंभियं नेहावगाढं धम्मरुइस्स अणगारस्स पडिग्गहंसि सव्वमेव निसिरइ।।

१४. नागश्री ब्राह्मणी ने धर्मरुचि अनगार को आते हुए देखा। देखकर वह वृक्ष की शाखा पर निष्पन्न तिक्त तुम्बे के उस प्रचुर मसाले भरकर और भरपूर स्नेह डालकर बनाये गए शाक को प्रक्षिप्त करने के लिए हृष्ट-तुष्ट हो, स्फूर्ति के साथ उठी। उठकर जहां भक्तघर था वहां आयी। आकर वृक्ष की शाखा पर निष्पन्न तिक्त तुम्बे के उस प्रचुर मसाले भर कर और भरपूर स्नेह डालकर बनाये गए पूरे के पूरे शाक को धर्मरुचि अनगार के पात्र में डाल दिया।

१५. तए णं से धम्मरुई अणगारे अहापज्जत्तमित्ति कट्टु नागसिरीए माहणीए गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता चंपाए नयरीए मज्झंमज्झेणं पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे जेणेव धम्मघोसा थेरा तेणेव उवागच्छइ, धम्मघोसस्स (धम्मघोसाणं?) अदूरसामंते अन्नपाणं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता अन्नपाणं करयलंसि पडिदंसेइ।।

१५. मुझे जितना भोजन चाहिये उसके लिए यह पर्याप्त है--यह सोचकर धर्मरुचि अनगार ने नागश्री ब्राह्मणी के घर से प्रतिनिष्क्रमण किया। प्रतिनिष्क्रमण कर चम्पा नगरी के बीचोंबीच होकर चम्पा नगरी के बाहर गए। बाहर जाकर जहां सुभूमिभाग उद्यान था जहां धर्मघोष स्थविर थे, वहां आये। धर्मघोष स्थविर के न दूर न निकट स्थित होकर अन्नपान का प्रतिलेखन किया। प्रतिलेखन कर अन्न-पान के पात्र को हाथ में लेकर दिखलाया।

तित्तालाउय-परिट्ठावण-पदं

१६. तए णं धम्मघोसा थेरा तस्स सालइयस्स तित्तालाउयस्स बहुसंभारसंभियस्स नेहावगाढस्स गंधेणं अभिभूया समाणा तओ सालइयाओ तित्तालाउयाओ बहुसंभारसंभियाओ नेहावगाढाओ एगं बिंदुयं गहाय करयलंसि आसादेंति, तित्तगं खारं कडुयं अखज्जं अभोज्जं विसभूयं जाणित्ता धम्मरुइं अणगारं एवं वयासी--जइ णं तुमं देवाणुप्पिया! एयं सालइयं तित्तालाउयं बहुसंभारसंभियं नेहावगाढं आहारेसि तो णं तुमं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि। तं मा णं देवाणुप्पिया! इमं सालइयं तित्तालाउयं बहुसंभारसंभियं नेहावगाढं आहरेसि, मा णं तुमं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि। तं गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! इमं सालइयं तित्तालाउयं बहुसंभारसंभियं नेहावगाढं एगंतमणावाए अचित्ते थंडिले परिट्ठवेहि, अण्णं फासुयं एसणिज्जं असण-पाण-खाइम-साइमं पडिगाहेत्ता आहारं आहारेहि।।

तिक्त अलाबू का परिष्ठापन-पद

१६. धर्मघोष स्थविर वृक्ष की शाखा पर निष्पन्न तिक्त तुम्बे के प्रचुर मसाले भरकर और भरपूर स्नेह डालकर बनाये गए उस शाक की गंध से अभिभूत हो गए। वृक्ष की शाखा पर निष्पन्न तिक्त तुम्बे के प्रचुर मसाले भरकर और भरपूर स्नेह डालकर बनाये गये उस शाक की एक बूंद को अपनी हथेली में लेकर चखा। उसे तिक्त, खारा, कटु, अखाद्य, अभोज्य और विष तुल्य जानकर धर्मरुचि अनगार से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! यदि तुम वृक्ष की शाखा पर निष्पन्न तिक्त तुम्बे के प्रचुर मसाले भरकर और भरपूर स्नेह डालकर बनाये गए इस शाक का आहार करोगे तो तुम अकाल में ही जीवन का विनाश कर दोगे। अत: देवानुप्रिय! इस वृक्ष की शाखा पर निष्पन्न तिक्त तुम्बे के प्रचुर मसाले भरकर और भरपूर स्नेह डालकर बनाए गये इस शाक का आहार मत करो। न तुम अकाल में ही अपने जीवन का विनाश करो।

अत: देवानुप्रिय! तुम जाओ वृक्ष की शाखा पर निष्पन्न तिक्त तुम्बे के प्रचुर मसाले भरकर और भरपूर स्नेह डालकर बनाये गए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस शाक का एकान्त, जनसञ्चारशून्य, अचित्त स्थण्डिल में परिष्ठापन करो और अन्य प्रासुक, एषणीय अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य को ग्रहण कर आहार करो।

१७. तए णं से धम्मरुई अणगारे धम्मघोसेणं थेरेणं एवं वुत्ते समाणे धम्मघोसस्स थेरस्स अंतियाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सुभूमिभागाओ उज्जाणाओ अदूरसामंते थंडिलं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता तओ सालइयाओ तित्तालाउयाओ बहुसंभारसंभियाओ नेहावगाढाओ एगं बिंदुगं गहाय थंडिलंसि निसिरइ।।

१७. स्थविर धर्मघोष के ऐसा कहने पर धर्मरुचि अनगार धर्मघोष स्थविर के पास से उठकर बाहर निकले। बाहर निकलकर सुभूमिभाग उद्यान के आसपास स्थण्डिल की प्रतिलेखना की। प्रतिलेखन कर वृक्ष की शाखा पर निष्पन्न तिक्त तुम्बे के उस प्रचुर मसाले भरकर और भरपूर स्नेह डालकर बनाए गए शाक से एक बून्द लेकर स्थण्डिल में डाली।

१८. तए णं तस्स सालइयस्स तित्तालाउयस्स बहुसंभारसंभियस्स नेहावगाढस्स गंधेणं बहूणि पिपीलिगासहस्साणि पाउब्भूयाणि। जा जहा य णं पिपीलिगा आहारेइ, सा तहा अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जइ।।

१८. वृक्ष की शाखा का पर निष्पन्न तिक्त तुम्बे के प्रचुर मसाले भरकर और भरपूर स्नेह डालकर बनाये गए शाक की गंध से वहां हजारों चींटियां आ गई। जिस चींटी ने जैसे ही उसे खाया, वैसे ही वह अकाल में ही विनष्ट हो गई।

अहिंसट्ठं तित्तालाउय-भक्खण-पदं

१९. तए णं तस्स धम्मरुइस्स अणगारस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--जइ ताव इमस्स सालइयस्स तित्तालाउयस्स बहुसंभारसंभियस्स एगंमि बिंदुगंमि पक्खित्तंमि अणेगाइं पिपीलिगासहस्साइं ववरोविज्जंति, तं जइ णं अहं एयं सालइयं तित्तालाउयं बहुसंभारसंभियं नेहावगाढं थंडिलंसि सव्वं निसिरामि तो णं बहूणं पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं वहकरणं भविस्सइ। तं सेयं खलु ममेयं सालइयं तित्तालाउयं बहुसंभारसंभियं नेहावगाढं सयमेव आहारित्तए, ममं चेव एएणं सरीरएणं निज्जाउ त्ति कट्टु एवं संपेहेइ संपेहेत्ता मुहपोत्तियं पडिलेहेइ, ससीसोवरियं कायं पमज्जेइ, तं सालइयं तित्तालाउयं बहुसंभारसंभियं नेहावगाढं बिलमिव पन्नगभूएणं अप्पाणेणं सव्वं सरीरकोट्ठगंसि पक्खिवइ।।

अहिंसा के लिए तिक्त अलाबू का भक्षण-पद

१९. धर्मरुचि अनगार के मन में इस प्रकार का आन्तरिक चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ। वृक्ष की शाखा पर निष्पन्न तिक्त तुम्बे के प्रचुर मसाले और भरपूर स्नेह डालकर बनाये गए इस शाक की एक बून्द डालते ही यदि हजारों चींटियां मरती हैं तो यदि मैं वृक्ष की शाखा पर निष्पन्न तिक्त तुम्बे के इस प्रचुर मसाले और भरपूर स्नेह डालकर बनाये गए समूचे शाक को स्थण्डिल में डालता हूं तो मैं बहुत से प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के वध का हेतु बन जाऊंगा। अतः मेरे लिए उचित है--मैं वृक्ष की शाखा पर निष्पन्न तिक्त तुम्बे के प्रचुर मशाले भरकर और भरपूर स्नेह डालकर बनाए गए इस शाक को स्वयं ही खा लूं। इससे मेरे ही शरीर का निर्याण हो जाए। ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर मुखवस्त्र का प्रतिलेखन किया। सिर सहित पूरे शरीर का प्रमार्जन किया और वृक्ष की शाखा पर निष्पन्न तिक्त तुम्बे के प्रचुर मसाले भरकर और भरपूर स्नेह डालकर बनाए गए इस समूचे शाक को बिल में प्रवेश करते हुए सांप की भांति आत्मभाव से अपने शरीर-कोष्ठक में डाल लिया।

धम्मरुइस्स समाहिमरण-पदं

२०. तए णं तस्स धम्मरुइस्स तं सालइयं तित्तालाउयं बहुसंभारसंभियं नेहावगाढं आहारियस्स समाणस्स मुहुत्तंतरेण परिणममाणंसि सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया--उज्जला विउला कक्खडा पगाढा चंडा दुक्खा दुरहियासा।।

धर्मरुचि का समाधि-मरण-पद

२०. वृक्ष की शाखा पर निष्पन्न एक बड़े तिक्त तुम्बे के प्रचुर मसाले भरकर और भरपूर स्नेह डालकर बनाए गए उस शाक को खाने के मुहूर्त्त भर पश्चात् उसका परिणमन होने पर धर्मरुचि अनगार के शरीर में उज्ज्वल, विपुल, कर्कश, प्रगाढ़, चण्ड, दुःखद और दुःसह्य वेदना प्रादुर्भूत हुई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. तए णं से धम्मरुई अणगारे अथामे अबले अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कमे अधारणिज्जमिति कट्टु आयारभंडगं एगंते ठवेइ, थंडिलं पडिलेहेइ, दब्भसंथारगं संथरेइ, दब्भसंथारगं दुरूहइ, पुरत्थाभिमुहे संपलियंकनिसण्णे करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी--नमोत्थु णं अरहंताणं जाव सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपत्ताणं। नमोत्थु णं धम्मघोसाणं थेराणं मम धम्मायरियाणं धम्मोवएसगाणं। पुव्विं पि णं मए धम्मघोसाणं थेराणं अंतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए जाव बहिद्धादाणे (पच्चक्खाए जावज्जीवाए?), इयाणिं पि णं अहं तेसिं चेव भगवंताणं अंतियं सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जाव बहिद्धादाणं पच्चक्खामि जावज्जीवाए। जहा खंदओ जाव चरिमेहिं उस्सासेहिं वोसिरामि त्ति कट्टु आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते कालगए।।

२१. वे धर्मरुचि अनगार अशक्त, निर्बल, वीर्यहीन तथा पुरुषार्थ और पराक्रम से शून्य हो गए। इस शरीर को धारण करना अशक्य है--यह सोचकर उन्होंने आचार-भण्डक-धर्मोपकरण एकान्त में रखे। स्थण्डिल की प्रतिलेखना की। डाभ का बिछौना बिछाया। डाभ के बिछौने पर आरूढ़ हुए और पूर्वाभिमुख हो, पर्यंकासन में बैठे, जुड़ी हुई सिर पर प्रदक्षिणा करती हुई अञ्जलि को मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार कहा--नमस्कार हो धर्म के आदिकर्ता यावत् सिद्धिगति नामक स्थान को संप्राप्त अर्हतों को।

नमस्कार हो, मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक, स्थविर धर्मघोष को। पहले भी मैंने धर्मघोष स्थविर के पास जीवन-पर्यन्त सर्व प्राणातिपात का प्रत्याख्यान किया था, यावत् जीवन-पर्यन्त सर्वपरिग्रह का प्रत्याख्यान किया था। मैं इस समय भी उन्हीं भगवान के परिपार्श्व में जीवन-पर्यन्त सर्व प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूं यावत् जीवन-पर्यन्त सर्व परिग्रह का प्रत्याख्यान करता हूं। स्कन्दक की भांति यावत् अन्तिम उच्छ्‌वास पर्यन्त शरीर का व्युत्सर्ग करता हूं--ऐसा कहकर आलोचना, प्रतिक्रमण कर, समाधि को प्राप्त हो कालगत हुए।

साहूहिं धम्मरुइस्स गवेसणा-पदं

२२. तए णं ते धम्मघोसा थेरा धम्मरुइं अणगारं चिरगयं जाणित्ता समणे निग्गंथे सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! धम्मरुई अणगारे मासक्खमणपारणगंसि सालइयस्स तित्तालाउयस्स बहुसंभारसंभियस्स नेहावगाढस्स निसिरणट्ठयाए बहिया निग्गए चिरावेइ। तं गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! धम्मरुइस्स अणगारस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेह।।

साधुओं द्वारा धर्मरुचि की गवेषणा-पद

२२. धर्मरुचि अनगार को बाहर गए हुए बहुत समय बीत चुका है--यह जानकर धर्मघोष स्थविर ने श्रमण-निर्ग्रन्थों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! धर्मरुचि अनगार को मासखमण के पारणक में (प्राप्त) वृक्ष की शाखा पर निष्पन्न तिक्त तुम्बे के प्रचुर मसाले भरकर और भरपूर स्नेह डालकर बनाए गए उस शाक के परिष्ठापन के लिए बाहर गए हुए बहुत समय हो गया है। अतः देवानुप्रियो! तुम जाओ और धर्मरुचि अनगार की चारों ओर मार्गणा-गवेषणा करो।

साहूहिं धम्मरुइस्स समाहिमरण-निवेदण-पदं

२३. तए णं ते समणा निग्गंथा धम्मघोसाणं थेराणं जाव तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता धम्मघोसाणं थेराणं अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता धम्मरुइस्स अणगारस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेमाणा जेणेव थंडिले तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता धम्मरुइस्स अणगारस्स सरीरगं निप्पाणं निच्चेट्ठं जीवविप्पजढं पासंति, पासित्ता हा हा अहो! अकज्जमिति कट्टु धम्मरुइस्स अणगारस्स परिनिव्वाणवत्तियं काउस्सग्गं करेंति, धम्मरुइस्स आयारभंडगं गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव धम्मघोसा थेरा तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता गमणागमणं पडिक्कमंति, पडिक्कमित्ता एवं वयासी--एवं खलु अम्हे तुब्भं अंतियाओ पडिनिक्खमामो, सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स परिपेरंतेणं धम्मरुइस्स अणगारस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेमाणा जेणेव थंडिले तेणेव उवागच्छामो जाव इहं हव्वमागया। तं कालगए णं भंते! धम्मरुई अणगारे। इमे से आयारभंडए।।

साधुओं द्वारा धर्मरुचि के समाधि-मरण का निवेदन-पद

२३. उन श्रमण-निग्रन्थों ने धर्मघोष स्थविर के यावत् आज्ञा वचन को 'तथास्तु' कहकर विनयपूर्वक स्वीकार किया। स्वीकार कर धर्मघोष स्थविर के पास से उठकर बाहर गए। बाहर जाकर धर्मरुचि अनगार की चारों ओर मार्गणा-गवेषणा करते हुए वे जहां स्थण्डिल था, वहां आए। वहां आकर धर्मरुचि अनगार के निष्प्राण, निश्चेष्ट और निर्जीव शरीर को देखा। देखकर हा ! हा! अहो! अनर्थ हो गया--ऐसा कहकर धर्मरुचि अनगार का परिनिर्वाण हेतुक कायोत्सर्ग किया। धर्मरुचि के आचार-भाण्डक-धर्मोपकरण लिए और जहां धर्मघोष स्थविर थे वहां आए। वहां आकर गमनागमन का प्रतिक्रमण किया। प्रतिक्रमण कर इस प्रकार कहा--भंते! हम आपके पास से उठकर बाहर गए। सुभूमिभाग उद्यान के आस-पास चारों ओर धर्मरुचि अनगार की मार्गणा-गवेषणा करते हुए हम जहां स्थण्डिल था, वहां आए यावत् शीघ्र ही यहां आए हैं। भंते! धर्मरुचि अनगार काल-प्राप्त हो गए हैं। ये उनके आचार-भाण्डक--धर्मोपकरण हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धम्मरुइस्स सइसभा-पदं

२४. तए णं ते धम्मघोसा थेरा पुव्वगए उवओगं गच्छंति, समणे निग्गंथे निग्गंथीओ य सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी--एवं खलु अज्जो! मम अंतेवासी धम्मरुई नामं अणगारे पगइभद्दए पगइउवसंते पगइपयणुकोहमाणमायालोभे मिउमद्दव-संपण्णे अल्लीणे भद्दए विणीए मासंमासेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे जाव नागसिरीए माहणीए गिहं अणुपविट्ठे। तए णं सा नागसिरी माहणी जाव तं सालइयं तित्तालाउयं बहुसंभारसंभियं नेहावगाढं धम्मरुइस्स अणगारस्स पडिग्गहंसि सव्वमेव निसिरइ।

तए णं से धम्मरुई अणगारे अहापज्जत्तमिति कट्टु नागसिरीए माहणीए गिहाओ पडिनिक्खमइ जाव समाहिपत्ते कालगए।

से णं धम्मरुई अणगारे बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा उड्ढं जाव सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे देवत्ताए उववण्णे। तत्थ णं अजहन्नमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। तत्थ णं धम्मरुइस्स वि देवस्स तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। से णं धम्मरुई देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं ठिइक्खएणं भवक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ।।

धर्मरुचि की स्मृति-सभा-पद

२४. धर्मघोष स्थविर ने पूर्वगत में उपयोग लगाया। श्रमण-निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थिकाओं को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--आर्यो! मेरा अन्तेवासी धर्मरुचि नाम का अनगार प्रकृति से भद्र, प्रकृति से उपशान्त, प्रकृति से प्रतनु क्रोध, मान, माया और लोभ वाला, मृदु-मार्दव-सम्पन्न, आत्मलीन, भद्र और विनीत था। वह निरन्तर मास-मास के तप: कर्म से स्वयं को भावित करता हुआ यावत् नागश्री ब्राह्मणी के घर में प्रविष्ट हुआ। नागश्री ब्राह्मणी ने वृक्ष की शाखा पर निष्पन्न तिक्त तुम्बे के प्रचुर मसाले और भरपूर स्नेह डालकर बनाए गए उस समूचे शाक को धर्मरुचि अनगार के पात्र में डाल दिया।

धर्मरुचि अनगार ने यह भोजन यथापर्याप्त है--यह सोचकर नागश्री ब्राह्मणी के घर से निष्क्रमण किया यावत् वह समाधि को प्राप्त हो, कालगत हो गया। वह धर्मरुचि अनगार बहुत वर्षों तक श्रामण्य का पालन कर आलोचना-प्रतिक्रमण कर, समाधि को प्राप्त हो, मृत्यु के समय मृत्यु का वरणकर ऊपर यावत् सर्वार्थसिद्ध महाविमान में देवरूप में उपपन्न हुआ है। वहां की अजघन्य-अनुत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति बतलायी गयी है। वहां धर्मरुचि देव की स्थिति भी तेतीस सागरोपम है। वह धर्मरुचि देव आयु क्षय, स्थितिक्षय और भवक्षय के अनन्तर उस देवलोक से च्युत हो, महाविदेह वर्ष में सिद्ध होगा।

नागसिरीए गरिहा-पदं

२५. तं धिरत्थु णं अज्जो! नागसिरीए माहणीए अधन्नाए अपुण्णाए दूभगाए दूभगसत्ताए दूभगनिंबोलियाए, जाए णं तहारूवे साहू साहुरूवे धम्मरुई अणगारे मासक्खमणपारणगंसि सालइएणं तित्तालाउएणं बहुसंभारसंभिएणं नेहावगाढेणं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए।।

नागश्री का गर्हा-पद

२५. अत: आर्यो! धिक्कार है उस अधन्या, अपुण्या, दुर्भगा, दुर्भगसत्त्वा, दुर्भग-निम्बोलिका नागश्री ब्राह्मणी को जिसने तथारूप साधुरूप साधु धर्मरुचि अनगार को मासखमण के पारणे में वृक्ष की शाखा पर निष्पन्न तुम्बे के उस प्रचुर मसाले और भरपूर स्नेह डालकर बनाए गए शाक के कारण अकाल में ही जीवन-रहित कर दिया।

२६. तए णं ते समणा निग्गंथा धम्मघोसाणं थेराणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म चंपाए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु बहुजणस्स एवमाइक्खंति एवं भासंति एवं पण्णवेंति एवं परूवेंति--धिरत्थु णं देवाणुप्पिया! नागसिरीए जाव, दूभगनिंबोलियाए, जाए णं तहारूवे साहू साहुरूवे धम्मरुई अणगारे सालइएणं तित्तालाउएणं बहुसंभारसंभिएणं नेहावगाढेणं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए।।

२६. धर्मघोष स्थविर के पास यह अर्थ सुनकर, अवधारण कर उन श्रमण-निर्ग्रन्थों ने चम्पानगरी के दोराहों, तिराहों, चौराहों, चौकों चतुर्मुखों, राजमार्गों और मार्गों में जन-समूह के सामने इस प्रकार आख्यान, भाषण, प्रज्ञापना और प्ररूपणा की--देवानुप्रियो! धिक्कार है उस अधन्या यावत् दुर्भगनिम्बोलिका नागश्री ब्राह्मणी को जिसने तथारूप साधुरूप साधु धर्मरुचि अनगार को वृक्ष की शाखा पर निष्पन्न तिक्त तुम्बे के प्रचुर मसाले और भरपूर स्नेह डालकर बनाए गए उस शाक के कारण अकाल में ही जीवन-रहित कर दिया।

२७. तए णं तेसिं समणाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ--धिरत्थु णं नागसिरीए माहणीए जाव जीवियाओ ववरोविए।।

२७. उन श्रमण-निर्ग्रन्थों के पास यह अर्थ सुनकर, अवधारण कर जनसमूह ने परस्पर इस प्रकार आख्यान, भाषण, प्रज्ञापना और प्ररूपणा की--धिक्कार है उस नागश्री ब्राह्मणी को यावत् जिसने श्रमण-निर्ग्रन्थ को जीवन-रहित कर दिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नागसिरीए गिहनिव्वासण-पदं

२८. तए णं ते माहणा चंपाए नयरीए बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ता रुट्ठा कुविया चंडिक्किया मिसिमिसेमाणा जेणेव नागसिरी माहणी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता नागसिरिं माहणिं एवं वयासी--"हंभो नागसिरी! अपत्थियपत्थिए! दुरंतपंतलक्खणे! हीणपुण्णचाउद्दसे! (सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति-परिवज्जिए?) धिरत्थु णं तव अधन्नाए अपुण्णाए दूभगाए दूभगसत्ताए दूभगनिंबोलियाए, जाए णं तुमे तहारूवे साहू साहुरूवे धम्मरुई अणगारे मासखमणपारणगंसि सालइएणं तित्तालाउएणं जाव जीवियाओ ववरोविए।" उच्चावयाहिं उक्कोसणाहिं अक्कोसंति, उच्चावयाहिं उद्धंसणाहिं उद्धंसेंति, उच्चावयाहिं निब्भंच्छणाहिं निब्भंच्छेंति, उच्चावयाहिं निच्छोडणाहिं निच्छोडेंति, तज्जेंति तालेंति, तज्जित्ता तालित्ता सयाओ गिहाओ निच्छुभंति।।

२९. तए णं सा नागसिरी सयाओ गिहाओ निच्छूढा समाणी चंपाए नयरीए सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु बहुजणेणं हीलिज्जमाणी खिंसिज्जमाणी निंदिज्जमाणी गरहिज्जमाणी तज्जिज्जमाणी पव्वहिज्जमाणी धिक्कारिज्जमाणी थुक्कारिज्जमाणी कत्थइ ठाणं वा निलयं वा अलभमाणी दंडीखंड-निवसणा खंडमल्लय-खंडघडग-हत्थगया फुट्ट-हडाहड-सीसा मच्छियाचडगरेणं अन्निज्जमाणमग्गा गेहंगेहेणं देहंबलियाए वित्तिं कप्पेमाणी विहरइ।।

नागसिरीए भवभमण-पदं

३०. तए णं तीसे नागसिरीए माहणीए तब्भवंसि चेव सोलस रोगायंका पाउब्भूया। (तं जहा--

सासे कासे जरे दाहे, जोणिसूले भगंदरे।
अरिसा अजीरए दिट्ठी-मुद्धसूले अकारए।।
अच्छिवेयणा कण्णवेयणा कंडू दउदरे कोढे।।१।।)

३१. तए णं सा नागसिरी माहणी सोलसेहिं रोगायंकेहिं अभिभूया समाणी अट्ट-दुहट्ट-वसट्टा कालमासे कालं किच्चा छट्ठाए पुढवीए उक्कोसं बावीससागरोवमट्ठिईएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववण्णा।

सा णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता मच्छेसु उववण्णा। तत्थ णं सत्थवज्झा दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा अहेसत्तमाए पुढवीए उक्कोसं तेत्तीस-सागरोवमट्ठिईएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववण्णा।

सा णं तओणंतरं उव्वट्टित्ता दोच्चंपि मच्छेसु उववज्जइ। तत्थ वि य णं सत्थवज्झा दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा दोच्चंपि अहेसत्तमाए पुढवीए उक्कोसं तेत्तीससागरोवमट्ठिइएसु

नागश्री का गृह-निर्वासन-पद

२८. चम्पानगरी के जनसमूह से इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर वे ब्राह्मण क्रोध से तमतमा उठे। वे रुष्ट, कुपित, रौद्र और क्रोध से जलते हुए जहां नागश्री ब्राह्मणी थी, वहां आए। आकर नागश्री ब्राह्मणी से इस प्रकार कहा--हंभो! नागश्री! अप्रार्थित की प्रार्थिनी! दुरन्त-प्रान्त-लक्षणे! हीन-पुण्य-चतुर्दशिके! (श्री-ह्री-धृति और कीर्ति से शून्य?) धिक्कार है तुझ अधन्या, अपुण्या, दुर्भगा, दुर्भगसत्त्वा, दुर्भगनिम्बोलिका को जो तूने तथारूप, साधुरूप साधु धर्मरुचि अनगार को मासखमण के पारणक में वृक्ष की शाखा पर निष्पन्न यावत् उस शाक के कारण जीवन-रहित कर दिया। उन्होंने उसे उच्चावच आक्रोशपूर्ण शब्दों से कोसा, उच्चावच तुच्छतासूचक शब्दों से तिरस्कृत किया, उच्चावच परुषतासूचक शब्दों से निर्भर्त्सना की। उच्चावच धमकी भरे शब्दों से धमकाया तथा उसकी तर्जना और ताड़ना की। तर्जना और ताड़ना कर उसे अपने घर से बाहर निकाल दिया।

२९. उस नागश्री ब्राह्मणी ने अपने घर से निकाल दिए जाने पर चम्पानगरी के दोराहों, तिराहों, चौराहों, चौकों, चतुर्मुखों राजमार्गों और मार्गों में जन-समूह के द्वारा हीलित, कुत्सित, निन्दित, गर्हित, तर्जित, प्रव्यथित, धिक्कारित और थूत्कारित होती हुई न कहीं स्थान पाया और न निलय। वह सांधा हुआ जीर्ण वस्त्र-खण्ड पहने, हाथ में फूटा हुआ भिक्षापात्र और फूटा हुआ घड़ा लिए घर-घर भिक्षावृत्ति से जीवन निर्वाह करती हुई विहार करने लगी। उसके सिर के बाल अत्यन्त बिखरे हुए थे और मक्खियों का दल सदा उसका पीछा करता रहता था।

नागश्री का भव-भ्रमण-पद

३०. उस नागश्री के शरीर में इस जीवन में ही सोलह रोगातंक प्रादुर्भूत हुए-(जैसे--श्वास, कास, ज्वर, दाह, योनिशूल, भगन्दर, अर्श, अजीर्ण, दृष्टिशूल, शिर:शूल, अन्न की अरुचि, अक्षि-वेदना, कर्ण-वेदना कण्डू, जलोदर और कुष्ठ)।

३१. वह नागश्री ब्राह्मणी सोलह रोगातंकों से अभिभूत हो आर्त्त, दु:खार्त्त और वासना से आर्त्त हो मृत्यु के समय मृत्यु को प्राप्तकर छठी पृथ्वी में, उत्कृष्ट बाईस सागरोपम स्थिति वाले नरकावासों में से किसी एक नरकावास में नैरयिक रूप में उपपन्न हुई।

वह वहां से निकलकर मत्स्य रूप में उपपन्न हुई। वहां शस्त्र वध से उत्पन्न दाह की अवस्था से मृत्यु के समय मृत्यु को प्राप्त कर वह अध: स्थित सातवीं पृथ्वी में, उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम स्थिति वाले नरकावासों में से किसी एक नरकावास में नैरयिक के रूप में उपपन्न हुई।

वहां से निकलकर दूसरी बार भी मत्स्य रूप में उपपन्न हुई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नेरइएसु नेरइयत्ताए उववज्जइ।

सा णं तओहिंतो उव्वट्टित्ता तच्चंपि मच्छेसु उववण्णा। तत्थ वि य णं सत्थवज्झा दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा दोच्चंपि छट्ठाए पुढवीए उक्कोसं बावीससागरोवमट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववण्णा।

तओणंतरं उव्वट्टित्ता उरगेसु, एवं जहा गोसाले तहा नेयव्वं जाव रयणप्पभाओ पुढवीओ उव्वट्टित्ता सण्णीसु उववण्णा।

तओ उव्वट्टित्ता असण्णीसु उववण्णा। तत्थ वि य णं सत्थवज्झा दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा दोच्चंपि रयणप्पभाए पुढवीए पलिओवमस्स असंखेज्जइभागट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववण्णा।

तओ उव्वट्टित्ता जाइं इमाइं खहयरविहाणाइं जाव अदुत्तरं च खरबायरपुढविकाइयत्ताए, तेसु अणेगसयसहस्सखुत्तो।।

वहां शस्त्रवध से उत्पन्न दाह की अवस्था से मृत्यु के समय मृत्यु को प्राप्त कर वह दूसरी बार भी अधः स्थित सातवीं पृथ्वी में, उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम स्थिति वाले नरकावासों में से किसी एक नरकावास में नैरयिक के रूप में उपपन्न हुई।

वह वहां से निकलकर तीसरी बार मत्स्य रूप में उपपन्न हुई। वहां भी शस्त्रवध से उत्पन्न दाह की अवस्था से मृत्यु के समय मृत्यु को प्राप्त कर वह दूसरी बार भी छठी पृथ्वी में, उत्कृष्ट बाईस सागरोपम स्थिति वाले नरकावासों में से किसी एक नरकावास में नैरयिक के रूप में उपपन्न हुई।

वहां से निकलकर वह उरगों में उत्पन्न हुई। इस प्रकार उसकी भव परम्परा गोशालक के समान ज्ञातव्य है यावत् वह रत्नप्रभा पृथ्वी से निकलकर संज्ञी--समनस्क पर्याय में उत्पन्न हुई। वहां से निकलकर असंज्ञी--अमनस्क पर्याय में उत्पन्न हुई।

वहां पर शस्त्र वध से उत्पन्न दाह की अवस्था में मृत्यु के समय मृत्यु को प्राप्त कर वह दूसरी बार भी रत्नप्रभा पृथ्वी में पल्योपम के असंख्यातवें भाग जितनी स्थिति वाले नरकावासों में से किसी एक नरकावास में नैरयिक रूप में उपपन्न हुई।

वहां से निकलकर पक्षी की अनेक जातियों में यावत् खर-बादर पृथ्वीकायिक पर्याय में अनेक लाख बार उत्पन्न हुई।

सूमालिया-कहाणग-पदं

३२. सा णं तओणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे चंपाए नयरीए सागरदत्तस्स सत्थवाहस्स भद्दाए भारियाए कुच्छिंसि दारियत्ताए पच्चायाया।।

३३. तए णं सा भद्दा सत्थवाही नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं दारियं पयाया--सुकुमालकोमलियं गयतालुयसमाणं।।

३४. तए णं तीसे णं दारियाए निव्वत्तबारसाहियाए अम्मापियरो इमं एयारूवं गोण्णं गुणनिप्फण्णं नामधेज्जं करेंति--जम्हा णं अम्हं एसा दारिया सुकुमालकोमलिया गयतालुयसमाणा, तं होउ णं अम्हं इमीसे दारियाए नामधेज्जं सुकुमालिया-सुकुमालिया।।

३५. तए णं तीसे दारियाए अम्मापियरो नामधेज्जं करेंति सूमालियत्ति।।

३६. तए णं सा सूमालिया दारिया पंचधाईपरिग्गहिया (तं जहा--खीर-धाईए मज्जणधाईए मंडावणधाईए खेल्लावणधाईए अंकधाईए) अंकाओ अंकं साहरिज्जमाणी रम्मे मणिकोट्टिमतले गिरिकंदरमल्लीणा इव चंपगलया निवाय-निव्वाघायंसि सुहंसुहेणं परिवड्ढइ।।

सुकुमालिका का कथानक पद

३२. वहां से निकलकर वह इसी जम्बूद्वीप द्वीप, भारतवर्ष और चम्पा नगरी में सागरदत्त सार्थवाह की भार्या भद्रा की कुक्षि में बालिका के रूप में उत्पन्न हुई।

३३. पूरे नौ मास व्यतीत हो जाने पर उस भद्रा सार्थवाही ने एक बालिका को जन्म दिया। वह गजतालु के समान अत्यन्त सुकोमल थी।

३४. जब वह बालिका बारह दिन की हुई तो माता-पिता ने उसका यह गुणानुरूप, गुण निष्पन्न नाम रखा--क्योंकि हमारी यह बालिका गजतालु के समान अत्यन्त सुकोमल है अतः हमारी इस बालिका का नाम सुकुमालिका हो; सुकुमालिका।

३५. उस बालिका के माता-पिता ने उस बालिका का नाम रखा--सुकुमालिका।

३६. वह सुकुमालिका बालिका पांच धाय माताओं (जैसे--क्षीर धात्री, मज्जन धात्री, मंडन धात्री, क्रीडन धात्री, अंक धात्री) से परिगृहीत रहती। उसे एक की गोद से दूसरे की गोद में लिया जाता। मणि-कुट्टित सुरम्य प्रांगण में क्रीड़ा कराई जाती। इस प्रकार वह निर्वात और निर्व्याघात गिरिकन्दरा में आलीन चम्पक-लता की भांति सुखपूर्वक बढ़ रही थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूमालियाए सागरेण सद्धिं विवाह-पदं

३७. तए णं सा सूमालिया दारिया उम्मुक्कबालभावा विण्णय-परिणयमेत्ता जोव्वणगमणुपत्ता रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा जाया यावि होत्था।।

३८. तत्थ णं चंपाए नयरीए जिणदत्ते नामं सत्थवाहे--अड्ढे।।

३९. तस्स णं जिणदत्तस्स भद्दा भारिया--सूमाला इट्ठा माणुस्सए कामभोगे पच्चणुब्भवमाणा विहरइ।।

४०. तस्स णं जिणदत्तस्स पुत्ते भद्दाए भारियाए अत्तए सागरए नामं दारए--सुकुमालपाणिपाए जाव सुरूवे।।

४१. तए णं से जिणदत्ते सत्थवाहे अण्णया कयाइ सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सागरदत्तस्स सत्थहवाहस्स अदूरसामंतेणं वीईवयइ।

इमं च णं सूमालिया दारिया ण्हाया चेडिया-चक्कवाल-संपरिवुडा उप्पिं आगासतलगंसि कणग-तिंदूसएणं कीलमाणी-कीलमाणी विहरइ।।

४२. तए णं से जिणदत्ते सत्थवाहे सूमालियं दारियं पासइ, पासित्ता सूमालियाए दारियाए रूवे य जोव्वणे य लावण्णे य जायविम्हए कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता, एवं वयासी--एस णं देवाणुप्पिया! कस्स दारिया? किं वा नामधेज्जं से?

४३. तए णं से कोडुंबियपुरिसा जिणदत्तेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी--एस णं देवाणुप्पिया! सागरदत्तस्स सत्थवाहस्स धूया भद्दाए भारियाए अत्तया सूमालिया नामं दारिया--सुकुमाल-पाणिपाया जाव रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा।।

४४. तए णं जिणदत्ते सत्थवाहे तेसिं कोडुंबियाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ण्हाए मित्त-नाइ-परिवुडे चंपाए नयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव सागरदत्तस्स गिहे तेणेव उवागए।।

४५. तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे जिणदत्तं सत्थवाहं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता आसणेणं उवनिमंतेइ, उवनिमंतेत्ता आसत्थं वीसत्थं सुहासणवरगयं एवं वयासी--भण देवाणुप्पिया! किमागमणपओयणं?

सुकुमालिका का सागर के साथ विवाह-पद

३६. वह सुकुमालिका बालिका शैशव को लांघकर विज्ञ और कला की पारगामी बन यौवन को प्राप्त हो, रूप, यौवन और लावण्य से उत्कृष्ट और उत्कृष्ट शरीर वाली हुई।

३८. उस चम्पा नगरी में जिनदत्त नाम का एक आढ्य सार्थवाह था।

३९. उस जिनदत्त सार्थवाह के भद्रा नाम की भार्या थी। वह सुकुमार और इष्ट थी। वह मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों का अनुभव करती हुई विहार करती थी।

४०. उस जिनदत्त का पुत्र और भद्रा भार्या का आत्मज सागर नाम का बालक था। वह सुकुमार हाथ-पावों वाला यावत् सुरूप था।

४१. किसी समय जिनदत्त सार्थवाह ने अपने घर से निष्क्रमण किया। निष्क्रमण कर सागरदत्त सार्थवाह के घर के आसपास से होकर गया।

उधर वह सुकुमालिका बालिका स्नान कर दासियों के समूह से परिवृत हो ऊपर खुले में सोने की गेंद से क्रीड़ा करती हुई विहार कर रही थी।

४२. जिनदत्त सार्थवाह ने सुकुमालिका बालिका को देखा। देखकर उसने सुकुमालिका बालिका के रूप, यौवन और लावण्य पर अनुरक्त होकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! यह बालिका किसकी है? इसका नाम क्या है?

४३. जिनदत्त सार्थवाह के ऐसा कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुए कौटुम्बिक पुरुष दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट आकार वाली अञ्जलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार बोले--देवानुप्रिय! यह सागरदत्त सार्थवाह की पुत्री भद्रा भार्या की आत्मजा सुकुमालिका नाम की बालिका है। यह सुकुमार हाथ-पावों वाली यावत् रूप, यौवन और लावण्य से उत्कृष्ट है।

४४. उन कौटुम्बिक पुरुषों से यह अर्थ सुनकर जिनदत्त सार्थवाह, जहां अपना घर था, वहां आया। वहां आकर स्नान कर मित्र, ज्ञाति से परिवृत हो, चम्पानगरी के बीचोंबीच होता हुआ, जहां सागरदत्त का घर था, वहां आया।

४५. सागरदत्त सार्थवाह ने जिनदत्त सार्थवाह को आते हुए देखा। देखकर वह आसन से उठा। उठकर (जिनदत्त को) आसन से उपनिमन्त्रित किया। उपनिमन्त्रित कर आश्वस्त-विश्वस्त हो प्रवर सुखासन में बैठ इस प्रकार कहा--कहो देवानुप्रिय! किस प्रयोजन से आगमन हुआ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४६. तए णं से जिणदत्ते सागरदत्तं एवं वयासी--एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! तव धूयं भद्दाए अत्तयं सूमालियं सागरस्स भारियत्ताए वरेमि। जइ णं जाणह देवाणुप्पिया! जुत्तं वा पत्तं वा सलाहणिज्जं वा सरिसो वा संजोगो, ता दिज्जउ णं सूमालिया सागरदारगस्स। तए णं देवाणुप्पिया! भण किं दलयामो सुंकं सूमालियाए?

४६. जिनदत्त ने सागरदत्त से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! मैं तुम्हारी पुत्री भद्रा की आत्मजा सुकुमालिका को सागर की भार्या के रूप में प्राप्त करूं। अतः देवानुप्रिय! यदि इस (संबंध) को युक्त, पात्र, सराहनीय और समान संयोग के रूप में जानो तो बालिका सुकुमालिका को बालक सागर के लिए दे दो। देवानुप्रिय! कहो, हम सुकुमालिका का क्या शुल्क दें?

४७. तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे जिणदत्तं सत्थवाहं एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! सूमालिया दारिया एगा एगजाया इट्ठा कंता पिया मणुण्णा मणामा जाव उंबरपुप्फं व दुल्लहा सवणयाए, किमंग पुण पासणयाए? तं नो खलु अहं इच्छामि सूमालियाए दारियाए खणमवि विप्पओगं। तं जइ णं देवाणुप्पिया! सागरए दारए मम घरजामाउए भवइ, तो णं अहं सागरस्स सूमालियं दलयामि।।

४७. सागरदत्त सार्थवाह ने जिनदत्त सार्थवाह से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! यह सुकुमालिका बालिका मेरी एक ही पुत्री है। यह मेरी इकलौती पुत्री इष्ट, कमनीय, प्रिय, मनोज्ञ और मनोगत है यावत् यह उदुम्बर पुष्प के समान श्रवण दुर्लभ है, फिर दर्शन का तो प्रश्न ही क्या? अतः मैं सुकुमालिका बालिका का एक क्षण भी विरह सहना नहीं चाहता।

इसलिए देवानुप्रिय! यदि सागर बालक मेरा गृह-दामाद बने तो मैं सागर को सुकुमालिका दूं।

४८. तए णं से जिणदत्ते सत्थवाहे सागरदत्तेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ते समाणे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सागरगं दारगं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--एवं खलु पुत्ता! सागरदत्ते सत्थवाहे ममं एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! सूमालिया दारिया--इट्ठा कंता पिया मणुण्णा मणामा जाव उंबरपुप्फं व दुल्लहा सवणयाए, किमंग पुण पासणयाए? तं नो खलु अहं इच्छामि सूमालियाए दारियाए खणमवि विप्पओगं। तं जइ णं सागरए दारए मम घरजामाउए भवइ, तो णं दलयामि।।

४८. सागरदत्त सार्थवाह के ऐसा कहने पर जिनदत्त सार्थवाह जहां अपना घर था वहां आया। वहां आकर बालक सागर को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--पुत्र! सागरदत्त सार्थवाह ने मुझ से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! बालिका सुकुमालिका मुझे इष्ट, कमनीय, प्रिय, मनोज्ञ और मनोगत है यावत् यह उदुम्बर पुष्प के समान श्रवण-दुर्लभ है फिर दर्शन का तो प्रश्न ही क्या? अतः मैं सुकुमालिका बालिका का एक क्षण भी विरह सहना नहीं चाहता। इसलिए यदि सागर बालक मेरा गृह-दामाद हो तो मैं उसे अपनी पुत्री दूं।

४९. तए णं से सागरए दारए जिणदत्तेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए।।

४९. जिनदत्त सार्थवाह के ऐसा कहने पर बालक सागर मौन रहा।

५०. तए णं जिणदत्ते सत्थवाहे अण्णया कयाइ सोहणंसि तिहि-करण-नक्खत्त-मुहुत्तंसि विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता मित्त नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं आमंतेइ, जाव सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता सागरं दारगं ण्हायं जाव सव्वालंकारविभूसियं करेइ, करेत्ता पुरिससहस्सवाहिणीयं सीयं दुरुहावेइ, मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेणं सद्धिं परिवुडे सव्विड्ढीए सयाओ गिहाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता चंपं नयरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव सागरदत्तस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता सागरगं दारगं सागरदत्तस्स सत्थवाहस्स उवणेइ।।

५०. किसी समय जिनदत्त सार्थवाह ने शोभन तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्त में विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवाया। तैयार कराकर मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी और परिजनों को निमंत्रित किया यावत् उनको सत्कृत, सम्मानित कर बालक सागर को नहला कर, सब अलंकारों से विभूषित किया। विभषित कर उसे हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली शिविका पर चढ़ाया। मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी और परिजनों के साथ उनसे परिवृत हो सम्पूर्ण ऋद्धि के साथ अपने घर से निकला। निकलकर चम्पा नगरी के बीचोंबीच होते हुए जहां सागरदत्त का घर था, वहां आया। वहां आकर शिविका से उतरा। उतरकर बालक सागर को सागरदत्त सार्थवाह के पास ले गया।

५१. तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे विपुलं असण-पाण- खाइम-साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता जाव सम्माणेत्ता सागरगं

५१. सागरदत्त सार्थवाह ने विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवाया। तैयार करवाकर यावत् सबको सम्मानित कर कुमार सागर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दारगं सूमालियाए दारियाए सद्धिं पट्टयं दुरूहावेइ, दुरूहावेत्ता सेयापीएहिं कलसेहिं मज्जावेइ, मज्जावेत्ता अग्गिहोमं करावेइ, करावेत्ता सागरगं दारयं सूमालियाए दारियाए पाणिं गेण्हावेइ।।

को कुमारी सुकुमालिका के साथ पट्ट पर बिठाया। बिठाकर चांदी और सोने के कलशों से मज्जन कराया। मज्जन कराकर अग्निहोम करवाया। अग्निहोम कराकर बालक सागर का कुमारी सुकुमालिका के साथ पाणिग्रहण करवाया।

सागरस्स पलायण-पदं

५२. तए णं सागरए सूमालियाए दारियाए इमं एयारूवं पाणिफासं पडिसंवेदेइ, जे जहानामए--असिपत्ते इ वा करपत्ते इ वा खुरपत्ते इ वा कलंबचीरिगापत्ते इ वा सत्तिअग्गे इ वा कोंतग्गे इ वा तोमरग्गे इ वा भिंडिमालग्गे इ वा सूचिकलावए इ वा विच्छुयडंके इ वा कविकच्छू इ वा इंगाले इ वा मुम्मुरे इ वा अच्ची इ वा जाले इ वा अलाए इ वा सुद्धागणी इ वा भवे एयारूवे?

नो इणट्ठे समट्ठे। एत्तो अणिट्ठतराए चेव अकंततराए चेव अप्पियतराए चेव अमणुण्णतराए चेव अमणामतराए चेव पाणिफासं संवेदेइ।।

५३. तए णं से सागरए अकामए अवसवसे मुहुत्तमेत्तं संचिट्ठइ।।

५४. तए णं सागरदत्ते सत्थवाहे सागरस्स अम्मापियरो मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं विपुलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारेण य सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ।।

५५. तए णं सागरए सूमालियाए सद्धिं जेणेव वासघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सूमालियाए दारियाए सद्धिं तलिमंसि निवज्जइ।।

५६. तए णं से सागरए दारए सूमालियाए दारियाए इमं एयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ, से जहानामए--असिपत्ते इ वा जाव एत्तो अमणामतरागं चेव अंगफासं पच्चणुब्भवमाणे विहरइ।।

५७. तए णं से सागरए दारए सूमालियाए दारियाए अंगफासं असहमाणे अवसवसे मुहुत्तमेत्तं संचिट्ठइ।।

५८. तए णं से सागरदारए सूमालियं दारियं सुहपसुत्तं जाणित्ता सूमालियाए दारियाए पासाओ उट्ठेइ, उट्ठेत्ता जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयणिज्जंसि निवज्जइ।।

५९. तए णं सा सूमालिया दारिया तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धा समाणी पइव्वया पइमणुरत्ता पइं पासे अपस्समाणी तलिमाओ उट्ठेइ, उट्ठेत्ता जेणेव से सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सागरस्स पासे णुवज्जइ।।

सागर का पलायन-पद

५२. सागर ने कुमारी सुकुमालिका के हस्त-स्पर्श का ऐसा प्रतिसंवेदन किया, जैसे--कोई असिपत्र, करपत्र, क्षुरपत्र, कलम्बचीरिकापत्र, शक्ति की नौंक, भाले की नौंक, तोमर की नौंक, भिन्दीपाल की नौंक, सूइयों का समूह, बिच्छू का डंक, कपिच्छू (खूजली पैदा करने वाली) वनस्पति, अंगारे, मुम्मुर, अर्चि, ज्वाला, अलात अथवा शुद्ध अग्नि हो। क्या ऐसा ही स्पर्श था?

नहीं, ऐसा नहीं। सागर उसके हस्त-स्पर्श का इससे भी अनिष्टतर, अकमनीयतर, अप्रियतर, अमनोज्ञतर और अमनोगततर प्रतिसंवेदन कर रहा था।

५३. वह सागर अनचाहे ही विवशता से मुहूर्त्त भर वहां ठहरा।

५४. सागरदत्त सार्थवाह ने सागर के माता-पिता को तथा उनके मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी और परिजनों को विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य तथा पुष्प, वस्त्र, गन्धचूर्ण, माला और अलंकारों से सत्कृत सम्मानित कर प्रतिविसर्जित किया।

५५. सागर सुकुमालिका के साथ, जहां उसका निवास घर था, वहां आया। वहां आकर कुमारी सुकुमालिका के साथ शय्या पर सोया।

५६. कुमार सागर ने कुमारी सुकुमालिका के अंग-स्पर्श का ऐसा प्रतिसंवेदन किया, जैसे--कोई असिपत्र हो यावत् इससे भी अमनोगततर अंग-स्पर्श का प्रतिसंवेदन करता हुआ विहार कर रहा था।

५७. वह कुमार सागर कुमारी सुकुमालिका के अंग-स्पर्श को सहन न करता हुआ, विवशता से मुहूर्त्त भर वहां रहा।

५८. वह कुमार सागर कुमारी सुकुमालिका को सुखपूर्वक सोयी जानकर सुकुमालिका बालिका के पास से उठा। उठकर जहां उसका अपना शयनीय था, वहां आया। वहां आकर शयनीय पर सो गया।

५९. उसके मुहूर्त्तभर पश्चात् कुमारी सुकुमालिका जागी। पतिव्रता, पति के प्रति अनुरक्ता, उस कुमारी सुकुमालिका ने जब पति को, अपने पास नहीं देखा, तो वह शय्या से उठी। उठकर जहां पति का शयनीय था वहां आयी। वहां आकर सागर के पास सो गई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६०. तए णं से सागरदारए सूमालियाए दारियाए दोच्चंपि इमं एयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ जाव अकामए अवसवसे मुहुत्तमेत्तं संचिट्ठइ।।

६०. कुमार सागर ने दूसरी बार भी कुमारी सुकुमालिका के अंग-स्पर्श का ऐसा प्रतिसंवेदन किया यावत् वह अनचाहे ही विवशता से वहां मुहूर्त्त भर रहा।

६१. तए णं से सागरदारए सूमालियं दारियं सुहपसुत्तं जाणित्ता सयणिज्जाओ उट्ठेइ, उट्ठेत्ता वासघरस्स दारं विहाडेइ, विहाडेत्ता मारामुक्के विव काए जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।।

६१. कुमार सागर कुमारी सुकुमालिका को सुखपूर्वक सोयी जानकर सुकुमालिका के पास से उठा। उठकर वासघर का द्वार खोला। खोलकर वधस्थान से मुक्त कौवे की भांति जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में चला गया।

सूमालियाए चिंता-पदं

सुकुमालिका का चिन्ता-पद

६२. तए णं सा सूमालिया दारिया तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धा पतिव्वया पइमणुरत्ता पइं पासे अपासमाणी सयणिज्जाओ उट्ठेइ, सागरस्स दारगस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेमाणी-करेमाणी वासघरस्स दारं विहाडियं पासइ, पासित्ता एवं वयासी--गए णं से सागरए त्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया झियायइ।।

६२. उसके मुहूर्त भर पश्चात् कुमारी सुकुमालिका जागी। पतिव्रता, पति के प्रति अनुरक्ता उस सुकुमालिका ने जब पति को अपने पास नहीं देखा तो वह शय्या से उठी। कुमार सागर की चारों ओर खोजबीन करते-करते उसने वासघर का द्वार खुला देखा। देखकर वह इस प्रकार बुदबुदायी--'सागर तो चला गया।' यह कहकर वह भग्न हृदय हो हथेली पर मुंह टिकाए आर्त्तध्यान में डूबी हुई, चिन्ता मग्न हो गई।

६३. तए णं सा भद्दा सत्थवाही कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते दासचेडिं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिए! बहूवरस्स मुहधोवणियं उवणेहि।।

६३. उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर उस भद्रा सार्थवाही ने दास-चेटी को बुलाया। उसे बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिये! तू जा और वधू-वर के लिए मुख धावनिका (दतौन आदि) ले जा।

६४. तए णं सा दासचेडी भद्दाए सत्थवाहीए एवं वुत्ता समाणी एयमट्ठं तहत्ति पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता मुहधोवणियं गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव वासघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सूमालियं दारियं ओहयमणसंकप्पं करतलपल्हत्थमुहिं अट्टज्झाणोवगयं झियायमाणिं पासइ, पासित्ता एवं वयासी--किण्णं तुमं देवाणुप्पिए! ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया झियाहि?

६४. उस दास-चेटी ने भद्रा सार्थवाही के ऐसा कहने पर उसके इस अर्थ को 'तथेति' कहकर स्वीकार किया। स्वीकार कर मुख धावनिका को लिया। लेकर जहां वासघर था, वहां आयी। वहां आकर उसने कुमारी सुकुमालिका को भग्न हृदय हो हथेली पर मुंह टिकाए आर्त्तध्यान में डूबे हुए चिन्ता मग्न देखा। देखकर उसने इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! तुम भग्न हृदय हो हथेली पर मुंह टिकाए, आर्त्त-ध्यान में डूबी हुई चिन्ता मग्न क्यों हो रही हो?

६५. तए णं सा सूमालिया दारिया तं दासचेडिं एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिए! सागरए दारए ममं सुहपसुत्तं जाणित्ता मम पासाओ उट्ठेइ, उट्ठेत्ता वासघरदुवारं अवंगुणेइ, अवंगुणेत्ता मारामुक्के विव काए जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए। तए णंहं तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धा पतिव्वया पइमणुरत्ता पइं पासे अपासमाणी सयणिज्जाओ उट्ठेमि सागरस्स दारगस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेमाणी-करेमाणी वासघरस्स दारं विहाडियं पासामि, पासित्ता गए णं से सागरए त्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया झियायामि।।

६५. कुमारी सुकुमालिका ने उस दास-चेटी से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! कुमार सागर मुझे सुखपूर्वक सोयी जानकर मेरे पास से उठा। वासघर का द्वार खोला और वधस्थान से मुक्त कौवे की भांति जिस दिशा से आया था, वहां उसी दिशा में चला गया। उसके जाने के मुहूर्त भर पश्चात् मैं जागी। पतिव्रता और पति के प्रति अनुरक्ता मैं पति को अपने पास न देखकर शयनीय से उठी। कुमार सागर की चारों ओर खोज करते-करते मैंने वासघर का द्वार खुला देखा। देखकर सागर तो चला गया–यह सोचकर भग्न हृदय हो हथेली पर मुंह टिकाए आर्त्तध्यान में डूबी हुई चिन्ता मग्न हो रही हूं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६६. तए णं सा दासचेडी सूमालियाए दारियाए एयमट्ठं सोच्चा जेणेव सागरदत्ते सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सागरदत्तस्स एयमट्ठं निवेदेइ ।।

६६. वह दासचेटी कुमारी सुकुमालिका से यह अर्थ सुनकर जहां सागरदत्त सार्थवाह था, वहां आयी। वहां आकर सागरदत्त को यह अर्थ निवेदित किया।

सागरदत्तेण जिणदत्तस्स उवालंभ-पदं

६७. तए णं से सागरदत्ते दासचेडीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे जेणेव जिणदत्तस्स सत्थवाहस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जिणदत्तं सत्थवाहं एवं वयासी--किण्णं देवाणुप्पिया! एयं जुत्तं वा पत्तं वा कुलाणुरूवं वा कुलसरिसं वा जण्णं सागरए दारए सूमालियं दारियं अदिट्ठदोसवडियं पइव्वयं विप्पजहाय इहमागए? बहूहिं खिज्जणियाहि य रुंटणियाहि य उवालंभइ ।।

सागरदत्त द्वारा जिनदत्त का उपालम्भ-पद

६७. उस दासचेटी से यह अर्थ सुनकर, अवधारण कर सागरदत्त सार्थवाह क्रोध से तमतमा उठा। वह रुष्ट, कुपित, रौद्र और क्रोध से जलता हुआ, जहां जिनदत्त सार्थवाह का घर था, वहां आया। वहां आकर जिनदत्त सार्थवाह से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! क्या यह युक्त, पात्र, कुल के अनुरूप और कुल के सदृश है कि कुमार सागर बिना किसी अपराध के पतिव्रता कुमारी सुकुमालिका को छोड़कर यहां आ गया?

इस प्रकार बहुत खीज और अवज्ञापूर्ण शब्दों से उसे उलाहना दिया।

सागरस्स पुणोगमण-व्वुदास-पदं

६८. तए णं से जिणदत्ते सागरदत्तस्स सत्थवाहस्स एयमट्ठं सोच्चा जेणेव सागरए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सागरयं दारयं एवं वयासी--दुट्ठु णं पुत्ता! तुमे कयं सागरदत्तस्स गिहाओ इहं हव्वमागच्छंतेणं। तं गच्छह णं तुमं पुत्ता! एवमवि गए सागरदत्तस्स गिहे ।।

सागर के पुनर्गमन का व्युदास-पद

६८. जिनदत्त सागरदत्त सार्थवाह से यह अर्थ सुनकर, जहां सागर था, वहां आया। वहां आकर कुमार सागर से इस प्रकार कहा--सागरदत्त के घर से शीघ्र यहां आकर तूने बहुत गलत काम किया है। खैर हुआ सो हुआ। पुत्र! तू अब भी सागरदत्त के घर चला जा।

६९. तए णं से सागरए दारए जिणदत्तं सत्थवाहं एवं वयासी--अवियाइं अहं ताओ! गिरिपडणं वा तरुपडणं वा मरुप्पवायं वा जलप्पवेसं वा जलणप्पवेसं वा विसभक्खणं वा सत्थोवाडणं वा वेहाणसं वा गिद्धपट्ठं वा पव्वज्जं वा विदेसगमणं वा अब्भुवगच्छेज्जा, नो खलु अहं सागरदत्तस्स गिहं गच्छेज्जा ।।

६९. वह कुमार सागर जिनदत्त सार्थवाह से इस प्रकार बोला--पिताजी! मैं किसी गिरि पतन, वृक्ष-पतन, मरु-प्रपात, जल-प्रवेश, ज्वलन-प्रवेश, विष-भक्षण, शस्त्र-उत्पाटन, फांसी, गृध्र-पृष्ठ-मरण, प्रव्रज्या अथवा विदेश-गमन को स्वीकार कर सकता हूं, किन्तु सागरदत्त के घर नहीं जा सकता।

सूमालियाए दमगेण सद्धिं पुणव्विवाह-पदं

७०. तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे कुड्डंतरियाए सागरस्स एयमट्ठं निसामेइ, निसामेत्ता लज्जिए विलीए विड्डे जिणदत्तस्स सत्थवाहस्स गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुकुमालियं दारियं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता अंके निवेसेइ, निवेसेत्ता एवं वयासी--किण्णं तव पुत्ता! सागरएणं दारएणं? अहं णं तुमं तस्स दाहामि, जस्स णं तुमं इट्ठा कंता पिया मणुण्णा मणामा भविस्ससि त्ति सूमालियं दारियं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं वग्गूहिं समासासेइ, समासासेत्ता पडिविसज्जेइ ।।

सुकुमालिका का द्रमक के साथ पुनर्विवाह-पद

७०. सागरदत्त सार्थवाह ने कुमार सागर के इस अर्थ को दीवार के पीछे से सुना। सुनकर लज्जित, व्रीडित और विशेष लज्जित होकर जिनदत्त सार्थवाह के घर से निकला। निकलकर जहां उसका अपना घर था, वहां आया। वहां आकर कुमारी सुकुमालिका को बुलाया। बुलाकर उसे अपनी गोद में बिठाया। बिठाकर इस प्रकार कहा--पुत्री! तुझे कुमार सागर से क्या प्रयोजन? मैं तुझे उस व्यक्ति को दूंगा, जिसे तूं इष्ट, कमनीय, प्रिय, मनोज्ञ और मनोगत होगी। इस प्रकार उसने कुमारी सुकुमालिका को उन इष्ट, कमनीय, प्रिय, मनोज्ञ और मनोगत वचनों से भलीभां [illegible] श्वस्त किया। आश्वस्त कर प्रतिविसर्जित कर दिया।

७१. तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे अण्णया उप्पिं आगासतलगंसि सुहनिसण्णे रायमग्गं ओलेएमाणे-ओलोएमाणे चिट्ठइ ।।

७१. वह सागरदत्त सार्थवाह किसी समय ऊपर खुले आकाश में सुखपूर्वक बैठा हुआ राजमार्ग का अवलोकन कर रहा था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७२. तए णं से सागरदत्ते एगं महं दमगपुरिसं पासइ--दंडिखंड-निवसणं खंडमल्लग-खंडघडग-हत्थगयं फुट्ट-हडाहड-सीसं मच्छियासहस्सेहिं अन्निज्जमाणमग्गं।।

७२. सागरदत्त ने एक महान द्रमक पुरुष को देखा। वह सान्धा हुआ जीर्ण वस्त्र-खण्ड पहने, हाथ में फूटा हुआ भिक्षापात्र और फूटा हुआ घड़ा लिए था। सिर के बाल अत्यंत बिखरे हुए थे और मक्खियों का दल उसका पीछा कर रहा था।

७३. तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--तुब्भे णं देवाणुप्पिया! एयं दमगपुरिसं विपुलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पलोभेह, गिहं अणुप्पवेसेह, अणुप्पवेसेत्ता खंडमल्लगं खंडघडगं च से एगंते एडेह, एडेत्ता अलंकारियकम्मं करेह, ण्हायं कयबलिकम्मं कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्तं सव्वालंकारविभूसियं करेह, करेत्ता मणुण्णं असण-पाण-खाइम-साइमं भोयावेह, मम अंतियं उवणेह।।

७३. सागरदत्त सार्थवाह ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम इस दरिद्र पुरुष को विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य से प्रलोभित करो, इसे घर में लाओ। लाकर इसका फूटा हुआ भिक्षापात्र तथा फूटा हुआ घड़ा एकान्त में फेंको। उसे फेंककर आलंकारिक कर्म (क्षौरकर्म) कराओ। इसे नहलाकर बलिकर्म और कौतुक, मंगल रूप प्रायश्चित कराकर सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित करो। विभूषित कर मनोज्ञ अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य खिलाओ और फिर मेरे पास लाओ।

७४. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता जेणेव से दमगपुरिसे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं दमगं असण-पाण-खाइम-साइमेणं उवप्पलोभेंति, उवप्पलोभेत्ता सयं गिहं अणुप्पवेसंति, अणुप्पवेसेत्ता तं खंडमल्लगं खंडघडगं च तस्स दमगपुरिस्स एगंते एडेंति।।

७४. उन कौटुम्बिक पुरुषों ने यावत् स्वीकार किया। स्वीकार कर, जहां वह द्रमक पुरुष था वहां आए। वहां आकर उस द्रमक को अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य से प्रलोभित किया। प्रलोभित कर उसे अपने घर में लाए। घर में लाकर उस द्रमक पुरुष का फूटा हुआ भिक्षापात्र और फूटा घड़ा एकान्त में फेंक दिया।

७५. तए णं से दमगे तंसि खंडमल्लगंसि खंडघडगंसि य एडिज्जाणंसि महया-महया सद्देणं आरसइ।।

७५. उस फूटे हुए भिक्षापात्र और फूटे हुए घड़े को फेंकते ही दरिद्र जोर-जोर से रोने लगा।

७६. तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे तस्स दमगपुरिसस्स तं महया-महया आरसियसद्दं सोच्चा निसम्म कोडुंबियपुरिसे एवं वयासी--किन्नं देवाणुप्पिया! एस दमगपुरिसे महया-महया सद्देणं आरसइ?

७६. सागरदत्त सार्थवाह ने दरिद्र पुरुष के जोर-जोर से रोने के शब्द को सुनकर, अवधारण कर, कौटुम्बिक पुरुषों से इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! यह द्रमक पुरुष जोर-जोर से क्यों रो रहा है?

७७. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा एवं वयंति--एस णं सामी! तंसि खंडमल्लगंसि खंडघडगंसि य एडिज्जमाणंसि महया-महया सद्देणं आरसइ।।

७७. वे कौटुम्बिक पुरुष इस प्रकार बोले--स्वामिन्! उस फूटे हुए भिक्षापात्र और फूटे घड़े को फेंक देने के कारण यह जोर-जोर से रो रहा है।

७८. तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे ते कोडुंबियपुरिसे एवं वयासी--मा णं तुब्भे देवाणुप्पिया! एयस्स दमगस्स तं खंडमल्लगं खंडघडगं च एगंते एडेह, पासे से ठवेह जहा अपत्तियं न भवइ। ते वि तहेव ठवेंति, ठवेत्ता तस्स दमगस्स अलंकारियकम्मं करेंति, करेत्ता सयपागसहस्सपागेहिं तेल्लेहिं अब्भंगेंति, अब्भंगिए समाणे सुरभिणा गंधट्टएणं गायं उव्वटेंति, उव्वट्टेत्ता उसिणोदग-गंधोदएण ण्हाणेंति, सीओदगेणं ण्हाणेंति, पम्हल-सुकुमालाए गंधकासाईए गायाइं लूहेंति, लूहेत्ता हंसलक्खणं पडगसाडगं परिहेंति, सव्वालंकारविभूसियं करेंति, विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं भोयावेंति, भोयावेत्ता सागरदत्तस्स उवणेंति।।

७८. सागरदत्त सार्थवाह ने कौटुम्बिक पुरुषों से इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम इस द्रमक-पुरुष के फूटे हुए भिक्षापात्र और फूटे घड़े को एक ओर मत फेंको, किन्तु इसके पास रख दो, जिससे इसे अप्रतीति न हो।

उन्होंने वैसे ही रख दिया। रखकर उस द्रमक के आलंकारिक कर्म करवाए। करवाकर शतपाक (सहस्रपाक) तेल से मालिश करवायी। सुगन्धित गात्रोद्वर्तन (पीठी) से शरीर का उबटन किया। उबटन कर गन्धोदक और उष्णोदक से नहलाया। फिर शीतोदक से नहलाया। रोंएदार, सुकोमल, सुगन्धित काषाय-वस्त्र से उसका शरीर पौंछा। पौंछकर हंसलक्षण पट-शाटक पहनाए। सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित किया। विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का भोजन कराया, भोजन कराकर उसे सागरदत्त के पास लाए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७९. तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे सूमालियं दारियं ण्हायं जाव सव्वालंकारविभूसियं करेत्ता तं दमगपुरिसं एवं वयासी--एस णं देवाणुप्पिया! मम धूया इट्ठा कंता पिया मणुण्णा मणामा। एयं णं अहं तव भारियत्ताए दलयामि, भद्दियाए भद्दओ भवेज्जासि।।

७९. सागरदत्त सार्थवाह ने कुमारी सुकुमालिका को नहलाकर यावत् सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित कर उस द्रमक पुरुष से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! यह मेरी पुत्री मुझे इष्ट, कमनीय, प्रिय, मनोज्ञ और मनोगत है। इसे मैं तेरी भार्या के रूप में प्रदान करता हूं। इस भाग्यशालिनी के योग से तू भी भाग्यशाली बन।

दमगस्स पलायण-पदं

८०. तए णं से दमगपुरिसे सागरदत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता सूमालियाए दारियाए सद्धिं वासघरं अणुपविसइ, सूमालियाए दारियाए सद्धिं तलिमंसि निवज्जइ।।

८१. तए णं से दमगपुरिसे सूमालियाए इमेयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ, से जहानामए--असिपत्ते इ वा जाव एत्तो अमणामतरागं चेव अंगफासं पच्चणुब्भवमाणे विहरइ।।

८२. तए णं से दमगपुरिसे सूमालियाए दारियाए अंगफासं असहमाणे अवसवसे मुहुत्तमेत्तं संचिट्ठइ।।

८३. तए णं से दमगपुरिसे सूमालियं दारियं सुहपसुत्तं जाणित्ता सूमालियाए दारियाए पासाओ उट्ठेइ, उट्ठेत्ता जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयणिज्जंसि निवज्जइ।।

८४. तए णं सा सूमालिया दारिया तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धा समाणी पइव्वया पइमणुरत्ता पइं पासे अपासमाणी तलिमाओ उट्ठेइ, उट्ठेत्ता जेणेव से सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दमगपुरिसस्स पासे णुवज्जइ।।

८५. तए णं से दमगपुरिसे सूमालियाए दारियाए दोच्चंपि इमं एयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ जाव अकामए अवसवसे मुहुत्तमेत्तं संचिट्ठइ।।

८६. तए णं से दमगपुरिसे सूमालियं दारियं सुहपसुत्तं जाणित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता वासघराओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता खंडमल्लगं खंडघडगं च गहाय मारामुक्के विव काए जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।।

सूमालियाए पुणोचिंता-पदं

८७. तए णं सा सूमालिया दारिया तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धा पतिव्वया पइमणुरत्ता पइं पासे अपासमाणी सयणिज्जाओ उट्ठेइ, दमगपुरिसस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेमाणी-करेमाणी वासघरस्स दारं विहाडियं पासइ, पासित्ता एवं वयासी--गए णं से

द्रमक का पलायन-पद

८०. उस द्रमक पुरुष ने सागरदत्त के इस अर्थ को स्वीकार किया। स्वीकार कर उसने कुमारी सुकुमालिका के साथ वासघर में प्रवेश किया और कुमारी सुकुमालिका के साथ शय्या पर सोया।

८१. उस द्रमक पुरुष ने सुकुमालिका के अंग-स्पर्श का ऐसा प्रतिसंवेदन किया, जैसे-असिपत्र हो यावत् उसके अंग-स्पर्श का इससे भी अमनोगततर प्रतिसंवेदन करता हुआ विहार करने लगा।

८२. वह द्रमक पुरुष सुकुमालिका के अंग-स्पर्श को सहन न करता हुआ विवशता से मुहूर्त्त भर वहां ठहरा।

८३. वह द्रमक पुरुष कुमारी सुकुमालिका को सुखपूर्वक सोयी हुई जानकर कुमारी सुकुमालिका के पास से उठा। उठकर जहां उसका अपना शयनीय था, वहां आया। आकर अपने शयनीय पर सो गया।

८४. उसके मुहूर्त्त भर पश्चात् कुमारी सुकुमालिका जागी। पतिव्रता, पति के प्रति अनुरक्ता उस सुकुमालिका ने जब पति को अपने पास नहीं देखा तो वह शय्या से उठी। उठकर जहां पति का शयनीय था, वहां आयी। वहां आकर द्रमक पुरुष के पास सो गई।

८५. उस द्रमक पुरुष ने दूसरी बार भी कुमारी सुकुमालिका के अंग-स्पर्श का ऐसा ही प्रतिसंवेदन किया यावत् वह अनचाहे ही विवशता से वहां मुहूर्त भर ठहरा।

८६. वह द्रमक पुरुष कुमारी सुकुमालिका को सुखपूर्वक निकलकर सोयी हुई जानकर शयनीय से उठा। उठकर वासघर से निकला, फूटा हुआ भिक्षापात्र और फूटा हुआ घड़ा लेकर वधस्थान से मुक्त कौवे की भांति जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में चला गया।

सुकुमालिका का पुनः चिन्ता-पद

८७. मुहूर्त्त भर पश्चात् सुकुमालिका जागी। पतिव्रता, पति के प्रति अनुरक्ता उस सुकुमालिका ने जब पति को अपने पास नहीं देखा, तो वह शय्या से उठी। द्रमक पुरुष की चारों ओर खोज करते-करते उसने वासघर का द्वार खुला देखा। यह देखकर वह इस प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दमगपुरिसे त्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया झियायइ।।

८८. तए णं सा भद्दा कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते दासचेडिं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिए! बहूवरस्स मुहधोवणियं उवणेहि।।

८९. तए णं सा दासचेडी भद्दाए सत्थवाहिए एवं वुत्ता समाणी एयमट्ठं तहत्ति पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता मुहधोवणियं गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव वासघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सूमालियं दारियं ओहयमणसंकप्पं करतलपल्हत्थमुहिं अट्टज्झाणोवगयं झियायमाणिं पासइ, पासित्ता एवं वयासी--किण्णं तुमं देवाणुप्पिए! ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया झियाहि?

९०. तए णं सा सूमालिया दारिया तं दासचेडिं एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिए! दमगपुरिसे ममं सुहपसुत्तं जाणित्ता मम पासाओ उट्ठेइ, उट्ठेत्ता वासघरदुवारं अवंगुणेइ, अवंगुणेत्ता मारामुक्के विव काए जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए। तए णंहं तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धा पतिव्वया पइमणुरत्ता पइं पासे अपासमाणी सयणिज्जाओ उट्ठेमि, दमगपुरिसस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेमाणी-करेमाणी वासघरस्स दारं विहाडियं पासामि, पासित्ता गए णं से दमगपुरिसे त्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया झियायामि।।

९१. तए णं सा दासचेडी सूमालियाए दारियाए एयमट्ठं सोच्चा जेणेव सागरदत्ते सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सागरदत्तस्स एयमट्ठं निवेदेइ।।

सूमालियाए दाणसाला-पदं

९२. तए णं से सागरदत्ते तहेव संभंते समाणे जेणेव वासघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सूमालियं दारियं अंके निवेसेइ, निवेसेत्ता एवं वयासी--अहो णं तुमं पुत्ता! पुरापोराणाणं दुच्चिण्णाणं दुप्परक्कंताणं कडाणं पावाणं कम्माणं पावगं फलवित्तिविसेसं पच्चणुब्भवमाणी विहरसि। तं मा णं तुमं पुत्ता! ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया झियाहि।

तुमं णं पुत्ता! मम महाणसंसि विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेहि, उवक्खडावेत्ता बहूणं समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमगाणं देयमाणी य दवावेमाणी य परिभाएमाणी विहराहि।।

बुदबुदायी--द्रमक पुरुष तो चला गया--यह कहकर वह भग्न हृदय हो हथेली पर मुंह टिकाए आर्त्तध्यान में डूबी हुई चिन्ता-मग्न हो गई।

८८. उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर भद्रा सार्थवाही ने दासचेटी को बुलाया। उसे बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिये! तू जा और वधू-वर के लिए मुख धावनिका ले जा।

८९. उस दासचेटी ने भद्रा सार्थवाही के ऐसा कहने पर उसके इस अर्थ को 'तथेति' कहकर स्वीकार किया। स्वीकार कर मुख धावनिका ली। लेकर जहां वासघर था, वहां आयी। वहां आकर उसने कुमारी सुकुमालिका को भग्न हृदय हो हथेली पर मुंह टिकाए आर्त्तध्यान में डूबी हुई देखा। यह देखकर वह इस प्रकार बोली--देवानुप्रिये! तुम भग्न हृदय हो हथेली पर मुंह टिकाए आर्त्तध्यान में डूबी हुई चिन्तामग्न क्यों हो रही हो?

९०. कुमारी सुकुमालिका ने उस दासचेटी से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिये! इस प्रकार द्रमक पुरुष मुझे सुखपूर्वक सोयी जानकर मेरे पास से उठा। उठकर वासघर का द्वार खोला। खोलकर वधस्थान से मुक्त कौवे की भांति, जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में चला गया। उसके जाने के मुहूर्त्त भर पश्चात् मैं जागी। पतिव्रता और पति के प्रति अनुरक्ता मैं पति को अपने पास न देखकर शयनीय से उठी। द्रमक पुरुष की चारों ओर खोज करते-करते मैंने वासघर का द्वार खुला देखा। देखकर--'द्रमक पुरुष तो चला गया'--यह सोचकर भग्न हृदय हो हथेली पर मुंह टिकाए आर्त्त ध्यान में डूबी हुई चिन्ता-मग्न हो रही हूं।

९१. वह दासचेटी कुमारी सुकुमालिका से यह अर्थ सुनकर जहां सागरदत्त सार्थवाह था, वहां आयी। वहां आकर सागरदत्त को यह अर्थ निवेदित किया।

सुकुमालिका का दानशाला-पद

९२. वह सागरदत्त वैसे ही संभ्रान्त हो जहां वासघर था, वहां आया। वहां आकर कुमारी सुकुमालिका को गोद में बिठाया। उसे गोद में बिठाकर इस प्रकार कहा--पुत्री! तू पूर्वकृत, पुरातन, दुश्चीर्ण, दुष्पराकान्त, स्वकृत पापकर्मों का पापकारी विशेष फल भोगती हुई विहार कर रही हो। अत: पुत्री! तू भग्न हृदय हो हथेली पर मुंह टिकाए आर्त्तध्यान में डूबी हुई चिन्तामग्न मत बन।

पुत्री! तू मेरी पाकशाला में विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवा। तैयार करवाकर बहुत से श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, कृपण और वनीपकों को दान देती हुई, दिलाती हुई और सबको बांटती हुई विहार कर।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९३. तए णं सा सूमालिया दारिया एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता (कल्लाकल्लिं?) महाणसंसि विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता बहूणं समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमगाणं देयमाणी य दवावेमाणी य परिभाएमाणी विहरइ।।

९३. कुमारी सुकुमालिका ने पिता के इस अर्थ को स्वीकार किया। स्वीकार कर वह (प्रतिदिन?) पाकशाला में विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवाती। तैयार करवा कर बहुत से श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, कृपण और वनीपकों को दान देती हुई, दिलाती हुई, सबको बांटती हुई विहार करने लगी।

अज्जा-संघाडगस्स भिक्खायरियागमण-पदं

आर्या संघाटक का भिक्षाचर्या के लिए आगमन-पद

९४. तेणं कालेणं तेणं समएणं गोवालियाओ अज्जाओ बहुस्सुयाओ बहुपरिवाराओ पुव्वाणुपुव्विं चरमाणीओ जेणेव चंपा नयरी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हंति, ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणीओ विहरंति।।

९४. उस काल और उस समय गोपालिका आर्या, जो बहुश्रुत और बहु परिवार वाली थी, क्रमशः विचरण करती हुई, जहां चम्पा नगरी थी, वहां आयी। वहां आकर यथोचित अवग्रह--आवास को ग्रहण किया। ग्रहण कर संयम और तप से स्वयं को भावित करती हुई विहार करने लगी।

९५. तए णं तासिं गोवालियाणं अज्जाणं एगे संघाडए जेणेव गोवालियाओ अज्जाओ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गोवालियाओ अज्जाओ वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--इच्छामो णं तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए चंपाए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंध करेहि।।

९५. गोपालिका आर्या का सहवर्ती एक संघाटक आर्या गोपालिका के पास आया। आकर आर्या गोपालिका को वंदना की। नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार कहा--हम आपसे अनुज्ञा प्राप्त कर चम्पा नगरी के ऊंच, नीच और मध्यम कुलों के घरों में सामुदानिक भिक्षाचर्या के लिए अटन करना चाहती हैं।

जैसा सुख हो देवानुप्रियाओ! प्रतिबन्ध मत करो।

९६. तए णं ताओ अज्जाओ गोवालियाहिं अज्जाहिं अब्भणुण्णाया समाणीओ भिक्खायरियं अडमाणीओ सागरदत्तस्स गिहं अणुप्पविट्ठाओ।।

९६. आर्या गोपालिका से अनुज्ञा प्राप्त कर वे साध्वियां भिक्षाचर्या के लिए अटन करती हुई, सागरदत्त के घर में प्रविष्ट हुई।

सूमालियाए सागरपसायोवाय-पुच्छा-पदं

सुकुमालिका द्वारा सागर की प्रसन्नता का उपाय पृच्छा-पद

९७. तए णं सूमालिया ताओ अज्जाओ एज्जमाणीओ पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठा आसणाओ अब्भुट्ठेइ, वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता विपुलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेइ, पडिलाभेत्ता एवं वयासी--एवं खलु अज्जाओ! अहं सागरस्स अणिट्ठा अकंता अप्पिया अमणुण्णा अमणामा। नेच्छइ णं सागरए दारए मम नाम गोयमवि सवणयाए, किं पुण दंसणं वा परिभोगं वा?

जस्स-जस्स वि य णं देज्जामि तस्स-तस्स वि य णं अणिट्ठा अकंता अप्पिया अमणुण्णा अमणामा भवामि।

तुब्भे य णं अज्जाओ! बहुनायाओ बहुसिक्खियाओ बहुपढियाओ बहूणि गामागर-णगर-खेड-कब्बड-दोणमुह-मडंब-पट्टण-आसम-निगम-संबाह-सण्णिवेसाइं आहिंडह, बहूणं राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहपभिईणं गिहाइं अणुपविसह। तं अत्थियाइं भे अज्जाओ! केइ कहिंचि चुण्णजोए वा मंतजोगे वा कम्मणजोए वा कम्मजोए वा हियउड्डावणे वा काउड्डावणे वा आभिओगिए वा वसीकरणे वा कोउयकम्मे वा भूइकम्मे वा मूले वा कंदे वा छल्ली वल्ली सिलिया वा

९७. सुकुमालिका ने उन आर्याओं को आते हुए देखा। उन्हें देखकर हृष्ट तुष्ट हो आसन से उठी। वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य से उन्हें प्रतिलाभित किया। प्रतिलाभित कर वह इस प्रकार बोली--आर्याओ! इस प्रकार मैं सागर को अनिष्ट, अकमनीय, अप्रिय, अमनोज्ञ और अमनोगत हो गई हूं। कुमार सागर मेरा नाम गोत्र भी सुनना नहीं चाहता, फिर दर्शन और परिभोग की तो बात ही कहां है?

जिस-जिस को भी मैं दी जाती हूं, उस-उस को मैं अनिष्ट, अकमनीय, अप्रिय, अमनोज्ञ और अमनोगत हो जाती हूं।

आर्याओ! तुम बहुत जानकार हो। बहुत शिक्षित हो, बहुत पढ़ी लिखी हो और अनेक गांव, आकर, नगर, खेट, कर्बट द्रोणमुख, मडम्ब, पत्तन, आश्रम, निगम, संबाह और सन्निवेशों में घूमती हो। बहुत-से राजा, ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि के घरों में प्रवेश करती हो, तो आर्याओ! कहीं कोई चूर्ण-योग, मंत्र-योग, कार्मण-योग (टोना) कर्म-योग, हृदयाकर्षण, शरीराकर्षण, पराभिभवन, वशीकरण, कौतुककर्म, भूतिकर्म, मूल, कन्द,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुलिया वा ओसहे वा भेसज्जे वा उवलद्धपुव्वे, जेणं अहं सागरस्स दारगस्स इट्ठा कंता पिया मणुण्णा मणामा भवेज्जामि?

छल्ली, वल्ली, शिलिका, गुटिका, औषध अथवा भेषज्य उपलब्ध हुआ है, जिससे मैं कुमार सागर को इष्ट, कमनीय, प्रिय, मनोज्ञ और मनोगत बन सकूं?

अज्जा-संघाडगस्स उत्तर-पदं

९८. तए णं ताओ अज्जाओ सूमालियाए एवं वुत्ताओ समाणीओ दोवि कण्णे ठएंति, ठएत्ता सूमालियं एवं वयासी--अम्हे णं देवाणुप्पिए! समणीओ निग्गंथीओ जाव गुत्तबंभचारिणीओ नो खलु कप्पइ अम्हं एयप्पगारं कण्णेहिं वि निसामित्तए, किमंग पुण उवदंसित्तए वा आयरित्तए वा अम्हे णं तव देवाणुप्पिए! विचित्तं केवलिपण्णत्तं धम्मं परिकहिज्जामो।।

आर्या संघाटक का उत्तर-पद

९८. सुकुमालिका से यह अर्थ सुन उन आर्याओं ने दोनों कान बंद कर लिए। दोनों कान बंद कर वे सुकुमालिका से इस प्रकार बोली--देवानुप्रिय! हम श्रमणियां, निर्ग्रन्थिकाएं यावत् गुप्तब्रह्मचारिणियां हैं। हमें इस प्रकार का शब्द सुनना भी नहीं कल्पता, फिर उपदेश और आचरण का तो प्रश्न ही कहां है?

देवानुप्रिये! हम तो तुझे विचित्र केवलीप्रज्ञप्त धर्म सुनाती हैं।

सूमालियाए साविया-पदं

९९. तए णं सा सूमालिया ताओ अज्जाओ एवं वयासी--इच्छामि णं अज्जाओ! तुब्भं अंतिए केवलिपण्णत्तं धम्मं निसामित्तए।।

सुकुमालिका का श्राविका-पद

९९. सुकुमालिका ने उन आर्याओं से इस प्रकार कहा--आर्याओ! मैं तुमसे केवलीप्रज्ञप्त धर्म सुनना चाहती हूं।

१००. तए णं ताओ अज्जाओ सूमालियाए विचित्तं केवलिपण्णत्तं धम्मं परिकहेंति।।

१००. उन आर्याओं ने सुकुमालिका को विचित्र केवलीप्रज्ञप्त धर्म का उपदेश दिया।

१०१. तए णं सा सूमालिया धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठा एवं वयासी--सद्दहामि णं अज्जाओ! निग्गंथं पावयणं जाव से जहेयं तुब्भे वयह। इच्छामि णं अहं तुब्भं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं--दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जित्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिए!

१०१ धर्म को सुनकर, अवधारण कर हर्षित हुई सुकुमालिका ने इस प्रकार कहा--आर्याओ! मै--निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करती हूं, यावत् वह वैसा ही है जैसा तुम कह रही हो। मैं तुम्हारे पास पांच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का गृहीधर्म स्वीकार करना चाहती हूं।

जैसा सुख हो देवानुप्रिये!

१०२. तए णं सा सूमालिया तासिं अज्जाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं जाव गिहिधम्मं पडिवज्जइ, ताओ अज्जाओ वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता पडिविसज्जेइ।।

१०२. सुकुमालिका ने उन आर्याओं के पास पांच अणुव्रत यावत् गृही-धर्म को स्वीकार किया। उन आर्याओं को वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर उन्हें प्रतिविसर्जित किया।

१०३. तए णं सा सूमालिया समणोवासिया जाया जाव समणे निग्गंथे फासुएणं एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं ओसहभेसज्जेणं पाडिहारिएण य पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं पडिलाभेमाणी विहरइ।।

१०३. सुकुमालिका श्रमणोपासिका बन गई। यावत् वह श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक, एषणीय, अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पाद-प्रोञ्छन, औषध, भेषज्य तथा प्रातिहारिक पीठ, फलक, शय्या और संस्तारक से प्रतिलाभित करती हुई विहार करने लगी।

सूमालियाए पव्वज्जा-पदं

१०४. तए णं तीसे सूमालियाए अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुंबजागरियं जागरमाणीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--एवं खलु अहं सागरस्स पुव्विं इट्ठा कंता पिया मणुण्णा मणामा आसि, इयाणिं अणिट्ठा अकंता अप्पिया अमणुण्णा अमणामा। नेच्छइ णं सागरए मम नामगोयमवि सवणयाए, किं पुण दंसणं वा परिभोगं वा?

सुकुमालिका का प्रव्रज्या-पद

१०४. किसी समय कुटुम्ब जागरिका करते हुए सुकुमालिका के मन में मध्यरात्रि के समय इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--मैं सागर को पहले इष्ट, कमनीय, प्रिय, मनोज्ञ और मनोगत थी। अब अनिष्ट, अकमनीय, अप्रिय अमनोज्ञ और अमनोगत हो गई हूं। सागर मेरा नाम गोत्र भी सुनना नहीं चाहता, दर्शन और परिभोग की तो बात ही कहां? जिस-जिस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जस्स-जस्स वि य णं देज्जामि तस्स-तस्स वि य णं अणिट्ठा अकंता अप्पिया अमणुण्णा अमणामा भवामि। तं सेयं खलु ममं गोवालियाणं अज्जाणं अंतिए पव्वइत्तए--एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते जेणेव सागरदत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! मए गोवालियाणं अज्जाणं अंतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए। तं इच्छामि णं तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया पव्वइत्तए जाव गोवलियाणं अज्जाणं अंतिए पव्वइया।।

को भी मैं दी जाती हूं उस-उस को भी अनिष्ट, अकमनीय, अप्रिय, अमनोज्ञ और अमनोगत हो जाती हूं। अतः मेरे लिए उचित है मैं आर्या गोपालिका के पास प्रव्रजित बनूं। उसने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर जहां सागरदत्त था वहां आई। वहां आकर सिर पर प्रदक्षिणा करती अञ्जलि को मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! मैंने आर्या गोपालिका से धर्म सुना है और वही धर्म मुझे इष्ट, ग्राह्य और रुचिकर है। अतः मैं तुमसे अनुज्ञा प्राप्त कर प्रव्रजित होना चाहती हूं। यावत् वह आर्या गोपालिका के पास प्रव्रजित हो गई।

१०५. तए णं सा सूमालिया अज्जा जाया—इरियासमिया जाव गुत्तबंभयारिणी बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।।

१०५. वह सुकुमालिका साध्वी बन गई। वह ईर्या-समिति से समित यावत् गुप्तब्रह्मचारिणी थी। वह बहुत से चतुर्थ-भक्त, षष्ठ-भक्त, अष्टम-भक्त, दशम-भक्त, द्वादश-भक्त तथा मासिक और पाक्षिक तप से स्वयं को भावित करती हुई विहार करने लगी।

सूमालियाए आतावणा-पदं

१०६. तए णं सा सूमालिया अज्जा अण्णया कयाइ जेणेव गोवालियाओ अज्जाओ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—इच्छामि णं अज्जाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी चंपाए नयरीए बाहिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स अदूरसामंते छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं सूराभिमुही आयावेमाणी विहरित्तए।।

सुकुमालिका का आतापना-पद

१०६. किसी समय आर्या सुकुमालिका, जहां आर्या गोपालिका थी वहां आयी। वहां आकर वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार बोली--आर्ये। मैं चाहती हूं तुमसे अनुज्ञा प्राप्त कर, चम्पानगरी के बाहर सुभूमिभाग उद्यान के परिपार्श्व में निरन्तर बेले-बेले की तपस्या के साथ सूर्याभिमुख हो, आतापना लेती हुई विहार करूं।

१०७. तए णं ताओ गोवालियाओ अज्जाओ सूमालियं अज्जं एवं वयासी--अम्हे णं अज्जो! समणीओ निग्गंथीओ इरियासमियाओ जाव गुत्तबंभचारिणीओ। नो खलु कप्पइ बहिया गामस्स वा जाव सण्णिवेसस्स वा छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं सूराभिमुहीणं आयावेमाणीणं विहरित्तए। कप्पइ णं अम्हं अंतोउवस्सयस्स वइपरिक्खित्तस्स संघाडिबद्धियाए णं समतलपइयाए आयावेत्तए।।

१०७. आर्या गोपालिका ने आर्या सुकुमालिका से इस प्रकार कहा--आर्ये! हम ईर्या-समिति से समित यावत् गुप्तब्रह्मचारिणी श्रमणियां, निर्ग्रन्थिकाएं हैं। हमें ग्राम यावत् सन्निवेश के बाहर, निरन्तर बेले-बेले की तपस्या के साथ सूर्याभिमुख हो आतापना लेते हुए विहार करना कल्पता नहीं है। हमें बाड़ से घिरे हुए उपाश्रय के भीतर संघाटी बांधकर समतलभूमि में आतापना लेना कल्पता है।

१०८. तए णं सा सूमालिया गोवालियाए एयमट्ठं नो सद्दहइ नो पत्तियइ नो रोएइ, एयमट्ठं असद्दहमाणी अपत्तियमाणी अरोयमाणी सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स अदूरसामंते छट्ठंछट्ठेण अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं सुराभिमुही आयावेमाणी विहरइ।।

१०८. सुकुमालिका ने गोपालिका के इस अर्थ पर न श्रद्धा की, न प्रतीति की और न रुचि की। वह इस अर्थ पर श्रद्धा, प्रतीति, रुचि न करती हुई सुभूमिभाग उद्यान के परिपार्श्व में निरन्तर बेले-बेले की तपस्या के साथ सुर्याभिमुख हो आतापना लेती हुई विहार करने लगी।

सूमालियाए नियाण-पदं

१०९. तत्थ णं चंपाए ललिया नाम गोट्ठी परिवसइ--नरवइ-दिन्न-पयारा अम्मापिइनियग-निप्पिवासा वेसविहार-कय-निकेया नाणाविह-अविणयप्पहाणा अड्ढा जाव बहुजणस्स अपरिभूया।।

सुकुमालिका का निदान-पद

१०९. उस चम्पानगरी में एक 'ललिता' नाम की गोष्ठी (मित्र-मण्डली) का निवास था। वह राजा द्वारा अनुज्ञात, स्वैराचार वाली, माता-पिता और आत्मीय जनों से निरपेक्ष, वेश्याओं के घर निवास करने वाली, नाना प्रकार से अविनय प्रधान, आढ्य यावत् बहुत जनों द्वारा अपराजित थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११०. तत्थ णं चंपाए देवदत्ता नामं गणिया होत्था--सूमाला जहा अंड-नाए।।

११०. उस चम्पानगरी में देवदत्ता नाम की गणिका थी। वह सुकुमार थी। उसका वर्णन अण्ड-ज्ञात (ज्ञाता-अध्ययन तीन) की भांति ज्ञातव्य है।

१११. तए णं तीसे ललियाए गोट्ठीए अण्णया कयाइ पंच गोट्ठिल्लगपुरिसा देवदत्ताए गणियाए सद्धिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिरिं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति।।

१११. किसी समय उस ललिता गोष्ठी के पांच गोष्ठिल-पुरुष (सदस्य) देवदत्ता गणिका के साथ सुभूमिभाग उद्यान की उद्यान-श्री का अनुभव करते हुए विहार कर रहे थे।

११२. तत्थ णं एगे गोट्ठिल्लगपुरिसे देवदत्तं गणियं उच्छंगे धरेइ, एगे पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ, एगे पुप्फपूरगं रएइ, एगे पाए रएइ, एगे चामरुक्खेवं करेइ।।

११२. वहां एक गोष्ठिलपुरुष ने देवदत्ता गणिका को गोद में लिया। एक ने पीछे स्थित हो छत्र धारण किया। एक ने पुष्प-शेखर की रचना की। एक ने उसके पावों पर अलक्तक (महावर) की रचना की और एक ने चंवर डुलाया।

११३. तए णं सा सूमालिया अज्जा देवदत्तं गणियं तेहिं पंचहिं गोट्ठिल्लपुरिसेहिं सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणिं पासइ, पासित्ता इमेयारूवे संकप्पे समुप्पज्जित्था--अहो णं इमा इत्थिया पुरापोराणाणं सुचिण्णाणं सुपरक्कंताणं कडाणं कल्लाणाणं कम्माणं कल्लाणं फलवित्तिविसेसं पच्चणुब्भवमाणी विहरइ। तं जइ णं केइ इमस्स सुचरियस्स तव-नियम-बंभचेरवासस्स कल्लाणे फलवित्तिविसेसे अत्थि, तो णं अहमवि आगमिस्सेणं भवग्गहणेणं इमेयारूवाइं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरिज्जामि त्ति कट्टु नियाणं करेइ, करेत्ता आयावणभूमीओ पच्चोरुभइ।।

११३. सुकुमालिका आर्या ने देवदत्ता गणिका को उन पांच गोष्ठिल पुरुषों के साथ प्रधान मनुष्य सम्बन्धी भोगार्ह भोगों को भोगते हुए देखा। देखकर उसके मन में इस प्रकार का संकल्प उत्पन्न हुआ--अहो! यह स्त्री पूर्वकृत, पुरातन, सुचीर्ण, सुपराक्रान्त, कल्याणकारी कर्मों के कल्याणकारी फलविशेष का अनुभव करती हुई विहार करती है। अत: यदि इस सुचरित तप, नियम और ब्रह्मचर्य का कोई कल्याणकारी फलविशेष है तो मैं भी भावी जीवन में इसी प्रकार के प्रधान मनुष्य सम्बन्धी भोगार्ह भोगों को भोगती हुई विहार करूं। उसने ऐसा निदान किया। निदान कर आतापना भूमि से चली गई।

सूमालियाए बाउसियत्त-पदं

सुकुमालिका का बकुशता-पद

११४. तए णं सा सूमालिया अज्जा सरीरबाउसिया जाया यावि होत्था--अभिक्खणं-अभिक्खणं हत्थे धोवेइ, पाए धोवेइ, सीसं धोवेइ, मुहं धोवेइ, थणंतराइं धोवेइ, कक्खंतराइं धोवेइ, गुज्झंतराइं धोवेइ, जत्थ णं ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएइ, तत्थ वि य णं पुव्वामेव उदएणं अब्भुक्खेत्ता तओ पच्छा ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएइ।।

११४. वह सुकुमालिका आर्या शरीरबकुशा हो गई--वह बार-बार हाथ धोती, पांव धोती, सिर धोती, मुंह धोती, स्तनान्तर धोती, कक्षान्तर धोती, गुह्यान्तर धोती और जहां जहां भी स्थान, शय्या अथवा निषद्या करती उस भूमि को पहले ही पानी से धोकर उसके पश्चात् वहां स्थान, शय्या और निषद्या करती।

११५. तए णं ताओ गोवालियाओ अज्जाओ सूमालियं अज्जं एवं वयासी--एवं खलु अज्जे! अम्हे समणीओ निग्गंथीओ इरियासमियाओ जाव बंभचेरधारिणीओ। नो खलु कप्पइ अम्हं सरीरबाउसियाए होत्तए। तुमं च णं अज्जे! सरीरबाउसिया अभिक्खणं-अभिक्खणं हत्थे धोवेसि, पाए धोवेसि, सीसं धोवेसि, मुहं धोवेसि, थणंतराइं धोवेसि, कक्खंतराइं धोवेसि, गुज्झंतराइं धोवेसि, जत्थ णं ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएसि, तत्थ वि य णं पुव्वामेव उदएणं अब्भुक्खेत्ता तओ पच्छा ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएसि। तं तुमं णं देवाणुप्पिए! एयस्स ठाणस्स आलोएहि निंदाहि गरिहाहि पडिक्कमाहि विउट्टाहि विसोहेहि अकरणयाए अब्भुट्ठेहि, अहारिहं तवोकम्मं पायच्छित्तं पडिवज्जाहि।।

११५. आर्या गोपालिका ने सुकुमालिका आर्या से इस प्रकार कहा--आर्ये! हम श्रमणियां, निर्ग्रन्थिकाएं, ईर्या समिति से समित यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणियां हैं। हमें शरीरबकुश होना नहीं कल्पता और आर्ये! तुम शरीर-बकुशा होकर बार-बार हाथ धोती हो, पांव धोती हो, सिर धोती हो, मुंह धोती हो, स्तनान्तर धोती हो, कक्षान्तर धोती हो, गुह्यान्तर धोती हो और जहां-जहां भी स्थान, शय्या अथवा निषद्या करती हो उस भूमि को पहले ही पानी से धोकर उसके पश्चात् वहां स्थान, शय्या और निषद्या करती हो। देवानुप्रिये! तुम इस स्थान की आलोचना करो। निन्दा करो, गर्हा करो, प्रतिक्रमण करो, विवर्तन (निवृत्त होने का संकल्प) करो, विशोधन करो, भविष्य में ऐसा प्रमाद न करने के लिए अभ्युत्थान करो और यथायोग्य तप:कर्म रूप, प्रायश्चित्त स्वीकार करो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११६. तए णं सा सूमालिया गोवालियाणं अज्जाणं एयमट्ठं नो आढाइ नो परियाणाइ, अणाढायमाणी अपरियाणमाणी विहरइ।।

११६. सुकुमालिका ने आर्या गोपालिका के इस अर्थ को न आदर दिया और न उसकी बात पर ध्यान दिया। वह उसे आदर न देती हुई, उसकी बात पर ध्यान न देती हुई विहार करने लगी।

११७. तए णं ताओ अज्जाओ सूमालियं अज्जं अभिक्खणं-अभिक्खणं हीलेंति निंदेंति खिंसेंति गरिहंति परिभवंति, अभिक्खणं-अभिक्खणं एयमट्ठं निवारेंति।।

११७. वे आर्याएं आर्या सुकुमालिका की बार-बार अवहेलना करती, निन्दा करती, कुत्सा करती, गर्हा करती, पराभव करती और बार-बार इस प्रमाद से रोकतीं।

सूमालियाए पुढोविहार-पदं

११८. तए णं तीसे सूमालियाए समणीहिं निग्गंथीहिं हीलिज्जमाणीए निंदिज्जमाणीए खिंसिज्जमाणीए गरिहिज्जमाणीए परिभविज्जमाणीए अभिक्खणं-अभिक्खणं एयमट्ठं निवारिज्जमाणीए इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--जया णं अहं अगारमज्झे वसामि, तया णं अहं अप्पवसा। जया णं अहं मुंडा भवित्ता पव्वइया, तया णं अहं परवसा। पुव्विं च णं ममं समणीओ आढेंति परिजाणंति, इयाणिं नो आढेंति नो परिजाणंति। तं सेयं खलु मम कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते गोवालियाणं अज्जाणं अंतियाओ पडिनिक्खमित्ता पाडिएक्कं उवस्सयं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते गोवालियाणं अज्जाणं अंतियाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता पाडिएक्कं उवस्सयं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।।

सुकुमालिका का पृथक विहार पद

११८. उन श्रमणी निर्ग्रन्थिकाओं द्वारा बार-बार अवहेलना, निन्दा, कुत्सा, गर्हा तथा पराभव करने और बार-बार उस प्रमाद से रोके जाने पर उस सुकुमालिका के मन में इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--जब मैं अगार वास में थी, तब मैं स्वतंत्र थी। जब मैं मुण्ड हो प्रव्रजित हो गई, तब मैं परतन्त्र हो गई। पहले ये श्रमणियां मुझे आदर देती थी, मेरी ओर ध्यान देती थीं। अब वे न मुझे आदर देती है और न मेरी ओर ध्यान देती हैं। अत: मेरे लिए उचित है मैं उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर गोपालिका आर्या के पास से प्रतिनिष्क्रमण कर पृथक उपाश्रय को स्वीकार कर विहार करूं--उसने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर उसने गोपालिका आर्या के पास से प्रतिनिष्क्रमण किया। प्रतिनिष्क्रमण कर पृथक उपाश्रय को स्वीकार कर विहार करने लगी।

११९. तए णं सा सूमालिया अज्जा अणोहट्टिया अनिवारिया सच्छंदमई अभिक्खणं-अभिक्खणं हत्थे धोवेइ, पाए धोवेइ, सीसं धोवेइ, मुहं धोवेइ, थणंतराइं धोवेइ, कक्खंतराइं धोवेइ, गुज्झंतराइं धोवेइ, जत्थ णं ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएइ, तत्थ वि य णं पुव्वामेव उदएणं अब्भुक्खेत्ता तओ पच्छा ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएइ।

तत्थ वि य णं पासत्था पासत्थविहारिणी ओसन्ना ओसन्नविहारिणी कुसीला कुसीलविहारिणी संसत्ता संसत्तविहारिणी बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए अप्पाणं झोसेत्ता, तीसं भत्ताइं अणसणाए छेएत्ता, तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा ईसाणे कप्पे अण्णयरंसि वियाणंसि देवगणियत्ताए उववण्णा। तत्थेगइयाणं देवीणं नवपलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। तत्थ णं सूमालियाए देवीए नवपलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।।

११९. वह सुकुमालिका आर्या बिना किसी रोक-टोक के स्वतंत्रता पूर्वक बार-बार हाथ धोती, पांव धोती, सिर धोती, मुंह धोती, स्तनान्तर धोती, कक्षान्तर धोती, गुह्यान्तर धोती और जहां-जहां भी स्थान, शय्या अथवा निषद्या करती उस भूमि को पहले ही पानी से धोकर उसके पश्चात् वहां स्थान, शय्या और निषद्या करती।

वहां भी उसने पार्श्वस्था, पार्श्वस्थ-विहारिणी, अवसन्ना, अवसन्ना-विहारिणी, कुशीला, कुशील-विहारिणी, संसक्ता और संस्कत-विहारिणी होकर बहुत वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालन किया। पालन कर पाक्षिक संलेखना की आराधना में स्वयं को समर्पित कर अनशन काल में तीस भक्तों का परित्याग कर, उस प्रमाद स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किए बिना, मृत्यु के समय मृत्यु को प्राप्त कर, ईशान कल्प के किसी विमान में देवगणिका के रूप में उपपन्न हुई। वहां कुछ देवियों की स्थिति नौ पल्योपम बतलायी गई है। वहां सुकुमालिका देवी की स्थिति भी नौ पल्योपम थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोवई-कहाणग-पदं

द्रौपदी का कथानक-पद

१२०. तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे पंचालेसु जणवएसु कंपिल्लपुरे नामं नयरे होत्था--वण्णओ ।।

१२०. उस काल और उस समय इसी जम्बूद्वीप-द्वीप, भारतवर्ष और पाञ्चाल जनपद में काम्पिल्यपुर नाम का नगर था--वर्णक।

१२१. तत्थ णं दुवए नामं राया होत्था--वण्णओ ।।

१२१. वहां द्रुपद नाम का राजा था--वर्णक।

१२२. तस्स णं चुलणी देवी। धट्ठज्जुणे कुमारे जुवराया ।।

१२२. उसके चुलनी देवी थी। धृष्टद्युम्न कुमार युवराज था।

१२३. तए णं सा सूमालिया देवी ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं ठिइक्खएणं भवक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे पंचालेसु जणवएसु कंपिल्लपुरे नयरे दुवयस्स रण्णो चुलणीए देवीए कुच्छिंसि दारियत्ताए पच्चायाया ।।

१२३. वह सुकुमालिका देवी आयुक्षय, स्थितिक्षय और भवक्षय के अनन्तर उस देवलोक से च्युत होकर, इसी जम्बूद्वीप द्वीप, भारतवर्ष और पांचाल जनपद में काम्पिल्यपुर नगर में राजा द्रुपद की रानी चुलनी की कुक्षि में बालिका के रूप में उपपन्न हुई।

१२४. तए णं सा चुलणी देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं वीइक्कंताणं सुकुमाल-पाणिपायं जाव दारियं पयाया ।।

१२४. उस चुलनी देवी ने पूरे नौ मास और साढ़े सात दिन बीत जाने पर, एक सुकुमार हाथ-पावों वाली यावत् बालिका को जन्म दिया।

१२५. तए णं तीसे दारियाए निव्वत्तबारसाहियाए इमं एयारूवं नामं--जम्हा णं एसा दारिया दुपयस्स रण्णो धूया चुलणीए देवीए अत्तया, तं होउ णं अम्हं इमीसे दारियाए नामधेज्जे दोवई ।।

१२५. जब वह बालिका बारह दिन की हुई तब उसका यह नाम रखा--क्योंकि हमारी यह बालिका राजा द्रुपद की पुत्री और चुलनी देवी की आत्मजा है, अत: हमारी इस बालिका का नाम द्रौपदी हो।

१२६. तए णं तीसे अम्मापियरो इमं एयारूवं गोण्णं गुणनिप्फन्नं नामधेज्जं करेंति--दोवई-दोवई ।।

१२६. उसके माता-पिता ने इस प्रकार यह गुणानुरूप गुण-निष्पन्न नाम रखा--द्रौपदी.............द्रौपदी।

१२७. तए णं सा दोवई दारिया पंचधाईपरिग्गहिया जाव गिरिकंदरमल्लीणा इव चंपगलया निवाय-निव्वाघायंसि सुहंसुहेणं परिवड्ढइ ।।

१२७. वह द्रौपदी बालिका पांच धाय-माताओं से परिगृहीत यावत् निर्वात और निर्व्याघात गिरिकन्दरा में आलीन चम्पकलता की भांति सुखपूर्वक बढ़ रही थी।

१२८. तए णं सा दोवई रायवरकण्णा उम्मुक्कबालभावा विण्णय-परिणयमेत्ता जोव्वणगमणुपत्ता रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा जाया यावि होत्था ।।

१२८. वह प्रवर राजकन्या द्रौपदी शैशव को लांघकर विज्ञ और कला में पारगामी बन यौवन को प्राप्त हो, रूप यौवन और लावण्य से उत्कृष्ट और उत्कृष्ट शरीर वाली हुई।

१२९. तए णं तं दोवइं रायवरकण्णं अण्णया कयाइ अंतेउरियाओ ण्हायं जाव सव्वालंकारविभूसियं करेंति, करेत्ता दुवयस्स रण्णो पायवंदियं पेसेंति ।।

१२९. किसी समय अन्त:पुर की महिलाओं ने उस प्रवर राजकन्या द्रौपदी को नहलाकर यावत् सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित किया। विभूषित कर राजा द्रुपद के (कक्ष में) पाद वन्दन के लिए भेजा।

१३०. तए णं सा दोवई रायवरकण्णा जेणेव दुवए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दुवयस्स रण्णो पायग्गहणं करेइ ।।

१३०. वह प्रवर राजकन्या द्रौपदी, जहां द्रुपद राजा था, वहां आयी। वहां आकर उसने द्रुपद राजा के चरण छुए।

दोवईए सयंवर-संकप्प-पदं

द्रौपदी का स्वयंवर संकल्प-पद

१३१. तए णं से दुवए राया दोवइं दारियं अंके निवेसेइ, निवेसेत्ता

१३१. उस राजा द्रुपद ने बालिका द्रौपदी को गोद में बिठाया। बिठाकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोवईए रायवरकण्णाए रूवे य जोव्वणे य लावण्णे य जायविम्हए दोवइं रायवरकण्णं एवं वयासी--जस्स णं अहं तुमं पुत्ता! रायस्स वा जुवरायस्स वा भारियत्ताए सयमेव दलइस्सामि, तत्थ णं तुमं सुहिया वा दुहिया वा भवेज्जासि। तए णं मम जावज्जीवाए हिययदाहे भविस्सइ। तं णं अहं तव पुत्ता! अज्जयाए सयंवरं वियरामि। अज्जयाए णं तुमं दिन्नसयंवरा। जं णं तुमं सयमेव रायं वा जुवरायं वा वरेहिसि, से णं तव भत्तारे भविस्सइ त्ति कट्टु ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं वग्गूहिं आसासेइ, आसासेत्ता पडिविसज्जेइ।।

प्रवर राजकन्या द्रौपदी के रूप, यौवन और लावण्य पर विस्मित होकर वह प्रवर राजकन्या द्रौपदी से इस प्रकार बोला--पुत्री! मैं मेरी इच्छा से तुझे जिस राजा अथवा युवराज को भार्या के रूप में दूंगा, वहां तू सुखी अथवा दुःखी हो सकती है, जिससे मेरे हृदय में जीवन भर परिताप रहेगा। अतः पुत्री! मैं कुछ ही दिनों में स्वयंवर आयोजित करूंगा। कुछ ही दिनों में तूं दत्तस्वयंवरा हो जाएगी। तू स्वेच्छा से जिस राजा अथवा युवराज का वरण करेगी, वही तेरा पति होगा। इस प्रकार उसने उन इष्ट, कमनीय, प्रिय, मनोज्ञ और मनोगत वचनों से उसे आश्वस्त किया। आश्वस्त कर प्रतिविसर्जित कर दिया।

बारवईए दूयपेसण-पदं

१३२. तए णं से दुवए राया दूयं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! बारवइं नयरिं। तत्थ णं तुमं कण्हं वासुदेवं समुद्दविजयपामोक्खे दस दसारे, बलदेवपामोक्खे पंच महावीरे, उग्गसेणपामोक्खे सोलस रायसहस्से, पज्जुन्नपामोक्खाओ अद्धुट्ठाओ कुमारकोडीओ, संबपामोक्खाओ सट्ठिं दुद्दंतसाहस्सीओ, वीरसेणपामोक्खाओ एक्कवीसं वीरपुरिससाहस्सीओ, महासेणपामोक्खाओ छप्पन्नं बलवगसाहस्सीओ, अण्णे य बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहपभिइओ करयल-परिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेहि, वद्धावेत्ता एवं वयाहि--एवं खलु देवाणुप्पिया! कंपिल्लपुरे नयरे दुवयस्स रण्णो धूयाए, चूलणीए अत्तयाए, धट्ठज्जुणकुमारस्स भइणीए, दोवईए रायवरकण्णाए सयंवरे भविस्सइ। तं णं तुब्भे दुवयं रायं अणुगिण्हेमाणा अकालपरिहीणं चेव कंपिल्लपुरे नयरे समोसरह।।

द्वारवती के लिए दूत प्रेषण-पद

१३२. द्रुपद राजा ने दूत को बुलाया। उसे बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! तुम द्वारवती नगरी जाओ। वहां तुम कृष्ण वासुदेव को तथा समुद्रविजय प्रमुख दस दसार, बलदेव प्रमुख पांच महावीरों, उग्रसेन प्रमुख सोलह हजार राजाओं, प्रद्युम्न प्रमुख साढ़े सात करोड़ कुमारों, शाम्ब प्रमुख साठ हजार दुर्दान्त सुभटों, वीरसेन प्रमुख इक्कीस हजार वीर पुरुषों, महासेन प्रमुख छप्पन हजार बलवानों तथा अन्य भी अनेक राजा, ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह प्रभृति को सटे हुए दस नखों वाली दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर 'जय-विजय' की ध्वनि से वर्धापित करो। वर्धापित कर इस प्रकार कहो--देवानुप्रियो! काम्पिल्यपुर नगर में राजा द्रुपद की पुत्री, चुलनी की आत्मजा, धृष्टद्युम्न कुमार की बहिन, प्रवर राजकन्या द्रौपदी का स्वयंवर होगा। अतः तुम राजा द्रुपद पर अनुग्रह कर ठीक समय पर काम्पिल्यपुर नगर पहुंचो।

१३३. तए णं से दूए करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु दुवयस्स रण्णो एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! चाउग्घंटं आसरहं जुत्तामेव उवट्ठवेह। ते वि तहेव उवट्ठवेंति।।

१३३. उसने सटे हुए दस नखों वाली दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट आकार वाली अंजली को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर द्रुपद राजा के इस अर्थ को स्वीकार किया। स्वीकार कर जहां अपना घर था, वहां आया। वहां आकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! शीघ्र ही चार घण्टों वाला जुता हुआ अश्व-रथ उपस्थित करो। उन्होंने भी वैसे ही उपस्थित किया।

१३४. तए णं से दूए ण्हाए जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे चाउग्घंटं आसरहं दुरुहइ, दुरुहित्ता बहूहिं पुरिसेहिं--सन्नद्धबद्ध-वम्मिय-कवएहिं उप्पीलिय-सरासण-पट्टिएहिं पिणद्ध- गेविज्जेहिं आविद्ध-विमल-वरचिंध-पट्टेहिं गहियाउह- पहरणेहिं--सद्धिं संपरिवुडे कंपिल्लपुरं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, पंचालजणवयस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव देसप्पंते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता

१३४. वह दूत स्नान कर यावत् अल्प भार और बहुमूल्य वाले आभरणों से शरीर को अलंकृत कर चार घंटों वाले अश्व-रथ पर आरूढ़ हुआ। अनेक पुरुषों के साथ जो सन्नद्ध बद्ध हो कवच पहने हुए, धनुषपट्टी बान्धे हुए, गले में ग्रीवारक्षक उपकरण पहने हुए, विमल और प्रवरचिह्नपट्ट बांधे हुए, तथा हाथों में आयुध और प्रहरण लिए हुए थे, उनसे परिवृत हो काम्पिल्यपुर नगर के बीचोंबीच होकर निष्क्रमण किया। पाञ्चाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुरट्ठाजणवयस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव बारवई नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बारवइं नयरिं मज्झंमज्झेणं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव कण्हस्स वासुदेवस्स बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घंटं आसरहं ठावेइ, ठावेत्ता रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता मणुस्सवग्गुरापरिक्खित्ते पायचारविहारेणं जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कण्हं वासुदेवं, समुद्दविजयपामोक्खे य दस दसारे जाव छप्पन्नं बलवगसाहस्सीओ करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता एवं वयइ--एवं खलु देवाणुप्पिया! कंपिल्लपुरे नयरे दुवयस्स रण्णो धूयाए, चुलणीए अत्तयाए, धट्ठज्जुणकुमारस्स भइणीए, दोवईए रायवरकण्णाए सयंवरे अत्थि। तं णं तुब्भे दुवयं रायं अणुगिण्हेमाणा अकालपरिहीणं चेव कंपिल्लपुरे नयरे समोसरह।।

जनपद के बीचोंबीच होता हुआ जहां देश की सीमा थी, वहां आया। वहां आकर सौराष्ट्र जनपद के बीचोंबीच होता हुआ, जहां द्वारवती नगरी थी, वहां आया। आकर द्वारवती नगरी के बीचोंबीच होकर प्रविष्ट हुआ। प्रविष्ट होकर जहां कृष्ण वासुदेव का बाहरी सभामण्डप था, वहां आया। वहां आकर चार घंटों वाले अश्व-रथ को ठहराया। ठहराकर स्वयं रथ से उतरा। उतर कर जन समूह से परिवृत हो, पांव-पांव चलकर वह जहां कृष्ण वासुदेव थे, वहां आया। वहां आकर सटे हुए दस नखों वाली दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर कृष्ण वासुदेव का, समुद्रविजय प्रमुख दस दसारों का यावत् छप्पन हजार बलवानों का 'जय-विजय' की ध्वनि से वर्धापन किया। वर्धापन कर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! काम्पिल्यपुर नगर में राजा द्रुपद की पुत्री, चुलनी की आत्मजा, धृष्टद्युम्न कुमार की बहिन, प्रवर राजकन्या द्रौपदी का स्वयंवर है। अतः तुम राजा द्रुपद पर अनुग्रह कर ठीक समय पर काम्पिल्यपुर नगर पहुंचो।

१३५. तए णं से कण्हे वासुदेवे तस्स दूयस्स अंतिए अयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाण-हियए तं दूयं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ।।

१३५. उस दूत के पास यह अर्थ सुनकर, अवधारण कर हृष्ट तुष्ट चित्त वाले, प्रीति पूर्ण मन वाले, परम सौमनस्य युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाले कृष्ण वासुदेव ने उस दूत को सत्कृत किया। सम्मानित किया। सत्कृत-सम्मानित कर प्रतिविसर्जित कर दिया।

कण्हस्स पत्थाण-पदं

कृष्ण का प्रस्थान-पद

१३६. तए णं से कण्हे वासुदेव कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! सभाए सुहम्माए सामुदाइयं भेरिं तालेहि।।

१३६. कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम जाओ और सुधर्मा सभा में सामुदायिकी भेरी बजाओ।

१३७. तए णं से कोडुंबियपुरिसे करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु कण्हस्स वासुदेवस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता जेणेव सभाए सुहम्माए सामुदाइया भेरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सामुदाइयं भेरिं महया-महया सद्देणं तालेइ।।

१३७. उन कौटुम्बिक पुरुषों ने सटे हुए दस नखों वाली दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर कृष्ण वासुदेव के इस अर्थ को स्वीकार किया। स्वीकार कर सुधर्मा सभा में जहां सामुदायिकी भेरी थी, वहां आए। वहां आकर ऊंचे-ऊंचे शब्दों से सामुदायिकी भेरी बजायी।

१३८. तए णं ताए सामुदाइयाए भेरीए तालियाए समाणीए समुद्दविजयपामोक्खा दस दसारा जाव महासेणपामोक्खाओ छप्पन्नं बलवगसाहस्सीओ ण्हाया जाव सव्वालंकारविभूसिया जहाविभवइड्ढिसक्कारसमुदएणं अप्पेगइया हयगया एवं गयगया रह-सीया-संदमाणीगया अप्पेगइया पायविहारचारेणं जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु कण्हं वासुदेवं जएणं विजएणं वद्धावेंति।।

१३८. सामुदायिकी भेरी को बजाते ही समुद्रविजय प्रमुख दस दसार राजा यावत् महासेन प्रमुख छप्पन हजार बलवान स्नान कर यावत् सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित हो, अपने-अपने वैभव, ऋद्धि और सत्कार समुदय के साथ निकले। उनमें से कुछ अश्वारूढ़ होकर, कुछ गजारूढ़ होकर, कुछ रथ, शिविका अथवा स्यन्दमानिका पर बैठकर और कुछ पांव-पांव चलकर जहां कृष्ण वासुदेव थे, वहां आए। आकर सटे हुए दस नखों वाली दोनों हथेलियां से निष्पन्न सम्पुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर जय-विजय की ध्वनि से कृष्ण वासुदेव का वर्धापन किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३९. तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह हय-गय-रह-पवरजोहकलियं चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेह, सण्णाहेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। ते वि तहेव पच्चप्पिणंति।।

१३९. कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक-पुरुषों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! शीघ्र ही आभिषेक्य हस्ति-रत्न को परिकर्मित करो। अश्व-गज-रथ और प्रवर पदाति योद्धाओं से कलित चतुरंगिणी सेना को सन्नद्ध करो। सन्नद्ध कर इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो।

उन्होंने भी वैसे ही प्रत्यर्पित किया।

१४०. तए णं से कण्हे वासुदेवे जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समत्तजालाकुलाभिरामे विचित्तमणि-रयण- कुट्टिमतले रमणिज्जे ण्हाणमंडवंसि णाणामणि-रयण-भत्ति-चित्तंसि ण्हाण-पीढंसि सुहणिसण्णे सुहोदएहिं गंधोदएहिं पुप्फोदएहिं सुद्धोदएहिं पुणो-पुणो कल्लाणग-पवर मज्जणविहीए मज्जिए जाव अंजणगिरिकूडसन्निभं गयवइं नरवई दुरूढे।।

१४०. कृष्ण वासुदेव जहां मज्जनघर था, वहां आए। आकर चारों ओर जालियों वाले, अभिराम रंग-बिरंगे मणि रत्नों से कुट्टित तल वाले, रमणीय, स्नान मण्डप में नाना मणि रत्नों की भांतों से चित्रित, स्नानपीठ पर आराम से बैठ, शुभोदक, गंधोदक, पुष्पोदक और शुद्धोदक से कल्याणक प्रवर मज्जन विधि से पुनः पुनः स्नान किया यावत् नरपति कृष्ण अंजन गिरि के शिखर जैसे गजपति पर आरूढ़ हुए।

१४१. तए णं से कण्हे वासुदेवे समुद्दविजयपामोक्खेहिं दसहिं दसारेहिं जाव अणंगसेणापामोक्खाहिं अणेगाहिं गणियासाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव दुंदुहि-निग्घोसनाइयरवेणं बारवइं नयरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता सुरट्ठाजणवयस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव देसप्पंते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंचालजणवयस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव कंपिल्लपुरे नयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।।

१४१. कृष्ण वासुदेव समुद्रविजय प्रमुख दस दसारों यावत् अनंगसेना प्रमुख हजारों गणिकाओं के साथ उनके परिवृत हो सम्पूर्ण ऋद्धि यावत् दुन्दुभि-निर्घोष के निनादित स्वरों के साथ द्वारवती नगरी के बीचोंबीच होते हुए निकले। निकलकर सौराष्ट्र जनपद के बीचोंबीच होते हुए जहां देश की सीमा थी, वहां आए। वहां आकर पांचाल जनपद के बीचोंबीच होते हुए जहां काम्पिल्यपुर नगर था, उधर प्रस्थान कर दिया।

हत्थिणाउरे दूयपेसण-पदं

हस्तिनापुर दूत-प्रेषण-पद

१४२. तए णं से दुवए राया दोच्चं पि दूयं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! हत्थिणाउरं नयरं। तत्थ णं तुमं पंडुरायं सपुत्तयं--जुहिट्ठिलं भीमसेणं अज्जुणं नउलं सहदेवं, दुज्जोहणं भाइसय-समग्गं, गंगेयं विदुरं दोणं जयद्दहं सउणिं कीवं आसत्थामं करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेहि, वद्धावेत्ता एवं वयाहि--एवं खलु देवाणुप्पिया! कंपिल्लपुरे नयरे दुवयस्स रण्णो धूयाए, चुलणीए अत्तयाए, धट्ठज्जुण- कुमारस्स भइणीए, दोवईए रायवरकण्णाए सयंवरे भविस्सइ। तं णं तुब्भे दुवयं रायं अणुगिण्हेमाणा अकालपरिहीणं चेव कंपिल्लपुरे नयरे समोसरह।।

१४२. उस राजा द्रुपद ने दूसरे दूत को बुलाया। उसे बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! तुम हस्तिनापुर नगर जाओ। वहां पुत्रों सहित पाण्डुराजा--युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव का, सौ भाइयों सहित दुर्योधन को तथा गांगेय भीष्म पितामह, विदुर, द्रोण, जयद्रथ, शकुनि, कृपाचार्य एवं अश्वत्थामा का दस नखों वाली दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट आकार वाली अंजली को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर 'जय-विजय' की ध्वनि से वर्धापन करो। वर्धापन कर इस प्रकार कहो--देवानुप्रियो! काम्पिल्यपुर नगर में राजा द्रुपद की पुत्री, चुलनी की आत्मजा, धृष्टद्युम्न कुमार की बहिन, प्रवर राजकन्या द्रौपदी का स्वयंवर होगा। अतः तुम राजा द्रुपद पर अनुग्रह कर, ठीक समय पर काम्पिल्यपुर नगर पहुंचो।

१४३. तए णं से दूए जेणेव हत्थिणाउरे नयरे जेणेव पंडुराया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंडुरायं सपुत्तयं--जुहिट्ठिलं भीमसेणं अज्जुणं नउलं सहदेवं, दुज्जोहणं भाइसय-समग्गं, गंगेयं विदुरं दोणं जयद्दहं सउणिं कीवं आसत्थामं एवं वयइ--एवं खलु देवाणुप्पिया! कंपिल्लपुरे नयरे दुवयस्स रण्णो धूयाए, चुलणीए अत्तयाए, धट्ठज्जुणकुमारस्स भइणीए, दोवईए रायवरकण्णाए सयंवरे

१४३. वह दूत जहां हस्तिनापुर नगर था, जहां पाण्डुराजा था, वहां आया। वहां आकर पुत्रों सहित पाण्डुराजा--युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव से, सौ भाइयों सहित दुर्योधन से तथा गांगेय-भीष्म पितामह, विदुर, द्रोण, जयद्रथ, शकुनि, कृपाचार्य एवं अश्वत्थामा से इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! काम्पिल्यपुर नगर में राजा द्रुपद की पुत्री, चुलनी की आत्मजा, धृष्टद्युम्न कुमार की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्थि। तं णं तुब्भे दुवयं रायं अणुगिण्हेमाणा अकालपरिहीणं चेव कंपिल्लपुरे नयरे समोसरह।।

बहिन, प्रवर राजकन्या द्रौपदी का स्वयंवर है अतः तुम राजा द्रुपद पर अनुग्रह कर, ठीक समय पर काम्पिल्यपुर नगर पहुंचो।

१४४. तए णं से पंडुराया जहा वासुदेवे नवरं--भेरी नत्थि जाव जेणेव कंपिल्लपुरे नयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।।

१४४. उस पाण्डुराजा ने कृष्ण वासुदेव के समान ही यावत् जहां काम्पिल्यपुर नगर था उधर प्रस्थान कर दिया। विशेष–यहां भेरी का उल्लेख अपेक्षित नहीं है।

दूयपेसण-पदं

१४५. एएणेव कमेणं--तच्चं दूयं एवं वयासी--गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! चंपं नयरिं। तत्थ णं तुमं कण्णं अंगरायं, सल्लं नंदिरायं एवं वयाहि--कंपिल्लपुरे नयरे समोसरह। चउत्थं दूयं एवं वयासी--गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! सोत्तिमइं नयरिं। तत्थ णं तुमं सिसुपालं दमघोससुयं पंचभाइसय-संपरिवुडं एवं वयाहि--कंपिल्लपुरे नयरे समोसरह।

पंचमं दूयं एवं वयासी--गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! हत्थिसीसं नयरिं। तत्थ णं तुमं दमदंतं रायं एवं वयाहि--कंपिल्लपुरे नयरे समोसरह।

छट्ठं दूयं एवं वयासी--गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! महुरं नयरिं। तत्थ णं तुमं धरं रायं एवं वयाहि--कंपिल्लपुरे नयरे समोसरह।

सत्तमं दूयं एवं वयासी--गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! रायगिहं नयरिं। तत्थ णं तुमं सहदेवं जरासंधसुयं एवं वयाहि--कंपिल्लपुरे नयरे समोसरह।

अट्ठमं दूयं एवं वयासी--गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! कोडिण्णं नयरं। तत्थ णं तुमं रुप्पिं भेसगसुयं एवं वयाहि--कंपिल्लपुरे नयरे समोसरह।

नवमं दूयं एवं वयासी--गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! विराटं नयरं। तत्थ णं कीयगं भाउसय-समग्गं एवं वयाहि--कंपिल्लपुरे नयरे समोसरह।

दसमं दूयं एवं वयासी--गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! अवसेसेसु गामागरनगरेसु। तत्थ णं तुमं अणेगाइं रायसहस्साइं एवं वयाहि--कंपिल्लपुरे नयरे समोसरह।।

दूत-प्रेषण-पद

१४५. इसी क्रम से--तीसरे दूत से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! तुम चम्पानगरी जाओ। वहां अंगराज कर्ण एवं नन्दीराज शल्य से इस प्रकार कहो--काम्पिल्यपुर नगर पहुंचो।

चौथे दूत से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! तुम शुक्तिमती नगरी जाओ। वहां पांच सौ भाइयों से परिवृत दमघोष के पुत्र शिशुपाल से इस प्रकार कहो--काम्पिल्यपुर नगर पहुंचो।

पांचवें दूत से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! तुम हस्तीशीर्ष नगरी जाओ। वहां दमदन्त राजा से इस प्रकार कहो--काम्पिल्यपुर नगर पहुंचो।

छठे दूत से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! तुम मथुरा नगरी जाओ। वहां धर राजा से इस प्रकार कहो–काम्पिल्यपुर नगर पहुंचो।

सातवें दूत से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! तुम राजगृह नगरी जाओ। वहां जरासंध के पुत्र सहदेव से इस प्रकार कहो--काम्पिल्यपुर नगर पहुंचो।

आठवें दूत से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! तुम कौडिन्य नगर जाओ। वहां भेषक के पुत्र रुक्मि से इस प्रकार कहो--काम्पिल्यपुर नगर पहुंचो।

नौवें दूत से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! तुम विराटनगर जाओ। वहां सौ भाइयों सहित कीचक से इस प्रकार कहो--काम्पिल्यपुर नगर पहुंचो।

दसवें दूत से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! तुम अवशिष्ट गांव, आकर एवं नगरों में जाओ। वहां तुम अनेक हजारों राजाओं से इस प्रकार कहो--काम्पिल्यपुर नगर पहुंचो।

रायसहस्साणं पत्थाण-पदं

१४६. तए णं ते बहवे रायसहस्सा पत्तेयं-पत्तेयं ण्हाया सण्णद्ध-बद्ध-वम्मिय-कवया हत्थिखंधवरगया हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडा महयाभड-चडगर-रह-पहकर-विंदपरिक्खित्ता सएहिं-सएहिं नगरेहिंतो अभिनिग्गच्छंति, अभिनिग्गच्छित्ता जेणेव पंचाले जणवए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।।

हजारों राजाओं का प्रस्थान-पद

१४६. उन अनेक हजारों राजाओं ने पृथक-पृथक रूप से स्नान किया। सन्नद्ध-बद्ध हो कवच पहने और प्रवर हस्तिस्कन्ध पर आरूढ़ होकर अश्व, गज, रथ और प्रवर पदाति योद्धाओं से कलित चतुरंगिणी सेना के साथ, उससे परिवृत हो, महान सुभटों की विभिन्न टुकड़ियों एवं पथदर्शक वृन्द से घिरे हुए अपने अपने नगरों से निकले। निकलकर जहां पांचाल जनपद था, उधर प्रस्थान कर दिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुवयस्स आतित्थ-पदं

१४७. तए णं से दुवए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! कंपिल्लपुरे नयरे बहिया गंगाए महानईए अदूरसामंते एगं महं सयंवरमंडवं करेह--अणेगखंभ-सयसन्निविट्ठं लीलट्ठिय-सालिभंजियागं जाव पासाईयं दरिसणिज्जं अभिरूवं पडिरूवं--करेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। ते वि तहेव पच्चप्पिणंति।।

१४८. तए णं से दुवए राया (दोच्चंपि?) कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! वासुदेवपामोक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं आवासे करेह, करेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। ते वि तहेव पच्चप्पिणंति।।

१४९. तए णं से दुवए राया वासुदेवपामोक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं आगमणं जाणेत्ता पत्तेयं-पत्तेयं हत्थिखंधवरगए सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं वीइज्जमाणे हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे महयाभड-चडगर-रह-पहकर-विंदपरिक्खित्ते अग्घं च पज्जं च गहाय सव्विड्ढीए कंपिल्लपुराओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव ते वासुदेवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ताइं वासुदेवपामोक्खाइं अग्घेण य पज्जेण य सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारेत्ता तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं पत्तेयं-पत्तेयं आवासे वियरइ।।

१५०. तए णं ते वासुदेवपामोक्खा जेणेव सया-सया आवासा तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता हत्थिखंधेहिंतो पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्ता पत्तेयं-पत्तेयं खंधावारनिवेसं करेंति, करेत्ता सएसु-सएसु आवासेसु अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता सएसु-सएसु आवासेसु आसणेसु य सयणेसु य सन्निसण्णा य संतुयट्टा य बहूहिं गंधव्वेहि य नाडएहि य उवगिज्जमाणा य उवनच्चिज्जमाणा य विहरंति।।

१५१. तए णं से दुवए राया कंपिल्लपुरं नयरं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं सुरं च मज्जं च मंसं च सीधुं च पसन्नं च सुबहुं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारं च वासुदेव-पामोक्खाणं रायसहस्साणं आवासेसु साहरह। तेवि साहरंति।।

द्रुपद का आतिथ्य--पद

१४७. राजा द्रुपद ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम जाओ और काम्पिल्यपुर नगर के बाहर महानदी गंगा के आसपास एक महान स्वयंवर मण्डप की रचना करो--जो अनेक शत खम्भों पर सन्निविष्ट हो और प्रत्येक खंभे पर क्रीड़ा करती पुतलियां उत्कीर्ण हो यावत् वह चित्त को आल्हादित करने वाला, दर्शनीय, सुन्दर और असाधारण हो। ऐसा कर इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो। उन्होंने भी वैसे ही प्रत्यर्पित किया।

१४८. उस द्रुपद राजा ने (दूसरी बार भी?) कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम शीघ्र ही वासुदेव प्रमुख अनेक हजार राजाओं के लिए आवास बनवाओ। बनवाकर इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो। उन्होंने भी वैसे ही प्रत्यर्पित किया।

१४९. वह द्रुपद राजा वासुदेव प्रमुख अनेक हजार राजाओं का आगमन जानकर अपने प्रवर हस्तिस्कन्ध पर आरूढ़ हुआ। कटसरैया के फूलों से बनी मालाओं से युक्त छत्र धारण किया और श्वेत चामरों से वीजित होता हुआ अश्व, गज, रथ और प्रवर पदाति योद्धाओं से कलित चतुरंगणी सेना के साथ उससे परिवृत हो महान सुभटों की विभिन्न टुकड़ियों तथा पथदर्शक वृंद से घिरा हुआ अर्घ्य और पद्य (चरण--पक्षालन करने योग्य जल) लेकर सम्पूर्ण ऋद्धि के साथ काम्पिल्यपुर नगर से निष्क्रमण किया। निष्क्रमण कर जहां वासुदेव प्रमुख अनेक हजार राजा थे, वहां आया। वहां आकर वासुदेव प्रमुख राजाओं को अर्घ्य और पद्य से सत्कृत किया। सम्मानित किया। सत्कृत-सम्मानित कर वासुदेव प्रमुख राजाओं को पृथक् पृथक् आवास प्रदान किए।

१५०. वे वासुदेव प्रमुख राजा जहां उनके अपने-अपने आवास थे, वहां आए। आकर हस्तिस्कन्धों से उतरे। उतरकर अपनी-अपनी सेना का पड़ाव डाला। पड़ाव डालकर अपने-अपने आवासों में प्रवेश किया। प्रवेशकर अपने-अपने आवासों में आसनों और शयनों पर बैठे और सोए हुए वे बहुत से गीतों से उपगीत और नाटकों से अभिनीत होते हुए विहार करने लगे।

१५१. उस राजा द्रुपद ने काम्पिल्यपुर नगर में प्रवेश किया। प्रवेश कर विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवाया। तैयार करवाकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम जाओ और यह विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य और सुरा, मद्य, मांस, सीधु, प्रसन्ना तथा प्रचुर पुष्प, वस्त्र, गंधचूर्ण, माला और अलंकार वासुदेव प्रमुख हजारों राजाओं के आवास-गृहों में पहुंचाओ। उन्होंने भी वैसे ही पहुंचाया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५२. तए णं ते वासुदेवपामोक्खा तं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं सुरं च मज्जं च मंसं च सीधुं च पसन्नं च आसाएमाणा विसाएमाणा परिभाएमाणा परिभुंजेमाणा विहरंति। जिमियभुत्तुत्तरागया वि य णं समाणा आयंता चोक्खा परमसुइभूया सुहासणवरगया बहूहिं गंधव्वेहिं य नाडएहि य उवगिज्जमाणा य उवनच्चिज्जमाणा य विहरंति।।

१५२. वे वासुदेव प्रमुख राजा उस विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य तथा सुरा, मद्य, मांस, सीधु और प्रसन्ना का आस्वादन, लेते हुए, विशेष आस्वादन लेते हुए, परस्पर बांटते हुए और खाते हुए विहार करने लगे। भोजनोपरान्त आचमन कर साफ-सुथरे और परम-पवित्र होकर प्रवर सुखासन में बैठकर वे बहुत प्रकार के गीतों से उपगीत और नाटकों से अभिनीत होते हुए विहार करने लगे।

दोवईए सयंवर-पदं

१५३. तए णं से दुवए राया पच्चावरण्ह-कालसमयंसि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! कंपिल्लपुरे सिंघाडग तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु वासुदेवपामोक्खाणं रायासहस्साणं आवासेसु हत्थिखंधवरगया महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणा एवं वयह--एवं खलु देवाणुप्पिया! कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते दुवयस्स रण्णो धूयाए, चुलणीए देवीए अत्तियाए, धट्ठज्जुणस्स भगिणीए, दोवईए रायवरकण्णाए सयंवरे भविस्सइ। तं तुब्भे णं देवाणुप्पिया! दुवयं रायाणं अणुगिण्हेमाणा ण्हाया जाव सव्वालंकारविभूसिया हत्थिखंधवरगया सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं वीइज्जमाणा हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडा महयाभड-चडगर-रह-पहकर-विंदपरिक्खित्ता जेणेव सयंवरमंडवे तेणेव उवागच्छह, उवागच्छित्ता पत्तेयं-पत्तेयं नामंकिएसु आसणेसु निसीयह, निसीइत्ता दोवइं रायवरकण्णं पडिवालेमाणा-पडिवालेमाणा चिट्ठह त्ति घोसणं घोसेह, घोसेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।।

द्रौपदी का स्वयंवर-पद

१५३. उस द्रुपद राजा ने अपराह्न काल के समय कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम जाओ, काम्पिल्यपुर नगर के दोराहों, तिराहों, चौराहों, चौकों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और मार्गों पर वासुदेव प्रमुख हजारों राजाओं के आवासों के समक्ष प्रवर हस्तिस्कन्ध पर बैठ उच्च स्वर से उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहो--देवानुप्रियो! उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर द्रुपद राजा की पुत्री, चुलनीदेवी की आत्मजा, धृष्टद्युम्न की बहिन प्रवर राजकन्या द्रौपदी का स्वयंवर होगा। अतः देवानुप्रियो! आप राजा द्रुपद पर अनुग्रह कर, स्नान कर यावत् सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित और प्रवर हस्तिस्कन्ध पर आरूढ़ हो, कटसरैया के फूलों से बनी मालाओं से युक्त श्वेत चामरों से वीजित होते हुए, अश्व, गज, रथ और प्रवर पदाति योद्धाओं से कलित चतुरंगिणी सेना के साथ उससे परिवृत हो, महान सुभटों की विभिन्न टुकड़ियों तथा पथदर्शक वृन्द से घिरे हुए जहां स्वयवंर मण्डप हैं वहां आयें। वहां आकर पृथक्-पृथक् नामांकित आसनों पर बैठें। बैठकर प्रवर राजकन्या द्रौपदी की प्रतीक्षा करें--तुम लोग यह घोषणा करो। घोषणा कर इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो।

१५४. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा तहेव जाव पच्चप्पिणंति।।

१५४. उन कौटुम्बिक पुरुषों ने यावत् वैसे ही प्रत्यर्पित किया।

१५५. तए णं से दुवए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! सयंवरमंडवं आसिय-संमज्जिओवलित्तं पंचवण्ण-पुप्फोवयारकलियं कालागरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्क-धूव-डज्झंत-सुरभि-मघमघेंत-गंधुद्धुयाभिरामं सुगंधवरगंधगंधियं गंधवट्टिभूयं मंचाइमंचकलियं करेह, कारवेह, करेत्ता कारवेत्ता वासुदेवपामोक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं पत्तेयं-पत्तेयं नामंकियाइं आसणाइं अत्थुयपच्चत्थुयाइं रएह, रएत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। तेवि जाव पच्चप्पिणंति।।

१५५. उस द्रुपद राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो ! तुम जाओ। स्वयंवर मण्डप में जल का का छिड़काव कर, बुहार-झाड़, गोबर से लीप, विकीर्ण पचरंगे पुष्प-पुञ्ज के उपचार से युक्त, काली-अगर, प्रवर कुन्दुरु और लोबान की जलती हुई धूप की सुरभिमय महक से उठने वाली गन्ध से अभिराम, प्रवर सुरभि वाले गन्धचूर्णों से सुरभित, गन्धवर्तिका जैसा बनाओ । वहां मंच और अतिमंच स्थापित करो और करवाओ। ऐसा कर और करवा वासुदेव प्रमुख हजारों राजाओं के लिए पृथक्-पृथक् नामांकित आसनों से आस्तृत और प्रत्यास्तृत करो। करके इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो। उन्होंने भी यावत् प्रत्यर्पित किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५६. तए णं ते वासुदेवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते ण्हाया जाव सव्वालंकारविभूसिया हत्थि-खंधवरगया सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं वीइज्जमाणा हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडा महयाभड-चडगर-रह-पहकर-विंदपरिक्खित्ता सव्विड्ढीए जाव दुंदुहि-निग्घोस-नाइयरवेणं जेणेव संयवरामंडवे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता पत्तेयं-पत्तेयं नामंकिएसु आसणेसु निसीयंति दोवइं रायवरकण्णं पडिवालेमाणा-पडिवालेमाणा चिट्ठंति ।।

१५६. वे वासुदेव प्रमुख हजारों राजाओं ने उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर, तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर स्नान कर यावत् सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित और प्रवर हस्तिस्कन्ध पर आरूढ़ होते हुए कटसरैया के फूलों से बनी मालाओं से युक्त छत्र धारण किया। श्वेत चामरों से वीजित होते हुए अश्व, गज, रथ और प्रवर पदाति योद्धाओं से कलित चतुरंगिणी सेना के साथ, उससे परिवृत हो, महान सुभटों की विभिन्न टुकड़ियों तथा पथदर्शक वृन्द से घिरे हुए सम्पूर्ण ऋद्धि यावत् दुन्दुभि निर्घोष से निनादित स्वरों के साथ, जहां स्वयंवर मण्डप था, वहां आए। आकर मण्डप में प्रवेश किया। प्रवेश कर पृथक्-पृथक् नामांकित आसनों पर बैठे और प्रवर राजकन्या द्रौपदी की प्रतीक्षा करने लगे।

१५७. तए णं से दुवए राया कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते ण्हाए जाव सव्वालंकारविभूसिए हत्थिखंधवरगए सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं वीइज्जमाणे हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे महयाभड-चडगर-रह-पहकर-विंदपरिक्खित्ते कंपिल्लपुरं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, जेणेव सयंवरामंडवे जेणेव वासुदेवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता कण्हस्स वासुदेवस्स सेयवरचामरं गहाय उववीयमाणे चिट्ठइ ।।

१५७. उस द्रुपद राजा ने भी उषाकाल में पौ फटने पर सहस्ररश्मि दिनकर तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर, स्नान कर यावत् सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित और प्रवर हस्तिस्कन्ध पर आरूढ़ हो, कटसरैया के फूलों से बनी मालाओं से युक्त छत्र धारण किया। श्वेत चामरों से वीजित होता हुआ, अश्व, गज, रथ और प्रवर पदाति योद्धाओं से कलित चतुरंगिणी सेना के साथ उससे परिवृत हो महान सुभटों की विभिन्न टुकड़ियों तथा पथदर्शक वृन्द से घिरे हुए काम्पिल्यपुर नगर के बीचोंबीच होता हुआ निकला और जहां स्वयंवर मण्डप था, जहां वासुदेव प्रमुख हजारों राजा थे, वहां आया। वहां आकर सटे हुए दस नखों वाली दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमा कर मस्तक पर टिकाकर वासुदेव प्रमुख राजाओं का 'जय-विजय' की ध्वनि से वर्धापन किया। वर्धापन कर प्रवर श्वेत चामर लेकर कृष्ण वासुदेव को वीजित करने लग गया।

१५८. तए णं सा दोवई रायवरकण्णा कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता ण्हाया कयबलिकम्मा कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर परिहिया मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव जिणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जिणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जिणपडिमाणं अच्चणं करेइ, करेत्ता जिणघराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव अंतेउरे तेणेव उवागच्छइ ।।

१५८. वह प्रवर राजकन्या द्रौपदी उषाकाल में पौ फटने पर सहस्ररश्मि दिनकर तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर जहां मज्जन-घर था, वहां आई। आकर मज्जन-घर में प्रवेश किया। प्रवेश कर स्नान, बलिकर्म और कौतुक मंगल रूप प्रायश्चित्त कर, पवित्र स्थान में प्रवेश करने योग्य प्रवर मंगल वस्त्र पहन, मज्जन-घर से निकली। निकलकर जहां जिनालय था, वहां आयी। आकर जिनालय में प्रविष्ट हुई। प्रविष्ट होकर जिन प्रतिमाओं की पूजा की। पूजा कर जिनालय से निकली। निकलकर जहां अन्तःपुर था, वहां आयी।

१५९. तए णं तं दोवइं रायवरकण्णं अंतेउरियाओ सव्वालंकारविभूसियं करेंति। किं ते? वरपायपत्तनेउरा जाव चेडिया-चक्कवाल-महयरग-विंद-परिक्खित्ता अंतेउराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किड्डावियाए लेहियाए सद्धिं चाउग्घंटं आसरहं दुरूहइ ।।

१५९. अन्तःपुर की महिलाओं ने प्रवर राजकन्या द्रौपदी को सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित किया। वे अलंकार कौन से थे? उसके पावों में प्रवर नूपुर पहनाए यावत् वह दासी-समूह और महत्तर वृन्द से घिरी हुई अन्तःपुर से निकली। निकलकर जहां बाहरी सभा-मण्डप था, जहां चार घंटों वाला अश्वरथ था, वहां आयी। वहां आकर क्रीडन धात्री लेखिका के साथ चार घंटों वाले अश्वरथ पर आरूढ़ हुई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६०. तए णं से धट्ठज्जुणे कुमारे दोवईए रायवरकण्णाए सारत्थं करेइ।।

१६१. तए णं सा दोवई रायवरकण्णा कंपिल्लपुरं नयरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सयंवरामंडवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रहं ठवेइ, रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता किड्डावियाए लेहियाए सद्धिं सयंवरामंडवं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं बहूणं रायवरसहस्साणं पणामं करेइ।।

१६२. तए णं सा दोवई रायवरकण्णा एगं महं सिरिदामगंडं--किं ते? पाडल-मल्लिय-चंपय जाव सत्तच्छयाईहिं गंधद्धणिं मुयंतं परमसुहफासं दरिसणिज्जं--गेण्हइ।।

१६३. तए णं सा किड्डाविया सुरूवा साभावियघंसं वोद्दहजणस्स उस्सुयकरं विचित्तमणि-रयण-बद्धच्छरुहं वामहत्थेणं चिल्लगं दप्पणं गहेऊण सललियं दप्पणसंकंतबिंब-संदंसिए य से दाहिणेणं हत्थेणं दरिसए पवररायसीहे। फुडविसयविसुद्ध-रिभिय-गंभीर-महुरभणिया सा तेसिं सव्वेसिं पत्थिवाणं अम्मापिउवंस-सत्त-सामत्थ-गोत्त-विक्कंति-कंति-बहुविहआगम-माहप्प-रूव-कुलसीलजाणिया कित्तणं करेइ। पढमं ताव वण्हिपुंगवाणं दसारवर-वीरपुरिस-तेलोक्कबलवगाणं, सत्तु-सयसहस्स-माणावमद्दगाणं भवसिद्धिय-वरपुंडरीयाणं चिल्लगाणं बल-वीरिय-रूव-जोवण्ण-गुण-लावण्णकित्तिया कित्तणं करेइ।

तओ पुणो उग्गसेणमाईण जायवाणं भणइ--सोहग्गरूवकलिए वरेहि वरपुरिसगंधहत्थीणं जो हु ते होइ हियय-दइओ।।

१६०. उस धृष्टद्युम्न कुमार ने प्रवर राजकन्या द्रौपदी का सारथ्य किया।

१६१. वह प्रवर राजकन्या काम्पिल्यपुर नगर के बीचोंबीच होती हुई, जहां स्वयंवर मण्डप था, वहां आयी। आकर रथ को ठहराया। ठहराकर रथ से नीचे उतरी। उतरकर क्रीडनधात्री लेखिका के साथ स्वयंवरमण्डप में प्रवेश किया। प्रवेश कर सटे हुए दस नखों वाली दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर वासुदेव प्रमुख हजारों राजाओं को प्रणाम किया।

१६२. प्रवर राजकन्या द्रौपदी ने एक महान श्री दामकाण्ड नाम की माला हाथ में ली। वह कैसी है? पाटल, बेला, चम्पक यावत् सप्तच्छद आदि फूलों से निर्मित, घ्राण को तृप्ति देने वाले गन्धमय परमाणुओं को बिखेरने वाली, परम सुखद स्पर्श वाली और दर्शनीय थी।

१६३. उस क्रीडनधात्री ने बाएं हाथ में चमकते हुए दर्पण को लीला के साथ हाथ में लिया। वह सहज चिकना, तरुणों के मन में उत्सुकता जगाने वाला, रंग-बिरंगे मणि-रत्नों से निर्मित मूठ वाला था। उसने दर्पण में संक्रान्त बिम्बों के माध्यम से दृष्टिगोचर होने वाले प्रवर राजसिंहों को अपने दाएं हाथ से द्रौपदी को दिखाया। स्फुट, विशद, विशुद्ध, स्वर घोलना युक्त, गम्भीर और मधुर भाषिणी तथा उन सब पार्थिवों के माता-पिता, वंश, सत्त्व, सामर्थ्य, गोत्र, विक्रम, कान्ति, बहुविध आगमों का अध्ययन, माहात्म्य, रूप, कुल, शील आदि की जानकार उस क्रीड़नधात्री ने उनका कीर्तन किया। उसने सबसे पहले वृष्णि-पुंगव, वीर-पुरुष, त्रैलोक्य में बलिष्ठ, लाखों शत्रुओं के मान-मर्दक, भव-सिद्धिक पुरुषों में प्रवर पुण्डरीक, परम तेजस्वी, समुद्रविजय प्रमुख प्रवर दस दसार राजाओं के बल, वीर्य, रूप, यौवन, गुण, लावण्य, कीर्ति आदि का अधिगमन कर उसका कीर्तन किया।

उसके पश्चात् उसने उग्रसेन यादवों के बल, वीर्य, आदि का कथन किया और कहा--पुरुषों में प्रवर गन्धहस्ती के समान इन राजाओं में से भी तुझे सौभाग्य और रूप से युक्त तथा हृदय को प्रिय लगे, उसी का तू वरण कर।

दोवईए पंडव-वरण-पदं

१६४. तए णं सा दोवई रायावरकण्णगा बहूणं रायवरसहस्साणं मज्झंमज्झेणं समइच्छमाणी-समइच्छमाणी पुव्वकयनियाणेणं चोइज्जमाणी-चोइज्जमाणी जेणेव पंच पंडवा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ते पंच पंडवे तेणं दसद्ध-वण्णेणं कुसुमदामेणं आवेढियपरिवेढिए करेइ, करेत्ता एवं वयासी--एए णं मए पंच पंडवा वरिया।।

द्रौपदी के द्वारा पांडव का वरण-पद

१६४. वह प्रवर राजकन्या द्रौपदी उन अनेक हजार राजाओं के बीचोंबीच होकर चलती-चलती पूर्व जन्म में कृत निदान से प्रेरित होती हुई जहां पांच पाण्डव थे, वहां आयी। वहां आकर वह उन पांचों पाण्डवों को उस पचरंगी पुष्प-माला से आवेष्टित-परिवेष्टित कर लिया। उन्हें आवेष्टित-परिवेष्टित कर इस प्रकार कहा--मैंने इन पांच पाण्डवों का वरण किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६५. तए णं ताइं वासुदेवपामोक्खाइं बहूणि रायसहस्साणि महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणाइं-उग्घोसेमाणाइं एवं वयंति--सुवरियं खलु भो! दोवईए रायवरकण्णाए त्ति कट्टु सयंवरमंडवाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सया-सया आवासा तेणेव उवागच्छंति।।

१६५. वे वासुदेव प्रमुख अनेक हजार राजा उच्च स्वर से उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार बोले--राजगण! प्रवर राजकन्या द्रौपदी ने सम्यक् वरण किया है--यह कहते हुए वे स्वयंवर मण्डप से निकल गए। निकलकर जहां अपने-अपने आवास थे, वहां आए।

१६६. तए णं धट्ठज्जुणे कुमारे पंच पंडवे दोवइं च रायवरकण्णं चाउग्घंटं आसरहं दुरुहावेइ, दुरुहावेत्ता कंपिल्लपुरं नयरं मज्झंमज्झेणं उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयं भवणं अणुपविसइ।।

१६६. धृष्टद्युम्न कुमार ने पांचों पाण्डवों को तथा द्रौपदी को चार घंटों वाले अश्व-रथ पर आरूढ़ किया। आरूढ़कर काम्पिल्यपुर नगर के बीचोंबीच होता हुआ आया। आकर अपने भवन में प्रवेश किया।

पाणिग्गहण-पदं

पाणिग्रहण-पद

१६७. तए णं से दुवए राया पंच पंडवे दोवइं य रायवरकण्णं पट्टयं दुरुहावेइ, दुरुहावेत्ता सेयापीयएहिं कलसेहिं मज्जावेइ, मज्जावेत्ता अग्गिहोमं करावेइ, पंचण्हं पंडवाणं दोवईए य पाणिग्गहणं करावेइ।।

१६७. द्रुपद राजा ने प्रवर राजकन्या द्रौपदी को पट्ट पर बिठाया। बिठाकर रजत-स्वर्णमय कलशों से नहलाया। नहलाकर अग्नि-होम करवाया तथा पांचों पाण्डवों और द्रौपदी का पाणिग्रहण करवाया।

१६८. तए णं से दुवए राया दोवईए रायवरकण्णाए इमं एयारूवं पीइदाणं दलयइ--तं जहा--अट्ठ हिरण्णकोडीओ जाव पेसणकारीओ दासचेडीओ, अण्णं च विपुलं धण-कणग- रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिलप्पवाल-रत्तरयण-संत- सार-सावएज्जं अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ पकामं दाउं पकामं भोत्तुं पकामं परिभाएउं दलयइ।।

१६८. द्रुपद राजा ने प्रवर राजकन्या द्रौपदी को इस प्रकार प्रीतिदान दिया, जैसे--आठ हिरण्य कोटि यावत् प्रेष्यकर्म करने वाली सेविकाएं। इसके अतिरिक्त अन्य भी बहुत सारा धन, कनक, रत्न, मणि, मौक्तिक, शंख, शिला, प्रवाल, रक्तरत्न तथा श्रेष्ठ सुगन्धित द्रव्य एवं दान, भोग आदि के लिए स्वापतेय दिया, जो सात पीढ़ी तक प्रचुर मात्रा में दान करने, प्रचुर मात्रा में भोगने और प्रचुर मात्रा में बांटने में पर्याप्त था।

१६९. तए णं से दुवए राया ताइं वासुदेवपामोक्खाइं बहूइं रायसहस्साइं विपुलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ।।

१६९. उस द्रुपद राजा ने उन वासुदेव प्रमुख अनेक हजार राजाओं को विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य तथा पुष्प, वस्त्र, गन्धचूर्ण, माला और अलंकारों से सत्कृत किया, सम्मानित किया। सत्कृत-सम्मानित कर प्रतिविसर्जित किया।

पंडुरायस्स निमंतण-पदं

पाण्डुराज का निमन्त्रण-पद

१७०. तए णं से पंडू राया तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं करयल-परिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! हत्थिणाउरे नयरे पंचण्हं पंडवाणं दोवईए य देवीए कल्लाणकारे भविस्सइ। तं तुब्भे णं देवाणुप्पिया! ममं अणुगिण्हमाणा अकालपरिहीणं चेव समोसरह।।

१७०. उस पाण्डु राजा ने वासुदेव प्रमुख उन अनेक हजार राजाओं को सटे हुए दस नखों वाली दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! हस्तिनापुर नगर में पांचों पाण्डवों और द्रौपदी देवी का कल्याणकारी उत्सव होगा।

अतः देवानुप्रियो! तुम मुझ पर अनुग्रह कर यथासमय वहां पहुंचो।

१७१. तए णं ते वासुदेवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा पत्तेय-पत्तेयं ण्हाया सण्णद्ध बद्ध-वम्मिय-कवया हत्थिखंधवरगया जाव जेणेव हत्थिणाउरे नयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।।

१७१. उन वासुदेव प्रमुख अनेक हजार राजाओं ने पृथक्-पृथक् स्नान कर, सन्नद्ध-बद्ध हो कवच पहन, प्रवर हस्तिस्कन्ध पर आरूढ़ हो यावत् जहां हस्तिनापुर नगर था उधर प्रस्थान किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंडुरायस्स आतित्थ-पदं

१७२. तए णं से पंडू राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! हत्थिणाउरे नयरे पंचण्हं पंडवाण पंच पासायवडिंसए कारेह--अब्भुग्गयमूसिय जाव पडिरूवे।।

१७३. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा पडिसुणेंति जाव कारवेंति।।

१७४. तए णं से पंडू राया पंचहिं पंडवेहिं दोवईए देवीए सद्धिं हय-गय-रह-पवर-जोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं, संपरिवुडे महया भडचडगर-रह-पहकर-विंदपरिक्खित्ते कंपिल्लपुराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव हत्थिणाउरे तेणेव उवागए।।

१७५. तए णं से पंडू राया तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं आगमणं जाणित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! हत्थिणाउरस्स नयरस्स बहिया वासुदेवपामोक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं आवासे—अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे कारेह, कारेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। तेवि तहेव पच्चप्पिणंति।।

१७६. तए णं ते वासुदेवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा जेणेव हत्थिणाउरे तेणेव उवागए।।

१७७. तए णं से पंडू राया ते वासुदेवपामोक्खे बहवे रायसहस्से उवागए जाणित्ता हट्ठतुट्ठे ण्हाए कयबलिकम्मे, जहा दुवए जाव जहारिहं आवासे दलयइ।।

१७८. तए णं ते वासुदेवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा जेणेव सया-सया आवासा तेणेव उवागच्छंति तहेव जाव विहरंति।।

१७९. तए णं से पंडू राया हत्थिणाउरं नयरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--तुब्भे णं देवाणुप्पिया! विपुलं असण-पाण-खाइम- साइमं आवासेसु उवणेह। तेवि तहेव उवणेंति।।

१८०. तए णं ते वासुदेवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ता तं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं असाएमाणा तहेव जाव विहरंति।।

पाण्डुराज का आतिथ्य पद

१७२. उस पाण्डु राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम जाओ, हस्तिनापुर नगर में, पांचों पाण्डवों के लिए पांच प्रवर प्रासाद बनवाओ। वे उन्नत, विशाल यावत् असाधारण हों।

१७३. उन कौटुम्बिक पुरुषों ने इस आज्ञा को स्वीकार किया यावत् प्रासाद बनवाया।

१७४. वह पाण्डु राजा, पांचों पाण्डवों और द्रौपदी देवी के साथ अश्व, गज, रथ और प्रवर पदाति योद्धाओं से कलित चतुरंगिणी सेना के साथ, उससे परिवृत हो महान सुभटों की विभिन्न टुकड़ियों, रथों तथा पथदर्शक पुरुषों के समूह से घिरा हुआ, काम्पिल्यपुर से निकला। निकलकर जहां हस्तिनापुर नगर था, वहां आया।

१७५. पाण्डु राजा ने वासुदेव प्रमुख उन राजाओं का आगमन जानकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम जाओ, हस्तिनापुर नगर के बाहर वासुदेव प्रमुख अनेक हजार राजाओं के लिए आवास बनवाओ। वे अनेक शत खम्भों पर सन्निविष्ट हों। ऐसा करवाकर इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो। उन्होंने भी वैसे ही प्रत्यर्पित किया।

१७६. वे वासुदेव प्रमुख अनेक हजार राजा जहां हस्तिनापुर था, वहां आए।

१७७. पाण्डु राजा ने वासुदेव प्रमुख उन अनेक हजार राजाओं को आये हुए जानकर हृष्ट तुष्ट हो स्नान और बलिकर्म कर यावत् द्रुपद राजा के समान उन सबको यथायोग्य आवास प्रदान किया।

१७८. वे वासुदेव प्रमुख अनेक हजार राजा जहां अपने-अपने आवास थे वहां आए यावत् वैसे ही विहार करने लगे।

१७९. पाण्डु राजा ने हस्तिनापुर नगर में प्रवेश किया। प्रवेश कर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम आवासों में विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य ले जाओ। वे भी वैसे ही ले गए।

१८०. वे वासुदेव प्रमुख अनेक हजार राजा स्नान, बलिकर्म और कौतुक मंगल रूप प्रायश्चित्त कर विपुल, अशन पान, खाद्य और स्वाद्य का आस्वादन करते हुए यावत् वैसे ही विहार करने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्लाणकार-पदं

१८१. तए णं से पंडू राया ते पंच पंडवे दोवइं च देविं पट्टयं दुरुहावेइ, दुरुहावेत्ता सेयापीएहिं कलसेहिं ण्हावेइ, ण्हावेत्ता कल्लाणकारं करेइ, करेत्ता ते वासुदेवपामोक्खे बहवे रायसहस्से विपुलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पुप्फ-वत्थ-गंध- मल्लालंकारेण य सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ।।

१८२. तए णं ताइं वासुदेवपामोक्खाइं बहूइं रायसहस्साइं पंडुएणं रण्णा विसज्जिया समाणा जेणेव साइं-साइं रज्जाइं जेणेव साइं-साइं नगराइं तेणेव पडिगयाइं।।

१८३. तए णं ते पंच पंडवा दोवईए देवीए सद्धिं कल्लाकल्लिं वारंवारेणं उरालाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।।

नारदस्स आगमण-पदं

१८४. तए णं से पंडू राया अण्णया कयाइं पंडवेहिं कोंतीए देवीए दोवईए य सद्धिं अंतोअंतेउरपरियालसद्धिं संपरिवुडे सीहासणवरगए यावि विहरइ।।

१८५. इमं च णं कच्छुल्लनारए--दंसणेणं अइभद्दए विणीए अंतो-अंतो य कलुसहियए मज्झत्थ-उवत्थिए य अल्लीण-सोमपियदंसणे सुरूवे अमइल-सगल-परिहिए कालमियचम्म-उत्तरासंग-रइयवच्छे दंड-कमंडलु-हत्थे जडामउड-दित्तसिरए जन्नोवइय-गणेत्तिय-मुंजमेहला-वागलधरे हत्थकय-कच्छभीए पियगंधव्वे धरणिगोयरप्पहाणे संवरणावरणि-ओवयणुप्पयणि-लेसणीसु य संकामणि-आभिओगि-पण्णत्ति-गमणि-थंभिणीसु य बहूसु विज्जाहरीसु विज्जासु विस्सुयजसे इट्ठे रामस्स य केसवस्स य पज्जुन्न-पईव-संब-अनिरुद्ध-निसढ-उम्मुय-सारण-गय-सुमुह-दुम्मुहाईणं जायवाणं अद्धुट्ठाण य कुमारकोडीणं हियय-दइए संथवए कलह-जुद्ध-कोलाहलप्पिए भंडणाभिलासी बहूसु य समर-सयसंपराएसु दंसणरए समंतओ कलहं सदक्खिणं अणुगवेसमाणे असमाहिकरे दसारवर-वीरपुरिस-तेलोक्कबलवगाणं आमंतेऊण तं भगवइं पक्कमणिं गगण-गमणदच्छं उप्पइओ गगणमभिलंघयंतो गामागर-नगर-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टण-संबाह-सहस्समंडियं थिमियमेइणीयं निब्भर-जणपदं वसुहं ओलोइंते रम्मं हत्थिणाउरं उवागए पंडुरायभवणंसि झत्ति-वेगेण समोवइए।।

कल्याणकार-पद

१८१. पाण्डु राजा ने पांचों पाण्डवों और द्रौपदी देवी को पट्ट पर बिठाया। बिठाकर रजत-स्वर्णमय कलशों से उन्हें नहलाया। नहलाकर कल्याणकार (संस्कार) किया। उसके पश्चात् वासुदेव प्रमुख उन अनेक हजार राजाओं को अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य से तथा पुष्प, वस्त्र, गन्धचूर्ण, माला और अलंकारों से सत्कृत किया। सम्मानित किया। सत्कृत-सम्मानित कर उन्हें प्रतिविसर्जित किया।

१८२. पाण्डु राजा के द्वारा विसर्जित किए जाने पर वे वासुदेव प्रमुख अनेक हजार राजा, जहां अपने-अपने राज्य थे, जहां अपने-अपने नगर थे, वहां चले गए।

१८३. तब वे पांचों पाण्डव प्रतिदिन अनुक्रम से द्रौपदी देवी के साथ प्रधान भोगार्ह भोगों को भोगते हुए विहार करने लगे।

नारद का आगमन-पद

१८४. किसी समय वह पाण्डु राजा पांचों पाण्डवों, कुन्ती, द्रौपदी देवी तथा अन्तरंग अन्तःपुर परिवार के साथ, उससे परिवृत हो, प्रवर सिंहासन पर आसीन हो विहार कर रहा था।

१८५. उसी समय 'कच्छुल्ल' नारद पाण्डुराजा के भवन में पूर्ण वेग के साथ उतरा। वह देखने में अतिभद्र और विनीत था, लेकिन कभी-कभी कलुष हृदय हो जाता था। वह माध्यस्थ-व्रत को उपलब्ध और आश्रितों के लिए सौम्य, प्रियदर्शन और सुरूप था। वह अमलिन, अखण्ड वस्त्र पहने हुए था। उसका हृदय कृष्ण मृग के चर्म से बने उत्तरासंग से सुशोभित था। हाथ में दण्ड कमण्डलु थे। मस्तक जटा-मुकुट से दीपित था। वह यज्ञोपवीत, गणेत्रिका (कलई पर पहनने की रुद्राक्ष-माला) मुंज-मेखला और वृक्षों की छाल पहने हुए था। हाथ में कच्छभि वीणा थी। वह संगीत-प्रिय, भूमिचर प्राणियों में प्रधान, संवरणी, आवरणी, अवपतनी, उत्पतनी और श्लेष्णी--इन विद्याओं में तथा संक्रमणी, अभियोगिनी, प्रज्ञप्ति, गमनी और स्तम्भिनी इन विद्याधर संबंधी नाना विद्याओं में विश्रुत यश वाला, राम और केशव को इष्ट, प्रद्युम्न, प्रतीप, साम्ब, अनिरुद्ध, निषध, उन्मुक्त, सारण, गज, सुमुख, दुर्मुख आदि साढ़े तीन करोड़ यादव कुमारों का हृदय वल्लभ, उनका प्रशंसक, कलह, युद्ध और कोलाहल-प्रिय, लड़ाई-झगड़ा चाहने वाला, अनेक शत समर और सम्पराय देखने में रत, पटुता पूर्वक कलह की टोह में रहने वाला और तीन लोक में बलिष्ठ, वीर-पुरुष प्रवर दसार राजाओं के लिए सदा असमाधि का कारण था। वह गगन-गमन में दक्ष, भगवती प्रक्रमणी विद्या को आमंत्रित कर आकाश में उड़ा तथा गगन को लांघता हुआ हजारों ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्बट, मडम्ब, द्रोणमुख, पत्तन, सम्बाध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि से परिमण्डित, शान्त मेदिनीतल एवं जनपदों से संकुल वसुधा का अवलोकन करता हुआ सुरम्य हस्तिनापुर पहुंचा।

१८६. तए णं से पंडू राया कच्छुल्लनारयं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता पंचहिं पंडवेहिं कुंतीए य देवीए सद्धिं आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता कच्छुल्लनारयं सत्तट्ठपयाइं पच्चुग्गच्छइ, पच्चुग्गच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता महरिहेणं अग्घेणं पज्जेणं आसणेण य उवनिमंतेइ।।

१८६. पाण्डु राजा ने कच्छुल्ल नारद को आते हुए देखा। देखकर पांचों पाण्डवों और कुन्तीदेवी सहित आसन से उठा। उठकर सात-आठ पद कच्छुल्ल नारद के सामने गया। सामने जाकर तीन बार दायीं ओर से प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर महान अर्हता वाले अर्ध्य, पद्य और आसन से उपनिमन्त्रित किया।

१८७. तए णं से कच्छुल्लनारए उदगपरिफोसियाए दब्भोवरिपच्चत्थुयाए भिसियाए निसीयइ, निसीइत्ता पंडुरायं रज्जे य रट्ठे य कोसे य कोट्ठागारे य बले य वाहणे य पुरे य अंतेउरे य कुसलोदंतं पुच्छइ।।

१८७. वह कच्छुल्ल नारद जल-सिक्त डाभ पर बिछी वृषिका पर बैठ गया। बैठकर पाण्डु राजा से राज्य, राष्ट्र, कोष, कोष्ठागार, बल, वाहन, पुर और अन्तःपुर के विषय में कुशल-समाचार पूछे।

१८८. तए णं से पंडू राया कोंती देवी पंच य पंडवा कच्छुल्लनारयं आढंति परियाणंति अब्भुट्ठेंति पज्जुवासंति।।

१८८. पाण्डु राजा, कुन्ती देवी और पांचों पाण्डव कच्छुल्ल नारद को आदर देते थे। उसकी बात पर ध्यान देते थे तथा अभ्युत्थान और पर्युपासना करते थे।

१८९. तए णं सा दोवई देवी कच्छुल्लनारयं अस्संजयं अविरयं अप्पडिहयपच्चक्खायपावकम्मंति कट्टु नो आढाइ नो परियाणइ नो अब्भुट्ठेइ नो पज्जुवासइ।।

१८९. द्रौपदी देवी ने कच्छुल्ल नारद को असंयत, अविरत, अप्रतिहत-अप्रत्याख्यात-पापकर्मा जानकर न उसको आदर दिया, न उसकी बात पर ध्यान दिया तथा न अभ्युत्थान किया और न पर्युपासना की।

१९०. तए णं तस्स कच्छुल्लनारयस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--अहो णं दोवई देवी रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य पंचहिं पंडवेहिं अवत्थद्धा समाणी ममं नो आढाइ नो परियाणइ नो अब्भुट्ठेइ नो पज्जुवासइ। तं सेयं खलु मम दोवईए देवीए विप्पियं करेत्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता पंडुरायं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता उप्पयणिं विज्जं आवाहेइ, आवाहेत्ता ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए सिग्घाए उद्धुयाए जइणाए छेयाए विज्जाहरगईए लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं पुरत्थाभिमुहे वीईवइउं पयत्ते यावि होत्था।।

१९०. तब कच्छुल्ल नारद के मन में इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--ओह! यह द्रौपदी देवी रूप, यौवन, लावण्य तथा पांचों पाण्डवों के कारण गर्वित हो रही है। इसीलिए न मुझे आदर देती है, न मेरी बात पर ध्यान देती है तथा न अभ्युत्थान करती है और न पर्युपासना करती है। अतः मेरे लिए उचित है मैं द्रौपदी देवी का विप्रिय--अनिष्ट करूं। उसने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर पाण्डु राजा से जाने के लिए पूछा। पूछकर उत्पतनी विद्या का आवाहन किया। आवाहन कर उस उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, चण्ड, शीघ्र, उद्धत, वेगपूर्ण, निपुण विद्याधर गति से लवणसमुद्र के बीचोंबीच होता हुआ पूर्व की ओर मुंह कर उड़ने लगा।

नारदस्स अवरकंका-गमण-पदं

१९१. तेणं कालेणं तेणं समएणं धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्ध-दाहिणड्ढ-भरहवासे अवरकंका नामं रायहाणी होत्था।।

नारद का अवरकंका-गमन-पद

१९१. उस काल और उस समय, धातकीखण्ड द्वीप में पूर्व और दक्षिण दिशावर्ती अर्ध भारत वर्ष में अवरकंका नाम की राजधानी थी।

१९२. तत्थ णं अवरकंकाए रायहाणीए पउमनाभे नामं राया होत्था--महयाहिमवंत महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे वण्णओ।।

१९२. उस अवरकंका राजधानी में पद्मनाभ नाम का राजा था। वह महान हिमालय, महान मलय, मेरु और महेन्द्र पर्वत के समान सार वाला था--वर्णक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९३. तस्स णं पउमनाभस्स रण्णे सत्त देवीसयाइं ओरोहे होत्था।।

१९३. उस राजा पद्मनाभ के सात सौ देवियों का अन्तःपुर था।

१९४. तस्स णं पउमनाभस्स रण्णो सुनाभे नामं पुत्ते जुवरायावि होत्था।।

१९४. उस राजा पद्मनाभ का सुनाभ नाम का पुत्र युवराज था।

१९५. तए णं से पउमनाभे राया अंतोअंतेउरंसि ओरोह-संपरिवुडे सीहासणवरगए विहरइ।।

१९५. वह राजा पद्मनाभ अपने अन्तःपुर के भीतर रनिवास से संपरिवृत हो प्रवर सिंहासन पर आसीन था।

१९६. तए णं से कच्छुल्लनारए जेणेव अवरकंका रायहाणी जेणेव पउमनाभस्स भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पउमनाभस्स रण्णो भवणंसि झत्ति-वेगेण समोवइए।।

१९६. वह कच्छुल्ल नारद जहां अवरकंका राजधानी थी, जहां पद्मनाभ का भवन था, वहां आया। वहां आकर पूरे वेग के साथ राजा पद्मनाभ के भवन में उतरा।

१९७. तए णं से पउमनाभे राया कच्छुल्लनारयं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता अग्घेणं पज्जेणं आसणेणं उवनिमंतेइ।।

१९७. राजा पद्मनाभ ने कच्छुल्ल नारद को आते हुए देखा। देखकर आसन से उठा। उठकर उसे अर्घ्य, पद्य और आसन से उपनिमन्त्रित किया।

१९८. तए णं से कच्छुल्लनारए उदगपरिफोसियाए दब्भोवरिपच्चत्थुयाए भिसियाए निसीयइ, निसीइत्ता पउमनाभं रायं रज्जे य रट्ठे य कोसे य कोट्ठागारे य बले य वाहणे य पुरे अंतेउरे य कुसलोदंतं आपुच्छइ।।

१९८. वह कच्छुल्ल नारद जल-सिक्त डाभ पर बिछी वृषिका पर बैठा। बैठकर राजा पद्मनाभ से उसके राज्य, राष्ट्र, कोष, कोष्ठागार, बल, वाहन, पुर और अन्तःपुर के विषय में कुशल समाचार पूछे।

१९९. तए णं से पउमनाभे राया नियगओरोहे जायविम्हए कच्छुल्लनारयं एवं वयासी--तुमं देवाणुप्पिया! बहूणि गामागर-नगर-खेड-कब्बड-दोणमुह-मडंब-पट्टण-आसम-निगम-संबाह-सण्णिवेसाइं आहिंडसि, बहूण य राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाह-पभिईणं गिहाइं अणुपविससि, तं अत्थियाइं ते कहिंचि देवाणुप्पिया! एरिसए ओरोहे दिट्ठपुव्वे जारिसए णं मम ओरोहे?

१९९. राजा पद्मनाभ ने अपने अन्तःपुर पर विस्मित होकर कच्छुल्ल नारद से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! तुम बहुत से ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्बट, द्रोणमुख, मडंब, पत्तन, आश्रम, निगम, संबाह, सन्निवेश आदि में घूमते हो और बहुत से राजा, ईश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि के घरों में प्रवेश करते हो अतः देवानुप्रिय! तुमने पहले कहीं पर मेरे जैसा अन्तःपुर देखा है?

२००. तए णं से कच्छुल्लनारए पउमनाभेणं एवं वुत्ते समाणे ईसिं विहसियं करेइ, करेत्ता एवं वयासी--सरिसे णं तुमं पउमनाभा! तस्स अगडदद्दुरस्स।

के णं देवाणुप्पिया! से अगडदद्दुरे?

पउमनाभा! से जहानामए अगडदद्दुरे सिया। सेणं तत्थ जाए तत्थेव वुड्ढे अण्णं अगडं वा तलागं वा दहं वा सरं वा सागरं वा अपासमाणे मण्णइ--अयं चेव अगडे वा तलागे वा दहे वा सरे वा सागरे वा। तए णं तं कूवं अण्णे सामुद्दए दद्दुरे हव्वमागए। तए णं से कूवदद्दुरे तं सामुद्दयं दद्दुरं एवं वयासी--से के तुमं देवाणुप्पिया! कत्तो वा इह हव्वमागए?

तए णं से सामुद्दए दद्दुरे तं कूवदद्दुरं एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! अहं सामुद्दए दद्दुरे।

२००. राजा पद्मनाभ के ऐसा कहने पर कच्छुल्ल नारद थोड़ा मुस्कुराया। मुस्कुराकर इस प्रकार कहा--पद्मनाभ! तू तो उस कूप-मंडूक जैसा है।

देवानुप्रिय! वह कूप-मण्डूक कौन सा है?

पद्मनाभ! जैसे कोई कूप-मण्डूक हो, वह वहीं जन्मा हो, वहीं बढ़ा हो और अन्य कूप, तालाब, द्रह, सर अथवा सागर उसने देखा न हो। वह मानता है--यही कूप है, तालाब है, द्रह है, सर है अथवा सागर है।

उस कूप में दूसरे समुद्र का मेंढ़क आ गया।

वह कूप-मण्डूक समुद्र के मेंढ़क से इस प्रकार बोला--कौन हो तुम देवानुप्रिय! यहां कहां से आये हो?

वह समुद्र का मेंढ़क कूप-मण्डूक से इस प्रकार बोला--देवानुप्रिय! मैं समुद्र का मेंढ़क हूँ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

तए णं से कूवदद्दुरे तं सामुद्दयं एवं वयासी--केमहालए णं देवाणुप्पिया! से समुद्दे?

तए णं से सामुद्दए दद्दुरे तं कूवदद्दुरं एवं वयासी--महालए णं देवाणुप्पिया! समुद्दे।

तए णं से कूवदद्दुरे पाएणं लीहं कड्ढेइ, कड्ढेत्ता एवं वयासी--एमहालए णं देवाणुप्पिया! से समुद्दे?

नो इणट्ठे समट्ठे। महालए णं से समुद्दे।

तए णं से कूवदद्दुरे पुरत्थिमिल्लाओ तीराओ उप्फिडित्ता णं पच्चत्थिमिल्लं तीरं गच्छइ, गच्छित्ता एवं वयासी--एमहालए णं देवाणुप्पिया! से समुद्दे?

नो इणट्ठे समट्ठे। एवामेव तुमं पि पउमनाभा! अण्णेसिं बहूणं राईसर जाव सत्थवाहप्पभिईणं भज्जं वा भगिणिं वा धूयं वा सुण्हं वा अपासमाणे जाणसि जारिसए मम चेव णं ओरोहे, तारिसए णो अण्णेसिं।

एवं खलु देवाणुप्पिया! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे हत्थिणाउरे नयरे दुपयस्स रण्णो धूया चुलणीए देवीए अत्तया पंडुस्स सुण्हा पंचण्हं पंडवाणं भारिया दोवई नामं देवी रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा। दोवईए णं देवीए छिन्नस्सवि पायंगुट्ठस्स अयं तव ओरोहे सयंपि कलं न अग्घइ त्ति कट्टु पउमनाभं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।।

कूप-मण्डूक ने उस समुद्र के मेंढ़क से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! कितना बड़ा है वह समुद्र?

वह समुद्र का मेंढ़क कूप-मण्डूक को इस प्रकार बोला--देवानुप्रिय! बहुत बड़ा है वह समुद्र।

कूप-मण्डूक ने पांव से लकीर खींची, खींचकर इस प्रकार बोला--देवानुप्रिय! इतना बड़ा है वह समुद्र?

यह अर्थ समर्थ नहीं है। इससे भी अधिक बड़ा है वह समुद्र। तब वह कूप-मण्डूक पूर्वीय तट से छलांग भरकर पश्चिमी तट पर गया। जाकर इस प्रकार बोला--देवानुप्रिय! इतना बड़ा है वह समुद्र?

यह अर्थ समर्थ नहीं है।

पद्मनाभ ! इसी प्रकार तुम भी अन्य बहुत से राजा, ईश्वर यावत् सार्थवाह इत्यादि की भार्या, भगिनी, पुत्री अथवा पुत्रवधू को बिना देखे यही जानते हो, जैसा मेरा अन्तःपुर है, वैसा दूसरों का नहीं है।

देवानुप्रिय! जम्बूद्वीप द्वीप, भारतवर्ष और हस्तिनापुर नगर में राजा द्रुपद की पुत्री, चुलनी देवी की आत्मजा, पाण्डु की पुत्रवधू, पांच पाण्डवों की भार्या द्रौपदी नाम की देवी रूप, यौवन और लावण्य से उत्कृष्ट और उत्कृष्ट शरीर वाली है। तेरा यह अन्तःपुर तो देवी द्रौपदी के कटे हुए पादांगुष्ठ के शतांश में भी नहीं आता--यह कह नारद ने पद्मनाभ से जाने के लिए पूछा। पूछकर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में चला गया।

दोवईए साहरण-पदं

२०१. तए णं से पउमनाभे राया कच्छुल्लनारयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म दोवईए देवीए रूवे य जोव्वणे य लावण्णे य मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववण्णे जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता पुव्वसंगइयं देवं मणसीकरेमाणे-मणसीकरेमाणे चिट्ठइ।।

द्रौपदी का संहरण-पद

२०१. वह पद्मनाभ राजा कच्छुल्ल नारद के पास यह अर्थ सुनकर, अवधारण कर द्रौपदी देवी के रूप, यौवन और लावण्य के प्रति मूर्च्छित, ग्रथित, गृद्ध और अध्युपपन्न हो गया। वह जहां पौषधशाला थी, वहां आया। आकर पौषधशाला में प्रवेश किया। प्रवेश कर अपने पूर्वसांगतिक देव के साथ मानसिक तादात्म्य स्थापित किया।

२०२. तए णं पउमनाभस्स रण्णो अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि पुव्वसंगइओ देवो जाव आगओ।

भणंतु णं देवाणुप्पिया! जं मए कायव्वं।।

२०२. राजा पद्मनाभ के अष्टमभक्त तप परिणत हो रहा था उस समय पूर्वसांगतिक देव यावत् आया।

कहो देवानुप्रिय! जो मुझे करना है।

२०३. तए णं से पउमनाभे पुव्वसंगइयं देवं एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे हत्थिणाउरे नयरे दुपयस्स रण्णो धूया चुलणीए देवीए अत्तया पंडुस्स सुण्हा पंचण्हं पंडवाणं भारिया दोवई नामं देवी रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा। तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! दोवइं देविं इह हव्वमाणीयं।।

२०३. उस पद्मनाभ ने पूर्वसांगतिक देव से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! जम्बूद्वीप द्वीप, भारतवर्ष और हस्तिनापुर नगर में राजा द्रुपद की पुत्री, देवी चुलनी की आत्मजा, पाण्डु की पुत्रवधू, पांच पाण्डवों की भार्या द्रौपदी नाम की देवी रूप, यौवन और लावण्य से उत्कृष्ट और उत्कृष्ट शरीर वाली है। अतः देवानुप्रिय! मैं शीघ्र ही द्रौपदी देवी को यहां लाना चाहता हूँ।

२०४. तए णं से पुव्वसंगए देवे पउमनाभं एवं वयासी--नो खलु देवाणुप्पिया! एवं भूयं वा भव्वं वा भविस्सं वा जण्णं दोवई देवी

२०४. उस पूर्वसांगतिक देव ने पद्मनाभ से इस प्रकार कहा-- देवानुप्रिय! ऐसा न कभी हुआ है, न होता है और न होगा कि देवी द्रौपदी पांच

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंच पंडवे मोत्तूणं अण्णेणं पुरिसेणं सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरिस्सइ। तहावि य णं अहं तव पियट्ठयाए दोवइं देविं इहं हव्वामाणेमि त्ति कट्टु पउमनाभं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए जवणाए सिग्घाए उद्धुयाए दिव्वाए देवगईए लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं जेणेव हत्थिणाउरे नयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।।

पाण्डवों को छोड़कर अन्य पुरुष के साथ मनुष्य संबंधी प्रधान भोगार्ह भोगों को भोगती हुई विहार करे तथापि मैं तुम्हारी प्रियता के लिए द्रौपदी देवी को यहां शीघ्र ही लाता हूं। यह कह उसने पद्मनाभ से जाने के लिए पूछा। पूछकर उस उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, चण्ड, वेगपूर्ण, शीघ्र, उद्धत, दिव्य, देवगति से लवणसमुद्र के बीचोंबीच होता हुआ जिधर हस्तिनापुर नगर था, उधर प्रस्थान किया।

२०५. तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिणाउरे नयरे जुहिट्ठिल्ले राया दोवईए देवीए सद्धिं उप्पिं आगासतलगंसि सुहप्पसुत्ते यावि होत्था।।

२०५. उस काल और उस समय हस्तिनापुर नगर में राजा युधिष्ठिर देवी द्रौपदी के साथ, ऊपर खुले में सुखपूर्वक सोया हुआ था।

२०६. तए णं से पुव्वसंगइए देवे जेणेव जुहिट्ठिल्ले राया जेणेव दोवई देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दोवईए देवीए ओसोवणिं दलयइ, दलइत्ता दोवइं देविं गिण्हइ, गिण्हित्ता ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए जवणाए सिग्घाए उद्धुयाए दिव्वाए देवगईए जेणेव अवरकंका जेणेव पउमनाभस्स भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पउमनाभस्स भवणंसि असोगवणियाए दोवइं देविं ठावेइ, ठावेत्ता ओसोवणिं अवहरइ, अवहरित्ता जेणेव पउमनाभे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी--एस णं देवाणुप्पिया! मए हत्थिणाउराओ दोवई देवी इहं हव्वमाणीया तव असोगवणियाए चिट्ठइ। अओ परं तुमं जाणसि त्ति कट्टु जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।।

२०६. वह पूर्व सांगतिक देव जहां राजा युधिष्ठिर था, जहां देवी द्रौपदी थी, वहां आया। वहां आकर देवी द्रौपदी पर अवस्वापिनी विद्या का प्रयोग किया। अवस्वापिनी का प्रयोग कर द्रौपदी देवी को उठा लिया। उठा कर उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, चण्ड, वेगपूर्ण, शीघ्र, उद्धत, दिव्य, देवगति से जहां अवरकंका थी, जहां पद्मनाभ का भवन था, वहां आया। वहां आकर पद्मनाभ के भवन की अशोकवनिका में देवी द्रौपदी को स्थापित किया। स्थापित कर अवस्वापिनी का अपहार किया। तत्पश्चात् वह जहां राजा पद्मनाभ था, वहां आया। आकर इस प्रकार बोला--'यह लो देवानुप्रिय! मेरे द्वारा हस्तिनापुर से यहां शीघ्र ही आनीत द्रौपदी देवी तुम्हारी अशोकवनिका में स्थित है। इससे आगे तुम जानो।'-- यह कहकर वह जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में चला गया।

दोवईए चिंता-पदं

२०७. तए णं सा दोवई देवी तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धा समाणी तं भवणं असोगवणियं च अपच्चभिजाणमाणी एवं वयासी--नो खलु अम्हं एसे सए भवणे नो खलु एसा अम्हं सगा असोगवणिया। तं न नज्जइ णं अहं केणइ देवेण वा दाणवेण वा किण्णरेण वा किंपुरिसेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा अण्णस्स रण्णो असोगवणियं साहरिय त्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया झियायइ।।

द्रौपदी का चिन्ता-पद

२०७. वह देवी द्रौपदी मुहूर्त्त भर पश्चात् जागी। उस भवन और अशोक वनिका को न पहचानती हुई वह इस प्रकार बोली--यह हमारा अपना भवन नहीं है, यह हमारी अपनी अशोकवनिका नहीं है। अतः न जाने मैं किस देव, दानव, किन्नर, किंपुरुष, महोरग अथवा गंधर्व के द्वारा किसी दूसरे राजा की अशोकवनिका में संहृत हुई हूँ। इस प्रकार वह भग्न-हृदय हो हथेली पर मुंह टिकाए आर्त्तध्यान में डूबी हुई चिन्तामग्न हो गई।

पउमनाभस्स आसासण-पदं

२०८. तए णं से पउमनाभे राया ण्हाए जाव सव्वालंकारविभूसिए अंतेउर-परियाल-संपरिवुडे जेणेव असोगवणिया जेणेव दोवई देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दोवइं देविं ओहयमणसंकप्पं करतलपल्हत्थमुहिं अट्टज्झाणोवगयं झियायमाणिं पासइ, पासित्ता एवं वयासी--किन्नं तुमं देवाणुप्पिए! ओहयमण- संकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया झियाहि? एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए! मम पुव्वसंगइएणं देवेणं जंबुद्दीवाओ दीवाओ भारहाओ

पद्मनाभ का आश्वासन-पद

२०८. वह पद्मनाभ राजा स्नान कर यावत् सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित और अन्तःपुर परिवार से परिवृत होकर जहां अशोक-वनिका थी, जहां द्रौपदी देवी थी वहां आया। वहां आकर उसने द्रौपदी देवी को भग्न-हृदय हो हथेली पर मुंह टिकाए आर्त्तध्यान में डूबे हुए चिन्तामग्न देखा। देखकर वह इस प्रकार बोला-- देवानुप्रिये! तुम इस प्रकार भग्न-हृदय हो हथेली पर मुंह टिकाए आर्त्तध्यान में डूबी हुई चिन्तामग्न क्यों हो रही हो?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वासाओ हत्थिणाउराओ नयराओ जुहिट्ठिलस्स रण्णो भवणाओ साहरिया। तं मा णं तुमं देवाणुप्पिया! ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया झियाहि। तुमं णं मए सद्धिं विपुलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहराहि।।

देवानुप्रिये! इस प्रकार मेरे पूर्वसांगतिक देव ने जम्बूद्वीप द्वीप, भारतवर्ष, हस्तिनापुर नगर और राजा युधिष्ठिर के भवन से तुम्हारा संहरण किया है। अतः देवानुप्रिये! तुम इस प्रकार भग्न-हृदय हो हथेली पर मुंह टिकाए आर्त्तध्यान में डूबी हुई चिन्तामग्न मत बनो। तुम मेरे साथ विपुल भोगार्ह भोगों को भोगती हुई विहार करो।

२०९. तए णं सा दोवई देवी पउमनाभं एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे बारवईए नयरीए कण्हे नामं वासुदेवे मम पियभाउए परिवसइ। तं जइ णं से छण्हं मासाणं मम कूवं नो हव्वमागच्छइ, तए णं अहं देवाणुप्पिया! जं तुमं वदसि, तस्स आणा-ओवाय-वयणनिद्देसे चिट्ठिस्सामि।।

२०९. उस द्रौपदी देवी ने पद्मनाभ से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! जम्बूद्वीप द्वीप, भारतवर्ष और द्वारवती नगरी में मेरे पति के भाई श्रीकृष्ण वासुदेव रहते हैं। यदि वे छः मास के भीतर मुझे खोजने[१] न आये तो देवानुप्रिय! तुम जिसके लिए कहोगे, उसी की आज्ञा, उपपात, वचन और निर्देश के अनुसार रहूंगी।

२१०. तए णं से पउमनाभे दोवईए देवीए एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता दोवइं देविं कण्णंतेउरे ठवेइ।।

२१०. उस पद्मनाभ ने द्रौपदी देवी के इस अर्थ को स्वीकार कर लिया। स्वीकार कर द्रौपदी को कन्याओं के अन्तःपुर में स्थापित कर दिया।

२११. तए णं सा दोवई देवी छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं आयंबिल-परिग्गहिएणं तवोकम्मेण अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।।

२११. वह द्रौपदी देवी आयम्बिल युक्त निरन्तर षष्ठ-षष्ठ भक्त तपः कर्म से स्वयं को भावित करती हुई विहार करने लगी।

दोवईए गवेसणा-पदं

द्रौपदी का गवेषणा-पद

२१२. तए णं से जुहिट्ठिल्ले राया तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धे समाणे दोवइं देविं पासे अपासमाणे सयणिज्जाओ उट्ठेइ, उट्ठेत्ता दोवईए देवीए सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेइ, करेत्ता दोवईए देवीए कत्थए सुइं वा खुइं वा पवत्तिं वा अलभमाणे जेणेव पंडू राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंडुं रायं एवं वयासी--एवं खलु ताओ! ममं आगासतलगंसि सुहपसुत्तस्स पासाओ दोवई देवी न नज्जइ केणइ देवेण वा दाणवेण वा किण्णरेण वा किंपुरिसेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा हिया वा निया वा अवक्खित्ता वा। तं इच्छामि णं ताओ! दोवईए देवीए सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करित्तए।।

२१२. उसके मुहूर्त्त भर पश्चात् राजा युधिष्ठिर प्रतिबुद्ध हुआ। जब अपने पास द्रौपदी देवी को नहीं देखा तो वह शयनीय से उठा। उठकर उसने द्रौपदी देवी की चारों ओर खोज की। जब उसे द्रौपदी देवी का कहीं भी कोई सुराख, चिह्न अथवा वृत्तान्त नहीं मिला तो वह जहां पाण्डु राजा था, वहां आया। वहां आकर पाण्डु राजा से इस प्रकार बोला--तात! ऊपर खुले में सुखपूर्वक सोये हुए मेरे पास से द्रौपदी देवी का जाने किस देव, दानव, किन्नर, किंपुरुष, महोरग अथवा गन्धर्व ने अपहरण कर लिया है या उसे कोई कहीं ले गया है या किसी कूप, गर्त्त आदि में गिरा दिया है। अतः तात! मैं द्रौपदी देवी की चारों ओर खोज करना चाहता हूँ।

२१३. तए णं से पंडू राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! हत्थिणाउरे नयरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एवं वयह--एवं खलु देवाणुप्पिया! जुहिट्ठिलस्स रण्णे आगासतलगंसि सुहपसुत्तस्स पासाओ दोवई देवी न नज्जइ केणइ देवेण वा दाणवेण वा किण्णरेण वा किंपुरिसेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा हिया वा निया वा अवक्खित्ता वा। तं जो णं देवाणुप्पिया! दोवईए देवीए सुइं वा खुइं वा पवत्तिं वा परिकहेइ, तस्स णं पंडू राया विउलं अत्थसंपयाणं दलयइ त्ति कट्टु घोसणं घोसावेह, घोसावेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।।

२१३. उस पाण्डुराजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम जाओ और हस्तिनापुर नगर के दोराहों, तिराहों, चौराहों, चौकों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और मार्गों में उच्च स्वर से उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहो--देवानुप्रियो! इस प्रकार ऊपर खुले में सोये हुए राजा युधिष्ठिर के पास से द्रौपदी देवी का न जाने किस देव, दानव, किन्नर, किंपुरुष, महोरग अथवा गन्धर्व ने अपहरण कर लिया है या उसे कोई कहीं ले गया है या किसी कूप, गर्त्त आदि में गिरा दिया है।

अतः देवानुप्रियो! जो भी द्रौपदी देवी का सुराख, चिह्न अथवा वृत्तान्त बताएगा, उसे पाण्डुराजा विपुल अर्थसम्पदा प्रदान करेगा। इस प्रकार घोषणा करो। घोषणा कर इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१४. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति ।।

२१४. उन कौटुम्बिक पुरुषों ने यावत् वैसे ही प्रत्यर्पित किया।

२१५. तए णं से पंडू राया दोवईए देवीए कत्थइ सुइं वा खुइं वा पवत्तिं वा अलभमाणे कोंतिं देविं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिए! बारवइं नयरिं कण्हस्स वासुदेवस्स एयमट्ठं निवेदेहि--कण्हे णं वासुदेवे दोवईए मग्गण-गवेसणं करेज्जा, अण्णहा न नज्जइ दोवईए देवीए सुई वा खुई वा पवत्ती वा ।।

२१५. जब देवी द्रौपदी का कहीं पर भी कोई सुराख, चिह्न अथवा वृत्तान्त नहीं मिला, तब पाण्डुराजा ने कुन्ती देवी को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिये! तुम द्वारवती नगरी जाओ और कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार यह अर्थ निवेदन करो--वासुदेव कृष्ण द्रौपदी देवी की खोज करे अन्यथा द्रौपदी देवी का सुराख, चिह्न अथवा वृत्तान्त ज्ञात नहीं हो सकता।

२१६. तए णं सा कोंती देवी पंडुणा एवं वुत्ता समाणी जाव पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता ण्हाया कयबलिकम्मा हत्थिखंधवरगया हत्थिणाउरं नयरं मज्झंमज्झेणं निगच्छइ, निगच्छित्ता कुरुजणवयस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव सुरट्ठाजणवए जेणेव बारवई नयरी जेणेव अग्गुज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिखंधाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! बारवइं नयरिं, जेणेव कण्हस्स वासुदेवस्स गिहे तेणेव अणुपविसह, अणुपविसित्ता कण्हं वासुदेवं करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयह--एवं खलु सामी! तुब्भं पिउच्छा कोंती देवी हत्थिणाउराओ नयराओ इहं हव्वमागया तुब्भं दंसणं कंखइ ।।

२१६. पाण्डुराजा के ऐसा कहने पर कुन्तीदेवी ने यावत् स्वीकार किया। स्वीकार कर वह स्नान और बलिकर्म कर प्रवर हस्ति-स्कन्ध पर आरूढ़ हुई। हस्तिनापुर नगर के बीचोंबीच होकर निकली। निकलकर कुरु जनपद के बीचोंबीच होती हुई जहां सौराष्ट्र जनपद था, जहां द्वारवती नगरी थी, जहां प्रधान उद्यान था, वहां आई। वहां आकर प्रवर हस्ति-स्कन्ध से उतरी। उतरकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम द्वारवती नगरी जाओ। जहां कृष्ण वासुदेव का भवन है, वहां प्रवेश करो। वहां प्रवेश कर सटे हुए दस नखों वाली दोनों हथेलियों से निष्पन्न आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहो--स्वामिन्! तुम्हारी बुआ कुन्ती देवी अभी-अभी हस्तिनापुर से यहां आई है, वह तुम्हारे दर्शन चाहती है।

२१७. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव कहेंति ।।

२१७. उन कौटुम्बिक पुरुषों ने यावत् कहा।

२१८. तए णं कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे हत्थिखंधवरगए बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव कोंती देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिखंधाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता कोंतीए देवीए पायग्गहणं करेइ, करेत्ता कोंतीए देवीए सद्धिं हत्थिखंधं दुरुहइ, दुरुहित्ता बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयं गिहं अणुप्पविसइ ।।

२१८. कौटुम्बिक पुरुषों से इस अर्थ को सुनकर अवधारण कर हृष्ट-तुष्ट हुए कृष्ण वासुदेव प्रवर हस्ति-स्कन्ध पर आरूढ़ हो, द्वारवती नगरी के बीचोंबीच होते हुए जहां कुन्ती देवी थी, वहां आए। आकर हस्ति-स्कन्ध से उतरे। उतरकर कुन्ती देवी के चरण छुए। चरण छूकर कुन्ती देवी के साथ हस्ति-स्कन्ध पर आरूढ़ हुए। आरूढ़ होकर द्वारवती नगरी के बीचोंबीच होते हुए जहां अपना भवन था, वहां आए। आकर भवन में प्रवेश किया।

२१९. तए णं से कण्हे वासुदेवे कोंतिं देविं ण्हायं कयबलिकम्मं जिमियभुत्तुत्तरागयं वि य णं समाणिं आयंतं चोक्खं परमसुइभूयं सुहासणवरगयं एवं वयासी--संदिसउ णं पिउच्छा! किमागमण-पओयणं?

२१९. जब कुन्ती देवी स्नान, बलिकर्म कर भोजनोपरान्त आचमन कर, साफ-सुथरी और परम-पवित्र हो, प्रवर सुखासन में बैठ गई तब कृष्ण वासुदेव ने उनसे इस प्रकार कहा--कहो बुआ जी! किस प्रयोजन से आगमन हुआ?

२२०. तए णं सा कोंती देवी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी--एवं खलु पुत्ता! हत्थिणाउरे नयरे जुहिट्ठिलस्स रण्णो आगासतलए सुहप्पसुत्तस्स पासाओ दोवई देवी न नज्जइ केणइ अवहिया वा निया वा अवक्खित्ता वा। तं इच्छामि णं पुत्ता! दोवईए देवीए सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं कयं ।।

२२०. तब कुन्ती देवी ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा--पुत्र! हस्तिनापुर नगर में अपने भवन के ऊपर खुले में सोये हुए राजा युधिष्ठिर के पास से द्रौपदी देवी का न जाने किसने अपहरण कर लिया है या उसे कोई कहीं ले गया है या किसी कूप, गर्त्त आदि में गिरा दिया है।

अतः पुत्र! मैं चाहती हूँ, द्रौपदी देवी की चारों ओर खोज की जाए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२१. तए णं से कण्हे वासुदेवे कोंतिं पिउच्छं एवं वयासी--जं नवरं--पिउच्छा! दोवईए देवीए कत्थइ सुइं वा खुइं वा पवत्तिं वा लभामि, तो णं अहं पायालाओ वा भवणाओ वा अद्धभरहाओ वा समंतओ दोवइं देविं साहत्थिं उवणेमि त्ति कट्टु कोंतिं पिउच्छं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ।।

२२१. कृष्ण वासुदेव ने बुआ कुन्ती से इस प्रकार कहा--विशेष--बुआ! यदि द्रौपदी देवी का कहीं कोई सुराख, चिह्न या वृत्तान्त मिल जाए तो वह पाताल में, भवन में अथवा अर्द्धभरत क्षेत्र में कहीं पर भी हो मैं वहां से द्रौपदी देवी को हाथों-हाथ ले आऊं--यह कह कर उन्होंने बुआ कुन्ती को सत्कृत किया। सम्मानित किया। सत्कृत-सम्मानित कर उसे प्रतिविसर्जित किया।

२२२. तए णं सा कोंती देवी कण्हेणं वासुदेवेणं पडिविसज्जिया समाणी जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।।

२२२. कृष्ण वासुदेव से प्रतिविसर्जित हुई कुन्ती देवी जिस दिशा से आई थी उसी दिशा में चली गई।

२२३. तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! बारवईए नयरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एवं वयह--एवं खलु देवाणुप्पिया! जुहिट्ठिलस्स रण्णो आगासतलगंसि सुहपसुत्तस्स पासाओ दोवई देवी न नज्जइ केणइ देवेण वा दाणवेण वा किण्णरेण वा किंपुरिसेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा हिया वा निया वा अवक्खित्ता वा। तं जो णं देवाणुप्पिया! दोवईए देवीए सुइं वा खुइं वा पवत्तिं वा परिकहेइ, तस्स णं कण्हे वासुदेवे विउलं अत्थसंपयाणं दलयइ त्ति कट्टु घोसणं घोसावेह, घोसावेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।।

२२३. कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम जाओ, द्वारवती नगरी में दोराहों, तिराहों, चौराहों, चौकों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और मार्गों में उच्चस्वर से उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहो--देवानुप्रियो! इस प्रकार अपने भवन के ऊपर खुले में सुखपूर्वक सोये हुए राजा युधिष्ठिर के पास से द्रौपदी देवी का न जाने किस देव, दानव, किन्नर, किंपुरुष, महोरग अथवा गन्धर्व ने अपहरण कर लिया है या उसे कोई कहीं ले गया है या किसी कूप, गर्त्त आदि में गिरा दिया है।

अतः देवानुप्रियो! जो भी द्रौपदी देवी का सुराख, चिह्न अथवा वृत्तान्त बताएगा, कृष्ण वासुदेव उसे विपुल अर्थ-सम्पदा प्रदान करेगा। इस प्रकार घोषणा करो। घोषणा कर इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो।

२२४. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति।।

२२४. उन्होंने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया यावत् प्रत्यर्पित किया।

२२५. तए णं से कण्हे वासुदेवे अण्णया अंतोअंतेउरगए ओरोह-संपरिवुडे सीहासणवरगए विहरइ।।

२२५. किसी समय कृष्ण वासुदेव अपने अन्तःपुर के भीतर रनिवास से संपरिवृत हो प्रवर सिंहासन पर आसीन थे।

दोवईए उवलद्धि-पदं

द्रौपदी का उपलब्धि पद

२२६. इमं च णं कच्छुल्लनारए जाव झत्ति-वेगेण समोवइए।।

२२६. इधर कच्छुल्ल नारद यावत् पूरे वेग के साथ उतरा।

२२७. तए णं से कण्हे वासुदेवे कच्छुल्लनारयं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता अग्घेणं पज्जेणं आसणेणं उवनिमंतेइ।।

२२७. कृष्ण वासुदेव ने कच्छुल्ल नारद को आते हुए देखा। देखकर आसन से उठे। उठकर उसे अर्घ्य; पद्य और आसन से उपनिमन्त्रित किया।

२२८. तए णं कच्छुल्लनारए उदगपरिफोसियाए दब्भोवरिपच्चत्थुयाए भिसियाए निसीयइ, निसीइत्ता कण्हं वासुदेवं कुसलोदंतं पुच्छइ।।

२२८. कच्छुल्ल नारद जल सिक्त डाभ पर बिछी वृषिका पर बैठा। बैठकर कृष्ण वासुदेव से कुशल समाचार पूछे।

२२९. तए णं से कण्हे वासुदेवे कच्छुल्लनारयं एवं वयासी--तुमं णं देवाणुप्पिया! बहूणि गामागर-नगर-खेड-कब्बड-दोणमुह-मडंब-पट्टण-आसम-निगम-संबाह सण्णिवेसाइं आहिंडसि, बहूण य राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाह-पभिईणं गिहाइं अणुपविससि, तं अत्थियाइं ते कहिंचि दोवईए देवीए सुई वा खुई वा पवित्ती वा उवलद्धा?

२२९. कृष्ण वासुदेव ने कच्छुल्ल नारद से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! तुम बहुत से ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्बट, द्रोणमुख, मडंब, पत्तन, आश्रम, निगम, संबाह, सन्निवेश आदि में घूमते हो और बहुत से राजा, ईश्वर, तलवर, मडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि के घरों में प्रवेश करते हो अतः तुम्हें कहीं पर द्रौपदी देवी का सुराख, चिह्न अथवा वृत्तान्त मिला है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३०. तए णं से कच्छुल्लनारए कण्हं वासुदेवं एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! अण्णया धायइसंडदीवे पुरत्थिमद्धं दाहिणड्ढ-भरहवासं अवरकंका-रायहाणिं गए। तत्थ णं मए पउमनाभस्स रण्णो भवणंसि दोवई-देवी-जारिसिया दिट्ठपुव्वा यावि हत्था।।

२३०. कच्छुल्ल नारद ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! मैं एक बार धातकीखण्ड-द्वीप के पूर्व और दक्षिण दिशावर्त्ती भारतवर्ष की राजधानी अवरकंका गया था। वहां राजा पद्मनाभ के भवन में द्रौपदी देवी जैसी किसी नारी को देखा था।

२३१. तए णं कण्हे वासुदेवे कच्छुल्लनारयं एवं वयासी--तुब्भं चेव णं देवाणुप्पिया! एयं पुव्वकम्मं।

२३१. कृष्ण वासुदेव ने कच्छुल्ल नारद से इस प्रकार कहा--लगता है यह तुम्हारा ही काम है।

२३२. तए णं से कच्छुल्लनारए कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे उप्पयणिं विज्जं आवाहेइ, आवाहेत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।।

२३२. कृष्ण वासुदेव के ऐसा कहने पर कच्छुल्ल नारद ने 'उत्पतनी' विद्या का आवाहन किया। आवाहन कर जिस दिशा से आया था उसी दिशा में चला गया।

सपंडवस्स कण्हस्स पयाण-पदं

पांडवों सहित कृष्ण का प्रयाण-पद

२३३. तए णं से कण्हे वासुदेवे दूयं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! हत्थिणाउरं नयरं पंडुस्स रण्णो एयमट्ठं निवेएहि--एवं खलु देवाणुप्पिया! धायइसंडदीवे पुरत्थिमद्धे दाहिणड्ढ-भरहवासे अवरकंकाए रयहाणीए पउमनाभभवणंसि दोवईए देवीए पउत्ती उवलद्धा, तं गच्छंतु पंच पंडवा चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडा पुरत्थिम-वेयालीए ममं पडिवालेमाणा चिट्ठंतु।।

२३३. कृष्ण वासुदेव ने दूत को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! तुम हस्तिनापुर नगर जाओ और पाण्डु राजा को यह निवेदन करो--देवानुप्रिय! धातकीखण्डद्वीप के पूर्व और दक्षिण दिशावर्ती भारतवर्ष की राजधानी अवरकंका में राजा पद्मनाभ के भवन में द्रौपदी देवी की खबर मिली है, अतः पांचों पाण्डव जाएं और चातुरंगिणी सेना के साथ उससे परिवृत हो लवणसमुद्र के पूर्वीय तट पर मेरी प्रतीक्षा करते हुए ठहरें।

२३४. तए णं से दूए भणइ जाव पडिवालेमाणा चिट्ठह। तेवि जाव चिट्ठंति।।

२३४. दूत ने कहा यावत् प्रतीक्षा करते हुए ठहरें। वे भी यावत् ठहरे।

२३५. तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! सन्नाहियं भेरिं तालेह। तेवि तालेंति।।

२३५. कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक-पुरुषों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम जाओ और सान्नाहिकी भेरी बजाओ--उन्होंने भी भेरी बजायी।

२३६. तए णं तीए सन्नाहियाए भेरीए सद्दं सोच्चा समुद्दविजय-पामोक्खा दस दसारा जाव छप्पन्नं बलवगसाहस्सीओ सण्णद्ध-बद्ध-वम्मिय-कवया उप्पीलियसरासण-पट्टिया पिणद्ध-गेविज्जा आविद्ध-विमल-वरचिंध-पट्टा गहियाउह-पहरणा अप्पेगइया हयगया अप्पेगइया गयगया जाव पुरिसवग्गुरापरिक्खित्ता जेणेव सभा सुहम्मा जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति।।

२३६. उस सान्नाहिकी भेरी का शब्द सुनकर समुद्रविजय प्रमुख दस दसार राजा यावत् छप्पन हजार बलिष्ठ कुमारों ने सन्नद्ध बद्ध हो कवच पहने। धनुषपट्टी बांधी। गले में ग्रीवारक्षक उपकरण पहने। विमल और प्रवर चिह्नपट्ट बांधे। तथा हाथों में आयुध और प्रहरण लिए। उनमें से कोई अश्वारूढ होकर, कोई गजारूढ होकर यावत् पुरुष समूह से परिवृत हो, जहां 'सुधर्मा' सभा थी, जहां कृष्ण वासुदेव थे, वहां आए। वहां आकर दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर 'जय विजय' की ध्वनि से वर्धापन किया।

कण्हस्स देवाराधण-पदं

कृष्ण का देवाराधना-पद

२३७. तए णं से कण्हे वासुदेवे हत्थिखंधवरगए सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं वीइज्जमाणे हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे

२३७. कृष्ण वासुदेव ने प्रवर हस्तिस्कन्ध पर आरूढ़ हो कटसरैया के फूलों से बनी मालाओं से युक्त छत्र धारण किया। वे श्वेत चामरों से वीजित होते हुए अश्व, गज, रथ और प्रवर पदाति योद्धाओं से कलित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महयाभड-चडगर-रह-पहकर-विंदपरिक्खित्ते बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं निगच्छइ, निगच्छित्ता जेणेव पुरत्थिमवेयाली तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं एगयओ मिलइ, मिलित्ता खंधावारनिवेसं करेइ, करेत्ता पोसहसालं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता सुट्ठियं देवं मणसीकरेमाणे-मणसीकरेमाणे चिट्ठइ।।

चातुरंगिणी सेना के साथ, उससे परिवृत हो, महान सुभटों की विभिन्न टुकड़ियों, रथों एवं पथदर्शक पुरुषों के समूह से परिवृत हो द्वारवती नगरी के बीचोंबीच होते हुए निकले। निकलकर जहां पूर्वीय तट था वहां पहुंचे। वहां पहुंचकर एक स्थान पर पांचों पाण्डवों के साथ मिले। मिलकर सेना का पड़ाव डाला। पड़ाव डालकर पौषधशाला में प्रविष्ट हुए। प्रविष्ट होकर सुस्थित देव के साथ मानसिक तादात्म्य स्थापित कर ठहरे।

२३८. तए णं कण्हस्स वासुदेवस्स अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि सुट्ठिओ जाव आगओ। भणंतु णं देवाणुप्पिया! जं मए कायव्वं।।

२३८. कृष्ण वासुदेव के अष्टम-भक्त तप परिणत हो रहा था, यावत् सुस्थित देव आया। कहो--देवानुप्रिय! जो मुझे करना है।

कण्हस्स मग्गजायणा-पदं

कृष्ण द्वारा मार्ग-याचना-पद

२३९. तए णं से कण्हे वासुदेवे सुट्ठियं देवं एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! दोवई देवी धायईसंडदीवे पुरत्थिमद्धे दाहिणड्ढ-भरहवासे अवरकंकाए रायहाणीए पउमनाभभवणंसि साहिया तण्णं तुमं देवाणुप्पिया! मम पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठस्स छण्हं रहाणं लवणसमुद्दे मग्गं वियराहि, जेणाहं अवरकंकं रायहाणिं दोवईए कूवं गच्छामि।।

२३९. कृष्ण वासुदेव ने सुस्थित देव से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! धातकीखण्ड-द्वीप के पूर्व और दक्षिण दिशावर्ती भारतवर्ष की राजधानी अवरकंका के राजा पद्मनाभ के भवन में द्रौपदी देवी का संहरण हुआ है। अतः पांच पाण्डव और छट्ठा मैं--इन छहों के रथों को लवण-समुद्र में मार्ग दो। जिससे मैं द्रौपदी को खोजने के लिए अवरकंका राजधानी जा सकूं।

२४०. तए णं से सुट्ठिए देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी--किण्णं देवाणुप्पिया! जहा चेव पउमनाभस्स रण्णो पुव्वसंगइएणं देवेणं दोवई देवी जंबुद्दीवाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ हत्थिणाउराओ नयराओ जुहिट्ठिलस्स रण्णो भवणाओ साहिया, तहा चेव दोवइं देविं धायईसंडाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ अवरकंकाओ रायहाणीओ पउमनाभस्स रण्णो भवणाओ हत्थिणाउरं साहरामि? उदाहु--पउमनाभं रायं सपुरबलवाहणं लवणसमुद्दे पक्खिवामि?

२४०. तब सुस्थित देव ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! जैसे राजा पद्मनाभ के पूर्व संगतिक देव ने जम्बुद्वीप-द्वीप भारतवर्ष, हस्तिनापुर नगर और राजा युधिष्ठिर के भवन से द्रौपदी देवी का संहरण किया, वैसे ही क्या मैं धातकीखण्ड द्वीप, भारतवर्ष, अवरकंका राजधानी और राजा पद्मनाभ के भवन से संहरण कर द्रौपदी देवी को हस्तिनापुर ले आऊँ अथवा पुर, बल, वाहन, आदि के साथ पद्मनाभ को लवणसमुद्र में डूबो दूं।

२४१. तए णं से कण्हे वासुदेवे सुट्ठियं देवं एवं वयासी--मा णं तुमं देवाणुप्पिया! जहा चेव पउमनाभस्स रण्णो पुव्वसंगइएणं देवेणं दोवई देवी जंबुद्दीवाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ हत्थिणाउराओ नयराओ जुहिट्ठिलस्स रण्णो भवणाओ साहिया, तहा चेव दोवइं देविं धायईसंडाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ अवरकंकाओ रायहाणीओ पउमनाभस्स रण्णो भवणाओ हत्थिणाउरं साहराहि। तुमं णं देवाणुप्पिया! मम लवणसमुद्दे पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठस्स छण्हं रहाणं मग्गं वियराहि। सयमेव णं अहं दोवईए कूवं गच्छामि।।

२४१. कृष्ण वासुदेव ने सुस्थित देव से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! जैसे राजा पद्मनाभ के पूर्वसंगतिक देव ने जम्बुद्वीप द्वीप, भारतवर्ष, हस्तिनापुर नगर और राजा युधिष्ठिर के भवन से द्रौपदी देवी का संहरण किया, वैसे ही धातकीखण्डद्वीप, भारतवर्ष, अवरकंका राजधानी और पद्मनाभ के भवन से द्रौपदी का संहरण मत करो। देवानुप्रिय ! तुम पांच पाण्डव और छट्ठा मैं--इन छहों के रथों को लवणसमुद्र में मार्ग दो। मैं स्वयं ही द्रौपदी की खोज के लिए जा रहा हूं।

२४२. तए णं से सुट्ठिए देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी--एवं होउ। पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठस्स छण्हं रहाणं लवणसमुद्दे मग्गं वियरइ।।

२४२. सुस्थित देव ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा--ऐसा ही हो। उसने पांच पाण्डवों और छट्ठे कृष्ण वासुदेव इन छहों के रथों को लवण-समुद्र में मार्ग दे दिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कण्हेण दूयपेसण-पदं

२४३. तए णं से कण्हे वासुदेवे चाउरंगिणिं सेणं पडिविसज्जेइ, पडिविसज्जेत्ता पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठे छहिं रहेहिं लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयइ, वीईवइत्ता जेणेव अवरकंका रायहाणी जेणेव अवरकंकाए रायहाणीए अग्गुज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रहं ठवेइ, ठवेत्ता दारुयं सारहिं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! अवरकंकं रायहाणिं अणुप्पविसाहि, अणुप्पविसित्ता पउमनाभस्स रण्णो वामेणं पाएणं पायपीढं अक्कमित्ता कुंतग्गेणं लेहं पणामेहि, पणामेत्ता तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे एवं वयाहि--हंभो पउमनाभा! अपत्थियपत्थिया! दुरंतपंतलक्खणा! हीणपुण्णचाउद्दसा! सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति-परिवज्जिया! अज्ज न भवसि। किण्णं तुमं न याणसि कण्हस्स वासुदेवस्स भगिणिं दोवइं देविं इहं हव्वमाणेमाणे? तं एवमवि गए पच्चप्पिणाहि णं तुमं दोवइं देविं कण्हस्स वासुदेवस्स अहव णं जुद्धसज्जे निग्गच्छाहि। एस णं कण्हे वासुदेवे पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठे दोवईए देवीए कूवं हव्वमागए।।

कृष्ण द्वारा दूत-प्रेषण-पद

२४३. कृष्ण वासुदेव ने चातुरंगिणी सेना को प्रतिविसर्जित किया। प्रतिविसर्जित कर पांच पाण्डव और छट्ठे स्वयं कृष्ण, छह रथों के साथ लवण-समुद्र के बीचोंबीच होते हुए चले। चलकर जहां अवरकंका राजधानी थी जहां अवरकंका राजधानी का प्रधान उद्यान था, वहां पहुंचे। पहुंचकर रथों को ठहराया। ठहराकर दारुक सारथि को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! तुम जाओ अवरकंका राजधानी में प्रवेश करो। प्रवेश कर राजा पद्मनाभ के पादपीठ को बाएं पांव से ठोकर लगाओ। भाले की नोक पर रख कर उसे यह लेख (पत्र) अर्पित करो। अर्पित कर त्रिवली युक्त भृकुटी को ललाट पर चढ़ाकर, क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित, चण्ड और क्रोध से जलते हुए इस प्रकार कहो--हंभो! पद्मनाभ! अप्रार्थित का प्रार्थी! दुरन्त-प्रान्त लक्षण! हीन पुण्य चातुर्दशिक। श्री-ह्री-धृति और कीर्ति से शून्य। आज तू नहीं रहेगा। क्या तू नहीं जानता तू कृष्ण वासुदेव की बाहिन' द्रौपदी देवी को यहां लाया है?, खैर! हुआ सो हुआ! या तो तू द्रौपदी देवी को कृष्ण वासुदेव को सौंप दे, अन्यथा युद्ध के लिए तैयार हो, बाहर निकल। पांच पाण्डवों के साथ छट्ठे स्वयं कृष्ण वासुदेव द्रौपदी देवी को लेने आ गये हैं।

२४४. तए णं से दारुए सारही कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता अवरकंकं रायहाणिं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव पउमनाभे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता एवं वयासी--एस णं सामी! मम विणयपडिवत्ती, इमा अण्णा मम सामिस्स समुहाणत्ति त्ति कट्टु आसुरुत्ते वामपाएणं पायपीढं अक्कमइ, अक्कमित्ता कुंतग्गेणं लेहं पणामेइ, पणामेत्ता तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे एवं वयासी--हंभो पउमनाभा! अपत्थियपत्थिया! दुरंतपंतलक्खणा! हीणपुण्णचउद्दसा! सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति-परिवज्जिया! अज्ज न भवसि। किण्णं तुमं न याणासि कण्हस्स वासुदेवस्स भगिणिं दोवइं देविं इहं हव्वमाणेमाणे? तं एवमवि गए पच्चप्पिणाहि णं तुमं दोवइं देविं कण्हस्स वासुदेवस्स अहव णं जुद्धसज्जे निग्गच्छाहि। एस णं कण्हे वासुदेवे पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठे दोवईए देवीए कूवं हव्वमागए।।

२४४. दारुक सारथी ने कृष्ण वासुदेव के ऐसा कहने पर हृष्ट-तुष्ट हो आदेश को स्वीकार किया। स्वीकार कर अवरकंका राजधानी में प्रवेश किया। प्रवेश कर जहां पद्मनाभ था, वहां आया। वहां आकर दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर जय-विजय की ध्वनि से वर्धापित किया। वर्धापन कर इस प्रकार बोला--स्वामिन्! यह मेरी विनय प्रतिपत्ति है। मेरे स्वामी ने अपने मुख से जो आज्ञा दी है वह इससे भिन्न है। यह कहकर उसने क्रोध से तमतमाते हुए अपने बांए पांव से उसके पादपीठ को ठोकर लगायी। ठोकर लगाकर भाले की नोक पर रखकर कृष्ण का लेख दिया। लेख देकर त्रिवली युक्त भृकुटी को ललाट पर चढ़ाकर, रुष्ट, कुपित, चण्ड और क्रोध से जलते हुए इस प्रकार बोला-हंभो! पद्मनाभ! अप्रार्थित का प्रार्थी! दुरन्त-प्रान्त-लक्षण! हीन पुण्य चातुर्दशिक! श्री-ह्री-धृति और कीर्ति से शून्य। आज तू नहीं रहेगा। क्या तू नहीं जानता तू कृष्ण वासुदेव की भगिनी द्रौपदी देवी को यहां लाया है? खैर! हुआ सो हुआ। या तो तू द्रौपदी देवी को कृष्ण वासुदेव को सौंप दे, अन्यथा युद्ध के लिए तैयार हो, बाहर निकल। पांच पाण्डवों के साथ छट्ठे स्वयं कृष्ण वासुदेव द्रौपदी देवी को लेने आ गये हैं।

पउमनाभेण दूयस्स अवमाण-पदं

२४५. तए णं से पउमनाभे दारुएणं सारहिणा एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे तिवलिं भिउडिं निडाले

पद्मनाभ द्वारा दूत का अपमान-पद

२४५. दारुक सारथी के ऐसा कहने पर पद्मनाभ क्रोध से तमतमा उठा। वह रुष्ट, कुपित, चण्ड और क्रोध से जलता हुआ त्रिवली युक्त भृकुटी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहट्टु एवं वयासी--णप्पिणामि णं अहं देवाणुप्पिया! कण्हस्स वासुदेवस्स दोवइं। एस णं अहं सयमेव जुज्झसज्जे निग्गच्छामि त्ति कट्टु दारुयं सारहिं एवं वयासी--केवलं भो! रायसत्थेसु दूए अवज्झे त्ति कट्टु असक्कारिय असम्माणिय अवदारेणं निच्छुभावेइ।।

को ललाट पर चढ़ाकर इस प्रकार बोला--देवानुप्रिय! मैं कृष्ण वासुदेव को द्रौपदी नहीं दूंगा। यह लो मैं स्वयं ही युद्ध के लिए तैयार होकर बाहर निकलता हूं--यह कहकर वह दारुक सारथी से इस प्रकार बोला--हे दूत! राजनीति-शास्त्र में केवल दूत अवध्य है--ऐसा कहकर उसे असत्कृत-असम्मानित कर पार्श्वद्वार से बाहर निकलवा दिया।

दूयस्स पुणो आगमण-पदं

२४६. तए णं से दारुए सारही पउमनाभेणं रण्णा असक्कारिय असम्माणिय अवदारेणं निच्छूढे समाणे जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं, वद्धावेइ, वद्धावेत्ता कण्हं वासुदेवं एवं वयासी--एवं खलु अहं सामी! तुब्भं वयणेणं अवरकंकं रायहाणिं गए जाव अवदारेणं निच्छुभावेइ।।

दूत का पुनः आगमन-पद

२४६. पद्मनाभ के द्वारा असत्कृत-असम्मानित कर पार्श्वद्वार से निकाल दिये जाने पर वह दारुक सारथी जहां कृष्ण वासुदेव थे, वहां आया। वहां आकर सटे हुए दस नखों वाली दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर जय-विजय की ध्वनि से वर्धापन किया। वर्धापन कर कृष्ण-वासुदेव से इस प्रकार बोला--स्वामिन्! मैं तुम्हारे वचन से अवरकंका राजधानी गया। यावत् मुझे पार्श्वद्वार से निकलवा दिया गया।

पउमनाभस्स पंडवेहिं जुद्ध-पदं

२४७. तए णं से पउमनाभे बलवाउयं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह।

तयाणंतरं च णं छेयायरिय-उवदेस-मइ-कप्पणा- विकप्पेहिं सुणिउणेहिं उज्जलणेवत्थि-हव्व-परिवत्थियं सुसज्जं जाव आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेइ, पडिकप्पेत्ता उवणेति।।

पद्मनाभ का पाण्डवों के साथ युद्ध-पद

२४७. पद्मनाभ ने सेनानायक को बुलाया। उसे बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! आभिषेक्य हस्तिरत्न को शीघ्र सुसज्जित करो।

तदनन्तर उसने कलाचार्यों के उपदेश से उत्पन्न मति की नाना कल्पनाओं से युक्त हस्ति-सज्जा में निपुण व्यक्तियों द्वारा निर्मल नेपथ्य समूह से परिवस्त्रित और सुसज्जित यावत् आभिषेक्य हस्तिरत्न को तैयार किया। तैयार कर पद्मनाभ के पास लाया।

२४८. तए णं से पउमनाभे? सण्णद्ध-बद्ध-वम्मिय-कवए उप्पीलिय-सरासण-पट्टिए पिणद्ध-गेविज्जे आविद्ध-विमल-वरचिंध-पट्टे गहियाउह-पहरणे आभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरुहइ, दुरुहित्ता हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे महयाभड-चडगर-रह-पहकर-विंदपरिक्खित्ते जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।।

२४८. पद्मनाभ ने सन्नद्ध-बद्ध हो कवच पहना। धनुषपट्टी को बांधा। गले में ग्रीवा रक्षक उपकरण पहने। विमल और प्रवर चिह्न पट्ट बांधा तथा हाथों में आयुध और प्रहरण लिया। उसके पश्चात् वह आभिषेक्य हस्तिरत्न पर आरूढ़ हुआ। आरूढ़ होकर अश्व, गज, रथ और प्रवर पदाति योद्धाओं से कलित चातुरंगिणी सेना के साथ उससे परिवृत हो, महान सुभटों की विभिन्न टुकड़ियों रथों एवं पथदर्शक पुरुषों के समूह से परिवृत हो, जहां कृष्ण वासुदेव थे, वहां जाने का संकल्प किया।

२४९. तए णं से कण्हे वासुदेवे पउमनाभं रायं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता ते पंच पंडवे एवं वयासी--हंभो दारगा! किण्णं तुब्भे पउमनाभेणं सद्धिं जुज्झिहिह उदाहु पेच्छिहिह?

२४९. कृष्ण वासुदेव ने राजा पद्मनाभ को आते हुए देखा। देखकर उन पांचों पाण्डवों से इस प्रकार कहा--हं भो! पुत्रो! तुम पद्मनाभ के साथ लड़ोगे या देखोगे।

२५०. तए णं ते पंच पंडवा कण्हं वासुदेवं एवं वयासी--अम्हे णं सामी! जुज्झामो, तुब्भे पेच्छह।।

२५०. वे पांचों पाण्डव कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार बोले--स्वामिन्! हम लड़ते हैं, तुम देखो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५१. तए णं ते पंच पंडवा सण्णद्ध-बद्ध-वम्मिय-कवया उप्पीलिय-सरासण-पट्टिया पिणद्ध-गेविज्जा आविद्ध-विमल- वरचिंधपट्टा गहियाउह-पहरणा रहे दुरुहंति, दुरुहित्ता जेणेव पउमनाभे राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता एवं वयासी-अम्हे वा पउमनाभे वा राय त्ति कट्टु पउमनाभेणं सद्धिं संपलग्गा यावि होत्था।।

२५१. पांचों पाण्डवों ने सन्नद्ध बद्ध हो कवच पहने। धनुषपट्टी को बांधा। गले में ग्रीवा रक्षक उपकरण पहने। विमल और प्रवर चिह्न पट्ट बांधे तथा हाथों में आयुध और प्रहरण लिए। उसके पश्चात् रथ पर आरुढ़ हुए। आरूढ़ होकर जहां पद्मनाभ राजा था, वहां आए। वहां आकर इस प्रकार बोले--या तो हम रहेंगे या राजा पद्मनाभ रहेगा--यह कहकर वे पद्मनाभ के साथ युद्ध करने लगे।

पंडवाणं पराजय-पदं

२५२. तए णं से पउमनाभे राया ते पंच पंडवे खिप्पामेव हय-महिय-पवरवीर-घाइय-विवडियचिंध-धय-पडागे किच्छोवगयपाणे दिसोदिसिं पडिसेहेइ।।

पाण्डवों का पराजय-पद

२५२. पद्मनाभ राजा ने उन पांचों पाण्डवों को शीघ्र ही हत-मथित कर दिया। उनके प्रवर वीरों को यमधाम पहुंचा दिया। सेना के चिह्न-ध्वजाएं और पताकाएं गिर गयी। उनके प्राण संकट में पड़ गये और सब दिशाओं से उनके प्रहारों को विफल कर दिये।

२५३. तए णं ते पंच पंडवा पउमनाभेणं रण्णा हय-महिय-पवर वीर-घाइय-विवडिय-चिंध-धय-पडागा किच्छोवगयपाणा दिसोदिसिं पडिसेहिया समाणा अत्थामा अबला अवीरिया अपुरिसक्कारपरक्कमा अधारणिज्जमिति कट्टु जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छंति।।

२५३. जब वे पांचों पाण्डव पद्मनाभ राजा द्वारा हत मथित हो गये। उनके प्रवर वीरों को यमधाम पहुंचा दिया। सेना के चिह्न-ध्वजाएं और पताकाएं गिर गई। उनके प्राण संकट में डाल दिए और सब दिशाओं से उनके प्रहार विफल हो गये, तब वे शक्तिहीन, बलहीन तथा पुरुषकार और पराक्रम में हीन हो गये। अब (रण भूमि में डटे रहना) शक्य नहीं है--ऐसा सोचकर वे जहां कृष्ण वासुदेव थे वहां आए।

कण्हेण पराजय-हेउ-कहणपुव्वं जुज्झ-पदं

२५४. तए णं से कण्हे वासुदेवे ते पंचपंडवे एवं वयासी--कहण्णं तुब्भे देवाणुप्पिया! पउमनाभेणं रण्णा सद्धिं संपलग्गा?

कृष्ण द्वारा पराजय-हेतु कथनपूर्वक युद्ध-पद

२५४. कृष्ण वासुदेव ने उन पांचों पाण्डवों से इस प्रकार पूछा--देवानुप्रिय! तुमने राजा पद्मनाभ के साथ युद्ध कैसे किया?

२५५. तए णं ते पंच पंडवा कण्हं वासुदेवं एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हे तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा सण्णद्ध-बद्ध-वम्मिय-कवया रहे दुरुहामो, दुरुहेत्ता जेणेव पउमनाभे तेणेव उवागच्छामो, उवागच्छित्ता एवं वयामो--अम्हे वा पउमनाभे वा रायत्ति कट्टु पउमनाभेणं सद्धिं संपलग्गा। तए णं से पउमनाभे राया अम्हं खिप्पामेव हय-महिय-पवरवीर-घाइय-विवडिय-चिंध-धय-पडागे किच्छोवगयपाणे दिसोदिसिं पडिसेहेइ।।

२५५. वे पांचों पाण्डव कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार बोले--देवानुप्रिय! तुम से अनुज्ञा प्राप्त कर हम सन्नद्ध बद्ध हो कवच पहन, रथ पर आरूढ़ हुए। आरूढ़ होकर जहां पद्मनाभ था वहां आए। वहां आकर हम इस प्रकार बोले--या तो हम रहेंगे या राजा पद्मनाभ रहेगा--यह कहकर हम उसके साथ युद्ध करने लगे। उस पद्मनाभ राजा ने हमें शीघ्र ही हत-मथित कर दिया। हमारे प्रवर वीरों को यमधाम पहुंचा दिया। सेना के चिह्न-ध्वजाओं और पताकाओं को गिरा दिया। हमारे प्राण संकट में डाल दिए और सब दिशाओं से हमारे प्रहारों को विफल कर दिया।

२५६. तए णं से कण्हे वासुदेवे ते पंच पंडवे एवं वयासी--जइ णं तुब्भे देवाणुप्पिया! एवं वयंता-अम्हे णो पउमनाभे रायत्ति कट्टु पउमनाभेणं सद्धिं संपलग्गंता तो णं तुब्भे नो पउमनाभे हय-महिय-पवरवीर-घाइय-विवडियचिंध-धय-पडागे किच्छोवगयपाणे दिसोदिसिं पडिसेहित्था। तं पेच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! अहं णो पउमनाभे रायत्ति कट्टु पउमनाभेणं रण्णा

२५६. कृष्ण वासुदेव ने उन पांचों पाण्डवों से इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! यदि तुम इस प्रकार कहते--हम रहेंगे पद्मनाभ राजा नहीं रहेगा--यह कह कर युद्ध करने लगते तो राजा पद्मनाभ तुम्हें इस प्रकार हत-मथित कर, प्रवर वीरों को यमधाम पहुंचा, सेना के चिह्न-ध्वजाओं और पताकाओं को गिरा, तुम्हारे प्राण संकट में डाल, सब दिशाओं से तुम्हारे प्रहारों को विफल नहीं कर पाता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सद्धिं जुज्झामि (त्ति?) रहं दुरुहइ, दुरुहित्ता जेणेव पउमनाभे राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सेयं गोखीरहार-धवलं तणसोल्लिय-सिंदुवार-कुंदेंदुसण्णिगासं नियगस्स बलस्स हरिस-जणणं रिउसेण्ण-विणासणकरं पंचजण्णं संखं परामुसइ, परामुसित्ता मुहवायपूरियं करेइ।।

देवानुप्रियो! तुम देखो। मैं रहूंगा, पद्मनाभ राजा नहीं रहेगा। यह कह कर मैं राजा पद्मनाभ के साथ युद्ध करता हूं--यह कहकर वे रथ पर आरूढ़ हुए। आरूढ़ होकर जहां राजा पद्मनाभ था, वहां आए। वहां आकर श्वेत गोक्षीर धारा के समान धवल, मल्लिका, सिन्दुवार, कुन्द-पुष्प और चन्द्र जैसी प्रभा वाला तथा अपनी सेना में हर्ष उत्पन्न करने वाला और शत्रुसेना का विनाश करने वाला पाञ्चजन्य शंख हाथ में लिया। हाथ में लेकर उसे मुखवात से पूरित किया।

२५७. तए णं तस्स पउमनाभस्स तेणं संखसद्देणं बल-तिभाए हय-महिय-पवरवीर-घाइय-विवडियचिंध-धय-पडागे किच्छोवगयपाणे दिसोदिसिं पडिसेहिए।।

२५७. उस शंख के शब्द से पद्मनाभ की सेना का एक तिहाई भाग हत-मथित हो गया। उसके प्रवर वीर यमधाम पहुंच गये। सेना के चिह्न-ध्वजाएं पताकाएं गिर गयी। उसके प्राण संकट में पड़ गये। सब दिशाओं से उसके प्रहार विफल हो गये।

२५८. तए णं से कण्हे वासुदेवे
अइरुग्गयबालचंद-इंदधणु- सण्णिगासं,
वरमहिस-दरिय-दप्पिय-दढघणसिंगग्गरइयसारं,
उरगवर-पवरगवल-पवरपरहुय-भमरकुल-नीलि-निद्ध-धंत-धोय-पट्टं,
निउणोविय-मिसिमिसिंत-मणिरयण-घंटियाजालपरिक्खित्तं,
तडितरुणकिरण-तवणिज्जबद्धचिंधं,
दद्दरमलयगिरिसिहर-केसरचामरवाल-अद्धचंदचिंधं,
काल-हरिय-रत्त-पीय-सुक्किल-बहुण्हारुणि-संपिणद्धजीवं,
जीवियंतकरं धणुं परामुसइ, परामुसित्ता धणुं पूरेइ, पूरेत्ता धणुसद्दं करेइ।।

२५८. कृष्ण वासुदेव ने अचिरोदित बाल चन्द्रमा और इन्द्र धनुष जैसा, प्रवर महिष के दृप्त, दर्पित, दृढ़ और सघन शृंग के अग्रभाग से रचित सार वाला, प्रवर उरग, प्रवर महिष, प्रवर कोकिल और भ्रमर कुल के समान नील, स्निग्ध और निर्मल पट्टे वाला, निपुण शिल्पियों द्वारा परिकर्मित, देदीप्यमान मणि-रत्नों की घंटिकाओं से परिवेष्टित, बिजली जैसी चमकती तरुण किरणों वाले तपनीय से चिह्नित, दर्दर और मलय पर्वत के शिखरों पर होने वाले सिंह स्कन्ध और चमरी गौ के बालों तथा अर्ध चन्द्रों से चिह्नित, कृष्ण, हरित, रक्त, पीत, शुक्ल आदि नाना प्रकार के स्नायुओं से सन्निबद्ध प्रत्यञ्चा वाला और प्राणान्तकर धनुष उठाया। उठाकर धनुष पर बाण चढाया। चढाकर धनु:शब्द (धनुषटंकार) किया।

२५९. तए णं तस्स पउमनाभस्स दोच्चे बल-तिभाए तेणं धणुसद्देणं हय-महिय पवरवीर-घाइय-विवडियचिंध-धय-पडागे किच्छोवगयपाणे दिसोदिसिं पडिसेहिए।।

२५९. उस धनुष के शब्द से पद्मनाभ की सेना का दूसरा एक तिहाई भाग हत-मथित हो गया। उसके प्रवर वीर यमधाम पहुंच गये। सेना के चिह्न-ध्वजाएं औरं पताकाएं गिर गयी। उसके प्राण संकट में पड़ गये। सब दिशाओं से उसके प्रहार विफल हो गये।

पउमनाभस्स पलायण-पदं

२६०. तए णं से पउमनाभे राया तिभागबलावसेसे अत्थामे अबले अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कमे अधारणिज्जमिति कट्टु सिग्घं तुरियं चवलं चंडं जइणं वेइयं जेणेव अवरकंका तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अवरकंकं रायहाणिं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता बाराइं पिहेइ, पिहेत्ता रोहासज्जे चिट्ठइ।।

पद्मनाभ का पलायन-पद

२६०. जब राजा पद्मनाभ की सेना का एक-तिहाई भाग ही अवशेष रह गया। तब वह शक्तिहीन, बलहीन, वीर्यहीन, पुरुषार्थ और पराक्रम से हीन हो गया। अब रण-भूमि में डटे रहना अशक्य है--यह सोचकर वह शीघ्र, त्वरित, चपल, चण्ड, जयी और वेगपूर्ण गति से जहां अवरकंका थी वहां आया। आकर अवरकंका राजधानी में प्रविष्ट हुआ। प्रविष्ट होकर द्वार बन्द कर लिए। द्वार बन्द कर घेरा डालकर बैठ गया।

कण्हस्स नरसिंहरूव-पदं

२६१. तए णं से कण्हे वासुदेवे जेणेव अवरकंका तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रहं ठवेइ, ठवेत्ता रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता

कृष्ण का नरसिंह रूप-पद

२६१. कृष्ण वासुदेव जहां अवरकंका थी वहां आए। वहां आकर रथ को ठहराया। ठहराकर रथ से उतरे। उतरकर वैक्रिय समुद्धात से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ एगं महं नरसीहरूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता महया-महया सद्देणं पायदद्दरियं करेइ।।

समवहत हुए। एक महान नरसिंह रूप की विक्रिया की। विक्रिया कर उच्च स्वर से धरती पर पादघात किया।

२६२. तए णं कण्हेणं वासुदेवेणं महया-महया सद्देणं पायदद्दरएणं कएणं समाणेणं अवरकंका रायहाणी संभग्ग-पागार- गोउरट्टालय-चरिय-तोरण-पल्हत्थिय-पवरभवण-सिरिघरा सरसरस्स धरणियले सण्णिवइया।।

२६२. कृष्ण वासुदेव द्वारा उच्च स्वर से धरती पर पादघात करने से अवरकंका राजधानी के प्राकार, गोपुर, अट्टालक, चरिका, तोरण और प्रकीर्ण रूप में स्थित सुन्दर-भवन और श्रीगृह संभग्न और 'सरसर' शब्द के साथ धराशायी हो गये।

पउमनाभस्स सरण-पदं

२६३. तए णं से पउमनाभे राया अवरकंकं रायहाणिं संभग्ग-पागार-गोउराट्टालय-चरिय-तोरण-पल्हत्थिय पवरभवण-सिरिघरं सरसरस्स धरणियले सण्णिवइयं पासित्ता भीए दोवइं देविं सरणं उवेइ।।

पद्मनाभ का शरण-पद

२६३. राजा पद्मनाभ ने अवरकंका राजधानी के प्राकार, गोपुर, अट्टालक, चरिका, तोरण और प्रकीर्ण रूप में स्थित सुन्दर भवन और श्रीगृह को संभग्न और सरसर शब्द के साथ धराशायी हुए देखा। देखकर वह भयभीत हो द्रौपदी देवी की शरण में आ गया।

२६४. तए णं सा दोवई देवी पउमनाभं रायं एवं वयासी--किण्णं तुमं देवाणुप्पिया! न जाणसि कण्हस्स वासुदेवस्स उत्तमपुरिसस्स विप्पियं करेमाणे? ममं इहं हव्वमाणेमाणे तं एवमवि गए गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिया! ण्हाए उल्लपडसाडए ओचूलगवत्थनियत्थे अंतेउर-परियालसंपरिवुडे अग्गाइं वराइं रयणाइं गहाय ममं पुरओ काउं कण्हं वासुदेवं करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु पायवडिए सरणं उवेहि। पणिवइय-वच्छला णं देवाणुप्पिया! उत्तमपुरिसा।।

२६४. द्रौपदी देवी ने राजा पद्मनाभ से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! उत्तम पुरुष कृष्ण वासुदेव का विप्रिय करते हुए और मुझे यहां लाते हुए क्या इसका परिणाम नहीं जानते थे? खैर, हुआ सो हुआ। देवानुप्रिय! तुम जाओ। स्नान कर, गीला पट-शाटक और नीचे लटकता हुआ परिधान पहन, अन्तःपुर परिवार से परिवृत हो, प्रधान, प्रवर रत्न ले, मुझे आगे कर, सटे हुए दस नखों वाली दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर, वासुदेव कृष्ण के चरणों में गिरकर, उनकी शरण में जाओ। देवानुप्रिय! उत्तम पुरुष शरणागत-वत्सल होते हैं।

२६५. तए णं से पउमनाभे दोवईए देवीए एवं वुत्ते समाणे ण्हाए उल्लपडसाडए ओचूलगवत्थनियत्थे अंतेउर-परियालसंपरिवुडे अग्गाइं वराइं रयणाइं गहाय दोवइं देविं पुरओ काउं कण्हं वासुदेवं करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु पायवडिए सरणं उवेइ, उवेत्ता एवं वयासी--दिट्ठा णं देवाणुप्पियाणं इड्ढी जुई जसो बलं वीरियं पुरिसक्कार-परक्कमे। तं खामेमि णं देवाणुप्पिया! खमंतु णं देवाणुप्पिया! खंतुमरहंति णं देवाणुप्पिया! नाइ भुज्जो एवंकरणयाए त्ति कट्टु पंजलिउडे पायवडिए कण्हस्स वासुदेवस्स दोवइं देविं साहत्थिं उवणेइ।।

२६५. द्रौपदी देवी के ऐसा कहने पर राजा पद्मनाभ स्नान कर, गीला पट-शाटक और नीचे लटकता हुआ परिधान पहन, अन्तःपुर परिवार से परिवृत हो, प्रधान प्रवर रत्न ले, द्रौपदी देवी को आगे कर, सटे हुए दस नखों वाली दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर वासुदेव कृष्ण के चरणों में गिरकर उनकी शरण में चला गया। उनकी शरण स्वीकार कर वह इस प्रकार बोला--देवानुप्रिय! मैंने तुम्हारी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम देख लिया है। अतः देवानुप्रिय! मैं क्षमायाचना करता हूं। देवानुप्रिय! आप मुझे क्षमा करें। देवानुप्रिय! आप ही क्षमा कर सकते हैं। मैं पुनः ऐसा नहीं करूंगा--यह कहकर उसने प्राञ्जलि-पुट हो चरणों में गिरकर द्रौपदी देवी को कृष्ण वासुदेव के हाथों में सौंप दिया।

सदोवई-पंडवस्स कण्हस्स पच्चावट्टण-पदं

२६६. तए णं से कण्हे वासुदेवे पउमनाभं एवं वयासी--हंभो पउमनाभा! अपत्थियपत्थिया! दुरंतपंतलक्खणा! हीणपुण्णचाउद्दसा! सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति-परिवज्जिया! किण्णं तुमं न जाणसि मम

द्रौपदी और पाण्डवों सहित कृष्ण का प्रत्यावर्तन-पद

२६६. कृष्ण वासुदेव ने पद्मनाभ से इस प्रकार कहा--हं भो पद्मनाभ! अप्रार्थित का प्रार्थी! दुरन्त-प्रान्त-लक्षण! हीनपुण्य चातुर्दशिक! श्री-ह्री-धृति और कीर्ति से शून्य! मेरी बहिन द्रौपदी देवी को यहां लाता हुआ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगिणिं दोवइं देविं इहं हव्वमाणेमाणे? तं एवमवि गए नत्थि? ते ममाहिंतो इयाणिं भयमत्थि? त्ति कट्टु पउमनाभं पडिविसज्जेइ, दोवइं देविं गेण्हइ, गेण्हित्ता रहं दुरुहेइ, दुरुहित्ता जेणेव पंच पंडवा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंचण्हं पंडवाणं दोवइं देविं साहत्थिं उवणेइ।।

तू क्या इसका परिणाम नहीं जानता था? ऐसा कार्य करते हुए क्या तू ड़रा नहीं? अब तू मुझसे डर रहा है। ऐसा कहकर उसने पद्मनाभ को प्रतिविसर्जित किया। द्रौपदी देवी को लिया। लेकर रथ पर बैठे। बैठकर जहां पांचों पाण्डव थे, वहां आए। वहां आकर द्रौपदी देवी को पांचों पाण्डवों के हाथों में सौंपा।

२६७. तए णं से कण्हे वासुदेवे पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठे छहिं रहेहिं लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं जेणेव जंबुद्दीवे दीवे जेणेव भारहे वासे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।।

२६७. कृष्ण वासुदेव ने पांच पाण्डव और छट्ठे स्वयं--छहों के रथों के साथ लवणसमुद्र के बीचोंबीच होते हुए, जहां जम्बूद्वीप द्वीप था और जहां भारतवर्ष था, उधर प्रस्थान किया।

वासुदेव-जुयलस्स संखसद्देण मिलण-पदं

२६८. तेणं कालेणं तेणं समएणं धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे भारहे वासे चंपा नामं नयरी होत्था। पुण्णभद्दे चेइए।।

२६९. तत्थ णं चंपाए नयरीए कविले नामं वासुदेवे राया होत्था--महताहिमवंतमहंत-मलय-मंदर-महिंदसारे वण्णओ।।

२७०. तेणं कालेणं तेणं समएणं मुणिसुव्वए अरहा चंपाए पुण्णभद्दे समोसढे। कविले वासुदेवे धम्मं सुणेइ।।

२७१. तए णं से कविले वासुदेवे मुणिसुव्वयस्स अरहओ अंतिए धम्मं सुणेमाणे कण्हस्स वासुदेवस्स संखसद्दं सुणेइ।।

२७२. तए णं तस्स कविलस्स वासुदेवस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--किमण्णे धायइसंडे दीवे भारहे वासे दोच्चे वासुदेवे समुप्पण्णे, जस्स णं अयं संखसद्दे ममं पिव मुहवायपूरिए वियंभइ? कविला वासुदेवा भद्दाइ! मुणिसुव्वए अरहा कविलं वासुदेवं एवं वयासी--से नूणं कविला वासुदेवा! ममं अंतिए धम्मं निसामेमाणस्स (ति?) संखसद्दं आकण्णित्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--किमण्णे धायइसंडे दीवे भारहे वासे दोच्चे वासुदेवे समुप्पण्णे, जस्स णं अयं संखसद्दे ममं पिव मुहवायपूरिए वियंभइ? से नूणं कविला वासुदेवा! अट्ठे समट्ठे?

हंता! अत्थि। तं नो खलु कविला! एवं भूयं वा भव्वं वा भविस्सं वा जण्णं एगखेत्ते एगजुगे एगसमए णं दुवे अरहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा।

एवं खलु वासुदेवा! जंबुद्दीवाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ हत्थिणाउराओ नयराओ पंडुस्स रण्णो सुण्हा पंचण्हं पंडवाणं भारिया दोवई देवी तव पउमनाभस्स रण्णो पुव्वसंगइएणं देवेणं अवरकंकं

वासुदेव युगल का शंख-शब्द से मिलन-पद

२६८. उस काल और उस समय धातकीखण्ड द्वीप और पूर्व दिशावर्ती अर्द्ध भारतवर्ष में चम्पा नाम की नगरी थी। पूर्णभद्र चैत्य था।

२६९. उस चम्पा नगरी में कपिल नाम का वासुदेव राजा था। वह महान हिमालय, महान मलय, मेरु और महेन्द्र पर्वत के समान उन्नत था। वर्णक!

२७०. उस काल और उस समय मुनिसुव्रत अर्हत् चम्पा के पूर्णभद्र चैत्य में समवसृत हुए। कपिल वासुदेव ने धर्म सुना।

२७१. कपिल वासुदेव ने अर्हत् मुनिसुव्रत के पास धर्म सुनते हुए कृष्ण वासुदेव के शंख का शब्द सुना।

२७२. उस कपिल वासुदेव के मन में इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ। क्या धातकीखण्ड द्वीप भारतवर्ष में दूसरा वासुदेव उत्पन्न हो गया है? जिसका यह शंख शब्द ऐसा लगता है, मानो मैंने ही अपने मुखवात से पूरित किया हो।

भद्र कपिल वासुदेव! अर्हत् मुनिसुव्रत ने कपिल वासुदेव से इस प्रकार कहा--कपिल वासुदेव! मेरे पास धर्म सुनते हुए तेरे मन में शंख का शब्द सुनकर इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--क्या धातकीखण्ड द्वीप भारतवर्ष में दूसरा वासुदेव उत्पन्न हो गया है? जिसका यह शंख शब्द ऐसा लगता है, मानो मैंने ही अपने मुखवात से पूरित किया हो।

कपिल वासुदेव! क्या यह अर्थ समर्थ है?

हां है।

इसलिए कपिल! ऐसा न कभी हुआ है, न होता है और न होगा कि एक क्षेत्र में, एक युग में, एक समय में दो अर्हत्, दो चक्रवर्ती, दो बलदेव अथवा दो वासुदेव उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं अथवा उत्पन्न होंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नयरिं साहरिया। तए णं से कण्हे वासुदेवे पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठे छहिं रहेहिं अवरकंकं रायहाणिं दोवईए देवीए कूवं हव्वमागए। तए णं तस्स कण्हस्स वासुदेवस्स पउमनाभेणं रण्णा सद्धिं संगामं संगामेमाणस्स अयं संखसद्दे तव मुहवायपूरिए इव वियंभइ।।

वासुदेव! जम्बूद्वीप द्वीप भारतवर्ष और हस्तिनापुर नगर से, पाण्डु राजा की पुत्रवधू और पांच पाण्डवों की भार्या द्रौपदी देवी का तुम्हारे पद्मनाभ राजा के पूर्वसांगतिक देव ने अवरकंका में संहरण कर लिया। तब कृष्ण वासुदेव पांच पाण्डवों और छठे स्वयं छह रथों के साथ, शीघ्र ही द्रौपदी देवी को लेने के लिए अवरकंका आये हैं। अत: उस पद्मनाभ राजा के साथ संग्राम करते हुए कृष्ण वासुदेव का यह शंख शब्द तुझे ऐसा लगता है, मानो स्वयं तूने ही अपने मुखवात से पूरित किया हो।

२७३. तए णं से कविले वासुदेवे मुणिसुव्वयं अरहं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--गच्छामि णं अहं भंते! कण्हं वासुदेवं उत्तमपुरिसं सरिसपुरिसं पासामि।।

२७३. कपिल वासुदेव ने अर्हत् मुनिसुव्रत को वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार कहा--भन्ते मैं जाता हूं और मेरे ही सदृश पुरुष, उत्तम पुरुष कृष्ण वासुदेव को देखता हूं।

२७४. तए णं मुणिसुव्वए अरहा कविलं वासुदेवं एवं वयासी--नो खलु देवाणुप्पिया! एवं भूयं वा भव्वं वा भविस्सं वा जण्णं अरहंता वा अरहंतं पासंति, चक्कवट्टी वा चक्कवट्टिं पासंति, बलदेवा वा बलदेवं पासंति, वासुदेवा वा वासुदेवं पासंति। तहवि य णं तुमं कण्हस्स वासुदेवस्स लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयमाणस्स सेयापीयाइं धयग्गाइं पासिहिसि।।

२७४. अर्हत् मुनिसुव्रत ने कपिल वासुदेव से इस प्रकार कहा--देवानुप्रिय! ऐसा न कभी हुआ है, न होता है और न होगा कि अर्हत् अर्हत् को देखें। चक्रवर्ती चक्रवर्ती को देखें। बलदेव बलदेव को देखें। वासुदेव वासुदेव को देखें। तथापि तू लवण-समुद्र के बीचोंबीच गुजरते हुए कृष्ण वासुदेव की श्वेत-पीत ध्वजाओं के अग्र भाग को देख सकेगा।

२७५. तए णं से कविले वासुदेवे मुणिसुव्वयं अरहं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता हत्थिखंधं दुरुहइ, दुरुहित्ता सिग्घं तुरियं चवलं चंडं जइणं वेइयं जेणेव वेलाउले तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कण्हस्स वासुदेवस्स लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयमाणस्स सेयापीयाइं धयग्गाइं पासइ, पासित्ता एवं वयइ--एस णं मम सरिसपुरिसे उत्तमपुरिसे कण्हे वासुदेवे लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयइ त्ति कट्टु पंचयण्णं संखं परामुसइ, परामुसित्ता मुहवाय-पूरियं करेइ।।

२७५. कपिल वासुदेव ने अर्हत् मुनिसुव्रत को वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर हस्तिस्कन्ध पर आरूढ़ हुआ। आरूढ़ हो कर शीघ्र, त्वरित, चपल, चण्ड, जयी और वेगपूर्ण गति से जहां समुद्र तट था वहां आया। आकर लवणसमुद्र के बीचोंबीच गुजरते हुए कृष्ण वासुदेव की श्वेत-पीत ध्वजाओं के अग्रभाग को देखा। ध्वजाओं के अग्रभाग को देखकर वह इस प्रकार बोला--ये मेरे सदृश पुरुष, उत्तम पुरुष वासुदेव कृष्ण लवणसमुद्र के बीचोंबीच होकर जा रहे हैं--यह कहकर उसने अपना पाञ्चजन्य शंख उठाया। उठाकर मुखवात से पूरित किया।

२७६. तए णं से कण्हे वासुदेवे कविलस्स वासुदेवस्स संखसद्दं आयण्णेइ, आयण्णेत्ता पंचयण्णं संखं परामुसइ, परामुसित्ता मुहवाय-पूरियं करेइ।।

२७६. कृष्ण वासुदेव ने कपिल वासुदेव के शंख का शब्द सुना। सुनकर उन्होंने भी अपना पांचजन्य शंख उठाया और मुखवात से पूरि[illegible] किया।

२७७. तए णं दोवि वासुदेवा संखसद्द-सामायारिं करेंति।।

२७७. तब दोनों ही वासुदेवों ने शंखध्वनि समाचारी की।

कविलेण पउमनाभस्स निव्वासण-पदं

२७८. तए णं से कविले वासुदेवे जेणेव अवरकंका रायहाणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अवरकंकं रायहाणिं संभग्ग-पागार-गोउरट्टालय-चरिय-तोरण-पल्हत्थिय-पवरभवण-सिरिघरं सरसरस्स धरणियले सण्णिवइयं पासइ, पासित्ता पउमनाभं एवं वयासी--

कपिल द्वारा पद्मनाभ का निर्वासन-पद

२७८. कपिल वासुदेव जहां अवरकंका राजधानी थी, वहां आया। वहां आकर उसने अवरकंका राजधानी के प्राकार, गोपुर, अट्टालक, चरिका, तोरण, प्रकीर्ण रूप में स्थित सुन्दर-भवन और श्रीगृह को संभग्न और सरसर शब्द के साथ धराशायी हुआ देखा। देखकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किण्णं देवाणुप्पिया! एसा अवरकंका रायहाणी संभग्ग-पागार-गोउराट्टालय-चरिय-तोरण-पल्हत्थिय पवरभवण-सिरिघरा सरसरस्स धरणियले सण्णिवइया?

पद्मनाभ से इस प्रकार बोला--देवानुप्रिय! अवरकंका राजधानी के प्राकार, गोपुर, अट्टालक, चरिका, तोरण, प्रकीर्ण रूप में स्थित सुन्दर भवन और श्रीगृह कैसे संभग्न हो गये और कैसे सरसर शब्द करते हुए धराशायी हो गये?

२७९. तए णं से पउमनाभे कविलं वासुदेवं एवं वयासी--एवं खलु सामी! जंबुद्दीवाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ इहं हव्वमागम्म कण्हेणं वासुदेवेणं तुब्भे परिभूय अवरकंका रायहाणी संभग्ग-गोउराट्टालय-चरिय-तोरण-पल्हत्थिय-पवरभवण-सिरिघरा सरसरस्स धरणियले सण्णिवाडिया।।

२७९. पद्मनाभ ने कपिल वासुदेव से इस प्रकार कहा--स्वामिन् जम्बूद्वीप द्वीप भारतवर्ष से शीघ्र यहां आकर कृष्ण वासुदेव ने तुम्हारा पराभव किया है। उसने अवरकंका राजधानी के गोपुर, अट्टालक, चरिका, तोरण और प्रकीर्ण रूप में स्थित सुन्दर भवन और श्रीगृह को संभग्न और सरसर शब्द के साथ धराशायी बना दिया।

२८०. तए णं से कविले वासुदेवे पउमनाभस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा पउमनाभं एवं वयासी--हंभो पउमनाभा! अपत्थियपत्थिया! दुरंतपंतलक्खणा! हीणपुण्णचाउद्दसा! सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति-परिवज्जिया! किण्णं तुमं न जाणसि मम सरिसपुरिसस्स कण्हस्स वासुदेवस्स विप्पियं करेमाणे?--आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु पउमनाभं निव्विसयं आणवेइ, पउमनाभस्स पुत्तं अवरकंकाए रायहाणीए महया-महया रायाभिसेएणं अभिसिंचइ, अभिसिंचित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।।

२८०. पद्मनाभ से यह अर्थ सुनकर कपिल वासुदेव ने पद्मनाभ से इस प्रकार कहा--हंभो, पद्मनाभ! अप्रार्थित का प्रार्थी! दुरन्त-प्रान्त-लक्षण! हीन पुण्य चातुर्दशिक! श्री-ह्री-धृति और कीर्ति से शून्य! मेरे ही सदृश पुरुष कृष्ण वासुदेव का विप्रिय करता हुआ तू उसका परिणाम नहीं जानता? वह क्रोध से तमतमा उठा और रुष्ट, कुपित, चण्ड और क्रोध से जलते हुए त्रिवली युक्त भृकुटी को ललाट पर चढ़ाते हुए उसने पद्मनाभ को देश छोड़कर चले जाने की आज्ञा दी, और पद्मनाभ के पुत्र को अवरकंका राजधानी के महान राज्याभिषेक से अभिषिक्त किया। अभिषिक्त कर वह जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में चला गया।

अपरिक्खणीयपरिक्खा-पदं

२८१. तए णं से कण्हे वासुदेवे लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयमाणे-वीईवयमाणे गंगं उवागए (उवागम्म?) ते पंच पंडवे एवं वयासी--गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! गंगं महानइं उत्तरह जाव ताव अहं सुट्ठियं लवणाहिवइं पासामि।।

अपरीक्षणीय का परीक्षा-पद

२८१. लवणसमुद्र के बीचोंबीच चलते-चलते कृष्ण वासुदेव गंगा नदी के समीप आए। (वहां आकर?) वे उन पांचों पाण्डवों से इस प्रकार बोले--देवानुप्रियो! तुम जाओ, महानदी गंगा को पार करो। इतने में मैं लवणाधिपति सुस्थित देव से मिलता हूं।

२८२. तए णं ते पंच पंडवा कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ता समाणा जेणेव गंगा महानदी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एगट्ठियाए मग्गण-गवेसणं करेंति, करेत्ता एगट्ठियाए गंगं महानइं उत्तरंति, उत्तरित्ता अण्णमण्णं एवं वयंति--पहू णं देवाणुप्पिया! कण्हे वासुदेवे गंगं महानइं बाहाहिं उत्तरित्तए, उदाहू नो पहू उत्तरित्तए? त्ति कट्टु एगट्ठियं णूमेंति, णूमेत्ता कण्हं वासुदेवं पडिवालेमाणा-पडिवालेमाणा चिट्ठंति।।

२८२. कृष्ण वासुदेव के ऐसा कहने पर वे पांचों पाण्डव, जहां महानदी गंगा थी, वहां आए। वहां आकर नौका की खोज की। खोज कर नौका से महानदी गंगा को पार किया। पार कर परस्पर इस प्रकार बोले--देवानुप्रियो! कृष्ण वासुदेव महानदी गंगा को भुजाओं से तैरने में समर्थ हैं अथवा समर्थ नहीं हैं? यह देखने के लिए उन्होंने नौका को छिपा दिया। छिपाकर कृष्ण वासुदेव की प्रतीक्षा करने लगे।

२८३. तए णं से कण्हे वासुदेवे सुट्ठियं लवणाहिवइं पासइ, पासित्ता जणेव गंगा महानई तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एगट्ठियाए सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेइ, करेत्ता एगट्ठियं अपासमाणे एगाए बाहाए रहं सतुरगं ससारहिं गेण्हइ, एगाए बाहाए गंगं महानइं बासट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च वित्थिण्णं उत्तरिउं पयत्ते यावि होत्था।।

२८३. कृष्ण वासुदेव लवणाधिपति सुस्थित देव से मिले। उसके पश्चात् जहां महानदी गंगा थी वहां आए। वहां आकर चारों ओर नौका की खोज की। नौका नहीं मिली तो एक भुजा पर घोड़ों और सारथी सहित रथ को लिया और एक भुजा से साढ़े बासठ योजन विस्तीर्ण महानदी गंगा को तैरने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८४. तए णं से कण्हे वासुदेवे गंगाए महानईए बहुमज्झदेसभाए संपत्ते समाणे संते तंते परितंते बद्धसेए जाए यावि होत्था।।

२८४. जब कृष्ण वासुदेव महानदी गंगा के ठीक मध्यभाग तक पहुंचे तब वे श्रान्त, क्लान्त और परिक्लान्त हो गये। उनके शरीर से पसीना बहने लगा।

२८५. तए णं तस्स कण्हस्स वासुदेवस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--अहो णं पंच पंडवा महाबलवगा जेहिं गंगा महानई बासट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च वित्थिण्णा बाहाहिं उत्तिण्णा।

इच्छंतएहिं णं पंचहिं पंडवेहिं पउमनाभे हय-महिय- पवरवीर-घाइय-विवडियचिंध-धय-पडागे किच्छोवगयपाणे दिसोदिसिं नो पडिसेहिए।।

२८५. कृष्ण वासुदेव के मन में इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--अहो! पांचों पाण्डव महाबलिष्ठ हैं, जिन्होंने साढे बासठ योजन विस्तीर्ण महानदी गंगा को भुजाओं से पार कर दिया। लगता है पांचों पाण्डवों ने इच्छापूर्वक राजा पद्मनाभ को हत-मथित कर उसके प्रवर वीरो को यमधाम पहुंचा, सेना के चिह्न-ध्वजाओं और पताकाओं को गिरा, उसके प्राण संकट में डाल, सब दिशाओं से उसके प्रहारों को विफल नहीं किया।

२८६. तए णं गंगादेवी कण्हस्स वासुदेवस्स इमं एयारूवं अज्झत्थियं चिंतियं पत्थियं मणोगयं संकप्पं जाणित्ता थाहं वियरइ।।

२८६. कृष्ण वासुदेव के इस प्रकार के आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प को जानकर गंगादेवी ने उन्हें थाह दे दिया।

२८७. तए णं से कण्हे वासुदेवे मुहुत्तंतरं समासासेइ, समासासेत्ता गंगं महानदिं बासट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च वित्थिण्णं बाहाए उत्तरइ, उत्तरित्ता जेणेव पंच पंडवा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंच पंडवे एवं वयासी--अहो णं तुब्भे देवाणुप्पिया! महाबलवगा, जेहिं णं तुब्भेहिं गंगा महानई बासट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च वित्थिण्णा बाहाहिं उत्तिण्णा। इच्छंतएहिं णं तुब्भेहिं पउमनाहे हय-महिय-पवरवीर- घाइय-विवडियचिंध-धय-पडागे किच्छोव-गयपाणे दिसोदिसिं नो पडिसेहिए।।

२८७. वे कृष्ण-वासुदेव वहां मुहूर्त्त भर आश्वस्त हुए। आश्वस्त होकर साढे बासठ योजन विस्तीर्ण महानदी गंगा को पार किया। पार कर, जहां पांचों पाण्डव थे वहां आए। वहां आकर, पांचों पाण्डवों से इस प्रकार कहा--अहो देवानुप्रियो! तुम तो महाबलिष्ठ हो, जिन्होंने साढे बासठ योजन विस्तीर्ण महानदी गंगा को भुजाओं से पार कर दिया। लगता है तुम लोगों ने इच्छापूर्वक पद्मनाभ को हत-मथित कर, उसके प्रवर वीरों को यमधाम पहुंचा, सेना के चिह्न-ध्वजाओं और पताकाओं को गिरा, उसके प्राण संकट में डाल, सब दिशाओं से उसके प्रहारों को विफल नहीं किया।

२८८. तए णं ते पंच पंडवा कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ता समाणा कण्हं वासुदेवं एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हे तुब्भेहिं विसज्जिया समाणा जेणेव गंगा महानई तेणेव उवागच्छामो, उवागच्छित्ता एगट्ठियाए मग्गण-गवेसणं करेमो, करेत्ता एगट्ठियाए गंगं महानइं उत्तरेमो, उत्तरेत्ता अण्णमण्णं एवं वयामो--पहू णं देवाणुप्पिया! कण्हे वासुदेवे गंगं महानइं बाहाहिं उत्तरित्तए, उदाहु नो पहू उत्तरित्तए? त्ति कट्टु एगट्ठियं णूमेमो, तुब्भे पडिवालेमाणा चिट्ठामो।।

२८८. कृष्ण वासुदेव के ऐसा कहने पर वे पांचों पाण्डव कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार बोले--देवानुप्रिय! तुम से विसर्जित होकर हम जहां महानदी गंगा थी, वहां आए। वहां आकर हमने नौका की खोज की। खोज कर नौका से महानदी गंगा को पार किया। पारकर परस्पर इस प्रकार बोले--देवानुप्रियो! कृष्ण वासुदेव महानदी गंगा को भुजाओं से तैरने में समर्थ हैं अथवा समर्थ नहीं हैं? यह देखने के लिए हमने नौका को छिपा दिया। छिपाकर तुम्हारी प्रतीक्षा करने लगे।

कण्हेण पंडवाणं निव्वासण-पदं

कृष्ण द्वारा पाण्डवों का निर्वासन-पद

२८९. तए णं से कण्हे वासुदेवे तेसिं पंच पंडवाणं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु एवं वयासी--अहो णं जया मए लवणसमुद्दं दुवे जोयणसयसहस्सवित्थिण्णं वीईवइत्ता पउमनाभं हय-महिय-पवरवीर-घाइय-विवडियचिंध-धय-पडागं किच्छोवगयपाणं दिसोदिसिं पडिसेहित्ता अवरकंका संभग्गा, दोवई साहत्थिं उवणीया, तया णं तुब्भेहिं मम महाप्पं न विण्णायं, इयाणिं जाणिस्सह त्ति

२८९. उन पांचों पाण्डवों से यह अर्थ सुनकर, अवधारण कर कृष्ण वासुदेव क्रोध से तमतमा उठे। वे रुष्ट, कुपित, रौद्र और क्रोध से जलते हुए, त्रिवली युक्त भृकुटि को ललाट पर चढ़ा कर इस प्रकार बोले--अहो! जब मैंने दो लाख योजन विस्तीर्ण लवणसमुद्र को लांघकर, राजा पद्मनाभ को हत-मथित कर उसके प्रवर वीरों को यमधाम पहुंचा, सेना के चिह्न ध्वजाओं और पताकाओं को गिरा, उसके प्राण संकट में डाल, सब दिशाओं से उसके प्रहारों को विफल किया,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कट्टु लोहदंडं परामुसइ, पंचण्हं पंडवाणं रहे सुसूरेइ, सुसूरेत्ता (पंच पंडवे?) निव्विसए आणवेइ, तत्थ णं रहमद्दणे नामं कोट्टे निविट्ठे।।

अवरकंका राजधानी को संभग्न किया और द्रौपदी को हाथों हाथ प्राप्त किया। उस समय तुमने मेरा माहात्म्य नहीं जाना, उसे अब जानोगे? (पांचों पांडवों को?) यह कह कर उन्होंने लोहदण्ड उठाया, पांचों पाण्डवों के रथों को चूर-चूर कर दिया, चूर-चूरकर उन्हें देश छोड़कर चले जाने की आज्ञा दी। वहां रथमर्दन नाम का स्मारक बसाया गया।

२९०. तए णं से कण्हे वासुदेवे जेणेव सए खंधावारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सएणं खंधावारेणं सद्धिं अभिसमण्णागए यावि होत्था।।

२९०. कृष्ण वासुदेव जहां उनका अपना स्कन्धावार था, वहां आये। वहां आकर वे अपने स्कन्धावार के साथ हो गये।

२९१. तए णं से कण्हे वासुदेवे जेणेव बारवई नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता (सयं भवणं?) अणुप्पविसइ।।

२९१. कृष्ण वासुदेव! जहां द्वारवती नगरी थी, वहां आये। वहां आकर (अपने भवन में?) प्रवेश किया।

२९२. तए णं ते पंच पंडवा जेणेव हत्थिणाउरे नयरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता जेणेव पंडू राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी--एवं खलु ताओ! अम्हे कण्हेणं निव्विसया आणत्ता।।

२९२. वे पांचों पाण्डव जहां हस्तिनापुर नगर था, वहां आये। वहां आकर जहां पाण्डु राजा था, वहां आये। वहां आकर सटे हुए नखों वाली दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर, मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार बोले--तात! कृष्ण ने हमें देश छोड़कर चले जाने की आज्ञा दी।

२९३. तए णं पंडू राया ते पंच पंडवे एवं वयासी--कहण्णं पुत्ता! तुब्भे कण्हेणं वासुदेवेणं निव्विसया आणत्ता?

२९३. पाण्डु राजा ने उन पांचों पाण्डवों से इस प्रकार कहा--पुत्रो! कृष्ण वासुदेव ने तुम्हें निर्वासन का आदेश क्यों दिया?

२९४. तए णं ते पंच पंडवा पंडुं रायं एवं वयासी--एवं खलु ताओ! अम्हे अवरकंकाओ पडिनियत्ता लवणसमुद्दं दोण्णि जोयणसयसहस्साइं वीईवइत्था। तए णं से कण्हे वासुदेवे अम्हे एवं वयइ--गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! गंगं महानइं उत्तरह जाव ताव अहं सुट्ठियं लवणाहिवइं पासामि, एवं तहेव जाव चिट्ठामो।।

२९४. पांचों पाण्डव पाण्डु राजा से इस प्रकार बोले--तात! अवरकंका से लौटते हुए हमने दो लाख योजन परिमित लवण समुद्र को पार किया। तब कृष्ण वासुदेव ने हमें इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम जाओ। महानदी गंगा को पार करो इतने में मैं लवणाधिपति सुस्थित से मिलता हूं। उसी प्रकार यावत् हम कृष्ण वासुदेव की प्रतीक्षा करने लगे।

२९५. तए णं से कण्हे वासुदेवे सुट्ठियं लवणाहिवइं दट्ठूण जेणेव गंगा महानई तेणेव उवागच्छइ, तं चेवं सव्वं नवरं कण्हस्स चिंता न बुज्झइ जाव निव्विसए आणवेइ।।

२९५. वे कृष्ण वासुदेव लवणाधिपति सुस्थित से मिलकर जहां महानदी गंगा थी वहां आये। वही सारी वक्तव्यता, इतना विशेष है कि कृष्ण की चिन्ता शान्त नहीं हुई यावत् वासुदेव कृष्ण ने पांचों पांडवों को देश छोड़कर चले जाने की आज्ञा दी।

२९६. तए णं से पंडू राया ते पंच पंडवे एवं वयासी--दुट्ठु णं पुत्ता! कयं कण्हस्स वासुदेवस्स विप्पियं करेमाणेहिं।।

२९६. पाण्डु राजा ने उन पांचों पाण्डवों से इस प्रकार कहा--पुत्रो! कृष्ण वासुदेव का विप्रिय करते हुए तुमने बहुत बुरा किया।

२९७. तए णं से पंडू राया कोंतिं देविं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिए! बारवइं नयरिं कण्हस्स वासुदेवस्स एवं निवेएहि--एवं खलु देवाणुप्पिया! तुमे पंच पंडवा निव्विसया आणत्ता। तुमं च णं देवाणुप्पिया! दाहिणड्ढभरहस्स सामी। तं संदिसंतु णं देवाणुप्पिया! ते पंच पंडवा कयरं देसं वा दिसं वा विदिसं वा गच्छंतु।।

२९७. उस पाण्डु राजा ने कुन्ती देवी को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिये! तुम द्वारवती नगरी जाओ और वहां कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार निवदेन करो--देवानुप्रिय! तुमने पांचों पाण्डवों को देश छोड़कर चले जाने की आज्ञा दी, किन्तु देवानुप्रिय! पूरे दक्षिणार्द्धभरत के स्वामी तुम हो। अत: देवानुप्रिय! तुम्हीं कहो वे पांचों पाण्डव किस देश, किस दिशा और किस विदिशा में जाएं?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९८. तए णं सा कोंती पंडुणा एवं वुत्ता समाणी हत्थिखंधं दुरुहइ, जहा हेट्ठा जाव संदिसंतु णं पिउच्छा! किमागमणपओयणं?

२९८. पाण्डु राजा के ऐसा कहने पर वह कुन्ती हस्तिस्कन्ध पर आरूढ़ हुई। पूर्ववत् वर्णन, यावत् (कृष्ण कहते हैं) कहो बुआजी! किस प्रयोजन से आगमन हुआ है?

२९९. तए णं सा कोंती देवी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी--एवं खलु तुमे पुत्ता! पंचपंडवा निव्विसया आणत्ता। तुमं च णं दाहिणड्ढभरहस्स सामी। तं संदिसंतु णं देवाणुप्पिया! ते पंच पंडवा कयरं देसं वा दिसं वा विदिसं वा गच्छंतु?

२९९. कुन्ती देवी ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा--पुत्र! तुमने पांचों पाण्डवों को देश छोड़कर चले जाने की आज्ञा दी, किन्तु देवानुप्रिय! पूरे दक्षिणार्द्धभरत के स्वामी तुम हो। अतः देवानुप्रिय! तुम्ही कहो वे पांचों पाण्डव किस देश, किस दिशा और किस विदिशा में जाएं।

३००. तए णं से कण्हे वासुदेवे कोंतिं एवं वयासी--अपूइवयणा णं पिउच्छा! उत्तमपुरिसा--वासुदेवा बलदेवा चक्कवट्टी। तं गच्छंतु णं पंच पंडवा दाहिणिल्लं वेयालिं तत्थ पंडुमहुरं निवेसंतु, ममं अदिट्ठसेवगा भवंतु त्ति कट्टु कोंतिं देविं सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ।।

३००. कृष्ण वासुदेव ने कुन्ती देवी से इस प्रकार कहा--बुआजी! उत्तम पुरुष--बलदेव, वासुदेव और चक्रवर्ती--अपूतिवचन होते हैं--(उनका वचन परिवर्तनीय नहीं होता)। इसलिए पांचों पाण्डव जाएं। सागर के दक्षिण तट पर पाण्डु मथुरा का निर्माण करें और वहां मेरे अदृष्ट सेवक बन रहें--यह कहकर उन्होंने कुन्ती देवी को सत्कृत किया। सम्मानित किया। सत्कृत-सम्मानित कर प्रतिविसर्जित किया।

३०१ तए णं सा कोंती देवी जेणेव हत्थिणाउरे नयरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंडुस्स एयमट्ठं निवेएइ।।

३०१. वह कुन्ती देवी जहां हस्तिनापुर नगर था, वहां आयी। आकर उसने पाण्डुराजा को यह अर्थ निवेदित किया।

३०२. तए णं पंडू राया पंच पंडवे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुब्भे पुत्ता! दाहिणिल्लं वेयालिं। तत्थ णं तुब्भे पंडुमहुरं निवेसेह।।

३०२. पाण्डुराजा ने पांचों पाण्डवों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--पुत्रो! तुम सागर के दक्षिणी तट पर जाओ। वहां पाण्डु-मथुरा का निर्माण करो।

पंडुमहुरा-निवेसण-पदं

पाण्डु-मथुरा का स्थापना-पद

३०३. तए णं ते पंच पंडवा पंडुस्स रण्णो एयमट्ठं तहत्ति पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता सबलवाहणा हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडा महयाभड-चडगर-रह-पहकर-विंदपरिक्खित्ता हत्थिणाउराओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव दक्खिणिल्ले वेयाली तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पंडुमहुरं नगरिं निवेसंति। तत्थवि णं ते विपुलभोग-समिति-समण्णागया यावि होत्था।।

३०३. उन पांचों पाण्डवों ने पाण्डु राजा के इस अर्थ को 'तथास्तु' कहकर स्वीकार किया। स्वीकार कर बल, वाहन सहित वे अश्व, गज, रथ और प्रवर पदाति योद्धाओं से कलित चातुरंगिणी सेना के साथ उससे परिवृत हो महान सैनिकों की विभिन्न टुकड़ियों, रथों और पथदर्शक पुरुषों के समूह से घिरे हुए हस्तिनापुर नगर से निकले। निकलकर जहां सागर का दक्षिणी तट था, वहां आए। वहां आकर पाण्डु मथुरा नगरी का निर्माण किया। वहां वे विपुल भोग-समिति से अभिसमन्वागत होकर रहने लगे।

पंडुसेण-जम्म-पदं

पाण्डुसेन का जन्म-पद

३०४. तए णं सा दोवई देवी अण्णया कयाइ आवण्णसत्ता जाया यावि होत्था।।

३०४. किसी समय द्रौपदी देवी आपन्नसत्त्वा (गर्भवती) हुई।

३०५. तए णं सा दोवई देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं जाव सुरूवं दारगं पयाया--सूमालकोमलयं गयतालुयसमाणं।।

३०५. नौ मास पूरे होने पर द्रौपदी देवी ने यावत् एक सुरूप बालक को जन्म दिया। वह सुकुमार और गजतालु के समान कोमल था।

३०६. तए णं तस्स णं दारगस्स निव्वत्तबारसाहस्स अम्मापियरो इमं

३०६. जब वह बालक बारह दिन का हुआ तब माता पिता ने उसका यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एयारूवं गोण्णं गुणनिप्फण्णं नामधेज्जं करेंति। जम्हा णं अम्हं एस दारए पंचण्हं पंडवाणं पुत्ते दोवईए देवीए अत्तए, तं होउ णं इमस्स दारगस्स नामधेज्जं पंडुसेणे-पंडुसेणे।।

गुणानुरूप, गुणनिष्पन्न नाम रखा--क्योंकि हमारा यह बालक पांच पाण्डवों का पुत्र और द्रौपदी देवी का आत्मज है, अतः हमारे इस बालक का नाम पाण्डुसेन हो! पाण्डुसेन!

३०७. तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधेज्जं करेंति पंडुसेणत्ति।।

३०७. इस प्रकार माता-पिता ने उस बालक का नाम पाण्डुसेन रखा।

३०८. तए णं तं पंडुसेणं दारयं अम्मापियरो साइरेगट्ठवासजायगं चेव सोहणंसि तिहि-करण-मुहुत्तंसि कलायरियस्स उवणेंति।।

३०८. जब बालक पाण्डुसेन कुछ अधिक आठ वर्ष का हुआ तब माता-पिता शुभ तिथि, करण और मुहूर्त में उसे कलाचार्य के पास ले गये।

३०९. तए णं से कलायरिए पंडुसेणं कुमारं लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणरुयपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य करणओ य सेहावेइ सिक्खावेइ जाव अलंभोगसमत्थे जाए। जुवराया जाव विहरइ।।

३०९. कलाचार्य ने पाण्डुसेन कुमार को लिपि-विज्ञान, गणित प्रधान से लेकर शकुन रुत पर्यन्त बहत्तर कलाएं, सूत्र, अर्थ और क्रियात्मक रूप से पढायी और उनका अभ्यास करवाया यावत् वह पूर्ण भोग समर्थ हुआ यावत् वह युवराज बनकर विहार करने लगा।

पंडवाणं दोवईए य पव्वज्जा-पदं

पाण्डवों और द्रौपदी का प्रव्रज्या-पद

३१०. थेरा समोसढा। परिसा निग्गया। पंडवा निग्गया। धम्मं सोच्चा एवं वयासी--जं नवरं--देवाणुप्पिया! दोवइं देविं आपुच्छाओ। पंडुसेणं च कुमारं रज्जे ठावेमो। तओ पच्छा देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वयामो।
अहासुहं देवाणुप्पिया!

३१०. स्थविर समवसृत हुए। जन-समूह ने निर्गमन किया। पाण्डवों ने भी निर्गमन किया। धर्म सुनकर पाण्डवों ने इस प्रकार कहा--विशेष--देवानुप्रिय! हम द्रौपदी देवी से पूछते हैं। पाण्डुसेन कुमार को राज्य पर स्थापित करते हैं। उसके पश्चात् देवानुप्रिय के पास मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित होंगे।
जैसा सुख हो देवानुप्रियो !

३११. तए णं ते पंच पंडवा जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता दोवइं देविं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिए! अम्हेहिं थेराणं अंतिए धम्मे निसंते जाव पव्वयामो। तुमं णं देवाणुप्पिए! किं करेसि?

३११. वे पांचों पाण्डव जहां उनका अपना प्रासाद था वहां आये। वहां आकर द्रौपदी देवी को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रिये! हमने स्थविरों से धर्म सुना है यावत् हम प्रव्रजित होते हैं। देवानुप्रिये! तुम क्या करोगी?

३१२. तए णं सा दोवई ते पंच पंडवे एवं वयासी--जइ णं तुब्भे देवाणुप्पिया! संसारभउव्विग्गा जाव पव्वयह, मम के अण्णे आलंबे वा आहारे वा पडिबंधे वा भविस्सइ? अहं पि य णं संसारभउव्विग्गा देवाणुप्पिएहिं सद्धिं पव्वइस्सामि।।

३१२. द्रौपदी देवी ने उन पांचों पाण्डवों से इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! यदि तुम संसार के भय से उद्विग्न हो यावत् प्रव्रजित होते हो तो मेरे लिए दूसरा कौन आलम्बन, आधार अथवा प्रतिबन्ध होगा। मैं भी संसार के भय से उद्विग्न हूं और देवानुप्रियो के साथ प्रव्रजित होऊंगी।

३१३. तए णं ते पंच पंडवा कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! पंडुसेणस्स कुमारस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायाभिसेहं उवट्ठवेह। पंडुसेणस्स अभिसेओ जाव राया जाए जाव रज्जं पसाहेमाणे विहरइ।।

३१३. पांचों पाण्डवों ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! शीघ्र ही पाण्डुसेन कुमार के लिए महान अर्थवान् महामूल्यवान और महान अर्हता वाले विपुल राज्याभिषेक की उपस्थापना करो। पाण्डुसेन का अभिषेक किया यावत् वह राजा बन गया यावत् वह राज्य का प्रशासन करता हुआ विहार करने लगा।

३१४. तए णं ते पंच पंडवा दोवई य देवी अण्णया कयाइ पंडुसेणं रायाणं आपुच्छंति।।

३१४. किसी समय पांचों पाण्डव और द्रौपदी देवी ने राजा पाण्डुसेन से प्रव्रजित होने के लिए पूछा।

३१५. तए णं से पंडुसेणे राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं

३१५. राजा पाण्डुसेन ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वयासी--खिप्पामेव भो! देवाणुप्पिया! निक्खमणाभिसेयं करेह जाव पुरिससहस्सवाहिणीओ सिवियाओ उवट्ठवेह जाव सिवियाओ पच्चोरुहंति, जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता थेरं भगवंतं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेंति, करेत्ता वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--आलित्ते णं भंते! लोए जाव समणा जाया, चोद्दस पुव्वाइं अहिज्जंति, अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।।

प्रकार कहा--देवानुप्रियो! शीघ्र ही निष्क्रमण अभिषेक करो यावत् हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली शिविका उपस्थित करो यावत् वे शिविकाओं से उतरे। जहां स्थविर भगवान थे वहां आये। आकर स्थविर भगवान को तीन बार दांयी ओर से प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार कर इस प्रकार बोले--भन्ते! यह लोक जल रहा है यावत् वे श्रमण बन गये। उन्होंने चौदह पूर्वों का अध्ययन किया। अध्ययन कर बहुत वर्षों तक षष्ठ-भक्त, अष्टम-भक्त, दशम-भक्त, द्वादश-भक्त तथा मासिक और पाक्षिक तप से स्वयं को भावित करते हुए विहार करने लगे।

३१६. तए णं सा दोवई देवी सीयाओ पच्चोरुहइ जाव पव्वइया। सुव्वयाए अज्जाए सिस्सिणियत्ताए दलयंति, एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, बहूणि वासाणि छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।।

३१६. वह द्रौपदी देवी शिविका से उतरी यावत् प्रव्रजित हो गई। उसे आर्या सुव्रता को शिष्या के रूप में प्रदान किया। उसने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। अध्ययन कर बहुत वर्षों तक षष्ठ-भक्त, अष्टम-भक्त, दशम-भक्त, द्वादश-भक्त तथा मासिक और पाक्षिक तप से स्वयं को भावित करती हुई विहार करने लगी।

३१७. तए णं ते थेरा भगवंतो अण्णया कयाइ पंडुमहुराओ नयरीओ सहस्संबवणाओ उज्जाणाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरंति।।

३१७. किसी समय उन स्थविर भगवान ने पाण्डु-मथुरा नगरी के सहस्राम्रवन उद्यान से अभिनिष्क्रमण किया। अभिनिष्क्रमण कर वे बाहर जनपद विहार करने लगे।

अरिट्ठनेमिस्स निव्वाण-पदं

३१८. तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी जेणेव सुरट्ठाजणवए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुरट्ठाजणवयंसि संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।।

अरिष्टनेमि का निर्वाण-पद

३१८. उस काल और उस समय अर्हत् अरिष्टनेमि जहां सौराष्ट्र-जनपद था, वहां आए। वहां आकर सौराष्ट्र-जनपद में संयम और तप से स्वयं को भावित करते हुए विहार करने लगे।

३१९. तए णं बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ, भासइ पण्णवेइ परूवेइ--एवं खलु देवाणुप्पिया! अरहा अरिट्ठनेमी सुरट्ठाजणवए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।।

३१९. जन-समूह परस्पर इस प्रकार आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन और प्ररूपणा करने लगा--देवानुप्रियो! अर्हत् अरिष्टनेमि सौराष्ट्र-जनपद में संयम और तप से स्वयं को भावित करते हुए विहार कर रहे हैं।

३२०. तए णं ते जुहिट्ठिलपामोक्खा पंच अणगारा बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! अरहा अरिट्ठनेमी पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे सुरट्ठाजणवए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तं सेयं खलु अम्हं (थेरे भगवंते?) आपुच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं वंदणाए गमित्तए, अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--इच्छामो णं तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा अरहं अरिट्ठनेमिं वंदणाए गमित्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिया!

३२०. जन-समूह से यह अर्थ सुनकर, युधिष्ठिर प्रमुख उन पांचों अनगारों ने एक दूसरे को बुलाया, बुलाकर परस्पर इस प्रकार बोले--देवानुप्रियो! अर्हत् अरिष्टनेमि क्रमशः संचार करते हुए, एक गांव से दूसरे गांव घूमते हुए और सुखपूर्वक विहार करते हुए, सौराष्ट्र-जनपद में संयम और तप से स्वयं को भावित करते हुए विहार कर रहे हैं। देवानुप्रियो! हमारे लिए उचित है हम (स्थविर भगवान से?) अनुज्ञा लेकर अर्हत् अरिष्टनेमि को वन्दना करने चलें।

उन्होंने परस्पर इस अर्थ को स्वीकार किया, स्वीकार कर जहां स्थविर भगवान थे वहां आये। स्थविर भगवान को वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार कर इस प्रकार बोले--हम चाहते हैं आपसे अनुज्ञा प्राप्त कर अर्हत् अरिष्टनेमि को वन्दना करने के लिए जाएं।

जैसा सुख हो, देवानुप्रियो!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२१. तए णं ते जुहिट्ठिलपामोक्खा पंच अणगारा थेरेहिं अब्भणुण्णाया समाणा थेरे भगवंते वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता थेराणं अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता मासंमासेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं गामाणुगामं दूइज्जमाणा सुहंसुहेणं विहरमाणा जेणेव हत्थकप्पे नयरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता हत्थकप्पस्स बहिया सहस्संबवणे उज्जाणे संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।।

३२१. स्थविरों से अनुज्ञा प्राप्त कर युधिष्ठिर प्रमुख उन पांचों अनगारों ने स्थविर भगवान को वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार कर वे स्थविर भगवान के पास से निकले। निकलकर निरन्तर मास-मास के तपःकर्म पूर्वक एक गांव से दूसरे गांव घूमते हुए और सुखपूर्वक विहार करते हुए जहां 'हस्तकल्प' नगर था वहां आये। वहां आकर हस्तकल्प नगर के बाहर सहस्राम्रवन उद्यान में संयम और तप से स्वयं को भावित करते हुए विहार करने लगे।

३२२. तए णं ते जुहिट्ठिलवज्जा चत्तारि अणगारा मासक्खमण-पारणए पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेंति, बीयाए झाणं झायंति एवं जहा गोयमसामी, नवरं--जुहिट्ठिलं आपुच्छंति जाव अडमाणा बहुजणसद्दं निसामेंति एवं खलु देवाणुप्पिया! अरहा अरिट्ठनेमी उज्जंतसेलसिहरे मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं पंचहिं छत्तीसेहिं अणगारसएहिं सद्धिं कालगए सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिनिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।।

३२२. युधिष्ठिर के अतिरिक्त वे चारों अनगार मासखमण के पारणक के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करते, द्वितीय प्रहर में ध्यान करते। इसी प्रकार गौतम स्वामी की भांति, विशेष--युधिष्ठिर को पूछते यावत् अटन करते हुए उन्होंने जन-समूह का शब्द सुना। देवानुप्रियो! अर्हत् अरिष्टनेमि उज्जयन्त पर्वत के शिखर पर निर्जल मासिक अनशन-पूर्वक पांच सौ छत्तीस अनगारों के साथ काल-धर्म को प्राप्त हो, सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिर्वृत हो समस्त दुःखों का अन्त करने वाले हुए हैं।

पंडवाणं निव्वाण-पदं

३२३. तए णं ते जुहिट्ठिलवज्जा चत्तारि अणगारा बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हत्थकप्पाओ नयराओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे जेणेव जुहिट्ठिले अणगारे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता भत्तपाणं पच्चुवेक्खंति पच्चुवेक्खित्ता गमणागमणस्स पडिक्कमंति, पडिक्कमित्ता एसणमणेसणं आलोएंति, आलोएत्ता भत्तपाणं पडिदंसेंति, पडिदंसेत्ता एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! अरहा अरिट्ठनेमी उज्जंतसेलसिहरे मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं पंचहिं छत्तीसेहिं अणगारसएहिं सद्धिं कालगए। तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया! इमं पुव्वगहियं भत्तपाणं परिट्ठवेत्ता सेत्तुज्जं पव्वयं सणियं-सणियं दुरुहित्तए, संलेहणा-झूसणा-झोसियाणं कालं अणवकंखमाणाणं विहरित्तए त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता तं पुव्वगहियं भत्तपाणं एगंते परिट्ठवेंति, परिट्ठवेत्ता जेणेव सेत्तुज्जे पव्वए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सेत्तुज्जं पव्वयं सणियं-सणियं दुरुहंति, दुरुहित्ता संलेहणा-झूसणा-झोसिया कालं अणवकंखमाणा विहरंति।।

पाण्डवों का निर्वाण-पद

३२३. युधिष्ठिर के अतिरिक्त उन चारों अनगारों ने जन-समूह का शब्द सुनकर, अवधारण कर, हस्तकल्प नगर से निष्क्रमण किया। निष्क्रमण कर जहां सहस्राम्रवन उद्यान था, जहां अनगार युधिष्ठिर थे वहां आये। वहां आकर भक्त-पान का निरीक्षण करवाया। निरीक्षण करवाकर गमनागमन का प्रतिक्रमण किया। प्रतिक्रमण कर एषणा-अनेषणा सम्बन्धी आलोचना की। आलोचना कर भक्तपान को मुनि युधिष्ठिर के समक्ष प्रस्तुत किया। प्रस्तुत कर निवेदन किया--देवानुप्रिय! अर्हत् अरिष्टनेमि उज्जयन्त पर्वत के शिखर पर निर्जल, मासिक अनशन पूर्वक पांच सौ छत्तीस अनगारों के साथ काल धर्म को प्राप्त हो गये हैं। अतः देवानुप्रियो! हमारे लिए उचित है हम इस पूर्वगृहीत भक्त-पान का परिष्ठापन कर शत्रुंजय-पर्वत पर आरोहण करें और संलेखना की आराधना में स्वयं को समर्पित कर मृत्यु की आकांक्षा न करते हुए विहार करें। उन्होने परस्पर इस अर्थ को स्वीकार किया। स्वीकार कर उस पूर्वगृहीत भक्त-पान का एकान्त में परिष्ठापन किया। परिष्ठापन कर जहां शत्रुंजय पर्वत था वहां आए। वहां आकर धीरे-धीरे शत्रुंजय पर्वत पर आरोहण किया। आरोहण कर संलेखना की आराधना में स्वयं को समर्पित कर मृत्यु की आकांक्षा न करते हुए विहार करने लगे।

३२४. तए णं ते जुहिट्ठिलपामोक्खा पंच अणगारा सामाइयमाइयाइं चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जित्ता, बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता, दोमासियाए संलेहणाए अत्ताणं झोसेत्ता जस्सट्ठाए कीरए नग्गभावे जाव तमट्ठमाराहेंति, आराहेत्ता अणंतं केवलवरनाणदंसणं समुप्पाडेत्ता

३२४. उन युधिष्ठिर प्रमुख पांचों अनगारों ने सामायिक आदि चौदह पूर्वों का अध्ययन कर, बहुत वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय का पालन कर, द्वैमासिक संलेखना की आराधना में स्वयं को समर्पित कर, जिस प्रयोजन से नग्नभाव स्वीकार किया जाता है यावत् उस प्रयोजन की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तओ पच्छा सिद्धा बुद्धा मुत्ता अंतगडा परिनिव्वुडा सव्वदुक्खप्पहीणा ।।

आराधना की, आराधना कर अनन्त, प्रवर केवलज्ञान और केवलदर्शन को उत्पन्न कर उसके पश्चात् सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिर्वृत और सब दुखों का अन्त करने वाले हुए।

दोवईए देवत्त-पदं

३२५. तए णं सा दोवई अज्जा सुव्वयाणं अज्जियाणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए (अत्ताणं झोसेत्ता?) आलोइय-पडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा बंभलोए उववण्णा। तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। तत्थ णं दुवयस्स वि देवस्स दससागरोवमाइं ठिई।।

द्रौपदी का देवत्व-पद

३२५. वह द्रौपदी आर्या सुव्रता आर्या के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन कर, बहुत वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय का पालन कर, मासिक संलेखना की आराधना में (स्वयं को समर्पित कर?) आलोचना–प्रतिक्रमण पूर्वक, मृत्यु के समय, मृत्यु का वरण कर, ब्रह्मलोक कल्प में उत्पन्न हुई। वहां कुछ देवों की स्थिति दस सागरोपम बतलाई गई है। वहां द्रुपद देव की स्थिति भी दस सागरोपम है।

३२६. से णं भंते! दुवए देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं ठिइक्खएणं भवक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता जाव महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ परिनिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।।

३२६. भन्ते! वह द्रुपद देव आयुक्षय, स्थितिक्षय और भवक्षय के अनन्तर उस देवलोक से च्युत होकर कहां जायेगा? यावत् महाविदेह वर्ष में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत और सब दुखों का अन्त करने वाला होगा।

निक्खेव-पदं

३२७. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थयरेणं जाव सिद्धिगइणामधेज्जं ठाणं संपत्तेणं सोलसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

—त्ति बेमि।।

निक्षेप-पद

३२७. जम्बु! इस प्रकार धर्म के आदिकर्त्ता, तीर्थंकर यावत् सिद्ध-गति नामक स्थान को संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के सोलहवें अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञाप्त किया है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

वृत्तिकृता समुद्धृता निगमनगाथा—

सुबहू वि तव-किलेसो, नियाण-दोसेण दूसिओ संतो।
न सिवाय दोवईए, जह किल सूमालिया-जम्मे।।१।।

अथवा

अमणुण्णमभत्तीए, पत्ते दाणं भवे अणत्थाय।
जह कडुय-तुंब-दाणं, नागसिरि-भवम्मि दोवईए।।२।।

वृत्तिकार द्वारा समुद्धृत निगमन गाथा—

१. अत्यधिक तपःक्लेश भी निदान-दोष से दूषित होकर शिव-साधक नहीं होता, जैसे—सुकुमालिका के जन्म में किया हुआ द्रौपदी का कष्टपूर्ण तप।

अथवा

२. अमनोज्ञ और भक्ति-भावना से रहित पात्र-दान भी अनर्थ का हेतु बन जाता है, जैसे द्रौपदी द्वारा नागश्री के भव में दिया गया कटुक तुम्बे का दान।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

सूत्र ८

१. वृक्ष की शाखा पर निष्पन्न (सालइयं)

साला का अर्थ है शाखा। इस आधार पर सालइयं का अर्थ वृक्ष की शाखा पर चित या निर्मित होना चाहिए।

वृत्तिकार ने इसके दो अर्थ किए है--शारदिक और सारचित।[1]

सूत्र १३६

२. सामुदायिक भेरी (सामुदाइया भेरी)

जिस भेरी का शब्द सुनकर परिवार जन और अधिकारी गण को यात्रा का संकेत मिल जाए।

सूत्र २०९

३. खोजने के लिए (कूवं)

कूवं शब्द के दो अर्थ हैं--१. अपहरण किए हुए व्यक्ति को खोजने के लिए जाना २. अपहरण किए हुए व्यक्ति को छुड़ाने के लिए जाना।[2]

सूत्र २४३

४. बहिन (भगिणिं)

पाण्डव श्रीकृष्ण की बुआ कुन्ती के पुत्र थे। इस आधार पर वे श्रीकृष्ण के भाई हो जाते हैं। द्रौपदी का यह कहना--श्रीकृष्ण मेरे पति के भाई (सूत्र २०९) हैं--संगत है। किन्तु श्रीकृष्ण ने कहा--द्रौपदी मेरी बहिन है--यह विमर्शनीय है।

श्रीकृष्ण द्रौपदी के प्रति सख्यभाव रखते थे, अत: द्रौपदी के प्रति 'बहिन' सम्बोधन किया हो--यह सम्भव है।

---

१. ज्ञातावृत्ति पत्र २०६--'सालइयं' त्ति शारदिकं-सारेण वा-रसेन चितं युक्तं सारचितम्।

२. देशीनाममाला २/६२--कूवो हृतानुगमनं हृतत्याजकश्चेति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

प्रस्तुत अध्ययन में आकीर्ण अश्वों के उदाहरण से मूर्च्छा और अमूर्च्छा का प्रतिपादन किया गया है। इसलिए इस अध्ययन का नाम आकीर्ण है।

यह अध्ययन प्राचीन काल की समुद्र यात्रा की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसमें वणिक्, नौका के उपकरण और नौका चलाने की विधि आदि का सजीव वर्णन है।

ऋग्वेद में व्यापारियों के लिए वणिज् शब्द का प्रयोग किया गया है। वैदिक युग में व्यापारी अपना माल बेचने के लिए लम्बी यात्राएं करते थे। मौर्य युग में व्यापार की समुचित व्यवस्था प्रणाली थी। व्यापार के अध्यक्ष को पण्याध्यक्ष कहा जाता था। उसका कार्य था जल व स्थल मार्गों से आने वाले माल की मांग, खपत और व्यापार से सम्बन्धित अन्य सभी कार्यों का सम्पादन करना।

ऋग्वेद में समुद्र के रत्न, मोती का व्यापार और समुद्र व्यापार के लाभ का विस्तार से वर्णन है। संहिताओं में भी समुद्र यात्रा का वर्णन है। इनके अनुसार समुद्री व्यापार नाव से चलता था। बहुधा नौ शब्द का व्यवहार नदियों में चलने वाली छोटी नाव व समुद्र में चलने वाले बेड़े--बड़ी नाव के लिए होता था।

व्यापार के सम्बंध में जैन साहित्य में विशेष विवरण है। सार्थवाह नामक पुस्तक में भी उसका उल्लेख है। शाह की इस पुस्तक में ज्ञातधर्मकथा के आकीर्ण कथानक का भी संकेत है। कालिक द्वीप में व्यापारियों को सोने, चांदी की खदानें, हीरे और रत्न मिले। वहां के धारीदार घोड़े (जेब्रे) बहुत विचित्र थे। मोतीचंद शाह के अनुसार कालिक द्वीप वर्तमान में पूर्वी अफ्रीका का क्षेत्र रहा होगा।

प्रस्तुत अध्ययन में अश्वों के माध्यम से आसक्ति और अनासक्ति के परिणाम को बताया गया है। जो साधक मूर्च्छित अश्वों की तरह इन्द्रिय विषयों में आसक्त होते हैं वे दुःखी हो जाते हैं। जो साधक अमूर्च्छित अश्वों की तरह इन्द्रिय विषयों का संयम करते हैं वे जरा और मृत्यु से रहित आनंददायक निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तरसमं अज्झयणं : सत्रहवां अध्ययन

आइण्णे : आकीर्ण

उक्खेव-पदं

१. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सोलसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, सत्तरसमस्स णं भंते! नायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

२. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिसीसे नामं नयरे होत्था--वण्णओ।।

३. तत्थ णं कणगकेऊ नामं राया होत्था--वण्णओ।।

४. तत्थ णं हत्थिसीसे नयरे बहवे संजत्ता-नावावाणियगा परिवसंति--अड्ढा जाव बहुजणस्स अपरिभूया यावि होत्था।।

कालियदीप-जत्ता-पदं

५. तए णं तेसिं संजत्ता-नावावाणियगाणं अण्णया कयाइ एगयओ सहियाणं इमेयारूवे मिहोकहा-समुल्लावे समुप्पज्जित्था--सेयं खलु अम्हं गणिमं च धरिमं च मेज्जं च परिच्छेज्जं च भंडगं गहाय लवणसमुद्दं पोयवहणेणं ओगाहेत्तए त्ति कट्टु जहा अरहन्नए जाव लवणसमुद्दं अणेगाइं जोयणसयाइं ओगाढा यावि होत्था।।

६. तए णं तेसिं संजत्ता-नावावाणियगाणं लवणसमुद्दं अणेगाइं जोयणसयाइं ओगाढाणं समाणाणं बहूणि उप्पाइयसयाइं पाउब्भूयाइं, तं जहा--अकाले गज्जिए अकाले विज्जुए अकाले थणियसद्दे कालियवाए य समुत्थिए।।

७. तए णं सा नावा तेणं कालियवाएणं आहुणिज्जमाणी-आहुणिज्जमाणी संचालिज्जमाणी-संचालिज्जमाणी संखोहिज्जमाणी-संखोहिज्जमाणी तत्थेव परिभमइ।।

८. तए णं से निज्जामए नट्ठमईए नट्ठसुईए नट्ठसण्णे मूढदिसाभाए जाए यावि होत्था--न जाणइ कयरं देसं वा दिसं वा 'विदिसं वा पोयवहणे अवहिए त्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पे करतलपल्हत्थमुहे अट्टज्झाणोवगए झियायइ।।

उत्क्षेप-पद

१. भन्ते! यदि धर्म के आदिकर्त्ता यावत् सिद्धि गति सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के सोलहवें अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है तो भन्ते! उन्होंने ज्ञाता के सत्रहवें अध्ययन का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

२. जम्बू। उस काल और उस समय हस्तिशीर्ष नाम का नगर था--वर्णक........।

३. वहां कनककेतु नाम का राजा था--वर्णक........।

४. उस हस्तिशीर्ष नगर में बहुत से सांयात्रिक पोत-वणिक् रहते थे। वे आढ्य यावत् जन-समूह से अपराजित थे।

कालिकद्वीप-यात्रा पद

५. किसी समय एकत्र सम्मिलित उन सांयात्रिक पोत-वणिकों में परस्पर इस प्रकार का वार्तालाप हुआ--हमारे लिए उचित है हम गणनीय, धरणीय, मेय और परिच्छेद्य क्रयाणक लेकर पोत-वहन से लवणसमुद्र का अवगाहन करें। यह चिन्तन कर यावत् वे अर्हन्नक के समान लवणसमुद्र में अनेक शतयोजन तक पहुंच गए।

६. वे सांयात्रिक-पोत वणिक् जब लवणसमुद्र में अनेक शतयोजन तक पहुँच गये तब उनके सामने अनेक शत उत्पात 'प्रादुर्भूत हुए--जैसे अकाल में गर्जन, अकाल में विद्युत, अकाल में मेघ की गंभीर ध्वनि यावत् कालिक-वात (तूफान) उठा।

७. वह नौका कालिक-वात से बार-बार कम्पित, संचालित और संक्षुब्ध होती हुई वहीं चक्कर लगाने लगी।

८. उस निर्यामक की मति, श्रुति और संज्ञा नष्ट हो गई। वह दिग्मूढ़ हो गया। वह यह नहीं जानता कि पोत-वहन किस देश, किस दिशा अथवा किस विदिशा में अपहृत हो गया है--इसलिए वह भग्न-हृदय हो हथेली पर मुंह टिकाए आर्त्तध्यान में डूबा हुआ चिन्ता-मग्न हो रहा था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. तए णं ते बहवे कुच्छिधारा य कण्णधारा य गब्भेल्लगा य संजत्ता-नावावाणियगा य जेणेव से निज्जामए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता एवं वयासी--किण्णं तुमं देवाणुप्पिया! ओहयमण-संकप्पे करतलपल्हत्थमुहे अट्टज्झाणोवगए झियायसि?

९. वे बहुत से कुक्षिधार (पार्श्व-चालक), कर्णधार, पोत के भीतर रहने वाले कर्मकर-परिचारक और सांयात्रिक पोत-वणिक् जहां वह निर्यामक था, वहाँ आए। वहाँ आकर इस प्रकार बोले--देवानुप्रिय! तुम भग्न हृदय हो हथेली पर मुँह टिकाए आर्त्त ध्यान में डूबे हुए चिन्तामग्न क्यों हो रहे हो?

१०. तए णं से निज्जामए ते बहवे कुच्छिधारा य कण्णधारा य गब्भेल्लगा य संजत्ता-नावावाणियगा य एवं वयासी--एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! नट्ठमईए नट्ठसुईए नट्ठसण्णे मूढदिसाभाए जाए यावि होत्था--न जाणइ कयरं देसं वा दिसं वा विदिसं वा पोयवहणे अवहिए त्ति कट्टु तओ ओहयमणसंकप्पे करतलपल्हत्थमुहे अट्टज्झाणोवगए झियामि।।

१०. वह निर्यामक उन बहुत से कुक्षिधारों, कर्णधारों, पोत के भीतर रहने वाले कर्मकरों-परिचारकों और सांयात्रिक पोत-वणिकों से इस प्रकार बोला--देवानुप्रियो! मेरी मति, श्रुति और संज्ञा नष्ट हो गई है। मैं दिग्मूढ हो गया हूँ। मैं नहीं जानता यह पोतवहन किस देश, किस दिशा और किस विदिशा में अपहृत हो गया है। इसलिए मैं भग्न-हृदय हो हथेली पर मुंह टिकाए आर्त्तध्यान में डुबा चिन्तामग्न हो रहा हूँ।

११. तए णं ते कुच्छिधारा य कण्णधारा य गब्भेल्लगा य संजत्ता-नावावाणियगा य तस्स निज्जामयस्संतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म भीया तत्था उव्विग्गा उव्विग्गमणा ण्हाया कयबलिकम्मा करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु बहूणं इंदाण य खंधाण य रुद्दाण य सिवाण य वेसमणाण य नागाण य भूयाण य जक्खाण य अज्ज-कोट्टकिरियाण य बहूणि उवाइयसयाणि उवायमाणा-उवायमाणा चिट्ठंति।।

११. उस निर्यामक के इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर बहुत से कुक्षिधार, कर्णधार, पोत के भीतर रहने वाले कर्मकर-परिचारक और सांयात्रिक पोत वणिक् भीत, त्रस्त, उद्विग्न और उद्विग्न मन वाले हो गए। वे स्नान और बलिकर्म कर सटे हुए दस नखों वाली सिर दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर, मस्तक पर टिकाकर बहुत से इन्द्र, स्कन्द, रुद्र, शिव, वैश्रवण, नाग, भूत, यक्ष, आर्या और कोट्टक्रिया की अनेक शत मनौतियां करने लगे।

१२. तए णं से निज्जामए तओ मुहुत्तंतरस्स लद्धमईए लद्धसुईए लद्धसण्णे अमूढदिसाभाए जाए यावि होत्था।।

१२. उसके मुहूर्त्त भर पश्चात् उस निर्यामक को मति, श्रुति और संज्ञा उपलब्ध हुई। उसका दिशा भ्रम समाप्त हो गया।

१३. तए णं से निज्जामए ते बहवे कुच्छिधारा य कण्णधारा य गब्भेल्लगा य संजत्ता-नावावाणियगा य एवं वयासी--एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! लद्धमईए लद्धसुईए लद्धसण्णे अमूढदिसाभाए जाए। अम्हे णं देवाणुप्पिया! कालियदीवंतेणं संछूढा। एस णं कालियदीवे आलोक्कइ।।

१३. वह निर्यामक उन बहुत से कुक्षिधारों, कर्णधारों, पोत के भीतर रहने वाले कर्मकरों-परिचारकों और सांयात्रिक पोत-वणिकों से इस प्रकार बोला--देवानुप्रिये! मुझे मति, श्रुति और संज्ञा उपलब्ध हो गई है। मेरा दिशा भ्रम समाप्त हो गया है। देवानुप्रियो! हम कालिकद्वीप के पास आ गए हैं। यह कालिकद्वीप दिखाई दे रहा है।

कालियदीवे आसपेच्छण-पदं

कालिकद्वीप में अश्व-प्रेक्षण-पद

१४. तए णं ते कुच्छिधारा य कण्णधारा य गब्भेल्लगा य संजत्ता-नावावाणियगा य तस्स निज्जामगस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा हट्ठतुट्ठा पयक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव कालियदीवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पोयवहणं लंबेंति, लंबेत्ता एगट्ठियाहिं कालियदीवं उत्तरंति। तत्थ णं बहवे हिरण्णागरे य सुवण्णागरे य रयणागरे य वइरागरे य, बहवे तत्थ आसे पासंति, किं ते?--

हरिरेणु-सोणिसुत्तग-सकविल-मज्जार-पायकुक्कुड-वोंडसमुग्गयसामवण्णा।
गोहूमगोरंग-गोरपाडल-गोरा, पवालवण्णा य धूमवण्णा य केइ।।१।।

१४. निर्यामक से यह अर्थ सुनकर वे कुक्षिधार, कर्णधार, पोत के भीतर रहने वाले कर्मकर-परिचारक और सांयात्रिक पोत-वणिक्, हृष्ट-तुष्ट हुए। वे प्रदक्षिणानुकूल पवन के साथ जहां कालिकद्वीप था वहां आए। वहां आकर जहाज की लंगर डाली। डालकर नौकाओं द्वारा कालिकद्वीप पर उतरे। वहां उन्होंने बहुत सी हिरण्य, सुवर्ण, रत्न और वज्र की खानें देखी और बहुत से अश्व देखे। वे कैसे थे--

१. उनमें से कुछ अश्वों का कटिप्रदेश नील रज-कणों से लिप्त था। इसलिए वे कटिसूत्र पहने हुए से लगते थे। कुछ कपिल पक्षी, बिलाव, पादकुक्कुट और सम्पूर्ण कपास फल जैसे श्यामवर्ण वाले थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तलपत्त-रिट्ठवण्णा य, सालिवण्णा य भासवण्णा य केइ।
जंपिय-तिल-कीडगा य, सोलोय-रिट्ठगा य पुंड-पइया य कणग-पिट्ठा य केइ।।२।।

चक्कागपिट्ठवण्णा, सारसवण्णा य हंसवण्णा य केइ।
केइत्थ अब्भवण्णा, पक्कतल-मेघवण्णा य बाहुवण्णा केइ ।।३।।

संझाणुरागसरिसा, सुयमुह-गुंजद्धराग-सरिसत्थ केइ।
एलापाडल-गोरा, सामलया-गवलसामला पुणो केइ ।।४।।

बहवे अण्णे अणिद्देसा, सामा कासीसरत्तपीया, अच्चंतविसुद्धा वि य णं आइण्णग-जाइ-कुल-विणीय-गयमच्छरा।
हयवरा जहोवएस-कम्मवाहिणो वि य णं।
सिक्खा विणीयविणया,
लंघण-वग्गण-धावण-धोरण-तिवई जईण-सिक्खिय-गई।
किं ते? मणसा वि उव्विहंताइं अणेगाइं आससयाइं पासंति।।

कुछ गेहूं जैसे गौरांग और गौरी जाति के पाटल पुष्प जैसे गौर थे। कुछ प्रवाल जैसे रक्तवर्ण के और कुछ धूसरवर्ण वाले थे।

२. कुछ अश्व ताडपत्र और रीठा जैसे वर्णवाले[१] थे। कुछ शालि चावल जैसे श्वेत वर्ण और कुछ भस्म अथवा भाषपक्षी जैसे वर्णवाले थे। कुछ पुराने तिलों में उत्पन्न कीड़ों जैसे रंग के और कुछ प्रभास्वर रिष्टक रत्न जैसे चमकीले थे। कुछ अश्व श्वेत पांवों वाले और कुछ सुनहरी पीठ वाले थे।

३. कुछ अश्व चकवे की पीठ जैसे, कुछ सारस और कुछ हंस जैसे वर्णवाले थे। कुछ अश्व अभ्र जैसे वर्ण के, कुछ परिपक्व मेघ जैसे वर्ण के और कुछ नाना वर्ण वाले थे।

४. कुछ अश्व सन्ध्या राग, तोते की चोंच और गुञ्जार्ध जैसे रक्तिम थे। कुछ एला और पाटल जैसे गौर और कुछ प्रियङ्गुलता एवं महिष-शृंग जैसे श्याम थे।

अन्य भी अनेक प्रकार के अश्व थे जिनका किसी एक वर्ण से निर्देश नहीं किया जा सकता, जैसे श्याम, कासीस (रांगे जैसे) वर्ण वाले और चितकबरे। वे सब पूर्ण निर्दोष आकीर्णक नाम की अश्व जाति और कुल से सम्पन्न, विनीत और मात्सर्य रहित थे।

वे प्रवर अश्व उपदिष्ट क्रम के अनुसार ही चलने वाले थे। प्रशिक्षण के द्वारा विनय को उपलब्ध थे। वे लंघन, वल्गन धावन, धोरण, त्रिपदी[२] और वेगवती गति में प्रशिक्षित थे। अधिक क्या वे मन से भी सदा उछलते रहते थे। उन व्यापारियों ने सैंकड़ों अश्व देखे।

१५. तए णं ते आसा वाणियए पासंति, तेसिं गंधं आघायंति, आघाइत्ता भीया तत्था उव्विग्गा उव्विग्गमणा तओ अणेगाइं जोयणाइं उब्भमंति। ते णं तत्थ पउर-गोयरा पउर-तणपाणिया निब्भया निरुव्विग्गा सुहंसुहेणं विहरंति।।

१५. उन अश्वों ने उन व्यापारियों को देखा, उनकी गन्ध को सूंधा। गन्ध सूंघकर वे भीत, त्रस्त, उद्विग्न और उद्विग्नमन वाले होकर अनेक योजन दूर भाग गए। वहां उन्होंने प्रचुर गोचर भूमि (चरागाह) और प्रचुर घास-पानी को प्राप्त किया और निर्भय, निरुद्विग्न रह कर सुखपूर्वक विहार करने लगे।

संजत्तियाणं पुणरागमण-पदं

१६. तए णं ते संजत्ता-नावावाणियगा अण्णमण्णं एवं वयासी--किण्णं अम्हं देवाणुप्पिया! आसेहिं? इमे णं बहवे हिरण्णागरा य सुवण्णागरा य रयणागरा य वइरागरा य। तं सेयं खलु अम्हं हिरण्णस्स य सुवण्णस्य य रयणस्स य वइरस्स य पोयवहणं भरित्तए त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति पडिसुणेत्ता हिरण्णस्स य सुवण्णस्स य रयणस्स य वइरस्स य तणस्स य कट्ठस्स य अन्नस्स य पाणियस्स य पोयवहणं भरेंति, भरेत्ता पयक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव गंभीरए पोयपट्टणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पोयवहणं लंबेंति, लंबेत्ता सगडी-सागडं सज्जेंति, सज्जेत्ता तं हिरण्णं च सुवण्णं च रयणं च वइरं च एगट्ठियाहिं पोयवहणाओ संचारेंति, संचारेत्ता सगडी-सागडं संजोएंति, जेणेव हत्थिसीसए नयरे तेणेव

सांयात्रिकों का पुनरागमन-पद

१६. वे सांयात्रिक पोत-वणिक् परस्पर इस प्रकार कहने लगे--देवानुप्रियो! हमें अश्वों से क्या प्रयोजन? ये बहुत-सी हिरण्य, सुवर्ण, रत्न और वज्र की खानें रहीं। अतः हमारे लिए उचित है, हम हिरण्य, सुवर्ण, रत्न और वज्र से अपना पोत वहन भर लें--उन्होंने परस्पर यह अर्थ स्वीकार किया। स्वीकार कर हिरण्य, सुवर्ण, रत्न और वज्र तथा घास, काठ, अन्न और जल से पोतवहन भरे। भरकर प्रदक्षिणानुकूल पवन के साथ जहां 'गम्भरीक' पोतपत्तन (बंदरगाह) था, वहां आए। वहां आकर जहाज का लंगर डाला। लंगर डालकर अनेक छोटे बड़े वाहन तैयार किये। तैयार कर नौकाओं द्वारा जहाज से हिरण्य, सुवर्ण, रत्न और वज्र संचालित किया। संचालित कर छोटे-बड़े वाहनों को भरा। जहां हस्तिशीर्ष नगर था, वहां आये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उवागच्छंति, उवागच्छित्ता हत्थिसीसयस्स नयरस्स बहिया अग्गुज्जाणे सत्थनिवेसं करेंति, करेत्ता सगडी-सागडं मोएंति, मोएत्ता महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायारिहं पाहुडं गेण्हंति, गेण्हित्ता हत्थिसीसयं नयरं अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता जेणेव से कणगकेऊ राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायारिहं पाहुडं उवणेंति।।

वहां आकर हस्तिशीर्ष नगर के बाहर प्रधान उद्यान में सार्थ को ठहराया। ठहराकर छोटे बड़े वाहन खोले। खोलकर महान अर्थवान, महान मूल्यवान और महान अर्हता वाला राजाओं के योग्य विपुल उपहार लिया। उपहार लेकर हस्तिशीर्ष नगर में प्रवेश किया। प्रवेश कर जहां कनककेतु राजा था, वहां आए। वहां आकर महान अर्थवान, महान मूल्यवान और महान अर्हता वाला राजाओं के योग्य विपुल उपहार भेंट किया।

आसाण आणयण-पदं

१७. तए णं से कणगकेऊ राया तेसिं संजत्ता-नावावाणियगाणं तं महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायारिहं पाहुडं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता ते संजत्ता-नावावाणियगे एवं वयासी--तुब्भे णं देवाणुप्पिया! गामागर-नगर-खेड-कब्बड-दोणमुह-मडंब-पट्टण-आसम-निगम-संबाह-सण्णिवेसाइं आहिंडह, लवणसमुद्दं च अभिक्खणं-अभिक्खणं पोयवहणेणं ओगाहेह। तं अत्थियाइं च केइ भे कहिंचि अच्छेरए दिट्ठपुव्वे?

१८. तए णं ते संजत्ता-नावावाणियगा कणगकेउं एवं वयासी--एवं खलु अम्हे देवाणुप्पिया! इहेव हत्थिसीसे नयरे परिवसामो तं चेव जाव कालियदीवंतेणं संछूढा। तत्थ णं बहवे हिरण्णागरे य सुवण्णागरे य रयणागरे य वइरागरे य बहवे तत्थ आसे पासामो।

किं ते? हरिरेणु जाव अम्हं गंधं आघायंति, आघाइत्ता भीया तत्था उव्विग्गा उव्विग्गमणा तओ अणेगाइं जोयणाइं उब्भमंति। तए णं सामी! अम्हेहिं कालियदीवे 'ते आसा' अच्छेरए दिट्ठपुव्वे।।

१९. तए णं से कणगकेऊ तेसिं संजत्ता-नावावाणियगाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म ते संजत्ता-नावावाणियए एवं वयासी--गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! मम कोडुंबियपुरिसेहिं सद्धिं कालियदीवाओ ते आसे आणेह।।

२०. तए णं ते संजत्ता-नावावाणियगा एवं सामि! त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति।।

२१. तए णं से कणगकेऊ कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! संजत्ता-नावावाणियएहिं सद्धिं कालियदीवाओ मम आसे आणेह। तेवि पडिसुणेंति।।

अश्वों का आनयन-पद

१७. कनककेतु राजा ने उन सांयात्रिक पोत-वणिकों का वह महान अर्थवान, महान मूल्यवान और महान अर्हता वाला राजाओं के योग्य विपुल उपहार स्वीकार किया। स्वीकार कर उन पोतवणिकों से इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम बहुत से ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्बट, द्रोणमुख, मडम्ब, पत्तन, आश्रम, निगम, संबाह और सन्निवेशों में घूमते हो और पोतवहन से बार-बार लवणसमुद्र का अवगाहन करते हो। अत: तुम लोगों ने कहीं पर भी कोई आश्चर्य देखा है?

१८. वे सांयात्रिक पोत-वणिक् उस कनककेतु राजा से इस प्रकार बोले--देवानुप्रिय! हम यहीं हस्तिशीर्ष नगर में रहते हैं। पूर्ववत् वक्तव्यता यावत् हम कालिक द्वीप के पास पहुंचे, वहां हमने बहुत सी हिरण्य, सुवर्ण, रत्न और वज्र की खानें देखी और बहुत से अश्व देखे।

वे कैसे थे?

कुछ अश्वों का कटिप्रदेश नीलरजकणों से लिप्त था--इसलिए वे कटिसूत्र पहने हुए से लगते थे यावत् उन अश्वों ने हमें सूंघा। सूंघकर भीत, त्रस्त, उद्विग्न और उद्विग्नमन वाले होकर अनेक योजन दूर भाग गए।

अत: स्वामिन्! हमने कालिकद्वीप में उन अश्वों को आश्चर्य रूप में देखा है।

१९. वह कनककेतु राजा उन सांयात्रिक पोतवणिकों से यह अर्थ सुनकर, अवधारण कर उन सांयात्रिक पोतवणिकों से इस प्रकार बोला--देवानुप्रियो! तुम मेरे कौटुम्बिक पुरुषों के साथ जाओ और कालिकद्वीप से उन अश्वों को लाओ।

२०. ऐसा ही होगा, स्वामिन्! इस प्रकार सांयात्रिक पोतवणिकों ने राजा के आज्ञा-वचन को विनय-पूर्वक स्वीकार किया।

२१. उस कनककेतु राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम इन सांयात्रिक पोतवणिकों के साथ जाओ और कालिकद्वीप से मेरे लिए अश्व लाओ।

उन्होंने भी स्वीकार किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सगडी-सागडं सज्जेंति, सज्जेत्ता तत्थ णं बहूणं वीणाण य वल्लकीण य भामरीण य कच्छभीण य भंभाण य छब्भामरीण य चित्तवीणाण य अण्णेसिं च बहूणं सोइंदिय-पाउग्गाणं दव्वाणं सगडी-सागडं भरेंति। बहूणं किण्हाण य नीलाण य लोहियाण य हालिद्दाण य सुक्किलाण य कट्ठकम्माण य चित्तकम्माण य पोत्थकम्माण य लेप्पकम्माण य गंथिमाण य वेढिमाण य पूरिमाण य संघाइमाण य अण्णेसिं च बहूणं चक्खिंदिय-पाउग्गाणं दव्वाणं सगडी-सागडं भरेंति। बहूणं कोट्ठपुडाण य पत्तपुडाण य चोयपुडाण य तगरपुडाण य एलापुडाण य हिरिवेरपुडाण य चंदणपुडाण य कुंकुमपुडाण य उसीरपुडाण य चंपगपुडाण य मरुयगपुडाण य दमणगपुडाण य जातिपुडाणा य जूहियापुडाण य मल्लियापुडाण य वासंतियापुडाण य केयइपुडाण य कप्पूरपुडाण य पाडलपुडाण य अण्णेसिं च बहूणं घाणिंदिय-पाउग्गाणं दव्वाणं सगडी-सागडं भरेंति। बहुस्स खंडस्स य गुलस्स य सक्कराए य मच्छंडियाए य पुप्फुत्तर-पउमुत्तराए अण्णेसिं च जिब्भिंदिय-पाउग्गाणं दव्वाणं सगडी-सागडं भरेंति। बहूणं कोयवाण य कंबलाण य पावाराण य नवतयाण य मलयाण य मसूराण य सिलावट्टाण य जाव हंसगब्भाण य अण्णेसिं च फासिंदिय-पाउग्गाणं दव्वाणं सगडी-सागडं भरेंति, भरेत्ता सगडी-सागडं जोयंति, जोइत्ता जेणेव गंभीरए पोयट्ठाणे तेणेव उवागच्छंति, सगडी-सागडं मोएंति, मोएत्ता पोयवहणं सज्जेंति, सज्जेत्ता तेसिं उक्किट्ठाणं सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधाणं कट्ठस्स य तणस्स य पाणियस्स य तंदुलाण य समियस्स य गोरसस्स य जाव अण्णेसिं च बहूणं पोयवहणपाउग्गाणं पोयवहणं भरेंति, भरेत्ता दक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव कालियदीवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पोयवहणं लंबेंति, लंबेत्ता ताइं उक्किट्ठाइं सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधाइं, एगट्टियाहिं कालियदीवं उत्तरेंति।

जहिं-जहिं च णं ते आसा आसयंति वा सयंति वा चिट्ठंति वा तुयट्टंति वा तहिं-तहिं च णं ते कोडुंबियपुरिसा ताओ वीणाओ य जाव चित्तवीणाओ य अण्णाणि य बहूणि सोइंदिय-पाउग्गाणि य दव्वाणि समुदीरेमाणा-समुदीरेमाणा ठवेंति, तेसिं च परिपेरंतेणं पासए ठवेंति, ठवेत्ता निच्चला निप्फंदा तुसिणीया चिट्ठंति।

जत्थ-जत्थ ते आसा आसयंति वा सयंति वा चिट्ठंति वा तुयट्टंति वा तत्थ-तत्थ णं ते कोडुंबियपुरिसा बहूणि किण्हाणि य नीलाणि य लोहियाणी य हालिद्दाणी य सुक्किलाणि य कट्ठकम्माणि य जाव संघाइमाणि य अण्णाणि स बहूणि चक्खिंदिय-पाउग्गाणि य दव्वाणि ठवेंति, तेसिं परिपेरंतेणं पासए ठवेंति, ठवेत्ता निच्चला निप्फंदा तुसिणीया चिट्ठंति।

जत्थ-जत्थ ते आसा आसयंति वा सयंति वा चिट्ठंति वा तुयट्टंति वा तत्थ-तत्थ णं ते कोडुंबियपुरिसा तेसिं बहूणं कोट्ठपुडाण य जाव पाडलपुडाण य अण्णेसिं च बहूणं घाणिंदिय-पाउग्गाणं

२२. उन कौटुम्बिक पुरुषों ने छोटे बड़े वाहन तैयार किये। तैयार कर वीणाओं, वल्लकी-वीणाओं (सात तन्त्रियों से बजने वाली) भ्रामरी-वीणाओं, कच्छभी वीणाओं, भेरियों, षड्भ्रामरी-वीणाओं, चित्र-वीणाओं और श्रोत्रेन्द्रिय प्रायोग्य अन्य अनेक द्रव्यों से छोटे बड़े वाहन भरे।

उन्होंने बहुत से कृष्ण, नील, लोहित, हारिद्र, एवं शुक्ल वर्ण के काष्ठकर्म, चित्रकर्म, पुस्तकर्म, लेप्यकर्म तथा ग्रन्थित, वेष्टित, पूरित एवं संघात्य वस्तुओं से और चक्षुरिन्द्रिय-प्रायोग्य अन्य अनेक द्रव्यों से छोटे बड़े वाहन भरे।

उन्होंने बहुत से कोष्ठ-पुटों (गंधद्रव्यों), पत्र-पुटों, त्वक्-पुटों, तगर-पुटों, एला-पुटों, तृण-पुटों, चंदन-पुटों, कुंकुम-पुटों, उसीर-पुटों, चम्पक-पुटों, मर्वक (मरुवा)-पुटों, द्रमक-पुटों[1], जाति-पुटों, जूहिका-पुटों, मल्लिका-पुटों, वासन्तिका-पुटों, केतकी-पुटों, कर्पूर-पुटों, पाटल-पुटों और घ्राणेन्द्रिय प्रायोग्य अन्य अनेक द्रव्यों से छोटे बड़े वाहन भरे।

उन्होंने बहुत-सी खाण्ड, गुड़, शक्कर, मत्स्यण्डिका, पुष्पोत्तर, पद्मोत्तर[6] (फूलों या कमल के फूलों से बनी हुई खाण्ड) और रसनेन्द्रिय प्रायोग्य अन्य अनेक द्रव्यों से छोटे बड़े वाहन भरे।

उन्होंने बहुत सी रजाइयों, कम्बलों, प्रावरणों (पर्दों), जीनों, मलय-मसूर के आसनों, शिलापट्टों यावत् हंसगर्भ वस्त्रों और स्पर्शनेन्द्रिय प्रायोग्य अन्य प्रकार के द्रव्यों से छोटे बड़े वाहन भरे। भरकर छोटे बड़े वाहन जोते। जोतकर जहां गंभीरक बन्दरगाह था, वहां आए। छोटे बडे वाहन खोले। खोलकर पोतवहन तैयार किए। तैयार कर उन उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध-द्रव्यों से तथा काठ, घास, पानी, चावल, गेहूं का आटा, गोरस यावत् अन्य अनेक पोतवहन प्रायोग्य पदार्थों से उस पोतवहन को भरा। भरकर दक्षिणानुकूल पवन के साथ जहां कालिकद्वीप था, वहां आए। वहां आकर जहाज का लंगर डाला। लंगर डालकर उन उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध-द्रव्यों को नौकाओं द्वारा कालिकद्वीप पर उतारा।

जहां-जहां वे अश्व बैठते, सोते, खड़े रहते अथवा त्वग्-वर्तन करते, वहां-वहां वे कौटुम्बिक पुरुष उन वीणाओं यावत् चित्र-वीणाओं और अन्य अनेक श्रोत्रेन्द्रिय-प्रायोग्य द्रव्यों (मधुर स्वरों) की उदीरणा करते हुए रहते। उन अश्वों के आसपास चारों ओर जाल बिछा देते। बिछाकर स्वयं निश्चल, निष्पन्द एवं मौन रहते।

जहां-जहां वे अश्व बैठते, सोते, खड़े रहते अथवा त्वग् वर्तन करते, वहां-वहां वे कौटुम्बिक पुरुष बहुत से कृष्ण, नील, लोहित, हारिद्र और शुक्ल वर्ण के काष्ठ कर्म यावत् संघात्य वस्तुएं और अनेक चक्षुरिन्द्रिय प्रायोग्य द्रव्य रख देते। उन अश्वों के आसपास चारों ओर जाल बिछा देते। बिछाकर स्वयं निश्चल, निष्पन्द एवं मौन रहते।

जहां-जहां वे अश्व बैठते, सोते, खड़े रहते अथवा त्वग् वर्तन करते, वहां-वहां वे कौटुम्बिक पुरुष बहुत से कोष्ठ-पुटों यावत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दव्वाणं पुंजे य नियरे य करेंति, करेत्ता तेसिं परिपेरंतेण पासए ठवेंति, ठवेत्ता निच्चला निप्फंदा तुसिणीया चिट्ठंति।

जत्थ-जत्थ ते आसा आसयंति वा सयंति वा चिट्ठंति वा तुयट्टंति वा तत्थ-तत्थ णं ते कोडुंबियपुरिसा गुलस्स जाव पुप्फुत्तर-पउमुत्तराए अण्णेसिं च बहूणं जिब्भिंदिय-पाउग्गाणं दव्वाणं पुंजे य नियरे य करेंति, करेत्ता वियरह खणंति, खणित्ता गुलपाणगस्स खंडपाणगस्स बोरपाणगस्स अण्णेसिं च बहूणं पाणगाणं वियरए भरेंति, भरेत्ता तेसिं परिपेरंतेणं पासए ठवेंति, ठवेत्ता निच्चला निप्फंदा तुसिणीया चिट्ठंति।

जहिं-जहिं च णं ते आसा आसयंति वा सयंति वा चिट्ठंति वा तुयट्टंति वा तहिं-तहिं च णं ते कोडुंबियपुरिसा बहवे कोयवया जाव सिलावट्टया अण्णाणि य फासिंदिय-पाउग्गाइं अत्थुय-पच्चत्थुयाइं ठवेंति, ठवेत्ता तेसिं परिपेरंतेणं पासए ठवेंति, ठवेत्ता निच्चला निप्फंदा तुसिणीया चिट्ठंति।।

पाटल-पुटों और अन्य अनेक घ्राणेन्द्रिय प्रायोग्य द्रव्यों के पुञ्ज और निकर करते। निकर बनाकर उनके आसपास चारों ओर जाल बिछा देते। बिछाकर स्वयं निश्छल, निष्पन्द एवं मौन रहते।

जहां-जहां वे अश्व बैठते, सोते, खड़े रहते अथवा त्वग् वर्तन करते, वहां-वहां वे कौटुम्बिक पुरुष बहुत सा गुड़ यावत् पुष्पोत्तर-पद्मोत्तर[४] और अन्य अनेक रसनेन्द्रिय-प्रायोग्य द्रव्यों के पुञ्ज और निकर करते। ऐसा कर विवर खोदते। खोदकर उन्हें गुड़-पानक, खाण्ड-पानक, बोर-पानक तथा अन्य अनेक पानकों से भरते। भरकर उन अश्वों के आसपास चारों ओर जाल बिछा देते। बिछाकर स्वयं निश्चल, निष्पन्द एवं मौन रहते।

जहां-जहां वे अश्व बैठते, सोते, खड़े रहते अथवा त्वग् वर्तन करते, वहां-वहां वे कौटुम्बिक पुरुष बहुत सी रजाइयां यावत् शिलापट्टक तथा अन्य अनेक स्पर्शनेन्द्रिय प्रायोग्य आस्तरण, प्रत्यास्तरणों की स्थापना करते। स्थापना कर उन अश्वों के चारों ओर जाल बिछा देते। बिछाकर स्वयं निश्चल, निष्पन्द एवं मौन रहते।

२३. तए णं ते आसा जेणेव ते उक्किट्ठा सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधा तेणेव उवागच्छंति।।

२३. तब वे अश्व, जहां वे उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध थे, वहां आते।

अमुच्छिय-आसाणं सायत्त-विहार-पदं

२४. तत्थ णं अत्थेगइया आसा अपुव्वा णं इमे सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधत्ति कट्टु तेसु उक्किट्ठेसु सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधेसु अमुच्छिया अगढिया अगिद्धा अणज्झोववण्णा तेसिं उक्किट्ठाणं सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधाणं दूरंदूरेणं अवक्कमंति। ते णं तत्थ पउर-गोयरा पउर-तणपाणिया निब्भया निरुव्विग्गा सुहंसुहेणं विहरंति।।

अमूर्च्छित अश्वों का स्वायत्त-विहार-पद

२४. ये शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध अपूर्व हैं--ऐसा मानकर उनमें से कुछ अश्व उन उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंधद्रव्यों से मूर्च्छित, ग्रथित, गृद्ध एवं अध्युपपन्न नहीं हुए, अपितु उन्होंने उन उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्धद्रव्यों का दूर से ही अपक्रमण कर दिया। वहां वे प्रचुर गोचरभूमि तथा प्रचुर घास पानी को प्राप्त हुए और निर्भय, निरुद्विग्न रह कर सुखपूर्वक विहार करने लगे।

निगमण-पदं

२५. एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइ ए समाणे सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधेसु नो सज्जइ नो रज्जइ नो गिज्झइ नो मुज्झइ नो अज्झोववज्झइ, से णं इहलोए चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाण य अच्चणिज्जे जाव चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइस्सइ।।

निगमन-पद

२५. आयुष्मन् श्रमणो! इसी प्रकार हमारा जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य-उपाध्याय के पास मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित हो शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध-द्रव्यों में आसक्त, अनुरक्त, गृद्ध, मुग्ध और अध्युपपन्न नहीं होता, वह इस लोक में भी बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों और बहुत श्राविकाओं द्वारा अर्चनीय होता है यावत् वह चार अन्त वाले संसार-रूपी कान्तार का पार पा लेगा।

मुच्छिय-आसाणं परायत्त-पदं

२६. तत्थ णं अत्थेगइया आसा जेणेव उक्किट्ठा सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधा तेणेव उवागच्छंति। तेसु उक्किट्ठेसु सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधेसु मुच्छिया गढिया गिद्धा अज्झोववण्णा आसेविउं पयत्ता यावि होत्था।।

मूर्च्छित अश्वों का परायत्त-पद

२६. कुछ अश्व, जहां वे उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध-द्रव्य थे, वहां आए। उन उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध-द्रव्यों में मूर्च्छित, ग्रथित, गृद्ध और अध्युपपन्न हो, उनके आसेवन में प्रवृत हो गए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७. तए णं ते आसा ते उक्किट्ठे सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधे आसेवमाणा तेहिं बहूहिं कूडेहि य पासेहि य गलएसु य पाएसु य बज्झंति।।

२७. उन उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध-द्रव्यों का आसेवन करते हुए अनेक कूट-बन्धनों और पाश-बन्धनों में उन अश्वों के गले और पांव बंध गए।

२८. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा ते आसे गिण्हंति, गिण्हित्ता एगट्ठियाहिं पोयवहणे संचारेंति, कट्ठस्स य तणस्स य पाणियस्स य तंदुलाण य समियस्स य गोरसस्स य जाव अण्णेसिं च बहूणं पोयवहणपाउग्गाणं पोयवहणं भरेंति।।

२८. कौटुम्बिक पुरुषों ने उन अश्वों को पकड़ा। पकड़कर नौकाओं द्वारा पोत वहन में संचालित किया। काठ, घास, पानी, चावल, गेहूं का आटा, गौरस यावत् अन्य अनेक पोतवहन प्रायोग्य पदार्थों से उस पोत वहन को भरा।

२९. तए णं से संजत्ता-नावावाणियगा दक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव गंभीरए पोयपट्टणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पोयवहणं लंबेंति, लंबेत्ता ते आसे उत्तारेंति, उत्तारेत्ता जेणेव हत्थिसीसे नयरे जेणेव कणगकेऊ राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति ते आसे उवणेंति।।

२९. वे सांयात्रिक-पोतवणिक् दक्षिणानुकूल पवन के साथ जहां गम्भीरक बन्दरगाह था, वहां आए। वहां आकर जहाज का लंगर डाला। लंगर डालकर उन घोड़ों को उतारा। जहां हस्तिशीर्ष नगर था और जहां कनककेतु राजा था, वहां आए। वहां आकर सटे हुए दस नखों वाली दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर जय-विजय की ध्वनि से वर्धापन किया और उन अश्वों को समर्पित किया।

३०. तए णं से कणगकेऊ राया तेसिं संजत्ता-नावावाणियगाणं उस्सुंकं वियरइ, सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ।।

३०. कनककेतु राजा ने उन सांयात्रिक-पोतवणिकों को कर-मुक्त किया। उन्हें सत्कृत किया। सम्मानित किया। सत्कृत-सम्मानित कर प्रतिविसर्जित किया।

३१. तए णं से कणगकेऊ राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ।।

३१. कनककेतु राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर उन्हें सत्कृत-सम्मानित किया। सत्कृत-सम्मानित कर प्रतिविसर्जित किया।

३२. तए णं से कणगकेऊ राया आसमद्दए सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--तुब्भे णं देवाणुप्पिया! मम आसे विणएह।।

३२. कनककेतु राजा ने अश्वमर्दकों (अश्व-प्रशिक्षकों) को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम मेरे इन अश्वों को प्रशिक्षित करो।

३३. तए णं ते आसमद्दगा तहत्ति पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता ते आसे बहूहिं मुहबंधेहि य कण्णबंधेहि य नासाबंधेहि य वालबंधेहि य खुरबंधेहि य कडगबंधेहि य खलिणबंधेहि य ओवीलणाहि य पडयाणेहि य अंकणाहि य वेत्तप्पहारेहि य लयप्पहारेहि य कसप्पहारेहि य छिवप्पहारेहि य विणयंति, विणइत्ता कणगकेउस्स रण्णो उवणेंति।।

३३. उन अश्व-प्रशिक्षकों ने 'तथेति' कहकर स्वीकार किया। स्वीकार कर उन अश्वों को विविध प्रकार के मुख-बन्धनों, कर्ण-बन्धनों, नासा-बन्धनों, बाल-बन्धनों, खुर-बन्धनों, कटक-बन्धनों, खलीन-बन्धनों, अवपीड़न-बन्धनों, पर्याणों, अंकनों, वेत्र-प्रहारों, लता-प्रहारों, कशा-प्रहारों और छिवा-प्रहारों से प्रशिक्षित किया। प्रशिक्षित कर उन्हें राजा कनककेतु को समर्पित किया।

३४. तए णं से कणगकेऊ राया ते आसमद्दए सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ।।

३४. राजा कनककेतु ने उन अश्व-प्रशिक्षकों को सत्कृत किया। सम्मानित किया। सत्कृत-सम्मानित कर उन्हें प्रतिविसर्जित किया।

३५. तए णं ते आसा बहूहिं मुहबंधेहि य जाव छिवप्पहारेहि य बहूणि सारीरमाणसाइं दुक्खाइं पावेंति।।

३५. वे अश्व बहुत से मुख-बन्धनों यावत् छिवा-प्रहारों से अनेक-अनेक शारीरिक और मानसिक दुःख को प्राप्त हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निगमण-पदं

३६. एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे इट्ठेसु सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधेसु सज्जइ रज्जइ गिज्झइ मुज्झइ अज्झोववज्झइ, से णं इहलोए चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावगाणं बहूणं सावियाण य हीलणिज्जे जाव चाउरंतं संसारकंतारं भुज्जो-भुज्जो अणुपरियट्टिस्सइ।।

निगमन-पद

३६. आयुष्मन् श्रमणो! इसी प्रकार हमारा जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य-उपाध्याय के पास मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित हो इष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्धद्रव्यों में आसक्त, अनुरक्त, गृद्ध, मुग्ध और अध्युपपन्न होता है, वह इस लोक में भी बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों और बहुत श्राविकाओं द्वारा अवहेलनीय होता है यावत् वह चार अंत वाले संसार-रूपी कान्तार में पुनः पुनः अनुपरिवर्तन करेगा।

गाहा—

कल-रिभिय-महुर-तंती-तल-ताल-वंस-कउहाभिरामेसु।
सद्देसु रज्जमाणा, रमंति सोइंदिय-वसट्टा।।१।।

सोइंदिय-दुद्दंतत्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो।
दीविग-रुयमसहंतो, वहबंधं तित्तिरो पत्तो।।२।।

थण-जहण-वयण-कर-चरण-नयण-गव्विय-विलासियगईसु।
रूवेसु रज्जमाणा, रमंति चक्खिंदिय-वसट्टा।।३।।

चक्खिंदिय-दुद्दंतत्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो।
जं जलणंमि जलंते, पडइ पयंगो अबुद्धीओ।।४।।

अगरुवर-पवरधूवण-उउयमल्लाणुलेवणविहीसु।
गंधेसु रज्जमाणा, रमंति घाणिंदिय-वसट्टा।।५।।

घाणिंदिय-दुद्दंतत्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो।
जं ओसहिगंधेणं, बिलाओ निद्धावई उरगो।।६।।

तित्त-कडुयं कसायं, महुरं बहुखज्ज-पेज्ज-लेज्झेसु।
आसायंमि उ गिद्धा रमंति जिब्भिंदिय-वसट्टा।।७।।

जिब्भिंदिय-दुद्दंतत्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो।
जं गललग्गुक्खित्तो, फुरइ थलविरेल्लिओ मच्छो।।८।।

गाथा

१. श्रोत्रेन्द्रिय की अधीनता से आर्त्त बने प्राणी प्रधान और अभिराम शब्द उत्पन्न करने वाले तंत्री, तल--ताल और बांसुरी के कमनीय, स्वरघोलना युक्त और मधुर शब्दों में अनुरक्त होकर प्रमुदित होते हैं।

२. श्रोत्रेन्द्रिय की दुर्दान्तता का इतना दोष है, जैसे--शिकारी के पिंजरे में स्थित तित्तिरि* के शब्द को सुन अधीर बना हुआ तीतर अपने घोसले से बाहर निकलता है और वध व बन्धन को प्राप्त होता है।

३. चक्षुरिन्द्रिय की अधीनता से आर्त्त बने प्राणी स्त्रियों के स्तन, जघन, मुख, हाथ, पांव, नयन तथा गर्वित एवं विलासपूर्ण गति वाले रूपों में अनुरक्त होकर प्रमुदित होते हैं।

४. चक्षुरिन्द्रिय की दुर्दान्तता का इतना दोष है, जैसे--अज्ञानी शलभ जलती हुई आग में गिर जाता है।

५. घ्राणेन्द्रिय की अधीनता से आर्त्त बने प्राणी काली अगर, प्रवर-धूप, ऋतु प्राप्त पुष्प-मालाओं और विलेपन विधियों वाले गन्ध-द्रव्यों में अनुरक्त होकर प्रमुदित होते हैं।

६. घ्राणेन्द्रिय की दुर्दान्तता का इतना दोष है, जैसे--औषधियों की गन्ध से अभिभूत होकर सांप बिल से निकलता है और वध-बन्धन को प्राप्त होता है।

७. रसनेन्द्रिय की अधीनता से आर्त्त बने प्राणी तीते, कडुवे, कषैले और मीठे बहुत प्रकार के खाद्य, पेय एवं लेह्य पदार्थों के आस्वादन में गृद्ध होकर प्रमुदित होते हैं।

८. रसनेन्द्रिय की दुर्दान्तता का इतना दोष है, जैसे--गले में फंसे लोहमय कांटे के द्वारा जल से निकलकर धरती पर गिराया गया मत्स्य तड़पता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उउ-भयमाणसुहेसु य, सविभव-हिययमण-निव्वुइकरेसु।
फासेसु रज्जमाणा, रमंति फासिंदिय-वसट्टा।।९।।

९. स्पर्शनेन्द्रिय की अधीनता से आर्त्त बने प्राणी विविध ऋतुओं में सेवन-सुखद तथा वैभवशाली व्यक्तियों के हृदय और मन को शान्ति देने वाले स्पर्शों में अनुरक्त होकर प्रमुदित होते हैं।

फासिंदिय-दुद्दंतत्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो।
जं खणइ मत्थयं कुंजरस्स लोहंकुसो तिक्खो।।१०।।

१०. स्पर्शनेन्द्रिय की दुर्दान्तता का इतना दोष है, जैसे--एक लोहमय तीक्ष्ण अंकुश हाथी के मस्तक को विदीर्ण कर देता है।

कल-रिभिय-महुर-तंती-तल-ताल-वंस-कउहाभिरामेसु।
सद्देसु जे न गिद्धा, वसट्टमरणं न ते मरए।।११।।

११. जो प्राणी प्रधान और अभिराम शब्द उत्पन्न करने वाले तंत्री, तल-ताल और बांसुरी के कमनीय, स्वर-घोलना युक्त और मधुर शब्दों में गृद्ध नहीं होते वे वशार्त्त मरण को प्राप्त नहीं होते।

थण-जहण-वयण-कर-चरण-नयण-गव्विय-विलासियगईसु।
रूवेसु जे न रत्ता, वसट्टमरणं न ते मरए।।१२।।

१२. जो प्राणी स्त्रियों के स्तन, जघन, मुख, हाथ, पांव, नयन तथा गर्वित एवं विलासपूर्ण गति वाले रूपों में अनुरक्त नहीं होते, वे वशार्त्त मरण को प्राप्त नहीं होते।

अगरुवर - पवर - धूवण - उउयमल्लाणुलेवणविहीसु।
गंधेसु जे न गिद्धा, वसट्टमरणं न ते मरए।।१३।।

१३. जो प्राणी काली अगर, प्रवर-धूप, ऋतु-प्राप्त पुष्प-मालाओं और विलेपन वाले गन्ध द्रव्यों में गृद्ध नहीं होते, वे वशार्त्त मरण को प्राप्त नहीं होते।

तित्त-कडुयं, कसायं, महुरं बहुखज्ज-पेज्ज-लेज्झेसु।
आसायंमि न गिद्धा, वसट्टमरणं न ते मरए।।१४।।

१४. जो प्राणी तीते, कडुवे, कषैले और मीठे बहुत प्रकार के खाद्य, पेय, एवं लेह्य पदार्थों के आस्वादन में गृद्ध नहीं होते, वे वशार्त्त मरण को प्राप्त नहीं होते।

उउ-भयमाणसुहेसु य, सविभव-हिययमण-निव्वुइकरेसु।
फासेसु जे न गिद्धा, वसट्टमरणं न ते मरए।।१५।।

१५. जो प्राणी विविध ऋतुओं में सेवन-सुखद तथा वैभवशाली व्यक्तियों के हृदय और मन को शान्ति देने वाले स्पर्शों में गृद्ध नहीं होते, वे वशार्त्त मरण को प्राप्त नहीं होते।

सद्देसु य भद्दय-पावएसु सोयविसयमुवगएसु।
तुट्ठेण व रुट्ठेण व, समणेण सया न होयव्वं।।१६।।

१६. श्रोत्र-विषय के प्राप्त होने पर प्रिय एवं अप्रिय शब्दों में श्रमण कभी भी तुष्ट एवं रुष्ट न हो।

रूवेसु य भद्दय-पावएसु चक्खुविसयमुवगएसु।
तुट्ठेण व रुट्ठेण व, समणेण सया न होयव्वं।।१७।।

१७. चक्षु विषय के प्राप्त होने पर प्रिय एवं अप्रिय रूपों में श्रमण कभी भी तुष्ट एवं रुष्ट न हो।

गंधेसु य भद्दय-पावएसु घाणविसयमुवगएसु।
तुट्ठेण व रुट्ठेण व, समणेण सया न होयव्वं।।१८।।

१८. घ्राण-विषय के प्राप्त होने पर प्रिय एवं अप्रिय गन्धों में श्रमण कभी भी तुष्ट एवं रुष्ट न हो।

रसेसु य भद्दय-पावएसु जिब्भविसयमुवगएसु।
तुट्ठेण व रुट्ठेण व, समणेण सया न होयव्वं।।१९।।

१९. रसना विषय के प्राप्त होने पर प्रिय एवं अप्रिय रसों में श्रमण कभी भी तुष्ट और रुष्ट न हो।

फासेसु य भद्दय-पावएसु कायविसयमुवगएसु।
तुट्ठेण व रुट्ठेण व, समणेण सया न होयव्वं।।२०।।

२०. काय विषय के प्राप्त होने पर प्रिय एवं अप्रिय स्पर्शों में श्रमण कभी भी तुष्ट एवं रुष्ट न हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सत्तरसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।।

—त्ति बेमि

३७. जम्बू! इस प्रकार धर्म के आदिकर्ता यावत् सिद्धि गति सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के सत्रहवें अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

— ऐसा मैं कहता हूँ।

वृत्तिकृता समुद्धृता निगमनगाथा—

जह सो कालियदीवो, अणुवमसोक्खो तहेव जइ-धम्मो।
जह आसा तह साहू, वणियव्व अणुकूलकारिजणा।।१।।

जह सद्दाइ-अगिद्धा, पत्ता नो पासबंधणं आसा।
तह विसएसु अगिद्धा, वज्झंति न कम्मणा साहू।।२।।

जह सच्छंदविहारो, आसाणं तह इहं वरमुणीणं।
जर-मरणाइ-विवज्जिय, सायत्ताणंदनिव्वाणं।।३।।

जह सद्दाइसु गिद्धा, बद्धा आसा तहेव विसयरया।
पावेंति कम्मबंधं, परमासुह-कारणं घोरं।।४।।

जह ते कालियदीवा, णीया अण्णत्थ दुहगणं पत्ता।
तह धम्म-परिब्भट्ठा, अधम्मपत्ता इहं जीवा।।५।।

पावेंति कम्म-नरवइ-वसया संसारवाहियालीए।
आसप्पमद्दएहिं व, नेरइयाईहिं दुक्खाइं।।६।।

वृत्तिकार द्वारा समुद्धृत निगमन गाथा--

१. कालिकद्वीप के समान अनुपम सुख देने वाला है--मुनि धर्म। अश्वों के समान है--साधु और व्यापारियों के समान है--अनुकूल व्यवहार करने वाले प्रियजन।

२. जैसे शब्दादि विषयों में गृद्ध न होने वाले अश्व पाशबन्धन को प्राप्त नहीं हुए, वैसे ही विषयों में गृद्ध न होने वाले मुनि कर्म-पाश में नहीं बंधते।

३. जैसे उन अश्वों का विहार सदा स्वतंत्र रहा, वैसे ही यहां प्रवर मुनिजन जरा और मृत्यु से रहित, स्वतंत्र, आनन्द दायक निर्वाण का अनुभव करते हैं।

४. जैसे शब्दादि विषयों में गृद्ध अश्व बन्धन को प्राप्त हुए, वैसे ही विषय-रत प्राणी परम दुःख के हेतुभूत घोर कर्म-बन्धन को प्राप्त होते हैं।

५. जैसे कालिकद्वीप से अन्यत्र ले जाये गये वे अश्व दुःख समूह को प्राप्त हुए, वैसे ही धर्म से परिभ्रष्ट और अधर्म को प्राप्त जीव इस संसार में दुःख भोगते हैं।

६. वे भव परम्परा में बहने वालों की श्रेणी में कर्म रूप राजा के अधीन होकर अश्व-प्रशिक्षकों के समान नैरयिक प्राणियों के द्वारा दुःखों को प्राप्त होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

सूत्र १४

१. रीठा जैसे वर्ण वाले (रिट्ठवण्णा)

वृत्तिकार ने इसका अर्थ मदिरा वर्ण वाला किया है।[1]

२. लंघन- - - -त्रिपदी (लंघन- - - -तिवइ)

प्रस्तुत प्रकरण में कालिक द्वीप के घोड़ों की गति के विषय में अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं--

लंघन--गर्त्त आदि को लांघना।

वल्गन--कूदना।

धावन--वेग के साथ दौड़ना।

धोरण--गति विषयक चातुर्य।

त्रिपदी--रंगभूमि में होने वाली मल्ल की गति की तरह चलना।[2]

अभिधान चिन्तामणि की टीका में कुछ शब्दों का अर्थ स्पष्ट रूप से मिलता है।

लंघन--पक्षी तथा हरिण के समान घोड़े की चाल, चौकड़ी मारना।[3]

वल्गन--शरीर के आगे के हिस्से को बढ़ाकर सिर को संकुचित कर त्रिक को झुकाए हुए घोड़े की गति अर्थात् सरपट चाल।[4]

धोरण--मोर के समान घोड़े की चाल अर्थात् दुलकी चाल।[5]

सूत्र २२

३. द्रमक पुटों (दमणग पुडाण)

द्रमक--दौना, दवना। विस्तार हेतु द्रष्टव्य--वनस्पतिकोश।

४. पुष्पोत्तर, पद्मोत्तर (पुप्फुत्तर, पउमुत्तर)

पुष्पोत्तर पद्मोत्तर--ये शर्करा के भेद हैं। जो विभिन्न प्रकार के फूलों और पद्मकमलों से निर्मित की जाती थी।[6]

सूत्र ३६

५. तित्तिरी (दीविग)

वृत्तिकार के अनुसार पिंजरे में बंधा हुआ तित्तिर द्वीपिका कहलाता है।[7] द्वीपिका का प्रयोग पुरुष तित्तिर के लिए नहीं, स्त्री तित्तिर के लिए होना प्रासंगिक है।

---

१. ज्ञातावृत्ति, पत्र-२३८

२. वही, पत्र-२३६

३. अभिधानचिन्तामणि (स्वोपज्ञ वृत्ति), पृ.५०३--लंघनम्--पक्षिणां मृगाणां च गत्यनुयायि।

४. अभिधानचिन्तामणि ४/३१३.......वल्गितं पुनः।
अग्रकायसमुल्लासात्कुञ्चितास्यं नतत्रिकम्।।

५. अभिधानचिन्तामणि (स्वोपज्ञवृत्ति), पृ. ५०३-तच्च नकुलादीनां गतिसदृशम्।

६. ज्ञातावृत्ति, पत्र-२३६--पुष्पोत्तरा पद्मोत्तरा च शर्कराभेदावेव।

७. वही, पत्र-२४०--शाकुनिकपुरुषसम्बन्धी पञ्जरस्थ तित्तिरो द्वीपिका उच्यते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

प्रस्तुत अध्ययन की घटना सुंसुमा की परिक्रमा कर रही है इसलिए इसका नाम सुंसुमा है। इसका प्रतिपाद्य है--यात्रामात्राशन। मुनि केवल जीवनयात्रा को चलाने के लिए आहार करे। उसके साथ आसक्ति का लवलेश भी नहीं रहे। सूत्रकार ने आसक्ति को स्पष्ट भाषा में समझाया है। वर्ण, रूप, बल और विषय के लिए किया जाने वाला आहार आसक्ति से सम्पृक्त होता है। मुनि के लिए निर्देश है--

मुनि वर्ण, रूप, बल और विषय के लिए आहार न करे। एकमात्र सिद्धि के लिए आहार करे।

आसक्ति और अनासक्ति के बीच भेदरेखा खींचना बहुत कठिन काम है। सूत्रकार ने धन सार्थवाह के उदाहरण से इसे समझाने का प्रयत्न किया है। समझाने के लिए जिस घटना का चुनाव किया है, वह घटना असाधारण है, उसे सामान्य नहीं कहा जा सकता।

प्राचीन समय में साधु-संन्यासी के आहार के लिए 'पुत्रमांसोपमम्' सूत्र का प्रयोग मिलता है। यहां पुत्र के मांसाहार के स्थान पर पुत्री के मांसाहार की घटना है। पुत्री का मांस खाना एक प्रकम्पित करने वाला वृत्त है। इसमें धन सार्थवाह की विवशता झलक रही है। मुनि के सामने भी शरीर चलाने की विवशता है। शरीर के बिना धर्म की साधना नहीं होती और आहार किए बिना शरीर नहीं चलता। आहार के साथ स्वाद और आसक्ति का संबंध है। इस आसक्ति को दूर कर शारीरिक विवशता की अनुभूति कर आहार करना जटिल विषय है। सूत्रकार ने इस जटिलता को मार्मिक घटना से समझाया है।

हम घटना को न पकड़ें। उसके मर्म को पकड़ना ही पर्याप्त है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठारसमं अज्झयणं : अठारहवां अध्ययन

सुंसुमा : सुंसुमा

उक्खेव-पदं

१. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सत्तरसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, अट्ठारसमस्स णं भंते नायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

२. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था--वण्णओ।।

३. तत्थ णं धणे नामं सत्थवाहे। भद्दा भारिया।।

४. तस्स णं धणस्स सत्थवाहस्स पुत्ता भद्दाए अत्तया पंच सत्थवाहदारगा होत्था, तं जहा--धणे धणपाले धणदेवे धणगोवे धणरक्खिए।।

५. तस्स णं धणस्स सत्थवाहस्स धूया भद्दाए अत्तया पंचण्हं पुत्ताणं अणुमग्गजाइया सुंसुमा नामं दारिया होत्था--सूमालपाणिपाया।।

चिलाय-दासचेडस्स विग्गह-पदं

६. तस्स णं धणस्स सत्थवाहस्स चिलाए नामं दासचेडे होत्था--अहीणपंचिंदियसरीरे मंसोवचिए बालकीलावणकुसले यावि होत्था।।

७. तए णं से दासचेडे सुंसुमाए दारियाए बालग्गाहे जाए यावि होत्था, सुंसुमं दारियं कडीए गिण्हइ, गिण्हित्ता बहूहिं दारएहि य दारियाहि य डिंभएहि य डिंभियाहि य कुमारएहि य कुमारियाहि य सद्धिं अभिरममाणे-अभिरममाणे विहरइ।।

८. तए णं से चिलाए दासचेडे तेसिं बहूणं दारयाण य दारियाण डिंभयाण य डिंभियाण य कुमारयाण य कुमारियाण य अप्पेगइयाणं खुल्लए अवहरइ, अप्पेगइयाणं वट्टए अवहरइ, अप्पेगइयाणं आडोलियाओ अवहरइ, अप्पेगइयाणं तिंदूसए अवहरइ, अप्पेगइयाणं पोत्तुल्लए अवहरइ, अप्पेगइयाणं साडोल्लए अवहरइ, अप्पेगइयाणं आभरणमल्लालंकार अवहरइ, अप्पेगइए आउसइ अवहसइ निच्छोडेइ निब्भच्छेइ तज्जेइ तालेइ।।

उत्क्षेप-पद

१. भन्ते! यदि धर्म के आदिकर्त्ता यावत् सिद्धि गति संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के सत्रहवें अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है, तो भन्ते! उन्होंने ज्ञाता के अठारहवें अध्ययन का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

२. जम्बू! उस काल और उस समय राजगृह नाम का नगर था--वर्णक।

३. वहां धन नाम का सार्थवाह था। उसके भद्रा नाम की भार्या थी।

४. उस धन सार्थवाह के पुत्र, भद्रा भार्या के आत्मज पांच सार्थवाह बालक थे, जैसे--धन, धनपाल, धनदेव, धनगोप, धनरक्षित।

५. उस धन सार्थवाह की पुत्री, भद्रा भार्या की आत्मजा, उन पांचों पुत्रों की अनुजा 'सुंसुमा' नाम की बालिका थी। उसके हाथ-पांव सुकुमार थे।

दासपुत्र चिलात का विग्रह-पद

६. उस धन सार्थवाह के 'चिलात' नाम का एक दासपुत्र था। वह अहीन पंचेन्द्रिय शरीर वाला और मांसल था। वह बच्चों को खिलाने में कुशल था।

७. वह दासपुत्र सुंसुमा बालिका को क्रीड़ा कराता था। वह बालिका सुंसुमा को गोद में लेता । लेकर बहुत सारे शिशुओं, किशोर-किशोरियों और कुमार-कुमारियों के साथ खेला करता।

८. वह दासपुत्र चिलात उन बहुत से शिशुओं, किशोर-किशोरियों और कुमार-कुमारियों में से किसी की कपर्दिकाएं--कौड़ियां चुरा लेता, किसी के गोले चुरा लेता, किसी के खिलौने चुरा लेता, किसी की गेंद चुरा लेता, किसी की कपड़े से बनी गुड़िया चुरा लेता, किसी का उत्तरीय वस्त्र चुरा लेता तथा किसी के गहने, माला और अलंकार चुरा लेता। वह किसी को गालियां देता, किसी का उपहास करता, किसी को धमकाता, किसी की निर्भर्त्सना करता, किसी को तर्जना देता और किसी को ताड़ना देता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. तए णं ते बहवे दारगा य दारिया य डिंभया य डिंभिया य कुमारया य कुमारिया य रोयमाणा य कंदमाणा य सोयमाणा य तिप्पमाणा य विलवमाणा य साणं-साणं अम्मापिऊणं निवेदेंति।।

९. वे बहुत से शिशु, किशोर-किशोरियां और कुमार-कुमारियां रोते, चिल्लाते, शोक करते, आंसू बहाते और विलाप करते हुए अपने-अपने माता-पिता से यह बात कहते।

चिलायस्स गिहाओ निक्कासण-पदं

चिलात का घर से निष्कासन-पद

१०. तए णं तेसिं बहूणं दारयाण य दारियाण य डिंभयाण य डिंभियाण य कुमारयाण य कुमारियाण य अम्मापियरो जेणेव धणे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता धणं सत्थवाहं बहूहिं खिज्जणियाहि य रुंटणाहि य उवलंभणाहि य खिज्जमाणा य रुंटमाणा य उवलंभमाणा य धणस्स सत्थवाहस्स एयमट्ठं निवेदेंति।।

१०. उन बहुत से शिशुओं, किशोर-किशोरियों और कुमार-कुमारियों के माता-पिता जहां धन सार्थवाह था, वहां आए। वहां आकर खीज, रुदन, अवज्ञा और उपालम्भ के शब्दों में रोष और अवज्ञा प्रकट करते हुए तथा उपालम्भ देते हुए धन सार्थवाह से इस अर्थ का निवेदन किया।

११. तए णं से धणे सत्थवाहे चिलायं दासचेडं एयमट्ठं भुज्जो-भुज्जो निवारेइ, नो चेव णं चिलाए दासचेडे उवरमइ।।

११. धन सार्थवाह ने दासपुत्र चिलात को इसके लिए बार-बार रोका, किन्तु दासपुत्र चिलात इन प्रवृत्तियों से उपरत नहीं हुआ।

१२. तए णं से चिलाए दासचेडे तेसिं बहूणं दारयाण य दारियाण य डिंभयाण य डिंभियाण य कुमारयाण य कुमारियाण य अप्पेगइयाणं खुल्लए अवहरइ अप्पेगइयाणं वट्टए अवहरइ अप्पेगइयाणं आडोलियाओ अवहरइ, अप्पेगइयाणं तिंदूसए अवहरइ, अप्पेगइयाणं पोत्तुल्लए अवहरइ, अप्पेगइयाणं साडोल्लए अवहरइ, अप्पेगइयाणं आभरणमल्लालंकारं अवहरइ, अप्पेगइए आउसइ अवहसइ निच्छोडेइ निब्भच्छेइ तज्जेइ तालेइ।।

१२. वह दासपुत्र चिलात उन बहुत से शिशुओं, किशोर-किशोरियों और कुमार-कुमारियों में से किसी की कपर्दिकाएं-कौडियां चुरा लेता, किसी के गोले चुरा लेता, किसी के खिलौने चुरा लेता, किसी की गेंद चुरा लेता, किसी की कपड़े से बनी गुड़िया चुरा लेता, किसी का उत्तरीय वस्त्र चुरा लेता तथा किसी के गहने, माला और अलंकार चुरा लेता। वह किसी को गालियां देता, किसी का उपहास करता, किसी को धमकाता, किसी की निर्भर्त्सना करता, किसी को तर्जना देता और किसी को ताड़ना देता।

१३. तए णं ते बहवे दारगा य दारिया य डिंभया य डिंभिया य कुमारया य कुमारिया य रोयमाणा य कंदमाणा य सोयमाणा य तिप्पमाणा य विलवमाणा य साणं-साणं अम्मापिऊणं निवेदेंति।।

१३. उन बहुत से शिशुओं, किशोर-किशोरियों और कुमार-कुमारियों ने रोते, चिल्लाते, शोक करते, आंसू बहाते और विलाप करते हुए अपने-अपने माता-पिता से सारी बात कह दी।

१४. तए णं ते आसुरुत्ता रुट्ठा कुविया चंडिक्किया मिसिमिसेमाणा जेणेव धणे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता बहूहिं खिज्जणाहि य रुंटणाहि य उवलंभणाहि य खिज्जमाणा य रुंटमाणा य उवलंभमाणा य धणस्स सत्थवाहस्स एयमट्ठं निवेदेंति।।

१४. तब वे क्रोध से तमतमा उठे। वे रुष्ट, कुपित, चण्ड और क्रोध से जलते हुए जहां धन सार्थवाह था, वहां आए। वहां आकर खीज, अवज्ञा और उपालम्भ के शब्दों में रोष और अवज्ञा प्रकट करते हुए तथा उपालम्भ देते हुए धन सार्थवाह से इस अर्थ का निवेदन किया।

१५. तए णं से धणे सत्थवाहे बहूणं दारगाणं दारियाणं डिंभयाणं डिंभियाणं कुमारयाणं कुमारियाणं अम्मापिऊणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे चिलायं दासचेडं उच्चावयाहिं आउसणाहि आउसइ उद्धंसइ निब्भच्छेइ निच्छोडेइ तज्जेइ उच्चावयाहिं तालणाहिं तालेइ साओ गिहाओ निच्छुभइ।।

१५. उन बहुत से शिशुओं, किशोर-किशोरियों और कुमार-कुमारियों के माता-पिता से यह अर्थ सुनकर धन सार्थवाह क्रोध से तमतमा उठा। उसने रुष्ट, कुपित, चण्ड और क्रोध से जलते हुए दासपुत्र चिलात को बहुत से उच्चावच, आक्रोश पूर्ण शब्दों से कोसा, तुच्छता सूचक शब्दों से तिरस्कृत किया, निर्भर्त्सना की, धमकाया, तर्जना दी, उच्चावच ताड़ना से प्रताड़ित किया और अपने घर से निष्कासित कर दिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिलायस्स दुव्वसण-पवत्ति-पदं

१६. तए णं से चिलाए दासचेडे साओ गिहाओ निच्छूढे समाणे रायगिहे नयरे सिंघाडग-तिग-चउक्क चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु देवकुलेसु य सभासु य पवासु य जूयखलएसु य वेसाघरएसु य पाणघरएसु य सुहंसुहेणं परिवट्टइ ।।

१७. तए णं से चिलाए दासचेडे अणोहट्टिए अणिवारिए सच्छंदमई सइरप्पयारी मज्जप्पसंगी चोज्जप्पसंगी जूयप्पसंगी वेसप्पसंगी परदारप्पसंगी जाए यावि होत्था ।।

चोरपल्ली-पदं

१८. तए णं रायगिहस्स नयरस्स अदूरसामंते दाहिणपुरत्थिमे दिसीभाए सीहगुहा नामं चोरपल्ली होत्था--विसम-गिरिकडग-कोलंब-सण्णिविट्ठा वंसीकलंक-पागार-परिक्खित्ता छिण्णसेल-विसमप्पवाय-फरिहोवगूढा एगदुवारा अणेगखंडी विदितजण-निग्गमप्पवेसा अब्भिंतरपाणिया सुदुल्लभजल-पेरंता सुबहुस्सवि कूवियबलस्स आगयस्स दुप्पहंसा यावि होत्था ।।

१९. तत्थ णं सीहगुहाए चोरपल्लीए विजए नामं चोरसेणावई परिवसई-अहम्मिए अहम्मिट्ठे अहम्मक्खाई अहम्माणुए अहम्मपलोई अहम्मपलज्जणे अहम्मसील-समुदायारे अहम्मेण चेव वित्तिं कप्पेमाणे विहरइ। हण-छिंद-भिंद-वियत्तए लोहियपाणी चंडे रुद्दे खुद्दे साहस्सिए उक्कंचण-वंचण-माया-नियडि-कवड-कूड-साइ-संपओग-बहुले निस्सीले निव्वए निग्गुणे निप्पच्चक्खाणपोसहोववासे बहूणं दुप्पय-चउप्पय-मिय -पसु-पक्खि-सरिसिवाणं घायाए वहाए उच्छायणयाए अहम्मकेऊ समुट्ठिए बहुनगर-निग्गय-जसे सूरे दढप्पहारी साहसिए सद्दवेही ।।

२०. से णं तत्थ सीहगुहाए चोरपल्लीए पंचण्हं चोरसयाणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे विहरइ ।।

२१. तए णं से विजए तक्कर-सेणावई बहूणं चोराण य पारदारियाण य गंठिभेयगाण य संधिच्छेयगाण य खत्तखणगाण रायावगारीण य अणधारगाण य बालघायगाण य वीसंभघायगाण य जूयकाराण य खंडरक्खाण य अण्णेसिं च बहूणं छिण्ण-भिण्ण-बाहिराहयाणं कुडंगे यावि होत्था ।।

चिलात का दुर्व्यसन-प्रवृत्ति-पद

१६. अपने घर से निकाल दिये जाने पर वह दासपुत्र चिलात राजगृह नगर में दोराहों, तिराहों, चोराहों, चौकों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और मार्गों में तथा देवकुलों में, सभाओं में, प्रपाओं में, जुए के अड्डों में, वेश्या-घरों में और मदिरालयों में सुखपूर्वक घूमने लगा।

१७. वह दासपुत्र चिलात बिना किसी रोक-टोक के निरंकुश स्वैरविहारी तथा मद्य, चौर्य, द्यूत, वेश्या और परस्त्रियों में अतिआसक्त हो गया।

चोर-पल्ली पद

१८. उस राजगृह नगर के आस-पास आग्नेय कोण में सिंहगुफा नाम की एक 'चोरपल्ली' थी। वह विषम पर्वतीय मेखला के किनारे पर स्थित, बांस से निर्मित जालमय प्राकार से परिक्षिप्त, टूटे हुए शैल खण्डों के कारण विषम गढ़ों वाली, खाई से अवगूढ़, एक द्वार और अनेक खण्डों वाली तथा परिचितों के लिए ही निर्गम और प्रवेश योग्य थी। उसके भीतर जलाशय था। बाहर दूर-दूर तक जल दुर्लभ था। वहां समागत सुविशाल चोर-गवेषक सेना के लिए भी वह दुष्प्रधर्ष थी।

१९. उस सिंहगुफा चोरपल्ली में 'विजय' नाम का चोर सेनापति रहता था। वह अधार्मिक, अधर्मिष्ठ, अधर्मख्याति, अधर्म का अनुगमन करने वाला, अधर्म-प्रलोकी, अधर्मानुरक्त, अधर्ममय शील और समाचरण वाला था। वह अधर्म से ही जीवन निर्वाह करता हुआ विहार करता था। वह अपने अनुयायियों को सदा 'मारो-छेदो-भेदो' इस प्रकार प्रेरित करने वाला, लोहित पाणी, चण्ड, रुद्र, क्षुद्र, दुस्साहसी और उत्कुञ्चन, वञ्चना, माया, निकृति, कपट, कूट एवं वक्रता का प्रचुर प्रयोग करने वाला था। वह शील-रहित, व्रत-रहित, गुण-रहित तथा प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से शून्य था। वह बहुत से द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी और सरीसृपों के घात, वध और उत्सादन के लिए उदित मानो अधर्ममय केतुग्रह था। उसका यश बहुत नगरों तक पहुंच चुका था। वह शूर, दृढ़ प्रहार करने वाला, साहसिक और शब्द-वेधी था।

२०. वह उस सिंहगुफा चोरपल्ली में पांच सौ चोरों का अधिपतित्व, पुराधिपतित्व, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरत्व तथा आज्ञा, ऐश्वर्य और सेनापतित्व करता हुआ एवं उनकी सुरक्षा करता हुआ विहार करता था।

२१. वह तस्कर सेनापति 'विजय' बहुत से चोरों, पारदारिकों, ग्रन्थि-भेदकों (गिरहकटों), सेंध लगाने वालों, भीत फोड़ कर चोरी करने वालों, राजद्रोहियों, कर्जदारों, बाल-हत्यारों, विश्वासघातकों, जुआरिओं, अनधिकृत सरकारी भूमि पर अधिकार करने वालों तथा अन्य अनेक अपराधियों-- जिनके अंग छिन्न-भिन्न कर दिये गये हो अथवा जिन्हें निर्वासित कर दिया गया हो--उन सबके लिए वेणुवन के समान आश्रयभूत था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२. तए णं से विजए चोरसेणावई रायगिहस्स दाहिणपुरत्थिमं जणवयं बहूहिं गामघाएहि य नगरघाएहि य गोगहणेहि य बंदिग्गहणेहि य पंथकुट्टणेहि य खत्तखणणेहि य उवीलेमाणे-उवीलेमाणे विद्धंसेमाणे- विद्धंसेमाणे नित्थाणं निद्धणं करेमाणे विहरइ।।

चिलायस्स चोरपल्ली-गमण-पदं

२३. तए णं से चिलाए दासचेडए रायगिहे बहूहिं अत्थाभिसंकीहि य चोज्जाभिसंकीहि य दाराभिसंकीहि य धणिएहि य जूयकरेहि य परब्भवमाणे-परब्भवमाणे रायगिहाओ नगराओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव सीहगुहा चोरपल्ली तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता विजयं चोरसेणावइं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।।

२४. तए णं से चिलाए दासचेडे विजयस्स चोरसेणावइस्स अग्ग-असिलट्ठिग्गाहे जाए यावि होत्था। जाहे वि य णं से विजय चोरसेणावई गामघायं वा नगरघायं वा गोगहणं वा बंदिग्गहणं वा पंथकोट्टिं वा काउं वच्चइ ताहे वि य णं से चिलाए दासचेडे सुबहुंपि कूवियबलं हय-महिय-पवर वीरघाइय-विवडियचिंध-धय-पडागं किच्छोवगयपाणं दिसोदिसिं पडिसेहेइ, पडिसेहेत्ता पुणरवि लद्धट्ठे कयकज्जे अणहसमग्गे सीहगुहं चोरपल्लिं हव्वमागच्छइ।।

२५. तए णं से विजए चोरसेणावई चिलायं तक्करं बहूओ चोरविज्जाओ य चोरमंते य चोरमायाओ य चोरनिगडीओ य सिक्खावेइ।।

विजयस्स मच्चु-पदं

२६. तए णं से विजए चोरसेणावई अण्णया कयाइ कालधम्मुणा संजुत्ते यावि होत्था।।

२७. तए णं ताइं पंचचोरसयाइं विजयस्स चोरसेणावइस्स महया-महया इड्ढी-सक्कार-समुदएणं नीहरणं करेंति, करेत्ता बहूइं लोइयाइं मयकिच्चाइं करेंति, करेत्ता कालेणं विगयसोया जाया यावि होत्था।।

चिलायस्स चोरसेणावइत्त-पदं

२८. तए णं ताइं पंचचोरसयाइं अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी--एवं खलु अम्हे देवाणुप्पिया! विजए चोरसेणावई कालधम्मुणा संजुत्ते। अयं च णं चिलाए तक्करे विजएणं चोरसेणावइणा बहूओ चोरविज्जाओ य चोरमंते य चोरमायाओ य

२२. वह चोर सेनापति विजय बहुत से ग्राम-घात, नगर-घात, गायों को चुराना, मनुष्य को धन लूटकर बन्दी बना लेना, पथिकों को मारना, भींत फोड़कर चोरी करना इत्यादिक दुष्कर्मों के द्वारा, राजगृह के दक्षिणपूर्वी जनपद को उत्पीड़ित और विध्वस्त करता हुआ तथा वहां के निवासियों को बेघर और निर्धन करता हुआ विहार करता था।

चिलात का चोरपल्ली गमन-पद

२३. वह दासपुत्र चिलात राजगृह में अनेक अर्थ की दृष्टि से आशंका करने वाले, चोरी की दृष्टि से आशंका करने वाले और स्त्रियों की दृष्टि से आशंका करने वाले धनिकों तथा जुआरियों के द्वारा पराभव को प्राप्त होता हुआ राजगृह नगर से निकला। वहां से निकलकर, वह जहां सिंहगुफा चोर-पल्ली थी, वहां आया। वहां आकर चोर सेनापति विजय की अधीनता स्वीकार कर विहार करने लगा।

२४. वह दासपुत्र चिलात चोर-सेनापति विजय का प्रधान असि-चालक और यष्टि-चालक बन गया। चोर सेनापति विजय जब भी ग्राम-घात और नगर-घात करने, गायों को चुराने, मनुष्यों को धन आदि लूटकर बन्दी बनाने अथवा पथिकों की हत्या करने के लिए जाता, तब वह दासपुत्र चिलात सुविशाल चोर गवेषक सेना को हत-मथित कर डालता, उसके प्रवर वीरों को यमधाम पहुंचा देता। सेना के चिह्न-ध्वजाओं और पताकाओं को गिरा देता। उसके प्राण संकट में डाल देता और सब दिशाओं से उसके प्रहारों को विफल कर देता। विफल कर वह धन प्राप्त कर कृत-कार्य हो निर्विघ्न शीघ्रता से पुनरपि सिंहगुफा चोरपल्ली में आ जाता।

२५. वह चोर सेनापति विजय तस्कर-चिलात को अनेक चोर-विद्याएं, चोर-मंत्र, चोर-मायाएं और चोर-निकृतियां सिखाता था।

विजय का मृत्यु-पद

२६. किसी समय वह चोर सेनापति विजय कालधर्म को प्राप्त हो गया।

२७. उन पांच सौ चोरों ने महान ऋद्धि और सत्कार-समुदय के साथ चोर सेनापति विजय का निर्हरण किया। निर्हरण कर अनेक लौकिक मृतक-कार्य किए और समय आने पर वे शोक मुक्त हो गये।

चिलात का चोर-सेनापतित्व-पद

२८. उन पांच सौ चोरों ने एक-दूसरे को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! चोर सेनापति विजय कालधर्म को प्राप्त हो गया। चोर-सेनापति विजय ने इस चिलात तस्कर को अनेक चोर-विद्याएं, चोर-मंत्र, चोर-मायाएं और चोर-निकृतियां सिखाई है। अतः देवानुप्रियो!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चोरनिगडीओ य सिक्खाविए। तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया! चिलायं तक्करं सीहगुहाए चोरपल्लीए चोरसेणावइत्ताए अभिसिंचित्तए त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता चिलायं सीहगुहाए चोरपल्लीए चोरसेणावइत्ताए अभिसिंचंति।।

हमारे लिए उचित है कि हम चिलात तस्कर का सिंहगुफा चोरपल्ली के चोर सेनापति के रूप में अभिषेक करें--इस प्रकार उन्होंने परस्पर यह प्रस्ताव स्वीकार किया। स्वीकार कर चिलात का सिंहगुफा चोरपल्ली के चोर सेनापति के रूप में अभिषेक किया।

२९. तए णं से चिलाए चोरसेणावई जाए--अहम्मिए अहम्मिट्ठे अहम्मक्खाई अहम्माणुए अहम्मपलोइ अहम्मपलज्जणे अहम्मसील-समुदायारे अहम्मेण चेव वित्तिं कप्पेमाणे विहरइ।।

२९. वह चिलात चोर सेनापति बन गया। वह अधार्मिक, अधर्मिष्ठ, अधर्मख्याति, अधर्म का अनुगमन करने वाला, अधर्म-प्रलोकी, अधर्मानुरक्त, अधर्ममय शील और समाचरण वाला था। वह अधर्म से ही जीवन निर्वाह करता हुआ विहार करता था।

३०. तए णं से चिलाए चोरसेणावई चोरनायगे बहूणं चोराण य पारदारियाण य गंठिभेयगाण य संधिच्छेयगाण य खत्तखणगाण य रायावगारीण य अणधारगाण य बालघायगाण य वीसंभघायगाण य जूयकाराण य खंडरक्खाण य अण्णेसिं च बहूणं छिण्ण-भिण्ण-बाहिराहयाणं कुडंगे यावि होत्था।।

३०. वह चोर सेनापति, चोर नायक चिलात बहुत से चोरों, पारदारिकों, ग्रन्थि-भेदकों (गिरहकटों), सेंध लगाने वालों, भींत फोड़कर चोरी करने वालों, राज-द्रोहियों, कर्जदारों, बाल-हत्यारों, विश्वासघातकों, जुआरियों, अनधिकृत सरकारी भूमि पर अधिकार करने वालों तथा अन्य अनेक अपराधियों--जिनके अंग छिन्न-भिन्न कर दिये गये हों अथवा जिन्हें निर्वासित कर दिया गया हो--उन सबके लिए वेणुवन के समान आश्रयभूत था।

३१. से णं तत्थ सीहगुहाए चोरपल्लीए पंचण्हं चोरसयाणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे विहरइ।।

३१. वह उस सिंहगुफा चोरपल्ली में पांच सौ चोरों का अधिपतित्व, पुराधिपतित्व, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरत्व तथा आज्ञा, ऐश्वर्य और सेनापतित्व करता हुआ एवं उनकी सुरक्षा करता हुआ विहार करने लगा।

३२. तए णं तत्थ से चिलाए चोरसेणावई रायगिहस्स नयरस्स दाहिणपुरत्थिमिल्लं जणवयं बहूहिं गामघाएहि य नगरघाएहि य गोग्गहणेहि य बंदिग्गहणेहि य पंथकुट्टणेहि य खत्तखणणेहि य उवीलेमाणे-उवीलेमाणे विद्धंसेमाणे-विद्धंसेमाणे नित्थाणं निद्धणं करेमाणे विहरइ।।

३२. वह चोर सेनापति चिलात बहुत से ग्राम-घात, नगर-घात, गायों को चुराना, मनुष्यों को धन लूटकर बन्दी बना लेना, पथिकों को मारना, भींत फोड़कर चोरी करना इत्यादि दुष्कर्मों के द्वारा राजगृह के दक्षिण-पूर्वी जनपद को उत्पीड़ित और विध्वस्त करता हुआ तथा वहां के निवासियों को बेघर और निर्धन करता हुआ विहार करने लगा।

चिलायस्स धणस्स गिहे चोरिय-पदं

३३. तए णं से चिलाए चोरसेणावई अण्णया कयाइ विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेत्ता ते पंच चोरसए आमंतेइ तओ पच्छा ण्हाए कयबलिकम्मे भोयणमंडवंसि तेहिं पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं सुरं च मज्जं च मंसं च सीधुं च पसन्नं च आसाएमाणे विसाएमाणे परिभाएमाणे परिभुंजेमाणे विहरइ, जिमियभुत्तुत्तरागए ते पंच चोरसए विपुलेणं धूव-पुप्फ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया ! रायगिहे नयरे धणे नामं सत्थवाहे अड्ढे। तस्स णं धूया भद्दाए अत्तया पंचण्हं पुत्ताणं अणुमग्गजाइया सुंसुमा नामं दारिया-अहीणा जाव सुरूवा। तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया! धणस्स सत्थवाहस्स गिहं विलुंपामो।

चिलात द्वारा धन के घर में चोरी-पद

३३. किसी समय उस चोर सेनापति चिलात ने विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवा कर उन पांच सौ चोरों को आमन्त्रित किया। उसके पश्चात् उसने स्नान और बलिकर्म किया। भोजन मण्डप में उन पांच सौ चोरों के साथ विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, सुरा, मद्य, मांस, सीधु और प्रसन्ना का आस्वादन करता हुआ, विशेष स्वाद लेता हुआ, सबको बांटता हुआ और खाता हुआ विहार करने लगा।

भोजनोपरान्त अपने स्थान पर आकर उसने पांच सौ चोरों को विपुल, धूप, पुष्प, गन्ध-चूर्ण, माला और अंलकारों से सत्कृत किया। सम्मानित किया। सत्कृत-सम्मानित कर इस प्रकार बोला--देवानुप्रियो! राजगृह नगर में 'धन' नाम का सार्थवाह है। वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुब्भं विपुले धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाले ममं सुंसुमा दारिया।।

आढ्य है। उसकी पुत्री, भद्रा की आत्मजा, पांचो पुत्रों की अनुजा सुंसुमा नाम की बालिका है। वह अहीन यावत् सुरूपा है। अत: देवानुप्रियो! हम चलें, धन सार्थवाह का घर लूटें।

उसका विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मौक्तिक, शंख, शिला एवं प्रवाल तुम्हारा और सुंसुमा बालिका मेरी।

३४. तए णं ते पंच चोरसया चिलायस्स (एयमट्ठं?) पडिसुणेंति।।

३४. उन पांच सौ चोरों ने चिलात के (इस अर्थ को?) स्वीकार किया।

३५. तए णं ते चिलाए चोरसेणावई तेहिं पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं अल्लं चम्मं दुरुहइ, दुरुहित्ता पच्चावरण्ह-कालसमयंसि पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं सण्णद्ध-बद्ध-वम्मिय-कवए उप्पीलिय-सरासणपट्टिए पिणद्ध-गेविज्जे आविद्ध-विमल-वरचिंधपट्टे गहियाउह-पहरणे माइय-गोमुहिएहिं फलएहिं, निक्किट्ठाहिं असिलट्ठीहिं, अंसगएहिं तोणेहिं, सज्जीवेहिं धणूहिं, समुक्खित्तेहिं सरेहिं, समुल्लालियाहिं दाहाहिं, ओसारियाहिं ऊरुघंटियाहिं, छिप्पतूरेहिं वज्जमाणेहिं महया-महया उक्कुट्ठ-सीहनाय-बोल-कलकलरवेणं पक्खुभिय-महा समुद्दरवभूयं पिव करेमाणा सीहगुहाओ चोरपल्लीओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव रायगिहे नयरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता रायगिहस्स अदूरसामंते एगं महं गहणं अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता दिवसं खवेमाणा चिट्ठंति।।

३५. वह चोर सेनापति चिलात उन पांच सौ चोरों के साथ गीले चमड़े पर बैठा। बैठकर अपराह्न काल के पश्चात् पांच सौ चोरों के साथ सन्नद्ध बद्ध हो, कवच पहने। धनुष पट्टी को बांधा, गले में ग्रीवा-रक्षक उपकरण पहने। विमल और प्रवर चिह्न पट्ट बांधे तथा आयुध और प्रहरण लिए। रींछ के बालों से निर्मित गोमुखाकार पट्टियों, म्यान से खींची हुई (नंगी) तलवारों, कन्धे पर रखे तूणीरों, प्रत्यञ्चा चढ़े धनुषों, तूणीर से निकाले गये बाणों, उछलते हुए विशिष्ट शस्त्रों, निनादित विशाल घंटाओं, द्रुतगति से प्रवादित वाद्यों तथा महान उत्कृष्ट सिंहनाद जनित कोलाहलपूर्ण शब्दों द्वारा प्रक्षुभित महासागर की भांति धरती को शब्दायमान करते हुए वे सिंहगुफा चोरपल्ली से निकले। निकलकर जहां राजगृह नगर था, वहा आए। वहां आकर राजगृह नगर के आसपास एक गहन जंगल में प्रविष्ट हुए। प्रविष्ट होकर दिन व्यतीत करने लगे।

३६. तए णं से चिलाए चोरसेणावई अद्धरत्त-कालसमयंसि निसंत-पडिनिसंतंति पंचहि चोरसएहिं सद्धिं माइय-गोमुहिएहिं फलएहिं जाव मूइयाहिं ऊरुघंटियाहिं जेणेव रायगिहे नयरे पुरत्थिमिल्ले दुवारे तेणेव उवागच्छइ, उदगवत्थिं परामुसइ आयंते चोक्खे परमसुइभूए तालुग्घाडणिं विज्जं आवाहेइ, आवाहेत्ता रायगिहस्स दुवारकवाडे उदएणं अच्छोडेइ, अच्छोडेत्ता कवाडं विहाडेइ, विहाडेत्ता रायगिहं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणे-उग्घोसेमाणे एवं वयासी--एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! चिलाए नामं चोरसेणावई पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं सीहगुहाओ चोरपल्लीओ इहं हव्वमागए धणस्स सत्थवाहस्स गिहं घाउकामे। तं जे णं नवियाए माउयाए दुद्धं पाउकामे, से णं निगच्छउ त्ति कट्टु जेणेव धणस्स सत्थवाहस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धणस्स गिहं विहाडेइ।।

३६. अर्धरात्रि के समय जब घर से बाहर गये लोग पुन: अपने-अपने घर लौट आये, वह चोर सेनापति चिलात पांच सौ चोरों के साथ रींछ के बालों से निर्मित गोमुखाकार पट्टिकाओं यावत् नि:शब्द विशाल घन्टाओं के साथ जहां राजगृह नगर का पूर्व दिशावर्ती द्वार था, वहां आया। वहां आकर चर्ममय उदक-पात्र (मशक) को उठाया। आचमन कर, साफ-सुथरा और परम पवित्र हो, तालोद्घाटिनी विद्या का आवाहन किया। आवाहन कर राजगृह के द्वार के कपाटों पर जल छींटा। जल छींटकर द्वार को खोला, खोलकर राजगृह में प्रवेश किया। प्रवेश कर उच्चस्वर से उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार बोला-देवानुप्रियो! मैं चोर सेनापति चिलात हूँ और धन सार्थवाह का घर लूटने के लिए पांच सौ चोरों के साथ सिंहगुफा चोरपल्ली से अभी यहां आया हूँ।

अत: जो नई मां का दूध पीना चाहता है, वह निकलकर मेरे सामने आए-यह कहता हुआ वह जहां धन सार्थवाह का घर था, वहां आया। वहां आकर धन सार्थवाह के घर का द्वार खोला।

३७. तए णं से धणे चिलाएणं चोरसेणावइणा पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं गिहं घाइज्जमाणं पासइ, पासित्ता भीए तत्थे तसिए उव्विग्गे संजायभए पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं एगंते अवक्कमइ।।

३७. धन सार्थवाह ने पांच सौ चोरों के साथ चोर सेनापति चिलात को अपने घर की लूट-पाट करते देखा। देखकर वह भीत, त्रस्त, तृषित, उद्विग्न और भयाक्रान्त हो पांचो पुत्रों के साथ एकान्त में चला गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८. तए णं से चिलाए चोरसेणावई धणस्स सत्थवाहस्स गिहं घाएइ, घाएत्ता सुबहुं धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण-संत-सार-सावएज्जं सुंसुमं च दारियं गेण्हइ, गेण्हित्ता रायगिहाओ पडिनिक्खमई, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सीहगुहा तेणेव पहारेत्थ गमणाए।।

३८. उस चोर सेनापति चिलात ने धन सार्थवाह का घर लूटा। लूटकर धन, कनक, रत्न, मणि, मौक्तिक, शंख, शिला, प्रवाल, पद्मनाग, मणियां, श्रेष्ठ सुगन्धित द्रव्य तथा दान भोग आदि के लिए स्वापतेय और सुंसुमा बालिका को ले लिया। उसे लेकर वह राजगृह नगर से वापस निकला। निकलकर जहां सिंहगुफा थी, उस ओर प्रस्थान कर दिया।

नगरगुत्तिएहिं चोरनिग्गह-पदं

नगर-रक्षकों द्वारा चोर का निग्रह-पद

३९. तए णं से धणे सत्थवाहे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुबहुं धण-कणगं सुंसुमं च दारियं अवहरियं जाणित्ता महत्थं महग्घं महरिहं पाहुडं गहाय जेणेव नगरगुत्तिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं महत्थं महग्घं महरिहं पाहुडं उवणेइ, उवणेत्ता एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! चिलाए चोरसेणावई सीहगुहाओ चोरपल्लीओ इहं हव्वमागम्म पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं मम गिहं घाएत्ता सुबहुं धण-कणगं सुंसुमं च दारियं गहाय रायगिहाओ पडिनिक्खमित्ता जेणेव सीहगुहा तेणेव पडिगए। तं इच्छामो णं देवाणुप्पिया! सुंसुमाए दारियाए कूवं गमित्तए। तुब्भं णं देवाणुप्पिया! से विपुले धण-कणगे, ममं सुंसुमा दारिया।।

३९. वह धन सार्थवाह जहां अपना घर था, वहां आया। वहां आकर बहुत-सा धन, कनक और सुंसुमा बालिका को अपहृत हुआ जानकर महान अर्थवान, महान मूल्यवान और महान अर्हता वाला उपहार लेकर जहां नगर आरक्षक थे, वहां आया। वहां आकर महान अर्थवान, महान मूल्यवान और महान अर्हता वाला उपहार भेंट किया। भेंट कर इस प्रकार बोला--देवानुप्रियो! चोर सेनापति चिलात सिंहगुफा चोरपल्ली से शीघ्र यहां आकर, पांच सौ चोरों के साथ मेरा घर लूट, बहुत-सा धन, कनक और सुंसुमा बालिका को ले, राजगृह नगर से निकलकर जहां सिंहगुफा थी वहां वापस चला गया। अतः देवानुप्रियो! मैं सुंसुमा बालिका की खोज करने के लिए जाना चाहता हूँ।

देवानुप्रियो! वह विपुल धन-कनक तुम्हारा और सुंसुमा बालिका मेरी।

४०. तए णं ते नगरगुत्तिया धणस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता सण्णद्ध-बद्ध-वम्मिय-कवया जाव गहियाउहपहरणा महया-महया उक्कुट्ठ-सीहनाय-बोल-कलकलरवेणं पक्खुभिय-महा-समुद्दरवभूयं पिव करेमाणा रायगिहाओ निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता जेणेव चिलाए चोरसेणावई तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता चिलाएणं चोरसेणावइणा सद्धिं संपलग्गा यावि होत्था।।

४०. उन नगर आरक्षकों ने धन का यह प्रस्ताव स्वीकार किया। स्वीकार कर सन्नद्ध बद्ध हो कवच पहने यावत् आयुध और प्रहरण लिये। महान उत्कृष्ट, सिंहनाद जनित कोलाहलपूर्ण शब्दों द्वारा प्रक्षुभित महासागर की भांति धरती को शब्दायमान करते हुए वे राजगृह से निकले। निकलकर जहां चोर सेनापति चिलात था, वहां आये। वहां आकर चोर सेनापति चिलात के साथ युद्ध करने लगे।

४१. तए णं ते नगरगुत्तिया चिलायं चोरसेणावइं हय-महिय-पवरवीर-घाइय-विवडियचिंध-धय-पडागं किच्छोवगयपाणं दिसोदिसिं पडिसेहेंति।।

४१. उन नगर आरक्षकों ने चोर सेनापति चिलात को हत-मथित कर डाला, उसके प्रवर वीरों को यमधाम पहुंचा दिया। सेना के चिह्न-ध्वजाओं और पताकाओं को गिरा दिया, उसके प्राण संकट में डाल दिये और सब दिशाओं से उसके प्रहारों को विफल कर दिया।

४२. तए णं ते पंच चोरसया नगरगुत्तिएहिं हय-महिय-पवरवीर-घाइय-विवडिय-चिंध-धय-पडागा किच्छोवगयपाणा दिसोदिसिं पडिसेहिया समाणा तं विपुलं धण-कणगं विच्छड्डेमाणा य विप्पकिरमाणा य सव्वओ समंता विप्पलाइत्था।।

४२. जब उन नगर आरक्षकों ने उन पांच सौ चोरों को हत-मथित कर डाला, उनके प्रवर वीरों को यमधाम पहुंचा दिया, सेना के चिह्न-ध्वजाएं और पताकाएं गिरा दी, प्राण संकट में डाल दिये और सब दिशाओं से उनके प्रहार विफल कर दिये, तब वे चोर उस विपुल धन-कनक को फेंकते हुए, बिखेरते हुए चारों ओर भाग गए।

४३. तए णं ते नगरगुत्तिया तं विपुलं धण-कणगं गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव रायगिहे नगरे तेणेव उवागच्छंति।।

४३. उन नगर आरक्षकों ने उस विपुल धन, कनक को बटोर लिया। बटोर कर जहां राजगृह नगर था, वहां आ गए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिलायस्स चोरपल्लीतो पलायण-पदं

४४. तए णं से चिलाए तं चोरसेन्नं तेहिं नगरगुत्तिएहिं हय-महिय-पवर वीर-घाइय-विवडियचिंध-धय-पडागं किच्छोवगयपाणं दिसोदिसिं पडिसेहियं (पासित्ता?) भीए तत्थे सुंसुमं दारियं गहाय एगं महं अगामियं दीहमद्धं अडविं अणुप्पविट्ठे।।

४५. तए णं से धणे सत्थवाहे सुंसुमं दारियं चिलाएणं अडवीमुहिं अवहीरमाणिं पासित्ता णं पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पछट्ठे सण्णद्ध-बद्ध-वम्मिय-कवए चिलायस्स पयमग्गविहिं अणुगच्छमाणे अभिगज्जंते हक्कारेमाणे पुक्कारेमाणे अभितज्जेमाणे अभितासेमाणे पिट्ठओ अणुगच्छइ।।

४६. तए णं से चिलाए तं धणं सत्थवाहं पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पछट्ठं सण्णद्ध-बद्ध-वम्मिय-कवयं समणुगच्छमाणं पासइ, पासित्ता अत्थामे अबले अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कमे जाहे नो संचाएइ सुंसुमं दारियं निव्वाहित्तए ताहे संते तंते परितंते नीलुप्पल-गवलगुलिय-अयसिकुसुमप्पगासं खुरधारं असिं परामुसइ, परामुसित्ता सुंसुमाए दारियाए उत्तमंगं छिंदइ, छिंदित्ता तं गहाय तं अगामियं अडविं अणुप्पविट्ठे।।

४७. तए णं से चिलाए तीसे अगामियाए अडवीए तण्हाए (छुहाए?)अभिभूए समाणे पम्हट्ठ-दिसाभाए सीहगुहं चोरपल्लिं असंपत्ते अंतरा चेव कालगए।।

निगमण-पदं

४८. एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे इमस्स ओरालियसरीरस्स वंतासवस्स पित्तासवस्स खेलासवस्स सुक्कासवस्स सोणियासवस्स दुरुय-उस्सास-निस्सासस्स दुरुय-मुत्त-पुरीस-पूय-बहुपडिपुण्णस्स उच्चार-पासवण- खेल-सिंघाणग-वंत-पित्त-सुक्क-सोणियसंभवस्स अधुवस्स अणितियस्स असासयस्स सडण-पडण-विद्धंसणधम्मस्स पच्छा पुरं च णं अवस्स-विप्पजहणिज्जस्स वण्णहेउं वा रूवहेउं वा बलहेउं वा विसयहेउं वा आहारं आहारेइ, से णं इहलोए चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाण य हीलणिज्जे जाव चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टिस्सइ--जहा व से चिलाए तक्करे।।

चिलात का चोर-पल्ली से पलायन-पद

४४. उन नगर आरक्षकों ने उस चोर सेना को हत-मथित कर, उसके प्रवर वीरों को यमधाम पहुंचा, सेना के चिह्न-ध्वजाएं और पताकाएं गिरा, प्राण संकट में डाल, सब दिशाओं से उसके प्रहार विफल कर दिये हैं--यह देखकर वह चिलात भीत, त्रस्त हो, सुंसुमा बालिका को ले, एक महान ग्राम रहित प्रलम्ब मार्ग वाली अटवी में घुस गया।

४५. वह चिलात सुंसुमा बालिका को अपहृत कर अटवी की ओर ले जा रहा है, यह देखकर धन सार्थवाह पांचो पुत्रों सहित छठा स्वयं सन्नद्ध बद्ध हो कवच पहन, चिलात के पदचिह्नों का अनुगमन करता हुआ गर्जना करता हुआ उसे हा दुष्ट, हा दुष्ट कहता हुआ, पुकारता हुआ, अभितर्जित करता हुआ और अभित्रस्त करता हुआ उसका पीछा करने लगा।

४६. चिलात ने पांचो पुत्रों सहित छठे स्वयं धन सार्थवाह को सन्नद्ध-बद्ध हो कवच पहन अपना पीछा करते हुए देखा। यह देखकर वह शक्तिहीन, बलहीन, वीर्यहीन, पुरुषकारहीन और पराक्रमहीन हो गया। जब वह सुंसुमा बालिका का निर्वहन नहीं कर पाया तो उसने श्रान्त, क्लान्त और परिक्लान्त हो, नीलोत्पल, भैंसे का सींग और अतसी कुसुम के समान प्रभा और तीक्ष्ण धार वाली तलवार को हाथ में लिया। लेकर सुंसुमा बालिका का सिर काट दिया। काटकर उस कटे हुए सिर को लेकर वह उस ग्राम-रहित अटवी में घुस गया।

४७. वह चिलात उस ग्राम-रहित अटवी में प्यास (क्षुधा?) से अभिभूत होकर दिग्मूढ़ हो गया। वह सिंहगुफा चोरपल्ली तक नहीं पहुंच सका और बीच में ही मृत्यु को प्राप्त हो गया।

निगमन-पद

४८. आयुष्मन् श्रमणो! इसी प्रकार हमारा जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य-उपाध्याय के पास मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित हो इस वमन, पित्त, कफ, शुक्र, शोणित के झरने, दुर्गन्धित उच्छ्वास-निःश्वास वाले, दुर्गन्धित मल-मूत्र और पीव से प्रतिपूर्ण, मल-मूत्र, कफ, नाक के मैल, वमन, पित्त, शुक्र और शोणित से उत्पन्न, अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत तथा सड़ने, गिरने और विध्वस्त हो जाने वाले, पहले या पीछे अवश्य छूट जाने वाले औदारिक शरीर के वर्ण, रूप और बल की वृद्धि के लिए अथवा विषय-पूर्ति के लिए आहार करता है, वह इस लोक में भी बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों और बहुत श्राविकाओं द्वारा हीलनीय होता है यावत् वह चार गति वाले संसार रूपी कान्तार में पुनः-पुनः अनुपरिवर्तन करेगा, जैसे--वह चिलात तस्कर।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धणस्स सुंसुमाकए कंदण-पदं

४९. तए णं से धणे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं (सद्धिं?) अप्पछट्ठे चिलायं तीसे अगामियाए अडवीए सव्वओ समंता परिधाडेमाणे-परिधाडेमाणे संते तंते परितंते नो संचाएइ चिलायं चोरसेणावइं साहत्थिं गिण्हित्तए। से णं तओ पडिनियत्तइ, पडिनियत्तित्ता जेणेव सा सुंसुमा चिलाएणं जीवियाओ ववरोविया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुंसुमं दारियं चिलाएणं जीवियाओ ववरोवियं पासइ, पासित्ता परसुनियत्ते व्व चंपगपायवे निव्वत्तमहे व्व इंदलट्ठी विमुक्क-संधिबंधणे धरणितलंसि सव्वंगेहिं धसत्ति पडिए।।

धन का सुंसुमा के लिए क्रन्दन-पद

४९. पांचो पुत्रों सहित, छठा स्वयं धन सार्थवाह उस ग्राम-रहित अटवी में चिलात के पीछे चारों ओर दौड़ता-दौड़ता श्रान्त, क्लान्त और परिक्लान्त हो जाने के कारण वह चोर सेनापति को पकड़ नहीं पाया। तब वह वहां से लौटा। लौटकर जहां चिलात द्वारा मारी गयी सुंसुमा थी, वहां आया। वहां आकर उसने चिलात द्वारा मारी गयी सुंसुमा को देखा। देखकर परशु से छिन्न चम्पक के पौधे की भांति और उत्सव की समाप्ति पर इन्द्र यष्टि की भांति संधिबन्धन खुल जाने से वह अपने सम्पूर्ण शरीर के साथ धड़ाम से धरती पर गिर पड़ा।

५०. तए णं से धणे सत्थवाहे (पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं?) अप्पछट्ठे आसत्थे कूवमाणे कंदमाणे विलवमाणे महया-महया सद्देणं कुहुकुहुस्स परुन्ने सुचिरकालं बाहप्पमोक्खं करेइ।।

५०. तब (पांचों पुत्रों सहित) छठे स्वयं, धन सार्थवाह ने आश्वस्तहोकर कूजन (अव्यक्त शब्दपूर्वक रुदन), क्रन्दन और विलाप करते हुए, कुहू-कुहू शब्दपूर्वक जोर-जोर से रोते हुए सुचिरकाल तक आंसू बहाए।

धणेणं अडवि-लंघणट्ठं सुया-मंससोणियाहार-पदं

५१. तए णं से धणे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं (सद्धिं?) अप्पछट्ठे चिलायं तीसे अगामियाए अडवीए सव्वओ समंता परिधाडेमाणे तण्हाए छुहाए य परब्भाहत्ते समाणे तीसे अगामियाए अडवीए सव्वओ समंता उदगस्स मग्गण-गवेसणं करेमाणे संते तंते परितंते निव्विण्णे तीसे अगामियाए अडवीए उदगं अणासाएमाणे जेणेव सुंसुमा जीवियाओ ववरोविएल्लिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जेट्ठं पुत्तं धणं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--एवं खलु पुत्ता! सुंसुमाए दारियाए अट्ठाए चिलायं तक्करं सव्वओ समंता परिधाडेमाणा तण्हाए छुहाए य अभिभूया समाणा इमीसे अगामियाए अडवीए उदगस्स मग्गण-गवेसणं करेमाणा नो चेव णं उदगं आसादेमो। तए णं उदगं अणासाएमाणा नो संचाएमो रायगिहं संपावित्तए। तण्णं तुब्भे ममं देवाणुप्पिया! जीवियाओ ववरोवेह, मम मंसं च सोणियं च आहारेह, तेणं आहारेणं अवथद्धा समाणा तओ पच्छा इमं अगामियं अडविं नित्थरिहिह, रायगिहं च संपावेहिह, मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं अभिसमागच्छिहिह, अत्थस्स य धम्मस्स य पुण्णस्स य आभागी भविस्सह।।

अटवी-लंघन के लिए धन द्वारा पुत्री के मांस और शोणित का आहार-पद

५१. पांचो पुत्रों सहित छठे स्वयं धन सार्थवाह ने उस ग्राम रहित अटवी में चिलात के पीछे चारों ओर दौड़ते-दौड़ते भूख और प्यास से पीड़ित होकर उस ग्राम रहित अटवी में चारों ओर पानी की खोज की। जब उस ग्राम रहित अटवी में कहीं भी जल उपलब्ध नहीं हुआ, तब वे श्रान्त, क्लान्त, परिक्लान्त और उदास होकर जहां मृत सुंसुमा थी वहां आए। वहां आकर ज्येष्ठ पुत्र धन को बुलाया। उसे बुलाकर इस प्रकार कहा--पुत्रों! सुंसुमा बालिका के लिए चिलात तस्कर के पीछे चारों ओर दौड़ते-दौड़ते हम भूख और प्यास से अभिभूत हो उठे हैं। इस ग्राम रहित अटवी में चारों ओर जल की खोज करने पर भी जल प्राप्त नहीं हो रहा है। जल को प्राप्त किये बिना हम राजगृह नगर नहीं पहुंच सकते।

अतः देवानुप्रियो! तुम मुझे मार डालो, मेरे मांस और शोणित का आहार करो। उस आहार से प्राणों की रक्षा कर, इस ग्राम रहित अटवी को पार करो। राजगृह पहुंचो। मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनों से मिलो तथा अर्थ, धर्म और पुण्य के आभागी बनो।

५२. तए णं से जेट्ठे पुत्ते धणेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ते समाणे धणं सत्थवाहं एवं वयासी--तुब्भे णं ताओ! अम्हं पिया गुरुजणया देवयभूया ठवका पइट्ठवका संरक्खगा संगोवगा। तं कहण्णं अम्हे ताओ! तुब्भे जीवियाओ ववरोवेमो, तुब्भं णं मंसं च सोणियं च आहारेमो? तं तुब्भे णं ताओ! ममं जीवियाओ ववरोवेह, मंसं च सोणियं च आहारेह, अगामियं अडविं नित्थरिहिह, रायगिहं च

५२. धन सार्थवाह के ऐसा कहने पर ज्येष्ठ पुत्र ने धन सार्थवाह से इस प्रकार कहा--तात! तुम हमारे पिता, गुरुजन और देवतुल्य हो। हमें (गृहस्थ-धर्म या नीति मार्ग पर) स्थित करने वाले हो। प्रतिष्ठित करने वाले हो। हमारा संरक्षण और संगोपन करने वाले हो। अतः तात! हम तुम्हें कैसे मारें? कैसे तुम्हारे मांस और शोणित का आहार करें? इसलिए तात! तुम मुझे मार डालो। मेरे मांस और शोणित का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संपावेहिह, मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं अभिसमागच्छिहिह, अत्थस्स य धम्मस्स य पुण्णस्स य आभागी भविस्सह।।

आहार करो। इस ग्राम रहित अटवी को पार करो। राजगृह पहुंचो। मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनों से मिलो तथा अर्थ, धर्म और पुण्य के आभागी बनो।

५३. तए णं धणं सत्थवाहं दोच्चे पुत्ते एवं वयासी--मां णं ताओ अम्हे जेट्ठं भायरं गुरुदेवयं जीवियाओ ववरोवेमो, तस्स णं मंसं च सोणियं च आहारेमो। तं तुब्भे णं ताओ! ममं जीवियाओ ववरोवेह, मंसं च सोणियं च आहारेह, अगामियं अडविं नित्थरिहिह, रायगिहं च संपावेहिह, मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं अभिसमागच्छिहिह, अत्थस्स य धम्मस्स य पुण्णस्स य आभागी भविस्सह।

एवं जाव पंचमे पुत्ते।।

५३. तब दूसरा पुत्र धन सार्थवाह से इस प्रकार बोला--तात! हमारे गुरु और देवतुल्य ज्येष्ठ भ्राता को नहीं मारें और न ही उसके मांस और शोणित का आहार करें।

अतः तात! तुम मुझे मार डालो, मेरे मांस और शोणित का आहार करो। इस ग्राम रहित अटवी को पार करो। राजगृह पहुंचो। मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनों से मिलो तथा अर्थ, धर्म और पुण्य के आभागी बनो।

इस प्रकार यावत् पांचवां पुत्र भी बोला।

५४. तए णं से धणे सत्थवाहे पंचपुत्ताणं हियइच्छियं जाणित्ता ते पंचपुत्ते एवं वयासी--मा णं अम्हे पुत्ता! एगमवि जीवियाओ ववरोवेमो। एस णं सुंसुमाए दारियाए सरीरे निप्पाणे निच्चेट्ठे जीवविप्पजढे। तं सेयं खलु पुत्ता! अम्हं सुंसुमाए दारियाए मंसं च सोणियं च आहारेत्तए। तए णं अम्हे तेणं आहारेणं अवथद्धा समाणा रायगिहं संपाउणिस्सामो।।

५४. पांचो पुत्रों के अन्तर्मन की इच्छा को जानकर धन सार्थवाह ने उन पांचो पुत्रों से इस प्रकार कहा--पुत्रो! हम किसी को भी न मारें। यह रहा सुंसुमा बालिका का निष्प्राण, निश्चेष्ट और निर्जीव शरीर। अतः पुत्रो! हमारे लिए उचित है हम सुंसुमा बालिका के मांस और शोणित का आहार करें। इस आहार से प्राणों की सुरक्षा करते हुए हम राजगृह पहुंच सकेंगे।

५५. तए णं ते पंचपुत्ता धणेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा एयमट्ठं पडिसुणेंति।।

५५. धन सार्थवाह के ऐसा कहने पर पांचो पुत्रों ने उसके इस प्रस्ताव को स्वीकार किया।

५६. तए णं धणे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अरणिं करेइ, करेत्ता सरगं करेइ, करेत्ता सरएणं अरणिं महेइ, महेत्ता अग्गिं संधुक्केइ संधुक्केत्ता दारुयाइं पक्खिवइ, पक्खिवित्ता अग्गिं पज्जालेइ, सुंसुमाए दारियाए मंसं च सोणियं च आहारेइ। तेणं आहारेणं अवथद्धा समाणा रायगिहं नयरं संपत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं अभिसमण्णागया, तस्स य विउलस्स धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण-संत-सार-सावएज्जस्स आभागी जाया।।

५६. पांचो पुत्रों सहित धन सार्थवाह अरणि लाया। अरणि लाकर सरक लाया। लाकर सरक से अरणि को मथा। मथकर आग पैदा की। पैदा कर उसमें ईंधन डाला। ईंधन डालकर अग्नि को प्रज्ज्वलित किया और उसमें पकाकर उन सबने सुंसुमा के मांस और शोणित का आहार किया। उस आहार से प्राणों की सुरक्षा करते हुए वे राजगृह नगर पहुंचे। मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनों से मिले और उस विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मौक्तिक, शंख, शिला, प्रवाल, पद्मराग-मणियां, श्रेष्ठ सुगन्धित द्रव्य और दान भोग आदि के लिए स्वापतेय के आभागी बने।

५७. तए णं से धणे सत्थवाहे सुंसुमाए दारियाए बहूइं लोइयाइं मयकिच्चाइं करेइ, करेत्ता कालेणं विगयसोए जाए यावि होत्था।।

५७. धन सार्थवाह ने सुंसुमा बालिका के अनेक लौकिक मृतक-कार्य सम्पन्न किए। सम्पन्न कर समय आने पर शोकमुक्त हुआ।

५८. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए समोसढे।।

५८. उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर राजगृह नगर के गुणशीलक चैत्य में समवसृत हुए।

५९. तए णं धणे सत्थवाहे सपुत्ते धम्मं सोच्चा पव्वइए। एक्कारसंगवी। मासियाए संलेहणाए सोहम्मे कप्पे उववण्णे। महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ।।

५९. पुत्रों सहित धन सार्थवाह धर्म सुनकर प्रव्रजित हुआ। उसने ग्यारह अंगो का अध्ययन किया। मासिक संलेखना पूर्वक सौधर्मकल्प में उपपन्न हुआ यावत वह महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निगमण-पदं

६०. जहा वि य णं जंबू! धणेणं सत्थवाहेणं नो वण्णहेउं वा नो रूवहेउं वा नो बलहेउं वा नो विसयहेउं वा सुंसुमाए दारियाए मंससोणिए आहारिए, नन्नत्थ एगाह रायगिह-संपावणट्ठयाए।।

६१. एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे इमस्स ओरालियसरीरस्स वंतासवस्स पित्तासवस्स (खेलासवस्स?) सुक्कासवस्स सोणियासवस्स दुरुय-उस्सास-निस्सासस्स दुरुय-मुत्त-पुरीस-पूय-बहुपडिपुण्णस्स उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाणग-वंत-पित्त-सुक्क-सोणियसंभवस्स अधुवस्स अणितियस्स असासयस्स सडण-पडण-विद्धंसणधम्मस्स पच्छा पुरं च णं अवस्सविप्पजहियव्वस्स नो वण्णहेउं वा नो रूवहेउं वा नो बलहेउं वा नो विसयहेउं वा आहारं आहारेइ, नन्नत्थ एगाए सिद्धिगमण-संपावणट्ठयाए, से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाण य अच्चणिज्जे जाव चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइस्सइ--जहा व से सपुत्ते धणे सत्थवाहे।।

६२. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं अट्ठारसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

-त्ति बेमि।।

वृत्तिकृता समुद्धृता निमनगाथा–

जह सो चिलाइपुत्तो सुंसुमगिद्धो अकज्ज-पडिबद्धो।
धण-पारद्धो पत्तो, महाडविं वसण-सयकलियं।।१।।
तह जीवो विसह-सुहे, लुद्धो काऊण पावकिरियाओ।
कम्मवसेणं पावइ, भवाडवीए महादुक्खं।।२।।

धणसेट्ठी विव गुरुणो, पुत्ता इव साहवो भवो अडवी।
सुयमंसमिवाहारो, रायगिहं इह सिवं नेयं।।३।।

जह अडवि-नियर-नित्थरण-पावणत्थं तएहिं सुयमंसं।
भुत्तं तहेह साहू, गुरूण आणाइ आहारं।।४।।
भव-लंघण-सिव-साहणहेउं भुंजंति ण गेहीए।
वण्ण-वल-रूव-हेउं, च भावियप्पा महासत्ता।।५।।

निगमन-पद

६०. जम्बू! जैसे धन सार्थवाह ने सुंसुमा बालिका के मांस और शोणित का आहार न वर्ण के लिए किया। न रूप के लिए किया। न बल के लिए किया और न विषय के लिए किया। उसने राजगृह पहुंचने के अतिरिक्त किसी अन्य उद्देश्य से उस मांस और शोणित का आहार नहीं किया।

६१. आयुष्मन् श्रमणो! इसी प्रकार हमारा जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य-उपाध्याय के पास मुण्ड हो आगार से अनगारता में प्रव्रजित होकर इस वमन, पित्त (कफ?), शुक्र, शोणित के झरने, दुर्गन्धित उच्छ्वास-नि:श्वास वाले, दुर्गन्धित मल-मूत्र और पीव से प्रतिपूर्ण, मल, मूत्र, कफ, नाक के मैल, वमन, पित्त, शुक्र और शोणित से उत्पन्न, अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत तथा सड़ने, गिरने और विध्वस्त हो जाने वाले और पहले या पीछे अवश्य छूट जाने वाले औदारिक शरीर के वर्ण, रूप और बल की वृद्धि के लिए अथवा विषय पूर्ति के लिए आहार नहीं करता, सिद्धि गति को प्राप्त करने के अतिरिक्त अन्य किसी उद्देश्य से आहार नहीं करता, वह इस लोक में भी बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों और बहुत श्राविकाओं द्वारा अर्चनीय होता है यावत् वह चार अन्त वाले संसार रूपी कान्तार का पार पा लेगा, जैसे--वह पुत्रों सहित धन सार्थवाह।

६२. जम्बू! इस प्रकार धर्म के आदिकर्त्ता यावत् सिद्धि गति संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के अठारहवें अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है

–ऐसा मैं कहता हूँ।

वृत्तिकार द्वारा समुद्धृत निगमन--गाथा

१-२ जैसे सुंसुमा में गृद्ध वह चिलातीपुत्र अकरणीय कार्यों से अनुबन्धित हो धन के पीछा करने पर सैकड़ों दु:खों से संकुल महा अटवी को प्राप्त हुआ। वैसे ही वैषयिक सुखों में लुब्ध प्राणी पापमय प्रवृत्तियों का सम्पादन कर, कृत कर्मों के अधीन हो, भव रूपी अटवी में महान दु:खों को प्राप्त करता है।

३. इस उपनय में धन श्रेष्ठी के समान गुरुजन हैं। पुत्रों के समान मुनिजन हैं। अटवी के समान संसार है। पुत्री के मांस के समान आहार और राजगृह के समान मोक्ष ज्ञातव्य है।

४-५ जैसे अटवी को लांघने और नगर को पाने के लिए उन्होंने पुत्री के मांस का आहार किया, वैसे ही इस जिन-शासन में भावितात्मा, महासत्त्व, मुनि भव को लांघने तथा शिव को साधने के लिए गुरु की आज्ञा से आहार करते हैं। वे आसक्ति से अथवा वर्ण, बल और रूप की वृद्धि के लिए आहार नहीं करते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

प्रस्तुत अध्ययन में पुण्डरीक के उदात्त चरित्र का चित्रण हुआ है अत: इसका नाम पुण्डरीक रखा गया है।

पुण्डरीक अध्ययन का मुख्य प्रतिपाद्य है–भावात्मक परिवर्तन। दीर्घकालीन प्रव्रज्या के बावजूद भी यदि मन में संयम के प्रति अनुरक्ति नहीं होती तो सुगति सम्भव नहीं। आहार के प्रति आसक्ति सुविधावाद और शिथिलाचार को जन्म देती है।

भावात्मक परिवर्तन का एक बहुत बड़ा निमित्त है–बीमारी, बीमारी की दीर्घकालीन चिकित्सा और चिकित्साकालीन सुविधा। चिकित्सा काल में प्राप्त सांसारिक सुविधाओं और राजसी भोजन-पान में आसक्ति मुनि कण्डरीक के संयम से पतन में निमित्त बनी। इसीलिए कहा गया है–जो श्रमण सुख का रसिक, सात के लिए आकुल, अकाल में सोने वाला और हाथ-पैर आदि को बार-बार धोनेवाला होता है उसके लिए सुगति दुर्लभ है।[1] जिन्हें संयम और तप प्रिय होता है, वे अल्पकालीन साधना से भी अपने प्रयोजन को सिद्ध कर लेते हैं। पुण्डरीक का उदात्त चरित्र दशवैकालिक सूत्र के निम्नोक्त पद्य का सुन्दर निदर्शन है--

पच्छा वि ते पयाया, खिप्पं गच्छंति अमरभवणाइं।
जेसिं पिओ तवो संजमो य खंति य बंभचेरं च।।[2]

---

१. दसवेआलियं ४/२६
२. वही, ४/२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एगूणबीसइमं अज्झयणं : उन्नीसवां अध्ययन

पुंडरीए : पुण्डरिक

उक्खेव-पदं

१. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं अट्ठारसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, एगूणवीसइमस्स णं भंते! नायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

उत्क्षेप-पद

१. भन्ते! यदि धर्म के आदिकर्त्ता यावत् सिद्धि गति संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के अठारहवें अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है, तो भन्ते! उन्होंने ज्ञाता के उन्नीसवें अध्ययन का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

२. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे पुव्वविदेहे, सीयाए महानईए उत्तरिल्ले कूले, नीलवंतस्स (वासहरपव्वयस्स?) दाहिणेणं, उत्तरिल्लस्स सीयामुहवणसंडस्स पच्चत्थिमेणं, एगसेलगस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं पुक्खलावई नामं विजए पण्णत्ते।।

२. जम्बू! उस काल और उस समय इसी जम्बूद्वीप द्वीप पूर्वविदेह में सीता महानदी के उत्तरी तट पर नीलवंत (वर्षधर पर्वत?) के दक्षिण में उत्तरी सीतामुख वनखण्ड के पश्चिम में, एकशैलक वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में पुष्करावती नाम की विजय प्रज्ञप्त है।

३. तत्थ णं पुंडरीगिणी नामं रायहाणी पण्णत्ता--नवजोयणवित्थिण्णा दुवालस जोयणायामा जाव पच्चक्खं देवलोगभूया पासाईया दरिसणीया अभिरूवा पडिरूवा।।

३. वहां पुण्डरीकिणी नाम की राजधानी प्रज्ञप्त है। वह नौ योजन चौड़ी, बारह योजन लम्बी यावत् प्रत्यक्ष देवलोक तुल्य, चित्त को प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय, सुन्दर और असाधारण थी।

४. तीसे णं पुंडरीगिणीए नयरीए उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए नलिणिवणे नामं उज्जाणे।।

४. उस पुण्डरीकिणी नगरी के ईशानकोण में नलिनीवन नाम का उद्यान था।

५. तत्थ णं पुंडरीगिणीए रायहाणीए महापउमे नामं राया होत्था।।

५. उस पुण्डरीकिणी राजधानी में महापद्म नाम का राजा था।

६. तस्स णं पउमावई नामं देवी होत्था।।

६. उसके पद्मावती नाम की देवी थी।

७. तस्स णं महापउमस्स रण्णो पुत्ता पउमावईए देवीए अत्तया दुवे कुमारा होत्था, तं जहा--पुंडरीए य कंडरीए य--सुकुमाल-पाणिपाया। पुंडरीए जुवराया।।

७. उस राजा महापद्म के पुत्र, पद्मावती देवी के आत्मज दो कुमार थे, जैसे--पुण्डरीक और कण्डरीक। वे सुकुमार हाथ-पांव वाले थे। पुण्डरीक युवराज था।

कंडरीयस्स पव्वज्जा-पदं

८. तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरागमणं। महापउमे राया निग्गए। धम्मं सोच्चा पुंडरीयं रज्जे ठवेत्ता पव्वइए। पुंडरीए राया जाए, कंडरीए जुवराया। महापउमे अणगारे चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जइ।।

कण्डरीक का प्रव्रज्या-पद

८. उस काल और उस समय स्थविरों का आगमन हुआ। महापद्म राजा ने निर्गमन किया। वह धर्म को सुन, पुण्डरीक को राज्य पर स्थापित कर प्रव्रजित हुआ। पुण्डरीक राजा बना और कण्डरीक युवराज। महापद्म अनगार ने चौदह पूर्वो का अध्ययन किया।

९. तए णं थेरा बहिया जणवयविहारं विहरंति।।

९. स्थविर बाहर जनपद-विहार करने लगे।

१०. तए णं से महापउमे बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता जाव सिद्धे।।

१०. वह महापद्म अनगार बहुत वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय का पालन कर यावत् सिद्ध हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. तए णं थेरा अण्णया कयाइ पुणरवि पुंडरीगिणीए रायहाणीए नलिण (णि?) वणे उज्जाणे समोसढा। पुंडरीए राया निग्गए। कंडरीए महाजणसद्दं सोच्चा जहा महाबलो जाव पज्जुवासइ। थेरा धम्मं परिकहेंति। पुंडरीए समणोवासए जाए जाव पडिगए।।

११. किसी समय स्थविर पुन: पुण्डरीकिणी राजधानी के नलिनी वन उद्यान में समवसृत हुए। राजा पुण्डरीक ने निर्गमन किया। कण्डरीक ने भी महान जन शब्द सुनकर यावत् महाबल के समान पर्युपासना की। स्थविर ने धर्म का कथन किया। पुण्डरीक श्रमणोपासक बना यावत् वापस चला गया।

१२. तए णं कंडरीए थेराणं अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता थेरे तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--सद्दहामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं जाव से जहेयं तुब्भे वयह। जं नवरं--पुंडरीयं रायं आपुच्छामि। तओ पच्छा मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वयामि।

अहासुहं देवाणुप्पिया!

१२. स्थविरों के पास धर्म को सुनकर, अवधारण कर, हृष्ट-तुष्ट होकर कण्डरीक स्फूर्ति के साथ उठा। उठकर स्थविरों को तीन बार दायीं ओर से प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर वह इस प्रकार बोला--भन्ते! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ यावत् वह वैसा ही है, जैसे तुम कह रहे हो। विशेष--मैं राजा पुण्डरीक से पूछूं। उसके पश्चात् मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित होऊं।

जैसा सुख हो, देवानुप्रिय!

१३. तए णं से कंडरीए थेरे वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता थेराणं अंतियाओ पडिनिक्खमइ, तमेव चाउग्घंटं आसरहं दुरुहइ महयाभड-चडगर-पहकरेणं पुंडरीगिणीए नयरीए मज्झंमज्झेणं जेणामेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घंटाओ आसरहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव पुंडरीए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! मए थेराणं अंतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए। तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे थेराणं अंतिए मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।।

१३. कण्डरीक ने स्थविरों को वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर स्थविरों के पास से उठकर बाहर गया। उसी चार घंटाओं वाले अश्व-रथ पर आरोहण किया। महान सैनिकों की विभिन्न टुकड़ियों और पथ-दर्शक पुरुषों के साथ पुण्डरीकिणी नगरी के बीचोंबीच होता हुआ, जहां उसका अपना भवन था, वहां आया। वहां आकर चार घंटाओं वाले अश्व-रथ से उतरा। उतरकर जहां राजा पुण्डरीक था, वहां आया। वहां आकर जुड़ी हुई सटे हुए दस नखों वाली अञ्जलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार बोला--देवानुप्रिय! मैंने स्थविरों के पास धर्म सुना है। वही धर्म मुझे इष्ट, ग्राह्य और रुचिकर है। अत: देवानुप्रिय! मैं तुमसे अनुज्ञा प्राप्त कर स्थविरों के पास मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित होना चाहता हूँ।

१४. तए णं से पुंडरीए राया कंडरीयं एवं वयासी--मा णं तुमं भाउया! इयाणिं मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वयाहि। अहं णं तुमं महारायाभिसेएणं अभिसिंचामि।।

१४. राजा पुण्डरीक ने कण्डरीक से इस प्रकार कहा--भ्रात! तुम अभी मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित मत बनो। मैं तुम्हें महान राज्याभिषेक से अभिषिक्त करता हूँ।

१५. तए णं से कंडरीए पुंडरीयस्स रण्णो एयमट्ठं नो आढाइ नो परियाणाइ तुसिणीए संचिट्ठइ।।

१५. कण्डरीक राजा ने पुण्डरीक के इस अर्थ को न आदर दिया और न उसकी ओर ध्यान दिया। वह मौन रहा।

१६. तए णं से पुंडरीए राया कंडरीयं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी--मा णं तुमं भाउया! इयाणिं मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वयाहि। अहं णं तुमं महारायाभिसेएणं अभिसिंचामि।।

१६. राजा पुण्डरीक ने दूसरी, तीसरी बार भी कण्डरीक से इस प्रकार कहा--भ्रात! तुम अभी मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित मत बनो। मैं तुम्हें महान राज्याभिषेक से अभिषिक्त करता हूँ।

१७. तए णं से कंडरीए पुंडरीयस्स रण्णो एयमट्ठं नो आढाइ नो परियाणाइ तुसिणीए संचिट्ठइ।।

१७. कण्डरीक ने राजा पुण्डरीक के इस अर्थ को न आदर दिया और न उसकी ओर ध्यान दिया। वह मौन रहा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. तए णं पुंडरीए कंडरीयं कुमारं जाहे नो संचाएइ बहूहिं आघवणाहि य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य आघवित्तए वा पण्णवित्तए वा सण्णवित्तए वा विण्णवित्तए, वा ताहे अकामए चेव एयमट्ठं अणुमन्नित्था जाव निक्खमणाभिसेएणं अभिसिंचइ जाव थेराणं सीसभिक्खं दलयइ। पव्वइए। अणगारे जाए। एक्कारसंगवी।।

१८. जब पुण्डरीक बहुत सारी आख्यापनाओं, प्रज्ञापनाओं, संज्ञापनाओं और विज्ञापनाओं के द्वारा कण्डरीक कुमार को आख्यापित, प्रज्ञापित, संज्ञापित और विज्ञापित नहीं कर सका तब न चाहते हुए भी उसने अनुमति दे दी यावत् उसे निष्क्रमण योग्य अभिषेक से अभिषिक्त किया यावत् स्थविरों को शिष्य-भिक्षा समर्पित की। कण्डरीक प्रव्रजित हुआ। अनगार बना। ग्यारह अंगों का ज्ञाता बना।

१९. तए णं थेरा भगवंतो अण्णया कयाइ पुंडरीगिणीओ नयरीओ नलिणिवणाओ उज्जाणाओ पडिनिक्खमंति, बहिया जणवयविहारं विहरंति।।

१९. किसी समय स्थविर भगवान ने पुण्डरीकिणी नगरी के नलिनीवन उद्यान से प्रतिनिष्क्रमण किया और बाहर जनपद विहार करने लगे।

कंडरीयस्स वेयणा-पदं

२०. तए णं तस्स कंडरीयस्स अणगारस्स तेहिं अंतेहि य पंतेहि य तुच्छेहि य लूहेहि य अरसेहि य विरसेहि य सीएहि य उण्हेहि य कालाइक्कंतेहि य पमाणाइक्कंतेहि य निच्चं पाणभोयणेहि य पयइसुकुमालस्स सुहोचियस्स सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया--उज्जला विउला कक्खडा पगाढा चंडा दुक्खा दुरहियासा। पित्तज्जर-परिगयसरीरे दाहवक्कंतीए यावि विहरइ।।

कण्डरीक का वेदना-पद

२०. कण्डरीक अनगार के सहज सुकुमार और सुख भोगने योग्य शरीर में नित्य सेवित अन्त, प्रान्त, निस्सार, रूक्ष, अरस, विरस, शीत, उष्ण, कालातिक्रान्त और प्रमाणातिक्रान्त भोजन-पान के कारण उज्ज्वल, विपुल, कर्कश, प्रगाढ़, चंड, दु:खद और दु:सह्य वेदना प्रादुर्भूत हुई। उसका शरीर पित्तज्वर और दाह से आक्रान्त हो गया।

२१. तए णं थेरा अण्णया कयाइ जेणेव पोंडरीगिणी नयरी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता नलिणीवणे समोसढा। पुंडरीए निग्गए। धम्मं सुणेइ।।

२१. किसी समय स्थविर जहां पुण्डरीकिणी नगरी थी, वहां आए। वहां आकर वे नलिनीवन में समवसृत हुए। पुण्डरीक ने निर्गमन किया। उसने धर्म को सुना।

कडंरीयस्स तिगिच्छा-पदं

२२. तए णं पुंडरीए राया धम्मं सोच्चा जेणेव कंडरीए अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कंडरीयं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता कंडरीयस्स अणगारस्स सरीरगं सव्वाबांह सरोगं पासइ, पासित्ता जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--अहण्णं भंते! कंडरीयस्स अणगारस्स अहापवत्तेहिं ओसह-भेसज्ज-भत्त-पाणेहि तेगिच्छं आउंटामि। तं तुब्भे णं भंते! मम जाणसालासु समोसरह।।

कण्डरीक का चिकित्सा-पद

२२. राजा पुण्डरीक धर्म को सुनकर जहां कण्डरीक अनगार था, वहां आया। आकर कण्डरीक को वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर कण्डरीक अनगार के शरीर को रोग से ग्रस्त देखा। देखकर जहां स्थविर भगवान थे, वहां आया। वहां आकर स्थविर भगवान को वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार बोला--भन्ते! मैं कण्डरीक अनगार की यथाप्रवृत्त औषध, भेषज्य तथा भक्त-पान से चिकित्सा करवाता हूँ। अत: आप मेरी यानशाला में समवसृत होवें।

२३. तए णं थेरा भगवंतो पुंडरीयस्स (एयमट्ठं?) पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता जेणेव पुंडरीयस्स रण्णो जाणसाला तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता फासु-एसणिज्जं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारगं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति।।

२३. स्थविर भगवान ने पुण्डरीक के इस अर्थ को स्वीकार किया। स्वीकार कर जहां राजा पुण्डरीक की यानशाला थी, वहां आए। वहां आकर प्रासुक एवं एषणीय पीठ, फलक, शय्या और संस्तारक को ग्रहण कर विहार करने लगे।

२४. तए णं पुंडरीए राया तेगिच्छिए सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--तुब्भे णं देवाणुप्पिया! कंडरीयस्स फासु-एसणिज्जेणं ओसह-भेसज्ज-भत्त-पाणेणं तेगिच्छं आउट्टेह।।

२४. राजा पुण्डरीक ने चिकित्सकों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! तुम प्रासुक एवं एषणीय औषध, भेषज्य तथा भक्त-पान से कण्डरीक की चिकित्सा करो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५. तए णं ते तेगिच्छिया पुंडरीएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा कंडरीयस्स अहापवत्तेहिं ओसह-भेसज्ज-भत्त-पाणेहिं तेगिच्छं आउट्टेंति, मज्जपाणगं च से उवदिसंति।।

२५. राजा पुण्डरीक के ऐसा कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुए उन चिकित्सकों ने यथाप्रवृत्त औषध, भेषज्य तथा भक्त-पान से कण्डरीक की चिकित्सा की और उसे मादक पेय के सेवन का निर्देश दिया।

२६. तए णं तस्स कंडरीयस्स अहापवत्तेहिं ओसह-भेसज्ज-भत्त-पाणेहिं मज्जपाणएण य से रोगायंके उवसंते यावि होत्था--हट्ठे बलियसरीरे जाए ववगयरोगायंके।।

२६. उन यथाप्रवृत्त औषध, भेषज्य, भक्त-पान तथा मादक-पेय के सेवन से कण्डरीक का रोगातंक उपशांत हो गया। उसका शरीर हृष्ट, स्वस्थ और रोगातंक से मुक्त हो गया।

कंडरीयस्स पमत्तविहार-पदं

कण्डरीक का प्रमत्त विहार-पद

२७. तए णं थेरा भगवंतो पुंडरीयं रायं आपुच्छंति, आपुच्छित्ता बहिया जणवयविहारं विहरंति।।

२७. स्थविर भगवान ने राजा पुण्डरीक से पूछा। पूछकर बाहर जनपद विहार किया।

२८. तए णं से कंडरीए ताओ रोयायंकाओ विप्पमुक्के समाणे तंसि मणुण्णंसि असण-पाण-खाइम-साइमंसि मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववण्णे नो संचाएइ पुंडरीयं आपुच्छित्ता बहिया अब्भुज्जएणं जणवयविहारेणं विहरित्तए तत्थेव ओसन्ने जाए।।

२८. उस रोगातंक के शांत हो जाने पर भी वह कण्डरीक उस मनोज्ञ अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य में मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित और अध्युपपन्न हो गया। अत: वह राजा पुण्डरीक से पूछकर अभ्युद्यत जनपद विहार नहीं कर सका। वह वहीं अवसन्न हो गया।

पुंडरीएण पडिबोह-पदं

पुण्डरीक द्वारा प्रतिबोध-पद

२९. तए णं से पुंडरीए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे ण्हाए अंतेउर-परियाल-संपरिवुडे जेणेव कंडरीए अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कंडरीयं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--धन्नेसि णं तुमं देवाणुप्पिया! कयत्थे कयपुण्णे कयलक्खणे। सुलद्धे णं देवाणुप्पिया! तव माणुस्सए जम्म-जीवियफले जे णं तुमं रज्जं च रट्ठं च कोसं च कोट्ठागारं च बलं च वाहणं च पुरं च अंतेउरं च विच्छड्डेत्ता विगोवइत्ता, दाणं च दाइयाणं परिभायइत्ता, मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, अहण्णं अधन्ने अकयत्थे अकयपुण्णे अकयलक्खणे रज्जे य रट्ठे य कोसे य कोट्ठागारे य बले य वाहणे य पुरे य अंतेउरे य माणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववण्णे नो संचाएमि जाव पव्वइत्तए। तं धन्नेसि णं तुमं देवाणुप्पिया! कयत्थे कयपुण्णे कयलक्खणे। सुलद्धे णं देवाणुप्पिया! तव माणुस्सए जम्मजीवियफले।।

२९. जब राजा पुण्डरीक को इस बात का पता चला तो वह स्नान कर, अन्त:पुर परिवार से परिवृत हो जहां कण्डरीक अनगार था, वहां आया। वहां आकर कण्डरीक अनगार को तीन बार दांयी ओर से प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार बोला–देवानुप्रिय! तुम धन्य हो! कृतार्थ हो! कृतपुण्य हो! कृतलक्षण हो! देवानुप्रिय! तुमने मनुष्य के जन्म और जीवन का फल पाया है जिससे कि तुम राज्य, राष्ट्र, कोष, कोष्ठागार, बल, वाहन, पुर और अन्त:पुर को त्याग, उसकी अवगणना कर, दान दे, अपनी सम्पत्ति को बांट, मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित हो गए हो। मैं अधन्य हूँ, अकृतार्थ हूँ, अकृतपुण्य हूँ और अकृतलक्षण हूँ जो राज्य, राष्ट्र, कोष, कोष्ठागार, बल, वाहन, पुर और अन्त:पुर में तथा मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों में मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित और अध्युपपन्न होकर यावत् प्रव्रजित नहीं हो सका हूँ।

अत: देवानुप्रिय! तुम धन्य हो। कृतार्थ हो। कृतपुण्य हो। कृतलक्षण हो। देवानुप्रिय! तुमने मनुष्य के जन्म और जीवन का फल प्राप्त किया है।

३०. तए णं से कंडरीए अणगारे पुंडरीयस्स एयमट्ठं नो आढाइ नो परियाणाइ तुसिणीए संचिट्ठइ।।

३०. कण्डरीक अनगार ने पुण्डरीक के इस कथन को न आदर दिया और न उसकी ओर ध्यान दिया। वह मौन रहा।

३१.. तए णं से कंडरीए अणगारे पोंडरीएणं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्ते समाणे अकामए अवसवसे लज्जाए गारवेण य पुंडरीयं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता थेरेहिं सद्धिं बहिया जणवयविहारं विहरइ।।

३१. पुण्डरीक द्वारा दूसरी-तीसरी बार भी ऐसा कहने पर अनचाहे ही विवश हो कण्डरीक ने लज्जा और गौरव के कारण पुण्डरीक को पूछा। पूछकर स्थविरों के साथ बाहर जनपद विहार करने लगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कंडरीयस्स पव्वज्जा-परिच्चाय-पदं

३२. तए णं से कंडरीए थेरेहिं सद्धिं कंचि कालं उग्गंउग्गेणं विहरित्ता तओ पच्छा समणत्तण-परितंते समणत्तण-निव्विण्णे समणत्तण-निब्भच्छिए समणगुण-मुक्कजोगी थेराणं अंतियाओ सणियं-सणियं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता जेणेव पुंडरीगिणी नयरी जेणेव पुंडरीयस्स भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असोगवणियाए असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टगंसि निसीयइ, निसीइत्ता ओहयमणसंकप्पे करतलपल्हत्थमुहे अट्टज्झाणोवगए झियायमाणे संचिट्ठइ।।

३३. तए णं तस्स पोंडरीयस्स अम्मधाई जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कंडरीयं अणगारं असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टगंसि ओहयमणसंकप्पं जाव झियायमाणं पासइ, पासित्ता जेणेव पुंडरीए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुंडरीयं रायं एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! तव पियभाउए कंडरीए अणगारे असोगवणियाए असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टे ओहयमणसंकप्पे जाव झियायइ।।

३४. तए णं से पुंडरीए अम्मधाईए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म तहेव संभंते समाणे उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता अंतेउर-परियालसंपरिवुडे जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कंडरीयं अणगारं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--धन्नेसि णं तुमं देवाणुप्पिया! कयत्थे कयपुण्णे कयलक्खणे सुलद्धे णं देवाणुप्पिया! तव माणुस्सए जम्म-जीवियफले जाव अगाराओ अणगारियं पव्वइए, अहं णं अधन्ने अकयत्थे अकयपुण्णे अकयलक्खणे जाव नो संचाएमि पव्वइत्तए। तं धन्नेसि णं तुमं देवाणुप्पिया! जाव सुलद्धे णं देवाणुप्पिया! तव माणुस्सए जम्म-जीवियफले।।

३५. तए णं कंडरीए पुंडरीएणं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिट्ठइ। दोच्चंपि तच्चंपि पुंडरीएणं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिट्ठइ।।

३६. तए णं पुंडरीए कंडरीयं एवं वयासी--अट्ठो भंते! भोगेहिं? हंता! अट्ठो।।

३७. तए णं से पुंडरीए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! कंडरीयस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायाभिसेयं उवट्ठवेह जाव रायाभिसेएणं अभिसिंचति।।

कण्डरीक द्वारा प्रव्रज्या परित्याग-पद

३२. कण्डरीक ने कुछ समय तक स्थविरों के साथ अति उग्र विहार किया। उसके पश्चात् वह श्रामण्य से परिक्लान्त, श्रामण्य से उदासीन, श्रामण्य के प्रति अनादर युक्त भावों तथा श्रमणोचित गुणों से मुक्त योग वाला हो गया। वह धीरे-धीरे स्थविरों के पास से खिसक गया। वहां से खिसक कर, वह जहां पुण्डरीकिणी नगरी थी, जहां पुण्डरीक का भवन था, वहां आया। वहां आकर अशोक-वनिका में प्रवर अशोक-वृक्ष के नीचे पृथ्वी-शिलापट्ट पर बैठ गया। बैठकर भग्न-हृदय हो हथेली पर मुंह टिकाए आर्त्तध्यान में डूबा हुआ चिन्ता-मग्न हो रहा था।

३३. उस पुण्डरीक की धायमाता जहां अशोक-वनिका थी, वहां आयी। वहां आकर प्रवर अशोक-वृक्ष के नीचे, पृथ्वी-शिलापट्ट पर कण्डरीक अनगार को भग्न-हृदय यावत् चिन्ता-मग्न देखा। देखकर वह जहां पुण्डरीक था, वहां आयी। आकर राजा पुण्डरीक से इस प्रकार बोली--देवानुप्रिय! तुम्हारा प्रिय भ्राता कण्डरीक अनगार अशोक-वनिका में प्रवर अशोक-वृक्ष के नीचे पृथ्वी-शिलापट्ट पर भग्न-हृदय यावत् चिन्ता-मग्न हो रहा है।

३४. धायमाता से इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर, वह पुण्डरीक वैसे ही सम्भ्रान्त हो स्फूर्ति के साथ उठा। उठकर अन्तःपुर से परिवृत हो, जहां अशोक-वनिका थी, वहां आया। वहां आकर कण्डरीक अनगार को तीन बार दायीं ओर से प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार बोला--देवानुप्रिय! तुम धन्य हो। कृतार्थ हो। कृतपुण्य हो। कृतलक्षण हो। देवानुप्रिय! तुमने मनुष्य के जन्म और जीवन का फल पाया है। यावत् तुम मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित हुए हो।

मैं निश्चित ही अधन्य हूँ, अकृतार्थ हूँ, अकृतपुण्य हूँ और अकृतलक्षण हूँ यावत् मैं प्रव्रजित नहीं हो सका। अतः देवानुप्रिय! तुम धन्य हो यावत् देवानुप्रिय! तुमने मनुष्य के जन्म और जीवन का वास्तविक फल पाया है।

३५. पुण्डरीक के ऐसा कहने पर कण्डरीक मौन रहा। दूसरी-तीसरी बार भी पुण्डरीक के ऐसा कहने पर वह मौन रहा।

३६. पुण्डरीक ने कण्डरीक से इस प्रकार पूछा--भन्ते! क्या तुम्हें भोगों से प्रयोजन है?

हां, प्रयोजन है।

३७. राजा पुण्डरीक ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! शीघ्र ही कण्डरीक के लिए महान अर्थवान, महान मूल्यावान और महान अर्हता वाले विपुल राज्याभिषेक की उपस्थापना करो यावत् उसको राज्याभिषेक से अभिषिक्त किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुंडरीयस्स पव्वज्जा-पदं

३८. तए णं से पुंडरीए सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, सयमेव चाउज्जामं धम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता कंडरीयस्स संतियं आयारभंडगं गेण्हइ, गेण्हित्ता इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ--कप्पइ मे थेरे वंदित्ता नमंसित्ता थेराणं अंतिए चाउज्जामं धम्मं उवसंपज्जित्ता णं तओ पच्छा आहारं आहारित्तए त्ति कट्टु इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हित्ता णं पुंडरीगिणीए पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव पहारेत्थ गमणाए।।

पुण्डरीक का प्रव्रज्या-पद

३८. पुण्डरीक ने स्वयमेव पंचमौष्टिक केश-लुञ्चन किया। स्वयमेव चातुर्याम धर्म स्वीकार किया। स्वीकार कर कण्डरीक के आचार-भाण्ड (धर्मोपकरण) लिए। लेकर इस प्रकार का अभिग्रह स्वीकार किया--स्थविरों को वन्दना-नमस्कार कर स्थविरों के पास चातुर्याम धर्म स्वीकार कर उसके पश्चात् आहार करना मेरे लिए उचित है, इस प्रकार का अभिग्रह स्वीकार कर उसने पुण्डरीकिणी नगरी से निष्क्रमण किया। निष्क्रमण कर क्रमशः संचार करता हुआ, ग्रामानुग्राम परिव्रजन करता हुआ, जहां स्थविर भगवान थे, उधर प्रस्थान किया।

कंडरीयस्स मच्चु-पदं

३९. तए णं तस्स कंडरीयस्स रण्णो तं पणीयं पाणभोयणं आहारियस्स समाणस्स अइजागरएण य अइभोय-प्पसंगेण य से आहारे नो सम्मं परिणमइ।।

कण्डरीक का मृत्यु-पद

३९. राजा कण्डरीक प्रणीत भोजन-पान का सेवन करने लगा किन्तु अतिजागरण और अतिभोग-प्रसंग के कारण उस आहार का सम्यक् परिणमन नहीं हुआ।

४०. तए णं तस्स कंडरीयस्स रण्णो तंसि आहारंसि अपरिणममाणंसि पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया--उज्जला विउला कक्खडा पगाढा चंडा दुक्खा दुरहियासा। पित्तज्जर-परिगय-सरीरे दाहवक्कंतीए यावि विहरइ।।

४०. उस आहार का सम्यक् परिणमन न होने के कारण मध्यरात्रि के समय राजा कण्डरीक के शरीर में उज्ज्वल, विपुल, कर्कश, प्रगाढ़, चंड, दुःखद और दुःसह्य वेदना प्रादुर्भूत हुई। उसका शरीर पित्तज्वर और दाह से आक्रान्त हो गया।

४१. तए णं से कंडरीए राजा रज्जे य रट्ठे य अंतेउरे य माणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववण्णे अट्टदुहट्टवसट्टे अकामए अवसवसे कालमासे कालं किच्चा अहेसत्तमाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरयंसि नेरइयत्ताए उववण्णे।।

४१. राज्य, राष्ट्र, पुर, अन्तःपुर तथा मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों में मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित और अध्युपपन्न बना हुआ राजा कण्डरीक आर्त्त, दुःखार्त्त और वशार्त हो अनचाहे ही परवशता में मृत्यु के समय मृत्यु को प्राप्त कर, अधःसप्तम पृथ्वी में उत्कृष्ट काल स्थिति वाले नरक में नैरयिक के रूप में उपपन्न हुआ।

निगमण-पदं

४२. एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे पुणरवि माणुस्सए कामभोए आसाएइ पत्थयइ पीहेइ अभिलसइ, से णं इह भवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाण य हीलणिज्जे निंदणिज्जे खिंसणिज्जे गरहणिज्जे परिभवणिज्जे, परलोए वि य णं आगच्छइ बहूणि दंडणाणि य मुंडणाणि य तज्जणाणि य तालणाणि य जाव चाउरंतं संसार-कंतारं भुज्जो-भुज्जो अणुपरियट्टिस्सइ--जहा व से कंडरीए राया।।

निगमन-पद

४२. आयुष्मन श्रमणो! इसी प्रकार हमारा जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य-उपाध्याय के पास मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित होकर भी पुनः पुनः मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों में रस लेता है, उनकी प्रार्थना करता है, स्पृहा करता है और अभिलाषा करता है, वह इस जीवन में भी बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों और बहुत श्राविकाओं द्वारा हीलनीय, निन्दनीय, कुत्सनीय, गर्हणीय और पराभव का पात्र होता है। परलोक में भी वह बहुत दण्ड, बहुत मुण्डन, बहुत तर्जना और बहुत ताड़ना को प्राप्त होता है यावत् वह चार अन्त वाले संसार रूपी कान्तार में पुनः पुनः अनुपरिवर्तन करेगा, जैसे--वह कण्डरीक राजा।

पुंडरीयस्स आराहणा-पदं

४३. तए णं से पुंडरीए अणगारे जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता थेराणं

पुण्डरीक का आराधना-पद

४३. वह पुण्डरीक अनगार जहां स्थविर भगवान थे, वहां आया। आकर स्थविर भगवान को वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतिए दोच्चंपि चाउज्जामं धम्मं पडिवज्जइ, छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, बीयाए पोरिसीए झाणं झियाइ, तइयाए पोरिसीए जाव उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियं अडमाणे सीयलुक्खं पाणभोयणं पडिगाहेइ, पडिगाहेत्ता अहापज्जत्तमित्ति कट्टु पडिनियत्तेइ, जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भत्तपाणं पडिदंसेइ, पडिदंसेत्ता थेरेहिं भगवंतेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अमुच्छिए अगिद्धे अगढिए अणज्झोववण्णे बिलमिव पण्णगभूएणं अप्पाणेणं तं फासु-एसणिज्जं असण-पाण-खाइम-साइमं सरीरकोट्ठगंसि पक्खिवइ।।

स्थविरों के पास दूसरी बार चातुर्याम-धर्म स्वीकार किया। बेले के पारणक में प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया। दूसरे प्रहर में ध्यान किया। तीसरे प्रहर में यावत् ऊँच, नीच और मध्यम कुलों के घरों में सामुदानिक भिक्षा के लिए अटन करता हुआ बासी और रूखा भोजन-पान ग्रहण किया। ग्रहण कर वह भोजन-पान यथापर्याप्त है--ऐसा सोच भिक्षाटन कर प्रतिनिष्क्रमण किया। प्रतिनिष्क्रमण कर जहां स्थविर भगवान थे, वहां आया। आकर स्थविरों को भोजन-पान दिखलाया। दिखलाकर स्थविर भगवान की अनुज्ञा पूर्वक अमूर्च्छित, अगृद्ध, अग्रथित और अनध्युपपन्न होता हुआ बिल में प्रविष्ट होते हुए सांप की भांति अनासक्त, आत्म-भाव से उस प्रासुक और एषणीय अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य को अपने शरीर कोष्ठक में प्रक्षिप्त किया।

४४. तए णं तस्स पुंडरीयस्स अणगारस्स तं कालाइक्कंतं अरसं विरसं सीयलुक्खं पाणभोयणं आहारियस्स समाणस्स पुव्वरत्तावरत्तकाल-समयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स से आहारे नो सम्मं परिणमइ।।

४४. उस कालातिक्रान्त, अरस, विरस, बासी और रूखे भोजन-पान का आहार करने तथा मध्यरात्रि के समय धर्म-जागरिका करते रहने के कारण पुण्डरीक अनगार के उस आहार का सम्यक् परिणमन नहीं हुआ।

४५. तए णं तस्स पुंडरीयस्स अणगारस्स सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया--उज्जला विउला कक्खडा पगाढा चंडा दुक्खा दुरहियासा। पित्तज्जर-परिगय-सरीरे दाहवक्कंतीए विहरइ।।

४५. तब पुण्डरीक अनगार के शरीर में उज्ज्वल, विपुल, कर्कश, प्रगाढ, चंड, दुःखद और दुःसह्य वेदना प्रादुर्भूत हुई। उसका शरीर पित्तज्वर और दाह से आक्रान्त हो गया।

४६. तए णं से पुंडरीए अणगारे अत्थामे अबले अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कमे करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु एवं वयासी--नमोत्थु णं अरहंताणं भगवंताणं जाव सिद्धिगइणामधेज्जं ठाणं संपत्ताणं। नमोत्थु णं थेराणं भगवंताणं मम धम्मायरियाणं धम्मोवएसयाणं। पुव्विं पि य णं मए थेराणं अंतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए जाव बहिद्धादाणे पच्चक्खाए, इयाणिं पि णं अहं तेसिं चेव अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जाव बहिद्धादाणं पच्चक्खामि। सव्वं असण-पाण-खाइम-साइमं पच्चक्खामि चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए। जंपि य इमं सरीरं इट्ठं कंतं तं पि य णं चरिमेहिं उस्सास-नीसासेहिं वोसिरामि त्ति कट्टु आलोइय-पडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा सव्वट्ठसिद्धे उववण्णे। तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ परिनिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।।

४६. वह पुण्डरीक अनगार शक्तिहीन, बलहीन, वीर्यहीन तथा पुरुषार्थ और पराक्रमहीन होकर जुड़ी हुई सटे हुए दस नखों वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार बोला--नमस्कार हो धर्म के आदिकर्त्ता यावत् सिद्धि गति नामक स्थान को संप्राप्त अर्हत भगवान को। नमस्कार हो मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक स्थविर भगवान को। मैंने पहले भी स्थविरों के पास सर्व प्राणातिपात का प्रत्याख्यान किया है यावत् सर्व परिग्रह का प्रत्याख्यान किया है। इस समय भी मैं उन्हीं के पास सर्व प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूं यावत् सर्व परिग्रह का प्रत्याख्यान करता हूं। सम्पूर्ण अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का प्रत्याख्यान करता हूं। चतुर्विध आहार का जीवन-पर्यन्त प्रत्याख्यान करता हूं और जो यह शरीर मुझे इष्ट और कमनीय है, उसका भी अन्तिम उच्छ्वास-निःश्वास तक व्युत्सर्ग करता हूं। इस प्रकार वह आलोचना, प्रतिक्रमण कर मृत्यु के समय मृत्यु का वरण कर सर्वार्थसिद्ध में उपपन्न हुआ। तदनन्तर वहां से उद्वर्तन कर वह महाविदेह वर्ष में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होगा तथा सब दुःखों का अन्त करेगा।

निगमण-पदं

४७. एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे माणुस्सएहिं कामभोगेहिं नो सज्जइ नो रज्जइ नो

निगमन पद

४७. आयुष्मन् श्रमणो! इसी प्रकार हमारा जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य-उपाध्याय के पास मुण्ड हो, अगार से अनगारता में प्रव्रजित हो मनुष्य संबंधी कामभोगों में आसक्त नहीं होता, अनुरक्त नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गिज्झइ नो मुज्झइ नो अज्झोवज्झइ नो विप्पडिघायमावज्जइ, से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावगाणं बहूणं सावियाण य अच्चणिज्जे वंदणिज्जे (नमंसणिज्जे ?) पूयणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं (विणएणं?) पज्जुवासणिज्जे भवइ।

परलोए वि य णं नो आगच्छइ बहूणि दंडणाणि य मुंडणाणि य तज्जणाणि य तालणाणि य जाव चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइस्सइ--जहा व से पुंडरीए अणगारे।।

होता, गृद्ध नहीं होता, मूढ़ नहीं होता, अध्युपपन्न नहीं होता, संयम से भ्रष्ट नहीं होता वह इस जीवन में भी बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों और बहुत श्राविकाओं द्वारा अर्चनीय, वन्दनीय, (नमस्करणीय) पूजनीय, सत्करणीय, सम्माननीय, कल्याणकारी, मंगलमय, देवतातुल्य, चैत्य और (विनयपूर्वक) पर्युपासनीय होता है।

परलोक में भी वह बहुत दण्ड, मुण्डन, तर्जना और ताड़ना को प्राप्त नहीं होता यावत् वह चार अन्त वाले संसारी-रूपी कान्तार को पार पा लेगा, जैसे--वह पुण्डरीक अनगार।

निक्खेव-पदं

४८. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थगरेणं सयंसंबुद्धेणं जाव सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपत्तेण एगूणवीसइमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।।

निक्षेप-पद

४८. जम्बू! इस प्रकार धर्म के आदिकर्त्ता, तीर्थंकर, स्वयं संबुद्ध यावत् सिद्धि गति नामक स्थान को सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाता के उन्नीसवें अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

वृत्तिकार समुद्धृता निगमनगाथा--

वाससहस्संपि जइ, काऊणं संजमं सुविउलंपि।
अंते किलिट्ठभावो, न विसुज्झइ कंडरीउ व्व।।१।।

अप्पेण वि कालेणं, केइ जहा गहिय-सील-सामण्णा।
साहंति नियम-कज्जं, पुंडरीय-महारिसि व्व जहा।।२।।

वृत्तिकार द्वारा समुद्धृत निगमन गाथा--

१. हजार वर्ष तक भी सुविपुल संयम की साधना कर लेने पर भी यदि अन्त समय में भाव संक्लेशपूर्ण हो जाता है, वह कण्डरीक की भांति विशुद्धि को प्राप्त नहीं होता।

२. कुछ साधक यथागृहीत शील और श्रामण्य का पालन कर महर्षि पुण्डरीक की भांति स्वल्प समय में ही अपना प्रयोजन सिद्ध कर लेते हैं।

४९. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स पढमस्स सुयखंधस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

त्ति बेमि।।

४९. जम्बू! इस प्रकार सिद्धि गति सम्प्राप्त यावत् श्रमण भगवान महावीर ने छट्ठे अंग के प्रथम श्रुतस्कन्ध का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

-ऐसा मैं कहता हूं।

परिसेसो

एयस्स सुयखंधस्स एगूणवीसं अज्झयणाणि एक्कासरगाणि एगूणवीसाए दिवसेसु समप्पंति।।

परिशेष

इस श्रुतस्कन्ध के उन्नीस अध्ययन हैं। जो अन्तराल रहित उन्नीस दिनों में समाप्त होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

नायाधम्मकहाओ का दूसरा श्रुतस्कन्ध बहुत संक्षिप्त है। प्रथम श्रुतस्कन्ध ज्ञातप्रधान है और दूसरा श्रुतस्कन्ध धर्मकथा प्रधान है। इसके दस वर्ग हैं। उनमें काली नाम का प्रथम अध्ययन संक्षिप्त आकार वाला है। अग्रिम अध्ययन केवल सूचना मात्र है।

ज्ञात के उन्नीस अध्ययन विस्तार से लिखे गए हैं और उनका विषय स्पष्ट है। धर्मकथा के दस वर्ग हैं और अध्ययन सैंकड़ो सैंकड़ो हैं। काली के सिवाय सब कथाएं अति संक्षिप्त हैं। न उनसे कथ्य का बोध होता है और न कोई कथा का निष्कर्ष सामने आता है।

हम निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि सूत्रकार ने यह शैली क्यों अपनाई?

क्या इतना लम्बा पाठ कण्ठस्थ रखना कठिन था? क्या लिपि की कठिनाई के कारण संक्षिप्त किया गया?

क्या सूत्रकार ने कथावस्तु का विस्तार से वर्णन किया और लिपिकाल में उसे संक्षिप्त कर दिया गया?

कुछ भी हो धर्मकथा का उपलब्ध स्वरूप अवश्य प्रश्न पैदा करता है। ज्ञात के उन्नीस अध्ययन आध्यात्मिक चिंतन की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। यदि उसी प्रकार धर्मकथा के अध्ययन विस्तृत होते तो दूसरा श्रुतस्कन्ध अध्यात्म की बहुत बड़ी सम्पदा बन जाती। इसका एक अध्ययन विस्तृत है उससे साधना के उतार चढ़ाव और साधना में आने वाली विघ्न बाधाओं को समझने का अवसर मिलता है।

निष्कर्ष की भाषा में यही कहा जा सकता है कि संक्षिप्तीकरण का कारण कुछ भी रहा हो, नायाधम्मकहाओ का पाठक धर्मकथा की बहुमूल्य सामग्री से वंचित रहा है। बस 'भवितव्यं भवत्येव' इसी बिंदु पर हमें संतोष करना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीओ सुयक्खंधो : दूसरा श्रुतस्कन्ध

पढमो वग्गो : प्रथम वर्ग
पढमं अज्झयणं 'काली' : अध्ययन १ 'काली'

उक्खेव-पदं

१. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था--वण्णओ ।।

२. तस्स णं रायगिहस्स नयरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए, एत्थ णं गुणसिलए नामं चेइए होत्था--वण्णओ ।।

३. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अज्जसुहम्मा नामं थेरा भगवंतो जाइसंपण्णा कुलसंपण्णा जाव चोद्दसपुव्वी चउनाणोवगया पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडा पुव्वाणुपुव्विं चरमाणा गामाणुगामं दूइज्जमाणा सुहंसुहेणं विहरमाणा जेणेव रायगिहे नयरे जेणेव गुणसिलए चेइए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति । परिसा निग्गया । धम्मो कहिओ । परिसा जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया ।।

४. तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स (जेट्ठे?) अंतेवासी अज्जजंबू नामं अणगारे जाव अज्जसुहम्मस्स थेरस्स नच्चासण्णे नाइदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे अभिमुहे पंजलिउडे विणएणं पज्जुवासमाणे एवं वयासी--जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स पढमस्स सुयक्खंधस्स नायाणं अयमट्ठे पण्णत्ते, दोच्चस्स णं भंते! सुयक्खंधस्स धम्मकहाणं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

५. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं दस वग्गा पण्णत्ता, तं जहा--

१. चमरस्स अग्गमहिसीणं पढमे वग्गे ।

२. बलिस्स वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो अग्गमहिसीणं बीए वग्गे ।

३. असुरिंदवज्जियाणं दाहिणिल्लाणं इंदाणं अग्गमहिसीणं तईए वग्गे ।

४. उत्तरिल्लाणं असुरिंदवज्जियाणं भवणवासि-इंदाणं अग्गमहिसीणं चउत्थे वग्गे ।

उत्क्षेप-पद

१. उस काल और उस समय राजगृह नाम का नगर था--वर्णक ।

२. उस राजगृह नगर के बाहर ईशानकोण में गुणशिलक नाम का चैत्य था--वर्णक ।

३. उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर के अन्तेवासी आर्य सुधर्मा नाम के स्थविर भगवान जो जाति-सम्पन्न, कुल-सम्पन्न, यावत् चौदह पूर्वों के धारक और चार ज्ञान से युक्त थे। अपने पांच सौ अनगारों के साथ, उनसे परिवृत हो, क्रमशः संचार करते हुए, ग्रामानुग्राम परिव्रजन करते हुए, सुखपूर्वक विहार करते हुए जहां राजगृह नगर था, जहां गुणशिलक चैत्य था, वहां आए। वहां आकर प्रवास योग्य स्थान की अनुमति लेकर संयम और तप से स्वयं को भावित करते हुए विहार करने लगे। जन-समूह ने निर्गमन किया। सुधर्मा ने धर्म कहा। जन-समूह जिस ओर से आया था, उसी ओर वापस चला गया।

४. उस काल और उस समय आर्य सुधर्मा अनगार के (ज्येष्ठ?) अन्तेवासी आर्य जम्बू नाम के अनगार थे, यावत् वे आर्य सुधर्मा स्थविर के न अति निकट, न अति दूर, शुश्रूषा और नमस्कार की मुद्रा में उनके सामने बद्धाञ्जलि हो विनयपूर्वक पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले--भन्ते! यदि धर्म के आदिकर्त्ता यावत् सिद्धिगति संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने छठे अंग के प्रथम श्रुतस्कन्ध 'ज्ञातधर्मकथा' का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है तो भंते! धर्म के आदिकर्त्ता यावत् सिद्धिगति संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने दूसरे श्रुतस्कन्ध धर्मकथा का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

५. जम्बू! धर्म के आदिकर्त्ता यावत् सिद्धिगति संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने धर्मकथा के दस वर्ग प्रज्ञप्त किए हैं, जैसे--

१. चमर की अग्रमहिषियों का पहला वर्ग।

२. बलि नामक वैरोचनेन्द्र, वैरोचन राजा की अग्रमहिषियों का दूसरा वर्ग।

३. असुरेन्द्र के अतिरिक्त, दक्षिण दिशावर्ती भवनपति देवों के इन्द्रों की अग्रमहिषियों का तीसरा वर्ग।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. दाहिणिल्लाणं वाणमंतराणं इंदाणं अग्गमहिसीणं पंचमे वग्गे।
६. उत्तरिल्लाणं वाणमंतराणं इंदाणं अग्गमहिसीणं छट्ठे वग्गे।
७. चंदस्स अग्गमहिसीणं सत्तमे वग्गे।
८. सूरस्स अग्गमहिसीणं अट्ठमे वग्गे।
९. सक्कस्स अग्गमहिसीणं नवमे वग्गे।
१०. ईसाणस्स य अग्गमहिसीणं दसमे वग्गे।

४. असुरेन्द्र के अतिरिक्त, उत्तर दिशावर्ती (भवनपति देवों के) इन्द्रों की अग्रमहिषियों का चौथा वर्ग।
५. दक्षिण दिशावर्ती वानमंतर देवों के इन्द्रों की अग्रमहिषियों का पांचवां वर्ग।
६. उत्तर दिशावर्ती वानमंतर देवों के इन्द्रों की अग्रमहिषियों का छट्ठा वर्ग।
७. चन्द्रमा की अग्रमहिषियों का सातवां वर्ग।
८. सूर्य की अग्रमहिषियों का आठवां वर्ग।
९. शक्र की अग्रमहिषियों का नौवां वर्ग।
१०. ईशान की अग्रमहिषियों का दसवां वर्ग।

६. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेण धम्मकहाणं दस वग्गा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते! वग्गस्स समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

६. भन्ते! यदि धर्म के आदिकर्त्ता यावत् सिद्धिगति संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने धर्मकथाओं के दस वर्ग प्रज्ञप्त किए हैं, तो भन्ते! धर्म के आदिकर्त्ता यावत् सिद्धिगति संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने प्रथम वर्ग का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

७. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेण पढमस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा--काली, राई, रयणी, विज्जू, मेहा।।

७. जम्बू! धर्म के आदिकर्त्ता यावत् सिद्धिगति संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने प्रथम वर्ग के पांच अध्ययन प्रज्ञप्त किए हैं। जैसे—काली, रात्री, रजनी, विद्युत, मेघा।

८. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते! अज्झयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

८. भन्ते! यदि धर्म के आदिकर्त्ता यावत् सिद्धिगति संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने प्रथम वर्ग के पांच अध्ययन प्रज्ञप्त किए हैं, तो भंते! धर्म के आदिकर्त्ता यावत् सिद्धिगति संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

९. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। चेल्लणा देवी। सामी समोसढे। परिसा निग्गया जाव परिसा पज्जुवासइ।।

९. जम्बू! उस काल और उस समय राजगृह नगर था। गुणशिलक चैत्य था। श्रेणिक राजा था। चेलणा देवी थी। स्वामी समवसृत हुए। जन-समूह ने निर्गमन किया यावत् जन-समूह ने पर्युपासना की।

कालीदेवी-पदं

१०. तेणं कालेणं तेणं समएणं काली देवी चमरचंचाए रायहाणीए कालिवडेंसगभवणे कालंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं चउहिं महयरियाहिं सपरिवाराहिं, तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अणिएहिं सत्तहिं अणियाहिवईहिं सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अण्णेहिं य बहूहिं कालिवडिंसय-भवणवासीहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहि य सद्धिं संपरिवुडा महयाहय-नट्ट-गीय-वाइय-तंती-तल-ताल-तुडिय-घण-मुइंग-पडुप्पवादियरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ। इमं च णं केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणी-ओभोएमाणी पासइ।।

कालीदेवी-पद

१०. उस काल और उस समय चमरचञ्चा राजधानी में काली नाम की देवी थी। वह कालीवतंसक भवन में, काल सिंहासन पर, चार हजार सामानिक, सपरिवार चार महत्तरिकाओं, तीन परिषदों, सात अनीकों (अश्व, गज, रथ, पदाति, वृषभ, गन्धर्व, नाट्य) सात अनीकाधिपतियों, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा अन्य अनेक कालीवंतसक भवनवासी, असुरकुमार देवों और देवियों के साथ, उनसे परिवृत थी। वह महान आहत नाट्य, गीत, वादित्र, तन्त्री, तल, ताल, तूरी, धन-मृदंग--इनके पटु प्रवादित स्वरों के साथ दिव्य भोगार्ह भोगों को भोगती हुई विहार कर रही थी। उस समय वह इस सम्पूर्ण जम्बूद्वीप द्वीप को अपने विपुल अवधि ज्ञान द्वारा जानती हुई पुनः पुनः देख रही थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालीए भगवओ वंदण-पदं

११. एत्थ समणं भगवं महावीरं जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसप्पमाण-हियया सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुयइ, ओमुइत्ता तित्थगराभिमुही सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ, अंचेत्ता दाहिणं जाणुं धरणियलंसि निहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणियलंसि निवेसेइ, ईसिं पच्चुन्नमइ, पच्चुन्नमित्ता कडग-तुडिय-थंभियाओ भुयाओ साहरइ, साहरित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी--नमोत्थु णं अरहंताणं भगवंताणं जाव सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपत्ताणं। नमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपाविउकामस्स। वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगया, पासउ मे समणे भगवं महावीरे तत्थगए इहगयं ति कट्टु वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहा निसण्णा॥

काली द्वारा भगवान को वन्दन-पद

११. उसने जम्बूद्वीप द्वीप, भारतवर्ष राजगृह नगर और गुणशिलक चैत्य में प्रवास योग्य स्थान की अनुमति लेकर, संयम और तप से स्वयं को भावित करते हुए श्रमण भगवान महावीर को देखा। देखकर हृष्ट तुष्ट चित्त वाली, आनन्दित, प्रीतिपूर्ण मन वाली, परम सौमनस्य और हर्ष से विकस्वर हृदय वाली वह (काली देवी) सिंहासन से उठी। उठकर पादपीठ से नीचे उतरी, उतरकर पादुकाएं उतारी। उतारकर तीर्थंकर के अभिमुख हो सात-आठ पग आगे बढ़ी। आगे बढ़कर बाएं घुटने को ऊपर उठाया। उठाकर दाएं घुटने को धरती पर टिकाया। मस्तक को तीन बार भूतल पर लगाया। पुनः थोड़ी ऊपर उठी। उठकर कड़े और बाजूबन्धों से स्तम्भित भुजाओं को संकुचित किया। संकुचित कर फिर जुड़ी हुई सटे हुए दस नखों वाली सिर पर प्रदक्षिणा करती अञ्जली को मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार बोली--'नमस्कार हो, धर्म के आदिकर्त्ता यावत् सिद्धिगति नामक स्थान को संप्राप्त अर्हत भगवान को। नमस्कार हो, धर्म के आदिकर्त्ता यावत् सिद्धिगति नामक स्थान को संप्राप्त करने वाले श्रमण भगवान महावीर को।

मैं यहीं से तत्रस्थित भगवान को वंदना करती हूं। श्रमण भगवान महावीर वहीं से यहां स्थित मुझको देखें--ऐसा कहकर उसने वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर वह प्रवर सिंहासन पर पूर्वाभिमुख हो बैठ गई।

१२. तए णं तीसे कालीए देवीए इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--सेयं खलु मे समणं भगवं महावीरं वंदित्तए नमंसित्तए सक्कारित्तए सम्माणित्तए कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता आभिओगिए देवे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे विहरइ एवं जहा सूरियाभो तहेव आणत्तियं देइ जाव दिव्वं सुरवराभिगमणजोग्गं करेह य कारवेह य करेत्ता कारवेत्ता य खिप्पामेव एवमाणत्तियं पच्चप्पिणह। ते वि तहेव करेत्ता जाव पच्चप्पिणंति, नवरं--जोयणसहस्सवित्थिण्णं जाणं। सेसं तहेव। तहेव नामगोयं साहेइ, तहेव नट्टविहिं उवदंसेइ जाव पडिगया॥

१२. उस काली देवी के मन में यह इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ--मेरे लिए उचित है मैं श्रमण भगवान महावीर को वन्दना करूं, नमस्कार करूं, उनका सत्कार करूं, सम्मान करूं। वे कल्याणकारी, मंगलमय, धर्मदेव और ज्ञानमय हैं। अतः उनकी पर्युपासना करूं--उसने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर आभियोगिक देवों को बुलाया। उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा--देवानुप्रियो! श्रमण भगवान महावीर विहार कर रहे हैं, इस प्रकार सूर्याभ की भांति आज्ञप्ति दी यावत् कहा--देवों के अभिगमन योग्य दिव्य विमान आदि प्रस्तुत करो और करवाओ। ऐसा कर शीघ्र ही इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो। उन्होंने भी वैसा ही किया यावत् आज्ञा को प्रत्यर्पित किया। विशेष--उसका यान हजार योजन विस्तीर्ण था। शेष सूर्याभ के समान। वैसे ही नाम-गोत्र बताए। वैसे ही नाट्य-विधि का प्रदर्शन किया यावत् लौट आयी।

गोयमस्स पसिण-पदं

१३. भंतेति! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--कालीए णं भंते! देवीए सा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभाए कहिं गए? कहिं अणुप्पविट्ठे?

गोयमा! सरीरं गए सरीरं अणुप्पविट्ठे। कूडागारसाला दिट्ठंतो।

गौतम का प्रश्न-पद

१३. भन्ते! भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार बोले--भन्ते! काली देवी की यह दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देव-प्रभाव कहां चला गया? कहां अनुप्रविष्ट हो गया?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहो णं भंते! काली देवी महिड्ढिया महज्जुइया महब्बला महायसा महासोक्खा महाणुभागा।।

गौतम! वह शरीर में चला गया। शरीर में अनुप्रविष्ट हो गया। यहां कूटागारशाला का दृष्टान्त ज्ञातव्य है।

अहो भन्ते! काली देवी महान ऋद्धि, महान द्युति, महान बल महान यश, महान सुख, और महान अनुभाग सम्पन्न है।

१४. कालीए णं भंते! देवीए सा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभागे किण्णा लद्धे? किण्ण पत्ते? किण्णा अभिसमण्णागए?

१४. भन्ते! काली देवी को वह दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाग कैसे उपलब्ध हुआ? कैसे प्राप्त हुआ? कैसे अभिसमन्वागत हुआ?

भगवओ उत्तरे काली-पदं

१५. गोयमाति! समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं आमंतेत्ता एवं वयासी--एवं खलु गोयमा! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आमलकप्पा नामं नयरी होत्था--वण्णओ। अंबसालवणे चेइए। जियसत्तू राया।।

भगवान के उत्तर के अन्तर्गत काली पद

१५. गौतम! श्रमण भगवान महावीर ने भगवान गौतम को आमन्त्रित कर इस प्रकार कहा--गौतम! उस काल और उस समय, इसी जम्बूद्वीप द्वीप और भारतवर्ष में आमलकल्पा नाम की नगरी थी--वर्णक। उसमें आम्रशालवन चैत्य था। जितशत्रु राजा था।

१६. तत्थ णं आमलकप्पाए नयरीए काले नामं गाहावई होत्था--अड्ढे जाव अपरिभूए।।

१६. उस आमलकल्पा नगरी में 'काल' नाम का गृहपति था, वह आढ्य यावत् अपराजित था।

१७. तस्स णं कालस्स गाहावइस्स कालसिरी नामं भारिया होत्था--सुकुमाल-पाणिपाया जाव सुरूवा।।

१७. उस 'काल' गृहपति के कालश्री नाम की भार्या थी। वह सुकुमार हाथ-पावों वाली यावत् सुरूपा थी।

१८. तस्स णं कालस्स गाहावइस्स धूया कालसिरिए भारियाए अत्तया काली नामं दारिया होत्था--वड्ढा वड्ढकुमारी जुण्णा जुण्णकुमारी पडियपुयत्थणी निव्विण्णवरा वरगपरिवज्जिया वि होत्था।।

१८. उस काल गृहपति की पुत्री और कालश्री भार्या की आत्मजा 'काली' नाम की बालिका थी। वह वड्डा, वड्ड कुमारी, जीर्णा, जीर्ण कुमारी, श्लथ, जघन और स्तनवाली, वर से (पति को पाने की दृष्टि से) उदासीन और वर से परिवर्जित भी थी।

काली पव्वज्जा पदं

१९. तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए आइगरे तित्थगरे सहसंबुद्धे पुरिसोत्तमे पुरिससीहे पुरिसवरपुंडरीए पुरिसवर-गंधहत्थी अभयदए चक्खुदए मग्गदए सरणदए जीवदए दीवो ताणं सरणं गई पइट्ठा धम्मवरचाउरंत-चक्कवट्टी अप्पडिहय-वरनाणदंसणधरे वियट्टच्छउमे अरहा जिणे केवली जिणे जाणए तिण्णे तारए मुत्ते मोयए बुद्धे बोहए सव्वण्णू सव्वदरिसी नवहत्थुस्सेहे समचउरंससंठाणसंठिए वज्जरिसहनारायसंघयणे जल्ल-मल्लकलंकसेयरहियसरीरे सिवमयलमरुयमणंतमक्खयमव्वा-बाहमपुणरावत्तगं सिद्धिगइणामधेज्जं ठाणं संपाविउकामे सोलसहिं समणसाहस्सीहिं अट्ठत्तीसाए अज्जियासाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे आमलकप्पाए नयरीए बहिया अंबसालवणे समोसढे। परिसा निग्गया जाव पज्जुवासइ।।

काली का प्रव्रज्या पद

१९. उस काल और उस समय, धर्म के आदिकर्त्ता तीर्थंकर, स्वयं-संबुद्ध, पुरुषोत्तम, पुरुष सिंह, पुरुष-वर-पुण्डरीक, पुरुष-वर-गन्धहस्ती, अभयदाता, चक्षुदाता, मार्ग-दाता, शरण-दाता, जीवन-दाता, द्वीप, त्राण, शरण, गति, प्रतिष्ठा, धर्म के प्रवर चातुरन्त चक्रवर्ती, अप्रतिहत प्रवर ज्ञान-दर्शन के धारक, व्यावृत्त-छद्म, अर्हत्, जिन, केवली, स्वयं ज्ञाता, दूसरों को ज्ञान देने वाले, स्वयं तीर्ण, दूसरों को तारने वाले, स्वयं मुक्त, दूसरों को मुक्ति देने वाले, स्वयं बुद्ध, दूसरों को बोध देने वाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, नौ हाथ ऊँचाई वाले, समचतुरस्र संस्थान से संस्थित, वज्रऋषभ नाराच संहनन वाले, जल्ल, मल, कलंक और स्वेद से रहित शरीर वाले, शिव, अचल, अरुज, अनन्त, अक्षय, अव्याबाध, पुनरावृत्ति रहित, सिद्धिगति नामक स्थान को संप्राप्त करने के इच्छुक, पुरुषादानीय अर्हत पार्श्व, अपने सौलह हजार श्रमणों और अड़तीस हजार आर्याओं के साथ उनसे परिवृत हो, क्रमशः संचार करते हुए, ग्रामानुग्राम परिव्रजन करते हुए, सुखपूर्वक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहार करते हुए, आमलकल्पा नगरी के बाहर आम्रशालवन में समवसृत हुए। जन-समूह ने निर्गमन किया यावत् पर्युपासना की।

२०. तए णं सा काली दारिया इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ठ तुट्ठ-चित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसप्पमाणहियया जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी--एवं खलु अम्मयाओ! पासे अरहा पुरिसादाणीए आइगरे तित्थगरे इहमागए इह संपत्ते इह समोसढे इह चेव आमलकप्पाए नयरीए अंबसालवणे अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तं इच्छामि णं अम्मयाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स पायवंदिया गमित्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिए! मा पडिबंधं करेहि।।

२०. भगवान के आगमन का संवाद प्राप्त कर हृष्ट तुष्ट चित्त वाली, आनन्दित, प्रीतिपूर्ण मन वाली परम सौमनस्य युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाली काली बालिका, जहां माता-पिता थे, वहां आयी। वहां आकर जुड़ी हुई, सटे हुए दस नखों वाली सिर पर प्रदक्षिणा करती अंजली को मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार बोली--माता-पिता! धर्म के आदिकर्त्ता, तीर्थंकर, पुरुषादानीय अर्हत पार्श्व यहां आये हैं। यहां संप्राप्त हैं। यहां समवसृत हैं और यहीं आमलकल्पा नगरी के आम्रशालवन में प्रवास योग्य स्थान की अनुमति लेकर संयम और तप से स्वयं को भावित करते हुए विहार कर रहे हैं।

अतः माता-पिता! मैं तुमसे अनुज्ञा प्राप्त कर पुरुषादानीय अर्हत पार्श्व को पाद-वन्दन करने के लिए जाना चाहती हूं।

'जैसा सुख हो देवानुप्रिय! प्रतिबन्ध मत करो।'

२१. तए णं सा काली दारिया अम्मापिईहिं अब्भणुण्णाया समाणी हट्ठ तुट्ठ-चित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसप्पमाणहियया ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिया अप्पमहग्घाभरणलंकियसरीरा चेडिया-चक्कवाल-परिकिण्णा साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव धम्मिए जाणप्पवरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढा।।

२१. माता-पिता से अनुज्ञा प्राप्त कर हृष्ट तुष्ट चित्त वाली, आनन्दित, प्रीतिपूर्ण मन वाली, परम सौमनस्य युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाली काली बालिका ने स्नान, बलिकर्म और कौतुक मंगल-रूप प्रायश्चित्त किया। पवित्र स्थान में प्रवेश करने योग्य प्रवर मंगल वस्त्र पहने। अल्पभार और बहुमूल्य आभरणों से शरीर को अलंकृत किया। दासी समूह से परिवृत हो अपने घर से निकली। निकलकर जहां बाहरी सभा-मण्डप था, जहां प्रवर धार्मिक-यान था वहां आयी। वहां आकर वह उस प्रवर धार्मिक यान पर आरूढ़ हुई।

२२. तए णं सा काली दारिया धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढा समाणी एवं जहा देवई तहा पज्जुवासइ।।

२२. प्रवर धार्मिक यान पर आरूढ़ हुई उस काली बालिका ने देवकी की भांति पर्युपासना की।

२३. तए णं पासे अरहा पुरिसादाणीए कालीए दारियाए तीसे य महइमहालियाए परिसाए धम्मं कहेइ।।

२३. पुरुषादानीय अर्हत पार्श्व ने उस काली बालिका तथा उस उपस्थित सुविशाल परिषद् को धर्म कहा।

२४. तए णं सा काली दारिया पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसप्पमाणहियया पासं अरहं पुरिसादाणीयं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--सद्दहामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं जाव से जहेयं तुब्भे वयह। जं नवरं--देवाणुप्पिया! अम्मापियरो आपुच्छामि, तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वयामि।।

अहासुहं देवाणुप्पिए!

२४. पुरुषादानीय अर्हत पार्श्व के पास धर्म को सुनकर, अवधारण कर, हृष्ट-तुष्ट चित्त वाली, आनन्दित, प्रीतिपूर्ण मन और परम सौमनस्य युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाली काली बालिका ने पुरुषादानीय अर्हत पार्श्व को तीन बार दायीं ओर से प्रदक्षिणा की। वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार बोली--भन्ते! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर श्रद्धा करती हूं यावत् वह वैसा ही है जैसा तुम कह रहे हो। विशेष--देवानुप्रिय! मैं माता-पिता से पूछ लेती हूं उसके पश्चात् मैं देवानुप्रिय के पास मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित होऊंगी।

'जैसा सुख हो देवानुप्रिये!'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५. तए णं सा काली दारिया पासेणं अरहया पुरिसादाणीएणं एवं वुत्ता समाणी हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसप्पमाणहियया पासं अरहं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुरुहइ, दुरुहित्ता पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स अंतियाओ अंबसालवणाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव आमलकप्पा नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आमलकप्पं नयरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ; उवागच्छित्ता धम्मियं जाणप्पवरं ठवेइ, ठवेत्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव अम्मपियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी--एवं खलु अम्मयाओ! मए पासस्स अरहओ अंतिए धम्मे निसंते। से वि य धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए। तए णं अहं अम्मयाओ! संसारभउव्विग्गा भीया जम्मण-मरणाणं इच्छामि णं तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी पासस्स अरहओ अंतिए मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिए! मा पडिबंधं करेहि।।

२५. पुरुषादानीय अर्हत पार्श्व के ऐसा कहने पर हृष्ट तुष्ट चित्त वाली, आनन्दित, प्रीतिपूर्ण मन वाली, परमसौमनस्य युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाली काली बालिका ने अर्हत पार्श्व को वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर उसी धार्मिक यान पर आरूढ़ हुई। आरूढ़ होकर पुरुषादानीय अर्हत पार्श्व के पास से उठकर आम्रशालवन चैत्य से बाहर निकली। निकलकर जहां आमलकल्पा नगरी थी वहां आयी। आकर आमलकल्पा नगरी के बीचोंबीच होकर जहां बाहरी सभा-मण्डप था वहां आयी। आकर प्रवर धार्मिक यान को ठहराया। ठहराकर प्रवर धार्मिक यान से उतरी। उतरकर जहां माता-पिता थे वहां आयी। वहां आकर जुड़ी हुई सटे हुए दस नखों वाली सिर पर प्रदक्षिणा करती अंजली को मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार बोली--'माता-पिता! मैंने अर्हत पार्श्व के पास धर्म को सुना है। वही धर्म मुझे इष्ट, ग्राह्य और रुचिकर है। माता-पिता! मैं संसार के भय से उद्विग्न हूं और जन्म-मृत्यु से भीत हूं अत: मैं तुमसे अनुज्ञा प्राप्त कर अर्हत पार्श्व के पास मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित होना चाहती हूं।

'जैसा सुख हो देवानुप्रिये! प्रतिबन्ध मत करो।'

२६. तए णं से काले गाहावई विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं आमंतेइ, आमंतेत्ता तओ पच्छा ण्हाए जाव विपुलेणं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता तस्सेव मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स पुरओ कालिं दारियं सेयापीएहिं कलसेहि ण्हावेइ, ण्हावेत्ता सव्वालंकार-विभूसियं करेइ, करेत्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरूहेइ, दुरूहेत्ता मित्तनाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेणं सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव दुंदुहिनिग्घोस-नाइयरवेणं आमलकप्पं नयरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निगच्छित्ता जेणेव अंबसालवणे चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता छत्ताईए तित्थगराइसए पासइ, पासित्ता सीयं ठवेइ, ठवेत्ता कालिं दारियं सीयाओ पच्चोरुहेइ।।

२६. 'काल' गृहपति ने विपुल, अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवाया। तैयार करवाकर मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनों को आमन्त्रित किया। आमन्त्रित कर स्नान कर यावत् विपुल पुष्प, वस्त्र, गन्ध, चूर्ण, माला और अंलकारों से उनको सत्कृत किया। सम्मानित किया। सत्कृत-सम्मानित कर उन्हीं मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनों के सामने बालिका काली को रजत और स्वर्ण-निर्मित कलशों से नहलाया। नहलाकर सब प्रकार के अंलकारों से विभूषित किया। विभूषित कर हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली शिविका पर आरूढ़ किया। आरूढ़ कर मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनों के साथ उनसे संपरिवृत हो, सम्पूर्ण ऋद्धि यावत् दुन्दुभि निर्घोष से निनादित स्वरों के साथ आमलकल्पा नगरी के बीचोंबीच होकर निकला। निकलकर जहां आम्रशालवन चैत्य था, वहां आया। वहां आकर तीर्थंकर के छत्र आदि अतिशयों को देखा। देखकर शिविका को ठहराया। ठहराकर काली बालिका को शिविका से उतारा।

२७. तए णं तं कालिं दारियं अम्मापियरो पुरओ काउं जेणेव पासे अरहा पुरिसादाणीए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--एवं खलु देवाणुप्पिया! काली दारिया अम्हं धूया इट्ठा कंता जाव उंबरपुप्फं पिव दुल्लहा सवणयाए, किमंग पुण पासणयाए? एस णं देवाणुप्पिया!

२७. काली बालिका के माता-पिता उस काली बालिका को आगे कर जहां पुरुषादानीय अर्हत पार्श्व थे, वहां आए। आकर वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार बोले--देवानुप्रिय! यह काली बालिका हमारी पुत्री है। हमें इष्ट, कमनीय यावत् उदुम्बर के पुष्प के समान श्रवण दुर्लभ है फिर दर्शन का तो प्रश्न ही कहां है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संसारभउविग्गा इच्छइ देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडा भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए। तं एयं णं देवाणुप्पियाणं सिस्सिणिभिक्खं दलयामो। पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया! सिस्सिणिभिक्खं।

अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेहि।।

देवानुप्रिय! यह संसार के भय से उद्विग्न है अत: यह देवानुप्रिय के पास मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित होना चाहती है। अत: हम देवानुप्रिय को यह शिष्या की भिक्षा अर्पित करते हैं।

देवानुप्रिय! यह शिष्या की भिक्षा स्वीकार करें।

जैसा सुख हो देवानुप्रिय! प्रतिबन्ध मत करो

२८. तए णं सा काली कुमारी पासं अरहं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव लोयं करेइ, करेत्ता जेणेव पासे अरहा पुरिसादाणीए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पासं अरहं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी--आलित्ते णं भंते! लोए जाव तं इच्छामि णं देवाणुप्पिएहिं सयमेव पव्वावियं जाव धम्ममाइक्खियं।।

२८. काली बालिका ने अर्हत पार्श्व को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर वह ईशान-कोण में गई। वहां जाकर उसने स्वयमेव आभरण, माला और अलंकार उतारे। उतारकर स्वयमेव केशलुंचन किया। केशलुंचन कर जहां पुरुषादानीय अर्हत पार्श्व थे वहां आई। आकर अर्हत पार्श्व को तीन बार दायीं ओर से प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा कर वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार बोली--भन्ते! यह लोक जल रहा है यावत् मैं चाहती हूं देवानुप्रिय स्वयं मुझे प्रव्रजित करें यावत् धर्म का उपदेश दें।

२९. तए णं पासे अरहा पुरिसादाणीए कालिं सयमेव पुप्फचूलाए अज्जाए सिस्सिणियत्ताए दलयइ।।

२९. पुरुषादानीय अर्हत पार्श्व ने काली को स्वयमेव आर्या पुष्पचूला को शिष्या के रूप में प्रदान किया।

३०. तए णं सा पुप्फचूला अज्जा कालिं कुमारिं सयमेव पव्वावेइ जाव धम्ममाइक्खइ।।

३०. आर्या पुष्पचूला ने काली बालिका को स्वयं प्रव्रजित किया यावत् धर्म का उपदेश दिया।

३१. तए णं सा काली पुप्फचूलाए अज्जाए अंतिए इमं एयारूवं धम्मियं उवएसं सम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।।

३१. वह काली आर्या पुष्पचूला के पास इस विशिष्ट धार्मिक उपदेश को सम्यक् स्वीकार कर विहार करने लगी।

३२. तए णं सा काली अज्जा जाया--इरियासमिया जाव गुत्तबंभयारिणी।।

३२. अब काली आर्या बन गई--ईर्या समिति से समित यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी।

३३. तए णं सा काली अज्जा पुप्फचूलाए अज्जाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।।

३३. काली आर्या ने आर्या पुष्पचूला के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत सारे चतुर्थ भक्त, षष्ठ भक्त, अष्टम भक्त, दशम भक्त, द्वादश भक्त तथा मासिक और पाक्षिक तप से स्वयं को भावित करती हुई विहार करने लगी।

कालीए बाउसियत्त-पदं

३४. तए णं सा काली अज्जा अण्णया कयाइ सरीरबाउसिया जाया यावि होत्था। अभिक्खणं-अभिक्खणं हत्थे धोवेइ, पाए धोवेइ, सीसं धोवेइ, मुहं धोवेइ, थणंतराणि धोवेइ, कक्खंतराणि धोवेइ, गुज्झंतराणि धोवेइ, जत्थ-जत्थ वि य णं ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएइ, तं पुव्वामेव अब्भुक्खित्ता तओ पच्छा आसयइ वा सयइ वा।।

काली का बाकुशिकत्व-पद

३४. किसी समय वह काली आर्या शरीर बाकुशिका बन गई। वह पुन: पुन: हाथ धोती, पांव धोती, सिर धोती, मुंह धोती, स्तनान्तर धोती, कक्षान्तर धोती, गुह्यान्तर धोती और जहां जहां भी स्थान, शय्या अथवा निषद्या करती उस भूमि को पहले पानी से धोकर उसके पश्चात् बैठती अथवा सोती।

३५. तए णं सा पुप्फचूला अज्जा कालिं अज्जं एवं वयासी--नो खलु

३५. आर्या पुष्पचूला ने आर्या काली को इस प्रकार कहा--देवानुप्रिये! हम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कप्पइ देवाणुप्पिए! समणीणं निग्गंथीणं सरीरबाउसियाणं होत्तए। तुमं च णं देवाणुप्पिए! सरीरबाउसिया जाया अभिक्खणं-अभिक्खणं हत्थे धोवसि, पाए धोवसि, सीसं धोवसि, मुहं धोवसि, थणंतराणि धोवसि, कक्खंतराणि धोवसि, गुज्झंतराणि धोवसि, जत्थ-जत्थ वि य णं ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएसि, तं पुव्वामेव अब्भुक्खित्ता तओ पच्छा आसयसि वा सयसि वा। तं तुमं देवाणुप्पिए! एयस्स ठाणस्स आलोएहि जाव पायच्छित्तं पडिवज्जाहि।।

श्रमणियों निर्ग्रन्थिकाओं को शरीर बाकुशिक होना नहीं कल्पता और देवानुप्रिये! तुम तो शरीर बाकुशिक बन गई हो। तुम बार-बार हाथ धोती हो, पांव धोती हो, सिर धोती हो, मुंह धोती हो, स्तनान्तर धोती हो, कक्षान्तर धोती हो, गुह्यान्तर धोती हो और जहां-जहां भी स्थान, शय्या अथवा निषद्या करती हो उस भूमि को पहले धोकर उसके पश्चात् बैठती हो अथवा सोती हो। इसलिए देवानुप्रिये! तुम इस स्थान की आलोचना करो यावत् प्रायश्चित्त स्वीकार करो।

३६. तए णं सा काली अज्जा पुप्फचूलाए अज्जाए एयमट्ठं नो आढाइ नो परियाणाइ तुसिणीया संचिट्ठइ।।

३६. काली आर्या ने आर्या पुष्पचूला के इस अर्थ को न आदर दिया और न उसकी बात पर ध्यान दिया। वह मौन रही।

३७. तए णं ताओ पुप्फचूलाओ अज्जाओ कालिं अज्जं अभिक्खणं-अभिक्खणं हीलेंति निंदंति खिंसंति गरहंति अवमन्नंति अभिक्खणं-अभिक्खणं एयमट्ठं निवारेंति।।

३७. उस आर्या पुष्पचूला ने काली आर्या की पुनः पुनः अवहेलना की, निंदा की, कुत्सा की, गर्हा की, अवमानना की और पुनः पुनः उसे इस कार्य से रोका।

कालीए पुढोविहार-पदं

३८. तए णं तीसे कालीए अज्जाए समणीहिं निग्गंथीहिं अभिक्खणं-अभिक्खणं हीलिज्जमाणीए जाव निवारिज्जमाणीए इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था--जया णं अहं अगारमज्झे वसित्था तया णं अहं सयंवसा, जप्पभिइं च णं अहं मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया तप्पभिइं च णं अहं परवसा जाया। तं सेयं खलु मम कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते पाडिक्कयं उवस्सयं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते पाडिक्कं उवस्सयं गेण्हइ। तत्थ णं अणिवारिया अणोहट्टिया सच्छंदमई अभिक्खणं अभिक्खणं हत्थे धोवेइ, पाए धोवेइ, सीसं धोवेइ, मुहं धोवेइ, थणंतराणि धोवेइ, कक्खंतराणि धोवेइ, गुज्झंतराणि धोवेइ, जत्थ-जत्थ वि य णं ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएइ, तं पुव्वामेव अब्भुक्खित्ता तओ पच्छा आसयइ वा सयइ वा।।

काली का पृथक विहार-पद

३८. इस प्रकार श्रमणियो! निर्ग्रन्थिकाओं द्वारा पुनः पुनःअवहेलना किये जाने पर यावत् रोके जाने पर काली आर्या के मन में इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, अभिलषित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ 'जब मैं अगारवास में थी, तब स्वतन्त्र थी और जिस समय से मैं मुण्ड हो अगार से अनगारता में प्रव्रजित हुई हूं उस समय से मैं परतन्त्र हो गई हूं। अतः मेरे लिए उचित है मैं उषाकाल में पौ फटने यावत् सहस्ररश्मि दिनकर, तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर पृथक् उपाश्रय को स्वीकार कर विहार करूं। उसने ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर उषाकाल में, पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर, तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के कुछ ऊपर आ जाने पर उसने पृथक उपाश्रय में आश्रय लिया। बिना किसी रोक-टोक के स्वतन्त्रता पूर्वक पुनः पुनः हाथ धोती, पांव धोती, सिर धोती, मुंह धोती, स्तनान्तर धोती, कक्षान्तर धोती, गुह्यान्तर धोती और जहां जहां भी स्थान, शय्या अथवा निषद्या करती उस भूमि को पहले ही पानी से धोकर उसके पश्चात् बैठती अथवा सोती।

कालीए मच्चु-पदं

३९. तए णं सा काली अज्जा पासत्था पासत्थविहारी ओसन्ना ओसन्नविहारी कुसीला कुसीलविहारी अहाछंदा अहाछंदविहारी संसत्ता संसत्तविहारी बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसेइ, झूसेत्ता तीसं भत्ताइं अणसणाए छेएइ, छेएत्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा चमरचंचाए रायहाणीए कालिवडिंसए भवणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि देवदूसंतरिया अंगुलस्स असंखेज्जाए भागमेत्ताए ओगाहणाए कालीदेवित्ताए उववण्णा।।

काली का मृत्यु-पद

३९. उस काली आर्या ने पार्श्वस्था, पार्श्वस्थ-विहारिणी, अवसन्ना, अवसन्न-विहारिणी कुशीला, कुशील विहारिणी, यथाछन्दा, यथाछन्द-विहारिणी, संसक्ता और संसक्त-विहारिणी होकर बहुत वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालन किया। पालन कर पाक्षिक संलेखना की आराधना में स्वयं को समर्पित किया। समर्पित कर अनशन काल में तीस भक्तों का परित्याग किया। परित्याग कर अन्तिम समय में उस (प्रमाद) स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना मृत्यु के समय मृत्यु को प्राप्त कर वह चमरचञ्चा राजधानी कालीवतंसक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवन, उपपात सभा और देव शय्या में देवदूष्य वस्त्र के आवरण में अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमित अवगाहना से काली देवी के रूप में उपपन्न हुई।

४०. तए णं सा काली देवी अहुणोववण्णा समाणी पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तभावं गच्छति (तं जहा--आहारपज्जत्तीए सरीरपज्जत्तीए इंदियपज्जत्तीए आणपाण-पज्जत्तीए भासमणपज्जत्तीए)।।

४०. वह सद्यः उपपन्न काली देवी पांच पर्याप्तियों से पर्याप्त अवस्था को प्राप्त हुई (जैसे--आहार-पर्याप्ति से, शरीर पर्याप्ति से, इन्द्रिय पर्याप्ति से, आनापान पर्याप्ति से, भाषा-मनः पर्याप्ति से)

४१. तए णं सा काली देवी चउण्हं सामाणिय-साहस्सीणं जाव सोलसण्हं आयरक्ख-देवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं कालिवडेंसग-भवणवासीणं असुरकुमाराणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं कारेमाणी जाव विहरइ।।

४१. वह काली देवी चार हजार सामानिक यावत् सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा कालीवतंसक भवन में निवास करने वाले अन्य अनेक असुर कुमार देवों और देवियों का आधिपत्य करती हुई यावत् विहार करने लगी।

४२. एवं खलु गोयमा! कालीए देवीए सा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए।।

४२. इस प्रकार गौतम! काली देवी को वह दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवानुभाव उपलब्ध हुआ, प्राप्त हुआ, अभिसमन्वागत हुआ।

४३. कालीए णं भंते! देवीए केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?
गोयमा! अड्ढाइज्जाइं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।।

४३. भन्ते! काली देवी की काल-स्थिति कितनी है?
गौतम! उसकी स्थिति अढ़ाई पल्योपम है।

४४. काली णं भंते! देवी ताओ देवलोगाओ अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छिहिइ? कहिं उववज्जिहिइ? गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ परिनिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणं अंतं काहिइ।।

४४. भन्ते! काली देवी उस देवलोक से उद्वर्तन के अनन्तर कहां जाएगी? कहां उपपन्न होगी? गौतम! वह महाविदेह वर्ष में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत होगी और सब दुखों का अन्त करेगी।

निक्खेव-पदं

४५. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स पढमज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

--त्ति बेमि।।

निक्षेप-पद

४५. जम्बू! इस प्रकार धर्म के आदिकर्त्ता यावत् सिद्धिगति संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

--ऐसा मैं कहता हूं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीअं अज्झयणं : अध्ययन २

राई : 'राजी'

४६. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेण धम्मकहाणं पढमस्स वग्गस्स पढमज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, बिइयस्स णं भंते! अज्झयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

४६. भन्ते! यदि धर्म के आदिकर्ता यावत् सिद्धिगति संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने धर्मकथाओं के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है, तो भन्ते! धर्म के आदिकर्ता यावत् सिद्धिगति संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने द्वितीय अध्ययन का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

४७. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए। सामी समोसढे। परिसा निग्गया जाव पज्जुवासइ।।

४७. जम्बू! उस काल और उस समय राजगृह नगर और गुणशिलक चैत्य था। स्वामी समसवृत हुए। जनसमूह आया यावत् पर्युपासना की।

४८. तेणं कालेणं तेणं समएणं राई देवी चमरचंचाए रायहाणीए एवं जहा काली तहेव आगया, नट्टविहिं उवदंसित्ता पडिगया।।

४८. उस काल और उस समय चमरचञ्चा राजधानी से काली देवी की तरह राजी देवी आई। नाट्य विधि प्रदर्शित कर वापस चली गई।

४९. भंतेति! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता पुव्वभवपुच्छा।।

४९. भन्ते! भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना, नमस्कार कर पूर्वभव सम्बन्धी प्रश्न किया।

५०. गोयमाति! समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं आमंतेत्ता एवं वयासी--एवं खलु गोयमा! तेणं कालेणं तेणं समएणं आमलकप्पा नयरी अंबसालवणे चेइए। जियसत्तू राया। राई गाहावई। राइसिरी भारिया। राई दारिया। पासस्स समोसरणं। राई दारिया जहेव काली तहेव निक्खंता।।

५०. हे गौतम! श्रमण भगवान महावीर ने भगवान गौतम को आमन्त्रित कर इस प्रकार कहा--गौतम! उस काल और उस समय आमलकल्पा नगरी थी। वहां आम्रशालवन चैत्य था। जितशत्रु राजा, राजी गृहपति, राजी श्री भार्या और राजी बालिका थी। भगवान पार्श्व का समवसरण। काली के समान राजी ने भी निष्क्रमण किया।

५१. तए णं सा राई अज्जा जाया।।

५१. वह राजी आर्या बन गई।

५२. तए णं सा राई अज्जा पुप्फचूलाए अज्जाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ।।

५२. आर्या राजी ने आर्या पुष्पचूला के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया।

५३. तए णं सा राई अज्जा अण्णया कयाइ सरीरबाउसिया जाया यावि होत्था।।

५३. किसी समय वह आर्या राजी शरीरबाकुशिका बन गई।

५४. तए णं सा राई अज्जा पासत्था तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा चमरचंचाए रायहाणीए रायवडिंसए भवणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि देवदूसंतरिया अंगुलस्स असंखेज्जाए भागमेत्ताए ओगाहणाए राईदेवित्ताए उववण्णा जाव अंतं काहिइ।।

५४. वह पार्श्वस्था आर्या राजी उस प्रमाद स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही मृत्यु के समय मृत्यु को प्राप्त कर, चमरचञ्चा राजधानी, राजावतंसक भवन, उपपात सभा और देव शय्या में देवदूष्य वस्त्र के आवरण में अंगुल के असंख्यातावें भाग परिमित अवगाहना से राजी देवी के रूप में उपपन्न हुई यावत् वह सब दुःखों का अन्त करेगी।

५५. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेण पढमस्स वग्गस्स बिइयज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

--त्ति बेमि।।

५५. जम्बू! धर्म के आदिकर्ता यावत् सिद्धिगति संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने प्रथम वर्ग के द्वितीय अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

--ऐसा मैं कहता हूं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तइयं अज्झयणं : अध्ययन ३

रयणी : 'रजनी'

५६. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं धम्मकहाणं पढमस्स वग्गस्स बिइयज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, तइयस्स णं भंते! अज्झयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

५६. भन्ते! यदि श्रमण भगवान महावीर ने धर्म कथाओं के प्रथम वर्ग के द्वितीय अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है तो भन्ते! तृतीय अध्ययन का श्रमण भगवान महावीर ने क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

५७. एवं खलु जंबू! रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। सामी समोसढे।।

५७. जम्बू! राजगृह नगर। गुणशिलक चैत्य। स्वामी समवसृत हुए।

५८. तेणं कालेणं तेणं समएणं रयणी देवी चमरचंचाए रायहाणीए आगया।।

५८. उस काल और उस समय चमरचञ्चा राजधानी से रजनी देवी आयी।

५९. भंतेत्ति! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता पुव्वभवपुच्छा।।

५९. भन्ते! भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार कर उसके पूर्वभव सम्बन्धी प्रश्न किया।

६०. गोयमाति! समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं आमंतेत्ता एवं वयासी--एवं खलु गोयमा! तेणं कालेणं तेणं समएणं आमलकप्पा नयरी। अंबसालवणे चेइए। जियसत्तू राया। रयणी गाहावई। रयणसिरी भारिया। रयणी दारिया। सेसं तहेव जाव अंतं काहिइ।।

६०. हे गौतम! श्रमण भगवान महावीर ने भगवान गौतम को आमन्त्रित कर इस प्रकार कहा--गौतम! उस काल और उस समय आमलकल्पा नगरी, आम्रशालवन चैत्य, जितशत्रु राजा, रजनी गृहपति, रजनीश्री भार्या और रजनी बालिका थी। शेष राजी के समान यावत् वह सब दुःखों का अन्त करेगी।

चउत्थं अज्झयणं : अध्ययन ४

विज्जू : विद्युत

६१. एवं विज्जू वि--आमलकप्पा नयरी। विज्जू गाहावई। विज्जूसिरी भारिया। विज्जू दारिया। सेसं तहेव।।

६१. इसी प्रकार विद्युत का वर्णन भी ज्ञातव्य है। आमलकल्पा नगरी। विद्युत गृहपति। विद्युतश्री भार्या, विद्युत बालिका। शेष पूर्ववत्।

पंचमं अज्झयणं : अध्ययन ५

मेहा : मेघा

६२. एवं मेहा वि--आमलकप्पाए नयरीए मेहे गाहावई। मेहसिरी भारिया। मेहा दारिया। सेसं तहेव।।

६२. मेघा का वर्णन भी ज्ञातव्य है--आमलकल्पा नगरी। मेघ गृहपति। मेघश्री भार्या। मेघा बालिका। शेष पूर्ववत्।

६३. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं पढमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।।

६३. जम्बू! धर्म के आदिकर्ता यावत् सिद्धिगति संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने धर्मकथा के प्रथम वर्ग का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीओ वग्गो : द्वितीय वर्ग

पढमं अज्झयणं : अध्ययन १

सुंभा : 'शुम्भा'

१. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं धम्मकहाणं पढमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, दोच्चस्स णं भंते! वग्गस्स समणेणं भगवया महावीरेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

१. भन्ते! यदि श्रमण भगवान महावीर ने धर्मकथाओं के प्रथम वर्ग का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है तो भन्ते! द्वितीय वर्ग का श्रमण भगवान महावीर ने क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

२. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं दोच्चस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा--सुंभा, निसुंभा, रंभा, निरंभा, मदणा।।

२. जम्बू! श्रमण भगवान महावीर ने द्वितीय वर्ग के पांच अध्ययन प्रज्ञप्त किए हैं, जैसे--शुम्भा, निशुम्भा, रम्भा, निरम्भा, मदना।

३. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं धम्मकहाणं दोच्चस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पण्णत्ता, दोच्चस्स णं भंते! वग्गस्स पढमज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

३. भन्ते! यदि श्रमण भगवान महावीर ने धर्म कथाओं के द्वितीय वर्ग के पांच अध्ययन प्रज्ञप्त किए हैं तो भन्ते! द्वितीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का उन्होंने क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

४. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। सामी समोसढे। परिसा निग्गया जाव पज्जुवासइ।।

४. जम्बू! उस काल और उस समय राजगृह नगर था। गुणशिलक चैत्य। स्वामी समवसृत हुए। जनसमूह आया यातव् पर्युपासना की।

५. तेणं कालेणं तेणं समएणं सुंभा देवी बलिचंचाए रायहाणीए सुंभवडेंसए भवणे सुंभंसि सीहासणंसि विहरइ। काली गमएणं जाव नट्टविहिं उवदंसेत्ता पडिगया।।

५. उस काल और उस समय शुम्भा देवी बलिचञ्चा राजधानी के शुम्भावतंसक भवन में शुम्भ सिंहासन पर विहार कर रही थी। काली के वर्णन के समान ही नाट्य विधि प्रदर्शित कर वापस चली गई।

६. पुव्वभवपुच्छा।।

६. पूर्वभव पृच्छा।

७. सावत्थी नयरी। कोट्ठए चेइए। जियसत्तू राया। सुंभे गाहावई। सुंभसिरी भारिया। सुंभा दारिया। सेसं जहा कालीए नवरं अद्धुट्ठाइं पलिओवमाइं ठिई।।

७. श्रावस्ती नगरी। कोष्ठक चैत्य। जितशत्रु राजा। शुम्भ गृहपति। शुम्भश्री भार्या। शुम्भा बालिका। शेष काली के समान, विशेष--उसकी स्थिति साढ़े सात पल्योपम थी।

८. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं दोच्चस्स वग्गस्स पढमज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।।

८. जम्बू! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर ने द्वितीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

२-५ अज्झयणाणि

९. एवं--सेसा वि चत्तारि अज्झयणा। सावत्थीए। नवरं--माया पिया धूया-सरिनामया।।

१०. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं धम्मकहाणं बिइयस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।।

२ से ५ अध्ययन

१. इसी प्रकार-शेष चार अध्ययन ज्ञातव्य हैं। श्रावस्ती नगरी। विशेष--माता-पिता और पुत्री के नाम समान हैं।

२. जम्बू! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर ने धर्मकथाओं के द्वितीय वर्ग का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तइयो वग्गो : तृतीय वर्ग

पढमं अज्झयणं : अध्ययन १

अला : 'अला'

१. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं धम्मकहाणं बिइयस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, तइयस्स णं भंते! वग्गस्स समणेणं भगवया महावीरेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

१. भन्ते! यदि श्रमण भगवान महावीर ने धर्मकथाओं के द्वितीय वर्ग का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है तो भन्ते! तृतीय वर्ग का श्रमण भगवान महावीर ने क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

२. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं तइयस्स वग्गस्स चउपण्णं अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा--पढमे अज्झयणे जाव चउपण्णइमे अज्झयणे।।

२. जम्बू! श्रमण भगवान महावीर ने तृतीय वर्ग के चौवन अध्ययन प्रज्ञप्त किए हैं, जैसे--पहला अध्ययन यावत् चौवनवां अध्ययन।

३. जइ णं भंते। समणेणं भगवया महावीरेणं धम्मकहाणं तइयस्स वग्गस्स चउपण्णं अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते! अज्झयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

३. यदि श्रमण भगवान महावीर ने धर्मकथाओं के तृतीय वर्ग के चौवन अध्ययन प्रज्ञप्त किए हैं तो भन्ते! प्रथम अध्ययन का श्रमण भगवान महावीर ने क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

४. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं समएणं रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए। सामी समोसढे। परिसा निग्गया जाव पज्जुवासइ।।

४. जम्बू! उस काल और उस समय राजगृह नगर था। गुणशिलक चैत्य। स्वामी समवसृत हुए। जनसमूह आया यावत् पर्युपासना की।

५. तेणं कालेणं तेणं समएणं अला देवी धरणाए रायहाणीए अलावडेंसए भवणे अलंसि सीहासणंसि एवं कालीगमएण जाव नट्टविहिं उवदंसेत्ता पडिगया।।

५. उस काल और उस समय अला देवी धरणा राजधानी के अलावतंसक भवन में अलसिंहासन पर विहार कर रही थी यावत् वह काली के समान नाट्य विधि प्रदर्शित कर वापस चली गयी।

६. पुव्वभवपुच्छा।।

६. पूर्वभव पृच्छा।

७. वाणारसीए नयरीए काममहावणे चेइए। अले गाहावई। अलसिरी भारिया। अला दारिया। सेसं जहा कालीए, नवरं--धरणअग्गमहिसित्ताए उववाओ। साइरेगं अद्धपलिओवमं ठिई सेसं तहेव।।

७. वाराणसी नगरी में काममहावन चैत्य। अल गृहपति, अलश्री भार्या, अला बालिका। शेष काली के समान।

विशेष-धरण की अग्रमहिषी के रूप में उपपात। कुछ अधिक अर्द्धपल्योपम की स्थिति। शेष पूर्ववत्।

८. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं तइयस्स वग्गस्स पढमज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।।

८. जम्बू! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर ने तृतीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

२-६ अज्झयणाणि

९. एवं--कमा, सतेरा, सोयामणी, इंदा, घणविज्जुया वि सव्वाओ एयाओ धरणस्स अग्गमहिसीओ।।

२-६ अध्ययन

९. इसी प्रकार--क्रमा, सतेरा, सौदामिनी, इन्द्रा, घन, विद्युत--ये सब धरण की अग्रमहिषियां थी।

७-१२ अज्झयणाणि

१०. एए छ अज्झयणाणि वेणुदेवस्स वि अविसेसिया भाणियव्वा।।

७-१२ अध्ययन

१०. वेणुदेव के ये छह अध्ययन भी पूर्व के अध्ययनों के समान ज्ञातव्य हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३-५४ अज्झयणाणि

११. एवं--हरिस्स अग्गिसिहस्स पुण्णस्स जलकंतस्स अमियगतिस्स वेलंबस्स घोसस्स वि एए चेव छ-छ अज्झयणा। एवमेते दाहिणिल्लाणं चउपण्णं अज्झयणा भवंति। सव्वाओ वि वाणारसीए काममहावणे चेइए।।

१२. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं धम्मकहाणं तइयस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।।

१३-५४ अध्ययन

११. इसी प्रकार--हरी, अग्निशिख, पूर्ण, जलकान्त, अमितगति, वेलम्ब और घोष के भी ऐसे ही छह, छह अध्ययन हैं। इस प्रकार दक्षिण दिग्वर्ती भवनवासी देवों की देवियों के ये चौवन अध्ययन हैं। सभी में वाराणसी नगरी और काममहावन चैत्य हैं।

१२. जम्बू! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर ने धर्मकथाओं के तृतीय वर्ग का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउत्थो वग्गो : चतुर्थ वर्ग

पढमं अज्झयणं : अध्ययन १

रूया : 'रूपा'

१. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं धम्मकहाणं तइयस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, चउत्थस्स णं भंते! वग्गस्स समणेणं भगवया महावीरेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

१. भन्ते! यदि श्रमण भगवान महावीर ने धर्मकथाओं के तृतीय वर्ग का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है तो भन्ते! चतुर्थ वर्ग का श्रमण भगवान महावीर ने क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

२. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं धम्मकहाणं चउत्थस्स वग्गस्स चउप्पण्णं अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा--पढमे अज्झयणे जाव चउप्पण्णइमे अज्झयणे।।

२. जम्बू! श्रमण भगवान महावीर ने धर्मकथाओं के चतुर्थ वर्ग के चौवन अध्ययन प्रज्ञप्त किए हैं जैसे--पहला अध्ययन यावत् चौवनवां अध्ययन।

३. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं धम्मकहाणं चउत्थस्स वग्गस्स चउपण्णं अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते! अज्झयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

३. भन्ते! यदि श्रमण भगवान महावीर ने धर्मकथाओं के चतुर्थ वर्ग के चौवन अध्ययन प्रज्ञप्त किए हैं तो भन्ते! प्रथम अध्ययन का श्रमण भगवान महावीर ने क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

४. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ।।

४. उस काल और उस समय राजगृह में समवसरण जुड़ा यावत् जन-समूह ने पर्युपासना की।

५. तेणं कालेणं तेणं समएणं रूया देवी भूयाणंदा रायहाणी रूयगवडेंसए भवणे रूयगंसि सीहासणंसि जहा कालीए तहा, नवरं--पुव्वभवे चंपाए पुण्णभद्दे चेइए रुयगगाहावई रूयगसिरी भारिया रूया दारिया।।

सेसं तहेव, नवरं--भूयाणंद अग्गमहिसित्ताए उववाओ। देसूणं पलिओवमं ठिई।।

५. उस काल और उस समय रूपा देवी भूतानन्दा राजधानी के रूपकावतंसक भवन में रूपक सिंहासन पर विहार कर रही थी जैसे--काली। विशेष--पूर्वभव में चम्पा का पूर्णभद्र चैत्य। रूपक गृहपति। रूपकश्री भार्या। रूपा बालिका शेष पूर्ववत्।

विशेष--भूतानन्द की अग्रमहिषी के रूप में उपपात। कुछ कम पल्योपम स्थिति।

६. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं चउत्थस्स वग्गस्स पढमज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

--त्ति बेमि।।

६. जम्बू! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर ने चतुर्थ वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

-ऐसा मैं कहता हूं।

२-६ अज्झयणाणि

७. एवं--सुरूयावि, रूयंसावि, रूयगावईवि, रूयकंतावि, रूयप्पभावि।।

२-६ अध्ययन

७. इसी प्रकार-सुरूपा, रूपांशा, रूपकवती, रूपकान्ता और रूपप्रभा के अध्ययन भी ज्ञातव्य है।

७-५४ अज्झयणाणि

८. एयाओ चेव उत्तरिल्लाणं इंदाणं--वेणुदालिस्स हरिस्सहस्स अग्गिमाणवस्स विसिट्ठस्स जलप्पभस्स अमितवाहणस्स पभंजणस्स महाघोसस्स भाणियव्वाओ।।

७-५४ अध्ययन

८. इसी प्रकार--उत्तरदिग्वर्ती इन्द्रों--वेणदाली, हरिस्सह, अग्निमाणव, विशिष्ट, जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभंजन और महाघोष की भी देवियां अग्रमहिषियां थीं--ऐसा ज्ञातव्य है।

९. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं धम्मकहाणं चउत्थस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।।

९. जम्बू! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर ने धर्मकथाओं के चतुर्थ वर्ग का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचमो वग्गो : पंचम वर्ग

पढमं अज्झयणं : अध्ययन १

कमला : 'कमला'

१. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं धम्मकहाणं चउत्थस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, पंचमस्स णं भंते! वग्गस्स समणेणं भगवया महावीरेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

१. भन्ते! यदि श्रमण भगवान महावीर ने धर्मकथाओं के चतुर्थ वर्ग का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है तो भन्ते! पंचम वर्ग का श्रमण भगवान महावीर ने क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

२. एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं पंचमस्स वग्गस्स बत्तीसं अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा--

१. कमला २. कमलप्पभा चेव, ३. उप्पला य ४. सुदंसणा।
५. रूववई ६. बहुरूवा ७. सुरूवा ८. सुभगावि य ।।१।।
९. पुण्णा १०. बहुपुत्तिया चेव ११. उत्तमा १२. तारयावि य।
१३. पउमा १४. वसुमई चेव, १५. कणगा १६. कणगप्पभा ।।२।।
१७. वडेंसा १८. केउमई चेव, १९. वइरसेणा २०. रइप्पिया।
२१. रोहिणी २२. नवमिया चेव, २३. हिरी २४. पुप्फवईवि य।।३।।
२५. भुयगा २६. भुयगावई चेव, २७. महाकच्छा २८. फुडा इय।
२९. सुघोसा ३०. विमला चेव, ३१. सुस्सरा य ३२. सरस्सई।।४।।

२. जम्बू! श्रमण भगवान महावीर ने पंचम वर्ग के बत्तीस अध्ययन प्रज्ञप्त किए हैं जैसे--१. कमला २. कमलप्रभा ३. उत्पला ४. सुदर्शना ५. रूपवती ६. बहुरूपा ७. सुरूपा ८. सुभगा ९. पूर्णा १०. बहुपुत्रिका ११. उत्तमा १२. तारका १३. पद्मा १४. वसुमती १५. कनका १६. कनकप्रभा १७. (अ) वतंसा १८. केतुमती १९. वज्रसेना २०. रतिप्रिया २१. रोहिणी २२. नवमिका २३. ह्री २४. पुष्पवती २५. भुजगा २६. भुजगवती २७. महाकच्छा २८. स्फुटा २९. सुघोषा ३०. विमला ३१. सुस्वरा ३२. सरस्वती।

३. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं धम्मकहाणं पंचमस्स वग्गस्स बत्तीसं अज्झयणा पण्णत्ता, पंचमस्स णं भंते! वग्गस्स पढमज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

३. भन्ते! यदि श्रमण भगवान महावीर ने धर्मकथाओं के पंचम वर्ग के बत्तीस अध्ययन प्रज्ञप्त किए हैं तो भन्ते! उन्होंने पंचम वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

४. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ।।

४. जम्बू! उस काल और उस समय राजगृह में समवसरण जुड़ा यावत् जन-समूह ने पर्युपासना की।

५. तेणं कालेणं तेणं समएणं कमला देवी कमलाए रायहाणीए कमलवडेंसए भवणे कमलंसि सीहासणंसि सेसं जहा कालीए तहेव, नवरं--पुव्वभवे नागपुरे नयरे सहसंबवणे उज्जाणे कमलस्स गाहावइस्स कमलसिरीए भारियाए कमला दारिया पासस्स अंतिए निक्खंता। कालस्स पिसायकुमारिंदस्स अग्गमहिसी। अद्धपलिओवमं ठिई।।

५. उस काल और उस समय कमला देवी कमला राजधानी के कमला-वतंसक भवन में कमल सिंहासन पर विहार कर रही थी। शेष जैसे--काली। विशेष--पूर्वभव में नागपुर नगर, सहस्राम्रवन उद्यान, कमल गृहपति एवं कमलश्री भार्या की कमला बालिका। वह पार्श्व के पास प्रव्रजित हुई। वह 'काल' पिशाच कुमार इन्द्र की अग्रमहिषी बनी। स्थिति अर्द्धपल्योपम।

२-३२ अज्झयणाणि

६. एवं सेसा वि अज्झयण्णा दाहिणिल्लाणं इंदाणं भाणियव्वाओ। नागपुरे सहसंबवणे उज्जाणे। मायापियरो धूया--सरिनामया। ठिई अद्धपलिओवमं।।

२-३२ अध्ययन

६. इसी प्रकार शेष अध्ययन भी दक्षिणदिग्वर्ती इन्द्रों के ज्ञातव्य हैं। नागपुर, सहस्राम्रवन उद्यान। माता-पिता और पुत्रियों के नाम समान थे। स्थिति-अर्द्धपल्योपम।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छट्ठो वग्गो : षष्ठ वर्ग

१-३२ अज्झयणाणि : १-३२ अध्ययन

१. छट्ठो वि वग्गो पंचमवग्ग-सरिसो, नवरं--महाकालाईणं उत्तरिल्लाणं इंदाणं अग्गमहिसीओ। पुव्वभवे सागेए नगरे। उत्तरकुरु-उज्जाणे। मायापियरो धूया-सरिनामया। सेसं तं चेव।।

१. छट्ठा वर्ग भी पंचम वर्ग के समान है। विशेष--महाकाल आदि उत्तरदिग्वर्ती इन्द्रों की अग्रमहिषियां। पूर्वभव में साकेत नगर। उत्तरकुरु उद्यान। माता-पिता और पुत्रियों के नाम समान थे। शेष पूर्ववत्।

सत्तमो वग्गो : सप्तम वर्ग

पढमं अज्झयणं : अध्ययन-१

सूरप्पभा : 'सूरप्रभा'

१. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं धम्मकहाणं छट्ठस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, सत्तमस्स णं भंते! वग्गस्स समणेणं भगवया महावीरेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

१. भन्ते! यदि श्रमण भगवान महावीर ने धर्मकथाओं के छट्ठे वर्ग का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है तो भन्ते! सातवें वर्ग का श्रमण भगवान महावीर ने क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

२. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं सत्तमस्स वग्गस्स चत्तारि अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा--सूरप्पभा, आयवा, अच्चिमाली, पभंकरा।।

२. जम्बू! श्रमण भगवान महावीर ने सातवें वर्ग के चार अध्ययन प्रज्ञप्त किए हैं जैसे--सूरप्रभा, आतपा, अर्चिमाली, प्रभंकरा।

३. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं धम्मकहाणं सत्तमस्स वग्गस्स चत्तारि अज्झयणा पण्णत्ता, सत्तमस्स णं भंते! वग्गस्स पढमज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

३. भन्ते! यदि श्रमण भगवान महावीर ने धर्मकथाओं के सातवें वर्ग के चार अध्ययन प्रज्ञप्त किए हैं तो भन्ते! उन्होंने सातवें वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

४. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ।।

४. जम्बू! उस काल और उस समय राजगृह में समवसरण जुड़ा यावत् जन-समूह ने पर्युपासना की।

५. तेणं कालेणं तेणं समएणं सूरप्पभा देवी सूरंसि विमाणंसि सूरप्पभंसि सीहासणंसि। सेसं जहा कालीए तहा, नवरं--पुव्वभवो अरक्खुरीए नयरीए सूरप्पभस्स गाहावइस्स सूरसिरीए भारियाए सूरप्पभा दारिया। सूरस्स अग्गमहिसी। ठिई अद्धपलिओवमं पंचहिं वाससएहिं अब्भहियं। सेसं जहा कालीए।।

५. उस काल और उस समय सूरप्रभा देवी सूरविमान के सूरप्रभ सिंहासन पर विहार कर रही थी। शेष जैसे--काली। विशेष-पूर्वभव में अरक्षुरी नगरी में सूरप्रभ गृहपति, सूरश्री भार्या की सुरप्रभा बालिका। वह सूर्य की अग्रमहिषी थी। स्थिति अर्द्धपल्योपम से पांच सौ वर्ष अधिक। शेष जैसे--काली।

२-४ अज्झयणाणि

६. एवं आयवा, अच्चिमाली, पभंकरा। सव्वाओ अरक्खुरीए नयरीए।।

२-४ अध्ययन

६. इसी प्रकार आतपा, अर्चिमाली और प्रभंकरा का वर्णन ज्ञातव्य है। ये सभी अरक्षुरी नगरी की थीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठमो वग्गो : अष्टम वर्ग

पढमं अज्झयणं : अध्ययन १

चंदप्पभा : चन्द्रप्रभा

१. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं धम्मकहाणं सत्तमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, अट्ठमस्स णं भंते! वग्गस्स समणेणं भगवया महावीरेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

१. भन्ते! यदि श्रमण भगवान महावीर ने धर्मकथाओं के सातवें वर्ग का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है तो भन्ते! आठवें वर्ग का श्रमण भगवान महावीर ने क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

२. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स वग्गस्स चत्तारि अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा--चंदप्पभा, दोसिणाभा, अच्चिमाली, पभंकरा।।

२. जम्बू! श्रमण भगवान महावीर ने आठवें वर्ग के चार अध्ययन प्रज्ञप्त किए हैं, जैसे--चन्द्रप्रभा, दोसीणाभा, अर्चिमाली, प्रभंकरा।

३. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं धम्मकहाणं अट्ठमस्स वग्गस्स चत्तारि अज्झयणा पण्णत्ता, अट्ठमस्स णं भंते! वग्गस्स पढमज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

३. भन्ते! यदि श्रमण भगवान महावीर ने धर्मकथाओं के आठवें वर्ग के चार अध्ययन प्रज्ञप्त किए हैं तो भन्ते! उन्होंने आठवें वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

४. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ।।

४. जम्बू! उस काल और उस समय राजगृह में समवसरण जुड़ा यावत् जन-समूह ने पर्युपासना की।

५. तेणं कालेणं तेणं समएणं चंदप्पभा देवी चंदप्पभंसि विमाणंसि चंदप्पभंसि सीहासणंसि। सेसं जहा कालीए, नवरं--पुव्वभवो महुराए नयरीए भंडिवडेंसए उज्जाणे। चंदप्पभे गाहावई। चंदसिरी भारिया। चंदप्पभा दारिया। चंदस्स अग्गमहिसी। ठिई अद्धपलिओवमं पण्णासवाससहस्सेहिं अब्भहियं।।

५. उस काल और उस समय चन्द्रप्रभा देवी, चन्द्रप्रभ विमान में, चन्द्रप्रभ सिंहासन पर विहार कर रही थी। शेष जैसे-काली। विशेष--पूर्वभव में मथुरा नगरी का भण्डीवतंस उद्यान। चन्द्रप्रभ गृहपति। चन्द्रश्री भार्या। चन्द्रप्रभा बालिका। वह चन्द्र की अग्रमहिषी थी। स्थिति अर्द्धपल्योपम से पचास हजार वर्ष अधिक।

२-४ अज्झयणाणि

६. एवं--दोसिणाभा, अच्चिमाली, पभंकरा, महुराए नयरीए। मायापियरो धूया-सरिसनामा।।

अध्ययन २-४

६. इसी प्रकार दोसीणाभा, अर्चिमाली और प्रभंकरा के अध्ययन ज्ञातव्य हैं। मथुरा नगरी। माता-पिता और पुत्रियों के नाम समान थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवमो वग्गो : नवम वर्ग

१-८ अज्झयणाणि : १-८ अध्ययन

१. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं धम्मकहाणं अट्ठमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, नवमस्स णं भंते! वग्गस्स समणेणं भगवया महावीरेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

१. भन्ते! यदि श्रमण भगवान महावीर ने धर्मकथाओं के आठवें वर्ग का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है तो भन्ते! नौवें वर्ग का श्रमण भगवान महावीर ने क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

२. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं नवमस्स वग्गस्स अट्ठ अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा--

गाहा--

१. पउमा २. सिवा ३. सई ४. अंजू,
५. रोहिणी ६. नवमिया इ य ।
७. अयला ८. अच्छरा ।

२. जम्बू! श्रमण भगवान महावीर ने नौवे वर्ग के आठ अध्ययन प्रज्ञप्त किए हैं जैसे--

गाथा--

पद्मा, शिवा, शची, अंजू, रोहिणी, नवमिका, अचला अप्सरा।

३. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं धम्मकहाणं नवमस्स वग्गस्स अट्ठ अज्झयणा पण्णत्ता, नवमस्स णं भंते! वग्गस्स पढमज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

३. भन्ते! यदि श्रमण भगवान महावीर ने धर्मकथाओं के नौवे वर्ग के आठ अध्ययन प्रज्ञप्त किए हैं तो भन्ते! उन्होंने नौवें वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

४. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ ।।

४. जम्बू! उस काल और उस समय राजगृह में समवसरण जुड़ा यावत् जन-समूह ने पर्युपासना की।

५. तेणं कालेणं तेणं समएणं पउमावई देवी सोहम्मे कप्पे पउमवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए पउमंसि सीहासणंसि जहा कालीए ।।

५. उस काल और उस समय पद्मावती देवी, सौधर्मकल्प पद्मावतंसक विमान और सुधर्मा सभा में पद्म सिंहासन पर विहार कर रही थी। शेष, जैसे--काली।

६. एवं अट्ठ वि अज्झयणा काली-गमएणं नायव्वा, नवरं--सावत्थीए दोजणीओ। हत्थिणाउरे दोजणीओ। कंपिल्लपुरे दोजणीओ। साएए दोजणीओ। पउमे पियरो विजया मायराओ। सव्वाओ वि पासस्स अंतियं पव्वइयाओ। सक्कस्स अग्गमहिसीओ। ठिई सत्त पलिओवमाइं। महाविदेहे वासे अंतं काहिंति ।।

६. इस प्रकार आठों ही अध्ययन काली के वर्णन के समान ज्ञातव्य हैं। विशेष--उनमें दो श्रावस्ती की, दो हस्तिनापुर की, दो काम्पिल्यपुर की और दो साकेत की थीं। पिता-पद्म, माताएं-विजया। सभी पार्श्व के पास प्रव्रजित हुई। शक्र की अग्रमहिषियां बनी। स्थिति सात पल्योपम। महाविदेह वर्ष में सब दु:खों का अन्त करेंगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दसमो वग्गो : दशम वर्ग

१-८ अज्झयणाणि : १-८ अध्ययन

१. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं धम्मकहाणं नवमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, दसमस्स णं भंते! वग्गस्स समणेणं भगवया महावीरेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

१. भन्ते! यदि श्रमण भगवान महावीर ने धर्मकथाओं के नौवें वर्ग का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है तो भन्ते! दसवें वर्ग का श्रमण भगवान महावीर ने क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

२. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं दसमस्स वग्गस्स अट्ठ अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा--

२. जम्बू! श्रमण भगवान महावीर ने दसवें वर्ग के आठ अध्ययन प्रज्ञप्त किए हैं। जैसे--

संगहणी-गाहा

१. कण्हा य २. कण्हराई, ३. रामा तह ४. रामरक्खिया।
५. वसू या ६. वसुगुत्ता ७. वसुमित्ता ८.वसुंधरा चेव ईसाणे।।१।।

संगहणी गाथा--

कृष्णा, कृष्णराजि, रामा, रामरक्षिका, वसु, वसुगुप्ता, वसुमित्रा, वसुन्धरा--ये सब ईशान कल्प में हैं।

३. जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं धम्मकहाणं दसमस्स वग्गस्स अट्ठ अज्झयणा पण्णत्ता, दसमस्स णं भंते! वग्गस्स पढमज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते।।

३. भन्ते! यदि श्रमण भगवान महावीर ने धर्मकथाओं के दसवें वर्ग के आठ अध्ययन प्रज्ञप्त किए हैं तो भन्ते! उन्होंने दसवें वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है?

४. एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ।।

४. जम्बू! उस काल और उस समय राजगृह में समवसरण जुड़ा यावत् जन-समूह ने पर्युपासना की।

५. तेणं कालेणं तेणं समएणं कण्हा देवी ईसाणे कप्पे कण्हवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए कण्हंसि सीहासणंसि, सेसं जहा कालीए।।

५. उस काल और उस समय कृष्णा देवी ईशान कल्प कृष्णावतंसक विमान और सुधर्मा सभा में कृष्ण सिंहासन पर विहार कर रही थी। शेष, जैसे-काली।

६. एवं अट्ठ वि अज्झयणा काली-गमएणं नायव्वा, नवरं--पुव्वभवो वाणारसीए नयरीए दोजणीओ। रायगिहे नयरे दोजणीओ। सावत्थीए नयरीए दोजणीओ। कोसंबीए नयरीए दोजणीओ। रामे पिया धम्मा माया। सव्वाओ वि पासस्स अरहओ अंतिए पव्वइयाओ। पुप्फचूलाए अज्जाए सिस्सिणियत्ताए। ईसाणस्स अग्गमहिसीओ। ठिई नवपलिओवमाइं। महाविदेहे वासे सिज्झिहिंति बुज्झिहिंति मुच्चिहिंति सव्वदुक्खाणं अंतं काहिंति।।

६. इसी प्रकार आठों ही अध्ययन काली के वर्णन के समान ज्ञातव्य हैं। विशेष--पूर्वभव में दो वाराणसी की, दो राजगृह की, दो श्रावस्ती की और दो कौशाम्बी नगरी की। राम-पिता, धर्मा-माता। सभी अर्हत पार्श्व के पास प्रव्रजित हुई। आर्या पुष्पचूला को शिष्याओं के रूप में प्रदान किया। ईशान की अग्रमहिषियां बनीं। स्थिति नौ पल्योपम। महाविदेह वर्ष में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और सब दुःखों का अन्त करेगी।

७. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं धम्मकहाणं दसमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।।

७. जम्बू! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर ने धर्मकथाओं के दसवें वर्ग का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

८. एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थगरेणं सयंसंबुद्धेणं पुरिसोत्तमेणं पुरिससीहेणं जाव सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपत्तेणं धम्मकहाणं अयमट्ठे पण्णत्ते।

८. जम्बू! इस प्रकार धर्म के आदिकर्त्ता, तीर्थंकर, स्वयंबुद्ध, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह यावत् सिद्धिगति नामक स्थान को संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने धर्मकथाओं का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है।

परिसेसो

धम्मकहा-सुयक्खंधो सम्मत्तो।
दसहिं वग्गेहिं नायाधम्मकहाओ समत्ताओ।।

परिशेष--

धर्मकथा श्रुतस्कन्ध समाप्त।
दस वर्गों के साथ ज्ञातधर्मकथाएं समाप्त।

ग्रन्थ परिमाण

कुल अक्षर २२६९४३

अनुष्टुप् श्लोक ७०९१ अक्षर ३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-१

संक्षिप्त-पाठ पूर्त-स्थल पूर्ति आधार-स्थल

संक्षिप्त-पाठ	पूर्त-स्थल	पूर्ति आधार-स्थल
अंतिए जाव पव्वयामि	२/१/२४	१/१/१०१
अंतेउरे य जाव अज्झोववण्णे	१/१६/४१	१/१६/२८
अगडे वा जाव सागरे	१/८/१५४	१/८/१५४
अग्गिसामण्णे जाव मच्चुसामण्णे	१/१/१११	१/१/१११
अग्घेणं जाव आसणेणं	१/१६/१६७	१/१६/१८६
अच्चणिज्जे जाव पज्जुवासणिज्जे	१/२/७६	ओ. सू. २
अज्जग जाव परिभाएत्तए	१/६/५	१/१/११०
अज्जाओ तहेव भणंति तहेव साविया जाया तहेव चिंता तहेव सागरदत्तं		
आपुच्छति	१/१६/६८-१०४	१/१४/४४-५०
अज्झत्थिए०	१/८/७६	१/१/४८
अज्झत्थिए किमण्णे जाव वियंभइ	१/१६/२७२	१/१६/२७२
अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था	१/१/५३, ५६, १५४, १५५, १६६, २०४, २०५; १/२/१२, ७१; १/५/११८, १२४; १/७/२५; १/१६/११८, २८५; २/१/३८	१/१/४८
अज्झत्थिय जाव जाणित्ता	१/१६/२८६	१/१/४८
अट्टदुहट्टवसट्टमाणसगए जाव रयणिं	१/१/१५५	१/१/१५४
अट्ठमस्स उक्खेवओ एवं खलु जंबू जाव चत्तारि	२/८/१, २	२/२/१, २
अट्ठाइं जाव नो वागरेइ	१/५/६६	१/५/६६
अट्ठाइं जाव वागरेइ	१/५/६६	१/५/६६
अट्ठाहियं महानंदीसरं जामेव दिसं पाउ जाव पडिगए	१/८/२२६	१/८/२२४
अड्ढा जाव अपरिभूया	१/५/७	ओ. सू. १४१
अड्ढा जाव भत्तपाणा	१/३/८	ओ. सू. १४१
अणंते जाव समुप्पण्णे	१/८/२२५	वृत्ति
अणंते णाणे समुप्पण्णे जाव सिद्धा	१/१६/३२४	१/५/८४
अणगारवण्णओ भाणियव्वो	१/१/१६४	ओ. सू. १६४
अणगारे जाव इहमागए	१/५/६८	ओ. सू. ५२
अणगारे जाव पज्जुवासमाणे	२/१/४	१/१/७
अणिट्ठतराए चेव जाव गंधेणं	१/१२/३	१/८/४२
अणिट्ठा जाव अमणामा	१/१६/६७	१/१/४६
अणिट्ठा जाव दंसणं	१/१४/४३	१/१४/३६
अणिट्ठा जाव परिभोगं	१/१४/५०	१/१४/३६
अणुत्तरे पुणरवि तं चेव जाव तओ पच्छा भुत्तभोगी समणस्स भगवओ जाव पव्वइस्ससि	१/१/११३	१/१/११२
अण्णं च तं विउलं	१/८/२०७	१/८/२०५
अण्णमण्णं जाव समणे	१/१३/३८	१/५/५३
अत्थत्थिया जाव ताहिं इट्ठाहिं जाव अणवरयं	१/१/१४३	ओ. सू. ६८
अत्थामा जाव अधारणिज्ज०	१/१६/२५३	१/१६/२१
अपत्थिय जाव परिवज्जिए	१/८/१२८	१/५/१२२
अपत्थियपत्थए जाव वज्जिए	१/५/१२२	उवा.२/२२
अपत्थियपत्थया जाव परिवज्जिया	१/८/७४	१/५/१२२
अपुण्णाए जाव निंबोलियाए	१/१६/२५	१/१६/८
अब्भणुण्णाए जाव पव्वइत्तए	१/१२/३६	१/१/१०४
अब्भुज्जएणं जाव विहरित्तए	१/५/११८; १/१६/२८	१/५/१२४
अब्भुट्ठेसि जाव वंदसि	१/५/६७	१/५/६६
अभिसिंचइ जाव पडिगए	१/१६/२८०	१/१/१६१
अभिसिंचइ जाव राया जाए विहरइ	१/५/६३-६५	१/१/११७-११६
अमच्चे जाव तुसिणीए	१/१२/१५	१/१२/७
अम्मयाओ जाव पव्वइत्तए	१/१/१०६	१/१/१०७
अम्मयाओ जाव सुलद्धे	१/१/१२	१/१/३३
अयमेयारूवे जाव समुप्पज्जित्था	१/५/६५	१/१/४८
अरहण्णग जाव वाणियगाणं	१/८/६७	१/८/६४
अरहण्णग संज्जत्तगा	१/८/८४	१/८/६६
अरिट्ठनेमिं जाव गमित्तए	१/१६/३२०	१/१६/३३४
अरिट्ठनेमिस्स जाव पव्वइत्तए	१/५/२०	१/१/१०६
अवंगुणेइ जाव पडिगए	१/१६/६५	१/१६/६१
अवरकंका जाव सण्णिवाडिया	१/१६/२७६	१/१६/२६२
अवसेसं तहेव जाव सामाइयमाइयाइं	१/५/६६-१०१	१/५/३४-३८
अवहरइ जाव तालेइ	१/१८/१२	१/१८/८
अवहिया जाव अवक्खित्ता	१/१६/२२०	१/१६/२१६
अवीरिए जाव अधारणिज्ज०	१/८/१६६	१/१६/२१
असक्कारिय जाव निच्छूढे	१/१६/२४६	१/१६/२४५
असक्कारिया जाव निच्छूढा	१/८/१७२	१/८/१५६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असणं जाव अणुवड्ढेमि	१/२/१२	१/२/१२
असणं जाव दवावेमाणी	१/१४/३६	१/१४/३८
असणं जाव परिभुंजेमाणी	१/२/२०	१/२/१४
असणं जाव परिवेसेइ	१/२/५२, ५३	१/२/३७, ३८
असणं जाव विहरइ	१/१२/४	१/२/१४
असणं मित्तनाइ चउण्ह य सुण्हाणं		
कुलघर जाव सम्माणित्ता	१/७/२२	१/७/६
असण जाव पसन्नं	१/१६/१५२	१/१६/१५१
असिपत्ते इ वा जाव मुम्मुरे इ वा		
एत्तो अणिट्ठतराए चेव	१/१६/५२	वृत्ति
असोगवणिया जाव कंडरीयं	१/१६/३४	१/१६/३३
अहं जाव अणेगभूयभावभविए	१/५/७६	१/५/७६
अहं जाव सूया	१/५/७६	१/५/७६
अहं रज्जं च जाव ओसन्न जाव		
उउबद्ध पीढ० विहरामि	१/५/१२४	१/५/११७, ११८
अहम्मिए जाव अहम्मकेऊ	१/१८/१६	वृत्ति
अहम्मिए जाव विहरइ	१/१८/१६	१/१८/१६
अहाकप्पं जाव किट्टेत्ता	१/१/२०१	१/१/१६८
अहापडिरूवं जाव विहरइ (ति)	१/१/६७; १/१६/११	१/१/४
अहापवत्तेहिं जाव मज्जपाणएण	१/५/११६	१/५/११५
अहासुत्तं जाव सम्मं	१/१/२०१	१/१/१६८
अहिमडे इ वा जाव अणिट्ठतराए		
अमणामतराए	१/८/४२	वृत्ति
अहीण जाव सुरूवे	१/१/१६	ओ. सू. १५
अहो णं तं चेव	१/१२/१६	१/१२/१३
आइगरे जाव विहरइ	२/१/२०	१/१/६५
आइण्ण वेढो	१/१७/१४	वृत्ति
आएहि य जाव परिणामेमाणा	१/८/१०४	१/८/१६८
आउक्खएणं जाव चइत्ता	१/१६/१२३	१/१/२१२
आढंति जाव पज्जुवासंति	१/१६/१८८	१/१६/१८६
आढाइ जाव तुसिणीए	१/१२/७; १/१६/१५	१/८/१७०
आढाइ जाव तुसिणीया	२/१/३६	१/८/१७०
आढाइ जाव नो पज्जुवासइ	१/१६/१६०	१/१६/१८६
आढाइ जाव भोगं	१/१४/६१	१/१४/६०
आढाइ जाव संचिट्ठइ	१/१६/३०	१/८/१७०
आढायंति०	१/१/१५५	१/१/१५४
आढायंति जाव संलवेंति	१/१/१५४	१/१/१५४
आपुच्छइ जाव पडिगए	१/१६/२००	१/१/१६१
आपुच्छणिज्जं जाव वड्ढावियं	१/७/४२	१/७/६
आपुच्छामि जाव पव्वयामि	१/१२/३८	१/१/१०१
आपुच्छामि तएणं जाव पव्वयामि	१/१६/१२	१/१/१०१
आरोग्गतुट्ठी जाव दिट्ठे	१/१/२६	१/१/२०
आलंबे वा जाव भविस्सइ	१/१६/३१२	१/८/१८६
आलिघरएसु य जाव कुसुमघरएसु	१/३/१६	वृत्ति
आलोएहि जाव पडिवज्जाहि	१/१६/११५	वृत्ति

आसयंति वा जाव तुयट्टंति	१/१७/२२	१/१७/२२
आसाएइ जाव अणुपरियट्टिस्सइ	१/१६/४२	१/६/४४
आसाएमाणीओ जाव परिभुंजेमाणीओ	१/२/१७	१/१/८१
आसाएमाणी जाव विहरइ	१/२/१४	१/१/८१
आसाएमाणे जाव विहरइ	१/१२/१२	१/१/८१
आसायणिज्जं जाव सव्विंदिय०	१/१२/२०	१/१२/४
आसायणिज्जे जाव सव्विंदिय०	१/१२/१६	१/१२/४
आसिय जाव गंधवट्टिभूयं	१/५/६७	१/१/३३
आसिय जाव परिगीयं	१/१/७६	वृत्ति
आसुरुत्ता जाव मिसिमिसेमाणा	१/१६/२८	१/१/१६१
आसुरुत्ते जाव तिवलियं	५/८/१५६	१/८/१०६
आसुरुत्ते जाव तिवलियं एवं	१/१६/२८६	१/८/१०६
आसुरुत्ते जाव पउमनाभं	१/१६/२८०	१/८/१०६
आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे	१/५/१२२	१/१/१६१
आहारे वा जाव पव्वयामो	१/८/१३	१/५/६०
आहेवच्चं जाव अभिरमेत्था	१/१/१६७	१/१/१५७
आहेवच्चं जाव पालेमाणे	१/५/६	१/१/११८
आहेवच्चं जाव विहरइ	१/३/८	१/१/११८
आहेवच्चं जाव विहरइ	१/१८/२०	१/५/६
आहेवच्चं जाव विहरसि	१/१/१५७	१/५/६
इट्ठा जाव मणामा	१/१६/७०	१/१/४६
इट्ठा तं चेव	१/१६/४८	१/१६/४७
इट्ठाहिं जाव आसासेइ	१/१६/१३१	१/१/४६
इट्ठाहिं जाव एवं	१/८/२०३	१/१/४६
इट्ठाहिं जाव वग्गूहिं	१/८/६७	१/१/४८
इट्ठाहिं जाव समासासेइ	१/१/५०	१/१/४६
इट्ठे जाव से णं	१/५/२०	१/१/१४५
इड्ढी जाव परक्कमे	१/८/७६; १/१६/२६५ उवा. २/४०	
इमेयारूवे जाव समुप्पज्जित्था	१/७/६; २/१/१२	१/१/४८
इरियासमियाओ जाव गुत्तबंभचारिणीओ	१/१४/४०	१/१/१६४
इहमागए जाव विहरइ	१/५/५३	१/१/६७; १/५/५२
ईसर जाव नीहरणं	१/१४/५६	१/५/६; १/२/३४
ईसर जाव पभितीणं	१/७/६	१/५/६
ईहामिय जाव भत्तिचित्तं	१/१/८६; १/८/४६	१/१/२५
उक्किट्ठ जाव समुद्दरवभूयं	१/१८/४०	१/८/६७
उक्किट्ठाए जाव देवगईए	१/१६/२०४, २०६	राय. सू. १०
उक्किट्ठाए जाए विज्जाहरगईए	१/१६/१६०	१/४/२१
उक्किट्ठाए ष्फ कुम्मगईए	१/४/२१	वृत्ति
उक्खेवओ तइयवग्गस्स	२/३/१	२/२/१
उक्खेवओ पढमज्झयणस्स	२/५/३	२/२/३
उज्जलं जाव दुरहियासं	१/१/१६३	१/१/१६२
उज्जला जाव दाहवक्कंतीए	१/१/१८७	१/१/१६२
उज्जला जाव दुरहियासा	१/५/१०६; १/१६/२०; १/१/१६२	
	१/१६/४५	
उज्जाणे जाव विहरइ	१/१६/३२१	१/१६/३१६

उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए तिदंडयं जाव धाउरत्ताओ	१/५/८०	भ. २/५२; १/५/५२
उत्तरिज्जेहिं जाव चिट्ठामो	१/८/१७९	१/८/१७७
उत्तरिज्जेहिं जाव परम्मुहा	१/८/१७८	१/८/१७७
उदगपरिफोसिया जाव भिसियाए	१/८/१५१	१/८/१४१
उप्पलाइं जाव सहस्सपत्ताइं	१/२/१४	राय. सू. ९७
उम्मुक्कबालभावा जाव उक्किट्ठसरीरा	१/१६/१२८	१/१६/३७
उम्मुक्कबालभावा जाव रूवेण	१/८/३८; १/१६/३७	वि. १/४/३६
उम्मुक्कबालभावे जाव जोव्वणग०	१/१४/२२	१/१/२०
उरालस्स क सि ध मं जाव सुमिणस्स	१/१/१९	१/१/१९
उरालाइं जाव भुंजमाणा	१/१२/४०	१/१६/११३
उरालाइं जाव विहरइ	१/१४/२०	१/१२/४०
उरालाइं जाव विहरिज्जामि	१/१६/११३	१/१६/११३
उरालाइं जाव विहरिस्सइ	१/१६/२०४	१/१६/११३
उराले जाव तेयलेस्से	१/१६/१२	१/१/६
उरालेणं तहेव जाव भासं	१/१/२०४	१/१/२०२
उव्वेए जाव फासेणं	१/१२/४	१/१२/३
उव्वत्तिज्जमाणे जाव टिट्टियावेज्जमाणे	१/३/२२	१/३/२१
उव्वत्तेइ जाव टिट्टियावेइ	१/३/२६	१/३/२१
उव्वेत्तेंति जाव दंतेहिं निक्खुडेंति जाव करेत्तए	१/४/१९	१/४/११
उव्वत्तेंति जाव नो चेव णं संचाएंति करेत्तए	१/४/१२	१/४/११
एगदिसिं जाव वाणियगा	१/८/६७	१/८/६२
एगयओ जहा अरहन्नए जाव लवणसमुद्दं	१/१७/५	१/८/६६
एज्जमाणिं जाव निवेसेह	१/८/१७१	१/१/४८; १/१६/१३१
एवं अत्थेणं दारेणं दासेहिं पेसेहिं परियणेणं	१/१४/७७	१/१४/७७
एवं कुलत्था वि भाणियव्वा। नवरं इमं नाणत्तं—इत्थिकुलत्था य धन्नकुलत्था य। इत्थिकुलत्था तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—कुलबहुयाइ य कुलमाउयाइ य कुलधूयाइ य। धन्नकुलत्था तहेव	१/५/७४	१/५/७३
एवं जहा मल्लिणाए	१/१६/२००	१/८/१५४
एवं जहा विजओ तहेव सव्वं जाव रायगिहस्स	१/१८/१२, ३२	१/१८/२०, २२
एवं जहा सूरियाभस्स जाव एवं	२/१/१५	राय. सू. ६६८
एवं जहेव तेयलिणाए सुव्वयाओ तहेव समोसढाओ तहेव संघाडओ जाव अणुपविट्ठे तहेव जाव सूमालिया	१/१६/९४-९७	१/१४/४०-४३
एवं जहेव राई तहेव रयणी वि	२/१/५७-६०	२/१/४७-५०
एवं जाव घोसस्स	२/३/११	ठाणं २/३५६-३६२
एवं जाव सागरदत्तस्स	१/१६/८८-९१	१/१६/६३-६६
एवं पत्तियामि णं रोएमि णं	१/१/१०१	१/१/१०१
एवं पाएहिं सीसे पोट्टे कायंसि	१/१/१५३	१/१/१५३
एवं पायंगुलियाओ पायंगुट्ठए वि कण्णसक्कुलीओ वि नासापुडाइं	१/१४/२१	१/१४/२१
एवं पासत्थे कुसीले पमत्ते	१/५/११७	१/५/११७
एवं मासा वि। नवरं इमं नाणत्तं—मासा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—कालमासा य अत्थमासा य धन्नमासा य। तत्थ णं जे ते कालमासा ते णं दुवालस तं जहा—सावणे जाव आसाढे। तेणं अभक्खेया। अत्थमासा दुविहा हिरण्णमासा य सुवण्णमासा य ते णं अभक्खेया। धन्नमासा तहेव	१/५/७५	१/५/७३; भ. १८/२१५-२१६
एवं वट्टए आडोलियाओ तिंदूसए पोचुल्लए साडोल्लए	१/१८/८	१/१८/८
एवं सेसाओ वि	२/७/६	२/७/२
एवं सेसाओ वि	२/८/६	२/८/२
ओरोह जाव विहरइ	१/१६/२२५	१/१६/१९५
ओसन्ने जाव संथारए	१/५/१२५	१/५/११७
ओहय जाव झियायह	१/८/१७१	१/१/३४
ओहयमण जाव झियायइ	१/३/२३	१/१/३४
ओहयमणसंकप्पं जाव झियायमाणिं	१/१४/३८; १/१६/२०८	१/१/३४
ओहयमणसंकप्पा०	१/१४/३८	१/१/३४
ओहयमणसंकप्पा जाव झियाइ	१/१/३४	वृत्ति
ओहयमणसंकप्पा जाव झियायइ	१/१४/३७; १/१६/६२, ८७, २०७	१/१/३४
ओहयमणसंकप्पा जाव झियायंति	१/९/१५	१/१/३४
ओहयमणसंकप्पा जाव झियायह	१/८/१७३	१/१/३४
ओहयमणसंकप्पा जाव झियायामि	१/१६/६५	१/१/३४
ओहयमणसंकप्पा जाव झियाहि	१/१६/६४, ९२, २०८	१/१/३४
ओहयमणसंकप्पे जाव झियामि	१/१७/१०	१/१/३४
ओहयमणसंकप्पे जाव झियायइ	१/८/१६८; १/१४/७७; १/१७/८	१/१/३४
ओहयमणसंकप्पे जाव झियायमाणे	१/१९/३२	१/१/३४
ओहयमणसंकप्पे जाव झियायति	१/१७/९	१/१/३४
कंडरीए उट्ठाए उट्ठेइ उठेत्ता जाव से जहेयं	१/१९/१२	१/१/१०१
कंता जाव भवेज्जामि	१/१६/९७	१/१४/४३
कंते जाव जीवियऊसासए	१/१/१४५	१/१/१०६
कक्खडा जाव दुरहियासा	१/१/१६२	वृत्ति
कज्जेसु य जाव रहस्सेसु	१/७/४२	१/५/९०
कट्टु जाव पडिसहेइ	१/१६/२५५	१/१६/२५१, २५२
कट्ठस्स य जाव भरेंति	१/१७/२८	१/१७/२२
कणग जाव दलयइ	१/१६/१६८	१/१/९१
कणग जाव पडिमाए	१/८/१८०	१/८/४१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कणग जाव सावएज्जं	१/१८/३८	१/१/६१
कणग जाव सिलप्पवाले	१/१८/३३	१/१/६१
कयकोउय जाव सव्वालंकारविभूसिया	१/१/८१	१/२/२६
कयत्थे जाव जम्म०	१/१३/२५	१/१३/२५
कयबलिकम्मं जाव सव्वालंकारविभूसियं	१/१६/७३	१/१/८१
कयबलिकम्मा जाव पायच्छित्ता	१/१/२७	१/१/३३
कयबलिकम्मा जाव विपुलाइं		
जाव विहरइ	१/१/३२	१/२/६६
कयबलिकम्मे जाव रायगिहं	१/२/५८	१/१/८१
कयबलिकम्मे जाव सरीरे	१/१/६६	१/१/२७
कयबलिकम्मे जाव सव्वालंकार.	१/१/४७	१/१/८१
करयल०	१/५/६८, १२३; १/८/७३, ८१, ८८ १५८, १६०; १/६/३१; १/१४/३१, ५०	१/१/१६
करयल०	१/८/२०३, २०४; १/१६/१३७, १६१, २१६, २६४; १/१७/११	१/१/२६
करयल०	१/१६/२४६	१/१/३६
करयल अंजलिं	१/१/५८, ६०	१/१/१६
करयल जाव एवं	१/१/३०; १/१६/१७०, २६२; १/१६/१३, ४६; २/१/२०	१/१/२६
करयल जाव एवं	१/६/१७;१/१४/२७, २८;१/१६/४३	१/१/२१
करयल जाव कट्टु	१/१/११८; १/१६/१३३; २/१/११	१/१/२६
करयल जाव कट्टु तहेव		
जाव समोसरह	१/१६/१४२	१/१६/१३२
करयल जाव कण्हं	१/१६/१३८	१/१६/१३७
करयल जाव पच्चप्पिणंति	१/८/१६६	१/८/१६५
करयल जाव पडिसुणेइ	१/८/१६५	१/१/२६
करयल जाव वद्धावेइ	१/१५/१८	१/१/४८
करयल जाव वद्धावेंति	१/१६/२३६	१/१/४८
करयल जाव वद्धावेंति	१/१७/२६	१/१/३६
करयल जाव वद्धावेत्ता	१/८/१३२; १/१६/२४४	१/१/४८
करयल जाव वद्धावेहि	१/८/१०७	१/१/४८
करयल तं चेव जाव समोसरह	१/१६/१३४	१/१६/१३२
करयल तहत्ति जेणेव	१/१४/१३	१/५/१३
करयलपरिग्गहियं जाव अंजलिं	१/१/२१	१/१/१६
करयलपरिग्गहियं जाव कट्टु	१/१/३६	१/१/२६
करयलपरिग्गहियं जाव वद्धावेत्ता	१/८/१२६	१/१/४८
करयल वद्धावेइ	१/५/२०	१/१/४८
करयल वद्धावेत्ता	१/८/१०५	१/१/४८
करयल वद्धावेत्ता	१/१६/१५७	१/१/३६

करेइ जाव अडमाणीओ	१/१४/४१, ४२	वृत्ति
करेंति जाव पच्चुत्तरंति	१/६/१५	१/२/१४
करेत्ता जाव विगयसोया	१/१८/२७	१/६/४८
करेमो तं चेव जाव णूमेमो	१/१६/२८८	१/१६/२८२
करेह करेत्ता जाव पच्चप्पिणह	२/१/१२	राय. सू. ६
करेह जाव पच्चप्पिणंति	१/८/४०	१/८/५१
कल्लं	१/८/५१	१/१/२४
कल्लं जाव विहरइ	१/५/१२४	१/५/१२४
कसप्पहारे य जाव निवाएमाणा	१/२/३३	१/२/३३
कसप्पहारेहि य जाव तण्हाए	१/२/६७	१/२/३३
कसप्पहारेहि य जाव लयाप्पहारेहि	१/२/४५	१/२/३३
कारणेसु य जाव तहा	१/५/६०	१/१/१६
कालगए जाव प्पहीणे	१/१६/३२२	१/५/८४
कालोभासे जाव वेयणं	१/२/६७	वृत्ति
कासे जोणिसूले जाव कोढे	१/१६/३०	१/१३/२८
किण्हाण य जाव सुक्किलाण	१/१७/२२	१/१७/२३
किण्हाणि य जाव सुक्किलाणि	१/१३/२०	१/१७/२३
किण्होभासा जाव निउरंबभूया	१/७/१३	ओ. सू. ४
कुंभए एवं तं चेव जाव पवेसेइ		
रोहासज्जे	१/८/१७४	१/८/१७३
कुडवा जाव एगदेसंसि	१/७/१७, १८	१/७/१५, १६
के जाव गमणाए	१/१/१११	१/१/१०७
कोट्ठपुडाण य जाव अण्णेसिं	१/१७/२२	वृत्ति
कोट्ठागारंसि सकम्म सं	१/७/२५	१/७/७
कोडुंबिय जाव खिप्पामेव लहुकरणजुत्तं		
जाव जुत्तामेव उवट्ठवेंति	१/८/५२	उवा. १/४७; १/८/५१
कोडुंबियपुरिसा जाव एवं	१/१५/७	१/१५/६
कोडुंबियपुरिसा जाव ते वि तहेव	१/१/११७	१/१/११६
कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति	१/१/६२	१/१/२३
खंड जाव एडेह	१/१६/७८	१/१६/७४
खंतीए जाव बंभचेरवासेणं	१/१०/५	१/१०/३
खिज्जणाहि या जाव एयमट्ठं	१/१८/१४	१/१८/१०
खीरधाईए जाव गिरिकंदरमल्लीणा	१/१६/३६	आयारचूला १५/१४
गंध जाव उस्सुक्कं	१/८/८४	१/१/३०
गंध जाव पडिविसज्जेइ	१/१६/१६६	१/८/१६०
गंध जाव सक्कारेत्ता	१/७/६	१/१/३०
गंधव्वेहि य जाव विहरंति	१/१६/१५२	१/१६/१५०
गज्जियं जाव थणियसद्दे	१/६/६	१/८/७१
गणनायग जाव आमंतेंति	१/१/८१	१/१/२४
गणिमस्स जाव चउव्विहभंडगस्स	१/८/६६	१/८/६६
गब्भस्स जाव विणेंति	१/२/१७	१/२/१७
गय०	१/८/६३	१/१/६७
गवलगुलिय जाव खुरधारेणं	१/६/१६	उवा. २/२२
गवल जाव एडेमि	१/६/३७	१/६/१६
गहाय जाव पडिगए	१/१८/३६	१/१८/३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गामघायं वा जाव पंथकोट्टिं	१/१८/२४	१/१८/२२
गामागर जाव अणुपविससि	१/१६/२२६	१/८/५८
गामागर जाव आहिंडह	१/१४/४३; १/१७/१७	१/८/५८
गिण्हामि जाव मग्गणगवेसणं	१/२/२६	१/२/२७, २६
गुणे. किं चालेइ जाव नो परिच्चयइ	१/८/७६	१/८/७४
घडएसु जाव संवसावेइ	१/१२/१६	१/१२/१६
चउत्थ जाव भावेमाणे	१/८/१६	१/१/१६५
चउत्थ जाव विहरइ	१/५/१०१; २/१/३३	१/१/१६५
चउत्थ जाव विहरंति	१/८/१७, २५	१/१/१६५
चउत्थस्स उक्खेवओ	२/४/१	२/२/१
चंपगपायवे.	१/१८/४६	१/१/१०५
चच्चर जाव महापहपहेसु	१/१/६७	१/१/३३
चरगा वा जाव पच्चप्पिणंति	१/१५/७	१/१५/६
चरमाणा जाव जेणेव	१/२/६६	१/१/४
चरमाणे जाव जेणेव	१/५/१०	१/१/४
चरमाणे जाव जेणेव सुभूमिभागे जाव विहरइ	१/५/१०८	१/१/४
चवलं० नहेहिं	१/४/१७	१/४/१४
चारगसोहणं जाव ठिइपडियं	१/१४/३३, ३४	१/१/७६-७६
चारुवेसा जाव पडिरूवा	१/२/८	१/१/१७
चालित्तए जाव विप्परिणामित्तए	१/८/७६	१/८/७६
चिट्ठइ जाव उट्ठाए	१/१/१५१	१/१/१५०
चिट्ठइ जाव संजमेणं	१/१/१६३	१/१/१५१
चित्तेह जाव पच्चप्पिणह	१/८/११७	१/१/२३
चेइए जाव अहापडिरूवं	१/२/६६	१/१/४
चेइए जाव विहरइ	१/१/६४	१/१/४
चेइए जाव संजमेणं	२/१/३	१/१/४
चोक्खा जाव सुहासणवरगया	१/१६/१५२	१/२/१४
चोरनायगं जाव कुडंगे	१/१८/३०	१/१८/२१
चोरविज्जाओ य जाव सिक्खाविए	१/१८/२८	१/१८/२५
छट्ठंछट्ठेणं जाव विहरइ	१/१३/३६	१/१३/३६
छट्ठंछट्ठेणं जाव विहरइ	१/१६/१०८	१/१६/१०६
छट्ठंछट्ठेणं जाव विहरित्तए	१/१६/१०७	१/१६/१०६
छट्ठट्ठम जाव विहरइ	१/१६/१०५	१/१/१६५
जणवयं जाव नित्थाणं	१/१८/३२	१/१८/२२
जहा पोट्टिला जाव परिभाएमाणी	१/१६/६२	१/१४/३८
जहा मंडुए सेलगस्स जाव बलिय सरीरे जाए	१/१६/२४-२६	१/५/११४-११६
जहा मल्लिनाए जाव उवायमाणा	१/१७/११	१/८/७२
जहा महब्बले जाव परिवड्ढिया	१/८/३७	राय. सू. ८०४
जहा मागंदियदारगाणं जाव कालियवाए	१/१७/६	१/६/६
जहा वद्धमाणसामी नवरं नवहत्थुस्सेहे०	२/१/१६	ओ. सू. १६; वाचनान्तर पृ. १४०
जहा सूरियाभो जाव भासमणपज्जत्तीए	२/१/४०	राय. सू. ७६७
जहा सेलगस्स जाव दाहवक्कंतीए	१/१६/२०	१/५/१०६
जायं च जाव अणुवड्ढेमि	१/२/१४	१/२/१२
जाया जाव पडिलाभेमाणी	१/१४/४६	१/५/४७
जाव एवं चेव पल्हायणिज्जे	१/१२/२३	१/१२/२२
जाव जहा	१/४/२२	१/२/७६
जाव पज्जुवासइ	१/५/१७	१/१/६६
जाव सणियं	१/४/१६	१/४/१३
जाव समणोवासए जाए अभिगयजीवा-जीवे जाव पडिलाभेमाणे	१/५/६३, ६४	राय. सू. ६६३; १/५/४७
जाव हावभावं	१/८/१२१	१/८/११७
जिमिय जाव सूइभूया	१/२/१४	१/१/८१
जिमियभुत्तुत्तरागयं जाव सुहासण.	१/१६/२१६	१/२/१४
जोव्वणेण य जाव नो खलु	१/८/१५४	१/८/६०
झोडा जाव मिलायमाणा	१/११/४	१/११/२
ठवेंति जाव चिट्ठंति	१/१७/२२	१/१७/२२
डिंभएहि य जाव कुमारियाहि	१/२/२७	१/२/२५
ण्हाए जाव पायच्छित्ते	१/१४/६४	१/१/२७
ण्हाए जाव सरणं उवेइ २ करयल एवं व	१/१६/२६५	१/१६/२६४
ण्हाए जाव सुद्धप्पावेसाइं	१/२/७१	१/१/१२४
ण्हायं जाव पुरिससहस्सवाहिणीयं	१/१४/५३	१/१४/१८
ण्हाया जाव पायच्छित्ता	१/२/६६; १/८/१७६	१/१/२७
ण्हाया जाव बहूहिं	१/८/१६८	१/८/१७६
ण्हाया जाव सरीरा	१/३/११	१/१/२७
ण्हायाणं जाव सुहासण.	१/१६/८	१/७/६
तइयज्झयणस्स उक्खेवओ	२/१/५६	२/१/४६
तइयवग्गस्स निक्खेवओ	२/३/१२	२/१/६३
तएणं से दूए एवं वयासी जहा वासुदेवे नवरं भेरी नत्थि जाव जेणेव	१/१६/१४३, १४४	१/१६/१३४-१४१
तं इच्छामि णं जाव पव्वइत्तए	१/१/१११	१/१/१०४
तं चेव जाव निरावयक्खे समणस्स जाव पव्वइस्ससि	१/१/१०७	१/१/१०६
तं चेव सव्वं भणइ चाव अत्थस्स	१/१८/५२	१/१८/५१
तं रयणिं च णं चोद्दस महासुमिणा वण्णओ	१/८/२६	कल्पसूत्र ४
तक्करे जाव गिद्धे विव आमिसभक्खी	१/२/३३	१/२/११

तच्चं दूयं चंपं नयरिं। तत्थ णं तुम कण्णं अंगरायं सल्लं नंदिरायं करयल तहेव जाव समोसरह। चउत्थं दूयं सोत्तिमइं नयरिं। तत्थ णं तुमं सिसु-पालं दमघोससुयं पंचभाइसय-संपरिवुडं करयल तहेव जाव समोसरह। पंचमं दूयं हत्थिसीसं नयरिं। तत्थ णं तुमं दमदंतरायं करयल जाव समोसरह।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छट्ठं दूयं महुरं नयरिं। तत्थ णं तुमं धरं रायं करयल जाव समोसरह। सत्तमं दूयं रायगिहं नयरं। तत्थ णं तुमं सहदेवं जरासंधसुयं करयल जाव समोसरह। अट्ठमं दूयं कोडिण्णं नयरं। तत्थ णं तुमं रुप्पिं भेसगसुयं करयल तहेव जाव समोसरह। नवमं दूयं विराटं नयरिं। तत्थ णं तुमं कीयगं भाउसयसमग्गं करयल जाव समोसरह। दसमं दूयं अवसेसेसु गामागर-नगरेसु अणेगाइं रायसहस्साइं जाव समोसरह। तए णं से दूए तहेव निग्गच्छइ जेणेव गामागर तहेव जाव समोसरह।	१/१६/१४५	१/१६/१३२-१३४
तच्चं पि जाव संचिट्ठइ	१/१६/३५	१/१६/३५
तच्चा जाव सब्भूया	१/१२/३१	१/१२/१६
तणकूडे.	१/१४/७७	१/१४/७६
तत्थे जाव संजायभए	१/१/१६८	१/१/१६०
तयावर ईहापूह जाव सण्णिजाइसरणे	१/८/१८१	१/१/१६०
तलवर जाव पभितओ	१/१४/६५	१/५/६
तलवर जाव सत्थवाह	१/५/६	ओ. सू. ५२
तहत्ति जाव पडिसुणेंति	१/५/१३	१/१/२६
तहारूवेहिं जाव विपुलं	१/१/२१५	१/१/२०६
तहेव जाव पहारेत्थ	१/८/१३६, १३७	१/८/६६, १००
तहेव सरीरवाउसिया तं चेव सव्वं जाव अंतं	२/१/५१-५४	२/१/३२-४४
तहेव सेयापीएहिं कलसेहिं ण्हावेइ जाव अरहओ अरिट्ठनेमिस्स छत्ताइ-छत्तं पडागाइपडाग पासइ २ त्ता विज्जाहरचारणे जाव पासित्ता	१/५/२८,२६	१/१/६६, १२६, १४४
ताओ जाव विदेहे वासे जाव अंतं	१/१६/३२६	१/१/२१२
तिक्खुत्तो जाव एवं	१/१६/३४	१/१६/२६
तिग जाव पहेसु	१/५/२६	१/१/३३
तिग जाव बहुजणस्स	१/१६/२६	१/५/५३
तित्तेसु जाव विमुक्कबंधणे	१/६/४	१/६/४
तुट्ठी वा जाव आणंदो	१/२/६४	१/२/६३
तुब्भण्णं जाव पव्वयामि	१/१२/४३	१/१/१०४
तुरियं जाव वेइय	१/८/१६६	१/४/१४
तुरुक्क जाव गंधवट्टिभूयं	१/१६/१५५	१/१/२२
तेसिं जाव बहूणि	१/१७/६	१/८/७१
थलय०	१/८/४६	१/८/३०
थलय जाव दसद्धवण्णं	१/८/३१	१/८/३०
थलय जाव मल्लेणं	१/८/३२	१/८/३०
थावच्चापुत्ते जाव मुंडे	१/५/८०	१/५/३४
थेरागमणं इंदकुंभे उज्जाणे समासेढा	१/८/८	१/८/१२
थेरा जाव आलित्ते	१/१६/३१५	१/१/१४६

दंडणाणि जाव अणुपरियट्टइ	१/४/१८	सूय. २/२/७८
दंडणाणि य जाव अणुपरियट्टइ	१/३/२४	१/३/२४
दसमस्स उक्खेवओ एवं खलु जंबू जाव अट्ठ	२/१०/१, २	२/२/१, २
दाणधम्मं च जाव विहरइ	१/८/१४१, १५२	१/८/१४०
दारियं जाव झियायमाणिं	१/१६/६४	१/१६/६२
दासचेडियाहिं जाव गरहिज्जमाणी	१/८/१४७	१/८/१४६
दाहिणड्ढभरहस्स जाव दिसं	१/१६/२६६	१/१६/२६७
दिट्ठे जाव आरोग्ग	१/१/२०	१/१/२०
दित्ते जाव विउलभत्तपाणे	१/२/७	वृत्ति
दीहमद्धं जाव वीईवइस्सइ	१/२/७६	१/२/६७
दुपयस्स वा जाव निव्वत्तेइ	१/८/१२६	१/८/११६
दुरुहइ जाव पच्चोरुहइ	१/१७/१३	१/१/१०२
दुरुहंति जाव कालं	१/१६/३२३	१/१६/३२३
दुरूढा जाव पाउब्भवंति	१/८/१४	१/५/६१
दूइज्जमाणा जाव जेणेव	१/१६/३२१	१/१/४
दूइज्जमाणे जाव विहरइ	१/१६/३२०	१/१/४; १/१६/३१६
देवकन्ना	१/८/१५४	१/८/८६
देवकन्ना वा जाव जारिसिया	१/८/८६, १११	वृत्ति
देवयभूयाए जाव निव्वत्तिए	१/८/१२८	१/८/१२६
देवलोगाओ जाव महाविदेहे	१/१६/२४	१/१/२१२
देवाणुप्पिया जाव कालगए	१/१६/३२३	१/१६/३२२
देवाणुप्पिया जाव जीवियफले	१/८/७६	उवा. २/४०
देवाणुप्पिया जाव नाइ	१/१६/२६५	१/५/१२३
देवाणुप्पिया जाव पव्वतिए	१/१६/३४	१/१६/२६
देवाणुप्पिया जाव साहराहि	१/१६/२४२	१/१६/२४०
देवाणुप्पिया जाव सुलद्धे	१/१६/२६	१/१६/२६
देवी जाव पंडुस्स	१/१६/३०१	१/१६/२६२
देवी जाव पउमनाभ०	१/१६/२३६	१/१६/२३३
देवी जाव साहिया	१/१६/२४०	१/१६/२०८
देवेण वा जाव निग्गंथाओ	१/८/७५	उवा. २/४५
देवेण वा जाव मल्लीए	१/८/१३५	१/८/७५
दोच्चस्स वग्गस्स उक्खेवओ	२/२/१	२/१/६
धण कणग जाव परिभाएउं	१/१/६२	१/१/६१
धण जाव सावएज्जस्स	१/७/३४	१/१/६१
धण जाव सावएज्जे	१/१६/६	१/१/६१
धण्णा णं ते जाव ईसरपभियओ	१/१३/१५	१/१/३३
धम्मं सोच्चा जं नवरं	१/५/८७	१/१/१०१
धम्मं सोच्चा जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे उग्गा भोगा जाव चइत्ता हिरण्णं जाव पव्वइया तहा णं अहं णो संचाएमि पव्वइए	१/५/४५	राय. सू. ६६५
धम्मकहा भाणियव्वा	१/५/७८	१/५/६३
धम्मोति वा जाव विजयस्स	१/२/७५	१/२/६४
धोवति जाव आसयसि	२/१/३५	२/१/३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धोवेइ जाव आसयइ	२/१/३८	२/१/३४
धोवेइ जाव चेएइ	१/१६/११९	१/१६/११४
धोवेसि जाव चेएसि	१/१६/११५	१/१६/११४
नन्दीसरे अट्ठाहियं करेंति जाव पडिगया	१/८/२२४	जंबू. वक्ष. ५
नगरगिहाणि	१/८/९७	१/८/५८
नगर जाव सण्णिवेसाणं आहेवच्चं जाव विहराहि	१/१/११८	ओ. सू. ६८
नच्चासन्ने जाव पज्जुवासइ	१/१४/८५	१/१/९९
नट्ठा या जाव दिन्न०	१/१३/२०	ओ. सू. १
नट्ठमईए जाव अवहिए	१/१७/१०	१/१७/८
नयरिं अणुपविसह	१/१६/२१६	१/१६/२१८
नवमस्स उक्खेवओ एवं खलु जंबू जाव अट्ठ	२/९/१, २	२/२/१, २
नवरं तस्स	१/७/२८, २९	१/७/८, २५, २६
नाइ०	१/५/२६; १/७/६, ९, २२, २६, ४२; १/१५/११; १/१६/५०, ५४; १/१८, ५१, ५६	१/१/८१
नाइ	१/१४/१८; १/१५/१९	१/५/२०
नाइ चउण्ह य कुल जाव विहराहि	१/७/२५	१/७/६
नाइ जाव आमंतेह	१/१४/५३	१/७/६
नाइ जाव नगरमहिलाओ	१/२/१९	१/२/१२
नाइ जाव परियणं	१/१४/१९	१/१/८१
नाइ जाव परियणेण	१/९/४८	१/१/८१
नाइ जाव परिवुडे	१/१६/५०	१/५/२०
नाइ जाव संपरिवुडे	१/१३/१५; १/१४/५३	१/५/२०
नामं वा जाव परिभोगं	१/१६/९७	१/१४/३६
नाम जाव परिभोगं	१/१४/३७	१/१४/३६
नासानीसासवायवोज्झं जाव हंसलक्खणं	१/१/१२८	आयारचूला १५/२८
निक्खेवओ	२/४/६	२/१/४५
निक्खेवओ अज्झयणस्स	२/२/८	२/१/४५
निक्खेवओ चउत्थवग्गस्स	२/४/९	२/१/६३
निक्खेवओ दसमवग्गस्स	२/१०/७	२/१/६३
निक्खेवओ पढमज्झयणस्स	२/३/८	२/१/४५
निक्खेवओ बिइयवग्गस्स	२/२/१०	२/१/६३
निग्गंथा जाव पडिसुणेंति	१/१६/२३	१/१/२६
निग्गंथाणं जाव विहरित्तए	१/५/१२४	१/५/११४
निग्गंथी वा	१/१८/६१	१/२/६८
निग्गंथी वा जाव पव्वइए	१/७/२७; १/१०/३; १/११/३, ५	१/२/६८
निग्गंथे वा जाव पव्वइए	१/२/७६	१/२/६८
निग्गंथो वा	१/१७/२५, ३६	१/२/६८
निग्गंथो वा जाव पंचसु	१/१५/१४	१/३/२४
निग्गंथो वा २ जाव विहरिस्सइ	१/५/१२९	१/२/७६
निट्ठियं जाव विज्झायं	१/१/१८४	१/१/१८३
निप्पाणे जाव जीवविप्पजढे	१/१८/५४	१/२/३२
नियग.	१/७/६	१/१/८१
निव्वत्तियनामधेज्जे जाव चाउदंते	१/१/१६७	१/१/१५६
निव्वाघायंसि जाव परिवड्ढइ	१/१६/३६	राय. सू. ८०४
निसंते जाव अब्भणुण्णाया	१/१४/५०	१/१/१०४
निसम्म जं नवरं महब्बलं कुमारं रज्जे ठावेमि	१/८/८	१/५/८७
निसीयइ जाव कुसलोदंतं	१/१६/१९८	१/१६/१८७
निस्संचारं जाव चिट्ठंति	१/८/१७२	१/८/१६७
नीलुप्पल.	१/१८/४६	१/९/१६
नीलुप्पल जाव असिं	१/१४/७३	१/९/१६
नीलुप्पल जाव खंधंसि	१/१४/७७	१/१४/७३
पउमनाहे जाव नो पडिसेहिए	१/१६/२८७	१/१६/२८५
पंचअणगारसया बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता जेणेव पुंडरीए पव्वए तेणेव उवागच्छंति जहेव थावच्चापुत्ते तहेव सिद्धा०	१/५/१२७, १२८	१/५/८३, ८४
पंचमवग्गस्स उक्खेवओ एवं खलु जंबू जाव बत्तीसं	२/५/१, २	२/२/१, २
पंचमे जाव भवियव्वं	१/७/३३	१/७/२५, ९
पंचयण्णं जाव पूरियं	१/१६/२७६	१/१६/२७५
पंचाणुव्वइयं जाव समणोवासए जाए अहिगयजीवाजीवे जाव अप्पाणं	१/५/४५-४७ वृत्ति;	ओ.सू. १२०, १६२
पंडवा०	१/१६/३१३	१/१/११६
पंथएणं जाव विहरइ	१/५/१२६	१/५/१२४
पगइभद्दइ जाव विणीए	१/१/२०९; १/१६/२४	ओ.सू. ११९
पच्चक्खाए जाव आलोइय०	१/१९/४६	१/१/२०६
पच्चक्खाए जाव थूलए	१/१३/४२	१/१/२०६
पज्जग जाव तओ पच्छा अणुभूयकल्लाणे पव्वइस्ससि	१/१/१११	१/१/११०
पच्चप्पिणह जाव पच्चप्पिणंति	१/१/७७	१/१/२३
पट्टिया जाव गहियाउहपहरणा	१/२/३२	राय. सू. ६६४
पडागे जाव दिसोदिसिं	१/१६/२५२	वृत्ति
पडिबुद्धा जाव विहाडिय	१/१६/६५	१/१६/६२
पडिबुद्धिं जाव जियसत्तुं	१/८/३९	१/८/२७
पडिबुद्धी० करयल०	१/८/४७	१/१/३९
पडिलाभेमाणे जाव विहरइ	१/५/५६	१/५/५२
पडिसुणेंति जाव उवसंपज्जित्ता	१/१९/२३	१/५/११३
पढमज्झयणस्स उक्खेवओ	२/७/३; २/८/३;	२/९/३२/२/३
पढमस्स उक्खेवओ	२/१०/३	२/५/३
पणामेत्ता जाव कूवं	१/१६/२४४	१/१६/२४३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पण्णत्ते जाव सग्गं	१/५/६०	१/५/५५
पतिव्वया जाव अपासमाणी	१/१६/६२	१/१६/५६
पत्तिए जाव सल्लइयपत्तइए	१/७/१५	१/७/१४
पत्तिया जाव चिट्ठंति	१/११/२	१/११/२
पत्तेयं जाव पहारेत्थ	१/१६/१७१	१/१६/१४६
पमाएयव्वं जाव जामेव	१/५/३३	१/१/१४८
परलोए नो आगच्छइ जाव वीईवइस्सइ	१/१५/१४	१/२/७६
परिग्गहिए जाव परिवसित्तए	१/८/१३१	१/८/१०७
परिणमंति तं चेव	१/१२/१७	१/१२/६
परिणममाणा जाव ववरोवेंति	१/१५/१५	१/१५/११
परिणामेणं जाव जाईसरणे	१/१३/३५	१/१/६०
परिणामेणं जाव जयावरणिज्जाणं	१/१४/८३	१/१/१९०
परतंता जाव पडिगया	१/१३/३१	१/४/१६
परिपेरंतेणं जाव चिट्ठंति	१/१७/२२	१/१७/२२
परियागए जाव पासित्ता	१/३/१६	१/३/५
परियाणह जाव मत्थयंसि	१/१/४८	१/१/४८
पल्लंसि जाव विहरंति	१/७/२०	१/७/१६
पवर जाव पडिसेहित्था	१/१६/२५६	१/८/१६५
पवर जाव भीए	१/१८/४४	१/१८/४२
पवरविवडिय जाव पडिसेहिया	१/१६/२५३	१/८/१६५
पव्वए जाव सिद्धे	१/५/१०४, १०५	१/५/८३, ८४
पव्वावेइ जाव उवसंपज्जित्ता	२/१/३०, ३१	१/१/१५०, १५१
पव्वावेइ जाव जायामायाउत्तियं	१/१/१६२	१/१/१५०
पसत्थदोहला जाव विहरइ	१/८/३३	१/१/६८, ६९
पाणाइवाएणं जाव मिच्छादंसणसल्लेणं	१/६/४	१/१/२०६
पाणाणुकंपयाए जाव अंतरा	१/१/१८६	१/१/१८१
पाणाणुकंपयाए जाव सत्ताणुकंपयाए	१/१/१८२	१/१/१८१
°पामोक्खा जाव वाणियगा	१/८/८१	१/८/६६
°पामोक्खे जाव वाणियगे	१/८/८३	१/८/६६
पायसंघट्टणाणि य जाव रयरेणुगुंडणाणि	१/१/१८६	१/१/१५३
पावयणं जाव पव्वइए	१/२/७३	१/१/१०१; भ. ६/१५०, १५१
पावयणं जाव से जहेयं	१/१२/३५	१/१/१०१
पासाईए जाव पडिरूवे	१/१/८६	१/१/८६
पासित्ता जाव नो वंदसि	१/५/६७	१/५/६६
पियं जाव विविहा	१/१/२०६	भ. २/५२
पीइदाणं जाव पडिविसज्जेइ	१/३/३१	१/१/३०
पीइमणा जाव हियया	२/१/११	१/१/१६
पीढं	१/५/११७	१/५/११०
पुच्छणाए जाव एमहालियं	१/१/१५४, १५५	१/१/१५३
पुढवि जाव पाओवगमणं	१/५/८३	१/१/२०६
पुत्तघायगस्स जाव पच्चामित्तस्स	१/२/५६, ६४	१/२/४०
पुप्फ जाव मल्लालंकार	१/२/१४	१/२/१२
पुप्फिया जाव उवसोभेमाणा	१/१३/१६	१/११/२
पुरापोराणं जाव पच्चणुब्भवमाणी	१/१६/६२	वृत्ति

पुरापोराणं जाव विहरइ	१/१६/११३	१/१६/६२
पुव्वभवपुच्छा एवं	२/१/५०	२/१/१५
पोक्खरिणीओ जाव सरसरपंतियाओ	१/१३/१५	राय. सू. १७४
पोसहसालं जाव पुव्वसंगइयं	१/१६/२०१-२०३	१/१६/२३७-२३६
पोसहसालाए जाव विहरइ	१/१३/१४	१/१/५३
फलिया जाव उवसोभेमाण	१/११/४	१/११/२
फासुएसणिज्जेणं जाव तेगिच्छं	१/५/११४	१/५/११०
फासुयं पीढ जाव विहरइ	१/५/११३	१/५/११०
बंधित्ता जाव रज्जू	१/१४/७७	१/१४/७३
बहिया जाव खणावेत्तए	१/१३/१५	१/१३/१५
बहिया जाव विहरंति	१/५/११८	१/१/१६६
बहिया जाव विहरित्तए	१/५/११७	१/१/१६६
बहुनायाओ एवं जहा पोट्टिला जाव उव्वलद्धे	१/१६/६७	१/१४/४३
बहूइं जाव पडिगयाइं	१/१६/१८२	१/८/१६१
बहूणि गामाणि जाव गिहाइं	१/१६/१६६	१/८/५८
बहूहिं जाव चउत्थ विहरइ	१/५/३८	१/१/१६५
बहूसु जाव विहरेज्जाह	१/६/२०	१/६/२०
बारवइं एवं जहा पंडू तहा घोसणं घोसावेइ जाव पच्चप्पिणंति पंडुस्स जहा	१/१६/२२३, २२४	१/१६/२१३, २१४
बावत्तरिं कलाओ जाव अलंभोगसमत्थे	१/१६/३०८, ३०६	१/१/८४, ८५
बासट्ठिं जाव उत्तरइ	१/१६/२८७	१/१६/२८५
बासट्ठिं जाव उत्तिण्णा	१/१६/२८७	१/१६/२८५
बिइयज्झयणस्स निक्खेवओ	२/१/५५	२/१/४५
बुज्झिहिइ जाव अंतं	१/१३/४४	१/१/२१२
भगवओ जाव पव्वइत्तए	१/१/११३	१/१/१०४
भड०	१/८/६४	१/८/५७
भवणवइ० तित्थयर०	१/८/३६	कल्पसूत्र महावीरजन्म प्रकरण
भवित्ता जाव चोद्दसपुव्वाइं	१/१४/८२	१/५/८०
भवित्ता जाव पव्वइत्तए	१/८/२०४; २/१/२७	१/१/१०४
भवित्ता जाव पव्वइस्सामो	१/१२/४०	१/१/१०१
भवित्ता जाव पव्वयामो	१/८/१८६; १/१६/३१०	१/१/१०१
भाणियव्वाओ जाव महाघोसस्स	२/४/८	ठाणं. २/३५५-३६२
भारहाओ जाव हत्थिणाउरं	१/१६/२४०	१/१६/२५४
भाव जाव चित्तेउं	१/८/११८	१/८/११७
भासासमिए जाव विहरइ	१/५/३५-३७	वृत्ति
भीए जाव इच्छामि	१/१२/३६	१/५/२१
भीए जाव संजायभए	१/१४/६६	१/१/१६०
भीया जाव संजायभया	१/६/२५, २७	१/१/१६०
भीया वा	१/८/७६	१/८/७३
भीया संजायभया	१/८/७२	१/१/१६०
°भुंजावेंति जाव आपुच्छंति	१/८/६६	१/८/६६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भुत्तुत्तरागए जाव सुइभूए	१/१२/४	१/२/१४
भेसज्जेहिं जाव तेगिच्छं	१/१६/२२	१/५/११०
भोगभोगाइं जाव विहरइ	१/१/६६	१/१/१७
भोगभोगाइं जाव विहरति	१/१६/१८३	१/१/३२
भोगभोगाइं जाव विहराहि	१/१६/२०८	१/१/३२
मइविकप्पणाहिं जाव उवणेंति	१/१६/२४७	ओ. सू. ५७
मज्झंमज्झेणं जाव सयं	१/१६/१६६	१/१६/२१८
मट्टियाए जाव अविग्घेणं	१/८/१४३	१/५/६०
मट्टियालेवे जाव उप्पतित्ता	१/६/४	१/६/४
मणुण्णे तं चेव जाव पल्हायणिज्जे	१/१२/८	१/१२/४
मत्थयछिड्डाए जाव पडिभाए	१/८/४१, ४२	१/८/४१
मयूरपोयगं जाव नदुल्लगं	१/३/२८	१/३/२७
महत्थं०	१/८/८१	१/८/८१
महत्थं जाव उवणेंति	१/८/८४	१/८/८१
महत्थं जाव तित्थयराभिसेयं	१/८/२०५	१/१/११६
महत्थं जाव निक्खमणाभिसेय	१/५/६८	१/१/११६
महत्थं जाव पडिच्छइ	१/१७/१७	१/८/८२
महत्थं जाव पाहुडं	१/१७/१६	१/५/२०
महत्थं जाव पाहुडं रायारिहं	१/१३/१५	१/५/२०
महत्थं जाव रायाभिसेयं	१/५/६२; १/१६/३७	१/१/११६
महब्बले जाव महया	१/८/१६	१/५/३४
महयाहय जाव विहरइ	२/१/१०	राय. सू. ८
महालियं जाव बंधित्ता अत्थाह जाव उदगंसि	१/१४/७७	१/१४/७५
महावीरस्स जाव पव्वइस्ससि	१/१/११०	१/१/१०६
महिड्ढीए जाव महासोक्खे	१/१/५३	सूय. २/२/७३
महुरालाउयं जाव नेहावगाढं	१/१६/८	१/१६/८
माणुस्सगाइं जाव विहरइ	१/१५/१६	१/१/६७
माया इ वा जाव सुण्हा	१/१४/७१	सूय. २/२/७
मासाणं जाव दारियं	१/१६/१२४	१/२/२०
माहण जाव वणीमगाण	१/१४/३८	आयारचूला १/१६
माहणी जाव निसिरइ	१/१६/२४	१/१६/१४
मित्त	१/७/२२	१/१/८१
मित्त जाव चउत्थ	१/७/१०	१/७/६
मित्त जाव बहवे	१/७/३८	१/७/२५, ११
मित्त जाव संपरिवुडा	१/५/२०	१/२/१२
मित्तनाइ गणनायग जाव सद्धिं	१/१/८१	१/१/८१
मित्तपक्खं जाव भरहो	१/१/११८	वृत्ति
मुडावियं जाव सयमेव	१/१/१६१	१/१/१४६
मुंडे जाव पव्वयाहि	१/१६/१४	१/१/१०१
मुच्छिए जाव अज्झोववण्णे	१/१६/२६	१/१६/२८
मेहे जाव सवणाए	१/१/१५४	१/१/१०६
य णं जाव परमसुइभूए	१/१२/२२	१/१/८१
रज्जइ जाव नो विप्पडिघाय.	१/१६/४६	१/१७/२५
रज्जं च जाव अंतेउरं	१/१६/२६	१/१/१६
रज्जे जाव अंतेउरे	१/१४/६०	१/१४/२१
रज्जे य जाव अंतेउरे	१/८/१५१; १/१६/ १८७; १/१६/२६	१/१/१६
रज्जे य जाव वियंगेइ जाव अंगमगाइ	१/१४/२२	१/१४/२१
रज्जे य जाव वियत्तेइ	१/१४/२२	१/१४/२१
रण्णो जाव तहत्ति	१/१६/३०३	१/८/१०४
रण्णो वा जाव एरिसए	१/८/१५३	१/८/६७
रयण जाव आभागी	१/१८/५६	१/१/६१; १/१८/५१
रहमहया	१/१६/१४७	१/८/५७
राईसर जाव गिहाइं	१/१४/४३	१/८/५८
राईसर जाव विहरइ	१/८/१४६	१/८/१४०
रायाहीणा जाव रायाहीणकज्जा	१/१४/५६	१/१४/५६
रिउव्वेय जाव परिणिट्ठिया	१/८/१३६	ओ. सू. ६७
रुट्ठा जाव मिसिमिसेमाणी	१/२/५७	१/१/१६१
रूवेण य जाव उक्किट्ठसरीरा	१/१६/२००	१/८/६०
रूवेण य जाव लावण्णेण	१/१६/१६०	१/८/३८
रूवेण य जाव सरीरा	१/१४/११	१/८/६०
रोयमाणा य जाव अम्मापिऊण	१/१८/१३	१/१८/६
रोयमाणिं जाव नावयक्खसि	१/६/४०	१/६/४०
रोयमाणे जाव विलवमाणे	१/२/३४	१/२/२६
रोयमाणे जाव विलवमाणे	१/६/४७	१/६/४०
लद्धमईए जाव अमूढदिसाभाए	१/१७/१३	१/१७/१२
लवण जाव ओगाहित्तए	१/६/६	१/६/४
लवण जाव ओगाहेह	१/६/५	१/६/४
लवणसमुद्दे जाव एडेमि	१/६/२०	१/६/१६
लोइयाइं जाव विगयसोए	१/१८/५७	१/६/४८
वंदामो जाव पज्जुवासामो	१/१३/३८	ओ. सू. ५२
वंदित्तए जाव पज्जवासित्तए	२/१/१२	राय. सू. ६ वृत्ति
वण्णहेडं वा जाव आहारेइ	१/१८/४८	१/१८, ६१
वण्णेणं जाव अहिए	१/१०/४	१/१०/२
वण्णेणं जाव फासेणं	१/१२/३	१/१२/१२
वत्थ जाव पडिविसज्जेइ	१/१४/१६	१/८/१६०
वत्थ जाव सम्माणेत्ता	१/१६/५४	१/७/६
वत्थस्स जाव सुद्धेणं	१/५/६१	१/५/६१
वत्थे जाव तिसंझं	१/७/३३	१/७/६
वयासी जाव के अन्ने आहारे जाव पव्वयामि	१/१२/४५	१/५/६०
वयासी जाव तुसिणीए	१/१६/१६, १७	१/१६/१४, १५
वरतरुणी जाव सुरूवा	१/१/१३७	१/१/१३४
ववरोवेह जाव आभागी	१/१८/५३	१/१८/५२
वाइय जाव रवेणं	१/८/२०२	१/१/११८
वाणियगाणं जाव परियणा	१/८/६७	१/८/६६
वाबाहं वा जाव छविच्छेयं	१/४/२०	१/४/११
वायणाए जाव धम्माणुओगचिंताए	१/१/१८६	१/१/१५३
वाराओ तं चेव जाव नियघरं	१/६/४	१/६/४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वावीसु य जाव विहरेज्जाह	१/६/२०	१/६/२०
वासाइं जाव देंति	१/२/१२	१/२/१२
वासुदेवपामोक्खे जाव उवागए	१/१६/१७७	१/१६/१७६
वासुदेवे धणुं परामुसइ वेढो	१/१६/२५८	वृत्ति
वासे जाव असीइं च सयसहस्सा		
दलइत्तए	१/८/१६४	१/८/१६४
विउला पगाढा जाव दुरहियासा	१/१६/४०	१/१/१६२
विगोवइत्ता जाव पव्वइए	१/१६/२६	ओ. सू. ५२
विजया जाव अवक्कमामो	१/२/४७	१/२/४४
विणिम्मुमाणी २ एवं	१/५/३३	१/१/१४८
वेज्जा य जाव कुसलपुत्ता	१/१३/३०	१/१३/२६
सइं वा जाव अलभमाणा	१/६/२२, २४	१/६/२१
सइं वा जाव जेणेव	१/६/२३	१/६/२१
संकामेत्ता जाव महत्थं पाहुडं	१/८/८४	१/८/८१
संकिए जाव कलुससमावण्णे	१/३/२४	१/३/२१
संगयगयहसिय.	१/३/८	१/१/१३४
संचाएइ जाव विहरित्तए	१/५/११८	१/५/११७
संचाएंति० करेत्तए ताहे दोच्चं पि		
अवक्कमंति	१/४/१४, १५	१/४/११, १२
संजत्तगाणं जाव पडिच्छइ	१/८/८२	१/८/८१
संता जाव भावा	१/१२/३२	१/१२/३१
संताणं जाव सब्भूयाणं	१/१२/२६	१/१२/१६
संते जाव निविण्णे	१/८/७६	१/४/१२
संते जाव भावे	१/१२/२६	१/१२/१६
संपरिवुडे एवं जाव विहरइ	१/८/१४७	१/१६/१७८
संभग्गं जाव पासित्ता	१/१६/२६३	१/१६/२६२
संभग्गं जाव सण्णिवइया	१/१६/२७८	१/१६/२६२
संभग्गं तोरणं जाव पासइ	१/१६/२७८	१/१६/२६२
संसारभउव्विग्गा जाव पव्वइत्तए	१/१४/५३	१/१/१४५
संसारभउव्विग्गे जाव पव्वयामि	१/५/८६	१/१/१४५
सकोरेंट जाव सेयवर.	१/८/५७	१/१/६६
सकोरेंटमल्लदाम जाव सेयवरचामराहिं		
महया	१/८/१६१	१/८/५७
सकोरेंट० सेयचामर हयगयरहमहया-		
भडचडगरेण जाव परिक्खित्ता	१/१६/१५३	१/८/५७
सकोरेंट हयगय	१/१६/१५७	१/८/५७
सक्का जाव नन्नत्थ	१/५/२५	१/५/२४
सखिंखिणियाइं जाव वत्थाइं	१/८/२०३	१/८/७६
सगज्जिया जाव पाउससिरी	१/१/६४	१/१/५६
सज्जइ जाव अणुपरियट्टिस्सइ	१/१५/१६	१/३/२४
सण्णद्ध०	१/१६/२४८	१/२/३२
सण्णद्ध जाव गहिया	१/१६/१३४; १/१८/३५	१/२/३२
सण्णद्ध जाव पहरणा	१/१६/२५१	१/२/३२
सण्णद्धबद्ध जाव गहियाउह.	१/१६/२३६	१/२/३२
सत्तट्ठ जाव उप्पयइ	१/६/३७	१/६/३६

सत्तट्ठतलाइं जाव अरहन्नगं	१/८/७७	१/८/७३
सत्तमस्स वग्गस्स उक्खेवओ एवं		
खलु जंबू जाव चत्तारि	२/७/१, २	२/२/१, २
सत्तुस्सेहे जाव अज्जसुहम्मस्स	१/१/६	ओ. सू. ८२
सत्थवज्झा जाव कालमासे	१/१६/३१	१/१६/३१
सद्दफरिसरसरूवगंधे जाव भुंजमाणे	१/५/६	ओ. सू. १५
सद्दहंति जाव रोएंति	१/१५/१३	१/१/१०१
सद्दावेइ जाव जेणेव	१/८/६६, १००	१/८/६२, ६३
सद्दावेइ जाव तं	१/७/१०	१/७/६, ७, ६
सद्दावेइ जाव तहेव पहारेत्थ	१/८/११२, ११३	१/८/६६, १००
सद्दावेइ जाव पहारेत्थ	१/८/१५५, १५६	१/८/६६, १००
सद्दावेह जाव सद्दावेंति	१/१/१३६	१/१/१३८
सद्देणं जाव अम्हे	१/३/१६	१/३/१८
समणस्स जाव पव्वइत्तए	१/१/१०७	१/१/१०४
समणस्स जाव पव्वइस्ससि	१/१/१०८, ११२	१/१/१०६
समणाउसो जाव पंच	१/७/३५, ४३	१/७/२७
समणाउसो जाव पव्वइए	१/१०/५; १/१८/४८; १/१६/४२, ४७	१/३/२४
समणाउसो जाव माणुस्सए	१/६/५३	१/६/४४
समणाणं जाव पमत्ताणं	१/५/११८	१/५/११७
समणाणं जाव वीईवइस्सइ	१/३/३४	१/२/७६
समणाणं जाव सावियाण	१/१७/३६	१/२/७६
समणाण य जाव परिवेसिज्जइ	१/८/२००	१/८/१६६, १६७
समत्तजालाकुलाभिरामे जाव		
अंजणगिरि.	१/१६/१४०	ओ. सू. ६३
समाणा जाव चिट्ठंति	१/१५/१०	१/१५/६
समाणी जाव विहरित्तए	१/२/१७	१/२/१७
समोवइए जाव निसीइत्ता	१/१६/२२७, २२८	१/१६/१६७, १६८
समोसरणं	१/५/८५	१/१/४
सम्मज्जिओवलित्तं जाव सुगंधवरगंधियं	१/१/३३	१/१/२२
सम्मज्जिओवलित्तं सुगंधं जाव कलियं	१/३/६	१/१/२२
सम्माणेइ जाव पडिविसज्जेइ	१/१६/३००	१/१४/१६
सयमेव. आयार जाव धम्ममाइक्खइ	१/१/१५०	१/१/१४६
सरिसगं जाव गुणोववेयं	१/८/१२०	१/८/४१
सरिसियाओ जाव समणस्स पव्वइस्ससि	१/१/१०६	१/१/१०८
सव्वओ जाव करेमाणा	१/१६/२३	१/१६/२३
सव्वं तं चेव आभरणं	१/५/३०-३२	१/१/१४५-१४७
सव्वज्जुईए जाव निग्घोसनाइयरवेणं	१/१/३३	ओ. सू. ६७
सव्वट्ठाणेसु जाव रज्जधुराचिंतए	१/१४/५६	१/१४/५६; १/१/१६
सहइ जाव अहियासेइ	१/११/३	१/११/५
सहजायया जाव समेच्चा	१/८/१०, ११	१/३/६, ७
सहियाणं जाव पुव्वरत्ता.	१/५/११८	१/३/७
साइमं जाव परिभाएमाणी	१/१६/६३	१/१६/६२
सामदंडं०	१/८/४५; १/१४/४	१/१/१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सालइएणं जाव नेहावगाढेणं	१/१६/२५, २६	१/१६/८
सालइयं जाव आहारेसि	१/१६/१६	१/१६/१६
सालइयं जाव गोवेइ	१/१६/८	१/१६/८
सालइयं जाव नेहावगाढं	१/१६/१६; १९, २०	१/१६/८
सालइयस्स जाव नेहावगाढस्स	१/१६/२२	१/१६/८
सालइयस्स जाव एगंमि	१/१६/१९	१/१६/१६
साहरह जाव ओलयंति	१/८/६२	१/८/४८
सिंगारा जाव कुसला	१/१/१३६	१/१/१३४
सिंगारागारचारूवेसाओ जाव कुसलाओ	१/१/१३५	१/१/१३४
सिंघाडग०	१/५/५३	१/१/३३
सिंघाडग जाव पहेसु	१/३/३३;१/१३/२६; १/१६/१५३;१/१८/१६	१/१/३३
सिंघाडग जाव बहुजणो	१/७/४१;१/८/२००; १/१३/२६	१/५/५३
सिंघाडग जाव महया	१/१/६५	ओ. सू. ५२
सिक्खावइए जाव पडिवण्ण	१/१३/३६	उवा. १/४५
सिज्झिहिइ जाव मंत	१/१४/२१	१/१/२१२
सिज्झिहिइ जाव सव्वदुक्खाण०	१/१९/४६	१/१/२१२
सिद्धे जाव प्पहीणे	१/५/८४	ठाणं १/२४६
सीलव्वय जाव न परिच्चयसि	१/८/७४	१/८/७४
सीलव्व तहेव जाव धम्मज्झाणोवगए	१/८/७७, ७८	१/८/७४, ७५
सीहनाय जाव रवेणं	१/८/६७	ओ. सू. ५२
सीहनाय जाव समुद्दरवभूयं	१/१८/३५	१/८/६७
सुइं वा०	१/६/३७	१/२/२६
सुइं वा जाव अलभमाणे	१/१६/२१५	१/१६/२१२
सुइं वा जाव लभामि	१/१६/२२१	१/१६/२१२
सुई वा जाव उवलद्धा	१/१६/२२६	१/१६/२१२
सुकुमालपाणिपाए जाव सुरूवे	१/५/८	ओ. सू. १४३
सुभरूवत्ताए	१/१५/१३	१/१५/११
सुमिणपाढगपुच्छा जाव विहरइ	१/८/२६	१/१/३२
सुमिणा जाव भुज्जो २ अणुवूहति	१/१/३१	१/१/२९
सुरं च जाव पसन्नं	१/१८/३३	१/१६/१४६
सुरट्ठाजणवए जाव विहरइ	१/१६/३१९	१/१६/३१८
सुरूवा जाव वामहत्थेणं	१/१६/१६३	वृत्ति
सूमालं निव्वत्तबारसाहस्स इमं एयारूवं	१/१६/३०५, ३०६	१/१६/३३, ३४
सूमालिया जाव गए	१/१६/८७	१/१६/६२
से धम्मे अभिरुइए तए णं देवा पव्वइत्तए	१/१९/१३	१/१/१०४
सेयवर हयगय भहया भडचडगरपहकरेणं	१/१६/२३७	१/८/५७
सेसं जहा सागरस्स जाव सयणिज्जाओ	१/१६/८१-८६	१/१६/५६-६१

सोणियासवस्स जाव अवस्स०	१/१८/६१	१/१/१०६
सोणियासवस्स जाव विद्धंसणधम्मस्स	१/१८/४८	१/१/१०६
हए जाव पडिसेहिए	१/१६/२५७	१/८/१६५
हट्ठ जाव हियया	२/१/२०, २१, २४, २५	१/१/१९
हट्ठतुट्ठ जाव पच्चप्पिणंति	१/१/२३	१/१/१९, २२
हट्ठतुट्ठ जाव मत्थए	१/५/१३	१/१/२६
हट्ठतुट्ठ जाव हियए	१/१/२०; १/१६/१३५	१/१/१९
हत्थाओ जाव पडिनिज्जाएज्जासि	१/७/९	१/७/६
हत्थिखंध जाव परिवुडे	१/१६/१४९	१/१६/१४६
हत्थिखंधवरगए जाव सेयवरचामराहिं	१/८/१६३	१/८/५७
हत्थिणाउरे जाव सरीरा	१/१६/२०३	१/१६/२००
हत्थी जाव छुहाए	१/१/१८५	१/१/१५७
हत्थीए य जाव कलभियाहि	१/१/१६८	१/१/१५७
हत्थीहि य जाव संपरिवुडे	१/१/१५८	१/१/१५७
हयगय०	१/१६/२४८	१/८/५७
हयगय जाव पच्चप्पिणंति	१/१६/१३९	ओ. सू. ५६
हयगय जाव परिवुडा	१/१६/१५६	१/८/५७
हयगय जाव रवेणं	१/१/६९	१/१/६७
हयगय जाव हत्थिणाउराओ	१/१६/३०३	१/८/५७
हयगय संपरिवुडे	१/१६/१७४	१/८/५७
हयगया जाव अप्पेगइया	१/१६/१३८	१/५/१५
हय जाव सेणं	१/८/१६२	१/८/५७
हयमहिय जाव नो पडिसेहिए	१/१६/२८५	१/८/१६५
हयमहिय जाव पडिसेहिए	१/८/१६६; १/१६/२५६	१/८/१६५
हयमहिय जाव पडिसेहित्ता	१/१६/२८९	१/८/१६५
हयमहिय जाव पडिसेहिया	१/१८/४२	१/८/१६५
हयमहिय जाव पडिसेहेइ	१/१८/२४	१/८/१६५
हयमहिय जाव पडिसेहेंति	१/१८/४१	१/८/१६५
हरिसवस०	१/१/१६१	वृत्ति
हियए जाव पडिसुणेइ	१/१/१२६	ओ. सू. ५६
हियाए जाव आणुगामियत्ताए	१/१३/३८	ओ. सू. ५२
हिरण्णं जाव वइरं	१/१७/१६	१/१७/१६
हिरण्णागरे य जाव बहवे	१/१७/१८	१/१७/१४
हीलणिज्जे०	१/४/१८	१/३/२४
हीलणिज्जे संसारो भाणियव्वो	१/५/१२५	१/३/२४
हीलिज्जमाणीए जाव निवारिज्जमाणीए	१/१६/११८	१/६/११७
हीलेंति जाव परिभवंति	१/१६/११७	१/३/२४
होत्था जाव सेणियस्स रण्णो इट्ठा जाव विहरइ	१/१/१७	वृत्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-२

गाथानुक्रमणिका

अगरुवर-पवर-धूवण-उउयमल्लाणुलेवणविहीसु।
गंधेसु जे न गिद्धा, वसट्टमरणं न ते मरए॥
१/१७/३६/१३

अगरुवर-पवरधूवण-उउयमल्लाणुलेवणविहीसु।
गंधेसु रज्जमाणा, रमंति घाणिंदिय-वसट्टा॥
१/१७/३६/५

अणुवकय-पराणुग्गह-परायणा उ जिणा जगप्पवरा।
जिय-राग-दोस-मोहा, य नन्नहावाइणो तेण॥
१/३/३५/५

अप्पेण वि कालेणं, केइ जहा गहिय-सील-सामण्णा।
साहंति नियय-कज्जं, पुंडरीय-महारिसि व्व जहा॥
१/१६/४८/२

अमणुण्णमभत्तीए, पत्ते दाणं भवे अणत्थाय।
जह कडुय-तुंब-दाणं, नागसिरि-भवम्मि दोवईए॥
१/१६/३२७/२

इयरे उ अणत्थ-परंपराओ पावेंति पावकम्मवसा।
संसार-सागरगया, गोमाउग्गसियकुम्मोव्व॥
१/४/२३/२

उउ-भयमणिसुहेसु य, सविभव-हिययमण-निव्वुइकरेसु।
फासेसु जे न गिद्धा, वसट्टमरणं न ते मरए॥
१/१७/३६/१५

उउ-भयमाणसुहेसु य, सविभव-हिययमण-निव्वुइकरेसु।
फासेसु रज्जमाणा, रमंति फासिंदिय-वसट्टा॥
१/१७/३६/६

१. उक्खित्तणाए २. संघाडे ३. अंडे ४. कुम्मे य ५. सेलगे।
६. तुंबे य ७. रोहिणी ८. मल्ली ९. मायंदी १० चंदिमा इ य॥
१/१/१०/१

उग्गतवसंजमवओ, पगिट्ठफलसाहगस्स वि जयिस्स।
धम्मविसए वि सुहमा वि, होइ माया अणत्थाय॥
१/८/२३६/१

कंदल-सिलिंध-दंतो, निउरवरपुप्फपीवरकरो।
कुडयज्जुण-नीव-सुरभिदाणो, पावसउऊ पव्वओ साहीणो॥
१/९/२०/१

१. कण्हा य २. कण्हराई, ३. रामा तह ४. रामरक्खिया।
५. वसू या ६ वसुगुत्ता ७. वसुमित्रा ८. वसुंधरा चेव ईसीणे॥
१/२/१०/२/१

कत्थइ मइदुब्बल्लेण, तव्विहायरिविरहओ गवि।
नेयगहणत्तणेणं, नाणावरणोदयेणं च॥
१/३/३५/३

१. कमला २. कमलप्पभा चेव, ३. उप्पला य ४. सुदंसणा।
५. रूववई ६ बहुरूवा ७. सुरूवा ८ .सुभगावि य॥
१/२/५/२/१

कल-रिभिय-महुर-तंती-तल-ताल-वंस-कउहाभिरामेसु।
सद्देसु रज्जमाणा, रमंति सोइंदिय-वसट्टा॥
१/१७/३६/१

कल-रिभिय-महुर-तंती-तल-ताल-वंस-कउहाभिरामेसु।
सद्देसु जे न गिद्धा, वसट्टमरणं न ते मरए॥
१/१७/३६/११

किंथ तयं पम्हुट्ठं जंथ तया भो ! जयंतपवरम्मि।
वुत्था समय-णिबद्धा, देवा तं संभरह जाइं।
१/८/१८०/१

गंधेसु य भद्दय-पावएसु चक्खुविसयमुवगएसु।
तुट्ठेण व रूट्ठेण व, समणेण सया न होयव्वं॥
१/१७/३६/१८

१. गय २. वसह ३. सीह ४. अभिसेय ५. दाम
६. ससि ७. दिणयरं ८. झयं ९. कुंभं।
१०. पउमसर ११. सागर १२. विमाणभवन
१३. रयणुच्चय १४ सिहिं च॥
१/१/२९/१

घाणिंदिय-दुद्दंतत्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो।
जं ओसहिगंधेणं, बिलाओ निद्धावई उरगो॥
१/१७/३६/६

घोसणया इव तित्थंकरस्स सिवमग्गदेसणमहग्धं।
चरगाइणो व्व एत्थं, सिवसुहकामा जिया बहवे॥
१/१५/२२/२

चंपा इव मणुयगई, धणोव्व भयवं जिणो दएक्करसो।
अहिच्छत्ता नयरिसमं, इह निव्वाणं मुणेयव्वं॥
१/१५/२२/१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्कागपिट्ठवण्णा, सारसवण्णा य हंसवण्णा य केइ।
केइत्थ अब्भवण्णा, पक्कतल-मेघवण्णा य बाहुवण्णा केइ ॥
१/१७/१४/३

चक्खिंदिय-दुद्दंतत्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो।
जं जलणंमि जलंते, पडइ पयंगो अबुद्धीओ ॥
१/१७/३६/४

चलचवलकुंडलधरा, सच्छंदविउव्वियाभरणधारी।
देविंददाणविंदा, वहंति सीयं जिणिंदस्स ॥
१/८/२१४/२

छलिय अवयक्खंतो, निरवयक्खो गओ अविग्घेणं।
तम्हा पवयणसारे, निरावयक्खेण भवियव्वं ॥
१/६/४४/१

जणिय-पमाओ साहू, हायंतो पइदिणं खमाईहिं।
जायइ नट्ठचरित्तो, तत्तो दुक्खाइ पावेइ।।
१/१०/६/३

जह अडवि-नियर-नित्थरण-पावणत्थं तएहिं सुयमंसं।
भुत्तं तहेह साहू, गुरुण आणाइ आहारं ॥
१/१८/६२/४

जह उभयवाय-जोगे, सव्वसमिद्धी वणस्स संजाया।
तह उभयवयण-सहणे सिवमग्गाराहणा पुण्णा ॥
१/११/१०/७

जह उभयवाय-विरहे, सव्वा तरूसंपया विणट्ठत्ति।
अणिमित्तोभय-मच्छर-रूवेह विराहणा तह य ॥
१/११/१०/६

जह कुसुमाइ-विणासो, सिवमग्ग-विराहणा तहा णेया।
जह दीववायु-जोगे, बहु इड्ढी ईसि य अणिड्ढी ॥
१/११/१०/३

जह चंदो तह साहू, राहुवरोहो जहा तह पमाओ।
वण्णाइगुणगणो जह, तहा खमाइसमणधम्मो ॥
१/१०/६/१

जह जलहिवाय-जोगे, थेविड्ढी बहुयरा अणिड्ढी य।
तह परपक्खमणे, आराहणमीसि बहु इयरं ॥
१/११/१०/५

जह ते कालियदीवा, णीया अण्णत्थ दुहगणं पत्ता।
तह धम्म-परिब्भट्ठा, अधम्मपत्ता इहं जीवा ॥
१/१७/३७/५

जह तेण तेसि कहिया, देवी दुक्खाण कारणं घोरं
तत्तो चिय नित्थारो, सेलगजक्खाउ नन्नत्तो ॥
१/६/५४/३

जह तेसिं तरियव्वो, रूद्दसमुद्दो तहेह संसारो।
जह तेसि सगिहगमणं, निव्वाणगमो तहा एत्थ ॥
१/६/५४/६

जह तेहिं भीएहिं, दिट्ठो आघायमंडले पुरिसो।
संसारदुक्खभीया, पासंति तहव धम्मकहं ॥
१/६/५४/२

जह दावद्दव-तरुणो, एवं साहू जहेह दीविच्चा।
वाया तह समणाद्दय, सपक्ख-वयणाइं दुसहाइं ॥
१/११/१०/१

जह देवीए अक्खोहो, पत्तो सट्ठाण-जीवियसुहाइं।
तह चरणठिओ साहू, अक्खोहो जाइं निव्वाणं ॥
१/६/५४/६

जह मल्लिस्स महाबल-भवम्मि तित्थयरनामबंधे वि।
तव-विसय-थेवमाया जाया जुवइत्त-हेउत्ति ॥
१/७/२३६/२

जह मिउलेवालित्तं, गुरूयं तुंबं अहो वयइ।
एवं कय-कम्मगुरू, जीवा वच्चंति अहरगइं ॥
१/६/५/१

जह रयणदीवदेवी, तह एत्थं अविरई महापावा।
जह लाहत्थी वणिया, तह सुहकामा इहं जीवा ॥
१/६/५४/१

जह रोहिणी उ सुण्हा, रोवियसाली जहत्थमभिहाणा।
वड्ढित्ता सालिकणे, पत्ता सव्वस्स सामित्तं ॥
१/७/४४/११

जह वा रक्खियबहुया, रक्खियसालीकणा जहत्थक्खा।
परिजणमण्णा जाया, भोगसुहाइं च संपत्ता ॥
१/७/४४/८

जह वा सा भोगवती, जहत्थनामोवभुत्तसालिकणा।
पेसणविसेसकारित्तणेण, पत्ता दुहं चेव ॥
१/७/४४/५

जह सच्छंदविहारो, आसाणं तह इहं वरमुणीणं।
जर-मरणाइ-विवज्जिय, सायत्ताणंदनिव्वाणं ॥
१/१७/३७/३

जह सद्दाइ-अगिद्धा, पत्ता नो पासबंधणं आसा।
तह विसएसु अगिद्धा, बज्झंति न कम्मणा साहू ॥
१/१७/३७/२

जह सद्दाइसु गिद्धा, बद्धा आसा तहेव विसयरया।
पावेंति कम्मबंधं, परमासुह-कारणं घोरं ॥
१/१७/३७/४

जह सा उज्झियनामा, उज्झियसाली जहत्थमभिहाणा।
पेसणगारित्तेणं, असंखदुक्खक्खणी जाया ॥
१/७/४४/२

जह सामुद्दय-वाया, तहण्णतित्थाइ-कडुयवयणाइं।
कुसुमाइं संपया जह, सिवमग्गाराहणा तह उ ॥
१/११/१०/२

जह सेट्ठी तह गुरुणो, जह नाइ-जणो तहा समणसंघो।
जह बहुया तह भव्वा, जह सालिकणा तह वयाइं ॥
१/७/४४/१

जह सेलगपट्ठाओ, भट्ठो देवीए मोहियमई उ।
सावय-सहस्सपउरम्मि, सायरे पाविओ निहणं ॥
१/६/५४/७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह सो कालियदीवो, अणुवमसोक्खो तहेव जइ-धम्मो।
जह आसा तह साहू, वणियव्व अणुकूलकारिजणा ॥
१/१७/३७/१

जह सो चिलाइपुत्तो सुंसुमगिद्धो अकज्ज-पडिबद्धो।
धण-पारद्धो पत्तो, महाडविं वसण-सयकलियं ॥
१/१८/६२/१

जाव न दुक्खं पत्ता, माणब्भंसं च पाणिणो पायं।
ताव न धम्मं गेण्हंति भावओ तेयलिसुयव्व ॥
१/१४/८६/१

जिणवरभासि भावेसु, भावसच्चेसु भावओ मइमं।
नो कुज्जा संदेहं, संदेहोऽणत्थहेउ त्ति ॥१॥
१/३/३५/१

जिब्भिदय-दुद्दंतत्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो।
जं गललग्गुक्खित्तो, फुरइ थलविरेल्लिओ मच्छो ॥
१/१७/३६/८

तं चेव तव्विमुक्कं, जलोवरिं ठाइं जाय-लहुभावं।
जह तह कम्म-विमुक्का, लोयग्ग-पइट्ठिया होंति ॥
१/६/५/२

तलपत्त-रिट्ठवण्णा य, सालिवण्णा य भासवण्णा य केइ।
जंपिय-तिल-कीडगा य, सोलोय-रिट्ठगा य पुंड-पइया य कणगपिट्ठाय केइ ॥
१/१७/१४/२

तव्वज्जणेण जह इट्ठपुरगमो विसयवज्जणेण तहा।
परमानंदनिबंधण-सिवपुरगमणं मुणेयव्वं ॥
१/१५/२२/४

तह अविरईइ नडिओ, चरणचुओ दुक्खसावयाइण्णं।
निवडइ अगाह-संसार-सागरं अणंतमविकालं ॥
१/६/५४/८

तह जीवो विसय-सुहे, लुद्धो काऊण पावकिरियाओ।
कम्मवसेणं पावइ, भवाडवीए महादुक्खं ॥
१/१८/६२/२

तह जो जीवो सम्मं, पडिवज्जित्ता महव्वए पंच।
पालेइ निरइयारे, पमाय-लेसंपि वज्जेंती ॥
१/७/४४/६

तह जो भव्वो पाविय वयाइ पालेइ अप्पणा सम्मं।
अण्णेसि वि भव्वाणं देइ अणेगेसि हिय हेउं ॥
१/७/४४/१२

तह जो महव्वयाइं, उवभुंजइ जीविय त्ति पालिंतो।
आहाराइसु सत्तो चत्ता सिवसाहणिच्छाए ॥
१/७/४४/६

तह धम्मकही भव्वाण, साहए दिट्ठअविरइसहावा।
सयलदुहहेउभूया, विसया विरयंति जीवा णं ॥
१/६/५४/४

तह भव्वो जो कोई, संघसमक्खं गुरू-विदिण्णाइं।
पडिवज्जिउं समुज्झइ, महव्वयाइं महामोहा ॥
१/७/४४/३

तह साहम्मिय-वयणाण, सहणमाराहणा भवे बहुया।
इयराणमसहणे, पुण सिवमग्ग-विराहणा थोवा ॥
१/११/१०/४

ता पुण्णसमणधम्माराहणचित्तो सया महापुण्णो।
सव्वेण वि कीरंतं, सहेज्ज सव्वं पि पडिकूलं ॥
१/११/१०/८

तिण्णेव य कोडिसया, अट्ठासीइं च हुंति कोडीओ।
असिइं च सयसहस्सा, इंदा दलयंति अरहाणं ॥
१/८/१६४/१

तित्त-कडुयं कसायं, महुरं, बहुखज्ज-पेज्ज-लेज्झेसु।
आसायंमि उ गिद्धा, रमंति जिब्भिंदिय-वसट्टा ॥
१/१७/३६/७

तित्त-कडुयं, कसायं, महुरं बहुखज्ज-पेज्ज-लेज्झेसु।
आसायंमि न गिद्धा, वसट्टमरणं न ते मरए ॥
१/१७/३६/१४

तित्थयर-वंदणत्थं, चलिओ भावेण पावए सग्गं।
जह दद्दुरदेवेणं, पत्तं वेमाणिय-सुरत्तं ॥
१/१३/४५/२

तित्थस्स वुड्ढिकारी, अक्खेवणओ कुतित्थियाईणं।
विउस-नरसेविय-कमो, कमेण सिद्धिं पि पावेइ ॥
१/७/४४/१४

थण-जहण-वयण-कर-चरण-नयण-गव्विय विलासियगईसु।
रूवेसु जे न रत्ता, वसट्टमरणं न ते मरए ॥
१/१७/३६/१२

थण-जहण-वयण कर-चरण-नयण-गव्विय-विलासियगईसु।
रूवेसु रज्जमाणा, रमंति चक्खिंदिय-वसट्टा ॥
१/१७/३६/३

११. दावद्दवे १२. उदगणाए १३. मंडुक्के १४. तेयली वि य।
१५ नंदीफले १६ अवरकंका १७. आइण्णे १८. सुंसुमा इ य ॥
१९. अवरे य पुंडरीए, नाए एगूणवीसमे ॥ १/१/१०/२

धणसेट्ठी विव गुरुणो, पुत्ता इव साहवो भवो अडवी।
सुयमंसामिवाहारो, रायगिंह इह सिवं नेयं ॥
१/१८/६२/३

नंदिफलाइं व्व इहं, सिवपहपडिपण्णगाण विसया उ।
तब्भक्खणाओ मरणं, जह तह विसएहि संसारो ॥
१/१५/२२/३

नंदे य नंदमित्ते, सुमित्त बलमित्त भाणुमित्ते य।
अमरवइ अमरसेणे, महसेणे चेव अट्ठमए ॥
१/८/२२३/१

निसंदेहत्तं पुण, गुणहेउं जं तओ तयं कज्जं।
एत्थं दो सेट्ठिसुया, अंडयगाही उदाहरणं ॥
१/३/३५/२

१. पउमा २. सिवा ३. सई ४. अंजू।
५. रोहिणी ६. नवमिया इ य।
७. अमला ८. अच्छरा ॥ १/२/६/२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पावेंति कम्म-नरवइ-वसया संसारवाहियालीए।
आसप्पमद्दएहिं व, नेरइयाईहिं दुक्खाइं॥
१/१७/३७/६

९. पुण्णा १०. बहुपुत्तिया चेव, ११. उत्तमा १२. तारियावि य।
१३. पउमा १४. वसुमई चेव, १५ कणगा १६ कणगप्पभा॥
२/५/२/२

पुण्णोवि पइदिणं जह, हायंतो सव्वहा ससी नस्से।
तह पुण्ण चरित्तो वि हु, कुसील संसग्गिमाईहिं॥
१/१०/६/२

पुव्विं अक्खित्ता, माणुसेहिं साहट्ठरोमकूवेहिं।
पच्छा वहंति सीयं, असुरिंदसुरिंदनागिंदा॥
१/८/२१४/१

फासिंदिय-दुद्दंतत्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो।
जं खणइ मत्थयं कुंजरस्स लोहकुंसो तिक्खो॥
१/१७/३६/१०

फासेसु य भद्दय-पावएसु कायविसयमुवगएसु।
तुट्ठेण व रूट्ठेण व, समणेण सया न होयव्वं॥
१/१७/३६/२०

भव-लंघण-सिव-साहणहेउं भुंजंति ण गेहीए।
वण्ण-बल-रूव-हेउं, च भावियप्पा महासत्ता॥
१/१८/६२/५

भोगे अवयक्खंता, पडंति संसारसागरे घोरे।
भोगेहिं निरवयक्खा, तरंति संसारकंतारं॥
१/९/४४/२

महुरेहिं निउणेहिं, वयणेहिं चोययंति आयरिया।
सीसे कहिंचि खलिए, जह मेहमुणिं महावीरो॥
१/१/२१३/१

मिच्छत्त-मोहियमणा, पावपसत्ता वि पाणिणो विगुणो।
फरिहोदगं व गुणिणो, हवंति वरगुरूपसायाओ॥
१/१२/४६/१

रसेसु य भद्दसु-पावएसु जिब्भविसयमुवगएसु।
तुट्ठेण व रूट्ठेण व, समणेण सया न होयव्वं॥
१/१७/३६/१६

रूवेसु व भद्दय-पावएसु चक्खुविसयमुवगएसु।
तुट्ठेण व रूट्ठेण व, समणेण सया न होयव्वं॥
१/१७/३६/१७

१७. वडेंसा १८. केउमई चेव, १९ वइरसेणा २० रइप्पिया।
२१. रोहिणी २२. नवमिया चेव, २३. हिरी २४. पुप्फावईवि य॥
२/५/२/३

वरवरिया घोसिज्जइ, किमिच्छियं दिज्जए बहुविहीयं।
सुर-असुर-देव-दाणव-नरिंद-महियाण निक्खमणे॥
१/८/२००/६

२५. भुयगा. २६ भुयगावई चेव, २७. महाकच्छा २८. फुडा य।
२९. सुघोसा ३०. विमला चेव, ३१. सुस्सरा य ३२. सरस्सई॥
२/५/२/२

वाससहस्संपि जइ, काऊणं संजमं सुविउलंपि।
अंते किलिट्ठभावो, न विसुज्झइ कुंडरीउ व्व॥
१/१९/४८/१

विसएसु इंदियाइं रूंभंता राग-दोस-निम्मुक्का।
पावेंति निव्वुइसुहं, कुम्मोव्वं मयंगदहसोक्खं॥
१/४/२३/१

सण सत्तिवण्णा-कउहो, नीलुप्पल-पउम-नलिण-सिंगो।
सारस-चक्काय-रवियघोसो, सरयउऊ गोवई साहीणो॥
१/९/२०/३

सत्ताण दुहत्ताणं, सरणं चरणं जिणिंदपण्णत्तं।
आणंदरूव-निव्वाण-साहणं तह य दंसेइ॥
१/९/५४/५

सहकार-चारूहारो, किंसुय-कण्णियारासोगमउडो।
ऊसियतिल्लग-बकुलायक्तो, वसंतउऊ नवई साहीणो॥
१/९/२०/५

सद्देसु य भद्दय-पावएसु चक्खुविसयमुवगएसु।
तुट्ठेण व रूट्ठेण व समणेण सया न होयव्वं॥
१/१७/३६/१६

संझाणुरागसरिसा सुयमुह-गुंजद्धराग सरिसत्थ केइ।
एलापाडल-गोरा, सामलया-गवलसामला पुणो केइ॥
१/१७/१४/४

संपन्नगुणो वि जओ, सुसाहु-संसग्गवज्जिओ पायं।
पावइ गुणपरिहाणिं, दद्दुरजीवोव्व मणियारो॥
१/१३/४५/१

सारस्सवमाइच्चा, वण्ही वरुणा य गद्दतोया य।
तुसिया अव्वाबाहा, अग्गिच्चा चेव रिट्ठा य॥
१/८/२०२/१

सासे कासे जरे दाहे, कुच्छिसूले भगंदरे।
अरिसा अजीरए दिट्ठी-मुदसूले अकारए॥
अच्छिवेयणा कण्णवेयणा कंडू दउदरे कोढे॥ १/१३/३०/६

सिढिलय-संजम-कज्जा वि, होइउं उज्जवंति जइ पच्छा।
संवेगाओ ते सेलओ व्व आराहया हाेंति॥
१/५/१३०/१

सियकुंद-धवलजोण्हो, कुसुमिय-लोद्धवगसंड-मंडलतलो।
तुसार-दगधार-पीवरकरो, हेमंतउऊ ससी सया साहीणो॥
१/९/२०/४

सिवसाहणेसु आहार-विरहिओ जं न वट्टए देहो।
तम्हा धणो व्व विजयं, साहू तं तेण पोसेज्जा॥
१/२/७७/१

सुबहु वि तव-किलेसो, नियाण-दोसेण दूसिओ संतो।
न सिवाय दोवईए, जह किल सूमालिय-जम्मो॥
१/१६/३२७/१

सुरगोवमणि-विचित्तो, दद्दुरकुलसिय-उज्झरवो।
बरहिणवंद-परिणद्धसिहरो, वासारत्तउऊ पव्वओ साहीणो॥
१/९/२०/२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सो अप्पहिएक्करई, इहलोयम्मिवि विऊहिं पणयपओ।
एगंतसुही जायइ, परम्मि मोक्खंपि पावेइ ॥

१/७/४४/१०

सोइंदिय-दुद्दंतत्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो।
जं जलणंमि जलंते, पडइ पयंगो अबुद्धीओ ॥

१/१७/३६/२

सो इह चेव भवम्मि, जणाण धिक्कार-भायणं होइ।
परलोए उ दुहत्तो, नाणा जोणीसु संचरइ ॥

१/७/४४/४

सो इह संघप्पहाणो, जुगप्पहाणोत्ति लहइ संसद्दं।
अप्प परेसिं कल्लाण-कारओ गोयमपहुव्व ॥

१/७/४४/१३

सो एत्थ जहिच्छाए, पावइ आहारमाइ लिंगित्ता।
विउसाण नाइपुज्जो, परलोयंसी दुही चेव ॥

१/७/४४/७

हरिरेण-सोणिसुत्तग-सकविल-मज्जार-पायकुक्कुड-वोंडसमुग्गयसामवण्णा।
गोहूमगोरंग-गोरपाडल-गोरा, पवालवण्णा य धूमवण्णा य केइ ॥

१/१७/६४/१

हीणगुणो वि हु होउं, सुहगुरुजोगाइ-जणियसंवेगो।
पुण्णसरूवो जायइ, विवद्धमाणो ससहरोव्व ॥

१/१०/६/४

हेऊदाहरणासंभवे य, सइ सुटठु जं न बुज्झेज्जा।
सव्वण्णुमयमवितहं, तहावि इइ चिंतए मइमं ॥

१/३/३५/४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-३

वर्णकवाची आलापक

वर्णक शब्द सूचित पाठ	वर्ण्य विषय	ज्ञातधर्मकथा के वर्णक आलापक
औपपातिक सूत्र सूत्र १	नगर वर्णन	१/१/१, १/१/१२, १/२/२, १/३/२, १/४/२, १/५/५०, १/१५/४, १/१६/१२०, १/१७/२, १/१८/२, २/१/१, २/१/१५
औपपातिक सूत्र सूत्र २	यक्षायतन वर्णन	१/५/५
औपपातिक सूत्र सूत्र २-१३	चैत्य वर्णन	१/१/२, १/१/१३, १/२/३, २/१/३
औपपातिक सूत्र सूत्र १४	नृप वर्णन	१/१/३, १/१/१४, १/१५/५, १/१६/१२१, १/१६/१६२, १/१६/२६६, १/१७/३
औपपातिक सूत्र सूत्र १५	रानी-वर्णन	१/१/१५
ज्ञात० १/२/६	कच्छ-वर्णन	१/३/४, १/४/५
ज्ञात० १/३/३	उद्यान-वर्णन	१/५/५०
ज्ञात० १/५/४७	श्रावक-वर्णन	१/८/६५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-४

विशेष शब्दानुक्रमणिका

अंक	रत्नविशेष	१/१/३३
अंकण	अंकन	१/१७/३३
अंकधाई	अंकधात्री (पांच धाय माताओं में से एक)	१/१/८२
अंकुसय	अंकुश	१/५/८०
अंगण	आंगन	१/५/३६
अंगय	आभूषण विशेष	१/१/१२८
अंगारक	मंगल	१/१/५६
अंगुलिया	अंगुली	१/८/७४
अंगुलेज्जग	अंगूठी	१/१/२४
अंजण	काला पत्थर, काला सुरमा	१/१/५६, १/१६/२०
अंतकरभूमि	निर्वाणभूमि	१/८/२३३
अंतगमण	समाधान	१/१/४८
अंतर	मध्यवर्ती लोहस्तम्भ	१/१/१८
अंतरावण	मार्गवर्ती दूकान	१/१२/१६
अंतरिया	भीतरी भाग	१/१/२८
अंतलिक्ख	अंतरिक्ष	१/१/५७
अंतेवासि	शिष्य (गुरु के निकट रहने वाला)	१/१/४
अंदु	शृंखला	१/३/२४
अंबधाई	धायमाता	१/१/१३३
अंस	कन्धा	१/१८/३५
अंसु	अश्रु	१/१/१२७
अंसुय	वस्त्रविशेष	१/१/३३
अइअट्टिज्जमाण	पानी के प्रवाह से पुनः आक्रान्त होती हुई	१/६/१०
अइक्कंत	अतिक्रान्त	१/१/४६
अइगच्छमाण	आता हुआ	१/१/१५३
अइगमण	प्रवेशमार्ग	१/२/११
अइगय	आगे निकल जाना	१/१/१६०
अइजागरय	अतिजागरण	१/१६/३६
अइभद्दय	अतिभद्र	१/१६/१८५
अइया	बकरी	१/१/१५६
अइवइत्ता	छोड़कर	१/६/४
अइवयंत	प्रविष्ट होते हुए	१/१/१६
अइवयमाणी	नाश करने वाली	१/५/२३
अकंत	अकमनीय	१/१/१०५
अकामक	अनिच्छापूर्वक	१/१/११४
अकारय	अरुचि	१/१३/२८
अक्कंत	आक्रान्त	१/१३/४१
अक्खा	नाम	१/७/४४
अक्खयणिहि	स्थायी कोष	१/२/१२
अक्खित्त	प्रलोभन देकर उड़ा देना	१/२/२६
अक्खोड़	खींचना, पछाड़ना	१/४/११
अगड	कूप	१/८/१५४
अगढिय	अग्रथित	१/१७/२४
अगरु	अगर (गंधद्रव्य)	१/१७/३६
अगारवास	गृहवास	१/८/२३५
अगिलाए	अग्लान भाव से	१/१/२०७
अग्गिच्च	आग्नेय (लोकान्तिक देव)	८/२०२
अग्गिमाणव	उत्तरदिग्वर्ती इन्द्र	२/४/८
अग्गिसामण्ण	अग्नि के स्वामित्व वाला	१/१११
अग्गिसाहिय	अग्नि से जला सकने योग्य	१/१/१११
अग्गुज्जाण	प्रधान उद्यान	१/८/८१
अग्घायमाणी	सूंघती हुई	१/१/६७
अचक्खुफास	अन्धकार	१/१४/७८
अचोक्ख	खराब	१/८/१६
अच्चासन्ने	अतिनिकट	१/१/६६
अच्चि	रश्मि	१/१/८६
अच्चुय	अच्युत, बारहवां देवलोक	१/१/२११
अच्छ	स्वच्छ	१/१/१८
अच्छ	भालू	१/१/१७८
अच्छणघरय	आसनगृह	१/३/१६
अच्छर	अप्सरा	१/५/३
अच्छि	आंख	१/१/१५३
अच्छिद्द	सलवटरहित	१/१/१५६
अजाइय	अयाचित	१/५/७३
अजीरय	अजीर्ण	१/१३/२८
अज्जय	पितामह	१/१/११०
अज्जव	ऋजुता	१/१/४
अज्झत्थिय	आन्तरिक	१/१/४८
अज्झोववण्ण	तद्विषयक एकाग्रता को प्राप्त	१/२/२८
अटिट्टियाविज्जमाण	न बजाना	१/३/२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्टज्झाण	अशुभध्यान	१/१/३४	अप्प	आप्त	१/२१३
अट्टणसाला	व्यायामशाला	१/१/२४	अफासुय	अप्रासुक (जीवसहित)	५/७३
अट्ठिय	हड्डि	१/८/२५	अबहिलेस्स	आत्मोन्मुख भावधारा वाला	१/१६४
अट्ठमभत्त	तेला (लगातार तीन दिन का उपवास)	१/१/५३	अब्भंग	मर्दनद्रव्य	१/१/२४
अड्ढ	आढ्य, समृद्ध	१/२/७	अब्भणुण्णाय	अनुज्ञा प्राप्त	१/१/१६
अणइक्कमणिज्ज	अविचलनीय	१/५/४७	अब्भितरठाणिज्ज	अन्तरंग	१/१२/३०
अणंगसेणा	गणिका का नाम	१/५/६	अब्भुक्खेइ	अभिसिंचन करना	१/२/१४
अणगार	साधु	१/१/४	अब्भुग्गय	मेघ का उमड़ना	१/१/३३
अणधारग	कर्जदार	१/१८/२१	अब्भुज्जय	मेघ का विस्तार पाना	१/१/३३
अणवयग्ग	अनन्त	१/३/२४	अब्भुट्ठिय	मेघ का वर्षा हेतु तत्पर होना	१/१/३३
अणह	निष्कलंक	१/८/६७	अब्भुण्णय	झुका हुआ मेघ	१/१/३३
अणागलिय	दुर्निवार	१/८/२०	अभक्खेय	अभक्ष्य	१/५/७३
अणाढायमाण	आदर न देते हुए	१/१/३६	अभिरुइय	रुचिकर	१/१/१०२
अणिमिस	निर्निमेष	१/३/१८	अभिरूव	कमनीय	१/१/१०
अणिय	सेना	१/८/२०२	अभिमुह	सामने	१/१/७
अणियाण	पौदगलिक समृद्धि का संकल्प न करना	१/१/१६४	अभिसरमाण	सरकता हुआ	२/१२
			अमइल	अमलिन	१६/१८५
अणुगच्छ	अनुगमन करना	१/१/६६	अमणाम	अमनोहर	१/१०५
अणुगिलिता	निगलकर	१/७/८	अमणुण्ण	अमनोज्ञ	१/१/१०५
अणुणाण	अनुमोदना करना	१/२/१३	अमित्त	शत्रु	१/४/७७
अणुपत्त	प्राप्त	१/३/२६	अयसि	कुसुम विशेष	१/५/१०
अणुमग्गजाइया	अनुजा	१/१८/५	अरिस	अर्श	१/१३/२८
अणुमग्गजायय	अनुज	१/८/११५	अलंकारियकम्म	हजामत	१/२/५८
अणुरसिय	गरजना	१/५/१३	अलंकारियसभा	सौन्दर्य प्रसाधन गृह	१/२/५८
अणूण	परिपूर्ण, अन्यून	१/८/१६८	अलेवाड	अलेपकृत	१/८/२२
अणेगखंडि	अनेक खंडों वाली	१/१८/१८	अल्ल	गीला (आर्द्र)	१/१८/३५
अतत्थ	अत्रस्त	१/८/७३	अल्लीण	सुव्यवस्थित	१/१/१५६
अत्तए	पुत्र	१/१/१५	अवथद्ध	अवष्टब्ध	१/१८/५१
अतित्थ	घाटरहित	१/१/१६०	अवद्दहण	अपदहन (रोग प्रतिकार हेतु रुग्ण अंग पर डाम लगाना)	१/१३/३०
अत्थरय	प्राचीन समय की चादर	१/१/१८			
अत्थोग्गह	अर्थ का अवग्रहण	१/१/२०	अवदालिय	चौड़ा होना	१/१/१५६
अथाम	अशक्त	१/१६/२१	अवबार	अपद्वार (पीछे की खिड़की, दरवाजा)	१/२/११
अदूरसामंत	न दूर न पास	१/१/६	अवमद्दक	अवमर्दक, नाशक	१६/१६३
अद्धट्ठ	साढ़े तीन	१/५/६	अवयास	आलिंगन	१/२/६६
अणिण्हवमाण	अपलाप न करते हुए	१/१/४८	अवरिल्ल	अपरीय (पश्चिम दिशा वाला)	१/८/२०
अभिज्जमाण	पीछा किया जाना	१/१६/२६	अवसवस	विवशता से	१/१६/५३
अपक्खेवग	जिसका पाथेय मार्ग में समाप्त हो गया	१/१५/६	अवहिय	अपहृत	२/२८
			अवितह	सत्य	१/१/२१
अपत्थयण	पाथेय रहित	१/१५/६	अवियाउरी	अप्रजननशीला	१/२/८
अपरिणाणिज्जमाणी	उपेक्षित होती हुई	१/१/३६	असंपुडिय	खोलकर	१/१/१५६
अपरियाणमाणी	ध्यान न देती हुई	१/१/३६	असण	भोजन	१/१/३०
अपाणय	निर्जल	१/८/२२२	असिणिद्ध	स्नेहरहित	१/८/७२
अपूइ	अपरिवर्तनीय	१/१६/३००	असिय	दात्र	१/७/१५
अपेसे	प्रेष्यरहित	१/१४/७८	असिलट्ठि	नंगी तलवार	१/१८/३५
अपोरिसिय	पुरुष प्रमाण से अधिक गहरा	६/४	असिलिट्ठ	एक दूसरे से अलग	१/८/७२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असुयपुव्व	जिसे पहले नहीं सुना	१/१/१०५
असोग	अशोक वृक्ष	१/५/१०
अस्सायणिज्ज	स्वाद लेने योग्य	१/१२/४
अहय	नवीन	१/१/२४
अहाकल्प	कल्प के अनुसार	१/१/१६८
अहापडिरूव	प्रवास योग्य	१/१/४
अहेलोय	अधोलोक	१/८/३५
आइक्खग	शुभाशुभ बताने वाला	१/१/७६
आइणग	चर्मवस्त्र	१/१/१८
आउसइ	गाली देना	१/१८/८
आओग-पओग	लेन-देन	१/२/७
आघयण	वधस्थान	१/६/२५
आघवण	आख्यान	१/१/११२
आडोलिया	खिलौना, गिल्ली	१/१८/८
आणत्तिय	आज्ञा	१/१/२३
आणिल्लिय	आनीत, लाई हुई	१/१/६०
आमग	अपक्व, कच्चा	१/६/१०
आमिस	मांस	१/२/११
आयय	लम्बा	१/१/१५६
आयवत्त	छत्र	१/१/१३४
आयविय	परिकर्मित	१/१/१८
आयारभंडग	धर्मोपकरण	१/१६/३८
आरण	ग्यारहवां देवलोक	१/१/२११
आराहग	स्वीकृत साधना का पालन करने वाला	१/११/२
आरोय	नीरोगता	१/८/३४
आलिंप	भिगोना	१/५/६१
आलीवग	आग लगाने वाला	१/२/११
आलुंप	नोचना	१/४/११
आवण्णसत्ता	गर्भवती	१/२/१६
आवया	विपदा	१/८/२५
आवसह	मठ	१/५/५२
आस	अश्व	१/८/४२
आस	मुंह	१/८/१७७
आसभद्दय	अश्वप्रशिक्षक	१/१७/३२
आसवाणियय	घोड़ों का व्यापारी	१/६/२६
आसुरुत्त	क्रोध से तमतमाना	१/२/५७
आहारवक्कंति	मनुष्यभव योग्य आहार का ग्रहण	१/८/२८
आहेवच्च	आधिपत्य	१/१/११८
इंगालसगडिया	कोयलों से भरी गाड़ी	१/१/२०२
इंदगोवक	वीरवधूटी	१/१/३३
इंदमह	इन्द्रमहोत्सव	१/१/६६
इंदाउह	इन्द्रधनुष	१/१/३३
ईसत्थ	इषु अस्त्र, एक कला	१/१/८५
ईहावूह	अर्थ की समालोचना व निश्चय	१/१/१६
ईहामिय	भेड़िया	१/१/३५
उंदुर	चूहा	१/८/७२
उक्कंचण	अधिक मूल्य के लिए गुणहीन वस्तु का गुणोत्कर्ष दिखाना	१/२/११
उक्कर	करमुक्त	१/१/७८
उक्खेवय	बांस का पंखा	१/१/१०६
उग्गय	उत्कीर्ण	१/१/१८
उच्चार	मल	१/१/१०६
उच्चारेत्ता	उच्चारण करके	१/१/२११
उच्छंग	गोद	१/२/१२
उच्छायणया	उत्सादन	१/१८/१६
उच्छूढसरीर	लघिमा ऋद्धि सम्पन्न	१/१/४
उज्झर	झरना	१/१/३३
उत्तरपुरत्थिम	ईशानकोण	१/१/२
उत्तरिज्ज	उत्तरीय पट	१/१/२४
उत्तरिए	श्रेष्ठ	१/८/२११
उत्तरिल्ल	उत्तर दिशा से संबंधित	१/८/२१४
उत्तासणय	उत्त्रास देने वाला	१/२/६७
उदगवत्थि	मशक	१/१८/३६
उद्धुव्वमाण	डूलाते हुए	१/१३/४०
उप्पुय	भयभीत	१/६/२०
उरब्भ	भेड़िया	१/१/३३
उल्लंबण	फांसी	१/२/७६
उल्लोय	चन्दोवा	१/१/१८
उवगूहिय	आलिंगन	१/६/४१
उवट्ठाणसाला	सभामण्डप	१/१/२२
उवप्पयाण	गृहीत धन को लौटाना	१/१/१६
उवस्सय	उपाश्रय	१/१४/५३
उवाइयं	मनौती	१/२/१२
उवाहण	जूता	१/१५/६
उवीलेमाण	उत्पीड़ित करता हुआ	१/१८/२२
उव्वलण	औषधियों का लेप	१/१/२४
उसभ	बैल	१/१/२५
उसीस	तकिया	१/७/६
उस्सीसामूल	सिरहाने	१/१/१२५
उस्सुंक	शुल्कमुक्त	१/१/७८
उस्सेह	ऊंचाई	१/१/६
ऊसविय	ऊंचा	१/१/२०
एकल्ल	एकाकी	१/१/१५७
एगंतदिट्ठिय	एकाग्रदृष्टि	१/१/११२
एगंतधाराय	अर की भांति एकांत धार वाला	१/१/११२
एगजाय	एकाकी	१/५/३५
एगट्ठिया	नौका	१/१६/२८२
एगावलि	एकावलि (आभूषण विशेष)	१/१/१२८
एडइ	फेंकना	१/१६/७४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एडण	उत्सर्जन	१/१६/१४
एरंडसगडिया	एरंड की लकड़ियों की गाड़ी	१/१/२०२
एला	ईलायची	१/१७/१४
ओइण्ण	धंस जाना	१/१/१६०
ओएल्ल	(धार) कुंठित होना	१/१४/७३
ओग्गह	स्थान	१/१/४
ओचूलग	नीचे लटकता हुआ	१/१६/२६४
ओणय	झुका हुआ	१/१/३३
ओमंथिय	नीचे की ओर झुका हुआ	१/१/३४
ओयंसी	ओजयुक्त	१/१/४
ओसंभित्ता	घेरकर	१/८/१६७
ओरोह	अन्तःपुर	१/८/५
ओलंडण	लांघना	१/१/१८६
ओलुग्ग	रुग्ण	१/१/३४
ओवयण (दे.)	जलाभिषेक	१/१/६०
ओवाहण	उत्पाटन	१/१६/६६
ओवाय	उपपात	१/१६/२०६
ओसारिय	निनादित	१/१८/३५
ओहीरमाणी	ऊंघती हुई	१/१/१८
कंचण	सोना	१/१/८६
कंठाकंठिय	गले मिलकर	१/२/६६
कंडिंतिया	ओंखल कूटने वाली	१/७/२६
कंडूइत्ता	खुजलाकर	१/१/१८१
कंत	कमनीय	१/१/१६
कंदरा	गुफा	१/१/१५८
कंदल	पुष्पविशेष	१/१/३३
कंदिय	क्रन्दन	१/१/१५६
कच्छ	सजलप्रदेश	१/१/६५
कट्ठकम्म	काष्ठ पुतलियों का निर्माण कार्य	१/१३/२०
कट्ठसगडिया	ईंधन से भरी गाड़ी	१/१/२०२
कडग	मेखला	१/१/१५८
कडगपल्लल	मेखला स्थित जलाशय	१/१/१५८
कडिसुत्त	करधनी	१/१/२४
कणयालि	लोहस्तम्भ	१/१/१८
कणेरु	हथिनी	१/१/१६५
कब्बड	कुनगर	१/१/११८
कम्मिया	कार्मिकी बुद्धि	१/१/४६
कयवर	कचरा	१/१/१५६
कर	सूंड	१/१/१५६
करयल	हथेली	१/१/१७
करोडिय	कापालिक	१/८/१६८
कलंब	कदम्ब कुसुम	१/१/१६
कलभ	तीस वर्ष का हाथी	१/१/१५७
कला	अंश	१/८/६०
कलाय	स्वर्णकार	१/८/१०६
कविकच्छु	खुजली पैदा करने वाली वनस्पति	१/१६/५२
कस	चाबुक	१/२/३३
कहकहग	कथा करने वाला	१/१/७६
काउड्डावण (दे.)	शरीराकर्षण	१/१४/४३
कागिणी	काकिणी रत्न	१/१/८५
कारंडग	बतख	१/१/३३
कारवाहिय	कर पीड़ित, सेवा में व्यापृत	१/१/१४३
कालधम्म	मृत्यु	१/१/१६६
कालियवाय	तूफान	१/६/६
कास	खांसी	१/१३/२८
कासवय	मुद्रा	१/१/१२१
कसाइ	गेरूआ रंग	१/१/२४
कासीस	रांगा	१/१७/१४
किंसुय	पलाश	१/१/२४
किच्छ	संकट	१/८/१६५
कीलावणग	खिलौना	१/३/१६
कुंजर	हाथी	१/१/२५
कुक्कुडिया	मुर्गी	१/३/१६
कुडंग	(वेणुवन के समान) आश्रयभूत	१/१८/२१
कुड्ड	भींत	१/१६/७०
कुडुम्ब	सामुदायिक कार्य	१/१/१६
कुडुम्बजागरिया	कुटुम्ब की चिन्ता से नींद उचट जाना	१/१/१६
कुत्तियावण	दुकान, जहां हर वस्तु मिले	१/१/१२१
कुम्मग	कछुआ	१/४/७
कुस	डाभ	१/२/६
कुहर	खोह, दो पर्वतों का मध्यवर्ती अन्तराल	१/१/१५८
कूड	नीचे से चौड़ा, ऊपर से संकीर्ण वृत्ताकार पर्वत	१/१/१५८
कूड	तोलमाप की न्यूनाधिकता	१/२/११
कूल	तट	१/८/१५४
कूव	खोजना	१/१६/२०६
कूवमाण	क्रन्दन करता हुआ	१/६/२५
कुसुमासव	मकरन्द	१/१/३३
कूवियबल	चोर गवेषक सेना	१/१८/८
केउ	पताका	१/१/२०
केक्काइय	केकारव	१/३/३२
केयइपुड-	केतकीपुट (गंधद्रव्य)	१/१७/२२
केयार	खेत	१/७/१०
कोट्टिमतल	पक्का आंगन	१/१/१८
कोट्ठागार	धान्यगृह	१/७/७
कोकंतिय	लोमड़ी	१/१/१७८
कोज्जय	पुष्पविशेष	१/८/३०
कोडंबियपुरिस	आदेश को क्रियान्वित करने वाला	१/१/२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोढ़	कुष्ठ	१/१३/२८	गणेत्तिया (दे.)	कलई पर पहनने की रुद्राक्ष माला	१/१६/१८५
कोप्पर	कुहनी	१/२/२३	गहतोय	लोकान्तिक देव	१/८/२०२
कोत्थ	उदरदेश	१/१/१६५	गब्भघर	तलघर	१/८/४०
कोमुइरयणिसर	शरद ऋतु का चन्द्रमा	१/१/१७	गब्भेल्लग (दे.)	पोत के भीतर रहने वाले परिचारक	१/१७/६
कोयव (दे.)	रजाई	१/१७/२२	गमणपयार	जाने की त्वरा	१/१/५६
कोरेंट	कटसरैया के फूल	१/१/२४	गमणी	विद्या का एक प्रकार	१/१६/१८५
कोल	सूअर	१/१/१७८	गयकलभय	हाथी का बच्चा	१/१/१६३
खंडरक्ख	अनधिकृत भूमि पर अधिकार करने वाला	१/१८/२१	गयाणीअ	गजसेना	१/१/३३
			गरुल	गरुड़	१/५/४७
खंडाखंडि	टुकड़ा-टुकड़ा	१/६/४३	गलत्थल्ल (दे.)	गले में बांह डालकर्	१/६/४२
खंडिय	छात्र	१/१/१४३	गलय	गला	१/१७/२७
खंतिखम	समर्थ होने पर भी क्षमा करने वाला	१/१/१६४	गल्ल	नीरोग, स्वस्थ	१/५/११६
खंधावार	सेना का पड़ाव (छावनी)	१/८/१५८	गवेलग	भेड़	१/२/७
खग्ग	गेंडा	१/५/३५	गवेसण	व्यतिरेकधर्म का पर्यालोचनपूर्वक निर्णय	१/१/१६
खणि	खान	१/७/४४	गामकंटग	इन्द्रियविषय	१/१/११२
खण्णुय (दे.)	ठूंठ	१/२/६	गालावेत्ता	छनवाकर	१/१२/६
खत्त (दे.)	भींत	१/१८/२२	गाह	मगर विशेष	१/४/४
खत्तखणग	भींत फोड़कर चोरी करने वाला	१/१८/२१	गिद्ध	आकांक्षावान	१/२/२८
खरमुहि	वाद्य विशेष	१/१/३३	गुल	गुड़	१/८/६६
खरय	कठोर	१/६/३२	गेवेज्ज	ग्रैवेयक, गले का आभूषण	१/१/२४
खिंखिणिया	क्षुद्रघण्टिका, घुघुरू	१/१/५७	गोयर	चरागाह	१/१७/१५
खिंसा	कुत्सा	१/८/१४६	गोरस	दूध	८/६६
खिंसणिज्ज	तिरस्कार योग्य	१/३/२४	गोहूम	गेहूं	१७/१४
खिज्जणा	रोष	१/१८/१४	घंस	संघर्षण	१/१/१५६
खिज्जिय	नाराजगी	१/८/४१	घट्ठ	घिसा हुआ	१/१/१८
खीराइय	दूधिया द्रव रस पैदा होना	१/७/१४	घडिअ	मित्र	१/२/६५
खुइ	चिह्न	१/२/२६	घुघुयंत (दे.)	धू-धू शब्द करते हुए	१/८/७२
खुड्डय	मुद्रिका	१/१/३३	घूय	उल्लू	१/८/७२
खुड्डाग (दे.)	छोटा	१/७/१०	चंपग	पुष्पविशेष	१/१/३३
खुत्त (दे.)	निमग्न	१/१/१६०	चक्काग	चकवा	१/१७/१४
खुम्मिय (दे.)	मोच खाकर	१/१/१०५	चच्चा (दे.)	चन्दन आदि से चर्चित करके	१/१/१२७
खुर	क्षुर	१/१/११२	चडगर (दे.)	टुकड़ी	१/१/६७
खुल्लए	कपर्दिका	१/१८/७	चमर	चमरी गाय	१/१/२५
खेडग	ढाल	१/६/१६	चमू	सेना	१/१/१४३
खेल	कफ	१/१/१०६	चाउग्घंट	चार घण्टाओं वाले	१/१/६८
खोभ	क्षोभ	१/४/११	चार	कारागृह	१/२/३६
गंठिभेयग	गिरहकट	१/१८/१८	चारगसाला	कारागृह	१/२/३४
गंड	कपोल	१/१/१७	चास	चाष पक्षी	१/१/३३
गंथिम	जो गूंथकर बनाई जाए	१/१३/२०	चिंध	चिह्न	१/८/७२
गंधट्टय	गात्रोद्वर्तन	१/१६/७८	चिकुर	रागद्रव्य	१/१/३३
गंधवट्टि	गन्धवर्तिका	१/१/१८	चियाय	त्याग	१/८/१८
गंभीरय	गंभीरक नामक बन्दरगाह	१/८/६६	चिलिण	आर्द्र	१/१/१०५
गज्जिय	गाजना	१/१/३३	चिल्लग (दे.)	चमकता हुआ	१/१६/१६३
गणग	लेखापाल	१/८१	चिल्लल	कीचड़युक्त जलस्रोत	१/१/१५८
गणिम	गणनीय, गणना कर दिए जाने वाले	१८/६६	चेड	सेवक	१/१/८१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चेलपेडा	वस्त्रमंजूषा	१/१/१७	डोहल	दोहद, घनीभूत इच्छा	१/८/३०
चोक्ख	पवित्र	१/१७/१२	णंदि	आनन्द	१/१/१०६
चोरसाहिय	चुरा सकने योग्य	१/१/१११	णट्टग	नर्तक	१/१/७६
चोलोवणय	चूलापनयन—शिखाधारण संस्कार	१/१/८३	णाइय	नादित—वाद्य विशेष	१/१/११८
छक्कड	अलिंद	१/१/१८	णेय	ज्ञेय	१/११/१०
छन्नालय	त्रिकाष्ठिका	१/५/५२	णेवत्थि	नेपथ्य	१/१६/२४७
छप्पय	भंवरा	१/१/३३	णोल्लिय	प्रेरित	१/६/४२
छब्भामरी	षड्भ्रमरी वीणा	१/१७/२२	तंत	क्लान्त	१/४/१२
छरुप्पवाय	खड्गशास्त्र	१/१/८५	तक्कर	तस्कर	१/२/११
छाण	गोबर	१/७/२६	तच्छण	क्षुरप्र से त्वचा को पतला करना	१/१३/३०
छिंडी (दे.)	बाड़ के छेद	१/२/११	तणसोल्लिया (दे.)	मल्लिका	१/१६/२५६
छिण्णावाय	आवागमन रहित	१/१५/११	तरच्छ	लकड़बग्घा	१/१/१७८
जइण	तीव्र गति से	१/४/१४	तलवर (दे.)	कोतवाल	१/१/२४
जक्खदेउल	यक्षायतन	१/२/११	तलाय	तालाब	१/१/६६
जच्च	जात्य—उत्तम गुणों से युक्त	१/१२/१६	तलिम (दे.)	शय्या	१/१६/५५
जडुल	जटिल	१/६/२०	तल्लिच्छ (दे.)	लोलुप	१/२/११
जर	जरा	१/१/१४५	तवणिज्ज	सोना	१/१/२४
जल्ल	कोडी से जूआ खेलने वाला	१/१/७६	तहारूव	श्रमणचर्या के अनुरूप वेश वाला	१/१/१६५
जसंसी	प्रख्यात	१/१/४	ताल	वाद्य विशेष	१/१/११८
जाण	यान	१/२/७	तालविंट	ताल बजाने वाले, प्रेक्षाकारी	१/१/७६
जाणय	ज्ञानदाता	१/१/७	तालिय	प्रताड़ित	१/६/१०
जाणुय	चिकित्साशास्त्रज्ञ	१/१३/२२	तिंदूसए	गेंद	१/१८/८
जायरूव	सोना	१/१/५६	तिगिच्छियसाला	आरोग्यशाला	१/१३/२२
जाय	यज्ञ, पूजा	१/२/१२	तित्त	आर्द्र	१/६/४
जाल	झरोखा	१/१/१८	तिलंडासगडिया	तिलंदडों से भरी गाड़ी	१/१/२०२
जाल	ज्वाला	१/१/१५६	तिवलिय	तीन रेखाओं से युक्त	१/१/१७
जासुमण	जपाकुसुम	१/१/२४	तुंड	मुख	१/१/१५६
जिण	ज्ञाता	१/१/७	तुडिग	बाजूबन्ध	१/१/१२८
जुंजिय (दे.)	भूखा	१/१/१८६	तुरुक्क	लोबान	१/१/१८
जुवाणग	युवक	१/३/१०	तूणइल्ल	तूणवादक	१/१/७६
जूयखलए	जूए का अड्डा	१/१८/८	तेयंसि	तेजस्वी, शारीरिक दीप्ति से युक्त	१/१/४
जोइत्ता	जोतकर	१/८/६६	तोण	तूणीर	१/१८/३५
जोण्ह	ज्योत्स्ना	१/६/२०	तेल्लकेल्ला	सौराष्ट्र में निर्मित तेलपात्र	१/१/१७
जोह	योद्धा	१/१/६३	थंडिल	स्थण्डिल	१/१६/१६
झय	ध्वज	१/१/२६	थारुगिणिया	परिचारिका विशेष	१/१/८२
झामेत्ता	जलाकर	१/१/१८३	थिमिय	शान्त	१/१५/४
झुसिर	पोलयुक्त	१/२/६	थूभिय	शिखर	१/१/१८
झूसणा	आराधना	१/१/२०४	थेर	स्थविर	१/१/४
झोड़ (दे.)	ठूंठ	१/१२/२	थोर	स्थूल	१/१/१५६
टंक	एक दिशा में छिन्न पर्वत	१/१/१५८	थोवय	चातक	१/१/३३
टिट्टिय (दे.)	टि टि की आवाज सिखाना	१/३/२१	दउदर	जलोदर	१/१३/२८
डंक (दे.)	डंक	१/१६/५२	दगरय	जलकण	१/१/३३
डज्झंत	दह्यमान	१/१/१८	दगवारय	झारी	१/२/३७
डालय (दे.)	वृक्ष की डाल	१/३/१८	दंत	शान्त	१/१/१८६
डिंभय	बच्चा	१/२/२५	दप्पणिज्ज	बलवर्धक	१/१/२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दब्भसंथार	डाभ का बिछौना	१/१/५३
दह	सरोवर	१/१/१६१
दाइय	हिस्सेदार	१/५/४५
दाम	माला	१/१/१८
दाय	पर्व दिन में दिया जाने वाला धन	१/२/१२
दारग	पुत्र	१/३/६
दित्त	उन्मत्त	१/१/१५६
दिसीभाअ	कोण	१/१/२
दीवणिज्ज	अग्निदीपन करने वाले	१/१/२४
दीविय	चीता	१/१/१७८
दुगूल	वस्त्र	१/१/३३
दुद्धरिस	अपराजेय	१/५/३५
दुरुय (दे.)	दुर्गन्धित	१/१/१०६
दुहट्ट	दुःख से आर्त	१/१/१५४
दूमिय	धवलित	१/१/१८
दूसरयण	उत्तम वस्त्र	१/१/२४
देवउल	देवालय	१/२/४
दोच्च	दौत्य कर्म	१/८/५८
धंत	अग्नि	१/१/३३
धणिय	सुदृढ़	१/१/१४३
धरिम	तोलकर दिए जाने वाले	१/८/६६
धाऊवल	गेरू से रंगा हुआ	१/१/१८
धूवकडुच्छुय	धूपदानी	१/८/५५
नउल	नेवला	१/८/७२
नंगालिय	किसान	१/१/१४३
नंगूल	पूंछ	१/१/१५६
नगर	नागरिक	१/१/२४
नगरगुत्तिय	नगर आरक्षी	१/२/३१
नगरनिद्धमण	नगर-नाला	१/२/११
नत्था	नथिनी	१/३/१०
नदुल्लग (दे.)	नाटक	१/३/२७
नय	नीति/नैगम आदि नय	१/१/६४
नरसिरमाल	नरमुण्डमाला	१/८/७२
नवतय	रोएंदार प्रावरण	१/१/१८
नहयल	आकाशपथ	१/१/१८
नायय	नायक	१/१/१५७
नायय	स्वजन	१/२/६५
नावा	जहाज	१/८/६७
नावावाणियग	पोतवणिक	१/८/६४
निक्क	भलीभांति	१/१/१२५
निक्किट्ठ	म्यान से खींची हुई	१/१८/३५
निगम	व्यापारी	१/१/२४
निगुंजमाणी	झुकी हुई	१/६//१०
निघस	कसौटी	१/१/६
निच्चल	निश्चल	१/२/२८
निज्जामय	नाविक	१/१७/६
निज्जूह	द्वार पर लगी काष्ठपट्टिका	१/१/१८
निडाल	ललाट	१/८/७२
नित्थाण	बेघर	१/१८/२२
निब्बुड्ड	निमग्न	१/६/२६
निम्मंस	कृश	१/१/३४
नियत्थ (दे.)	पहनना	१/१/६५
नियम	विचित्र प्रकार के अभिग्रह	१/१/६४
निरस्साय	निःस्वाद	१/१/११२
निल	पवन	१/६/२०
निल्लुक्क	रुक जाना	१/८/२२१
निव्वाय	निर्वात	१/१/८२
निव्वुइयर	आल्हादकर, शांतिप्रद	१/१/१८
निव्वोल (दे.)	डुबोना	१/८/७४
निव्विण्ण	उदास	१/४/१२
निसट्ठ	समर्पित	१/१/१६१
निसढ़	निषध पर्वत	१/८/२
निसिरण	परिष्ठापन	१/१६/२२
नीव	कदम्ब	१/१/२०
नोल्लयंत	उखाड़ता हुआ	१/१/१५६
पउत्ति	वृत्तान्त	१/२/२६
पंचयण्ण	पाञ्चजन्य (शंख)	१/१६/२७५
पंजलिउड	बद्धांजलि	१/१/७
पंडुर	श्वेत	१/१/१५६
पग्गह	पशुओं को बांधने की डोरी	१/३/१०
पच्चत्थिम	पश्चिम	१/८/२
पच्चय	विश्वास	१/१/१६
पच्चावरण्ह	सन्ध्या के बाद का समय	१/१/१५२
पच्चावाय	विघ्न	१/६/५
पच्चूसकाल	प्रभातकाल	१/१/२२
पच्छण	त्वचा को विदीर्ण करना	१/१३/३०
पज्जय	प्रपितामह	१/१/१११
पट्ठवय	कार्यनियोजक	१/१/१५७
पडलग	पटल (पुष्पपटल)	१/८/५५
पडिग्गह	पात्र	१/१/१२१
पडिभंड	दूसरा माल	१/८/८४
पडिरूव	असाधारण	१/१/१७
पडीणा	पश्चिम दिशा	१/५/२
पणिअ	दांव	१/३/३३
पत्थयण	पाथेय	१/१५/६
पब्भार	कुछ झुके हुए पर्वत	१/१/१०५
पम्हल	नेत्ररोम की तरह रोएं वाला	१/१/१८
पम्हुट्ठ	विस्मृत होना	१/८/१८०
पयणु	हल्का	१/१/२०६
पयमग्ग	पदचिह्न	१/२/३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परज्झ	पराधीन	१/२/४५
परद्ध	पीड़ित	१/१/१६०
परहुअ	कोकिल	१/१/२४
परासर	शरभ	१/१/१७८
परिगीय	संगीत	१/१/७६
परिधाड़ेमाण (दे.)	दौड़ता हुआ	१/१८/४६
परिपेरंतेणं	परिपार्श्व में	१/४/७
परिमास (दे.)	नौका का काष्ठ	१/६/१०
परिवसावेत्ता	परिवासित करवाकर	१/१२/१६
परिवेसंतिया	परोसने वाली	१/७/२६
परिसा	परिषद	१/१/५
परिसामिय	श्यामल	१/१/३३
परुन्न	जोर-जोर से रोना	१/१८/५०
पलिच्छन्न	चारों ओर से आवृत्त	१/२/६
पल्ल	गोल आकार का धान्य रखने का पात्र	१/१/१५८
पल्लल	तलाइ	१/१/१५८
पल्लोट्ट	घुमाव	१/१/३३
पवग	प्लवक, छलांग भरने वाला	१/१/७६
पवहण	यान	१/३/११
पवा	प्याऊ	१/२/११
पसंग	आसक्त	१/२/११
पसव	जन्मप्रसंग	१/२/११
पसिण	प्रश्न	१/१/१५४
पसेणि	अवान्तर श्रेणी	१/१/७८
पहकर (दे.)	समूह	१/१/३३
पहिट्ठ	हर्षातिरेक का अनुभव करना	१/६/४३
पाउग्ग	प्रायोग्य	१/१/१२५
पाउणित्ता	पालन कर	१/२/७३
पाउप्पभाय	पौ फटना	१/१/२४
पागड्डि	अग्रगामी	१/१५७
पाडिहेर	प्रातिहार्य	१/८/४४
पाणधरय	मदिरालय	१/१८/१६
पाय	सूंड	१/१/१७५
पाययजण	सामान्य आदमी	१/१/११३
पायत्ताणीअ	पदातिसेना	१/१/३३
पायमूल	तलहटी	१/१/१५६
पारावय	कबूतर	१/१/२४
पारिच्छेज्ज	परीक्षापूर्वक दिए जाने वाले मणि आदि	१/८/६६
पालंब	झूमका	१/१/२४
पाव	पापी	१/२/११
पास	पाश	१/१७/२७
पासवण	मूत्र	१/१/१०६
पासादीय	चित्त को प्रसन्न करने वाली	१/१/१७
पिउच्छा (दे.)	भूआ	१/१६/२१६
पिट्ठुंडी	चावलों के आटे से बनी पिण्डी	१/३/५
पिणद्ध	पहना	१/१/२४
पीठमद्द	राजा के पास रहने वाला	१/१/२४
पीणणिज्ज	धातुसाम्य करने वाले	१/१/२४
पीणाइय	ढोल (दे.)	१/१/१५६
पुंडपइय	श्वेत पांव वाले	१/१७/१४
पुंडरीअ	श्वेतकमल	१/१/८६
पुट्ठ	पीठ	१/१/१५६
पुलग	रेखा	१/१/६
पुलिण	तट	१/१/१८
पेच्छणधर	प्रेक्षागृह	१/३/१६
पुस्समाणव	मंगलपाठक	१/८/६८
पेलव	मृदु	१/१/३३
पेहुण (दे.)	मयूरांग	१/३/२६
पोच्चड (दे.)	सारहीन	१/३/२२
पोट्ट	पेट	१/१/१८६
पोत्तुल्लए (दे.)	कपड़े से बनी गुड़िया	१/१८/८
पोत्थकम्म	वस्त्र पर चित्रांकन करना	१/१३/२०
पोयग	बच्चा	१/३/१६
पोलंड	बार-बार लांघना	१/१/१५३
पोल्लरुक्ख	जीर्ण वृक्ष	१/१/१५६
फरिहा	खाई	१/१२/३
फलय	पट्टिका	१/१८/३५
फालिय	स्फटिक	१/१२/१६
फुप्फुयायंत	डोलते-फुफकारते हुए	१/८/७२
फेरंड	पर्वकाण्ड	१/७/१४
बंधुजीवग	दुपहरिया	१/१/२४
बरहिण	मयूर	१/१/३३
बहुया	वधू	१/७/४४
बार	द्वार	१/२/११
बालग्गाह	बच्चे को खिलाने वाला	१/१८/७
बूर	वनस्पति विशेष	१/१/१८
बोल	कोलाहल	१/८/६७
भइ	भृति	१/८/१६६
भंडकरंडग	आभरणमंजूषा	१/१/१७
भंडग	किराना	१/८/६५
भंडण	कलह	१/१६/१८५
भंडिवडेंसय (दे.)	उद्यानविशेष	२/८/५
भक्खेय	भक्ष्य	१/५/७३
भद्दिया	भाग्यशालिनी	१/१६/७६
भर	आघात	१/१/१०५
भवणवडेंसग	भवनमुख्य	१/१/२७
भवववक्कंति	मनुष्यभव योग्य गति का संग्रहण	१/८/२८
भाइल्लग	भागीदार	१/२/६०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाय	लाभांश	१/२/१२
भास	भस्म, भाष पक्षी	१/१७/१४
भिंग	भंवरा	१/१/३३
भिंगार	झारी	१/१/१०६
भिसिया	वृषिका, आसन	१/८/१०४
भुंभर (दे.)	सेहरा	१/८/७२
भुक्ख	रूखा	१/५/१०७
भुक्खा	बुभुक्षा	१/१/३४
भोग	फण	१/८/७२
भोयणपिडय	टिफिन	१/२/३७
मउड	मुकुट	१/१/२४
मएल्लिय	मृत	१/१४/३१
मङ्ख	चित्रपट दिखा आजीविका करने वाला	१/१/७६
मंच	पुलिया	१/१/१५८
मंडावणधाई	मंडनधात्री	१/१६/३६
मंदर	मेरुपर्वत	१/१/१४
मंसुय	दाढ़ी	१/६/१६
मंसोवचिय	मांसल	१/१८/६
मग्गण	अन्वयधर्म का पर्यालोचनपूर्वक निर्णय	१/१/१६
मगर	हिंसक जलचर प्राणी	१/४/४
मघमघेंत	महक से उठने वाली	१/१/१८
मच्चुसाहिय	मृत्यु से होने वाली	१/१/१११
मज्जपाणय	मादक पेय	१/१६/२५
मज्जणघर	स्नानगृह	१/१/६५
मट्ठ	चिकना	१/१/१८
मणसीकरेमाण	मानसिक तादात्म्य स्थापित करना	१/१/५३
मणामा	मनोहर	१/१/१६
मणिपेढ़िय	मणिनिर्मित पीठिका	१/८/४०
मयणिज्ज	वीर्यवर्धक	१/१/२४
मरिचि	रश्मि	१/१/८६
मल्ल	माला	१/१/२४
मल्ल	पहलवान	१/१/७६
मल्लिय	मल्लिका, मोगरा	१/८/३०
मसग	मच्छर	१/१/१७
माइय	रींछ के बाल	१/१८/३५
माउआ (दे.)	मूंछ	१/६/१६
माया	दूसरों के छलने की बुद्धि	१/२/११
माल	सुरक्षा के लिए निर्मित उर्ध्व प्रदेश	१/१/१५८
मालुयाकच्छ	लतामण्डप	१/१/६
मास	उड़द	१/५/७५
मिय	हरिण	१/१/१७८
मिसिमिसंत (दे.)	देदीप्यमान	१/१/२४
मुद्दिया	अंगूठी	१/१/२४
मुद्धय	केश	१/२/११
मुद्धा	मस्तक	१/१/२८
मूइय	निःशब्द	१/१८/३६
मूढदिसाअ	दिग्मूढ़	१/१/१६०
मूसियार	स्वर्णकार	१/१४/५
मेज्ज	मेय, पल्य आदि द्वारा मापे जाने वाले पदार्थ	१/८/६६
मेढ़ी	खला निकालते समय धान्य के मध्य रोपा जाने वाला स्तम्भ	१/१/१६
मोल्ल	मूल्य	१/१/१४६
मोहणसील	कामप्रिय	१/१/१५८
मोहणधर	मैथुनगृह	१/३/१६
रंधंतिया	भोजन पकाने वाली	१/७/२६
रज्जसुंका	राज्य सदृश मूल्य वाली	१/८/६२
रडिय	रुदनपूर्ण	१/१/१५६
रत्तंसुय	लाल रंग की मशहरी	१/१/१८
रत्था	गली	१/१/७६
रमिय	रति	१/६/३६
रयणुच्चय	रत्नराशि	१/१/२६
रयणकरंडण	रत्नमंजूषा	१/१/१७
रययकूट	रजतशिखर	१/१/१८
रसिय	मेघ का शब्द	१/१/३३
रहाणीअ	रथसेना	१/१/३३
रायसामण्ण	राजा के स्वामित्व वाला	१/१/१११
रायावगारि	राजद्रोही	१/१८/२१
रिभिय	स्वरसम्पन्न	१/१/१६
रिट्ठ	कौआ	१/१/१५६
रिट्ठ	रीठा	१/१७/१४
रिट्ठग	रत्न विशेष	१/१/३३
रुंटणा (दे.)	रुदन	१/१८/१०
रुरु	मृग	१/१/२४
रूय	कपास	१/१/१८
रोयमाण	सशब्द अश्रुमोचन करना	१/८/१०
लंख	बांस पर चढ़कर खेलने वाला	१/१/७६
लंबेत्ता	लंगर डालकर	१/८/८१
लंबोदर	गणेश	१/१/१५६
लक्खारस	लाक्षारस	१/१/३३
लज्जू	अनाचार सेवन में लज्जा करने वाला	१/१/१६५
लद्धपच्चय	विश्वसनीय	१/१/१६
लहुसय	साधारण	१/२/३५
लासग	रास रचाने वाला	१/१/७६
लिंड (दे.)	लीद	१/१/१५६
लिंब	भेड़ शिशु की ऊन से निर्मित चादर	१/१/१८
लीह	लकीर	१/८/१५४
लुग्ग	रोगी	१/७/६
लुणइ	काटना	१/७/१५
लूह	पौंछना	१/२/१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेज्झ	चाटने योग्य	१/१७/३६	संगेल्ली (दे.)	हाथ थामना	१/३/१६
लेसणी	श्लेषणी (विद्या का एक प्रकार)	१/१६/१८५	संछूढ़	संक्षिप्त	१/१७/१३
लोमहत्थग	प्रमार्जनी	१/८/५६	संजत्ता	सांयात्रिक	१/८/६४
लोट्टय	हाथी का बच्चा	१/१/१५७	संझब्भ	सन्ध्याभ्र	१/१/१६५
वंदणघट	मंगलकलश	१/१/७६	संडासग	अंगुष्ठ व अंगुलि के पकड़ का भाग	१/८/१३०
वग्गण	कूदना	१/१/२४	संतसार	श्रेष्ठ सुगन्धित द्रव्य	१/१/६१
वग्गू	वाणी	१/१/४४	संथवय	प्रशंसक	१/१६/१८५
वग्घाड़िया	ठहाका मारकर हंसना	१/८/१४६	संथारग	बिछौना	१/१/२४
वच्चंसी	सौभाग्य आदि गुणों से युक्त	१/१/४	संदमाणी	पालकी	१/५/१५
वल्लकी	सात तंत्रों से बजने वाली वीणा	१/१७/२२	संबाहणा	मर्दन	१/१/२४
वणलया	अशोकलता	१/१/२५	संवच्छरपड़िलेहण	जन्मदिन	१/८/६०
वण्णगविलेवण	चन्दन का लेप	१/१/२४	संसारेइ	दूर तक सरकाना	१/३/२१
वयंस	सखा	१/८/१८४	सज्ज	सलइ का वृक्ष	१/१/३३
वराह	सूअर	१/१/१५६	सज्ज	साजी	१/१२/१६
वलिय	बलखाती हुई	१/१/१७	सज्ज	सन्नद्ध	१/८/१६३
वसट्ट	कामना से आर्त्त	१/१/१५४	सज्जपुढ़वी	ताजा मिट्टी	१/५/५५
वसण	कष्ट	१/२/११	सज्जीव	प्रत्यञ्चा सहित	१/५/६१
वसण	वृषण, अण्डकोश	१/२/७६	सज्झाय	स्वाध्याय	१/१४/४१
वाबाह	प्रकृष्ट बाधा	१/४/११	सणिच्छर	शनि नक्षत्र	१/१/५६
वाल	वन्य जन्तु	१/२/४	सत्तुस्सेह	सात हाथ ऊंचाई वाले	१/१/६
वाल	सर्प	१/१/१७	सत्थ	शस्त्र	१/१/५३
विउण	द्विगुणित	१/६/४१	सत्थरय	शय्या	१/१३/२४
विग	भेड़िया	१/१/१७८	सद्दल	दूब	१/१/३३
विच्छुय	वृश्चिक, बिच्छू	१/८/७२	समिय	गेहूं का आटा	१/८/६६
विडंक	छज्जा	१/१/१८	समुल्लाव	वार्तालाप	१/३/६
विप्पओग	वियोग	१/१/१०६	समुल्लावए	लोरी	१/२/१२
विप्पवसिय	प्रवासित	१/२/११	सम्मय	सम्मत	१/१/१७
विब्बोयण (दे.)	उपधान (तकिया)	१/१/१८	सयवत्त	नीलकमल	१/१/८६
वियडी	तराई का जंगल	१/१/१५८	सर	स्वर	१/१/१२६
विराल	बिडाल	१/१/१७८	सर	बाण	१/१४/७८
विराहग	विराधक, स्वीकृत साधना का अतिक्रमण करने वाला	१/११/२	सर	सरोवर	१/१/१५८
			सरभ	अष्टापद	१/१/२५
विसप्पमाण	विकस्वर	१/१/१६	सरय	सरक	१/१८/५६
वीयणग	जिसके मध्य में दण्ड हो, वह चर्ममय पंखा	१/१/१०६	सरीसिव	सांप	१/१/१५६
			सस	खरगोश	१/१/३३
वेयड्ढगिरि	हिमालय, वैताढ्य पर्वत	१/१/१५६	सस्स	फसल	१/८/२८
वेलंवंग	विदूषक	१/१/७६	सस्सिरीय	श्रीसम्पन्न	१/१/१६
वेसागार	गणिकागृह	१/२/११	साइ	वक्रता	१/२/११
वोद्दहजण (दे.)	तरुणजन	१/१६/१६३	साडोल्लए	उत्तरीय वस्त्र	१/१८/८
संख	सांख्यदर्शन	१/५/५५	सामलया	प्रियङ्गुलता	१/१७/१४
संखित्तविउलतेओलेस्स	विपुल तेजोलेश्या को अन्तर्लीन रखने वाला	१/१/४	सालभंजिय	पुतलियां	१/१/१८
			सालिअक्ख	शालिकण	१/७/७
संखोभिज्जमाण	संक्षुब्ध	१/६/१०	सालिंगणवट्टिय	शरीर प्रमाण उपधान (मसन्नद)	१/१/१८
संगार	प्रतिज्ञा	१/३/७	सावएज्ज	स्वाधीनतापूर्वक व्यय किए जाने वाला धन	१/१/६१
संघाइम	अनेक अवयवों के संघात से निष्पन्न	१/१३/२०			

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सावय	जंगली जानवर	१/१/१५६	सुय	तोता	१/१/२४
सावय	श्रावक	१/५/१२५	सुरगोप	इन्द्रगोप	१/६/२०
सवहसाविय	सौगंध दिलाने की क्रिया	१/१/४४	सुसाण	श्मशान	१/२/११
सासग	रांगा	१/१/३३	सूमाल	सुकुमार	१/१/१५
साहरित्ता	संहृत कर	१/४/१०	सूलाइग	शूली पर चढ़ा हुआ	१/६/२७
साहसिय	बिना सोचे कार्य करने वाला	१/२/११	सेय	पसीना	१/१/१०५
सिंग	शृंग	१/६/२०	सेय	दलदल	१/१/१६०
सिंगारागार	शृंगारघर	१/१/१७	सेयण	रोगशमन का एक प्रयोग	१/१३/३०
सिंघाड़ग	दो राहों वाला (दोराहा)	१/१/३३	सोगंधिय	सौगन्धिक कमल	१/१३/१७
सिंघाण	नाक का मैल	१/१/१०६	सोणिसुत्तरा	कटिसूत्र	१/१७/१४
सिंभिय	श्लेष्म	१/१/१७	सोयमाण	खेदखिन्न होना	१/६/१०
सिद्धत्थय	सरसों	१/१/२४	हक्कारेमाण (दे.)	पुकारता हुआ	१/१८/४५
सिलिंध	कुकुरमुत्ता	१/१/३३	हडाहड (दे.)	अत्यधिक	१/१६/२६
सिहर	पर्वत का उपरि भाग	१/१/१५८	हत्थ	सूंड	१/१/१६०
सीयर	जलकण	१/१/१५६	हय	अश्व	१/१/३३
सीस	शिष्य	१/१/२१३	हयाणीअ	अश्वसेना	१/१/३३
सीर	सिर, मस्तक	१/१/१५३	हरिरेषु	नीलरजकण	१/१७/१८
सीहनिक्कीलिय	सिंहनिष्क्रीड़ित तप	१/८/२०	हरियालिय	दूब	१/१/२७
सुइ	सुराख	१/१/२६	हव्व	शीघ्र	१/१/५७
सुक्क	वीर्य	१/१/१०६	हिमवंत	हिमालयपर्वत	१/१/१४
सुक्क	शुक्लध्यान	१/१/१४३	हिय	हृदय	१/१/५७
सुणग	कुत्ता	१/१/१७८	हीलणिज्ज	गुरु या कुल की न्यूनता बताना	१/३/२४
सुत्त	धागा	१/३/१०			
सुत्तओ	सूत्र रूप में	१/१/८५	हुडुवक	वाद्य विशेष	१/१/३३
सुमउय	अतीव कोमल	१/१/५	हुयवह	आग	१/१/१५६
सुमहग्घ	बहुमूल्य	१/१/२४	हेरुयाल (दे.)	कुपित करना	१/८/१४६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-५

विशेष नामानुक्रमणिका

अग्निमाणव	इन्द्र	२/४/८
अग्निशिख	इन्द्र	२/३/११
अचल	राजा	१/८/१०
अचला	गाथापति-पुत्री	२/६/२
अदीन-शत्रु	राजा, युवराज	१/८/२७, १/१२/२
अनंगसेना	गणिका	१/१६/१४१
अनिरुद्ध	यादव-राजकुमार	१/१६/१८५
अप्सरा	गाथापति-पुत्री	२/६/२
अभयकुमार	राजकुमार	१/१/१६
अभिचन्द्र	राजा	१/८/१०
अमरपति	राजकुमार (ज्ञातवंशी)	१/८/२२३
अमरसेन	राजकुमार (ज्ञातवंशी)	१/८/२२३
अमितगति	इन्द्र	२/३/११
अमितवाहन	इन्द्र	२/४/८
अरिष्टनेमि	तीर्थंकर	१/५/१०
अर्चिमाली	गाथापति-पुत्री	२/८/२, २/७/२
अर्जुन	राजकुमार (पाण्डव)	१/१६/१४२
अर्हन्नक	श्रमणोपासक	१/८/६५
अल	गाथापति	२/३/७
अलश्री	गाथापति-पत्नी	२/३/७
अलादेवी	गाथापति-पुत्री	२/३/७
अवतंसा	गाथापति-पुत्री	२/५/२
अश्वत्थामा	राजकुमार	१/१६/१४२
आतपा	गाथापति-पुत्री	२/७/५
अंजू	गाथापति-पुत्री	२/६/२
इन्द्रभूति गौतम	गणधर	१/६/३, २/१/१३
इन्द्रा	गाथापति-पुत्री	२/३/६
ईशान	इन्द्र	२/१०/६
उग्रसेन	राजा	१/५/६, १/१६/१३२
उज्झिता	सार्थवाह की पुत्रवधू	१/७/५
उत्तमा	गाथापति-पुत्री	२/५/२
उत्पला	गाथापति-पुत्री	२/५/२
उन्मुक्त	यादव-राजकुमार	१/१६/१८५
कच्छुल्लनारद	नारद	१/१६/१८५
केतुमति	गाथापति-पुत्री	२/५/२
कनककेतु	राजा	१/१५/५, १/१७/३
कनकध्वज	युवराज	१/१४/३५
कनकप्रभा	गाथापति-पुत्री	२/५/२
कनकरथ	राजा	१/१४/२
कनका	गाथापति-पुत्री	२/५/२
कपिल	वासुदेव (धा. ख.)	१/१६/२६६
कमल	गाथापति	२/५/५
कमलप्रभा .	गाथापति-पुत्री	२/५/२/१
कमलश्री	गाथापति-पत्नी	२/५/५
कमला	गाथापति-पुत्री	२/५/५
कर्ण	राजा	१/१६/१४५
कलाद	मूषिकारदारक	१/१४/५
कंडरीक	राजकुमार	१/१६/७
काल	गाथापति	२/१/१६
कालश्री	गाथापत्नी	२/१/१७
काली	गाथापति-पुत्री	२/१/१८
कीचक	राजा	१/१६/१४५
कृप	आचार्य	१/१६/१४२
कृष्ण	वासुदेव	१/५/६, १/१६/१३२
कृष्णराजि	गाथापति-पुत्री	२/१०/२
कृष्णा	गाथापति-पुत्री	२/१०/२
कुंती	रानी	१/१६/१८४
कुंभ	राजा	१/८/२८
केतुमती	गाथापति-पुत्री	२/५/२
कोणिक	राजा	१/१/३
क्रमा	गाथापति-पुत्री	२/३/६
गज	यादव राजकुमार	२/१६/१८५
गांगेय	राजकुमार	१/१६/१४२
गोपालिका	आर्या	१/१६/६४
घनविद्युत	गाथापति-पुत्री	२/३/६
घोष	दक्षिण दिग्वर्ती इन्द्र	२/३/११
चन्द्र	इन्द्र	२/८/५
चन्द्रच्छाय	राजा	१/८/२७
चन्द्रप्रभ	गाथापति	२/८/५
चन्द्रप्रभा	गाथापति-पुत्री	२/८/२
चन्द्रश्री	गाथापत्नी	२/८/५
चिलात	दासचेट	१/१७/६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चुलनी	रानी	१/१६/१२२
चेलणा	रानी	२/१/६
चोक्षा	परिव्राजिका	१/८/१३६
जम्बू	अणगार	१/१/६
जयद्रथ	राजा	१/१६/१४२
जरासन्ध	राजा	१/१६/१४५
जलकान्त	दक्षिण दिग्वर्ती इन्द्र	२/३/११
जलप्रभ	इन्द्र	२/४/८
जितशत्रु	राजा	१/८/२७, १/१५/२, १/१२/२, २/१/१५
जिनदत्त	सार्थवाह	१/१६/३८
जिनदत्त-पुत्र	सार्थवाह-पुत्र	१/३/६
जिनपालित	सार्थवाह-पुत्र	१/९/३
जिनरक्षित	सार्थवाह-पुत्र	१/९/३
तारका	गाथापति-पुत्री	२/५/२
तेतलिपुत्र	अमात्य	१/१४/४
थावच्चा	गाथापत्नी	१/५/७
थावच्चापुत्र	गाथापति का पुत्र	१/५/८
दमघोष	राजा	१/१६/१४५
दमदन्त	राजा	१/१६/१४५
दर्दुरदेव	देव	१/१३/४३
दारुक	सारथी	१/१६/२४३
दुर्मुख	यादव-राजकुमार	१/१६/१८५
दुर्योधन	राजकुमार	१/१६/१४२
देवदत्त	सार्थवाहपुत्र	१/२/२३
देवदत्ता	गणिका	१/३/८
द्रोण	राजकुमार	१/१६/१४५
द्रुपद	राजा	१/१६/१२१
द्रोपदी	राजकुमारी	१/१६/१२५
दोषीनाभा	गाथापति-पुत्री	२/८/२
धन	सार्थवाह-पुत्र	१/१७/४
धनगोप	सार्थवाह पुत्र	१/७/४, १/१७/४
धनदेव	सार्थवाह पुत्र	१/७/४, १/१७/४
धनपाल	सार्थवाह पुत्र	१/७/४, १/१७/४
धनरक्षित	सार्थवाह पुत्र	१/७/४, १/१७/४
धन्य	सार्थवाह	१/२/७, १/७/३, १/१५/७, १/१७/३,
धर	राजा	१/१६/१४५
धरण	राजा	१/८/१०
धर्मघोष	स्थविर	१/१६/११
धर्मरुचि	मुनि	१/१६/१२
धर्मा	गाथापत्नी	२/१०/६
धारिणी	रानी	१/१/१७, १/८/५, १/८/९०, १/१/१३८, १/१२/२
धृष्टद्युम्न	युवराज	१/१६/१२२

नकुल	राजकुमार (पाण्डव)	१/१६/१४२
नन्द	राजकुमार (ज्ञातवंशी)	१/८/२२३
नन्द	मणिकार	१/१३/८
नन्दादेवी	रानी	१/१/१५
नन्दिमित्र	राजकुमार (ज्ञातवंशी)	१/८/२२३
नवमिका	गाथापति-पुत्री	२/५/२, २/६/२
नागश्री	ब्राह्मणी	१/१६/५
निरंभा	गाथापति-पुत्र	२/२/२
निषध	यादव राजकुमार	१/१६/१८५
निसुंभा	गाथापति-पुत्री	२/२/२
पद्म	गाथापति	२/६/६
पद्मनाभ	राजा	१/१६/१६२
पद्मा	गाथापति-पुत्री	२/५२, २/६/२
पद्मावती	रानी	१/५/४२, १/८/४५, १/१४/३, १/१६/६
पाण्डु	राजा	१/१६/१४२
पाण्डुसेन	राजकुमार	१/१६/३०६
पार्श्व	तीर्थंकर	२/१/१६
पुण्डरीक	युवराज	१/१९/७
पुष्पचूला	आर्या	२/१/२६, २/१/५२, २/६/५, २/१०/६
पुष्पवती	गाथापति-पुत्री	२/५/२
पूरण	राजा	१/८/१०
पूर्ण	इन्द्र	२/३/११
पूर्णा	गाथापति-पुत्री	२/५/२
पोट्टिला	मूषिकारदारक की पुत्री	१/१४/७
पंथक	दासचेट	१/२/६
पंथक	मंत्री	१/५/४३
प्रतिबुद्धि	राजा	१/८/२७
प्रतीप	यादव-राजकुमार	१/१६/१८५
प्रद्युम्न	राजकुमार	१/५/६, १/१६/१६२
प्रभंकरा	गाथापति-पुत्री	२/७/२, २/८/२
प्रभंजन	इन्द्र	२/४/८
प्रभावती	रानी	१/८/२८
बन्धुमती	आर्या	१/८/२३२
बल	राजा	२/८/५
बलदेव	महान वीर	१/५/६, १/१६/१३२
बलभद्र	राजकुमार	१/८/६
बलमित्र	राजकुमार (ज्ञातवंशी)	१/८/२२३
बली	वैरोचनेन्द्र	२/१/५
बहुपुत्रिका	गाथापति-पुत्री	२/५/२
बहुरूपा	गाथापति-पुत्री	२/५/२
भद्रा	सार्थवाही	१/२/८, १/७/३, १/९/३, १/१४/६, १/१६/३२, १/१६/३६, १/१७/३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भानुमित्र	राजकुमार (ज्ञातवंशी)	१/८/२२३
भिसग	गणधर	१/८/२३१
भीमसेन	राजकुमार (पाण्डव)	१/१६/१४२
भुजगा	गाथापति-पुत्री	२/५/२
भुजगावती	गाथापति-पुत्री	२/५/२
भूतश्री	ब्राह्मणी	१/१६/५
भूतानन्द	उत्तर दिग्वर्ती इन्द्र	२/४/५
भेसक	राजा	१/१६/१४५
भोगवती	सार्थवाह की पुत्रवधू	१/७/५
मदना	गाथापति-पुत्री	२/२/२
मल्ली	तीर्थंकर	१/८/३६
मल्लीदत्त	राजकुमार	१/८/११५
महाकच्छा	गाथापति-पुत्री	२/५/२
महाकाल	इन्द्र	२/६/१
महाघोष	इन्द्र	२/४/८
महापद्म	राजा	१/१९/५
महाबल	राजकुमार	१/८/६
महावीर	तीर्थंकर	१/१/६४
महासेन	बलवान् राजा	१/५/६, १/१६/१३२
महासेन	राजकुमार (ज्ञातवंशी)	१/८/२२३
माकंदी	सार्थवाह	१/९/३
मुनिसुव्रत	तीर्थंकर (धा. ख.)	१/१६/२७०
मेघ	गाथापति	२/१/६२
मेघकुमार	राजकुमार	१/१/८१
मेघश्री	गाथापत्नी	२/१/६२
मेघा	गाथापति-पुत्री	२/१/६२
मंडुक्क	युवराज	१/५/४२
यक्षश्री	ब्राह्मणी	१/१६/५
युधिष्ठिर	राजकुमार (पाण्डव)	१/१६/१४२
रक्षिता	सार्थवाह की पुत्रवधू	१/७/५
रजनीदेवी	गाथापति-पुत्री	२/१/६०
रतिप्रिया	गाथापति-पुत्री	२/५/२
रत्नश्री	गाथापत्नी	२/१/६०
रयण	गाथापति	२/१/६०
राजी	गाथापति	२/१/५०
राजीदेवी	गाथापति-पुत्री	२/१/५०
राजीश्री	गाथापत्नी	२/१/५०
राम	गाथापति	२/१०/६
रामरक्षिता	गाथापति-पुत्री	२/१०/२
रामा	गाथापति-पुत्री	२/१०/२
रुक्मि	राजा	१/८/२७, १/१६/१४५
रुक्मिणी	रानी	१/५/६
रूपवती	गाथापति-पुत्री	२/५/२
रूपक	गाथापति	२/४/५
रूपकश्री	गाथापत्नी	२/४/५
रूपकांता	गाथापति-पुत्री	२/४/५
रूपकावती	गाथापति-पुत्री	२/४/७
रूपप्रभा	गाथापति-पुत्री	२/४/७
रूपांशा	गाथापति-पुत्री	२/४/७
रूपा	गाथापति-पुत्री	२/४/५
रोहिणी	सार्थवाह की पुत्र-वधू	१/७/५
रोहिणी	गाथापति-पुत्री	२/५/२
रंभा	गाथापति-पुत्री	२/२/२
वज्रसेना	गाथापति-पुत्री	२/५/२
वसु	राजा, गाथापति-पुत्री	१/८/१०, २/२०/२
वसुगुप्ता	गाथापति-पुत्री	२/१०/२
वसुन्धरा	गाथापति-पुत्री	२/१०/२
वसुमती	गाथापति-पुत्री	२/५/२
वसुमित्रा	गाथापति-पुत्री	२/१०/२
विजय	तस्कर, चोरसेनापति	१/२/११, १/१७/१६
विजया	गाथापत्नी	२/९/६
विदुर	राजकुमार	१/१६/१४५
विद्युत्	गाथापति	२/१/६१
विद्युत देवी	गाथापति-पुत्री	२/१/६१
विद्युतश्री	गाथापत्नी	२/१/६१
विमला	गाथापति-पुत्री	२/५/२
विशिष्ट	इन्द्र	२/४/८
वीरसेन	वीरपुरुष	१/१६/१३२
वेणुदाली	इन्द्र	२/४/८
वेणुदेव	इन्द्र	२/३/१०
वेलम्ब	इन्द्र	२/३/११
वैश्रमण	राजा, देव	१/८/१०, १/८/१६४
शकुनि	राजकुमार	१/१६/१४२
शक्र	इन्द्र	२/९/६
शल्य	राजा	१/१६/१४५
शाम्ब	दुर्दान्त योद्धा	१/१६/१३२
शिवा	गाथापति-पुत्री	२/९/२
शिशुपाल	राजा	१/१६/१४५
शुंभ	गाथापति	२/१/७
शुंभश्री	गाथापत्नी	२/१/७
शुंभादेवी	गाथापति-पुत्री	२/१/७
शुक	परिव्राजक	१/५/५२
शैलक	राजा	१/५/४२
शैलक	यक्ष	१/९/२८
शंख	राजा	१/८/१०१
श्रेणिक	राजा	१/१/१४, १/१३/७, २/१/९
सती	गाथापति-पुत्री	२/९/२
सतेरा	गाथापति-पुत्री	२/३/९
समुद्रविजय	राजा	१/५/६, १/१६/१३२
सरस्वती	गाथापति-पुत्री	२/५/२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहदेव	राजकुमार (पाण्डव), राजा	१/१६/१४२, १/१६/१४५
सागर	सार्थवाह पुत्र	१/१६/४०
सागरदत्त	सार्थवाह	१/१६/३२
सागरदत्तपुत्र	सार्थवाह-पुत्र	१/३/६
सारण	यादव-राजकुमार	१/१६/१८५
सुंसुमा	सार्थवाह-पुत्री	१/१७/५
सुकुमालिका	सार्थवाह-पुत्री	१/१६/३४
सुघोषा	गाथापति-पुत्री	२/५/२
सुदर्शन	गाथापति	१/५/५१
सुदर्शना	गाथापति-पुत्री	२/५/२
सुधर्मा	गणधर	१/१/४, २/१/३
सुनाभ	राजकुमार	१/१६/१६४
सुबाहु	राजकुमारी	१/८/६०
सुबुद्धि	मंत्री	१/८/४५, १/१२/२
सुभगा	गाथापति-पुत्री	२/५/२
सुमित्र	राजकुमार (ज्ञातवंशी)	१/८/२२३
सुमुख	यादव-राजकुमार	१/१६/१८५
सुरूपा	गाथापति-पुत्री	२/४/७, २/५/२
सुव्रता	आर्या	१/१४/४०
सुस्थित	देव	१/१६/२३७
सुस्वरा	गाथापति-पुत्री	२/५/२
सूर्य	इन्द्र	२/७/५
सूर्यप्रभ	गाथापति	२/७/५
सूर्यप्रभा	गाथापति-पुत्री	२/७/२
सूर्यश्री	गाथापत्नी	२/७/५
सेल्ल		
सोम	ब्राह्मण	१/१६/४
सोमदत्त	ब्राह्मण	१/१६/४
सोमभूति	ब्राह्मण	१/१६/४
सौदामिनी	गाथापति-पुत्री	२/३/६
स्फुटा	गाथापति-पुत्री	२/५/२
हरि	इन्द्र	२/३/११
हरिस्सह	इन्द्र	२/४/८
ही	गाथापति-पुत्री	२/५/२

नगर-नगरी

अंग जनपद	१/८/६४
अरक्षुरी	२/७/५
अवरकंका	१/१६/१६१
अहिच्छत्रा	१/१४/४
आमलकल्पा	२/१/१६, ५०
काशी	१/८/१०१
कांपिल्यपुर	१/८/१३८, १/१६/१२०
कुरु जनपद	१/८/११४
कौडिन्य	१/१६/१४५
कोशल जनपद	१/८/४३
चंपा	१/१/१, १/१/५, १/३/२, १/८/६४, १/६/२, १/१५/२, १/१६/२, १/१६/१४५, १/१६/२६८
चमरचंचा	२/१/१०, ४८, ५४
तेतलिपुर	१/१४/२
द्वारवती	१/५/२, १/१६/१३२
नागपुर	२/५/५
पांचाल	१/८/१३८, १/१६/१२०
पाण्डुमथुरा	१/१६/३०३
पुष्कलावती विजय	१/१९/२
पुंडरीकिनी	१/१९/३
बलिचंचा	२/२/५
भूतानन्दा	२/४/५
मथुरा	१/१६/१४५
मिथिला	१/८/२८
राजगृह	१/१/१२, १/२/२, १/६/२, १/७/२, १/१३/२, १/१०/२, १/११/२, १/१२/२, १/१३/७, १/१६/१४५, १/१८/२
वाराणसी	१/४/२, १/८/१०१
विराटनगर	१/१६/१४५
वीतशोका	१/८/३
शुक्तिमती	१/१६/१४५
शैलकपुर	१/५/४२
श्रावस्ती	१/८/६०
सलिलावती विजय	१/८/२
साकेत	१/८/४३, २/६/१
सौगन्धिका	१/५/५०
सौराष्ट्र	१/१६/३१८
हस्तिकल्प	१/१६/३२१
हस्तिनापुर	१/८/११४, १/१६/१४२
हस्तिशीर्ष	१/१६/१४५, १/१७/२

पर्वतनाम

अंजनगिरि	१/८/७२, १/१६/१४०
एकशैल	१/१६/२
चारु	१/८/८, १/८/२६
निषध	१/८/२, १/१६/१८५
नीलवंत	१/१९/२
पुण्डरीक	१/५/८३
मंदर	१/१/१४, १/५/३५, १/८/२, १/१४/५६, १/१६/१६२
मलय	१/१/१४, १/५/६५, १/१४/५६, १/१६/१६२
रैवतक	१/५/४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विन्ध्य	१/१/१५६
विपुल पर्वत	१/१/२०४
वैताढ्य	१/१/६
वैभारगिरि	१/१/६७
सम्मेद	१/८/२३४
शत्रुञ्जय	१/१६/३२३
सुखावह	१/८/२
हिमवत्	१/१/१४, १/५/६५, १/१४/५६, १/१६/१६२

उद्यान : वन

आम्रशालवन	२/१/१५, ५४
आराम	१/१/६७, १/२/११, १/५/७२
इन्द्रकुम्भ	१/८/४
उद्यान	१/१/६७, १/२/४, १/३/३, १/५/४, १/७/२, १/८/४, १/१४/२, १/१६/३, १/१९/४, २/५/५, २/६/१, २/८/१
काममहावन	२/३/७
गुणशीलक	१/१/१३, १/२/३, १/१३/२, १/१८/५८, २/१/२, २/२/४, २/३/४
चन्द्रावतंसक	२/८
जीर्णोद्यान	१/२/४
नन्दनवन	१/३/३, १/५/४
नलिनीवन	१/१९/४
नीलाशोक	१/५/५०
प्रमदवन	१/८/११६, १/१४/२
भंडीवतंसक उद्यान	२/८/५
मालुकाकच्छ	१/२/११, १/३/४, १/४/५
सहस्राम्रवन	१/८/२९६, १/१६/३१७, २/५/५
सुभूमिभाग	१/१/३, १/३/३, १/५/४२, १/७/२, १/१६/३

जलाशय

कूप	१/८/१५४, १/९/१०, १/१६/२००
गंगा महानदी	१/१/१८, १/४/३, १/८/७०, १/१६/२८१
गुंजालिका	१/१/१५८, १/२/११, १/१३/१५
द्रह	१/१/१६१, १/८/१५४, १/१६/२०
दीर्घिका	१/१/१५८, १/२/११, १/१३/१५
नंदा (पुष्करिणी)	१/३/९, १/१३/१५
पुष्करिणी	१/२/११, १/३/९, १/१३/३२
भग्नकूप	१/२/५
मृतगंगातीर	१/४/३
लवणसमुद्र	१/८/२, १/९/४, १/१६/२०४, १/१७/५
वापी	१/१/१५८, १/२/११, १/९/२०, १/१३/१५
क्षीरोदक समुद्र	१/८/२०
सर	१/१/१५८, १/२/११, १/८/१५४, १/१६/२००
सरपंक्ति	१/१/१५८, १/२/११, १/१३/१५
सरसरपंक्ति	१/१/१५८, १/२/११, १/९/२०, १/१३/१५
सागर	१/१/२९, १/५/६, १/८/१५४, १/९/२०, १/१६/४६
सीता	१/१९/२
सीतोदा	१/८/२

देश : राजधानी

देश	राजधानी
अंग	चम्पा
इक्ष्वाकु	अयोध्या
काशी	वाराणसी
कुणाल	श्रावस्ती
कुरु	हस्तिनापुर
पंचाल	कांपिल्यपुर

भवन : गृह : विमान

अलावतंसक	२/३/५
अट्टणशाला	१/१/२४
आलिगृह	१/३/१६, १/९/२०
आसनगृह	१/३/१६
उपस्थानशाला	१/१/२२, १/५/८८, १/८/१६८, १/१६/१३४, २/१/२१
कदलीगृह	१/३/१६
कमलावतंसक विमान	२/५/५
कालीवतंसक (काल्यवतंसक)	२/१/१०
कुसुमगृह	१/३/१६, १/९/२०
कृष्णावतंसक	२/१०/५
गर्भगृह	१/८/४०
चंद्रप्रभ विमान	२/८/५
चारक (कारागार)	१/१/७६, १/२/३३
चारकशाला	१/२/३३
जयन्तविमान	१/८/२६
जालकगृह	१/३/३६, १/८/४०
तस्करगृह	१/२/११
तस्करस्थान	१/२/११
देवकुल	१/५/१४
द्यूतगृह (द्यूतखलक)	१/२/११, १/१८/१६
नागगृह	१/२/११, १/८/४४
पानागार	१/२/११
पौषधशाला	१/१/५३, १/१३/१४, १/१६/२०
प्रपा	१/२/११, १/५/७२, १/१८/१६
प्रसाधनगृह	१/३/१६
प्रासाद	१/१/९३, १/५/१४, १/८/७, १/१४/८
प्रासादावतंसक	१/१/८९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रेक्षागृह	१/३/१६	लतागृह	१/३/१६
भवन	१/१/२६, १/२/७, १/३/८, १/८/८६, १/१६/१६६, १/१६/१३, २/१/१०, २/२/५, २/३/५, २/४/५	लयन	१/२/११
		वेश्यागार/वेश्यागृह	१/२/११, १/१८/१६
		वैश्रमणगृह	१/२/१४
भवनावतंसक	१/१/२७	शाखागृह	१/३/१६
भूतगृह	१/२/११	शुंभावतंसक भवन	२/२/५
मज्जनगृह	१/१/२४, १/१६/४०	शून्यगृह	१/२/११
मोहनगृह (रतिघर)	१/३/१६, १/८/४०	श्रीगृह	१/१/१२२, १/१६/२६२
यक्षदेवगृह/यक्षायतन	१/२/११, १/५/५, १/६/२८	सभा	१/२/११, १/५/१२, १/८/७६, १/१३/३, १/१६/१३६, १/१८/१६, २/६/५, २/१०/५
यानशाला	१/५/११०, १/१६/२२		
राजीवतंसक (राजावतंसक)	२/१/५४	सूरप्रभ (सूर्य विमान)	२/७/५
रुचकावतंसक	२/४/५	सौधर्मावतंसक	१/८/७६
रूपकावतंसक	२/४/५	स्थूणामंडप	१/३/६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-६

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूचि

क्र.सं.	पुस्तक	लेखक/संपादक	प्रकाशक	समय
१.	अंगसुत्ताणि भा. ३ (नायाधम्मकहाओ)	वा.प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	जै.वि.भा., लाडनूं	सन् १९८४
२.	अनगारधर्मामृतवर्षिणी टीका	घासीलालजी	अ.भा.श्वे. जै. समिति	वि. २०२०
३.	अभिज्ञानशाकुन्तलम्	कालिदास		
४.	अभिधान चिन्तामणि	आचार्य हेमचन्द्र	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी	सन् १९६६
५.	अर्धमागधीकोष	रत्नचन्द्रजी	मोतीलाल बनारसीदास	सन् १९८८
६.	आप्टे	वी.एस. आप्टे	गोपाल नारायण एण्ड कम्पनी (बोम्बे)	सन् १९२४
७.	आयारो	वा.प्र. आचार्य तुलसी सं. मुनि नथमल	जै.वि.भा., लाडनूं	वि. २०३१
८.	आयुर्वेदीय शब्दकोष, विश्वकोष	रामजितसिंह विश्वेश्वर दयालु वैद्य	इटावा	वि. १९९४
९.	आवश्यक निर्युक्ति	भद्रबाहु स्वामी	भेरुलाल कन्हैयालाल धा. ट्रस्ट, बम्बई	वि. २०३८
१०.	उत्तरज्झयणाणि	वा.प्र. आचार्य तुलसी सं. आचार्य महाप्रज्ञ	जै.वि.भा.सं., लाडनूं	सन् १९९२-९३
११.	उत्तराध्ययन चूर्णि	जिनदासगणि महत्तर	श्री ऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वे. तेरा., इंदौर	वि.सं. १९८९
१२.	उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति	चन्द्रकुलीन शान्तिसूरि	देवचन्दलालभाई	वि. १९७२
१३.	ओघनिर्युक्ति	भद्रबाहु	आगमोदय समिति	वि. १९७५
१४.	ओवाइयं	टी. द्रोणाचार्य	आगमोदय समिति, महेसाणा	वि. १९७५
१५.	औपपातिकसूत्रसवृत्ति	चन्द्रकुलीन श्री अभयदेवसूरि	पं. भूरालाल कालिदास	वि. सं. १९९४
१६.	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति	शान्तिचन्द्रसूरि	देवचन्द्र लालभाई	वि. १९७६
१७.	ज्योतिष प्रवेशिका	मुनि श्रीचन्द्र 'कमल'	आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन	सन् १९७५
१८.	ज्ञातावृत्ति (ज्ञाताधर्मकथांगं)	अभयदेवसूरि	सिद्धचक्र साहित्य प्रचारक समिति	सन् १९५१
१९.	ठाणं	वा.प्र.आ. तुलसी सं. मुनि नथमल	जै.वि.भा., लाडनूं	वि. २०३३
२०	तत्त्वार्थ वार्तिक	भट्टअकलंकदेव	भा. ज्ञानपीठ, काशी	सन् १९५३
२१.	तिलोयपण्णत्ति	आचार्य यतिवृषभ	श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा	वि.सं. २०४०
२२.	दसवेआलियं	वा.प्र. आचार्य तुलसी सं. मुनि नथमल	जै.वि.भा., लाडनूं	सन् १९७४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्र.सं.	पुस्तक	लेखक/संपादक	प्रकाशक	समय
२३.	दसवेआलियं अगस्त्यचूर्णि	ऋषभदेव केशरीमल		वि. १९८९
२४.	दसवेआलियं जिनदासचूर्णि	जिनदासगणि महत्तर	श्री ऋषभदेव केशरीमल श्वे. सभा इन्दौर	वि. १९८९
२५.	देशीनाममाला	हेमचन्द्रसूरि	ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टी.	सन् १९३८
२६.	धवला	सं. हीरालाल जैन		
२७.	नंदी	वा.प्र.आ. महाप्रज्ञ	जै.वि.भा. संस्थान	
२८.	नंदी चूर्णि (हरिभद्रीया वृत्ति सहित)	जिनदासगणि	ऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वे. संस्था, रतलाम	सन् १९२८
२९.	नंदी मलयगिरीया वृत्ति	मलयगिरी	आगमोदय समिति, सूरत	सन् १९१९
३०.	निशीथ चूर्णि	सं. अमरमुनि	भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली	सन् १९८२
३१.	निशीथ भाष्य	निशीथ चूर्णिवत्		
३२.	प्रवचन सारोद्धार	नेमीचन्द्रसूरि	जैन पुस्तकोद्धार	वि. १९७८
३३.	पातंजल योगदर्शन	रामशंकर भट्टाचार्य	मोतीलाल बनारसीदास	सन् १९९१
३४.	भगवई (भाष्य)	वा.प्र. गणाधिपति तुलसी सं. आचार्य महाप्रज्ञ	जै.वि.भा. संस्थान, लाडनूं	सन् १९९४
३५.	भगवती	अभयदेवसूरि		
३६.	भागवत पुराण	जगदीशलाल शास्त्री	मोतीलाल बनारसीदास	सन् १९८८
३८.	विशेषावश्यक भाष्य	जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण	लालभाई दलपतभाई भ.सं. विद्यामंदिर	
३९.	वैदिक संस्कृति का विकास			
४०.	व्यवहार भाष्य	वा.प्र.आ.तु. प्रधान सं. आ.म. सं. स. कुसुमप्रज्ञा	जै.वि.भा. संस्थान	सन् १९९६
४१.	शब्दकल्पद्रुम	राजाराधाकान्तदेव	नागप्रकाशक, दिल्ली	सन् १९८८
४२.	श्रीमद्भगवद्गीता	वेदव्यास	गीताप्रेस, गोरखपुर	वि.सं. २०१८
४३.	संस्कृत विश्वकोष	महेश्वरदास	शिवलाल दूबे	वि.सं. १९३०
४४.	संस्कृत शब्दकोष			
४५.	समवाओ	वा.प्र. आचार्य तुलसी सं. यु. महाप्रज्ञ	जै.वि. भारती, लाडनूं	सन् १९८४
४६.	सूयगडो	"	"	सन् १९८४
४७.	सूत्रकृतांग (चू.)	आदिनाथ जैनश्रमण	ऋषभदेवजी केशरीमल	वि.सं. १९९८
४८.	सूत्रकृतांग I	शीलांकसूरि	श्री गौडी पार्श्वनाथ जैन देरासर पेढी	वि.सं. २००१
४९.	सूत्रकृतांग II	"	"	वि.सं. २००१
५०.	स्थानांगवृत्ति	अभयदेवसूरि	माणेकलाल चुन्नीलाल, अहमदाबाद	सन् १९९४
५१.	कादम्बिनी (जू.)			
५२.	A Consise Ety. San. Dictionary II			

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाचना-प्रमुख : आचार्य तुलसी
संपादक : विवेचक : आचार्य महाप्रज्ञ

युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी (१९१४-१९९७) के वाचना-प्रमुखत्व में सन् १९५५ में आगम-वाचना का कार्य प्रारम्भ हुआ, जो सन् ४५३ में देवर्धिगणी क्षमाश्रमण के सान्निध्य में हुई संगति के पश्चात् होनेवाली प्रथम वाचना थी। सन् १९९९ तक ३२ आगमों के अनुसंधानपूर्ण मूलपाठ संस्करण और ७ आगम संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद एवं टिप्पण सहित प्रकाशित हो चुके थे। आयारो (आचारांग का प्रथम श्रुतस्कंध) मूल पाठ, संस्कृत छाया, हिन्द-संस्कृत भाष्य एवं भाष्य के हिन्दी अनुवाद से युक्त प्रकाशित हो चुका है। आचार-भाष्य का अंग्रेजी संस्करण भी प्रकाशित हो चुका है।

इस वाचना के मुख्य सम्पादक एवं विवेचक (भाष्यकार) हैं– आचार्य श्री महाप्रज्ञ (मुनि नथमल/युवाचार्य महाप्रज्ञ) (जन्म १९२०) जिन्होंने अपने सम्पादन-कौशल से जैन आगम-वाङ्मय को आधुनिक भाषा में समीक्षात्मक भाष्य के साथ प्रस्तुति देने का गुरुतर कार्य किया है। भाष्य में वैदिक, बौद्ध और जैन साहित्य, आयुर्वेद, पाश्चात्य दर्शन एवं आधुनिक विज्ञान के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर समीक्षात्मक टिप्पण लिखे गए हैं।

आचार्य श्री तुलसी ११ वर्ष की आयु में जैन श्वेताम्बर तेरापंथ के अष्टमाचार्य श्री कालूगणी के पास दीक्षित होकर २२ वर्ष की आयु में नवमाचार्य बने।

आपकी औदार्यपूर्ण वृत्ति एवं असाम्प्रदायिक चिन्तन-शैली ने धर्म के सम्प्रदाय से पृथक् अस्तित्व को प्रकट किया। नैतिक क्रान्ति, मानसिक शांति और शिक्षा-पद्धति में परिष्कार के लिए आपने क्रमशः अणुव्रत आन्दोलन, प्रेक्षाध्यान और जीवन-विज्ञान का त्रि-आयामी कार्यक्रम प्रस्तुत किया था। युगप्रधान आचार्य, भारत-ज्योति, वाचस्पति जैसे गरिमापूर्ण अलंकरण, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार (१९९३) जैसे सम्मान आपको प्राप्त हुए थे। साधु और श्रावक के बीच की कड़ी के रूप में आपने सन् १९८० में समणश्रेणी का प्रारंभ किया, जिसके माध्यम से देश-विदेश में अनाबाध-रूपेण धर्मप्रसार किया जा रहा है। आपने ६० हजार कि. मी. की भारत की पदयात्रा कर जन-जन में नैतिकता का भाव जगाने का प्रयास किया था।

हिन्दी, संस्कृत एवं राजस्थानी भाषा में अनेक विषयों पर ६० से अधिक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। १८ फरवरी १९९४ को आपने आचार्यपद का विसर्जन कर उसे अपने उत्तराधिकारी युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ में प्रतिष्ठित कर दिया था। २३ जून सन् १९९७ को आपका महाप्रयाण हुआ। सन् १९९८ में भारत सरकार ने आपकी स्मृति में डाक-टिकट जारी किया।

दशमाचार्य श्री महाप्रज्ञ दस वर्ष की अवस्था में मुनि बने, सूक्ष्म चिन्तन, मौलिक लेखन एवं प्रखर वक्तृत्व आपके व्यक्तित्व के आकर्षक आयाम हैं। जैन दर्शन, योग, ध्यान, काव्य आदि विषयों पर आपके १०० से अधिक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत आगम-वाचना के आप कुशल संपादक एवं विवेचक हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन विश्व भारती द्वारा प्रकाशित आगम साहित्य

वाचना प्रमुख : आचार्य तुलसी

संपादक विवेचक : आचार्य महाप्रज्ञ

(समस्त आगम साहित्य मूल पाठ पाठान्तर शब्द सूची सहित 6 भागो में)

	ग्रंथ का नाम			पृष्ठ	मूल्य
१.	अंगसुत्ताणि भाग-१	(आयारो, सूयगडो, ठाणं, समवाओ)	(दूसरा संस्करण)	११००	७००
२.	अंगसुत्ताणि भाग-२	(भगवई-विआहपण्णत्ती)	"	१५००	७००
३.	अंगसुत्ताणि भाग-३	(नायाधम्मकहाओ, उवासगदसाओ, अंतगडदसाओ, अणुत्तरोववाइयदसाओ, पण्णावागरणाइं, विवागसुयं)	"	९२५	५००
४.	उवंगसुत्ताणि खंड-१	(ओवाइयं, रायपसेणइयं, जीवाजीवाभिगम)	"	८००	५००
५.	उवंगसुत्ताणि खंड-२	(पण्णवणा, जंबूद्दीवपण्णत्ती, चंदपण्णत्ती, कप्पवडिंसियाओ, निरयावलियाओ, पुप्फियाओ, पुप्फचूलियाओ,वण्हिदसाओ)	"	१११७	६००
६.	नवसुत्ताणि	(आवस्सयं, दसवेआलियं, उत्तरज्झयणाणि, नंदी, अणुयोगदाराइं	"	१३००	६९५
७.	आगम शब्दकोष	(अंगसुत्ताणि तीनों भागों की समग्र शब्द सूची)		८२३	३००

(मूल, छाया, अनुवाद, टिप्पण, परिशिष्ट-सहित आगम साहित्य)

	ग्रंथ का नाम	पृष्ठ	मूल्य
१.	आयारो	३५९	२००
२.	आचारांगभाष्यम्	६००	५००
	आचारांगभाष्यम् (अंग्रेजी)		४००
३.	सूयगडो भाग-१ (दूसरा संस्करण)		३००
४.	सूयगडो भाग-२ (दूसरा संस्करण)		३५०
५.	ठाणं	१०५०	७००
६.	समवाओ (दूसरा संस्करण) प्रेस में		
७.	भगवई (खंड-१)	४१२	५९५
८.	भगवई (खंड-२)	५९०	६९५
९.	भगवई (खंड-३) प्रेस में		
१०.	भगवाई (खंड-४) "		
११.	नंदी		३००
१२.	अणुयोगदाराइं	३५५	४००
१३.	दसवेआलियं (दूसरा संस्करण)	६५०	५००
१४.	उत्तरज्झयणाणि (तीसरा संस्करण)	७६८	६००
	उत्तरज्झयणाणि (गुजराती संस्करण)	७६८	६००
१५.	नायाधम्मकहाओ	४८०	५००
	दसवेआलियं (गुटका)		७
	उत्तरज्झयणाणि (गुटका)		२५

श्रीमदजयाचार्य द्वारा राजस्थानी में प्रणीत

भगवती जोड़ ७ भागों में		
भगवती जोड़ खंड-१		५००
भगवती जोड़ २ से ७	प्रत्येक	४००
निर्युक्तिपंचक (मूल, पाठान्तर)	१३००	५००
व्यवहार भाष्य (हिन्दी अनुवाद)	प्रेस में	
व्यवहार भाष्य (मूल, पाठान्तर, भूमिका, परिशिष्ट		७००
गाथा (आगमों के आधार पर भगवान महावीर का जीवन दर्शन रोचक शैली में)		३५०
आवश्यक निर्युक्ति भाग-१ (हिन्दी अनुवाद)		४००

कोश	पृष्ठ	मूल्य
देशी शब्दकोश	५७०	१००
निरुक्त कोश	३७०	६०
एकार्थक कोश	३६६	७०
जैनागम वनस्पति कोश	३६३	३००
जैनागम प्राणी कोश	१३१	२५०
श्री भिक्षु आगम विषय कोश, भाग-१	७५७	५००
श्री भिक्षु आगम विषय कोश, भाग-२	प्रेस में	

प्रकाशक : जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं

श्रीमदजयाचार्य द्वारा राजस्थानी में प्रणीत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org